# पुराण विषय अनुक्रमणिका

(ई से उ तक)

वैदिक टिप्पणियों सहित

विपिन कुमार व राधा गुप्ता

परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली

# पुराण विषय अनुक्रमणिका

विपिन कुमार व राधा गुप्ता

# पुराण विषय अनुक्रमणिका

(ई से उ तक)

लेखक

विपिन कुमार

राधा गुप्ता

परिमल पब्लिकेशन्स

दिल्ली

*प्रकाशक:*

**परिमल पब्लिकेशन्स**

२७/२८, शक्ति नगर

दिल्ली-११०००७

दूरभाष - ७१२७२०९

यह ग्रन्थ राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान नई दिल्ली द्वारा प्रदत्त वित्तीय सहायता से प्रकाशित है।

**प्रथम संस्करण** १९९९

© लेखक

**मूल्य -**

*मुद्रक:*

**हिमांशु लेजर सिस्टम**

४६, संस्कृत नगर

सेक्टर-१४, रोहिणी

दिल्ली-११००८५

## समर्पण

एक सफल व्यवसायी होते हुए भी आजीवन साहित्य प्रेमी, विद्या-व्यसनी, गीर्वाणवाणी की सेवा हेतु समुत्सुक, हमारे प्रेरणा स्रोत एवं पथ-प्रदर्शक, परम पूज्य पिता स्वर्गीय श्री बलवीर सिंह एवं अगाध वात्सल्यमयी मां स्वर्गीया श्रीमती प्रेमलता की पुण्य स्मृति में प्रकाशित।

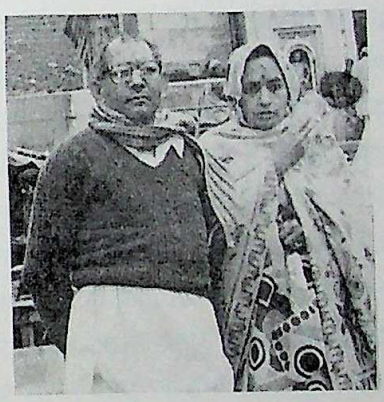

**श्री बलवीर सिंहः** जन्म— मार्गशीर्ष कृष्ण द्वितीया, वि० सं० १९७८ (७-१२-१९२१ ई०); निकुञ्ज वास : श्रावण शुक्ल सप्तमी, वि० सं० २०५५ (३०-७-१९९८ ई०)

**श्रीमती प्रेमलताः** जन्मः श्रावण कृष्ण त्रयोदशी, वि० सं० १९८५ (१३-८-१९२८ ई०) निकुञ्ज वासः माघ कृष्ण द्वितीया, वि० सं० २०३८ (२०-२-१९८१ ई०)

**डॉ० हरिहर त्रिवेदी**
साहित्य वाचस्पति, काव्यतीर्थ, एफ.आर.ए.एस. (लन्दन),
निदेशक (सेवा निवृत्त), पुरातत्व एवं संग्रहालय विभाग,
म. प्र. शासन।

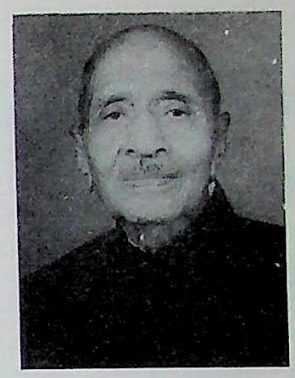

## प्राक्कथन

श्रीमती राधा गुप्ता तथा श्री विपिन कुमार के माध्यम से पुराण विषय अनुक्रमणिका के सृजन का जो कार्य चल रहा है, उसे देखकर मुझे अत्यन्त आत्मिक सन्तोष का अनुभव होता है। विगत वर्षों में हमारे देश में वेदों के पुनरुद्धार का प्रयत्न तो बहुत किया गया है, लेकिन उसमें सफलता अधिक नहीं मिल सकी है। दूसरी ओर, पुराण धार्मिक ग्रन्थों की कोटि में होने पर भी उनको ऐतिहासिक राजाओं आदि का वर्णन समझकर उनकी उपेक्षा सी कर दी गई है। यह हर्ष का विषय है कि श्रीमती राधा गुप्ता तथा श्री विपिन कुमार ने यह सिद्ध कर दिया है कि पुराण और वेद अन्योन्याश्रित हैं और पुराण कोई ऐतिहासिक राजाओं का वर्णन न होकर वेदों के छिपे रहस्यों को प्रकट करने का एक माध्यम हैं जिनको समझने के लिए तर्क और श्रद्धा दोनों की आवश्यकता पड़ती है। पुराणों का महत्त्व इसलिए और अधिक हो जाता है क्योंकि हमारे सारे समाज का आधार पुराणगत वर्णन हैं। पुराणों में किसी तथ्य का वर्णन जिस रूप में भी उपलब्ध है, चाहे वह वर्तमान दृष्टि से उचित है या अनुचित, हमारे कट्टरपन्थी समाज में उसका अक्षरश: पालन हो रहा है। लेकिन यह ध्यान देने योग्य है कि पुराणों की भाषा को अक्षरश: उसी रूप में मानना जिसमें वह कही गई है, मूढता होगी। पुराणों में सूक्ष्म और कारण शरीर की घटनाओं को स्थूल शरीर के स्तर पर समझने योग्य बनाया गया है। यदि पुराणों में शूद्र की छाया पड़ने का निषेध है तो इस कथन को आंख-कान बंद करके मानना तो मूर्खों का काम होगा। महाभारत आदि ग्रन्थों में यह स्पष्ट रूप से लिखा गया है कि ब्राह्मण कौन है, कौन क्षत्रिय है, कौन वैश्य है और कौन शूद्र। जिसने अपने काम, क्रोध आदि पर विजय पा ली हो वह ब्राह्मण हो सकता है, इस प्रकार पुराणों की दृष्टि से सोचा जाए तो हम सभी शूद्र अथवा शूद्रेतर ही हैं, ब्राह्मणत्व का तो कहीं नाम ही नहीं है।

प्राय: कहा जाता है कि वेद पढ़ने का अधिकार केवल ब्राह्मण को है और शूद्र तो केवल पुराण ही सुन सकता है। इस कथन में तनिक भी संदेह का स्थान नहीं है। जब तक व्यक्ति बिल्कुल सात्विक न हो जाए, मोक्ष की अवस्था के एकदम निकट न पहुंच जाए, तब तक वेदों को समझना बहुत कठिन कार्य है। दूसरी ओर, पुराणकारों ने राजाओं की कथाओं के माध्यम से वेद के जिन रहस्यों के उद्घाटन का प्रयास किया है, उन रहस्यों को क्षुद्र बुद्धि का व्यक्ति, जिसे शूद्र कहा जाता है, श्रद्धापूर्वक सुनकर रहस्यों को समझ सकता है।

यह तो रही पुराणों की बात। लेकिन वर्तमान में प्रस्तुत पुराण विषय अनुक्रमणिका पढ़ने का अधिकार किसको है? मेरा विचार है कि वैसे तो पुराणों में रुचि रखने वाला प्रत्येक व्यक्ति इसे पढ़कर पूरे वैदिक समुद्र में स्नान का आनन्द ले सकता है, लेकिन जो व्यक्ति ध्यान साधना की प्रक्रिया से गुजर चुका है, वह पुराण विषय अनुक्रमणिका के माध्यम से वैदिक समुद्र में गोते लगाकर अपनी साधना को वेदोन्मुखी, पुराणोन्मुखी बना सकता है जिसकी विगत हजारों वर्षों से आवश्यकता रही है।

हरिहर त्रिवेदी

**डा. फतहसिंह**

एम. ए., डी.लिट्.

पूर्व निदेशक

प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर (राज.)

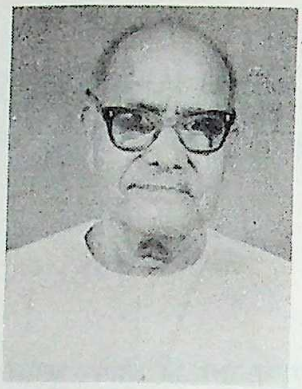

## प्रस्तावना

पुराण विषय अनुक्रमणिका नामक ग्रन्थ शृंखला की यह द्वितीय कड़ी है। श्री विपिन कुमार और उनकी सुयोग्य अनुजा श्रीमती राधा गुप्ता (एम.ए.,पीएच.डी., डी.लिट्.) का यह अत्यन्त सराहनीय सम्मिलित प्रयास है। पुराणों में प्रयुक्त वैदिक पारिभाषिक शब्दों के सन्दर्भ प्रस्तुत करते हुए लेखक द्वय ने अपने व्यापक अध्ययन के आधार पर इसमें पुराणगत वैदिक सन्दर्भ खोजने एवं स्थान स्थान पर उनकी व्याख्या प्रस्तुत करने का प्रयास भी किया है। इससे न केवल इसको एक सन्दर्भ ग्रन्थ कहा जा सकता है, अपितु इसमें संदर्भ संग्रह के साथ साथ जो यत्र तत्र व्याख्या मिलती है उसके आधार पर इसे वेद एवं पुराण का तुलनात्मक अध्ययन भी कह सकते हैं। इस दृष्टि से, इस ग्रन्थ शृंखला को पुराण एवं वेद का आधारभूत सम्बन्ध बतलाने वाला भी कह सकते हैं। सामान्यतः विद्वान् पुराण परम्परा को ऐतिहासिक दृष्टि से परवर्ती काल का मानते हैं, परन्तु वैदिक संहिताओं और ब्राह्मण ग्रन्थों में पुराण, पुराणविद् और पुराणवेद जैसे शब्द इस मान्यता पर पुनर्विचार करने को बाध्य करते हैं।

अतः पुराणों में प्रयुक्त वैदिक सन्दर्भों का यह संग्रह ग्रन्थ वेद और पुराण के शोधकर्ताओं के लिए अतिशय उपादेय हो जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि वेद और पुराण एक ही वेद विज्ञान को दो भिन्न प्रकार से प्रस्तुत करते हैं। इस ग्रन्थमाला में वेद और पुराण की तुलनात्मक दृष्टि को अपनाकर हमारी सनातन भारतीय संस्कृति के उन रहस्यों के उद्घाटन का प्रयास किया गया है जो परम्पराजनित अनेक पूर्वाग्रहों के कारण अभी तक दुर्बोध बने हुए हैं। आशा है कि श्री विपिन कुमार की वैज्ञानिक दृष्टि और श्रीमती राधा गुप्ता का सांस्कृतिक वैदुष्य इस दिशा में उत्तरोत्तर प्रगति करता हुआ शोधार्थियों और सुविज्ञ प्राध्यापकों के लिए एक अत्यन्त महत्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत करेगा। इस स्तुत्य कार्य के लिए दोनों ही साधुवाद के पात्र हैं।

**विश्वम्भरदेव शास्त्री**
सेवामुक्त प्रवक्ता, स्वतन्त्रता सेनानी,
शिक्षक नगर, देववृन्द (उ. प्र.)

# आशीर्वचन

**यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते। तया मामद्य मेधाविनं कुरु।।**

परमात्मा से मेधा बुद्धि की प्रार्थना की गई। मत्वा कर्माणि सीव्यति, जो मनुष्य मनन करके कार्यों को करने में तत्पर होता है, वही मानव है। सृष्टि की उत्पत्ति के साथ ही साथ परमात्मा ने जीवमात्र के हित के लिए अपना ज्ञान दिया। इस ज्ञान के द्वारा मानव ने अपने को सुखी बनाने के साधनों का निर्माण किया। अतः जहाँ पशु योनि केवल भोग भोगने में ही तत्पर है, वहाँ मनुष्य भोग और कर्म प्रधान है। वेदों से आचार-विचार, ज्ञान-विज्ञान, विश्वबन्धुत्व तथा प्राणिमात्र आदि के कल्याणकारक सिद्धान्तों का आविष्कार हुआ है। इन आदर्शों की छाप किसी समय सारे विश्व में थी और भारत जगद्गुरु बन गया था। भारतवर्ष को पहचानना है तो संस्कृत साहित्य को अपनाना आवश्यक है।

कतिपय विशेष विभूतियां सामने आती हैं और इस भौतिकवाद की चकाचौन्ध से प्रभावित न होकर मानव संस्कृति और सभ्यता की रक्षा करने में तत्पर रहती हैं। आज मेरे सम्मुख लेखकद्वय का प्रयास वर्तमान पुस्तक के रूप में है। लेखकों की जिज्ञासा को समझा कि उनका प्रयास है कि वैदिक शब्दों की व्याख्या के लिए पहले पुराणों में बिखरे हुए वैदिक शब्दों को, जो कथा रूप में प्रकट किए गए हैं, उनको समझना ठीक है। देखा जाए तो वेदों में कोई लौकिक कथा और इतिहास नहीं है, उनमें सार्वभौमिक सिद्धान्त हैं। लेखकद्वय ने बृहत् कार्यभार ग्रहण किया। विचित्र बात यह है कि एक ही माता-पिता के इन दोनों भाई-बहिनों पर आस्तिक और संस्कारित परिवार का प्रभाव पड़ा। यह प्रभाव इतना पड़ा कि पुत्री को संस्कृत की विदुषी बनते देख इनके पिता श्री बलवीर सिंह जी कुशल व्यापारी होते हुए भी आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर हो गए, पुत्र भी वैराग्य की ओर अग्रसर हो बिना संस्कृत पढ़े ही स्वाध्यायरत हो वेदों की ओर प्रवृत्त हो गया। देवबन्द का सौभाग्य है-जिस भूमि में इन दोनों ने जन्म लिया। सौ.राधा गुप्ता प्रारम्भ से ही मेधावी छात्र रही। एम.ए. संस्कृत पढ़ाते समय ही वेद, निरुक्त, दर्शन आदि को जैसे ही पढ़ा, दूसरे दिन बड़ी सरलता के साथ सुना कर ही अगला पाठ पढ़ना नित्य नियम था। यह प्रखर बुद्धि निरन्तर वृद्धि करती करती कठिन गृहस्थ भार को सुगृहिणी बन कर अपने परिवार को भी योग्य बना संस्कृत का स्वाध्याय कर पी एच.डी. और डी.लिट्. की उपाधियों से अलंकृत हुई। एक आदर्श विदुषी का अनुकरणीय साहस तप से कम नहीं है। चि.विपिन का स्वभाव भी छात्र अवस्था से तार्किक था। अपनी अवस्था के अनुसार प्रश्नों को पूछना-जब तक सन्तुष्ट न हो जाता था, तब तक चैन नहीं मिलता था। एक सम्पन्न घराने का एम.एस.सी. युवक अन्य युवकों की भांति भौतिकवादी बन सकता था, परन्तु आध्यात्मिक प्रभाव ऐसा पड़ा कि वैदिक ज्ञान की ओर प्रवृत्ति हो गई। साथ ही दिल्ली में डॉ.फतहसिंह जी के सान्निध्य से वैदिक छात्र ही बन गया और वैदिक तत्व मंजूषा (पुराणों में वैदिक संदर्भ) प्रस्तुत कर दी। गुरु भाव रूप में दोनों ने अपनी कृतियां मुझे भेंट की।

लेखकद्वय ने यह पुराण विषय अनुक्रमणिका लिखने में अथक प्रयास किया। प्रायः २२ पुराणों, संहिता, श्रौत और गृह्य सूत्रों, ब्राह्मण ग्रन्थों, उपनिषदों, ऋग्वेद, अथर्ववेद, निरुक्त आदि का स्वाध्याय कर विशेष टिप्पणियों द्वारा शब्दों को सरलता से समझाने का प्रयास सराहनीय है जो अनुसंधान करने वालों के लिए पथप्रदर्शक बनेगा। मैं अपने इन लेखकद्वय के भविष्य की उज्ज्वल कामना करता हुआ इनके दीर्घजीवन और यशस्वी बनने की प्रार्थना करता हूँ।

शमिति।

ज्येष्ठ शुक्ल अष्टमी,

वि. सम्वत् २०५५

विश्वनाथ शास्त्री

# भूमिका

पुराण विषय अनुक्रमणिका के वर्तमान खण्ड में वर्णमाला के ई तथा उ से आरम्भ होने वाले शब्दों का संकलन किया गया है। इस खण्ड में शब्दों पर वैदिक टिप्पणियों के अतिरिक्त, परिशिष्ट के रूप में वैदिक साहित्य के उन वाक्यांशों को दिया गया है जिनके आधार पर प्रस्तुत अनुक्रमणिका में शब्दों पर टिप्पणियां की गई हैं। परिशिष्ट के आरम्भ में कुछ शीर्षक हैं जिनमें केवल उन्हीं वाक्यांशों को स्थान दिया गया है जिनका उपयोग टिप्पणी लेखन में नहीं हो सका। परवर्ती शीर्षकों में सभी वाक्यांशों का समावेश है, चाहे उनका उपयोग टिप्पणी लेखन में हुआ हो या न हुआ हो। परिशिष्ट के कुछ अंश ऐसे भी हैं जो कम्प्यूटर टंकण के समय नष्ट हो गए हैं और इस कारण से वह परिशिष्ट में स्थान नहीं पा सके। परिशिष्ट व टिप्पणी के अध्ययन से हमें एक विषय की विस्तृत जानकारी एक साथ मिल सकती है। हो सकता है कि वैदिक संहिताओं, ब्राह्मणों, उपनिषदों और श्रौत ग्रन्थों के कम्प्यूटर में लिपिबद्ध होने के पश्चात् वैदिक वाक्यांशों के लेखन की आवश्यकता न पड़े, किन्तु अभी तो यह परिशिष्ट अपरिहार्य है। स्वयं लेखक-द्वय भी इसका उपयोग करते रहते हैं।

लेखक-द्वय डॉ० सीताराम गुप्ता के आभारी हैं जिनके कारण इस ग्रन्थ के परिशिष्ट का टंकण लेखन के तुरन्त पश्चात् सम्भव हो पाया। इसके अतिरिक्त प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से जिन सज्जनों का सहयोग लेखकों को प्राप्त होता रहा है, लेखक-द्वय उनके आभारी हैं।

**विपिन कुमार**

**राधा गुप्ता**

# मुख्य ग्रन्थ सूची


**अग्नि पुराण** (नाग प्रकाशक, दिल्ली; हिन्दी अनुवाद: कल्याण विशेषांक वर्ष ४४ व ४५, गीताप्रेस, गोरखपुर)

**कथासरित्सागर** (बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना (हिन्दी अनुवाद सहित); मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली (केवल मूल संस्कृत)

**कूर्म पुराण** (नाग प्रकाशक, दिल्ली; कल्याण विशेषांक वर्ष ७१,गीताप्रेस गोरखपुर)

**गरुड पुराण** (चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी तथा नाग प्रकाशक, दिल्ली)

**गर्ग संहिता** (खेमराज श्रीकृष्ण दास, बम्बई; हिन्दी अनुवाद: कल्याण विशेषांक वर्ष ४४ व ४५, गीताप्रेस, गोरखपुर)

**देवीभागवत पुराण** (नाग प्रकाशक, दिल्ली)

**नारदीय पुराण** (नाग प्रकाशक, दिल्ली)

**पद्म पुराण** (नाग प्रकाशक, दिल्ली)

**ब्रह्म पुराण** (नाग प्रकाशक, दिल्ली; हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग (हिन्दी अनुवाद सहित))

**ब्रह्मवैवर्त्त पुराण** (राधाकृष्ण मोर, कलकत्ता; मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली)

**ब्रह्माण्ड पुराण** (कृष्ण दास अकादमी, वाराणसी)

**भविष्य पुराण** (नाग प्रकाशक, दिल्ली; हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग (हिन्दी अनुवाद सहित))

**भागवत पुराण** (गीताप्रेस, गोरखपुर (हिन्दी अनुवाद सहित))

**मत्स्य पुराण** (कल्याण विशेषांक वर्ष ५८ व ५९, गीताप्रेस, गोरखपुर (हिन्दी अनुवाद सहित); नाग प्रकाशक, दिल्ली)

**महाभारत** (गीताप्रेस, गोरखपुर (हिन्दी अनुवाद सहित)),

**मार्कण्डेय पुराण** (मनसुखराय मोर, कलकत्ता; नाग प्रकाशक,दिल्ली)

**योगवासिष्ठ** (मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली)

**लक्ष्मीनारायण संहिता** (चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी)

**लिङ्ग पुराण** (मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली)

**वराह पुराण** (मेहरचन्द लछमनदास, दिल्ली)

**वामन पुराण** (कल्याण वर्ष ५६ विशेषांक, गीताप्रेस, गोरखपुर (हिन्दी अनुवाद सहित); नाग प्रकाशक, दिल्ली)

**वायु पुराण** (आनन्दाश्रम, पूना); नाग प्रकाशक,दिल्ली)

**वाल्मीकि रामायण** (गीताप्रेस, गोरखपुर (हिन्दी अनुवाद सहित))

**विष्णु पुराण** (गीताप्रेस, गोरखपुर (हिन्दी अनुवाद सहित); नाग प्रकाशक, दिल्ली)

**विष्णु धर्मोत्तर पुराण** (नाग प्रकाशक, दिल्ली)

**शिव पुराण** (नाग प्रकाशक, दिल्ली)

**स्कन्द पुराण** (नाग प्रकाशक, दिल्ली)

**हरिवंश पुराण** (गीताप्रेस, गोरखपुर (हिन्दी अनुवाद सहित))

# सहायक ग्रन्थ सूची


**अथर्ववेद** (सायण भाष्य सहित, विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थानम्, होशियारपुर, पंजाब)

**अथर्ववेद** (अवशिष्ट मन्त्रों का अभिनव सायण भाष्य; गंगेश्वर इण्टरनेशनल वेद मिशन न्यास, बम्बई)

**अथर्ववेद परिशिष्ट** (सं. रामकुमार राय; चौखम्बा ओरियण्टालिया, वाराणसी)

**आपस्तम्ब श्रौत सूत्र** (मुन्शी राम मनोहरलाल, दिल्ली)

**आश्वलायन श्रौत सूत्र** (लालबहादुर शास्त्री केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली)

**उणादि कोश** (वैदिक पुस्तकालय, अजमेर)

**उणादि सूत्र** : विभिन्न वृत्तियों सहित (नवरंग पब्लिशर्स, नई दिल्ली)

**उपनिषत्संग्रह** (मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली)

**उपनिषद् वाक्य महाकोश** (सं. गजानन शम्भु साधले; रूपा बुक्स प्रा.लि., जयपुर)

**ऋग्वेद** (सायण भाष्य सहित, वैदिक संशोधन मण्डल, पूना)

**ऐतरेय ब्राह्मण** (आनन्दाश्रम, पूना)

**ऐतरेय आरण्यक** (आनन्दाश्रम, पूना)

**कन्कार्डेन्स टु प्रिंसिपल उपनिषद्स एण्ड गीता** (सं. कर्नल जी. ए. जैकब; मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली)

**काठक संहिता** (स्वाध्याय मण्डल, पारडी)

**काण्व शतपथ ब्राह्मण** (मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली)

**कात्यायन श्रौत सूत्र** (लाल बहादुर शास्त्री केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली)

**कात्यायन यज्ञ पद्धति** (ले. : मनोहर लाल द्विवेदी; राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली)

**काशकृत्स्न धातु व्याख्यानम्** (सं. युधिष्ठिर मीसांसक; रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़, सोनीपत)

**कुन्ताप सूक्त सौरभम्** (भाष्यकार: जगन्नाथ वेदालंकार; गुरु गंगेश्वर चतुर्वेद प्रकाशन संस्थानम्, वृन्दावन)

**कौशिक सूत्र** (मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली)

**गोपथ ब्राह्मण** (रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़, सोनीपत)

**छान्दोग्य ब्राह्मण** (संस्कृत कालेज, कलकत्ता, १९५८)

**जैमिनीय ब्राह्मण** (मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली)

**जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण** (केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, तिरुपति)

**ताण्ड्य ब्राह्मण** (चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली)

**तैत्तिरीय ब्राह्मण** (आनन्दाश्रम, पूना)

**तैत्तिरीय संहिता** (आनन्दाश्रम, पूना)

**द्राह्यायण श्रौत सूत्र** (गंगानाथ झा केंद्रीय संस्कृत विद्यापीठ, प्रयाग)

**निघण्टु** (यास्क प्रणीत, वैदिक पुस्तकालय, अजमेर)

**निरुक्त** (यास्क प्रणीत, मेहरचन्द लछमनदास, दिल्ली)

**पदानुक्रम कोश** संहिता भाग (विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थानम्, होशियारपुर)

**पदानुक्रम कोश** ब्राह्मण भाग (विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थानम्, होशियारपुर)

**पदानुक्रम कोश** उपनिषद् भाग (विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थानम्, होशियारपुर)

**पदानुक्रम कोश** वेदांग भाग (विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थानम्, होशियारपुर)

**पुराण विषय अनुक्रमणिका** भाग १ (सं. राजबली पाण्डेय; काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी)

**पुराण विषय अनुक्रमणिका** भाग २ (सं. लल्लन जी गोपाल; काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी)

**पुराणों में वैदिक संदर्भ** (डॉ. फतहसिंह से वार्तालाप आदि के अंश; संकलनः विपिन कुमार; परिमल प्रकाशन, दिल्ली, १९९८)

**पैप्पलाद संहिता**

**पौराणिक कोश** (सं.:- राणाप्रसाद शर्मा; ज्ञानमण्डल प्रकाशन, वाराणसी)

**बृहद् देवता** (अनु. :- रामकुमार राय; चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी)

**यन श्रौत सूत्र** (मुन्शीराम मनोहरलाल, दिल्ली)

**ब्राह्मणोद्धार कोश** (विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थानम्, होशियारपुर)

**भागवत पादानुक्रमणिका** (श्रीकृष्ण जन्म स्थान सेवासंघ, मथुरा)

**महाभारत श्लोक पाद-सूची** (भण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना)

**यजुर्वेद** (उव्वट-महीधर भाष्य; निर्णय सागर प्रेस, बम्बई)

**वाचस्पत्यम्** (ले. : तारानाथ तर्कवाचस्पति; चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी)

**वैदिक कन्कार्डेन्स** (सं.: एम. ब्लूमफील्ड, मोतीलाल बनारसीदास,दिल्ली)

**शतपथ ब्राह्मण** (नाग प्रकाशक, दिल्ली)

**शब्दकल्पद्रुम** (सं.: राजा राधाकान्त देव; नाग प्रकाशक, दिल्ली)

**शांखायन आरण्यक** (आनन्दाश्रम, पूना)

**शांखायन श्रौत सूत्र** (काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी)

**षड्विंश ब्राह्मण** (केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, तिरुपति)

**संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी** (आप्टे व अन्य; प्रसाद प्रकाशन, पूना)

# समालोचनाएं

## (१)

### (पुराण विषय अनुक्रमणिका के प्रथम भाग की समालोचनाएं:)

लेखक-द्वय द्वारा संकलित पुराण विषय अनुक्रमणिका का यह प्रथम भाग प्राप्तकर अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है। इस भौतिक काल के कलरव में रहते हुए भी तन्तुं तन्वन् रजसो भानुमन्विहि (ऋग्वेद)के अनुसार पूर्व पुण्यों के उदय तथा पैत्रिक संस्कारों के प्रभाव से आध्यात्मिक देवधारा में अवगाहन का फल किसी भाग्यशाली को प्राप्त होता है। यह प्रत्यक्ष प्रमाण है-स्वाध्यायशील श्री बलवीरसिंह जी की संस्कृत के प्रति अगाध श्रद्धा रही-अपने सतत् परिश्रम से योगवासिष्ठ जैसे गहन ग्रन्थ को हृदयपटल पर अंकित करना साधारण बुद्धि का काम नहीं। प्रातः भ्रमण काल में अपने अनुभव प्रकट करते और कहते रहते-शास्त्री जी, मैं संस्कृत तो पढ़ा ही नहीं। आज अपने ज्ञान को अपनी सन्तानों द्वारा विकसित देख इनको कितनी आनन्दानुभूति हो रही है, यह अवर्णनीय है।

पिता की आध्यात्मिक प्रकृति का उत्तराधिकार पुत्री सौ. राधा और विपिन को प्राप्त हुआ। ऐश्वर्य कांक्षिणी राधा गृहस्थ का भार सम्भालते हुए भी ऋषियों की थाति संस्कृत के प्रति कितनी निष्ठा रखती है, यह तो एम. ए. परीक्षा के समय उसकी प्रखर बुद्धि का आभास हो गया था। जो एक बार पढ़ लिया, उसकी पुनरावृत्ति कभी नहीं की। पुनः पी. एच. डी. और डी. लिट् की उच्चतम उपाधि से अलंकृत हुई-अब अपने अर्जित कोष को वितरण करने में तत्पर है।

चि. विपिन का प्रारम्भिक जीवन जिज्ञासु प्रकृति का रहा। तर्क-वितर्क करके किसी बात का निर्णय करना एक स्वभाव था। वह उत्कण्ठा इतनी जागृत हुई कि बिना संस्कृत विषय पढ़े ही-वेदार्थ जानने की लालसा बढ़ी और अपना जीवन ही मुनिवत् वैदिक साहित्य की ओर अर्पित कर दिया। मैं दोनों की पूर्ण सफलता की कामना करता हूं— इनका यह सात्विक प्रयास निरन्तर उन्नत होता रहे। परम पिता परमात्मा इनके उज्ज्वल भविष्य में सहायक बनें। वेद मन्त्र द्वारा मैं भी अपनी सद्भावना प्रस्तुत करता हूं।

हिरण्यमयेन पात्रेण, सत्यस्यापिहितं मुखम्। तत् त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये।।

शमिति

फाल्गुन पूर्णिमा, २०५२

५.३.९६

**विश्वम्भरदेव शास्त्री**

सेवा मुक्त प्रवक्ता, हरपतराय उ. मा. विद्यालय, देवबन्द।

## (२)

आपकी यह साहित्य सेवा अत्यन्त श्लाघनीय एवं महत्त्वपूर्ण है। ऐसे दीर्घकालसाध्य एवं बहु-आयामी कार्य प्राय: संस्था विशेष के माध्यम से ही होते रहे हैं। इस प्रथम भाग के पर्यालोचन से ज्ञात होता है कि आपने पुराणों के साथ ही वैदिक वाङ्मय के आलोडन में भी पर्याप्त प्रयास किया है।

इस ग्रन्थ के अध्येता को मूल स्थान और उसके विकास-विस्तार का ज्ञान भी सहज प्राप्त हो जाता है। संस्कृत साहित्य की विशाल परिधि में व्याप्त तथ्यों का एकत्र प्रस्तुतीकरण परमोपयोगी बना है। हां, एक बात यह भी स्मरणीय है कि हमारे यहां वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई से प्रकाशित पुराण जब प्रकाशित हुए थे, तब उनके प्रकाशन के समय शोधदृष्टि को महत्त्व नहीं दिया गया था। किन्तु उस समय के पश्चात् अनेक अनुसन्धान कर्ताओं ने कतिपय पाठ और मिलने के सङ्केत दिये हैं (जैसे स्कन्दपुराण का एक उमाखण्ड नेपाल के संस्कृत विश्वविद्यालय से कुछ वर्ष पूर्व सम्पादित होकर छपा है। उसकी भूमिका में सम्पादक ने बंगाल और अन्य प्रदेशों की पाण्डुलिपियों से उसे प्राप्त कर छपवाया है)। इसी प्रकार ब्रह्मवैवर्त्त और ब्रह्माण्डपुराण के भी कुछ भाग तञ्जौर और अन्यत्र अन्य दक्षिण के पुस्तकालयों में मिलते हैं। मराठी के एक प्राचीन मासिक अंकुश (पूना से प्रकाशित) में ब्रह्माण्डपुराण के गणेश खण्ड का सूचन है जिसमें बहुत सा विषय इधर के ब्रह्माण्डपुराणों में अनुपलब्ध है।

**रुद्रदेव त्रिपाठी**
ए-१५, मणिद्वीप,
रामटेकरी, मन्दसौर (म.प्र.)
४५८००९

## (३)

## वेद से जोड़ने वाला पुराण-संदर्भ-कोष

पुराण महोदधि के रत्नों की खोज के क्रम में विश्वकोषीय प्रयास का एक नमूना हाल ही में सामने आया है, जिसमें अकारादि क्रम से पुराणों के वर्ण्य विषयों,संज्ञाओं तथा अभिधानों के अर्थों, सन्दर्भों आदि का विवरण, साथ ही उनके वैदिक उत्सों का विवरण ही नहीं, उनके निर्वचन और व्याख्या की दिशा देने वाले मंतव्यों का भी समावेश है। लगता है कि यदि पूरा विश्वकोष बनाने का प्रयास किया जाए, तो यह दशाब्दियों में जाकर पूरा होने वाला विराट् उपक्रम होगा क्योंकि हमारे सामने आया यह संदर्भ कोष तो केवल अ से इ तक के शब्दों का ही वर्णक्रम कोष है। यदि क्रम चलता रहे तो ह तक पूरा होने में न जाने कितने खंड आवश्यक होंगे। इस नमूने से भी इस कार्य की विशालता का आभास हो जाता है। यद्यपि कुछ पुराण कोश हिन्दी में प्रकाशित हुए हैं, श्री सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव जैसे विद्वानों ने मराठी आदि भाषाओं में चरित्र कोष (संज्ञाओं और नामों के कोष) भी प्रकाशित किए थे, जिनके हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित हुए, तथापि शोधात्मक दृष्टि से किस संज्ञा की किस प्रकार कथाएं पुराणों में आती हैं, यह संदर्भ देने के साथ उनका रूप वेदों, ब्राह्मणों, उपनिषदों आदि में कैसा था, उसका प्रतीक लेकर पुराणों में जो कथाएं आई, उनकी वैदिक परंपरा के साथ संगति किस प्रकार बिठाई जा सकती है, इसका सर्वांगीण विवेचन करने वाला संपूर्ण वर्णक्रम कोश अब तक देखने में नहीं आया था। इस प्रयास के पूर्ण होने से यह अपेक्षा पूरी हो सकती है, ऐसी आशा बंधी है।

डॉ. फतहसिंह जैसे वेद विद्वान् के मार्गदर्शन में शोध करने वाले दो अनुसंधित्सुओं के परिश्रम से प्रसूत यह अनुक्रमणिका अत्रि, इन्द्र, अंगिरा आदि चरित्रों की,अवतार, अग्निष्टोम आदि अवधारणाओं की तथा अंक, इन्द्रिय आदि संज्ञाओं की प्रविष्टि देकर उनका संदर्भ किस पुराण में कहां आया है, इसका निर्देश करती है, उसके बाद महत्वपूर्ण प्रविष्टियों में विस्तृत टिप्पणी देकर यह स्पष्ट करती है कि वेद वाङ्मय में इस का मूल क्या था तथा पुराणों में जो कथाएं बनीं, उन्हें वैदिक अवधारणा के प्रतीक के रूप में कैसे समझा जाए। उदाहरणार्थ अश्व शब्द की प्रविष्टि में पहले तो पुराणों में वर्णित अश्वों के प्रकार, उनकी चिकित्सा आदि का, अश्वों के उपाख्यानों का, पुराणों में आए अश्व, अश्वमेध, अश्वरथ, अश्वदान आदि का ससंदर्भ (खंडों और अध्यायों के संदर्भों सहित) विवरण है, फिर टिप्पणी के रूप में वैदिक अवधारणाओं का विमर्श है कि किस प्रकार ज्ञान, क्रिया, भावना के त्रिक में भावना अश्व है, उसे मेध्य (पावन) बनाना अश्वमेध है। इसके साथ ऋग्वेद में आए अश्वसूक्तों, ऐतरेय ब्राह्मण में अग्नि का अश्व बनकर उक्थों से असुरों को निकाल फेंकने के उल्लेखों के साथ भविष्य पुराण की हयविजय कथा की संगति, सूर्य के रथ के सात अश्वों की, आश्वमेधिक अश्व की बंधन रज्जु के १३ अरत्नि लंबे होने को १३ मासों का प्रतीक समझने की, अश्वशीर्ष दधीचि द्वारा मधुविद्या के उपदेश की (दधि, मधु, घृत, परमान्नों की साधना), कद्रू-विनता को द्यावापृथिवी का रूप मानने की, पुराणों की सत्यवान्-सावित्री कथा को सावित्रेष्टि का प्रतीक मानने पर विचार करने की, प्राण-अपान को व मन की पराक् और अर्वाक् गति को पुराण में वर्णित अश्व युगलों के प्रतीक से समझने की, वैदिक श्यावाश्व और पौराणिक श्यामकर्ण अश्व में क्या कोई समानता देखी जा सकती है-ऐसे संकेत देने की डां. फतहसिंह की जो टिप्पणी है, वह वैदिक विज्ञान के साथ पौराणिक अवधारणाओं का तुलनात्मक अध्ययन करने की दृष्टि से मूल्यवान मार्गदर्शन देती है।------इस अनुक्रमणिका में समस्त महत्वपूर्ण पुराणों के साथ-साथ रामायण, महाभारत, लक्ष्मीनारायण संहिता और कथासरित्सागर के भी सन्दर्भ-निर्देश हैं। स्पष्ट है कि यह कार्य इतने विपुल श्रम और समय की अपेक्षा करता है कि सदियों तक ऐसा संकलन होते रहने पर भी इसका ओर-छोर न मिले क्योंकि हमारा वैदिक वाङ्मय इतना विशाल है कि हजारों वर्षों के कालखंड में व्याप्त होने के कारण बहुत सा अब तक अनुपलब्ध है। पुराण साहित्य भी उतना ही (उससे भी अधिक) विराट् है। इसके साथ तंत्र वाङ्मय (आगम) और अन्य लौकिक साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन भी करना हो, तो यह कार्य मानव साध्य ही नहीं रहता। अतः ऐसा प्रत्येक उपक्रम पूर्णता का दावा तो नहीं कर सकता किन्तु महत्वपूर्ण पहल करके इतिहास की सिकता पर अपने पदांक अवश्य छोड़ सकता है। इस दृष्टि से ऐसे सराहनीय प्रयासों का भरपूर स्वागत किया जाना चाहिए।

ऐसे मार्गदर्शक कोषों से वैदिक वाङ्मय के मूल उत्सों का पुराणों और लौकिक साहित्य की धाराओं में आकर बढ़ने-घटने, बदलने आदि का तुलनात्मक अध्ययन करने की दिशा में जो प्रेरणा मिलेगी, उससे आगे कुछ अन्य विद्वान् भी ऐसे कार्यों में प्रवृत्त होंगे, ऐसी आशा की जानी चाहिए। कुछ वैदिक संज्ञाएं किस प्रकार बदल गई, इसके उदाहरणस्वरूप अहिर्बुध्न्य शब्द लिया जा सकता है, जो एक देव-संज्ञा बन गई है। इस कोष में भी वैसी ही प्रविष्टि है और संदर्भ-संकेत दिए गए हैं। और तो और, एक अहिर्बुध्न्य संहिता भी उपलब्ध है। लगता है मूलतः ये दो शब्द थे अहिः बुध्निय-तलहटी में रहने वाला अहि। वेदों में (तैत्तिरीय ब्राह्मण १.१.१०.३ आदि) स्पष्ट उल्लेख है-अहे बुध्निय मंत्रम् मे गोपाय। आश्चर्य की बात यह है कि यह बुध्निय अहि अहिर्बुध्न्यः बनकर एक नाम बन गया। पुरानी पहचान मिट गई। इस कोष में इसका निर्वचन किसी ज्योतिष ग्रन्थ के संदर्भ में बुध रूपी बोध प्राप्ति के मार्ग में स्थापित किया जा सकने वाला अहि कहकर तो दे दिया गया है। अच्छा होता बुध्न्य अहि निर्वचन स्पष्ट ही दे दिया जाता। जैसा ऊपर उल्लेख है, इस प्रकार के अध्ययनों का कोई ओर-छोर नहीं है, अतः पूर्णता तो ऐसे प्रयत्नों को प्रोत्साहित, समर्थित और पूरक अध्ययनों से उपबृंहित करने से ही आएगी।

वैदिक अवधारणाओं का पुराण, दर्शन तथा अन्य शास्त्रीय परम्पराओं की समन्वित सनातनता में अध्ययन करने का जो क्रम मधुसूदन ओझा, गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी आदि ने चलाया था, उसे ऐसे प्रयत्न बखूबी आगे बढ़ाते हैं। इस ग्रन्थ की वैदिक टिप्पणियों में डां. फतहसिंह का अभिगम पूर्णतः शोधात्मक, तथ्यपरक एवं वस्तुनिष्ठ है। प्रमाण और सन्दर्भ देकर वे अपनी बात कहते हैं और जहां विशेष अध्ययन अपेक्षित है, वहां अपना तर्कशुद्ध अनुमान यह कहकर उल्लिखित कर देते हैं कि इस दिशा में आगे अनुसंधान किया जा सकता है।

**कलानाथ शास्त्री**

राजस्थान पत्रिका

१६-६- १९९६

## (४)

# पुराण : वेदालोक में

वैदिक वाङ्मय के प्रख्यात विवेचक डॉ० फतहसिंह के सुयोग्य शिष्य श्री विपिन कुमार ने अपनी अनुजा डॉ० राधा गुप्ता के सहकार से वैदिक टिप्पणियों सहित पुराणों के विषयों की अनुक्रमणिका की संरचना करने का उपक्रम किया है। इसके प्रथम खण्ड से इसकी उपादेयता और महनीयता स्पष्ट है। इस खण्ड में अ, आ और इ से आरम्भ होने वाले ४०७ शब्दों को लिया गया है। इनमें से अधिकांश शब्दों पर वैदिक सन्दर्भों की विवेचना के साथ विशद टिप्पणियाँ प्रस्तुत की गई हैं। इससे वैदिक और पौराणिक वाङ्मय के अन्तः-सम्बन्ध का प्रकाशन सम्भव हो सका है।

समस्त विश्व के चिन्तकों पर और विशेष रूप से भारतीय चिन्तन-परम्परा पर वैदिक विचारों का अप्रतिम प्रभाव है। वैदक वाङ्मय में निहित गूढ़ तत्त्वों के विश्लेषण के प्रयास विद्वान् करते रहे हैं। महाभारत के आरम्भ (१.१.२७) में कहा गया है कि इतिहास और पुराण वैदिक चिन्तन के सम्यक् उपबृंहण (अर्थात्, विवेचन) के लिए हैं अन्यथा वेद मन्त्रों के अध्ययन-मात्र से वेदों की रक्षा सम्भव नहीं है। वहीं (१.१.८६) में कहा गया है, पुराणपूर्णचन्द्रेण श्रुतिज्योत्स्ना प्रकाशिता। पुराण विविध आख्यानों और उपाख्यानों द्वारा, लोकशिक्षण के साथ साथ, वेदों के महनीय चिन्तन का विवेचन प्रस्तुत करते हैं। किन्हीं विद्वानों के विचारानुसार वेदार्थ के उपबृंहण करने वाले विविध प्रयासों में पुराणों की प्रमुखता है।

उपबृंहण शब्द का अर्थ है किसी तथ्य की पुष्टि अथवा विवेचन। वेदार्थ के उपबृंहण के लिए पुराणों ने अनेक विधाएं अपनाई हैं। जैसे, कहीं वैदिक मन्त्रों की पदावली पौराणिक स्तुतियों में स्पष्टतः परिलक्षित होती है। ऋग्वेद के पुरुष-सूक्त की पदावली विष्णु की पौराणिक स्तुतियों में बहुधा मिलती है। वैदिक विचारों का व्याख्यान कथानक-रूप में विविध स्थलों पर प्राप्त होता है। उदाहरण-स्वरूप, शतपथ ब्राह्मण ३.४.४.१८ और तैत्तिरीय आरण्यक १.१२.४ में अहल्यायै जार जैसे वाक्य से रात्रि के अंधकार के निवारक सूर्य के उदय का वर्णन प्रस्तुत हुआ है। वैदिक साहित्य में अहल्या शब्द रात्रि का वाचक है। अहः (दिन) का जिसमें लय होता है वह अहल्या (रात्रि) है। रात्रि का जरण(विच्छेद) करने वाला सूर्य है। पुराणों में गौतम ऋषि की पत्नी अहिल्या के साथ इन्द्र नामक देव का उपपति रूप में समागम वर्णित है। यहाँ, वैदिक और पौराणिक वर्णनों में, अन्तर शब्दप्रयोग-गत भी है। वेद में

अहल्या और पुराण में अहिल्या, दो भिन्न-भिन्न वर्तनियां हैं। किन्तु इस स्वल्प भेद को छोड़ दें तो दोनों में साम्य स्पष्ट है। सूर्य रात्रि का जरण (जीर्णतापादन) करता है तो इन्द्र अहिल्या का।

वैदिक और पौराणिक वाङ्मयों में वर्णित तथ्यों की समानता को बूझने की दिशा में विपिन कुमार और राधा गुप्ता ने संदर्भ कोश की रचना का जो उपक्रम किया है उससे वैदिक तथ्यों का विवेचन और उभय वाङ्मयों के अन्त:संबंधों का गहन परिचय प्राप्त हो सकेगा, यह विश्वास है।

पुराण-विषयानुक्रमणिका के इस प्रथम खण्ड में शब्दों के पौराणिक संदर्भों का उल्लेख है और उनकी विवेचना हेतु वैदिक वाङ्मय में उन-उन शब्दों के प्रयोग-स्थलों का निर्देश किया गया है। वैदिक तथ्यों की विवेचना में पौराणिक वर्णनों द्वारा मिलने वाली सहायता की ओर इंगित किया गया है। उदाहरण-स्वरूप, इषु शब्द के विभिन्न प्रयोगों की समीक्षा करते हुए इस शब्द का अभिप्रेतार्थ सीधा, सरल निर्दिष्ट किया है। अनेक टिप्पणियों द्वारा विभिन्न शब्दों के प्रयोगों के लम्बे इतिहास पर व्यापक दृष्टि से विचार करने का महनीय कार्य किया गया है। आशा है, अग्रिम खण्डों में वे वैदिक तथ्यों की विवेचना में और भी महत्त्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत करेंगे। श्री विपिन कुमार ने विज्ञान की उच्च शिक्षा प्राप्त की है। उनके वैदिक ज्ञान के साथ विज्ञान का गंभीर परिचय सोने में सुहागे के रूप में यहाँ इस ग्रन्थ में परिलक्षित होता है।

**आचार्य श्री रमेशचन्द्र चतुर्वेदी**

(श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली)

वेद सविता, सितम्बर १९९७

## (५)

जो कार्य लेखक-द्वय श्री विपिन कुमार और डॉ० राधा गुप्ता द्वारा अब आरम्भ किया जा रहा है, वह अबसे ५० वर्ष पूर्व समाप्त हो जाना चाहिए था। प्रस्तुत कार्य में वर्णमाला के केवल तीन अक्षरों-अ, आ व इ की पुराण अनुक्रमणिका प्रस्तुत की गई है। इस प्रकार लगता है कि वर्णमाला के ५० अक्षरों की पूरी अनुक्रमणिका बनाने के लिए इस आकार के १५ -२० भागों की आवश्यकता पड़ेगी। आज के भौतिक प्रतिस्पर्धा के युग में संस्कृत का गहन अध्ययन करने का समय प्रत्येक व्यक्ति के पास नहीं है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि उनकी आध्यात्मिक जिज्ञासा कम है। अत: ऐसे कार्य की बहुत आवश्यकता है जो शिक्षित वर्ग की आध्यात्मिक जिज्ञासा को पूरा कर सके। अब प्रस्तुत पुस्तक इस दिशा में एक और प्रयास है। हमारे पौराणिक साहित्य में बहुत सा ज्ञान भरा पड़ा है जिसे प्रकाश में लाने की आवश्यकता है। लेखकों ने अपनी विषय अनुक्रमणिक बनाते समय सर्वमान्य १८ पुराणों को तो लिया ही है, इसके अतिरिक्त हरिवंश पुराण, देवीभागवत पुराण, वाल्मीकि रामायण, कथासरित्सागर, योगवासिष्ठ, लक्ष्मीनारायण संहिता, महाभारत आदि ग्रन्थों को भी अपनी अनुक्रमणिका में सम्मिलित किया है जिससे यह अनुक्रमणिका पौराणिक ज्ञान की दृष्टि से अपनी पूर्णता को प्राप्त करती हुई प्रतीत होती है। हो सकता है कि किसी आध्यात्मिक रहस्य का उद्घाटन १८ पुराणों में न हो पाया हो और वह रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थों में हो गया हो। उदाहरण के लिए अगस्त्य ऋषि को पुराणों में समुद्र का पान करते हुए वर्णित किया गया है। लेकिन यह समुद्र कौन सा है जिसका अगस्त्य ऋषि पान करते हैं, इसका उद्घाटन केवल योगवासिष्ठ में ही किया गया है कि यह काल का समुद्र है। और जिन तथ्यों का रहस्योद्घाटन पौराणिक साहित्य में नहीं हो पाया, उनको लेखकों द्वारा वैदिक साहित्य के माध्यम से अपनी टिप्पणियों में उद्घाटित करने का प्रयास किया है। जहां लेखकों ने

रहस्योद्घाटन करने में अपने को असमर्थ पाया, वहां इन्होंने उन प्रश्नों को भविष्य के लिए खुला छोड़ दिया है। इसके अतिरिक्त सबसे अच्छी बात यह है कि लेखकों ने किसी उद्घाटित तथ्य के लिए ऐसा नहीं लिखा है कि यही सर्वमान्य तथ्य है, बल्कि उन्होंने लिखा है कि उन्हें ऐसा प्रतीत होता है, अथवा ऐसी संभावना है। अच्छा होता यदि परिशिष्ट के रूप में लेखक वैदिक साहित्य के वह अंश भी दे देते जो वह समझ नहीं पाए हैं क्योंकि पाठक को यह जानने का अधिकार है कि कहीं लेखकों ने तथ्यों को अपने पक्ष में तोड-मरोड तो नहीं लिया है, अथवा केवल अपने पक्ष की बात स्वीकार करके दूसरे पक्ष की उपेक्षा तो नहीं कर दी है। आशा है आगे के भागों में लेखक इस पर विचार करेंगे।

बहुत सुंदर प्रयास होते हुए भी यह ग्रन्थ त्रुटियों से मुक्त नहीं है। पुराणों में उपलब्ध बहुत सी सामग्री प्रस्तुत अनुक्रमणिका में स्थान नहीं पा सकी है। उदाहरण करे लिए, स्कन्द पुराण के वैष्णव खण्ड के अन्तर्गत जगन्नाथ क्षेत्र माहात्म्य में अध्याय ४ में अन्तर्वेदी का वर्णन आता है जो पौराणिक दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है। लेकिन प्रस्तुत अनुक्रमणिका में अन्तर्वेदी शीर्षक के अन्तर्गत इसका उल्लेख ही नहीं है। ऐसा लगता है जैसे लेखकों ने पुराणों का गम्भीर अध्ययन ही न किया हो। अनुक्रमणिका में कहीं तो महाभारत से सामग्री का चयन कर लिया गया है, कहीं वह छोड़ दिया गया है। यही हाल टिप्पणियों का है। किसी-किसी शीर्षक के लिए तो लम्बी-लम्बी टिप्पणियां लिख डाली हैं, किसी के लिए साहित्य का गहन अध्ययन किए बिना छोटी सी टिप्पणी लिख दी है और किसी शीर्षक के लिए बिल्कुल ही नहीं लिखी है। फिर, लेखकों ने जो सहायक ग्रन्थ सूची दी है, उससे लगता है कि लेखकों द्वारा सामग्री का चयन बहुत अधूरा है। तान्त्रिक साहित्य को तो लेखकों ने छुआ ही नहीं है, गृह्य सूत्र ग्रन्थों को भी नहीं छुआ है। जो कुछ श्रौत सूत्रों के ग्रन्थ लिए हैं, वह भी गिने चुने हैं। और टिप्पणियों के पठन से यह ज्ञात हो जाता है कि लेखकों ने अपने टिप्पणी लेखन में इन सबका उपयोग भी नहीं किया है। मात्र दिखावे के लिए ग्रन्थों को सूची में सम्मिलित कर लिया गया है। यह एक बडा दोष है जिसे आगे के भागों में सुधारा जाना चाहिए। एक बात और है। हमारा सारा प्राचीन ज्ञान आध्यात्मिक रहस्यों पर आधारित है। लेखकद्वय से यह आशा नहीं की जा सकती कि साधना के क्षेत्र में उनका विकास बहुत अधिक होगा। हमारे देश में ऐसे व्यक्ति विद्यमान हैं जिनकी साधना बहुत उच्च स्तर की है। यदि लेखक अपना लेखन कार्य करते समय ऐसे महापुरुषों से परामर्श कर लेते तो प्रस्तुत कार्य पूर्णता की ओर अग्रसर हो सकता था।

आशा है कि यह ग्रन्थ सनातन धर्मावलम्बियों, आर्य समाजियों और नास्तिकों, सबके लिए समान रूप से उपयोगी होगा। यही नहीं, इसमें मुस्लिम धर्मावलम्बियों के लिए भी अकबर और ईद आदि शब्दों की नई व्याख्याएं प्रस्तुत हैं। अकबर शब्द की व्याख्या करते समय यदि अकवारि शब्द को थोडा और स्पष्ट कर दिया जाता तो सभी लोगों की समझ में आ सकता था।

**डॉ० सच्चिदानन्द शास्त्री**

सार्वदेशिक साप्ताहिक, नई दिल्ली

११ अगस्त, १९९६

## (६)

श्री विपिन कुमार तथा डॉ० राधा गुप्ता द्वारा पुराण विषय अनुक्रमणिका नाम से तैयार किया गया ग्रन्थ सर्वथा स्तुत्य है। प्रथम भाग में केवल अ से इ तक ही पहुँचा जा सका है। परन्तु १८६ पृष्ठों के इस भाग को देखकर भी यह अनुमान लगाना कठिन नहीं कि पूरा ग्रन्थ भारतीय परम्परा को समझने के लिए अत्यन्त उपयोगी होगा। यद्यपि नाम से यही प्रतीत होता है कि इसका सम्बन्ध पुराण साहित्य से होगा, परन्तु अनेक संदर्भों में तथा टिप्पणियों के लेखन में वैदिक ग्रन्थों का उल्लेख कर स्पष्ट हो जाता है कि यह ग्रन्थ वस्तुतः पुराणों की वेदमूलकता सिद्ध कर रहा है। यह इसलिए महत्वपूर्ण है कि प्रायः पुराणों को गपोडों के ग्रन्थ माना जाता है, यद्यपि पुराण स्वयं इतिहास पुराणाभ्यां वेदान् समुपबृंहयेत की रट लगाते रहे हैं।

निस्संदेह, इससे पुराणों एवं रामायण-महाभारत के अनेक प्रसंगों में प्रयुक्त प्रतीकवाद को समझने में बड़ी सहायता मिलेगी। इससे भी बड़ी बात यह है कि यह प्रतीकवाद वेदमूलक सिद्ध होगा। ऐसे महत्वपूर्ण और उपयोगी कार्य के लिए लेखकद्वय बधाई के पात्र हैं। आशा है यह ग्रन्थ प्रत्येक पुस्तकालय की शोभा बढ़ाएगा और प्राचीन वाङ्मय, इतिहास और संस्कृति का प्रत्येक अध्येता इससे लाभान्वित होगा।

**फतहसिंह**

एम.ए., डी.लिट्.

पूर्व निदेशक, प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान,जोधपुर,

और वेद संस्थान, नई दिल्ली

वर्तमान निदेशक, वैदिक अनुसन्धान केन्द्र, जोधपुर

# पुराण विषय अनुक्रमणिका

**ई अग्नि** ३४८.२ (रति व लक्ष्मी के अर्थ में ई का प्रयोग)।

**ईक्षा भागवत** ११.१८.४२ (तप व ईक्षा वानप्रस्थ के धर्म होने का उल्लेख), ११.२२.१७ (अव्यक्त पुरुष द्वारा कार्य-कारण रूपिणी प्रकृति के ईक्षण का कथन), ११.२२.१८ (पुरुष के ईक्षण से धातुओं द्वारा वीर्य प्राप्त करके ब्रह्माण्ड की सृष्टि करने का कथन?)।

द्र. अन्तरिक्ष।

**ईति वराह** २१५.७२ (वाग्मती में स्नान से ईतियों/उपद्रवों की शान्ति), **स्कन्द** ५.२.४६.१० टीका (अतिवृष्टि आदि ६ ईतियों के नाम)

**ईश अग्नि** १७७.५ (चैत्र शुक्ल तृतीया को गौरी-शंकर अंगन्यास में ईशा का देवी की कटि में न्यास), २१६.१४ (ईशावास्यमिदं सर्वं का उल्लेख), **गरुड** १.१५.६८ (ईशात्मा: विष्णु के सहस्रनामों में से एक),१.४६.४ (वास्तुमण्डल के ८१ पदों में से एक पद के देवता का नाम), **नारद** १.५६.१२२ (१२ युगों के ईशों के विष्णु आदि नाम), १.६३.३५ (आठ विद्येश्वर गणों का ईश तत्त्व के आधीन होने का उल्लेख), **ब्रह्म** २.२.३२ (गौरी/पार्वती के ईशा नाम का उल्लेख), २.३६.३८ (ईशा देवी द्वारा राहु की शिर रहित देह के भक्षण का वर्णन), **भविष्य** २.२.२०.१७७ (ईश इत्यादि सूक्त की कूष्माण्ड संज्ञा आदि), २.२.२१.५२ (देवों के वाद्यों आदि के नामों में ईश के नन्दिघोष वाद्य तथा कामद राग का उल्लेख), ३.३.६.२५ (संयोगिता हरण प्रसंग में जयचन्द्र व पृथिवीराज की सेनाओं का ईश नदी के तटों पर डेरा डालने का उल्लेख), ४.१४३.२२ (महाशान्ति प्रयोग वर्णन के अन्तर्गत चतुर्थ कुम्भ का ईशावास्यादि द्वारा अभिमन्त्रण का उल्लेख), **भागवत** १.१२.१ (ईश/कृष्ण द्वारा उत्तरा के मृत गर्भ को पुनर्जीवित करने का उल्लेख), ६.१२.१० (दारुमयी नारी व यन्त्रमय मृग के समान सब भूतों के ईशतन्त्र होने का उल्लेख), १०.६.२२ (ईश से वक्षःस्थल की रक्षा की प्रार्थना), १०.७४.३१ (शिशुपाल द्वारा श्रीकृष्ण के बदले काल को ईश कहना), ११.१५.१५ (ईशित्व प्राप्ति का उपाय कथन: विष्णु के कालविग्रह में चित्त की धारणा), ११.१९.४४ (गुणों में असक्त धी की ईश संज्ञा का उल्लेख), **मत्स्य** ६०.२० (शिव व पार्वती के नामों के अंगन्यास के संदर्भ में ईशा का कटि में न्यास), **लिङ्ग** २.४५.५० (ईश नामक शिव से रज: तथा द्रव्य में तृष्णा की रक्षा करने की प्रार्थना; ईश के साथ तपोलोक का उल्लेख), **वायु** १३.१५ (अणिमा आदि सिद्धियों के लक्षण वर्णन के अन्तर्गत ईशित्व व वशित्व के लक्षण: सब भूतों के सुखदुःख का प्रवर्तक होना), १०३.९६ (धी/बुद्धि तथा कर्मों को ईश को अर्पित करके चित्तशुद्धि आदि करने का निर्देश), विष्णु ५.२०.३७ (कुवलयपीड हस्ती वध प्रसंग में बालकृष्ण के लिए ईश विशेषण का प्रयोग), **शिव** १.९.३० (ब्रह्मत्व के निष्कल तथा ईशत्व के सकल होने का वर्णन), १.२४.१५ (त्रिपुण्ड्र धारण के अन्तर्गत त्रिपुण्ड्र पार्श्व के धारण के लिए ईशाभ्यां नम: मन्त्र का प्रयोग), ६.१५.४ (ईश्वर के ईश, विश्वेश्वर, परमेश्वर व सर्वेश्वर नामक चार रूपों का कथन), ७.१२.४२ (भव, शर्व आदि रुद्रों के विशिष्ट गुणों के कथन के संदर्भ में ईश के साथ वसु विशेषण का प्रयोग तथा ईश के स्पर्शमयात्मक होने का उल्लेख), **स्कन्द** १.३.१.२.३९ (अरुणाचल का आश्रय लेने से ईशित्व व वशित्व प्राप्ति का उल्लेख), २.२.३१.२२ (नृसिंह की आराधना से ईशित्व, वशित्व आदि प्राप्त होने का कथन), **लक्ष्मीनारायण** २.२५२.४८ (१० प्रकार की ईश सृष्टियों का कथन), २.२५५.३९ (मन की ईशता के ६ भावों-चाञ्चल्य आदि का कथन), २.२५५.६७ (रश्मियों के क्रम में ईश रश्मि आदि का उल्लेख)।

टिप्पणी– ऋग्वेद १.१७०.५, ४.५२.३, ४.५५.८, ७.७५.५, ७.९७.१० आदि कई ऋचाओं में मुख्य रूप से अग्नि व इन्द्र तथा गौण रूप से उषा, सविता आदि देवताओं द्वारा वसुओं का ईशन करने के उल्लेख आते हैं। अग्नि मुख्य रूप से वस्व का ईशन करती है। डा. फतहसिंह की विचारधारा के अनुसार वसु वासनाओं के परिष्कृत रूप हैं–वासनाएं जिनका संस्कार करके उन्हें वसु या धन में रूपांतरित कर लिया गया है। इस विचारधारा की पुष्टि भविष्य पुराण ३.४.१५ में कुबेर, वरुण, अनल, अनिल, ध्रुव, सोम, प्रत्यूष और प्रभास नामक आठ वसुओं के वसु बनने की कथाओं से होती है जहां प्रत्येक वसु वासना का परिष्कृत रूप है। उदाहरण के लिए कुबेर की कथा में शिव द्वारा मैत्री की स्थापना का चित्रण किया गया है। मुक्तिकोपनिषद २.६९ में भी मैत्री आदि अमल वासना ग्रहण करने का निर्देश है। ऋग्वेद१.१००.७ में इन्द्र के करुण का ईश होने का उल्लेख है। अतः यह संभव है कि मैत्री, करुणा, मुदिता व उपेक्षा नामक चार प्रसिद्ध गुणों की गणना वैदिक साहित्य में वसुओं के रूप में की गई हो। तैत्तिरीय आरण्यक १.९.१ में अग्नि, जातवेदा, सहोजा आदि अग्नि के आठ वसुओं का उल्लेख है। दूसरी ओर, शतपथ ब्राह्मण ११.६.३.६ आदि में अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्यौ, चन्द्रमा व नक्षत्र नामक आठ वसुओं का उल्लेख आता है। यह संभव है कि अग्नि के जिन आठ वसुओं का उल्लेख आता है, वह आठ दिशाओं में वासनाओं से सम्बन्धित हों, जबकि अग्नि, पृथिवी, वायु आदि आठ वसु साधना के ऊर्ध्वमुखी मार्ग से सम्बन्ध रखते हों। डॉ. फतहसिंह आदि की विचारधारा के अनुसार दिशाओं में पूर्व दिशा कार्य ज्ञान की, दक्षिण दिशा दक्षता प्रप्ति की, पश्चिम दिशा सत्यानृत विवेक की और उत्तर दिशा कार्य आनन्द की दिशा है। भक्ति मार्ग में इन्हें सालोक्य, सारूप्य, सायुज्य व सामीप्य (क्रम?) नाम दिए गए हैं। अतः प्रत्येक दिशा की साधना से उस दिशा की वासनाओं का वसु में रूपांतरण हो सकता है। षड्विंश ब्राह्मण ६.३.१ में चार दिशाओं तथा पृथिवी, अन्तरिक्ष आदि में साधक के समक्ष प्रकट होने वाले अद्भुतों का वर्णन किया गया है। ऐसा अनुमान है कि यह अद्भुत वासनाएं ही हैं।

प्रश्न उठता है कि वसुओं के ईशन/स्वामित्व से क्या प्राप्त होगा? ऋग्वेद ४.५५.८ के अनुसार अग्नि वसव्य का ईशन करके उनमें हमारे लिए रास की स्थिति उत्पन्न करती है। ऋग्वेद ४.३२.७ तथा ८.७१.१३ से अनुमान लगाया जा सकता है कि ईशन से इष की प्राप्ति होगी। इष नामक जिस दिव्य वर्षा के जल का व्यय अभी तक वासनाओं को तृप्त करने में ही हो रहा था, वासनाओं के वसु बनने के पश्चात् वह हमारे व्यक्तित्व को शततन्तु वीणा बना देगा (तैत्तिरीय संहिता ७.५.९.२)। यजुर्वेद का प्रथम अध्याय इषे त्वा, ऊर्जे त्वा इत्यादि मन्त्र से आरंभ होता है और अंतिम अध्याय ईशावास्यम् इदं सर्वं इत्यादि मन्त्र से आरंभ होता है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि सारा यजुर्वेद वसुओं/वासनाओं के ईशन द्वारा इष को सुरक्षित करने से सम्बन्धित है जिसका सार ईशावस्योपनिषद नामक अंतिम अध्याय में दिया गया है। यह उल्लेखनीय है कि ईशा शब्द को पार्वती देवी का रूप देकर उसकी प्रकृति को स्पष्ट करने का प्रयत्न केवल पुराणों में ही किया गया है। अथर्ववेद ११.८.१७ में ईशा को वश की जाया कहा गया है।

शतपथ ब्राह्मण २.४.१.४ तथा ४.५.५.७ में वसुओं के ईशन की प्रक्रिया को गार्हपत्य अग्नि पर प्रजाओं के ईशन तथा दिव्य आहवनीय अग्नि पर पशुओं के ईशन में विभाजित किया गया है। अन्यत्र कहा गया कि पशु ही वसु हैं। अथर्ववेद २.२८.३ आदि में भी पशुओं के ईशन का उल्लेख है। अज, अवि, गौ, अश्व व पुरुष नामक ५ ग्राम्य पशुओं में से अज़ व अवि तो एक संवत्सर में बहुत सी प्रजाएं उत्पन्न करते हैं, अतः इन्हें प्रजाओं के अन्तर्गत रखा गया है। यह विचारों आदि के उत्पन्न होने की स्थिति हो सकती है जिनको शान्त करना ही अज नामक भक्ति अवस्था को प्राप्त करने का प्रतीक है। पुराणों में संभवतः इस तथ्य को दक्ष प्रजापति के यज्ञ ध्वंस की कथा के माध्यम से स्पष्ट किया गया है।

ऋग्वेद ३.१६.१ तथा ४.२१.४ आदि कई ऋचाओं में रायः नामक धन के ईशन का उल्लेख है जिसका निहितार्थ अपेक्षित है। ऋग्वेद २.४२.३ आदि कई ऋचाओं में स्तेन व अघशंस आदि के हमारे ऊपर ईशन न करने की कामना की गई है। ऋग्वेद ८.८२.७ –९ में शुद्ध किए हुए सोम आदि के पान से इन्द्र द्वारा ईशन करने का उल्लेख है।

आधुनिक विज्ञान में जड पदार्थों के साथ व्यवहार करते हुए उनमें उपस्थित वासनाओं का आकलन जटिल चर x+iy के रूप में किया जाता है। x किसी फलन का वास्तविक भाग है और iy काल्पनिक भाग। यदि मन अथवा चेतना के स्तर

पर उपयुक्त फलन का उपयोग करना हो तो x चेतन मन और iy अर्धचेतन अथवा अचेतन मन का प्रतीक हो सकता है। क्वाण्टम यांत्रिकी में जब किसी जटिल चर पर किसी बाहरी शक्ति, जिसे आंपरेटर कहा जाता है, का प्रभाव देखना होता है, तो वह आंपरेटर फलन x+iy पर ही कार्य करता है। जब किसी सूक्ष्म द्रव्य की सत्ता का, उसके अस्तित्व की संभावना का प्रदर्शन करना होता है तो जटिल चर x+iy तथा इसके जटिल संयुग्मी x-iy को परस्पर गुणा कर दिया जाता है जो $x^2$-$y^2$ के बराबर होता है। चेतना के विज्ञान में ८ वसुओं, ११ रुद्रों और १२ आदित्यों के रूप को गणित की भाषा में कैसे प्रदर्शित किया जा सकता है, यह अन्वेषणीय है।

**ईशान** **गरुड** १.२१.६ (कला का नाम), **देवीभागवत** ९.१.१०३ (सम्पत्ति-पति), **नारद** १.९१.६३ (ईशान शिव की ५ कलाओं का कथन), **ब्रह्म** २.६९.११(कवष-पुत्र पैलूष द्वारा ज्ञान प्राप्ति के लिए ईशान की आराधना), **ब्रह्मवैवर्त्त** २.१.१०७ (ईशान-पत्नी सम्पत्ति का संक्षिप्त माहात्म्य), **ब्रह्माण्ड** १.२.१०.४३(ईशान रुद्रः शरीरस्थ वायु/प्राण का रूप), ३.४.४४.८४ (ईशानीः १६ शक्तियों में से एक), **भागवत** ५.२०.२६ (शाक द्वीप का एक पर्वत),१०.२.१२ (ईशानीः देवकी के गर्भ का कर्षण करने वाली योगमाया का एक नाम), **मत्स्य** २६१.२३ (ईशान की प्रतिमा के रूप का कथन), २९०.५ (दशम कल्प का नाम), **लिङ्ग** १.१६ (ईशान माहात्म्य), २.१३.९ (शर्व, भव आदि शिव की ८ मूर्तियों में ईशान के पवनात्मक होने का उल्लेख; शिवा-पति व मनोजव-पिता), २.१४.११(शिव, श्रोत्रेन्द्रिय रूप), २.१४.१६ (वागिन्द्रियात्मक), २.१४.२१ (आकाशजनक, शब्दतन्मात्रात्मक), **वायु** २७.५२ (ईशान शिव की शिवा पत्नी व मनोजव पुत्र का उल्लेख), **विष्णु धर्मोत्तर** ३.५५ (ईशान मूर्ति के रूप का वर्णन), **शिव** २.४.८.३६ (तारकासुर संग्राम में ईशान के शम्भु असुर से युद्ध का उल्लेख), ३.१.३१ (विश्वरूप कल्प में शिव का ईशान नामक अवतार व महिमा; ईशान द्वारा जटी, मुण्डी, शिखण्डी व अर्धमुण्ड नामक ४ बालकों का सृजन), ३.२.४ (भव, शर्व आदि शिव की ८ मूर्तियों में से ईशान के अर्क/सूर्य तथा महादेव के चन्द्रमा से सम्बद्ध होने का उल्लेख), ४.४२.२३ (ईशानः सर्वविद्यानां के सनातनी श्रुति होने का उल्लेख), ६.३.२९ (ईशान शिव की ५ कलाओं की ओंकार के नाद में स्थिति), ६.६.७० (शिर, मुख, हृदय आदि में ईशान की ५ कलाओं का न्यास), ६.११.१७ (ईशान : शिव का मुकुट रूप), ६.१४.४० (ईशान शिव में श्रोत्र, वाक्, शब्द व आकाश की स्थिति), ६.१६.५९ (ईशान शिव से शान्त्यतीत कला की उत्पत्ति), ७.२.३.६ (ईशान शिव की मूर्ति की महिमाः प्रकृति के भोक्ता, ईशान शिव में श्रोत्र, वाक्, शब्द आदि की स्थिति), ७.२.२२.३२ (ईशान की ५ कलाओं का शिव के पांच वक्त्रों में न्यास का कथन), **स्कन्द** १.२.१२.३८ (लोमश का पूर्व जन्म का नाम; ईशान शिव की अर्चना से लोमश को दीर्घायु की प्राप्ति), ३.३.१२.१३ (ईशान से ऊर्ध्व दिशा में रक्षा की प्रार्थना), ४.१.१४.१ (ईशानपुरी के निवासी एकादश रुद्रों द्वारा काशी में ईशानेश्वर लिङ्ग की आराधना, ईशानेश्वर लिङ्ग महिमा), ४.१.३३.१० (ईशान शिव द्वारा परमेष्ठी लिङ्ग का अभिषेक, तीर्थ का ज्ञानवापी नाम होना), ५.२.१६ (तुहुण्ड दैत्य द्वारा विजित देवों द्वारा ईशानेश्वर लिङ्ग की स्थापना), ५.१.२६.१३ (पञ्चेशानी यात्रा विधि व माहात्म्य), ५.३.१५५.११६ (ज्ञान प्राप्ति की कामना पूर्ति के लिए ईशान की आराधना), ६.१३१ (दुष्ट भार्या के सौम्यत्व हेतु ईशान की पूजा), ६.२७१.३४५ (ईशानःलोमश का पूर्व जन्म का नाम; ईशान शिव की अर्चना से लोमश को दीर्घायु प्राप्ति), ७.१.१०५.४७ (दशम कल्प का नाम), ७.३.५२ (ईशानी शिखर माहात्म्य : देवों द्वारा शिव-पार्वती रति भङ्ग के पश्चात् गौरी द्वारा पुत्रार्थ तप का स्थान), **लक्ष्मीनारायण** १.४६०.२ (ईशान नामक दिशापाल द्वारा ज्ञानवापी का निर्माण, विष्णु के लिङ्ग का वापी जल से अभिषेक, ज्ञान वापी महिमा)।

**टिप्पणी-** ऋग्वेद में ४० से अधिक बार ईशान शब्द का प्रयोग हुआ है। लेकिन केवल वैदिक साहित्य के आधार पर ईशान की प्रकृति का निर्धारण नहीं किया जा सकता। पुराणों में ईशान शिव की प्रकृति को दो प्रकार से स्पष्ट किया गया है-एक तो

भव, शर्व, उग्र आदि शिव की आठ मूर्तियों के अन्तर्गत ईशान की कल्पना तथा दूसरे सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष आदि शिव के ५ मुखों में से पांचवें मुख की ईशान रूप में कल्पना। लिङ्ग पुराण में सद्योजात आदि के साथ लोहित कल्प, पीतवासा कल्प, असित कल्प आदि को सम्बद्ध किया गया है जो यह संकेत करता है कि सद्योजात आदि शिव के मुख साधक के अन्दर ज्योति की क्रमशः विकासमान अवस्थाएं हैं। यही तथ्य भव, शर्व आदि शिव की आठ मूर्तियों के बारे में भी कहा जा सकता है। भव को तीसरे नेत्र की ज्योति का आरम्भ समझा जा सकता है। पुराणों में भव, शर्व आदि को पृथिवी, जल, वायु आदि से सम्बद्ध किया गया है, जबकि अथर्ववेद १५.५.१ में भव, शर्व आदि को दिशाओं से सम्बद्ध किया गया है। तैत्तिरीय आरण्यक १०.४७ में सद्योजात और भव, वामदेव और रुद्र, अघोर और शर्व, तत्पुरुष और महादेव को एक ही वर्ग में रखा गया है। यहीं पर ईशानः सर्वविद्यानाम् इत्यदि सार्वत्रिक श्रुति का भी उल्लेख है। शतपथ ब्राह्मण ६.१.३.१७ में ईशान की परिगणना भव, शर्व आदि अग्नि के ८ नामों के अन्तर्गत की गई है और उनकी व्याख्या का एक नया रूप प्रस्तुत किया गया है।

शब्दकोशों में ईशान शब्द की निरुक्ति ईश धातु से की गई है। ऐसी संभावना है कि ईश धातु इष् धातु से सम्बद्ध है। इष् शब्द की व्याख्या ब्राह्मण ग्रन्थों में पृथिवी पर अन्न, अन्तरिक्ष में वायु और द्युलोक में वर्षा कह कर की गई है (द्रष्टव्यः इष शब्द पर टिप्पणी)। इष् को मानसिक स्तर का अन्न या प्राण समझा जा सकता है जिसमें चेतन और अचेतन दोनों प्रकार के मन अथवा प्राण सम्मिलित हैं। इन इष् प्राणों पर ईशित्व प्राप्त करना है, इनका स्वामी बनना है। लेकिन ऋग्वेद ७.७.७, ७.८.७ तथा ९.६१.६ में ईशान अग्नि तथा ईशान सोम से इष का भरण करने की प्रार्थना की गई है।

पुराणों में ईशान शिव को सूर्य से सम्बद्ध करने के संदर्भ में ऋग्वेद १.१३०.९ तथा १.७५.४ में ईशान द्वारा ओज की सहायता से सूर्य के चक्र का हरण करने का उल्लेख आता है जिसका निहितार्थ अन्वेषणीय है। ऋग्वेद ७.३२.२२की ऋचा की व्याख्या में ऐतरेय ब्राह्मण ४.१० का कथन है कि सूर्य ही ईशान है जिससे स्वर्ग लोक स्वयं प्रकाशित होकर दिखाई देने लगता है। यह उल्लेखनीय है कि ऋग्वेद की ऋचाओं में ईशान विशेषण का प्रयोग मुख्य रूप से अग्नि व इन्द्र के लिए किया गया है। यह कहा जा सकता है कि मनुष्य व्यक्तित्व में अतिरिक्त ऊर्जा का विकास पहले अग्नि और फिर इन्द्र या सूर्य के रूप में होता है। ऋग्वेद९.६२.२९, ९.८६.३७ तथा ९.१०१.५ में इन्द्र के लिए क्षरित होने वाले इन्दु के शोधन से ईशान की उत्पत्ति का उल्लेख है।

पुराणों में सार्वत्रिक रूप से ईशान शिव की आराधना से ज्ञान अथवा विद्या प्राप्ति का उल्लेख आता है जिसका मूल वैदिक ऋचाओं में अन्वेषणीय है। जिस विद्या प्राप्ति की बात ईशान शिव से कही जाती है, वह विद्या क्या है, इस संदर्भ में पौराणिक साहित्य में उल्लेख आता है कि २४ तत्त्वों वाली अव्यक्त प्रकृति का नाम अविद्या है, जबकि २५ वें तत्त्व को विद्या कहा जाता है। हो सकता है कि ऋग्वेद१.८९.५ तथा ९.१९.२ में ईशान द्वारा धी के वर्धन का उल्लेख ज्ञान प्राप्ति से सम्बन्धित हो। तान्त्रिक दृष्टिकोण से इच्छा, ज्ञान और क्रिया शक्तियों में से इच्छा शक्ति को ईशान शिव की पत्नी और ज्ञान शक्ति को स्वयं ईशान शिव कहा जा सकता है। क्रिया शक्ति के रूप में पुराणों में ईश्वर का उल्लेख आता है। तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.१२.३.२ में श्रद्धा को ईशाना देवी कहा गया है। तैत्तिरीय ब्राह्मण २.५.८.५ आदि में ईशाना को अभीप्सित कामों को प्रदान करने वाली भेषज कहा गया है। ऋग्वेद १.११३.७ में उषा को ईशाना कहा गया है। ऋग्वेद ७.१५.११, ८.६८.६, ८.९०.२ तथा ९.६२.२९ आदि में ईशान को राधाओं को देने वाला कहा गया है। देवीभागवत पुराण में ईशान-पत्नी सम्पत्ति के उल्लेख के संदर्भ में वैदिक निघंटु में राधः शब्द की परिगणना धन नामों के अन्तर्गत की गई है। इसके अतिरिक्त ऋग्वेद ६.५४.८, ८.४६.६ तथा ८.५३.१ आदि में ईशान से रायः नामक धन की याचना की गई है। ऋग्वेद ८.६८.६ तथा १.११३.७ में ईशान के साथ वसु नामक धन का उल्लेख आया है।

**ईश्वर** **अग्नि** १३९.४ (६० अब्दों सें से ईश्वर नामक अब्द के फल का उल्लेखः क्षेम, आरोग्य, बहुधान्य आदि), **कूर्म** २.१.१+ (ईश्वर गीता का आरम्भ), **देवीभागवत** ७.३३.८ (जीव-ईश्वर विभाजन तथा ईश्वर बहुत्व के पीछे माया कारण होने का कथन), ८.२.३२ (ईशान के सब रुद्रों में ईश्वर होने का उल्लेख), **नारद** १.५६.११६ (६० अब्दों/वत्सरों के नामों में से एक), १.६३.३३ (दृक्/ज्ञान शक्ति के तिरोभाव और क्रिया

शक्ति की विशेषता वाले तत्त्व का ईश्वर नाम होने का कथन), **पद्म** ४.११.३७ (ईश्वरी: लक्ष्मी के लिए सम्बोधन), ६.८०.९४ (विष्णु के लिए ईश्वर सम्बोधन), ६.२२३.१६ (लक्ष्मी देवी के लिए ईश्वरी सम्बोधन), ६.२२६.५९, ६.२२६.७० (विष्णु के लिए ईश्वर सम्बोधन के औचित्य का वर्णन), ६.२३२.४६ (महालक्ष्मी के सर्वभूतों की ईश्वरी होने का उल्लेख), ७.११.३२ (कृष्ण के लिए ईश्वर सम्बोधन), **ब्रह्म** २.६९.११ (ईश्वर/ईशान की आराधना से ज्ञान प्राप्त करने का निर्देश), **ब्रह्मवैवर्त्त** ३.३९.१६ (ईश्वरी दुर्गा द्वारा ईशान दिशा की रक्षा), **ब्रह्माण्ड** १.२.३२.९७ (ब्रह्मा के मानस व औरस पुत्रों भृगु, मरीचि, अत्रि आदि सप्तर्षियों की ईश्वर संज्ञा; ईश्वरों से ऋषियों की उत्पत्ति का उल्लेख), ३.४.२.२१७ (ईश्वर में ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य आदि १० गुणों का अधिष्ठान), ३.४.२.२३० (ईश्वर से बृहत् स्वर्णिम अण्ड की उत्पत्ति तथा ईश्वर से प्राप्त बीज के प्रकृति रूपी योनि में विकसित होने का उल्लेख), ३.४.२.२३४ (ब्रह्मलोक तथा ब्रह्मा के अण्ड के बीच दिव्य मनोमय पुर में ईश्वर का स्थान होने का उल्लेख), ३.४.३५.९७ (ईश्वर नामक शिव की ४ कलाओं के नाम), ३.४.३९.१२० (ब्रह्मादि त्रिदेवों के अधिपति), **भविष्य** १.१२२.१५ (ईश्वर से परे विद्या, विद्या से परे शिव और शिव से परे परमेश्वर के होने का उल्लेख), १.१३८.४३ (ईश्वर/शिव के ध्वज का दण्ड रजतमय तथा पताका शुक्ल होने का उल्लेख), ३.४.७.३४ (धातृशर्मा द्विज का सूर्य आराधना से मोक्ष प्राप्ति के पश्चात् ईश्वर नाम से जन्म), ४.४६.१९ (ईश्वरी : राजा पृथ्वीनाथ की पत्नी, ईश्वरी द्वारा ईर्ष्या से भूषणा सखी के पुत्रों का वध, पूर्व जन्म वृत्तान्त, सप्तमी व्रत फल प्राप्ति से पुत्रवान होना), **भागवत** १.७.२३ (प्रकृति से परे स्थित ईश्वर का चित्शक्ति द्वारा माया को दूर करके कैवल्य में स्थित होने आदि का उल्लेख), १.८.१८ (प्रकृति से परे ईश्वर का सब भूतों के अन्दर व बाहर स्थित होते हुए भी अलक्षित रहने का उल्लेख), ३.१०.१२ (काल रूपी ईश्वर द्वारा ब्रह्मतन्मात्र विश्व को परिच्छिन्न करके ९ प्रकार की प्राकृत और वैकृत सृष्टियां करने का वर्णन), ३.२९.३४ (सर्वभूतों में ईश्वर का जीवकला के द्वारा प्रवेश होने का उल्लेख), १०.८५.२९ (देवकी द्वारा कृष्ण व बलराम को ईश्वर-द्वय कहना), १२.१०.८ (शिव के सब विद्याओं में ईशान और सब देहधारियों में ईश्वर होने का उल्लेख), **मत्स्य** ९३.१३ (सूर्य के अधिदेवता), १११.५ (सब भूतों में ईश्वर का दर्शन करने वाला ही वास्तविक दर्शक होने का उल्लेख), १४५.९० (भृगु, मरीचि, अत्रि आदि ब्रह्मा के १० मानस पुत्रों की ईश्वर संज्ञा; ईश्वर शब्द के परत्व से ऋषि शब्द की निरुक्ति?), २१८.२७ (ईश्वरी : महा ओषधियों में से एक का नाम), **वायु** ४.४० (ईश्वर निरुक्ति : लोकों का सर्वेशत्व), ५.१८ (ब्रह्मा, विष्णु व महेश के रज, सत्त्व व तमोगुणों से सम्बन्धित होने के संदर्भ में ईश्वर के पर:देव तथा विष्णु के महत: पर: देव होने का कथन), ५९.८१ (ब्रह्मा के मानस पुत्रों/ऋषियों की ईश्वर संज्ञा), ५९.८९ (ईश्वरों के ऋषि पुत्रों काव्य, बृहस्पति, कश्यप आदि के नाम), १०१.२१६ (ईश्वर में १० गुणों की स्थिति), **शिव** १.१७.१०७ (पांच चक्रों वाले कालचक्र के वर्णन के अन्तर्गत ईश्वर चक्र की भ्रमण प्रकृति का उल्लेख), ६.१५.४ (ईश्वर के ईश, विश्वेश्वर, परमेश व सर्वेश्वर नामक चार रूपों का कथन), ७.३०.५२ (कर्म के पीछे कारण के ईश्वरकारित होने का कथन), **स्कन्द** १.१.३.८१ (दक्ष यज्ञ प्रसंग में विष्णु के यज्ञ कर्मों के पालक होने तथा ईश्वर/शिव द्वारा कर्मों में सामर्थ्य प्रदान करने का कथन; ईश्वर रहित कर्म से नरक प्राप्त होने का कथन),१.२.२५.११९ (ईश्वर के सब भूतों के पति होने का उल्लेख), ४.२.८७.८९ (दक्ष यज्ञ में दधीचि ऋषि द्वारा दक्ष को ईश्वर महिमा का कथन : कर्म की सिद्धि में ईश्वर अनुग्रह की अनिवार्यता), ५.१.७०.३१, ५.१.७०.५३ (महाकाल वन में प्रतिष्ठित अगस्त्येश्वर आदि ८४ ईश्वरों के नाम), ५.३.४१.१० (ईश्वरी : कुबेर-भार्या ईश्वरी का उल्लेख), ६.२४८.११ (पलाश वृक्ष के विभिन्न अंगों में शिव की विभिन्न नामों से प्रतिष्ठा : प्रशाखाओं में ईश्वर नामक शिव

की प्रतिष्ठा), ७.१.३.११६ ++ (ईश्वर द्वारा पार्वती को प्रभास क्षेत्र माहात्म्य का वर्णन), ७.२.९.८१ (दधीचि ऋषि द्वारा दक्ष यज्ञ में दक्ष को ईश्वर महिमा का कथन), ७.४.१७.११(द्वारका के पूर्व आदि विभिन्न द्वारों पर स्थित ईश्वरों के नाम : दुर्वासा, भूषण आदि), **लक्ष्मीनारायण** २.२५२.३० (ब्रह्मलोक मूर्द्धा, ईश्वर लोक हृदयादि, जीवलोक चरणद्वय), **कथासरित्** १०.१.५५ (ईश्वरवर्मा : रत्नवर्मा-पुत्र, वेश्या कर्म में धन नष्ट होने पर आल नामक वानर की सहायता से धन की पुनः प्राप्ति की कथा)।

**टिप्पणी-** यद्यपि ऋग्वैदिक ऋचाओं में ईश्वर का उल्लेख नहीं है, लेकिन अथर्ववेद के कुछ मन्त्रों तथा यजुर्वेद व ब्राह्मण ग्रन्थों में ईश्वर शब्द का प्रयोग हुआ है। पुराणों की भांति ही महानारायणोपनिषद १७.५ तथा गीता १८.६० आदि में ईशान के सब विद्याओं के अधिपति होने तथा ईश्वर के सब भूतों के अधिपति होने का सार्वत्रिक उल्लेख आता है। ईशावस्योपनिषद में भी भूत और भूति शब्द का महत्वपूर्ण स्थान है। अतः ईश्वर को समझने से पूर्व भूत शब्द को समझना होगा। समाधि से व्युत्थान पर पहले अहंकार स्थिति प्रकट होती है, फिर शब्द, स्पर्श, रूप, रस व गन्ध नामक पांच तन्मात्राओं की और उसके पश्चात् आकाश, वायु, अग्नि, जल व पृथिवी नामक पांच महाभूतों का प्राकट्य होता है। तैत्तिरीय उपनिषद ३.२.१ से ३.६.१ में अन्नमय कोश से लेकर आनन्दमय कोश तक प्रत्येक में भूतों की उत्पत्ति होने का उल्लेख है। यह विचारणीय है कि पांच कोशों में ५ महाभूत क्रम से प्रकट होते हैं अथवा नहीं। इन्हीं भूतों के प्रकट होने से मनुष्य में विभिन्न इन्द्रियों का विकास होता है। गीता १४.३ का कथन है कि महद् ब्रह्म ईश्वर के लिए योनि का रूप है जिसमें वह बीज डालता है और गर्भ धारण कराता है (तुलनीय : स्कन्द पुराण अवन्तिका खण्ड में पलाश वृक्ष की शाखाओं में ईश्वर शिव की प्रतिष्ठा का उल्लेख)। बृहदारण्यक उपनिषद२.५.१ में वर्णन आता है कि यह पृथिवी सब भूतों के लिए मधु है और सारे भूत इस पृथिवी के लिए मधु हैं। मधु की इस स्थिति की पृथिवी, जल, अग्नि आदि १४ स्तरों के लिए पुनरावृत्ति की गई है (तुलनीयः ईशावास्योपनिषद ६)। पौराणिक दृष्टि से यह सबसे महत्वपूर्ण है कि भूतों में मधु की अवस्था कब और कैसे उत्पन्न हो सकती है। दधीचि ऋषि मधु विद्या के ज्ञाता हैं जो अश्विनी कुमारों को मधु विद्या का उपदेश देते हैं-रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव अर्थात् कण-कण में दिव्य रूप के दर्शन हो रहे हों, यही मधु अवस्था है। पुराणों में दक्ष यज्ञ की कथा में दक्ष को ईश्वर शिव की सत्ता का ज्ञान नहीं हो पाता, वह शिव की कल्पना घोर रूप में ही करता है। लेकिन दधीचि ऋषि को ईश्वर की सत्ता का ज्ञान है, वह दक्ष को समझाने का प्रयत्न करते हैं लेकिन असफल रहते हैं। शतपथ ब्राह्मण ११.७.२.४ तथा २.१.४.२० के आधार पर ऐसा अनुमान है कि दक्ष से तात्पर्य प्राणों की दक्षता प्राप्त करना है-श्वास के अंदर जाते हुए भी आनन्द की अनुभूति और बाहर आते हुए भी आनन्द की अनुभूति। दक्ष को प्रजापति कहा जाता है। वैदिक भाषा में प्रजा से तात्पर्य अज और अवि पशुओं की प्रजा से लिया जाता है। यह दो पशु ही संवत्सर में बहुत सी प्रजाएं उत्पन्न करते हैं। इन प्रजाओं से तात्पर्य श्रेष्ठ विचार, भक्ति आदि हो सकता है। छान्दोग्य उपनिषद के अनुसार अज और अवि भक्ति की आरम्भिक अवस्थाएं हैं। इनके पश्चात् गौ और अश्व पशु आते हैं। प्रस्तुत प्रसंग में दधीचि ऋषि अश्व का प्रतीक हैं जो मधु विद्या का दर्शन करने में, ईश्वर का साक्षात्कार करने में समर्थ हैं। प्रजा से अगली अवस्था संभवतः प्रज्ञा की आती है जहां सारे भूतों का एकीकरण हो जाता है (कौशीतकि उपनिषद ३.४)। नृसिंहोत्तरतापनीयोपनिषद १ में प्राज्ञ ईश्वर का उल्लेख आया है।

उपरोक्त वर्णन के आधार पर ऐसा लगता है कि मधु विद्या और ईश्वर दोनों का एक ही अर्थ है। लेकिन ब्राह्मण ग्रन्थों की भाषा से यह संकेत मिलता है कि स्वर्ग की प्राप्ति और ईश्वर बनना दो अलग-अलग स्तर हैं (उदाहरणार्थ, शतपथ ब्राह्मण २.१.४.१९-२२, ११.४.२.१, १२.४.२.७, १२.४.२.९)। हो सकता है कि मधु विद्या से भी परे जो सनातन, अव्यय स्थिति है, उसे ईश्वर कहा जाता हो (गीता८.२०)। ब्राह्मण ग्रन्थों में सार्वत्रिक रूप से उल्लेख मिलते हैं कि ईश्वर बन कर इस लोक से, इस शरीर से परे जाया जा सकता है (उदाहरणार्थ,शतपथ ब्राह्मण१३.३.३.५ तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.८.९.३ में अश्व का ईश्वर बन कर दूर-दूर जाने में समर्थ होना), लेकिन आवश्यकता इस बात की है कि ऐसा होने से रोका जाए। इस उद्देश्य के लिए अश्व के पदों को रस्सियों द्वारा बांधते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में दूसरा सार्वत्रिक उल्लेख विभिन्न ईश्वरों या रुद्रों द्वारा यजमान की प्रजा और पशुओं की हिंसा करना है(उदाहरणार्थ, बौधायन श्रौत सूत्र

१४.३,१४.४,ऐतरेय ब्राह्मण १.३०)। इन ईश्वरों को अशान्त से शान्त बनाने के उपाय करने होते हैं। हो सकता है कि ईश के संदर्भ में जो वासनाओं को वसु या धन बनाने के उल्लेख आते हैं, वह तथ्य ईश्वर द्वारा यजमान के प्रजा व पशु की हिंसा की व्याख्या करता हो।

अग्नि, वायु, आदित्य आदि महाभूत ईश्वर कैसे बन सकते हैं, इसके कुछ संकेत ब्राह्मण ग्रन्थों मे मिलते हैं। शतपथ ब्राह्मण १०.१.४.१३ के अनुसार अग्नि को पक्षी या श्येन का रूप देना है जो स्वर्ग से सोम ला सके, उसे ईश्वर बनाना है। ऐतरेय ब्राह्मण १.१० में मरुतों के ईश्वर होने का उल्लेख है। यह वायु के स्तर पर ईश्वरत्व प्राप्त करने का सूचक हो सकता है। तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.२.८.५ में घर्म या पुरोडाश के ईश्वर होने का उल्लेख है। यह आदित्य के स्तर पर ईश्वर का रूप हो सकता है। शतपथ ब्राह्मण १४.९.४.१३ में वेदों के ज्ञाता पुत्र को जन्म देनेके लिए विभिन्न प्रकार के ओदनों का भक्षण करके ईश्वर बनने का वर्णन आता है। यहां उदान प्राण के प्रतीक ओदन और तैत्तिरीय ब्राह्मण के घर्म या पुरोडाश में समानता हो सकती है।

अथर्ववेद १९.५३.८ में काल को सर्व का ईश्वर कहा गया है। यह उलेख भागवत पुराण १०.७४.३१ में शिशुपाल द्वारा कृष्ण के बदले काल को ईश कहने से तुलनीय है।

षड्विंश ब्राह्मण ६.३.१ -६.१२.१ में सभी दिशाओं और पृथिवी, अन्तरिक्ष, आकाश आदि में द्रष्टव्य अद्भुतों का वर्णन किया गया है तथा उनके शमन उपायों के रूप में साम गानों का उल्लेख करते हुए दिशाओं के अधिपतियों को नमन किया गया है और उन्हें ईश्वर कहा गया है। इस वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि साधना के दो मार्ग हैं-एक तो दिशाओं के अनुदिश और एक पृथिवी,अन्तरिक्ष आदि में ऊर्ध्वमुखी मार्ग। ईश्वर के संदर्भ में वैदिक साहित्य के वर्णन को भी दिशाओं के अनुदिश और ऊर्ध्वमुखी, इन दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.८.९.३ व ३.८.१२.२ में विमुक्त अश्व चार दिशाओं में गमन करने में ईश्वर/समर्थ होता है। इन चारों दिशाओं में ही इस अश्व का बन्धन करते हैं। तैत्तिरीय ब्राह्मण १.८.३.१ में भी दिशाओं से उन्मादित न होने वाले को ईश्वर संज्ञा दी गई है।

**ईषादण्ड** **स्कन्द** ४.२.८८.६० (पार्वती रथ में नर्मदा व अलकनन्दा का ईषादण्ड बनना)।

**उ** **अग्नि** १२४.६ (मूल ब्रह्म संज्ञक अ इ उ ए ओ तथा कला की व्याख्या : उकार का हृदय में नाद संज्ञक होना), ३४८.२ (शिव के अर्थ में उ का प्रयोग), **नारद** १.३३.१५५ (अ, उ तथा म के क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र रूप होने का उल्लेख), २.५०.३९ (अकार के विष्णुलोक गति-प्रद होने, उकार के स्थान पर बृहस्पति द्वारा सिद्धि प्राप्त करने और विष्णु संज्ञक मकार लिङ्ग में कपिल ऋषि द्वारा सिद्धि प्राप्त करने का उल्लेख), **पद्म** ६.२२६.२३ (ॐ नमो नारायणाय मन्त्र के संदर्भ में अकार के विष्णु, उकार के श्री तथा मकार के पञ्चविंश जीव होने का उल्लेख), **लिङ्ग** १.९१.५४ (अकार, उकार व मकार का क्रमशः भू, भुवः व स्वः लोकों से तादात्म्य), **वायु** २०.८ (अकार के अक्षर, उकार के स्वरित और मकार के प्लुत होने का उल्लेख; अकार से भूलोक, उकार से भुवः और मकार से स्वर्लोक का निर्देश), **शिव** १.१०.१८ (ओंकार की अ मात्रा की शिव के उत्तर मुख से, उकार की पश्चिम व मकार की दक्षिण मुख आदि से उत्पत्ति का उल्लेख), १.१६.११४ (लिङ्गों की प्रकृति के संदर्भ में उकार के चर लिङ्ग तथा अकार के गुरु विग्रह से सम्बन्ध आदि का उल्लेख), १.२४.९१ (त्रिपुण्ड्र की तीन रेखाओं के संदर्भ में अकार के गार्हपत्य अग्नि आदि, उकार के दक्षिणाग्नि, यजुर्वेद, नभस्तत्त्व, माध्यंदिन सवन, इच्छाशक्ति आदि से सम्बन्ध का उल्लेख), २.१.८.१९ (अकार की सर्गकर्ता, उकार की मोहक व मकार की अनुग्रह कारक प्रकृति का उल्लेख; अकार के बीज, उकार के हरि योनि तथा मकार के बीजी होने का उल्लेख), २.१.८.३३ (वर्णों के न्यास के संदर्भ में उकार का दक्षिण श्रोत्र में न्यास), ६.३.२१ (अकार के महद्बीज, रजोगुण, ब्रह्मा द्वारा सृष्ट, उकार के प्रकृति योनि, सत्त्वगुणात्मक, हरि द्वारा पालित तथा मकार के बीजी, तमोगुणात्मक, संहारक हर आदि से सम्बन्धित होने आदि का उल्लेख), ६.३.२७ (अकार की ८ कलाओं व सद्योजात शिव से सम्बन्ध होने, उकार की १३ कलाओं तथा वामदेव शिव से सम्बन्ध होने आदि का उल्लेख), ६.६.६२ (अकार के बीज उकार के शक्ति तथा मकार के कीलक होने का उल्लेख), ६.६.६६

(ब्रह्मा रूपी अकार का हृदय में, उकार का विष्णु सहित शिरोदेश में तथा रुद्र सहित मकार का शिखा में न्यास करने का उल्लेख), ७.१.७.२८ (अकार, उकार, मकार आदि की बीज, योनि, बीजी आदि प्रकृतियों का उल्लेख), ७.१.२२.२४ (वर्णमाला न्यास के संदर्भ में उकार का श्रवण में न्यास करने का निर्देश), ७.२.६.२८ (ओंकार में उ के प्रकृति योनि, सत्त्व गुण व पालक हरि होने का कथन), **स्कन्द** १.२.५.६८ (अकार, उकार व मकार की क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु व रुद्र संज्ञा; अकार से लेकर अः कार तक १४ स्वरों का स्वायंभुव आदि १४ मनुओं से तादात्म्य), ३.३.१६.४५ (त्रिपुण्ड्र की तीन रेखाओं के संदर्भ में प्रत्येक रेखा के ९ देवताओं का कथन; अ, उ तथा म का तीन रेखाओं के तीन देवताओं के रूप में उल्लेख), ४.२.७३.८३ (शब्द सुनकर समाधि से जागने पर ब्रह्मा द्वारा सत्त्वगुणी अकार, रजोगुणी उकार तथा तमोगुणी मकार का दर्शन करना), ५.३.४.३४ (ब्रह्मा से उत्पन्न उकार अग्नि का गुरु ध्यान में आश्रय लेना, ब्रह्मा द्वारा उकार को चक्षु व वाक् में स्थान देना आदि), ५.१.४.४९ (उकार अग्नि का सूर्य से एकाकार होना; ब्रह्मा के पंचम शिर का रूप?)

**टिप्पणी**– ऋग्वेद की ऋचाओं में सार्वत्रिक रूप से उकार प्रकट होता है। भाष्यकार सायण के अनुसार किसी ऋचा में प्रकट हुआ उकार ऋचा के छन्द की अक्षरपूर्ति के लिए (पाद पूरक) है। लेकिन डा. फतहसिंह का मत है कि ऋग्वेद के पद पाठकार शाकल्य ने, जिसे ऋग्वेद का प्रथम भाष्यकार माना जा सकता है, उकार का पदपाठ ॐ किया है। अतः कुछ लोगों का यह मिथ्या प्रचार कि वेदों में तो ॐ है ही नहीं, भ्रममूलक है।

व्यावहारिक रूप में उकार को उपनिषद के इस कथन से समझा जा सकता है कि प्राणायाम में अकार से वायु का पूरण किया जाता है, उकार से वायु को धारण किया जाता है और मकार से उसका रेचन किया जाता है। यह सूत्र उकार के संबंध में पुराणों के कई कथनों जैसे शिव पुराण आदि में अकार के बीज, उकार योनि, मकार बीजी होने के उल्लेख को समझने में सहायक हो सकता है। प्राणायाम में अकार द्वारा वायु का पूरण करना कोई साधारण क्रिया नहीं है, अपितु योगी को बाह्य संसार से जिस किसी भी सूक्ष्म तत्त्व की आवश्यकता होती है, वह उसकी पूर्ति वायु के पूरण द्वारा ही करता है। अंग्रेजी भाषा में पूरण, धारण और रेचन की प्रक्रिया को अवशोषण (absorption), धारण (retention) और रेचन (desorption) कह सकते हैं। आधुनिक विज्ञान में रेडियो तरंगों को अवशोषित करने के लिए अनुनाद (resonance) के नियम का उपयोग किया जाता है, अर्थात् रेडियो तरंगों की अपनी एक आवृत्ति, फ्रीक्वेंसी होती है। यदि इन तरंगों को अवशोषित करना हो तो हमारे द्वारा बनाए गए यन्त्र की फ्रीक्वेंसी भी वही होनी चाहिए जो रेडियो तरंग की है। यही स्थिति संसार में अन्य सूक्ष्म तत्त्वों के सम्बन्ध में भी हो सकती है।

उकार के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि दिव्य शक्ति को गर्भ रूप में धारण करना, जहां वह पुराणों की उकार रूपी योनि में वर्धन प्राप्त कर सके, उपनिषद में उकार द्वारा धारण की समुचित व्याख्या हो सकता है। सामान्य रूप में, पृथिवी पर जो सूर्य की किरणें पड़ रही हैं, पृथिवी पर वनस्पतियां उसको गर्भ रूप में धारण कर रही हैं। यही स्थिति श्वास-प्रश्वास द्वारा आक्सीजन को धारण करने के संबंध में भी है। लेकिन पुराणों में उकार को योनि की संज्ञा देना यह संकेत करता है कि इस व्यक्तित्व को एक ऐसी समुचित योनि में रूपांतरित करना है जहां दिव्य शक्तियां वर्धन को भी प्राप्त हो सकें।

वैदिक साहित्य के अनुसार ॐकार की जो स्थिति है, वह अक्षर है, अव्यय है– एक बार किसी तत्त्व का अवशोषण हुआ, फिर वह उसी अवस्था में बना रहेगा, उसका क्षय नहीं होगा। धारण व रेचन से संबंधित तथ्यों का आधुनिक विज्ञान में उदाहरण अन्वेषणीय है।

**उक्ति अग्नि** ३४२.२७ (उक्ति शब्द की व्याख्या)।

**उक्थ अग्नि** २७१.७ (उक्था : वेद, आरण्यक, उक्था व ऊह नामक सामगान के ४ प्रकारों में से एक), **ब्रह्म** १.६.९२ (उक्थ/उक्य? : शल-पुत्र, वज्रनाभ-पिता, राम वंश), **ब्रह्माण्ड** १.२.८.५१ (उक्त/उक्थ? आदि की ब्रह्मा के दक्षिण मुख से उत्पत्ति का उल्लेख), **भागवत** १.१५.६ (उक्थ प्राण से रहित होने पर मृत कहलाने का उल्लेख), ३.१२.४० (उक्थ, षोडशी आदि यागों की ब्रह्मा के पूर्व मुख से उत्पत्ति का उल्लेख), ११.२१.२८

(उक्थ शस्त्रों से असु की तृप्ति कर लेने से ही हृदय में स्थित परमात्मा का ज्ञान न होने का उल्लेख), **वायु** ९.४५ (उक्थ आदि की ब्रह्मा के दक्षिण मुख से उत्पत्ति का उल्लेख), **वा.रामायण** १.१४.४१ (उक्थ्य : अश्वमेध यज्ञ के तीन सवनीय दिनों में से एक का नाम), **विष्णु** १.५.५४ (उक्थ आदि की ब्रह्मा के दक्षिण मुख से उत्पत्ति का कथन), **हरिवंश** १.१५.३१ (अनल-पुत्र, वज्रनाभ-पिता, राम वंश), **महाभारत** वनपर्व २१९.२५ (तीन उक्थों द्वारा अभिष्टुत होने वाली उक्थ नामक अग्नि द्वारा महावाक् को उत्पन्न करने का कथन)।

**टिप्पणी-** (उक्थ और उक्थ्य के विषय में :) मनुष्य व्यक्तित्व में जो दिव्य शक्ति छिपी है, वही उक्थ्य (ऊपर उठाने अर्थात् प्रकट करने योग्य) है। इसके विभिन्न रूपांतर हमारे श्रेष्ठतम कर्म रूपी यज्ञ में प्रकट होते हैं। वही अनेक उक्थ हैं जो मनुष्य व्यक्तित्व में छिपे हुए होने पर अन्तर्हित यज्ञकाण्ड कहे जाते हैं— अपच्छिदिव वा एतदग्निकाण्डम् यद् उक्थानि-ताण्ड्य ब्राह्मण ११.११.२, १३.६.२, १४.६.१। इन अनेक उक्थों की सहायता से ही ब्रह्मानन्द रूप सोम का भी उत्थापन संभव है (तै.सं.२.२.८.७)। इस स्थिति में सोम ही उक्थ्य है, सोम के प्रादुर्भाव से पूर्व ओज नामक वीर्य ही अनेक उक्थों के रूप में उठा रहता है (काठक सं.३७.८)। इन्हीं उक्थों के द्वारा मनुष्य की दिव्य शक्तियां (देवाः) उसकी आंतरिक असुर शक्तियों के विरुद्ध उठ खडी होती हैं (जै.ब्रा.१.१७९)। मोटे तौर पर प्राण जब शरीर में प्रवेश करते हैं, तो स्वयं शरीर ही उक्थ होता है,क्योंकि उसमें फेफडे फूलने आदि के रूप में उत्थापन क्रिया होती है (ऐतरेय आरण्यक २.१.४)। इस दृष्टि से प्राण उक् (उत्थापक) होता है और अन्नमय कोश रूपी शरीर थम् (उत्थितम्) कहा जाता है-प्राणो वा उक् तस्य अन्नमेव थम् (शतपथ ब्राह्मण १०.१.२.१०)। मनुष्य के आचरण रूप यज्ञ में प्रयुक्त वाक् (षड्विंश ब्राह्मण १.५) आदि सभी अंगभूत शक्तियां उक्थ हैं, जब कि इनका आधारभूत शिर उक्थ्य कहा जाता है (काठक सं.२७.१०)। श्रेष्ठतम कर्म अथवा आचरण ही वह यज्ञ है जहां प्राणाग्नि उक् है और उसमें पड़ने वाली कामादि की आहुतियां ही थम् है और दोनों के योग से होने वाला श्रेष्ठतम कर्म ही यज्ञ है (शतपथ ब्राह्मण १०.६.२.८)। यज्ञ में जो श्रेष्ठतम उक्थ्य (उठाये जाने योग्य तत्त्व) है उसी व्यक्तित्व में सोमराज्य की स्थापना होती है (मैत्रायणी सं.१.८.६)। सोमराज्य की स्थापना का अर्थ है कि मनुष्य-व्यक्तित्व में होने वाले योगयज्ञ में प्रयुक्त होने वाली सभी अङ्गभूत शक्तियां श्रेष्ठतम कर्म रूप योगयज्ञ की पात्र बन जाती हैं और उनमें आत्मारूप इन्द्र का इन्द्रियं कहलाने वाला सोम उन सब यज्ञपात्रों का उक्थ्य पात्रम् हो जाता है (सर्वेषां वा एतत् पात्राणां इन्द्रियं यदुक्थ्यपात्रम्— तै.सं.७.२.७.४, काठक सं.३०.१)— फतहसिंह

उक्थ ऋग्वेद के बहु प्रयुक्त शब्दों में से एक है। सोमयागों में तृतीय सवन के अन्त में यज्ञायज्ञीयं सामगान के पश्चात् उक्त शास्त्रों का विधान है। उक्थ शब्द की निरुक्ति इस प्रकार की गई है कि प्राण उक् बन सकता है, जबकि अन्न थम् है (शतपथ ब्राह्मण १०.४.१.४, १५, २१-२३, १०.६.२.८)। उक्थ को समझने की कुंजी हमें बृहदारण्यक उपनिषद१.६.१ से प्राप्त होती है जहां कहा गया है कि उक्थ्य वाक् वह है जिससे सारे नाम उठ खडे होते हैं। इस वाक्य की श्री वासुदेव कृत टीका में स्पष्ट किया गया है कि सोते हुए मनुष्य को उसका नाम लेकर जगाया जाता है। इससे उसके सोए हुए प्राण जाग उठते हैं। बृहदारण्यक उपनिषद में अन्य प्राणों को जगाने का उपाय रूप तथा क्रिया कहा गया है जिनके लिए क्रमशः चक्षु व आत्मा को उक्थ्य (उक्थ बनने योग्य) बनाने का निर्देश है। उक्थ शब्द की निरुक्ति से लगता है कि प्राणों को केवल उठाना या जगाना ही पर्याप्त नहीं है, अपितु जगे हुए प्राणों को जगाए रखने के लिए उनके लिए चाय-पानी का, अन्न का प्रबन्ध भी करना पड़ता है। पौराणिक साहित्य में उक्थ को दीपावली के पश्चात् गोवर्धन व अन्नकूट उत्सवों के माध्यम से समझा जा सकता है। पहले नाम आदि लेकर सारे देवताओं को, प्राणों को जगाकर गौ का रूप दिया जाता है (पुष्टि के लिए,उदाहरणार्थ, ऋग्वेद ९.८७.३)। फिर उस गौ को इस योग्य बनाया जाता है कि वह सारे अन्नों का, सर्वश्रेष्ठ अन्नों का हमारे लिए भरण कर सके। वैदिक साहित्य में तो सार्वत्रिक रूप से ही उक्थ को अन्न कहा गया है जिसे उत्पन्न करने के लिए सारे संवत्सर में अथवा ऋतुओं में पकाना पड़ता है (शतपथ ब्राह्मण २.३.३.२०, ४.२.३.५)। यह एक जटिल प्रश्न लगता है कि अन्न व्यावहारिक रूप में कैसे उत्पन्न होगा? ऐसा हो सकता है कि १२ स्तोत्रों वाले अग्निष्टोम में १२ स्तोत्र १२ मासों के, सूर्य की कला के प्रतीक हैं तो १५ स्तोत्रों वाले उक्थ में १५ स्तोत्र चन्द्रमा की कलाओं संबंधित हो सकते हैं। चन्द्रमा को सूर्य का अन्न कहा जाता है (शतपथ ब्राह्मण १०.६.२.९)।

वैदिक साहित्य में यज्ञों/क्रतुओं का क्रम प्राय: इस प्रकार आता है-अग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी और अतिरात्र। अग्निष्टोम को अग्नि का स्तोम कहा जाता है। स्तोम शब्द स्तुति के अर्थों में है। जैमिनीय ब्राह्मण २.१२१ के अनुसार अग्निष्टोम यज्ञ आदित्य हैं जबकि उक्थ यज्ञ अंगिरस हैं। अन्यत्र उल्लेख आता है कि आदित्य का मार्ग साधना में त्वरित गति का अनुसरण करके स्वर्ग पंहुचने का मार्ग है, जबकि अंगिरस प्राण मन्द गति से प्रगति का। जैमिनीय ब्राह्मण ३.३५९ के अनुसार उक्थ विभिन्न दिशाओं में स्थित होकर आदित्य के लिए स्तम्भ का कार्य करते हैं। ताण्ड्य ब्राह्मण १८.८.६ के अनुसार आत्मा/स्व द्वारा अग्निष्टोम की प्राप्ति की जाती है, जबकि पशु या विश: उक्था हैं। ताण्ड्य ब्राह्मण १९.५.११ में आत्मा को अग्निष्टोम तथा पशुओं को छन्द कहा गया है जिनकी आत्मा में प्रतिष्ठा करनी होती है।

तैत्तिरीय संहिता ३.१.२.४ के अनुसार स्तोम उक्थों के लिए पात्र का कार्य करते हैं। ऐसा संभव है कि जो प्राण पहले ही जाग्रत हैं अथवा सरलता से जाग्रत किए जा सकते हैं, उन्हें अग्निष्टोम की संज्ञा दी गई हो, जबकि मन्द गति से जाग्रत होने वाले प्राणों को उक्थ कहा गया हो। चेतन प्राणों के रूप में हम सामान्य रूप से केवल चेतन व अचेतन मन से ही परिचित हैं। लेकिन ऐतरेय आरण्यक २.३.१ का यह कथन कि पृथिवी, वायु, आकाश, आप: व ज्योतियां, यह आत्मा के ५ उक्थ हैं, यह संकेत करता है कि अचेतन प्राणों को चेतन करने के यह चरण कहे गए हैं। यह उक्थों के विकास का ऊर्ध्वमुखी मार्ग हो सकता है। पृथिवी को उक्थ बनाने के संदर्भ में अथर्ववेद व पुराणों में वर्णित विराज गौ का उदाहरण दिया जा सकता है जिसे दुहकर विश्व के देवता, मनुष्य, ऋषि, सर्प, पितर आदि सभी मनोवांछित प्रकार का दुग्ध प्राप्त करते हैं। शतपथ ब्राह्मण ४.२.३.१, ४.५.४.७ में अनिरुक्त आत्मा को उक्थ्य कहा गया है। वर्तमान समय में हम जिसे अचेतन कहते हैं, वैदिक भाषा में वह अनिरुक्त हो सकता है।

तैत्तिरीय संहिता १.६.९.१ में अग्निष्टोम की तुलना अग्निहोत्र से व उक्थ्य की पौर्णमासी से की गई है। ताण्ड्य ब्राह्मण २५.१०.७ में पौर्णमासी को गोष्टोम का स्तोम होने व बृहत् साम का उक्थ्य के रूप में होने का उल्लेख है। इसी प्रकार अमावास्या के दिन आयुष्टोम का स्तोम व रथन्तर साम का उक्थ्य के रूप में उल्लेख है। लेकिन तैत्तिरीय ब्राह्मण १.३.४.२ तथा ३.१२.५.६ में पृथिवी लोक की जय के लिए अग्निष्टोम तथा प्राणापानौ या अन्तरिक्ष की जय के लिए उक्थ्य का उल्लेख किया गया है जिसका स्पष्टीकरण अपेक्षित है। ऐतरेय आरण्यक २.१.२ में पृथिवी, अन्तरिक्ष तथा द्यौ, तीनों की ही उक्थ के रूप में व्याख्या की गई है। जैमिनीय ब्राह्मण २.३७५ आदि में अग्निष्टोम को ज्योति, उक्थ्य को गौ तथा रात्रि को आयु कहा गया है, जबकि ताण्ड्य ब्राह्मण२२.१७.१ में दशरात्र क्रतु के संदर्भ में ज्योति, गौ व आयु, तीनों का ही उक्थ्यों के रूप में उल्लेख है।

हरिवंश पुराण आदि में उक्थ को वज्रनाभ का पिता कहने के संदर्भ में, ब्राह्मण ग्रन्थों में सार्वत्रिक रूप से उल्लेख आता है (उदाहरणार्थ, ऐतरेय ब्राह्मण ४.१, जैमिनीय ब्राह्मण १.२०१) कि उक्थ पशु हैं जबकि उक्थ्य के पश्चात् निष्पादित होने वाला षोडशी नामक क्रतु वज्र है जिससे पशुओं का नियंत्रण किया जाता है। ऋग्वेद ९.४७.३ के अनुसार सोम जो इन्द्रिय रस है, उक्थ बनने पर वज्र बन जाता है। ताण्ड्य ब्राह्मण २०.२.१, २०.३.१, २०.९.१ आदि में अग्निष्टोम के पश्चात् प्रत्यवरोहण करने वाले उक्थों का उल्लेख यह संकेत करता है कि उक्थ समाधि से व्युत्थान की क्रमिक अवस्था हैं जिनकी शक्ति का मूल स्रोत समाधि में ही है। गोपथ ब्राह्मण १.५.११ आदि में उक्थ अह/दिनों को सूत्र में मणि या मणि में सूत्र की भांति कहा गया है। अत: यह एक पहेली है कि सूत्र रूपी अग्निष्टोम मुख्य है या उक्थ रूपी मणि।

ऋग्वेद की ऋचाओं में उक्थ शब्द का प्रयोग बहुधा बहुवचन में किया गया है। ऋग्वेद १.१००.१४, १.१००.१७, ३.५३.३, ४.६.११ आदि में उक्थ का प्रयोग एकवचन में किया गया है। ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार जो एक उक्थ है, वह षोडशी है।

पुराणों में उक्थ को अनल-पुत्र कहने की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है कि अनल/अनर स्थिति नृत्य से रहित अवस्था, अग्निष्टोम क्रतु की अवस्था है, जबकि उक्थ नृत्य की। पुराणों में उक्थ की ब्रह्मा के दक्षिण आदि मुख से उत्पत्ति के कथन का वैदिक स्रोत अन्वेषणीय है। यदि शतपथ ब्राह्मण ४.२.२.१ के आधार पर दक्षिण और उत्तर, साधना की दो दिशाएं मानी जाएं तो समस्या का समाधान हो सकता है। जैमिनीय ब्राह्मण २.२९६, २.३२१, २.३३३, २.३४७ आदि में तो अग्निष्टोम को ब्रह्म और पशुओं को उक्थ्य कहा गया है।

अग्निपुराण में उक्था को सामगान के ४ प्रकारों में से एक कहा गया है। ऋग्वेद की कुछ ऋचाओं जैसे ८.३३.१३,

८.५२.३, ८.६३.२, ८.९३.२७ में भी उक्था शब्द का प्रयोग हुआ है और एकमात्र अग्नि पुराण ही इस शब्द की सम्यक् व्याख्या करता है।

महाभारत में तीन उक्थों व एक उक्थ के उल्लेखों की व्याख्या का प्रयास बृहदारण्यक उपनिषद १.६.१ में वाक्, चक्षु व आत्मा तथा ५.१३.१ में प्राण को उक्थ कहने के आधार पर किया जा सकता है।

ब्राह्मण ग्रन्थों जैसे शतपथ ब्राह्मण ८.६.१.६ में यज्ञ की सोम प्रकार की संस्थाओं में बहिष्पवमान उक्थ, आज्य उक्थ, प्रउग उक्थ, मरुत्वतीय, निष्केवल्य, वैश्वदेव व अग्निमारुत उक्थों का उल्लेख आता है जो ५ दिशाओं से संबंधित हैं। इन ५ प्रकार के उक्थों का तात्पर्य अन्वेषणीय है। ब्राह्मण ग्रन्थों जैसे शतपथ ब्राह्मण ४.२.३.७ -९, ९.५.२.१२, १०.५.२.१, जैमिनीय ब्राह्मण ३.३७९ में उक्थ को ऋग्वेद से, उद्गीथ को सामवेद से और अर्क को यजुर्वेद से सम्बद्ध किया गया है। ऋग्वेद १०.५४ से १०.५६ तक के सूक्त बृहदुक्थ वामदेव्य ऋषि के हैं।

जड जगत से सम्बन्धित वर्तमान भौतिक विज्ञान में परमाणुओं में इलेक्ट्रान आदि के उत्थान के लिए अनुनादित अवस्था को प्राप्त किया जाता है, वह अवस्था जिसमें इलेक्ट्रान की अपनी स्वयं के दोलन की आवृत्ति तथा बाहर से प्रयुक्त ऊर्जा की आवृत्ति एक जैसी हो जाएं। ऐसी अवस्था में इलेक्ट्रान का उत्थान हो जाता है। चेतना के विज्ञान में चेतना के उत्थान के लिए बाह्य अनुनादित ऊर्जा के रूप में स्तुति/स्तोम का प्रयोग किया जाता होगा, ऐसा अनुमान है। उत्थित होने वाली चेतना का नाम घर्म हो सकता है (शतपथ ब्राह्मण ९.२.३.९)। भौतिक विज्ञान में इलेक्ट्रान आदि का उत्थान करते समय कुछ ऊर्जा का क्षय हो सकता है। जिन स्थितियों में उत्थान की प्रक्रिया में क्षय उपस्थित हो, उनकी तुलना चेतना विज्ञान के उक्थ्य से की जा सकती है ( ?)। भौतिक जगत में उक् व थम् के मिलन की संभावनाओं का पता लगाया जाना अभी बाकी है।

ऋग्वेद की बहुत सी ऋचाओं जैसे १.८.१०, १.१३६.५, ३.५.२, १०.४४.८,१०.४८.९, १०.६७.१ आदि में स्तोम व उक्थ का शंसन करने का उल्लेख एक साथ आता है। गोपथ ब्राह्मण २.६.१६ तथा ऐतरेय ब्राह्मण ६.३६ में ऐसे भी उक्थों का उल्लेख है जिनके लिए शंसन की आवश्यता नहीं पड़ती।

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, वैदिक साहित्य में आदित्यों की प्रगति स्तोमों द्वारा तथा आत्मा की उक्थों द्वारा कही गई है।

**उक्षा** **विष्णु धर्मोत्तर** ३.३०६.३३ (इन्द्रियोपेत उक्षा के द्विजाति हेतु दान के फल का कथन), **स्कन्द** ४.१.२९.३० (गंगा सहस्रनामों सें से एक,शाब्दिक अर्थ फल सेक), ७.१.१७.१५२ (रवि की पूजा में उक्षाणं पृश्निमिति ऋचा के विनियोग का उल्लेख), **महाभारत** वन १९७.१५ (राजा शिबि द्वारा श्येन को कपोत के बदले उक्षा मांस को ओदन सहित पकाकर प्रस्तुत करने का प्रस्ताव), द्रोण १४.६१ (अभिमन्यु द्वारा राजा पौरव की पराभव की उपमा सिंह द्वारा उक्षा की पराभव से करना)।

**टिप्पणी-** कर्मकाण्ड में उक्षण। प्रोक्षण की क्रिया सर्वविदित है। कर्मकाण्ड में जो क्रिया बाहर से होती दिखाई देती है, वह वास्तव में हमारे अन्दर घटित हो रही क्रिया का प्रतीक मात्र ही है। ऐसी संभावना है कि पुराणों में उक्षा के अन्य संदर्भ भी यत्र-तत्र बिखरे पड़े होंगे जिनका वर्तमान अनुक्रमणिका में संकलन नहीं हो सका है। उक्षा का सामान्य अर्थ सिंचन करने वाला बैल होता है। वैदिक साहित्य में उक्षा की प्रकृति को समझने की कुंजी हमें तैत्तिरीय संहिता २.१.७.१ से प्राप्त होती है। कहा गया है कि वषट्कार ने गायत्री के शिर का छेदन किया। इससे गायत्री का जो रस गिरा, उससे वशा, उक्षवशा आदि की उत्पत्ति हुई। उक्षवशा को बृहस्पति ने भोग के लिए ग्रहण किया। इसका निहितार्थ होगा कि जो शक्ति ऊपर की ओर गति कर रही है, सूर्य बनने का प्रयत्न कर रही है, उसी शक्ति का ऊर्ध्वगमन यदि किसी प्रकार रोक दिया जाए तो वह अधोमुखी होकर मनुष्य के निचले कोशों में घृत,मधु, पयः की वर्षा करने लगती है। ऐसा प्रतीत होता हि वैदिक साहित्य में वषट्कार वर्षट्कार का, वर्षा कराने वाले का प्रतीक है। मेघों के विद्यमान रहते हुए भी वर्षा कराने के लिए गर्जन, विद्युत आदि की आवश्यकता होती है, ऐसा वैदिक साहित्य में प्रसिद्ध है। अतः यह वषट्कार आध्यात्मिक स्तर पर विद्युत आदि उत्पन्न करने जैसी कोई प्रक्रिया हो सकती है। ऋग्वेद ५.४२.१४ में भी विद्युत द्वारा रोदसी के उक्षण का उल्लेख है।

पुराणों में सूर्य की स्तुति हेतु उक्षाणं पृश्निं इति ऋचा (ऋ.१.१६४.४३) के विनियोग के संदर्भ में, डॉ० फतहसिंह

के अनुसार पृश्नि मिश्रित अवस्था को, चितकबरी अवस्था को कहते हैं। जैमिनीय ब्राह्मण २.१७६ के अनुसार पृश्नि मरुतों का संबोधन हो सकता है क्योंकि उन्हें पृश्निमातरः कहा जाता है। इस ऋचा में पृश्नि उक्षा को पकाने का उल्लेख है। ऋग्वेद ९.८३.३ में भी सूर्य के लिए पृश्नि शब्द का उपयोग किया गया है और उसके पश्चात् उक्षा द्वारा सारे भुवनों के धारण का उल्लेख है। यह संभव है, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, कि यह ऊपर की ओर गतिशील और अधोमुखी अवस्था के बीच की स्थिति है-ऊपर भी गति कर सकती है, नीचे भी। ऋग्वेद ५.४७.३ में उक्षा को समुद्र और अरुण/अरुष सुपर्ण कहा गया है जो उपरोक्त धारणा को पुष्ट करता है।

विष्णुधर्मोत्तर पुराण में इन्द्रियोपेत उक्षा के दान से १० धेनुओं के दान का फल मिलने के उल्लेख के संदर्भ में, यह संभव हो सकता है कि हमारी इन्द्रियों को जो भी शक्ति मिल रही है, वह इस कारण से है कि शक्ति का ऊर्ध्वमुखी विकास कहीं अवरुद्ध हो गया है और इस कारण वह नीचे इन्द्रियों में फैल रही है। पुराणकार का कथन है कि यदि उक्षा को ब्राह्मण को दान कर दिया जाए तो १० धेनुओं को ब्राह्मण को दान करने का फल मिल जाता है। ब्राह्मण को दान देने योग्य उक्षा कैसा हो सकता है, इसका ज्ञान हमें ऋग्वेद की ऋचाओं से होता है। ऋग्वेद ९.६९.४ के अनुसार जब उक्षा शब्द करता है तो धेनुएं/वाक् उसकी ओर खिंची चली आती हैं। ऋग्वेद ९.९५.४ के अनुसार जो उक्षा गिरि पर स्थित है, जो अंशु (सोम का एक अंश मात्र) है, उसके शब्द करने पर मतियां उसकी ओर चली आती हैं। यह स्पष्ट संकेत करता है कि मन की वृत्तियां, धेनुएं किस प्रकार के उक्षा की अभीप्सा करती हैं-जो गिरि पर (डॉ० फतहसिंह के अनुसार गिरि विज्ञानमय कोश का प्रतीक है) स्थित है। ऋग्वेद १.३६.१९ में उक्षित होने पर कृष्टियों/इन्द्रियों के नमः हो जाने का उल्लेख है। पुराणों में इसी तथ्य को ब्राह्मण के योग्य उक्षा कहा गया है। ऋग्वेद में एक अन्य प्रकार के उक्षण/सिंचन का उल्लेख मिलता है। वह है मनुष्य के मेरुदण्ड के १०० केंद्र बिंदुओं का सिंचन (ऋग्वेद ५.२७.५ तथा ८.५५.२)। यह अश्वमेध के, अश्व रूपी मनुष्य व्यक्तित्व को मेध्य बनाने के संदर्भ में हो सकते हैं। अश्व को मेध्य बनाना क्षत्रिय का कार्य है। ऋग्वेद २.३४.३ व ५.५९.१ में मरुतों द्वारा अश्वों के उक्षण के उल्लेख आते हैं। ऋग्वेद १०.९१.१४ में उक्षणों के पहले अश्वों और ऋषभों का उल्लेख आता है। हो सकता है कि यह उक्षों की प्रकृति को स्पष्ट करने के लिए दिया गया हो।

महाभारतकार को युद्ध में एक वीर द्वारा दूसरे वीर को मार दिये जाने पर सिंह द्वारा उक्षा के हनन की उपमा बहुत प्रिय है। इस सम्बन्ध में ऋग्वेद की ऋचा ९.८९.३ विचारणीय है।

महाभारत में राजा शिबि द्वारा श्येन को उक्षा मांस, ओदन आदि प्रस्तुत करने के उल्लेख के संदर्भ में, ऋग्वेद ८.४३.११ में अग्नि के लिए उक्षान्न आदि का उल्लेख आता है। यह ऋचा वैदिक साहित्य की सार्वत्रिक ऋचा है जिसका यजन आग्नीध्र नामक ऋत्विज करता है। उक्षा अवस्था को पकाकर उसे शुद्ध सोम का रूप, सोम जिसकी हवि देवगण अग्नि के माध्यम से प्राप्त करते हैं, देना होता है। शतपथ ब्राह्मण १४.९.४.१७ के पुत्रमन्थ कर्म ब्राह्मण में पण्डित पुत्र उत्पन्न करने के लिए उक्षा या ऋषभ मांसौदन को पकाकर सर्पि/घृत के साथ खाने का निर्देश है। श्रौत व ब्राह्मण ग्रन्थों में सार्वत्रिक रूप से (आश्वलायन श्रौत सूत्र १०.२.२९, कात्यायन श्रौत सूत्र २३.४.८, बौधायन श्रौत सूत्र १८.११, आपस्तम्ब श्रौत सूत्र २२.२०.९, तैत्तिरीय ब्राह्मण २.७.११.१) पंच शारदीय व्रत का वर्णन आता है जिसके ५ दिनों में क्रमिक रूप से १७ उक्षों का प्रोक्षण व आलभन किया जाता है। ताण्ड्य ब्राह्मण २१.१४.९ का कथन है कि इसके पश्चात् वह संवत्सर में सोम बनते हैं। आधुनिक भौतिक विज्ञान के दृष्टिकोण से इसका निहितार्थ यह हो सकता है कि पांच स्तरों पर उक्षा की एन्ट्रांपी को न्यूनतम किया जाता है। एन्ट्रांपी किसी तन्त्र में अव्यवस्था का पैमाना है। जब एन्ट्रांपी न्यूनतम हो जाए, बिल्कुल शीतल अवस्था आ जाए, वह सोम की अवस्था हो सकती है। दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है कि पांच स्तरों से उक्षणों द्वारा उक्षण के पश्चात् ही शरद् स्थिति उत्पन्न करने का कार्य पूर्ण होता है। यह एक सामान्य अनुभव है कि शरीर में किसी प्रकार का सिंचन होने पर शीत उत्पन्न होता है।

ऐतरेय ब्राह्मण १.१५ में मनुष्य राजा के आगमन पर उक्षा के आलभन का और सोम राजा के आगमन पर अग्नि के मन्थन का उल्लेख है जिसका निहितार्थ अन्वेषणीय है।

वैदिक साहित्य में उक्षा के साथ वशा का सार्वत्रिक उल्लेख मिलता है। सामान्य रूप से वशा का अर्थ वन्ध्या गौ लिया जाता है। वश् धातु कामना के अर्थ में भी आती है। उशना, जिसका प्रसिद्ध साम उक्ष्णः रन्ध्रम् है, शब्द की निरुक्ति भी वश धातु के आधार पर की जाती है। ऐसा हो सकता है कि कामना, अभीप्सा के पश्चात् ही उक्षण/सिंचन होता हो। ऋग्वेद ७.६४.४ में उल्लेख आता है कि जो स्तुति

द्वारा मित्रावरुण के लिए गर्त/गड्ढे को खोदता है, मित्रावरुण उसी के लिए घृत से उक्षण करते हैं। ऋग्वेद ६.१६.४७ में हृदय से निर्मित ऋचा रूपी हवि अग्नि को प्रदान करने का उल्लेख है। यह हवियां अग्नि के लिए उक्षा, ऋषभ व वशा बन सकती हैं। आपस्तम्ब श्रौत सूत्र २२.२०.१६ से ऐसा संकेत मिलता है कि उक्थ्य आदि ही सवनीय उक्षा हैं। ऋग्वेद ९.८५.१० में मधुजिह्वा वाले वेनों/ऋत्विजों द्वारा गिरि पर स्थित उक्षा के दोहन के उल्लेख के संदर्भ में भी वेन स्तुति के अर्थ में हो सकता है।

ऋग्वेद में कई ऋचाओं जैसे ३.६२.१६, ७.६५.४, ८.५.६ में घृत द्वारा गव्यूति का उक्षण करने के उल्लेख आते हैं। ऋग्वेद ३.६२.१६ में मधु द्वारा रजों/अन्तरिक्षों का उक्षण, ऋग्वेद ५.६३.५ में पयः द्वारा उक्षण तथा ऋग्वेद १०.५२.६ व अथर्ववेद ३.१२.१ व ४ में घृत द्वारा उक्षण के उल्लेख हैं जिनके निहितार्थ अन्वेषणीय हैं। अथर्ववेद १२.१.९ में भूमि द्वारा वर्च से उक्षण का उल्लेख है। ऋग्वेद ५.८.७ में ओषधि द्वारा अग्नि के उक्षण का उल्लेख है।

उक्षा, ऋषभ, वशा आदि की व्याख्या के प्राचीन प्रयासों में जैमिनीय श्रौत सूत्र २५.४ की भवत्रात वृत्ति का उल्लेख किया जा सकता है: 'जितरेतस्कमुक्षाणम् ऋषभं पूर्णयौवनम्। विद्याद् वशां वृषारूढां बृहत्ककुदमुन्नतम्।।'

वयस्येष्टका स्थापना के संदर्भ में शतपथ ब्राह्मण ८.२.४.७ में वयः द्वारा उक्षा की प्राप्ति का उल्लेख है जिसके लिए ककुप् छन्द है। इसके विपरीत, तैत्तिरीय ब्राह्मण २.६.१७.७ व २.६.१८.४ में द्विपद छन्द का उल्लेख है।

वैदिक निघण्टु में उक्षा की महत् नामों के अन्तर्गत परिगणना की गई है जिसकी सम्यक् व्याख्या अपेक्षित है। अन्यत्र उल्लेख आता है कि उक्षा का बृहत् रूप उषा/उखा है।

**उखल अग्नि** ७७.१७ (उखल पूजा मन्त्र), **भागवत** १०.९.१४ (कृष्ण का उलूखल से बंधन, दाम/रस्सी का २ अंगुल ह्रस्व होना,यमलार्जुन का उद्धार)।

द्र.उलूखल, मूसल, यमलार्जुन।

**उखा महाभारत** शान्ति ३१५.१५ (उखा के स्पर्श से अग्नि के दूषित न होने का कथन)।

**उग्र नारद** १.५६.४५० (गण्डान्त सन्धित्रितय के उग्र होने का उल्लेख), १.५८.४१ (व्यास-पुत्र शुक द्वारा उग्र तप आरम्भ करने का उल्लेख), **पद्म** २.५.१०८ (अदिति व कश्यप-पुत्र वसुदत्त इन्द्र के उग्र तेज से युक्त होकर उग्र तप करने का उल्लेख), **ब्रह्म** १.११५.२३ (उग्र अन्न के गर्हित होने का उल्लेख), **ब्रह्माण्ड** १.२.१०.१६, १.२.१०.८३ (उग्र रुद्र : दीक्षा-पति, सन्तान-पिता), २.३.५.९४ (मरुतों के तृतीय गण में से एक का नाम), २.३.७.९२ (विक्रान्त-पिता), ३.४.३४.४१ (१३ वें आवरण में स्थित रुद्रों में से एक, शतरुद्रिय प्रसंग), **भागवत** ६.६.१७ (भूत व सरूपा-पुत्र, एकादश रुद्रों में से एक), **मत्स्य** २६५.४१ (यजमान नामक देव मूर्ति के रक्षक), **मार्कण्डेय** ७६.४७/७३.४७ (चाक्षुष मनु की पत्नी विदर्भा के पिता का नाम), **लिङ्ग** १.२४.५३ (११ वें द्वापर में मुनि, लम्बोदर आदि चार पुत्रों के नाम), १.९५.३६ (शिव के सब भूतों में उग्र होने का उल्लेख), १.९५.५५ (शिव के सब दुष्टों में उग्र होने का उल्लेख), २.१३.१७ (उग्र और ईशान शिव में समानता का उल्लेख; उग्र देव की दीक्षा पत्नी और सन्तान पुत्र का उल्लेख), २.१३.२७ (शिव का नाम, आत्मा/यजमान का रूप), २.४५.४२ (भव, शर्व आदि अष्ट मूर्तियों के तत्त्वों के संदर्भ में उग्र शिव से वायु तथा त्वचा में स्पर्श की रक्षा की प्रार्थना), **वायु** २३.१५२(११ वें द्वापर में विष्णु के अवतार की संज्ञा, लम्बोदर आदि ४ पुत्रों के नाम), २७.१५ (ब्रह्मा के चिन्तन से उत्पन्न कुमार नीललोहित द्वारा प्राप्त एक नाम), २७.५५ (उग्र नामक रुद्र की दीक्षा पत्नी व सन्तान पुत्र), ६७.१२६ (मरुतों के सात गणों में से तीसरे गण का एक नाम), **विष्णु** १.८.६ (ब्रह्मा के मानस पुत्र रुद्र का एक नाम, ब्रह्मा द्वारा उग्र के स्थान, स्त्री व पुत्र का निर्धारण), **विष्णु धर्मोत्तर** ३.९६.९७ (फलित ज्योतिष के संदर्भ में सूर्य होरा में उग्र कर्म तथा सौम्य होरा में सौम्य कर्म करने का निर्देश), **शिव** ४.३५.१२ (शिव के सहस्रनामों में से एक), ५.३४.६७ (अनुग्रः १४ वें मन्वन्तर में मनु-पुत्रों में से एक), ७.१.१२.४३ (भव, शर्व आदि मूर्तियों के तत्त्वों के कथन के संदर्भ में ईश के स्पर्शमय होने और उग्र के यजमानात्मक होने का उल्लेख), **स्कन्द** १.२.१३.१७९ (शतरुद्रिय प्रसंग में दैत्यों द्वारा शिव के राजिक लिंग की उग्र नाम से पूजा का उल्लेख),

४.२.६९.९८ (उग्रेश्वर लिङ्ग का संक्षिप्त माहात्म्य : उपसर्ग नाशक), ४.२.७२.९७ (६४ वेतालों में से एक), ४.२.९७.११३ (उग्रेश्वर लिङ्ग का संक्षिप्त माहात्म्य : जाति स्मरण), ७.१.२५५.४२ (राजा वृषादर्भि द्वारा ऋषियों को हेमपूर्ण उदुम्बर दान करने के प्रयास के संदर्भ में चण्ड व ऋषियों द्वारा उग्र प्रतिग्रह से डरने का कथन)।

**टिप्पणी**– ऋग्वेद की सौ से भी अधिक ऋचाओं में उग्र शब्द का प्रयोग मुख्य रूप से इन्द्र के लिए और गौण रूप से मरुतों, इन्द्राग्नि-द्वय, इन्द्रासोम-द्वय, अश्विनौ-द्वय, मित्रावरुण-द्वय, पूषा आदि के लिए किया गया है। कई ऋचाओं जैसे १.८४.९, १.१००.१२, ३.३६.४, ५.२०.२, ६.१७.१, ६.६६.६, ८.१.२१, ८.९७.१३ आदि में उग्र शब्द के साथ शव शब्द भी प्रकट हुआ है। ऋग्वेद १.१००.१२ तथा २.३३.११ आदि में उग्र के साथ भीम शब्द भी प्रकट हुआ है। इस आधार पर पुराणों में शर्व, उग्र, भीम नामक शिव की क्रमिक मूर्तियों का पृथिवी, वायु और आकाश तत्त्वों में वर्गीकरण वैदिक ऋचाओं में उग्र शब्द की प्रकृति को समझने के लिए एक नई दिशा प्रस्तुत करता है। वैदिक ऋचाओं में प्रकट हुए शव शब्द की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है कि अपनी चित्तवृत्तियों का निग्रह कर लेना ही शव जैसी अवस्था को प्राप्त करना है, जैसे शवासन में किया जाता है। ऋग्वेद ७.२८.२ के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि वैदिक साहित्य में इस शव अवस्था का निरूपण ब्रह्म शब्द द्वारा किया गया है जिसे प्राप्त करने का प्रयत्न ऋषिगण करते हैं। ऋग्वेद १.८४.९, ५.२०.२ तथा ८.१.२१ में शव के साथ उग्र विशेषण का प्रयोग हुआ है। हो सकता है कि शव अवस्था में किसी कारण से विक्षोभ उत्पन्न हुई इस अवस्था को ही पुराणों में शर्व शिव का नाम दिया गया हो। इसके पश्चात् उग्र अवस्था आती है। विष्णु पुराण आदि में उग्र को ब्रह्मा का मानस पुत्र कहा गया है। इसकी व्याख्या इस प्रकार संभव है कि ब्रह्म प्रकृति की नितान्त अव्याकृत, निष्क्रिय अवस्था है। इस अव्याकृत स्थिति में विक्षोभ उत्पन्न होने पर उग्र स्थिति उत्पन्न होती है। यह एक प्रकार के मद की अवस्था है (ऋग्वेद ८.१.२१)। इस अवस्था में प्रकृति के अविद्या नामक तत्त्वों में कुछ सक्रियता उत्पन्न होती है। इससे अगली अवस्था ईशान शिव की है जो २५ वां तत्त्व है, विद्या है। ऋग्वेद ६.१८.६, ८.५२.५, ८.६५.५ तथा ८.६८.६ में इन्द्र को महां उग्र ईशानकृत् कहा गया है। अतः लिङ्ग पुराण में कथित उग्र व ईशान शिव में समानता की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है कि यद्यपि उग्र और ईशान एक सी अवस्थाएं नहीं हैं, लेकिन यह एकता प्राप्त कर सकते हैं। उग्र की एक मात्र निरुक्ति नृसिंह पूर्वतापनीयोपनिषद २४ में प्राप्त होती है जहां सब लोकों, सब देवों, सब भूतों आदि के उद्ग्रहण करने वाले को उग्र कहा गया है। भूतों में चेतना उतपन्न होने, उन्हें ओंकार से ओत प्रोत करने की स्थिति को भूति कहा जाता है जिससे सम्भूति, विभूति आदि शब्द बनते हैं। ऋग्वेद १.११८.९, ४.३८.१ तथा ६.१९.६ में उग्र अभिभूति का उल्लेख आया है। यह कहा जा सकता है कि अभिभूति भूति का आरंभिक रूप है।

प्रश्न उठता है कि साधना में उग्रता कैसे उत्पन्न हो सकती है और उससे किन-किन उद्देश्यों की पूर्ति की जा सकती है? पुराणों में प्रायः ऋषियों द्वारा उग्र तप करने के उल्लेख आते हैं। तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.१२.९.६ में उल्लेख है कि क्षुधा और तृष्णा उग्र होकर इध्म/इन्धन का आवहन करें अर्थात् इध्म को ढोकर लाएं। इसका तात्पर्य होगा कि क्षुधा और तृष्णा शरीर में इस सीमा तक व्याप्त हो जाएं कि सारा शरीर जल उठे। ऐसी दशा में एक द्रंप्स (अंग्रेजी भाषा में ड्रांप) का, इन्दु का, क्षरण होता है जो सारी उग्रता को शान्त कर देता है (ऋग्वेद ९.६२.२९, ९.१०९.११, ८.२९.५ तथा ६.४१.३)। ऋग्वेद ८.४५.४ तथा ८.७७.१ में इन्द्र अपनी माता से प्रश्न करता है कि उग्र कौन हैं तथा श्रवण कौन करते हैं? इन्हीं सूक्तों में इन प्रश्नों का उत्तर दिया गया है। शत्रुओं या वृत्र का नाश करना, श्रुत ज्ञान को प्राप्त करना, ग्राम तथा गायों को जीतना, रथ पर आरूढ होना आदि सभी कार्य उग्र होकर करने हैं। ऐतरेय ब्राह्मण ८.२ तथा ८.३ में उग्र अवस्था को क्षत्रिय का रूप कहा गया है। पुराणों में उग्र के यजमानात्मक तथा दीक्षा-पति होने के उल्लेखों के संदर्भ में ऐसा प्रतीत होता है कि यह उग्र की क्षत्रिय अवस्था है। कर्मकाण्ड में यजमान ब्रह्मा नामक ऋत्विज के साथ दक्षिण दिशा में उत्तराभिमुख होकर बैठता है। यह यजमान की क्षत्रिय अवस्था है। अथर्ववेद १५.५.१० में उग्र के उत्तर दिशा में स्थित होने का उल्लेख है। यह उग्र की देव अवस्था है, उग्र के शिव होने की अवस्था है। ऋग्वेद १०.१५१.३ तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण २.८.८.७ में देवों द्वारा उग्र असुरों में श्रद्धा उत्पन्न करने का उल्लेख महत्वपूर्ण है क्योंकि श्रद्धा भक्ति की पकी हुई अवस्था है (शृत दधाति इति)। यह संकेत करता है कि उग्र अवस्था से श्रद्धा की ओर अग्रसर होना है।

ऋग्वेद ७.५६.३, ८.९७.१०,९.६६.१६ तथा १०.११३.६ आदि में उग्र और ओज के परस्पर सम्बन्धों का उल्लेख है। ऋग्वेद ९.६६.१६ से ऐसा प्रतीत होता है जैसे ओजिष्ठ होना उग्रता की पराकाष्ठा हो। वैदिक पदानुक्रम कोश (संहिता भाग) में उग्र और ओज, दोनों शब्दों का वर्गीकरण उज धातु के अन्तर्गत किया गया है, जबकि ऋग्वेद १.७.४ के सायण भाष्य में उग्र की निरुक्ति उच समवाये द्वारा की गई है।

ऋग्वेद १.१००.१२, २.३३.११ तथा ४.२०.६ में उग्र व भीम शब्दों का साथ-साथ उल्लेख आता है। ऋग्वेद २.३३.११ की ऋचा में मृग के समान भीम का उल्लेख है जिसका उपयोग नृसिंहपूर्वतापनीयोपनिषद २.४ में नृसिंह देव की व्याख्या के लिए किया गया है। आकाश तत्त्व से सम्बद्ध भीम और वायु तत्त्व से सम्बद्ध उग्र के अन्योन्य सम्बन्धों की व्याख्या अन्वेषणीय है।

स्कन्द पुराण में उग्रेश्वर लिङ्ग द्वारा जाति ज्ञान होने के उल्लेख के संदर्भ में ऋग्वेद ७.३८.६ तथा ७.४१.२ में उग्र व अनुग्र भग के उल्लेख हैं। उग्र भग तो शत्रुओं से रक्षा करता है, जबकि अनुग्र भग रत्न बन जाता है।

**उग्रचण्डा ब्रह्मवैवर्त्त** २.१९.४६ (कार्तिकेय-शंखचूड संग्राम में काली की सहचरी उग्रचण्डा आदि द्वारा मधु पान का उल्लेख), २.६४.८२ (अष्टदल कमल के आठ दलों/दिशाओं में उग्रचण्डा आदि अष्टनायिका देवियों की पूजा का उल्लेख), ४.१२०.१६ (कृष्ण-बाणासुर युद्ध प्रसंग में उग्रचण्डा आदि अष्ट नायिकाओं का शिव सहित युद्ध के लिए प्रस्थान)।

**उग्रजन्मा पद्म** ६.७७.४२ (ऋषि पञ्चमी व्रत माहात्म्य के अन्तर्गत उग्रजन्मा विप्र द्वारा वसिष्ठ ऋषि से माता-पिता के कुयोनि से उद्धार के उपाय की पृच्छा)।

**टिप्पणी-** ऋग्वेद ३.४६.४, ४.२.१८ तथा १०.७३.१ में उग्र के जन्म के उल्लेख आए हैं। ऐतरेय ब्राह्मण ३.१९ के अनुसार उग्र के जन्म लेने से तात्पर्य यज्ञ द्वारा यजमान को देव योनि में जन्म देने से है। ऐतरेय ब्राह्मण ५.४ के अनुसार उग्र के जन्म लेने की स्थिति साधना के १२ दिनों में से चतुर्थ दिन की स्थिति है। पद्म पुराण की उग्रजन्मा की कथा के संदर्भ में यह ध्यान देने योग्य है कि देवशर्मा ब्राह्मण को अपने पापों का प्रक्षालन करने के लिए उग्रजन्मा नाम धारण करना पड़ा। उग्र स्थिति क्षत्रिय की होती है, ब्राह्मण की नहीं। कथा की व्याख्या में ऐसा कहा जा सकता है कि उग्रजन्मा की माता शुनी शून्य का, शव अवस्था, निष्क्रिय ब्रह्म का प्रतीक है जिससे उग्र का जन्म हो सकता है। उग्रजन्मा के पिता वृष के संदर्भ में ऋग्वेद की बहुत सी ऋचाओं में इन्द्र के लिए उग्र वृषा होकर सुनने के उल्लेख आते हैं (उदाहरण के लिए ऋग्वेद १.१७१.५, ८.६.१४ तथा ८.३३.१०)। यह वृषा दिव्य आनन्द की वृष्टि करने से संबंधित हो सकता है। ऋषि पंचमी व्रत द्वारा माता-पिता के उद्धार के कथन के संदर्भ में ऋषि शब्द की व्युत्पत्ति ईश से की गई है। ईश अवस्था शव और उग्र अवस्थाओं के पश्चात् आती है। ऋषि की कामना ब्रह्म को प्राप्त करने की होती है। यह स्वाभाविक रूप से शुनी का उद्धार कर देगा।

**उग्रतपा पद्म** ५.७२.६ (उग्रतपा मुनि का तप से कृष्ण-पत्नी सुनन्दा बनना), **वायु** २३.१६४ (१४ वें मन्वन्तर में गौतम नामक अवतार के पुत्रों में से एक), **कथासरित्** ५.३.५७ (शशिरेखा आदि विद्याधर-कन्याओं द्वारा उग्रतपा ऋषि को क्रुद्ध करना, उग्रतपा द्वारा कन्याओं को मनुष्य योनि में जन्म लेने का शाप)

**टिप्पणी-** पुराणों में प्रायः ऋषियों द्वारा उग्र तप करने के उल्लेख आते हैं। तप को भौतिक विज्ञान के तापमान द्वारा समझा जा सकता है। अपनी सारी ऊर्जा को इस प्रकार केन्द्रित करना कि वह आन्तरिक तापमान में वृद्धि करे, तप हो सकता है। क्रोध से ऊर्जा का क्षय होता है, अतः क्रोध से तप नष्ट हो जाता है, जो पुराणों का सार्वत्रिक कथन है। लेकिन उग्र तप क्या है, यह स्पष्ट नहीं है। पद्म पुराण में उग्रतपा मुनि के पश्चात् सत्यतपा मुनि का उल्लेख आया है। ऋग्वेद १०.१०९.१ में उग्र तप द्वारा ऋत् से दैवी आपः के प्राकट्य का उल्लेख है। अतः ऋग्वेद के ऋत् और पद्मपुराण के सत्य में सम्बन्ध महत्वपूर्ण है।

**उग्रदंष्ट्र देवीभागवत** ९.२०.३६ (उग्रदंष्ट्रा, उग्रदण्डा आदि देवियों के रत्नेन्द्रसार निर्माण विमान पर स्थित होने का उल्लेख), **पद्म** ५.३४.२२ (विद्युन्माली-अनुज, विद्युन्माली द्वारा राम के अश्वमेधीय हय का हरण कर लेने पर शत्रुघ्न-सेनानियों पुष्कल, हनुमान व शत्रुघ्न से युद्ध, शत्रुघ्न द्वारा भ्राता-द्वय का वध), **भागवत** ५.२.२३ (उग्रदंष्ट्री : मेरु-कन्या, हरिवर्ष-पत्नी), **शिव** २.५.३३.३६ (उग्रदंष्ट्र, उग्रदण्ड आदि के रत्नेन्द्रसार

विमान पर स्थित होने का उल्लेख), २.५.३८.३ (शंखचूड-शिव युद्ध प्रसंग में उग्रदंष्ट्रा व उग्रदण्डा आदि देवियों द्वारा मधुपान का उल्लेख), **स्कन्द** ५.१.६३.९६ (विष्णु सहस्रनामों में से एक)।

**टिप्पणी-** उग्रदंष्ट्र असुर के संदर्भ में ऋग्वेद १०.९४.६ की ऋचा विचारणीय है जहां यज्ञ में सोमलता से सोमरस निकालने वाले ग्रावों/पत्थरों को उग्र तथा अश्वों की भांति रथ के धुरे को वहन करने वाले कहा गया है। मुख में दन्तों की तुलना भी सोम कूटने वाले पत्थरों से की जाती है।

**उग्रदर्शन मार्कण्डेय** ८२.४२ (महिषासुर-सेनानी, देवी से युद्ध), **वायु** ३१.७ (उग्रदृष्टि : ग्रावजिन? नामक देवगण में से एक)।

**टिप्पणी-** उग्रदर्शन के संदर्भ में अथर्ववेद ६.११८.१ तथा ६.११८.२ में उग्रंपश्या व उग्रजिता अप्सराओं का उल्लेख आता है जिनकी सहायता से अक्षों में किए गए पाप तथा ऋण से मुक्ति प्राप्त की जाती है। अथर्ववेद ७.११४.६ में भी उग्रंपश्य अक्षों का उल्लेख आया है।

**उग्रभट कथासरित्** १२.७.२९, १२.७.३५ (राढा नगरी का राजा, मनोरमा-पति, लास्यवती नर्तकी से विवाह, पुत्रेष्टि द्वारा दो पुत्र प्राप्ति, ज्येष्ठ पुत्र का राज्य से निष्कासन)।

**उग्ररेता भागवत** ३.१२.१२ (मन्यु, मनु आदि ११ रुद्रों में से एक; ११ रुद्रों की पत्नियों के नाम)।

**उग्रवक्त्र मार्कण्डेय** ८२.४२/८०.१८ (महिषासुर वध प्रसंग में देवी द्वारा महिषासुर के सेनानियों उग्रास्य, उग्रवीर्य तथा उग्रदर्शन के वध का उल्लेख), **स्कन्द** १.३.२.१९.६३ (दुर्गा द्वारा महिषासुर सेनानी उग्रवक्त्र के कुठार से वध का उल्लेख), ४.१.८.७२ (उग्रास्य : नरक में यातना देने वाले यम के गणों में से एक), ४.२.७१.७० (उग्रास्य : दुर्ग असुर के सेनानियों में से एक)।

**टिप्पणी-** अथर्ववेद ५.१३.१, ५.१३.३, ५.२३.२ में उग्र वचन द्वारा सर्प विष आदि के नाश करने का उल्लेख है। शतपथ ब्राह्मण ३.४.४.२३ में अग्निष्टोम यज्ञ में उपसद होम के संदर्भ में अग्नि के अयःशया, रजःशया व हरिशया तनुओं का उग्र वाक् द्वारा नाश करने का उल्लेख है। तैत्तिरीय ब्राह्मण १.५.९.५ में उपसद होम के संदर्भ में अशना-पिपासा को उग्र वाक् कहा गया है। आश्वलायन श्रौत सूत्र ४.१३.२ में सुत्य अह के संदर्भ में आहवनीय अग्नि पर वाक् के अग्र और उग्र रूपों द्वारा आहुति देने का उल्लेख है।

**उग्रश्रवा पद्म** १.१.२ (सूत, लोमहर्षण-पुत्र, पिता द्वारा उग्रश्रवा को नैमिषारण्य में पुराण कथा का आदेश), ६.१९८.७९ (सूत-पुत्र, पिता की मृत्यु पर मुनियों को पुराण कथन), **भागवत** ०.१.३ (शौनक द्वारा नैमिषारण्य में सूत से भागवत कथा श्रवण), ३.२०.७ (वही), **स्कन्द** ३.१.२२.७९ (पुत्र हत्या पर उग्रश्रवा द्वारा दुष्पण्य को शाप)।

**टिप्पणी-** ऋग्वेद ३.३०.२२, ३.३२.१७, ३.३६.११, ३.३८.१०, १०.८९.१८ आदि का सार्वत्रिक श्लोक है:

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रं अस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रं ऊतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानां।।

इस श्लोक का मोटा सा अर्थ यह है कि हम शुनः रूपी उस इन्द्र का आह्वान करते हैं जो इस संग्राम में नृतम/नृत्यतम है, रक्षा के लिए उग्र को सुन रहा है,वृत्रों का वध कर रहा है तथा धनों को जीत रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि इसी श्लोक का रूपांतर पुराणों में उग्रश्रवा और शौनक के संवादों के रूप में किया गया है। उग्र श्रव कैसा होगा, इसका अनुमान ऋग्वेद २.३३.११ की ऋचा 'स्तुहि श्रुतं गर्तसदं युवानं मृगं न भीममुपहत्नुमुग्रम्।' से लगाया जा सकता है। इसी ऋचा का उल्लेख नृसिंह पूर्वतापनीयोपनिषद २.४ में किया गया है। इस ऋचा की व्याख्या रजनीश की विचारधारा के अनुसार की जा सकती है कि हमारा अंग-प्रत्यंग एक विशिष्ट ध्वनि द्वारा अपने को व्यक्त कर रहा है। आवश्यकता इस बात की है कि हम अपने गर्त में झांक कर देखें। वह ध्वनि बहुत भयानक भी हो सकती है, ऋचा के अनुसार ऐसी भयानक जैसे मृग या सिंह।

ऋग्वेद की ऋचा शुनं हुवेम इत्यादि में शुनम् की व्याख्या शून्य के रूप में की जा सकती है (वैदिक साहित्य में आजकल की वैज्ञानिक विचारधारा वाले शून्य का प्रत्यक्ष उल्लेख कहीं नहीं है)। ऋग्वेद की ऋचा में एक ओर तो इन्द्र को शुनम् कहा जा रहा है, दूसरी ओर नृतम तथा उग्र को सुनने वाला। पुराणों में उग्रश्रवा नैमिषारण्य में पुराण सुनाते हैं। डा० फतहसिंह के अनुसार नैमिषारण्य निमेष-उन्मेष से परे

की स्थिति (शून्य?) है। पुराणों में शुनम् का दूसरा रूपांतर शुनक-पुत्र शौनक के रूप में हो सकता है। शतपथ ब्राह्मण १३.५.४.३ आदि में शौनक द्वारा परीक्षित के चार पुत्रों जनमेजय, उग्रसेन, भीमसेन तथा श्रुतसेन को क्रमशः अश्वमेध, गौ अतिरात्र, जयोति अतिरात्र तथा आयु अतिरात्र का यजन कराने का उल्लेख है। इसका अर्थ होगा कि शौनक का उल्लेख किसी ऋषि विशेष तक सीमित नहीं है, अपितु वह अवस्था है जो उग्र श्रव से भी आगे श्रुत ज्ञान तक पंहुच सकती है।

ऋग्वेद की कई ऋचाओं जैसे १.८४.९, १.१००.१२, ३.३६.४, ५.२०.२, ८.१.२१आदि में उग्र शब्द के साथ शव शब्द भी प्रकट हुआ है और यह विचारणीय है कि क्या उग्रश्रवा अवस्था उग्र शव से सम्बन्धित है?

**उग्रसेन** **गर्ग** १.५.२५ (मरुत देवता के अंश), ७.१.३५ (राजा मरुत का जन्मान्तर में उग्रसेन राजा बनना), ७.२+ (उग्रसेन द्वारा राजसूय यज्ञ का अनुष्ठान, प्रद्युम्न द्वारा दिग्विजय), ७.२.१७ (उग्रसेन द्वारा प्रद्युम्न को खड्ग प्रदान करना), ९.१+ (उग्रसेन द्वारा व्यास से भक्ति विषयक जिज्ञासा), १०.७ (उग्रसेन द्वारा अश्वमेध यज्ञ का उद्योग), **पद्म** २.४८.१ (पद्मावती-पति, गोभिल दैत्य द्वारा उग्रसेन का रूप धारण करके उग्रसेन की पत्नी से समागम, कंस की उत्पत्ति), **ब्रह्मवैवर्त्त** ४.१०४.५० (उग्रसेन का द्वारका में प्रवेश व देवों, मनुष्यों आदि द्वारा उग्रसेन का अभिषेक), **ब्रह्माण्ड** १.२.२३.१० (उग्रसेन गन्धर्व की सूर्य रथ में स्थिति), **भविष्य** ३.३.२२.२९, ३.३.३२.५१ (उग्रसेन का कलियुग में बलीठाठ ग्राम-अधिपति वीरसेन के रूप में जन्म), ३.३.३२.३६ (द्वापर युग के उग्रसेन नामक कौरव का कलियुग में पुण्ड्र देश के राजा के पुत्र के रूप में जन्म लेने का उल्लेख), **भागवत** ९.२२.३५ (परीक्षित के ४ पुत्रों में से एक), ९.२४.२४ (उग्रसेन के कंस आदि ९ पुत्रों तथा कंसा, कंसवती आदि ५ पुत्रियों के नाम), १२.११.३८ (नभस्य/भाद्रपद मास में उग्रसेन गन्धर्व की सूर्य रथ व्यूह में स्थिति), **मत्स्य** ४४.७० (आहुक व काश्या-पुत्र, उग्रसेन के पुत्रों के नाम), **वायु** ९६.१३१/२.३४.१३१ (उग्रसेन के कंस आदि ९ पुत्रों तथा कर्म, धर्मवती आदि ५ पुत्रियों के नाम), **विष्णु** ५.२१ (कंस वध के पश्चात् उग्रसेन का राज्याभिषेक, सुधर्मा सभा में विराजमान होना), **विष्णुधर्मोत्तर** १.१३५.१ (उग्रसेन गन्धर्व का उर्वशी को पृथिवी से वापस लाने के लिए गमन), **स्कन्द** १.२.५४.१८ (जटायु के पूर्वज?-राजा उग्रसेन द्वारा श्रीकृष्ण से नारद ऋषि की चपलता का कारण पूछना), ७.१.१.२९ (उग्रसेनेश्वर लिंग माहात्म्यः अक्षमाला शूद्रा द्वारा स्थापना, अन्धासुर-पुत्र उग्रसेन द्वारा पुत्रार्थ पूजा), **हरिवंश** १.३७.३० (आहुक-पुत्र, कंस आदि ९ पुत्रों के नाम), २.३२.५५ (उग्रसेन द्वारा कृष्ण के साथ मिलकर कंस की अन्त्येष्टि क्रिया करना), २.३६.२ (जरासन्ध-सेनानी भीष्मक से युद्ध)।

**टिप्पणी**- उग्रसेन पर टिप्पणी से पूर्व अग्निहोत्र, अग्निष्टोम, आहुति, अनन्त, इन्द्रसेन और उग्र की टिप्पणियों का पठन उपयोगी होगा। राजा उग्रसेन पूर्व जन्म में मरुत्त थे। ऋग्वेद की ऋचाओं में उग्र शब्द का प्रयोग मुख्य रूप से इन्द्र के लिए तथा गौण रूप से मरुतों (उदाहरणार्थ ऋग्वेद १.२३.१०, १.१६६.६, ५.५७.३), अग्नि आदि के लिए हुआ है। उग्रसेन के चरित्र में मरुतों तथा इन्द्र दोनों के गुण मिले हुए हैं। उग्रसेन बनने से पूर्व राजा मरुत्त द्वारा की गई साधना अपेक्षित है। राजा मरुत्त के संदर्भ में वर्णन आता है कि उसने अपने यज्ञ के आचार्य के लिए संवर्त ऋषि के वरण का निश्चय किया। उसे पता लगा कि जो व्यक्ति काशी विश्वनाथ मन्दिर के बाहर शव देखकर लौट जाए वह संवर्त ऋषि होगा। इस कथा की व्याख्या डा०फतहसिंह द्वारा पुराणों में वैदिक संदर्भ में की जा चुकी है। ऋग्वेद ७.५६.४ में उल्लेख आता है कि मरुतों का ओज उग्र है और शवस् नामक बल स्थिर हैं। अतः मरुत अवस्था की दशा में शव साधना को स्थिर बनाना होगा, चित्तवृत्तियों का पूर्णत निरोध करना होगा। उसके पश्चात् उग्र बनने की साधना आरंभ होगी। यह अन्वेषणीय है कि उग्रसेन शब्द की व्याख्या उग्रश्येन (शतपथ ब्राह्मण ३.३.४.१५) शब्द द्वारा सम्यक् प्रकार से की जा सकती है या नहीं? पौराणिक और वैदिक साहित्य में अग्नि द्वारा श्येन का रूप धारण करके स्वर्ग लोक से सोम लाने का आख्यान प्रसिद्ध है। ऐसा प्रतीत होता है कि सूर्य रूपी उग्रश्येन द्वारा की गई उपलब्धियों को पृथिवी पर फैलाना उग्रसेन का काम है।

राजा उग्रसेन के पुत्र कंस के संदर्भ में, ऋग्वेद की कई ऋचाओं जैसे ८.३२.२ तथा १०.११३.६ में उल्लेख आता है कि

इन्द्र ने उग्र बन कर वृत्र द्वारा रोके हुए आपः/जल को मुक्त किया। तैत्तिरीय संहिता २.४.७.१ के अनुसार मरुत/वात आपः की धारा की सृष्टि करने वाला होता है। तैत्तिरीय संहिता ३.३.३.२ तथा ३.३.४.१ के अनुसार सूर्य की रश्मियां उग्र बन कर द्युलोक से वृष्टि का च्यावयन करती हैं जिसे ग्रहण करने के लिए सम्यक् पात्र की आवश्यकता होती है जिससे पात्र में एकत्रित सोम को शुद्ध करके बाद में देवों को प्रस्तुत किया जा सके। इस पात्र को कंस या देवपान चमस कहते हैं। कंस का विस्तृत वर्णन पुराणों में वैदिक संदर्भ भाग ४ में किया जा चुका है। सारांश यह है कि मानव देह रूपी इस सुराकंस को कैसे इतना शुद्ध किया जाए कि यह ऊपर से आने वाली शक्तियों का, ओषधियों का रस धारण करने में समर्थ बन जाए, शतपथ ब्राह्मण १४.९.३.१ के शब्दों में उदुम्बर काष्ठ का कंस बन जाए।

उग्रसेन के अन्य पुत्रों न्यग्रोध व राष्ट्रपाल के संदर्भ में ऐतरेय ब्राह्मण ७.३१, ७.३३, ७.३४, ८.१ तथा ८.४ दृष्टव्य हैं जहां यजमान अपनी आत्मा में तथा न्यग्रोध आदि वनस्पति में क्षत्र बल की प्रतिष्ठा करके अपने राष्ट्र को उग्र बनाता है।

मथुरा के राजा उग्रसेन के द्वारका के राजा बनने के संदर्भ में, पुराणों में मथुरा का स्थान हृदय प्रदेश तथा द्वारका का स्थान कण्ठ प्रदेश कहा गया है (वायु पुराण १०४.७६)। हृदय अनाहत चक्र से सम्बद्ध है जिसका मुख्य तत्त्व वायु है। अथर्ववेद ९.१.३ से प्रतीत होता है कि अग्नि और वात के संयोग से उग्र मधुकशा का जन्म होता है। यह मधुकशा मथुरा का रूपांतर हो सकता है। कण्ठ प्रदेश विशुद्धि चक्र से सम्बन्धित है जिसका मुख्य तत्त्व आकाश है। पुराणों में शिव की उग्र नामक मूर्ति का सम्बन्ध वायु तत्त्व से और भीम का सम्बन्ध आकाश से कहा गया है। ऋग्वेद १.१००.१२, २.३३.११ तथा ४.२०.६ में उग्र व भीम शब्दों का साथ-साथ उल्लेख आया है। यह संकेत करता है कि भीम उग्र की विकसित अवस्था है। तैत्तिरीय संहिता २.४.७.१ में (आनन्द की) वृष्टि के विभिन्न चरणों का वर्णन किया गया है जिसमें प्रथम चरण पुरोवात वर्षा है जो जीवन प्रदान करती है। दूसरा चरण वात सहित वर्षा है जिसे उग्र कहा गया है। तीसरा चरण स्तनयन/गर्जन के साथ वर्षा है जिसे भीम कहा गया है। चौथा चरण अशनि-रहित, अवस्फूर्जन सहित वर्षा है जिसे त्वेष कहा गया है। पांचवां चरण अतिरात्र वर्षा है जिसे पूर्ति कहा गया है। छठां चरण बहुवर्षा है जिसे श्रुत कहा गया है। इससे अगले चरण आतप वर्षा आदि हैं। इस प्रकार द्वारका का सम्बन्ध भीम से होना चाहिए। इसी तथ्य को और आगे समझने में शांखायन श्रौत सूत्र १६.९.२ तथा शतपथ ब्राह्मण १३.५.४.३ के उल्लेख उपयोगी होंगे। शौनक ऋषि ने परीक्षित के चार पुत्रों (तुलनीय : भागवत पुराण में परीक्षित के चार पुत्रों का उल्लेख) में से जनमेजय को तो अश्वमेध यज्ञ कराया, उग्रसेन को ज्योति अतिरात्र, भीमसेन को गौ अतिरात्र और श्रुतसेन को आयु अतिरात्र (शतपथ ब्राह्मण में यह क्रम भिन्न प्रकार से है)। अतः उग्रसेन का मुख्य उद्देश्य ज्योति की उपलब्धि करना है। (तुलनीय : उर्वशी-पुरूरवा कथा में उग्रसेन गन्धर्व द्वारा मेषों की चोरी करना और फिर प्रकाश करना)। इस ज्योति की उपलब्धि मुख्यतः अग्निहोत्र और अग्निष्टोम यज्ञों द्वारा हो सकती है (अग्निहोत्र में आहुति का मन्त्र है: अग्निः ज्योतिः ज्योतिरग्निः स्वाहा। सूर्यो ज्योतिः ज्योतिः सूर्यः स्वाहा)। पुराणों के सार्वत्रिक श्लोक अग्निहोत्र फलं वेदा शील वृत्त श्रुतं फलम् के अनुसार अग्निहोत्र से वेद का ज्ञान होता है। लेकिन यह ज्ञान ऐसा नहीं है कि इसका विस्तार किया जा सके (द्रष्टव्य : अनन्त पर टिप्पणी)। ज्योति से अगली अवस्था गौ अतिरात्र की है जिसे भीमसेन प्राप्त करता है। स्कन्द पुराण में द्वारका के वर्णन के अन्तर्गत गोमती नदी का व्यापक उल्लेख मिलता है जो यह संकेत करता है कि द्वारका, गौ और भीम स्थितियां परस्पर संबंधित हैं। गौ से अगली अवस्था आयु की है जिसे श्रुतसेन प्राप्त करता है। ऋग्वेद की ऋचाओं में उग्र श्रुत को प्राप्त करने के व्यापक उल्लेख मिलते हैं (उदाहरण के लिए ऋग्वेद २.३३.११, ३.३०.२२ आदि)। पुराणों के श्लोक के अनुसार श्रुत ज्ञान शील का परिणाम है। पुराणों में उग्रसेन की द्वारका स्थित सुधर्मा सभा की प्रशंसा में कहा जाता है कि राजा उग्रसेन धन्य हैं जिनकी सभा में कृष्ण, अनन्त बलराम आदि सदैव विराजमान रहते हैं। वेद ज्ञान से श्रुत ज्ञान को प्राप्त होना ही अनन्तता को, अनन्त आनन्द को, बलराम को प्राप्त होना है जिसके लिए शील अथवा बलराम का सीर/हल अपेक्षित है। उग्रसेन की सभा में कृष्ण की उपस्थिति उग्र और सौम्य के मिलन की प्रतीक हो सकती है।

उग्रसेन के यदु वंश से संबंधित होने के संदर्भ में, ऋग्वेद १.३६.१८, ५.३१.८ तथा ८.४.७ में उग्र द्वारा तुर्वसु और यदु के आह्वान का उल्लेख आता है। निहितार्थ अपेक्षित है। पद्म पुराण में गोभिल असुर द्वारा उग्रसेन का रूप धारण करके संगीत द्वारा उग्रसेन-पत्नी पद्मिनी को आकृष्ट करने के संदर्भ में

ऋग्वेद १.१००.१२ ऋचा दृष्टव्य है जहां शव अवस्था की प्राप्ति से पाञ्चजन्य बनने का उल्लेख है।

स्कन्द पुराण में अक्षमाला शूद्रा द्वारा स्थापित शिवलिंग की पूजा से उग्रसेन द्वारा पुत्र प्राप्ति के वर्णन के संदर्भ में अक्षमालिकोपनिषद तथा ऋग्वेद १०.३४.८ दृष्टव्य हैं।

**उग्रा** **नारद** २.४३.८० (गंगा स्तोत्र में गंगा की उग्रा नाम से अर्चना), **ब्रह्माण्ड** ३.४.४४.७३ (४८ शक्ति देवियों में से एक), **स्कन्द** ४.१.२७.६९ (गंगा सहस्रनामों में से एक), ४.२.७२.६२ (उग्रा देवी द्वारा पादाङ्गुलियों की रक्षा)।

**टिप्पणी**– ऋग्वेद १०.१०४.३ में अभिषुत सोम की उग्रा पीति का उल्लेख है जिसे इन्द्र को प्रस्तुत किया जाता है जिसे पीकर इन्द्र की वाक् शक्ति जाग्रत हो जाती है (?)। ऋग्वेद १०.१५९.२ में शची को उग्रा विवाचनी कहा गया है तथा ऋग्वेद १०.१२१.५ में द्यौ को उग्रा कहा गया है। तैत्तिरीय ब्राह्मण २.७.१७.१में दीक्षा को उग्रा कहा गया है। तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.७.१३.४ तथा तैत्तिरीय आरण्यक ४.२०.३ में आदित्यों की हेति को उग्रा कहा गया है। तैत्तिरीय ब्राह्मण १.७.७.२ में उग्रा (दक्षिण?) दिशा का उल्लेख है जिससे इन्द्रियों को वश में किया जाता है। अथर्ववेद २.२५.१ में पृश्निपर्णी नामक ओषधि को उग्रा कहा गया है। अथर्ववेद ८.७.४ तथा ८.७.१० में उग्रा ओषधियों का उल्लेख है। अथर्ववेद २०.७०.१० में उग्र इन्द्र की उग्रा ऊतियों का उल्लेख है। आश्वलायन श्रौत सूत्र ४.१३.२ में वाक् देवी/सरस्वती को उग्रा कहा गया है।

**उग्रायुध** **भविष्य** ३.३.३२.३१ (उग्रायुध आदि १० कौरवों का कलियुग में कैकय राजा के पुत्र बनना), **भागवत** ९.२१.२९ (नीप-पुत्र, क्षेम्य-पिता, भरत/भरद्वाज वंश), **मत्स्य** ४९.५९ (उग्रायुध द्वारा तप, शरणागत जनमेजय को राज्य दिलाने के लिए नीपवंशियों का शाप द्वारा संहार), **वायु** ९९.१८९/२.३७.१८८ (कृति-पुत्र, क्षेम-पिता, वंश वर्णन), **विष्णु** ४.१९.५३ (वही), **हरिवंश** १.२०.४४ (कृत-पुत्र, क्षेम्य-पिता, नीपों का संहार, भीष्म-माता सत्यवती पर आसक्ति के कारण भीष्म द्वारा उग्रायुध का वध)।

**टिप्पणी**– अथर्ववेद ३.१९.७ में उग्रबाहु होकर उग्रायुध बनने का उल्लेख है। उग्र बाहु शब्द का उल्लेख अन्य बहुत सी ऋचाओं जैसे ऋग्वेद ८.२०.१२ तथा ८.६१.१० में भी हुआ है। जैमिनीय ब्राह्मण २.१६५ में उग्रायुध मानश्चित्त का उल्लेख आया है। पुराणों में उग्रायुध के साथ नीपों का सम्बन्ध जोडा गया है। शब्दकोशों में नीप की निरुक्ति नीचं पतति अर्थात् पर्वत के शिखर से नीचे भूमि पर गिरने वाले जल के रूप में की गई है। ऋग्वेद ८.५१.१ के भाष्य में नीप की निरुक्ति 'नयति हविर्देवान्, पाति यजमानं च', ऐसी अग्नि के रूप में की गई है। ऐसा प्रतीत होता है कि उग्र-आयुध अर्थात् आयु के धारण के लिए यह आवश्यक है कि हमारे शीर्षस्थ कोश से नीचे क्षय होने वाले आपः का वृथा क्षरण रोका जाए। यही उग्रायुध द्वारा नीपों का संहार हो सकता है। ऋग्वेद ८.२९.५ तथा १०.१०३.३ ऋचाएं भी उग्रायुध के संदर्भ में विचारणीय हैं।

**उग्राश्व** **वराह** ४३.१५ (वामन द्वादशी व्रत के चीर्णन से हर्यश्व द्वारा उग्राश्व नामक पुत्र प्राप्त करना)।

**उच्चाटन** **अग्नि** १३८ (शत्रु के विरुद्ध उच्चाटन कर्म विधि), **भविष्य** ४.५.३७ (उच्चाटन कर्म की पाप के अन्तर्गत गणना), **स्कन्द** १.२.४१.५२ (वही)

द्र. अभिचार, शत्रु।

**उच्चैःश्रवा** **गर्ग** ७.४१.१ (हिरण्याक्ष-पुत्र शकुनि द्वारा उच्चैःश्रवा पर आरूढ होकर श्रीकृष्ण से युद्ध करने का उल्लेख), **देवीभाग.** ३.१३.२२ (समुद्र मन्थन से उत्पन्न उच्चैःश्रवा अश्व आदि के इन्द्र को प्राप्त होने का उल्लेख), ६.१७.५१ (सूर्य-पुत्र रेवन्त का उच्चैःश्रवा पर आरूढ होकर विष्णु दर्शन हेतु गमन, लक्ष्मी की उच्चैःश्रवा पर आसक्ति के कारण विष्णु द्वारा लक्ष्मी को वडवा होने का शाप), **पद्म** १.४७.१२९ (कद्रू-विनता आख्यान में सर्पों द्वारा उच्चैःश्रवा अश्व को विष द्वारा कृष्ण बनाने का उल्लेख), ७.५.७० (माधव द्वारा समुद्र पार करने के लिए उच्चैःश्रवा अश्व व मन्दुरा अश्वी के अश्व पुत्र की प्राप्ति), **ब्रह्म** १.६२.४० (श्रीकृष्ण के स्नान/अभिषेक में देवों आदि के सहित उच्चैःश्रवा हय के भाग लेने का उल्लेख), **ब्रह्मवैवर्त्त** १.२०.४९ (पत्नी कलावती द्वारा गर्भ धारण करने के उपलक्ष्य में दुमिल

गोप द्वारा पञ्च लक्ष उच्चैःश्रवा आदि का ब्राह्मणों को दान करने का उल्लेख), **भविष्य** १.३२.१० (एकनयना कद्रू द्वारा श्वेत वर्ण वाले उच्चैःश्रवा अश्व में कृष्ण बालों को देखना तथा कद्रू-विनता आख्यान), ४.३६.६ (वही), **भागवत** ८.८.३ (समुद्र मन्थन से उच्चैःश्रवा की उत्पत्ति, बलि द्वारा उसे ग्रहण करने और इन्द्र द्वारा न करने का उल्लेख), **मत्स्य** २५१.३ (उच्चैःश्रवा अश्व की समुद्र मन्थन से उत्पत्ति व सूर्य द्वारा प्राप्ति का उल्लेख), **लिङ्ग** २.३९.५ (हिरण्याश्व दान के संदर्भ में उच्चैःश्रवा अश्व दान विधि का वर्णन), **स्कन्द** १.१.१८.७७ (कितव/बलि द्वारा विश्वामित्र को उच्चैःश्रवा अश्व दान करने आदि का कथन), १.१.१८.१०७ (कितव/बलि द्वारा गालव को उच्चैःश्रवा अश्व दान करने का उल्लेख), ४.१.५०.६ (कद्रू-विनता आख्यान : सर्पों द्वारा श्वेत उच्चैःश्रवा अश्व के बालों में प्रवेश करके उसे कृष्ण बनाना), ५.१.४४.११ (समुद्र मन्थन से उच्चैःश्रवा आदि के प्राकट्य का उल्लेख), ५.१.४४.२५ (सूर्य द्वारा सात मुखों वाले उच्चैःश्रवा अश्व की प्राप्ति का उल्लेख), ५.२.१६.४ (तुहुण्ड दानव द्वारा इन्द्र के उच्चैःश्रवा अश्व के हरण का उल्लेख), ५.३.७२ (कद्रू-विनता आख्यान), ५.३.१३१ (वही), **कथासरित्** ४.२.१८१ (वही), ८.३.२२१ (समुद्र मन्थन से प्रकट उच्चैःश्रवा अश्व की नमुचि असुर द्वारा प्राप्ति, उच्चैःश्रवा अश्व के घ्राण मात्र से असुरों के जीवित हो जाने का उल्लेख, इन्द्र द्वारा नमुचि से उच्चैःश्रवा अश्व की याचना व प्राप्ति), १०.३.६६ (सोमप्रभ द्वारा उच्चैःश्रवा-पुत्र आशुश्रवा की प्राप्ति), १८.४.१३ (सूर्य के रथ के उच्चैःश्रवा अश्व द्वारा विक्रमादित्य राजा की अश्वी से रत्नाकर नामक अश्व उत्पन्न करना)।

**महाभारत** आदि २०.१ (विनता-कद्रू आख्यान), ९४.५३ (अवीक्षित के ८ पुत्रों में से एक), उद्योग १०२.१२ (समुद्र मन्थन से उच्चैःश्रवा आदि की उत्पत्ति), द्रोण १९६.३० (अश्वत्थामा द्वारा जन्म लेते ही उच्चैःश्रवा की भांति हिनहिनाना)।

**टिप्पणी**– वैदिक साहित्य में उच्चैःश्रवा शब्द का उल्लेख एक-दो स्थानों पर ही हुआ है, लेकिन श्रव शब्द का उपयोग ऋग्वेद आदि की ऋचाओं में व्यापक स्तर पर किया गया है और इन्हीं ऋचाओं से उच्चैःश्रवा की प्रकृति का अनुमान लगाना है। ऋग्वेद १.१५६.२ तथा १.६१.५ आदि में ॐ श्रवण का उल्लेख है। यह कहा जा सकता है कि इस ॐ श्रवण का मानव व्यक्तित्व के सभी निचले स्तरों पर विस्तार करना ही उच्च द्वारा श्रवण (उच्चैःश्रवा) है। ऋग्वेद की ऋचाओं में श्रव के साथ प्रायः वाज शब्द का भी उल्लेख आया है। वाज को मोटे रूप में वाक् कहा जा सकता है। प्रचलित भाषा में आवाज शब्द भी यही वाज, अन्तरात्मा की आवाज हो सकता है। ऋग्वेद ९.१.४, ९.६.३, ९.५१.५ आदि में 'अभि वाजं उत श्रवः' में अभि प्रत्यय के उल्लेख से प्रतीत होता है कि वाज की प्राप्ति एकान्तिक साधना के फलस्वरूप होती है, जबकि श्रव साधना का बृहत् रूप है। ऋग्वेद की ऋचाओं में श्रव के साथ बृहत् और महि आदि विशेषणों का प्रचुरता से प्रयोग हुआ है। प्रश्न यह है कि इस श्रव की प्राप्ति कैसे की जा सकती है? अथवा वाज का अपने व्यक्तित्व के सभी स्तरों पर अवतरण कराकर उसे कैसे श्रव नामक मूर्त रूप दिया जा सकता है? पुराणों में इसका उत्तर समुद्र मन्थन द्वारा उच्चैःश्रवा अश्व को प्रकट करने के माध्यम से दिया गया है। ऋग्वेद १.१२८.१ (सायण भाष्य) तथा २.१०.१ में यजमान द्वारा मन्थन के द्वारा इडस्पद में अग्नि को समिद्ध करने का उल्लेख है। इडस्पद में समिद्ध यह अग्नि श्रवस्य और वाजी है। इला शब्द की टिप्पणी में इडस्पद की प्रकृति का वर्णन करते हुए यह स्पष्ट किया गया है कि यह इडस्पद कर्मकाण्ड में आहवनीय अग्नि से ऊपर स्थित उत्तरवेदी का स्थान हो सकता है। यह इडा के पदों का प्रतीक हो सकता है। इडा जहां-जहां अपने पद रखती है, वहीं-वहीं घृत उत्पन्न हो जाता है, और अग्नि को घृत बहुत प्रिय है। घृत पाते ही वह समिद्ध हो जाती है। यह इडस्पद आनन्द का स्थान है जिसे पुराणों में समुद्र/समुद कहा गया है। लेकिन महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि शुद्ध श्रव की प्राप्ति एक दम नहीं हो जाती, पहले उच्चैःश्रवा की प्राप्ति असुरों को होती है। ऋग्वेद ८.१०३.५, ९.६६.१० तथा ९.९७.२५ आदि में संभवतः अर्वा/अश्व का उल्लेख इसी स्थिति की ओर इंगित करता है। उसके पश्चात् वह इन्द्र को प्राप्त होता है। हो सकता है कि ऋग्वेद १.७३.७, १.९१.१८, १.१२५.२ तथा ५.३५.८ में श्रव को द्युलोक/दिवि में रखने का जो उल्लेख है, उसकी व्याख्या पुराणों में उच्चैःश्रवा के इन्द्र को प्राप्त होने के तथ्य से की गई हो।

पुराणों में विनता-कद्रू के सार्वत्रिक आख्यान से मिलता-जुलता आख्यान शतपथ ब्राह्मण ३.६.२.२ में भी वर्णित है।

वहां विनता के स्थान पर सुपर्णी वाक् का नाम लिया गया है तथा श्वेत अश्व को अग्नि कहा गया है। पुराणों में वर्णित आख्यान में सर्पों द्वारा उच्चै:श्रवा अश्व के बालों/रोमकूपों में प्रवेश करके उसे कृष्ण बनाने के संदर्भ में, ऋग्वेद ९.८७.५ व ९.१०८.५ आदि में सोम को अवि के बालों से बनी पवित्र नामक छलनी से छानने का उल्लेख आता है जिससे छनकर सोम इस प्रकार निकलता है जैसे संग्राम में श्रव करते हुए अश्व। यह संभव है कि पुराणों में सर्पों द्वारा अश्व के बालों में प्रवेश करने से तात्पर्य उसके विष को चूस कर उसे शुद्ध करना हो, जैसे पवित्र नामक छलनी सोम को करती है। बाल/वाल बिखरी हुई ऊर्जा का प्रतीक हैं। सर्पों द्वारा उच्चै:श्रवा को कृष्ण बना देने के तथ्य की व्याख्या का दूसरा प्रयास ऋग्वेद ८.१०३.५ तथा ९.६६.७ आदि में अक्षिति श्रव के उल्लेख के आधार पर किया जा सकता है। उच्चै:श्रवा के शरीर से रश्मियों का निकलना श्रव के क्षय का प्रतीक हो सकता है जिसे समाप्त करना है।

प्रश्न यह है कि उच्चै:श्रवा अश्व को श्वेत क्यों कहा गया है? ऋग्वेद ९.१००.८ आदि में पवमान (छनते हुए सोम) द्वारा चित्र रश्मियों द्वारा महि श्रव प्राप्त करने व तमस् का नाश करने का उल्लेख है। वैदिक साहित्य में ज्योति की उत्पत्ति प्राय: अग्नि और सोम के मिलन से कही जाती है। अग्नि की गति ऊपर की ओर होती है तथा सोम की नीचे की ओर। इसी प्रक्रिया से श्रव का उत्पन्न होना भी संभव प्रतीत होता है। यास्क के निघण्टु में श्रव का वर्गीकरण अन्न व धन नामों के अन्तर्गत किया गया है। अत: यह कहा जा सकता है कि श्रव सोम का ही एक रूप है। इस श्रव की चित्र रश्मियों का पान सर्प ऊर्जा द्वारा किए जाने तथा उच्चै:श्रवा के श्वेत से कृष्ण होने के संदर्भ में ऋग्वेद १.७३.७ में उल्लेख आता है कि कृष्ण वर्ण को अरुण वर्ण में रूपांतरित करने की युक्ति अग्नि के पास है। पुराणों के कद्रू-विनता आख्यान में विनता का पुत्र गरुड/श्येन ऊपर उडकर स्वर्ग में जाता है और वहां से सोम लाता है जिससे विनता को कद्रू के दासीत्व से मुक्ति मिलती है। इस आख्यान में ऊर्जा द्वारा श्येन का रूप धारण करना सर्प ऊर्जा के अतिक्रमण का ही प्रतीक है। सर्प ऊर्जा केवल सर्पण कर सकती है, ऊपर नहीं उड सकती। हो सकता है कि ऋग्वेद ५.७.९ में जिस आसुत सर्पि/घृत के अग्नि को प्रस्तुत करने से श्रव आदि प्राप्त करने का उल्लेख है, वह सर्प ऊर्जा का उच्चतर रूप हो। ऋग्वेद ४.२६.५ तथा ६.४६.१३ में श्येन द्वारा श्रव को प्राप्त करने का उल्लेख है।

ऋग्वेद ५.३५.८, ८.१३.१२ तथा १०.१४०.१ आदि बहुत सी ऋचाओं में श्रव के साथ-साथ शव शब्द का भी उल्लेख आया है। इन्द्र को शविष्ठ कहा गया है। हो सकता है कि शव जैसी निष्क्रिय अवस्था प्राप्त करने पर ही श्रव की प्राप्ति होती हो।

पुराणों में सूर्य के रथ के वाहक उच्चै:श्रवा अश्व के संदर्भ में ऋग्वेद ४.३१.१५, ५.८६.६, ७.८१.६, ८.१३.१२, ८.४६.२४, ८.१०१.१२ तथा ९.९८.८ आदि में सूरि में बृहद्, वर्षिष्ठ श्रव आदि होने के उल्लेख आते हैं। श्रव के साथ बृहद् विशेषण का ऋग्वेद की ऋचाओं में व्यापक रूप से उपयोग किया गया है। चूंकि सूर्य के रथ का निरूपण भी बृहती छन्द द्वारा किया जाता है, अत: ऐसा हो सकता है कि श्रव का बृहद् रूप विशेष रूप से सूरि/सूर्य अवस्था में रथ के द्वारा गतिशीलता आने पर ही प्राप्त होता हो।

कथा सरित्सागर में नमुचि असुर (न मुञ्चति इति, हर्ष जो एक बार प्राप्त होकर समाप्त ही नहीं होता) द्वारा उच्चै:श्रवा की प्राप्ति के सन्दर्भ में ऋग्वेद ६.१०.५ तथा ७.८१.५ आदि में श्रव के साथ चित्र राध का उल्लेख विचारणीय है।

देवीभागवत पुराण में सूर्य-पुत्र रेवन्त द्वारा उच्चै:श्रवा पर आरूढ होकर विष्णु के पास जाने के तथ्य के संदर्भ में ऋग्वेद १.९५.११ तथा १०.६९.३ में रेवत पावक के श्रव द्वारा विभूषित होने आदि का कथन विचारणीय है।

**उच्छिष्ट अग्नि** १५७.१७ (मृतक के अशौच के संदर्भ में उच्छिष्ट के निकट एक पिण्ड देने का विधान), **कूर्म** २.१४.७१ (उच्छिष्ट व श्राद्ध भोजन का मन से भी चिन्तन न करने का निर्देश), २.१७.९ (उच्छिष्ट व उच्छिष्टभोजी के अन्न के ग्रहण का निषेध), **गरुड** १.९९.२३ (श्राद्ध में उच्छिष्ट सन्निधि में पिण्डदान का निर्देश), **देवीभाग.** ११.२३.१ (साधक द्वारा प्राणाग्निहोत्र के पश्चात् उच्छिष्ट भाग भोगियों को पात्रान्न देने का निर्देश), ११.२३.५ (विप्र का उच्छिष्ट से स्पर्श होने पर शुद्धि विधान कथन), **नारद** १.१.७१ (पुराणादि का उच्छिष्ट देश में कथन करने पर नरक प्राप्ति का उल्लेख), १.२५.३१ (शिष्य हेतु उच्छिष्ट भोजन का निषेध), १.५१.१२६ (उच्छिष्ट की सन्निधि में पिण्ड देने का निर्देश), १.६७.५० (अर्चना में

पुनराचमनीयक दान के संदर्भ में ईश्वर के स्मरण मात्र से उच्छिष्ट के शुद्ध होने का उल्लेख), **पद्म** ३.५३.७१ (उच्छिष्ट व श्राद्ध भोजन का मन से भी चिन्तन न करने का निर्देश), ३.५६.९ (उच्छिष्ट भोजी का अन्न ग्रहण करने का निषेध), ७.८.१० (उच्छिष्ट को गङ्गा में फेंकने का पातक कथन), ७.१६.१२ (उच्छिष्ट अथवा अनुच्छिष्ट का ज्ञान न रखनेवाले हरिभक्त शबर की कथा), **ब्रह्म** १.११३.२८ (उच्छिष्ट के वर्जन करने का निर्देश), **ब्रह्मवैवर्त्त** ४.२१.७२ (विप्रों के उच्छिष्ट का ग्रहण करने से पाप नष्ट होने आदि का कथन), **ब्रह्माण्ड** २.३.१४.१०१ (उच्छिष्टों के संस्पर्श, संभाषण अथवा भक्षण पर प्रायश्चित्त कथन), **भागवत** १.५.२५ (नारद द्वारा पूर्वजन्म में विप्रों के उच्छिष्ट का सेवन करने से पाप नष्ट होने का कथन), ६.१८.६० (इन्द्र द्वारा उच्छिष्टा दिति के गर्भ का छेदन), ९.४.८ (नाभाग के दायाद के संदर्भ में यज्ञ में उच्छिष्ट पर रुद्र का अधिकार होने का कथन), ११.६.४६ (उद्धव का स्वयं को कृष्ण का उच्छिष्ट भोजी कहना), **मत्स्य** १७.५७ (उच्छेष के दासवर्ग व पितरों का भाग होने का कथन), **मार्कण्डेय** ३४.३१/३१.३१ (उच्छिष्ट अवस्था में आलाप, स्वाध्याय आदि आदि न करने का निर्देश), ५१.३४/४८.३४ (स्वयंहारिका द्वारा मनुष्यों के उच्छेष आदि का हरण करने का उल्लेख), **वा.रामायण** २.११९.२० (उच्छिष्ट तापस व ब्रह्मचारी का राक्षसों द्वारा भक्षण का उल्लेख), **लिङ्ग** १.७९.५ (उच्छिष्ट भक्त द्वारा शिव की पूजा से पैशाच स्थान प्राप्ति का कथन), **वराह** २०२.६९ (उच्छिष्ट अन्न प्रदाता की नरक में गति का कथन), **वामन** १४.७८ (उच्छिष्ट को गृह से बाहर फेंकने का विधान), **विष्णु** ३.११.१० (वही), **शिव** २.१.१३.१५ (उच्छिष्ट वस्त्र से स्नान न करने का निर्देश), **विष्णु धर्मोत्तर** १.२३१.३३ (असुर ग्रह पीडित व्यक्ति द्वारा उच्छिष्ट भैरव नीरस रव करने का उल्लेख), २.७३.२१९ (रजस्वला स्त्री द्वारा उच्छिष्ट का संस्पर्श कर लेने पर शुद्धि न करने तक भोजन न करने का निर्देश), २.७७.३ (अशौच समाप्त होने पर उच्छिष्ट की सन्निधि में एक पिण्ड रखने का निर्देश), ३.२३३.१५ (उच्छिष्ट होकर शीर्ष का स्पर्श न करने का निर्देश), **स्कन्द** १.२.४१.१४९ (उच्छिष्ट-दूषित व्यक्ति द्वारा सूर्य दर्शन का निषेध), २.२.३८.३ (भगवद् उच्छिष्ट/प्रसाद माहात्म्य), ४.१.३५.२२८ (भोजन के अन्त में उदक पान करके पीतशेष को भूमि पर गिराने से उच्छिष्टोदक इच्छुकों की तृप्ति होने का कथन), ६.८८.४५ (गर्भवती नारी द्वारा उच्छिष्ट अवस्था में प्रसर्पण करने पर उनके गर्भ का कालयवनों का भोजन होने का कथन), ६.८८.४६ (सूतिका भवन में उच्छिष्ट उत्पन्न होने पर बालक का कालयवनों का भोजन होने का उल्लेख), ६.८८.५३ (उच्छिष्ट स्थिति में बैठे पुरुष का कालयवनों का भोजन होने का उल्लेख), ६.२१८.९ (पात्र प्रक्षालन से भूमि पर प्राप्त उच्छिष्ट से प्रेतों आदि की तृप्ति होने का कथन), ६.२२४.३५ (श्राद्ध में उच्छिष्ट सन्निधि में पितृवेदी बनाने का निर्देश), **लक्ष्मीनारायण** ४.६६.१२ (कथा के उच्छिष्ट भोजन से गृध्र की मुक्ति की कथा)।

द्र. नैवेद्य, प्रसाद।

**महाभारत** वन ६५.६८ (नल से वियोग होने पर दमयन्ती द्वारा उच्छिष्ट आदि भक्षण न करने की शर्त पर चेदिराज के भवन में निवास का उल्लेख), १३६.१४ (कृत्या द्वारा कमण्डलु के हरण पर यवक्रीत मुनि के उच्छिष्ट होने और राक्षस द्वारा मारे जाने की कथा), २६०.१७ (दुर्वासा द्वारा महर्षि मुद्गल द्वारा प्रदत्त अन्न का भक्षण करके उच्छिष्ट अन्न को सारे अङ्गों में लपेट लेने का उल्लेख), भीष्म ४१.१०(उच्छिष्ट भोजन तामस पुरुष को प्रिय होने का उल्लेख), कर्ण ४१.१२ (शल्य द्वारा कर्ण को उच्छिष्ट भोजी काक द्वारा हंस से प्रतिस्पर्धा करने के आख्यान का वर्णन), शान्ति ११.७ (पक्षी रूप धारी इन्द्र द्वारा ऋषियों को उच्छिष्ट भोजन व विघस भोजन/यज्ञशेष में अन्तर समझाना), २२८.५९ (दैत्यों के आचार के वर्णन के अन्तर्गत दैत्यों द्वारा उच्छिष्ट करों से घृत का स्पर्श करने का उल्लेख), अनुशासन १०४.६७ (उच्छिष्ट होकर शयन करने अथवा शीर्ष का स्पर्श करने का निषेध), १०४.८२ (गृह से दूर उच्छिष्ट उत्सर्जन

आदि करने का निर्देश), मौसल ३.३२ (यादवों के परस्पर संहार के संदर्भ में यादव वीरों द्वारा सात्यकि पर उच्छिष्ट भाजनों द्वारा प्रहार का उल्लेख)।

टिप्पणी- भोजन करने के पश्चात् जो शेष रहता है,वह उच्छिष्ट है। सबसे निचले स्तर पर हम जो भोजन करते हैं, वह शरीर को पुष्ट करता है। शरीर को पुष्ट करने के पश्चात् बची शक्ति मन या मस्तिष्क को पुष्ट करती है। यदि भोजन को पचाने में अधिक शक्ति की आवश्यकता पड़े, जैसे अधिक मात्रा में भोजन करने पर, तो मस्तिष्क को मिलने वाली ऊर्जा जिसे उच्छिष्ट कह सकते हैं, नहीं मिल पाती जिससे नींद आ जाती है। ऐसी स्थिति विकास के प्रत्येक स्तर पर है। अत: साधना में यह आवश्यक है कि प्रत्येक स्तर पर उच्छिष्ट ऊर्जा प्राप्त हो। चाहें तो इस ऊर्जा को क्षुद्र आनन्द में व्यर्थ कर सकते हैं, अथवा इसे ऊर्ध्वमुखी बनाया जा सकता है।— फतहसिंह

उच्छिष्ट का शाब्दिक अर्थ त्यक्त होता है। पौराणिक साहित्य में उच्छिष्ट(उत्-शिष्ट) के दो रूप प्राप्त होते हैं-नैवेद्य उच्छिष्ट और सामान्य उच्छिष्ट। इसी प्रकार वैदिक साहित्य में भी उच्छिष्ट के मुख्य रूप से २ रूप प्राप्त होते हैं-हुतोच्छिष्ट और उच्छिष्ट। अथर्ववेद ११.९/११.७ सूक्त उच्छिष्ट देवता का है जिसके २७ मन्त्रों में उच्छिष्ट की महिमा का वर्णन किया गया है। पुराणों के उच्छिष्ट को समझने की कुंजी हमें अथर्ववेद के ११वें प्रवर्ग्य नामक काण्ड में उच्छिष्ट के पूर्व के सूक्तों, सूक्त ३/२ से प्राप्त होती है। इस सूक्त में ब्रह्मोदन/बार्हस्पत्य ओदन का भक्षण कैसे किया जाए, इसकी विधि का वर्णन है। इस वर्णन के अनुसार जिस ओदन (डॉ. फतहसिंह के अनुसार उदान प्राण का रूप) को साधक ने अपने तप आदि से पकाकर तैयार किया है, उसका भक्षण सूक्ष्म रूप में शरीर के सारे अंगों द्वारा करना होता है। लेकिन यह ओदन इतना शक्तिशाली है कि यदि सामान्य अंगों-आंख, नाक, कान, हस्त, पाद आदि से इसका भक्षण किया जाएगा तो यह अंग ही नष्ट हो जाएंगे। इस ओदन का भक्षण करने के लिए इन अंगों में से प्रत्येक में देवता-विशेष की प्रतिष्ठा करनी होती है- शीर्ष में बृहस्पति, चक्षुओं में सूर्य-चन्द्र, जिह्वा में अग्नि, दन्तों में ऋत्, उदर में सत्य, ऊरु में मैत्रावरुण, प्रपदों में सविता आदि-आदि। इन देवता विशेषों के विशिष्ट अंगों द्वारा ओदन का प्राशन किया जाता है। सूक्त के अनुसार जब तक ओदन और ओदन-भक्षक का स्वरूप अलग-अलग रहेगा, तब तक ओदन का भक्षण नहीं किया जा सकता। जब ओदन व ओदन-भक्षक, दोनों का स्वरूप एक जैसा हो जाएगा, तभी ओदन का भक्षण हो सकता है। अथर्ववेद के इस वर्णन में हमें उच्छिष्ट के दर्शन कहीं होते दिखाई नहीं पड़ते। यह तो सीधे देवताओं की आहुति का रूप प्रतीत होता है। ऐसी कल्पना की जा सकती है कि देवों के आह्वान की ऐसी सर्वोत्कृष्ट स्थिति सर्व काल में संभव नहीं है। शतपथ ब्राह्मण २.३.१.११ के अनुसार सायं-प्रात: अग्निहोत्र में आहुति के पश्चात् दिन व रात में ब्राह्मण जो भी भक्षण करता है, वह हुतोच्छिष्ट ही है। ऐसी संभावना है कि एक बार अंगों में देवों का आह्वान करने के पश्चात् उन अंगों में उन देवताओं की कोई छाया शेष रह जाती है। इस छाया को कोई साधक कितने काल तक सुरक्षित रख सकता है, यह साधक विशेष पर निर्भर करता है। वैदिक साहित्य में इस साधक को ब्राह्मण का नाम दिया गया है, ऐसा प्रतीत होता है। ऐसा अनुमान है कि जिस ऊर्जा को हुतोच्छिष्ट कहा जाता है, उसका ग्रहण इस छाया से ही होता होगा। शतपथ ब्राह्मण २.३.१.३९ व २.५.३.१६ के अनुसार ब्राह्मण ही अग्निहोत्र-उच्छिष्ट पाने का अधिकारी होता है। तैत्तिरीय ब्राह्मण १.८.६.२, बौधायन श्रौत सूत्र १७.३१,१७.३५, आपस्तम्ब श्रौत सूत्र १९.३.३ में ब्राह्मण को उच्छेष का पाता, रक्षा करने वाला कहा गया है। ब्राह्मण वह है जिसने अपने शरीर की कालिमा को मिटा दिया है। अत: वह देवताओं के आगमन के प्रभाव को अधिक समय तक सुरक्षित रख सकता है। यह घटना ऐसे ही है जैसे किसी पदार्थ विशेष को चुम्बकीय अथवा विद्युतीय आदि क्षेत्रों में रखने और फिर वहां से हटा लेने पर उसमें कुछ चुम्बकीय शक्ति शेष रह भी सकती है, नहीं भी। भौतिक विज्ञान की भाषा में इसे ध्रुवीकरण, पोलेराइजेशन कहते हैं। यह ध्रुवीकरण मुख्य ऊर्जा स्रोत का उच्छिष्ट मात्र ही है और यह उच्छिष्ट शक्ति को ही संग्रहीत करेगा। उच्छिष्ट शक्ति मुख्य शक्ति की अपेक्षा कुछ विलम्ब से गति करती है, यह इसकी मुख्य पहिचान है। गणित की भाषा में उच्छिष्ट की व्यंजना इस प्रकार की जा सकती है कि उच्छिष्ट एक जटिल संख्या x+iy है। इस व्यंजक में i जटिलता का परिचायक है। इस जटिल संख्या का x भाग जटिलता से मुक्त है, जबकि y जटिलता से युक्त है। y ही x+iy के उच्छिष्ट बनने का कारण हो सकता है। यदि उच्छिष्ट को सत्य भाग में रूपांतरित करना हो तो उसके लिए जटिलता को समाप्त करना होगा। भौतिक विज्ञान में किसी ठोस पदार्थ में इलेक्ट्रान आदि कणों के अस्तित्व की व्यंजना x+iy प्रकार से ही की जाती है। लेकिन जब इन कणों के प्रभाव क्षेत्र

(probability) की व्यंजना करनी होती है तो (x+iy). (x- iy) = $x^2$-$y^2$ द्वारा करते हैं जो जटिलता से मुक्त है। हुतोच्छिष्ट की व्याख्या इस प्रकार कर सकते हैं कि x+iy में x तथा y दो स्वतन्त्र चर संख्याएं हैं। लेकिन यदि y संख्या x पर निर्भर हो जाए, जहां x हुत है, तो x+iy को हुतोच्छिष्ट कहा जा सकता है।

भागवत पुराण आदि में विप्रों के उच्छिष्ट के ग्रहण की महिमा का वर्णन मिलता है। यह उच्छिष्ट की द्वितीय कोटि कही जा सकती है।

प्रश्न यह है कि ब्राह्मण आदि, जिन्होंने अपनी कालिमा समाप्त कर दी है, को भी हुतोच्छिष्ट ग्रहण करने की क्या आवश्यकता है? क्या देवों को जो हवि दी जाती है, वही उनके लिए भी पर्याप्त नहीं है? इसका उत्तर हम अथर्ववेद ११.९.१ (उच्छिष्ट सूक्त)में खोज सकते हैं जहां कहा गया है कि उच्छिष्ट में नाम और रूप छिपे हैं। नाम और रूप बाह्य जगत में चेतना के विस्तार से सम्बन्धित हैं। तैत्तिरीय संहिता ६.५.६.१, तैत्तिरीय ब्राह्मण १.१.९.१, गोपथ ब्राह्मण २.२.१५ आदि में पुत्रकामा अदिति द्वारा ब्रह्मोदन पकाने और उसके उच्छिष्ट भाग के स्वयं प्राशन करने से आदित्य पुत्रों को जन्म देने का वर्णन आता है। इन वर्णनों से प्रतीत होता है कि हुतोच्छिष्ट का प्राशन केवल अदिति की अवस्था को प्राप्त करके किया जा सकता है (समित्/समिधा भी अदिति का रूप हो सकता है जिस पर आज्य-उच्छेष का लेप करने का निर्देश है)। पुराणों में तो दिति/खंडित व्यक्तित्व को उच्छिष्ट से दूर रहने का निर्देश है। वैदिक साहित्य में जिसे देवमाता अदिति कहा गया है, याज्ञिक कर्मकाण्ड में वह यजमान-पत्नी, जो श्रद्धा का, इडा का रूप होती है, हो सकती है, ऐसा अनुमान है। केवल पुराणों में ही स्पष्ट रूप से उच्छिष्ट को पितरों से सम्बद्ध किया गया है जहां उच्छिष्ट सन्निधि में पितरों के भक्षण के लिए पिण्ड रखने का विधान है। बौधायन श्रौत सूत्र २०.२१ में पितरों द्वारा भक्षण करने पर पिण्डों के उच्छिष्ट होने का उल्लेख है।

उच्छिष्ट की आवश्यकता तथा उपयोग के संदर्भ में ही, ऋग्वेद १.२८.९ की सार्वत्रिक ऋचा की व्याख्या ऐतरेय ब्राह्मण ७.१७ तथा शांखायन श्रौत सूत्र १५.२३ में उपलब्ध होती है। कर्मकाण्ड में ओदन तैयार करने के लिए पृथिवी पर चर्म बिछाकर उस पर उलूखल रखकर उसमें धान कूटते हैं। जो धान छिटककर चर्म पर गिर जाता है, उसे उच्छिष्ट कहते हैं और ऋग्वेद १.२८.९ की ऋचा इस उच्छिष्ट से ही सम्बन्धित है। इस उच्छिष्ट से पुनः सोम का सृजन करना होता है।

उच्छिष्ट के कई स्तर हैं, ऐसा प्रतीत होता है। एक ओर शुद्ध सोम है। आश्वलायन श्रौत सूत्र ४.६.३ के अनुसार सोम से उच्छिष्ट नहीं होता। दूसरी ओर असुरों का उच्छिष्ट है जिसके लिए वैदिक साहित्य में सार्वत्रिक रूप से कहा गया है कि अमित्र, शत्रु, क्रिमियां आदि इध्म की भांति इस प्रकार भस्म हों कि उनका उच्छेष भी न बचे (ऋग्वेद६.७५.१६, अथर्ववेद २.३१.३, ६.१२७.१, १०.१.१७, १०.१.३१, ११.९.१३, तैत्तिरीय ब्राह्मण २.४.१.२, ३.७.६.१७, ३.७.६.२३, तैत्तिरीय संहिता ४.६.४.४। पुराणों में जिस उच्छिष्ट के संस्पर्श आदि का निषेध है, वह यही उच्छिष्ट हो सकता है।

भागवत पुराण आदि में नाभाग द्वारा यज्ञ के उच्छेषण भाग को ग्रहण करने के प्रयत्न तथा रुद्र द्वारा उस पर अधिकार करने के आख्यान की पुष्टि तैत्तिरीय ब्राह्मण १.७.८.५ में राजसूय में अभिषेक के संदर्भ में रुद्र को उच्छेषणभागी कहने से होती है। आख्यान का निहितार्थ अन्वेषणीय है।

पुराणों और वैदिक साहित्य के वर्णनों से यह स्पष्ट होता है कि उच्छिष्ट केवल भक्षण से ही संबंधित नहीं है, अपितु जो भी स्थिति दिव्य चेतना को ग्रहण करने में असमर्थ है, वह उच्छिष्ट स्थिति कहलाती है। उच्छिष्ट अन्न हो सकता है, वस्त्र हो सकता है, वाक् हो सकती है (ताण्ड्य ब्राह्मण १०.५.१०, ऐतरेय ब्राह्मण ५.३, जैमिनीय ब्राह्मण ३.५७, तैत्तिरीय ब्राह्मण २.२.६.४ आदि)।

महाभारत में यवक्रीत के कमण्डलु के नष्ट होने पर उच्छिष्ट होने की कथा के संदर्भ में, कमण्डलु उच्छिष्टता के अपनयन के लिए शुद्ध आपः प्रदान करने का प्रतीक है। तैत्तिरीय आरण्यक १०.२३.१ में भी आपः द्वारा उच्छिष्ट आदि के अपनयन का उल्लेख है। यह उल्लेख माध्याह्निक संध्या में जल पान के संदर्भ में है। कथा का विशिष्ट निहितार्थ अन्वेषणीय है।

वैदिक साहित्य में शिष्ट, अतिशिष्ट, संशिष्ट, परिशिष्ट आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। विशेष रूप से परिशिष्ट शब्द का प्रयोग ब्राह्मण ग्रन्थों में प्रचुरता से हुआ है। पात्र में परिशिष्ट द्रव्य आहुति देने योग्य होता है, लेकिन उच्छिष्ट द्रव्य की पुनः आहुति नहीं दी जा सकती। तैत्तिरीय संहिता ७.३.२०.१ में

शिष्ट, अतिशिष्ट, संशिष्ट,परिशिष्ट आदि के लिए स्वाहा कहा गया है।

**उज्जयिनी** **भागवत** ११.२३.६ (अवन्तिका निवासी कृपण किन्तु तितिक्षु ब्राह्मण का वृत्तान्त), **स्कन्द** ३.३.५.१२ (उज्जयिनी के राजा चन्द्रसेन द्वारा प्राप्त चिन्तामणि के अन्य राजाओं द्वारा हरण की चेष्टा का वृत्तान्त), ५.१.१++ (स्कन्द पुराण का अवन्तिका खण्ड), ५.१.२६.३३ (उज्जयिनी के अन्तर्गत पंचेशानी आदि तीर्थों की यात्रा का वर्णन, उज्जयिनी व अवन्तिका देवियों के दर्शन के महत्व का कथन), ५.१.३६.१ (विभिन्न कल्पों में उज्जयिनी के ७ नाम व उनके हेतुओं का कथन), ५.१.४३.५३ (उज्जयिनी नाम हेतु कथन: शिव द्वारा त्रिपुर असुर पर उज्जिति प्राप्ति), ५.१.४३.५७ (गिरा प्राप्ति हेतु उज्जयिनी में निवास का निर्देश), ५.२.१++ (अवन्ती/उज्जयिनी के अन्तर्गत ८४ लिङ्गों का माहात्म्य), **कथासरित्** २.३.३१ (उज्जयिनी के राजा चण्डमहासेन का वृत्तान्त: देवी से खड्ग प्राप्ति, अंगारकासुर का वध, अंगारवती से विवाह, स्व-पुत्री वासवदत्ता को संगीत की शिक्षा देने हेतु वत्सराज उदयन की नियुक्ति, वासवदत्ता व उदयन का विवाह आदि), ३.१.९७ (उज्जयिनी के राजा पुण्यसेन द्वारा छल से शत्रु पर विजय पाने का दृष्टान्त), ५.१.८५ (उज्जयिनी के राजपुरोहित शंकरस्वामी का शिव व माधव नामक धूर्त्तों द्वारा छले जाने का वृत्तान्त), ६.१.१३५ (उज्जयिनी के राजा विक्रम सिंह का युद्ध के अभाव में व्याकुल होना, आखेट कर्म के लिए प्रस्थान, दो ब्राह्मण कुमारों से वार्तालाप व ब्राह्मण कुमारों को प्रश्रय देने का वृत्तान्त), ६.४.७२ (उज्जयिनी के राजा विक्रमसेन की कन्या तेजस्वती के दैवयोग से सोमदत्त राजपुत्र से विवाह का वर्णन), ७.३.३ (उज्जयिनी के वणिक्-पुत्र निश्चयदत्त के अनुरागपरा विद्याधरी से विवाह, वानर रूप धारी सोमदत्त ब्राह्मण कुमार से भेंट आदि का वृत्तान्त), ८.६.४ (गुणशर्मा ब्राह्मण द्वारा उज्जयिनी के राजा महासेन की पांच बार प्राण रक्षा करने, रानी अशोकवती की गुणशर्मा में आसक्ति तथा गुणशर्मा के वध की चेष्टा का वृत्तान्त), ८.६.१५९ (उज्जयिनी निवासी गुणशर्मा ब्राह्मण का जीवन-वृत्त : आदित्यशर्मा पिता तथा सुलोचना यक्षिणी से जन्म होना, अग्निदत्त ब्राह्मण की कन्या से विवाह, राजा महासेन को पराजित करना), १०.२.४६ (कुमुदिका वेश्या द्वारा उज्जयिनी में कैद अपने प्रेमी श्रीधर ब्राह्मण-पुत्र को बन्धन-मुक्त कराने के उद्योग का वर्णन), १०.९.१५८ (उज्जयिनी में मूर्ख उपाध्याय द्वारा मूषकों के विनाश के लिए मार्जार के भ्रम में ब्रह्मचारी को पालने का दृष्टान्त), १२.२.२९ (वेताल द्वारा उज्जयिनी के राजा की कन्या शशांकवती के अयोध्या के राजकुमार मृगाङ्कदत्त की पत्नी बनने की भविष्यवाणी), १२.२.१६० (उज्जयिनी निवासी ब्राह्मण-कुमारी लावण्यमञ्जरी की ब्राह्मण कुमार कमलोदय में आसक्ति के कारण अगले जन्म में रूपवती वेश्या बनने का कथन), १२.१२.५ (उज्जयिनी में हरिस्वामी ब्राह्मण की कन्या सोमप्रभा द्वारा वीर, ज्ञानी अथवा विज्ञानी से विवाह की शर्त्त का वृत्तान्त), १२.१६.६ (उज्जयिनी के विभिन्न युगों में नामों का उल्लेख, राजा वीरदेव की पुत्री अनङ्गरति के चार विज्ञानियों से विवाह के प्रश्न का वृत्तान्त), १२.१८.३ (उज्जयिनी के राजा धर्मध्वज की इन्दुलेखा, तारावली व मृगाङ्कवती नामक तीन रानियों के सुकुमारत्व का वृत्तान्त), १२.२५.९ (उज्जयिनी में ब्राह्मणकुमार चन्द्रस्वामी द्वारा तपस्वी से विद्या सीखने में असफल होने का वृत्तान्त), १२.३५.१४ (उज्जयिनी नगरी में वेताल आदि द्वारा भी प्रवेश करने में असफलता का कथन), १२.३६.१ (अयोध्या के राजकुमार मृगाङ्कदत्त द्वारा उज्जयिनी के राजा कर्मसेन की पुत्री शशांकवती को प्राप्त करने का विस्तृत वृत्तान्त), १६.१.१३ (उज्जयिनी के राजकुमार अवन्तिवर्धन की पत्नी सुरतमंजरी के इत्यक द्वारा हरण आदि का वृत्तान्त), १६.१.६४ (गोपालक-अनुज पालक का उज्जयिनी में राज्य पर अभिषिक्त होना), १६.२.२५ (उज्जयिनी में जलांजलि दान उत्सव के कारण का वर्णन : राजा चण्डमहासेन द्वारा अङ्गारक राक्षस का वध व अङ्गारक द्वारा जलाञ्जलि

दान की मांग), १८.१.२७ (माल्यवान नामक शिवगण का उज्जयिनी के राजा महेन्द्रादित्य के पुत्र विक्रमादित्य के रूप में जन्म लेने का वृत्तान्त), १८.२.५ (उज्जयिनी नगरी में विक्रमादित्य द्वारा मणिभद्र यक्ष-पत्नी मदनमञ्जरी की कापालिक से रक्षा का वृत्तान्त), १८.२.३३ (उज्जयिनी नगरी के डाकिनेय कितव/जुआरी द्वारा श्मशान में महामांस विक्रय के द्वारा रूप और प्रभाव प्राप्त करने तथा कितवों व ब्रह्मराक्षसों से स्वयं की रक्षा करने का वृत्तान्त), १८.२.७२ (उज्जयिनी नगरी में ठिण्ठाकराल कितव/जुआरी द्वारा देवताओं से कितव में धन प्राप्त करने, महाकाल की उपासना से कलावती अप्सरा को प्राप्त करने तथा इन्द्र के शाप से कलावती की रक्षा करने का वृत्तान्त), १८.५.१६९ (उज्जयिनी के धूर्त्त मूलदेव द्वारा पाटलिपुत्र नगरी में ब्राह्मण कन्या से विवाह, पत्नी का परित्याग व पत्नी द्वारा पति की पुनः प्राप्ति का वृत्तान्त)

द्र.अवन्तिका, महाकाल

**महाभारत** वन ८८.२१ (सुराष्ट्र देश में उज्जयन्त शिखर के क्षिप्र सिद्धिकर होने का उल्लेख), ८८.२३ (सुराष्ट्र में गिरि पर तप्त अङ्ग होकर तप करने से नाक/स्वर्ग प्राप्ति का उल्लेख)।

**टिप्पणी-** स्कन्द पुराण के अवन्तिका खण्ड के आरम्भ में विष्णु की दक्षिण भुजा से निकले शोणित का रुद्र की वाम भुजा में स्थित कपाल में एकत्रित होने का वर्णन है जिसके अतिप्लावित होने से शिप्रा नदी का प्रादुर्भाव होता है। शिप्रा शब्द क्षिप्र का उत्तर रूप प्रतीत होता है। पुराण के माध्यम से यह स्पष्ट किया गया है कि क्षिप्र का क्या अर्थ है। जब चेतना या वाक् का विकास एक हाथ से दूसरे हाथ तक हों जाए तथा वह मस्तिष्क रूपी कपाल से भी जुडी हो तो यह क्षिप्र स्थिति है। शतपथ ब्राह्मण ४.६.८.१८ के अनुसार पुरोडाश की एकता की स्थिति (उदान प्राण अथवा मस्तिष्क की एकता) आदि प्राप्त होने पर क्षिप्र स्थिति प्राप्त होती है। शतपथ ब्राह्मण ११.२.७.२३ में अनुयाज के संदर्भ में अशनि/विद्युत को क्षिप्र कहा गया है। शतपथ ब्राह्मण ५.५.५.३ में वायु को क्षिप्र कहा गया है। प्रचलित आधुनिक विज्ञान में विद्युत की क्षिप्रता का उपयोग सर्वविदित है। प्रश्न यह है कि देह के स्तर पर, जहां चेतना का प्रवाह विद्युत की अपेक्षा बहुत मन्द गति से होता है, को क्षिप्र बनाने के लिए क्या किया जा सकता है? आधुनिक विज्ञान के अनुसार शरीर से मस्तिष्क तक चेतना का संचार आयनों के माध्यम से होता है जिनकी गति कुछ एक सेंटीमीटर या मीटर प्रति सेकिंड होती है। विद्युत की गति तीन लाख किलोमीटर प्रति सेकिंड होती है।

ब्राह्मण ग्रन्थों में उज्जिति शब्द का प्रयोग वाजपेय यज्ञ के संदर्भ में बहुलता से किया गया है। अतः यह विचारणीय है कि क्या पुराणों की उज्जयिनी का सम्बन्ध वाजपेय यज्ञ से है? उज्जयिनी के वर्णन में फलश्रुति के रूप में भी वाजपेय यज्ञ के फल के उल्लेख आते हैं। वाजपेय यज्ञ की विधि के अन्तर्गत सर्वप्रथम यजमान/इन्द्र तथा अन्य १६ जन अपने-अपने रथों में बैठकर एक निश्चित लक्ष्य की ओर, जिसे काष्ठा कहते हैं, आजि/दौड़ लगाते हैं। यजमान सर्वप्रथम लक्ष्य तक पंहुचता है और काष्ठा की परिक्रमा करके लौट आता है। इस बीच ब्रह्मा नामक ऋत्विज एक अक्ष के ऊपर स्थिर किए गए रथचक्र के ऊपर बैठकर उस चक्र का सर्पण करता है। साथ ही १७ दुन्दुभियों का वादन भी एक साथ किया जाता है। इसके पश्चात् यजमान यूप पर चढ़ता है। यह वर्णन संकेत करता है कि वाजपेय यज्ञ के माध्यम से काष्ठा रूपी समाधि की स्थिति में पंहुचकर समाधि से व्युत्थान का वर्णन किया गया है। डा. फतहसिंह के अनुसार वाज शब्द की निरुक्ति वा-अज है, अर्थात् ऐसा बल जो विकल्प से अज है। यह वाज समाधि अवस्था में प्राप्त होता है तथा समाधि से व्युत्थान पर नष्ट हो सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि व्युत्थान की स्थिति में इस वाज की रक्षा के लिए क्या उपाय किए जा सकते हैं। स्कन्द पुराण के अवन्तिका खण्ड को तीन भागों में विभाजित किया गया है। पहले भाग में शिप्रा आदि का, दूसरे भाग में ८४ लिङ्गों के माहात्म्य का तथा तीसरे भाग में नर्मदा माहात्म्य का वर्णन है। ऐसा कहा जा सकता है कि ८४ लिङ्गों के माहात्म्य वाला भाग काष्ठा से, अज स्थिति से सम्बन्ध रखता है तथा नर्मदा माहात्म्य वाला तीसरा भाग समाधि से व्युत्थान पर प्राप्त आनन्द की स्थिति से सम्बन्ध रखता है (नर्मदा-नर्म या आनन्द को देने वाली)।

स्कन्द पुराण में गिरा प्राप्ति हेतु उज्जयिनी में वास के उल्लेख के संदर्भ में गीता १०.२५ में एकाक्षर (ओंकार?) को गिरा की सर्वोच्च स्थिति कहा गया है। तैत्तिरीय ब्राह्मण १.३.२.५ में वाक् को वाज का प्रसव (उत्पत्तिहेतु) कहा गया

है। तैत्तिरीय ब्राह्मण १.३.२.७ में वाजपेय के यजन से सब वाकों के अवरुद्ध हो जाने का कथन है। जैमिनीय ब्राह्मण १.३२९ में मन को बृहत् और वाक् को रथन्तर कहा गया है। शतपथ ब्राह्मण ४.६.७.५ के अनुसार वाक् से प्रज्ञा की प्राप्ति हो सकती है, मन से नहीं। मन और वाक् की आजि/दौड में मन जीतता है। रथन्तर वाक् के बृहत् मन के समान बनने के लिए इसका क्षिप्र होना आवश्यक है। जैमिनीय ब्राह्मण २.१९५ में मन को बृहत्, प्रजापति, स्तोत्रों में १७वां कहा गया है। जैमिनीय ब्राह्मण १.३४३ में बृहद् और रथन्तर को इन्द्र के देवरथ के दो हरि/अश्व कहा गया है जिनके द्वारा आजि की उज्जिति की जाती है। बृहदारण्यक उपनिषद १.५.१५ में संवत्सर प्रजापति को १६ कलाओं वाला कहा गया है जिनमें १५ कलाएं (१५वीं कला?) तो उसका वित्त हैं जबकि १६ वीं कला आत्मा है। यह १६ वीं कला वित्त द्वारा ही पूरित और क्षयित होती है। आत्मा नभ्य है जबकि वित्त परिधि है। तैत्तिरीय संहिता १.७.११.१ में अग्नि द्वारा एक अक्षर के द्वारा वाक् की उज्जिति, अश्विनौ द्वारा दूसरे अक्षर से प्राणापानौ की उज्जितियों आदि का वर्णन है। यह क्रम प्रजापति द्वारा १७ वें अक्षर से १७वें स्तोम की जय पर जाकर समाप्त होता है। अत: यह जानना महत्वपूर्ण है कि एकाक्षरा वाक् से १७वें अक्षर वाले मन या प्रजापति तक पंहुचने के लिए क्या उपाय अपेक्षित हैं। उज्जयिनी में गिरा प्रप्ति के संदर्भ में कथासरिसागर में राजा चन्द्रमहासेन द्वारा स्वकन्या वासवदत्ता को संगीत की शिक्षा देने के प्रबन्ध का वर्णन भी विचारणीय है।

स्कन्द पुराण में त्रिपुर नामक असुर पर उज्जिति से उज्जयिनी नाम होने के संदर्भ में तीन पुर, जिन पर विजय प्राप्त करनी है, पृथिवी, अन्तरिक्ष व द्युलोक कहे जाते हैं जो आयसी, रजतमय व स्वर्णिम हैं। लेकिन ऐसा प्रतीत होता कि ब्राह्मण ग्रन्थों में जहां-जहां भी उज्जिति का उल्लेख है, उसकी व्याख्या समाधि से आरोहण पूर्व की अवस्था (पृथिवी), समाधि अवस्था (अन्तरिक्ष)व समाधि से अवरोहण अथवा व्युत्थान की अवस्था (द्युलोक) के रूप में की जानी चाहिए। यह जानना महत्वपूर्ण है कि वाजपेय यज्ञ में तीन लोकों की उज्जिति का निरूपण किस प्रकार किया गया है। शतपथ ब्राह्मण ५.१.५.१ में आजि धावन से पृथिवी लोक, ब्रह्मा द्वारा रथ चक्र पर साम गान से अन्तरिक्ष लोक व यजमान द्वारा यूप पर आरोहण से देवलोक की उज्जिति का उल्लेख है।

कथा सरित्सागगर में ठिण्ठाकराल नामक कितव द्वारा देवताओं से कितव में धन आदि प्राप्त करने के वर्णन के संदर्भ में महाकाल की कृपा के पश्चात् कलावती अप्सरा की प्राप्ति का उल्लेख है। यह इंगित करता है कि महाकाल की कृपा से पूर्व की स्थितियां सूर्य की कलाएं तथा कृपा के पश्चात् की कलाएं चन्द्रमा की कलाएं हो सकती हैं। इसके अतिरिक्त, बहुत सी कथाओं में उज्जयिनी के राजा के रूप में चन्द्रसेन/चन्द्रश्येन का उल्लेख आता है। अत: यह संभव है कि यह सारी कथाएं चन्द्रमा की कलाओं से सम्बन्धित हों। उज्जयिनी के राजा इन्द्रद्युम्न द्वारा पुरुषोत्तम क्षेत्र की यात्रा के वर्णन से यह प्रतीत होता है कि उज्जयिनी में संवत्सर के १३ वें पुरुषोत्तम मास की उपलब्धि नहीं की जा सकती, अपितु उस उपलब्धि के लिए भूमिका तैयार की जा सकती है।

**उज्जानक** **ब्रह्म** १.५.६१ (उत्तंक-कुवलाश्व-धुन्धु प्रसंग में समुद्र का नाम उद्दालक), **विष्णुधर्मोत्तर** १.१६ (बालुका पूर्ण उज्जानक समुद्र में धुन्धु राक्षस का वास, कुवलाश्व द्वारा धुन्धु का वध)।

**उज्जीविक** **विष्णुधर्मोत्तर** ३.१८.१ (२० मध्यम ग्रामिकों में से एक)।

**उज्ज्वल** **पद्म** २.८५.३२ (कुञ्जल शुक-पुत्र, पिता से दृष्ट आश्चर्य के रूप में दिव्या देवी के पतियों के मरण का कथन; कुञ्जल द्वारा रहस्योद्घाटन), **कथासरित्** ८.२.३५० (उज्ज्वला : हा हा गन्धर्व-कन्या, महल्लिका-सखी, सूर्यप्रभ द्वारा वरण)।

द्र. समुज्ज्वल।

**उटज** **स्कन्द** ४.२.६५.८६ (उटजेश्वर लिङ्ग का संक्षिप्त माहात्म्य : निर्भयता प्राप्ति)

**उड्डीवी** **कथासरित्** १०.६.८ (काकराज मेघवर्ण का एक मन्त्री, उलूक द्वारा आक्रमण पर राजा से स्व प्रतिक्रिया व्यक्त करना)।

**उड्डीशडामर** **गर्ग** ७.१५.३ (उड्डीशडामर देश के राजा बृहद्बाहु पर प्रद्युम्न की दिग्विजय।

**उतथ्य** **गर्ग** ५.१२.२ (उतथ्य मुनि द्वारा अपने पांच पुत्रों को चाणूर, मुष्टिक आदि पांच मल्ल बनने का शाप देने

का वृत्तान्त), **देवीभाग.** ३.१०.१ (देवदत्त द्विज द्वारा पुत्रेष्टि से उतथ्य नामक मूर्ख पुत्र प्राप्त करने, उतथ्य द्वारा सत्यव्रत नाम प्राप्ति, सत्यव्रत द्वारा शरविद्ध कोल/शूकर को देखकर ऐ बीज उच्चारण तथा सत्यव्रत के विद्वान बनने का वृत्तान्त), **ब्रह्मवैवर्त्त** १.१०.२ (अङ्गिरा के तीन पुत्रों में से एक, बृहस्पति व शम्बर-भ्राता), **ब्रह्माण्ड** १.२.३२.९९ (तप से ऋषिता प्राप्त करने वाले ऋषियों में से एक), २.३.७३.९० (१५ वें त्रेतायुग में मान्धाता नामक अवतार के पुरोहित), ३.४.१.५९ (मरीचिगर्भ देवगण में से एक), **भविष्य** ४.९३.३० (उतथ्य का अङ्गिरा से श्रेष्ठता विषयक विवाद : उतथ्य के बुलाने पर सूर्य का न आना, अङ्गिरा के कहने पर सूर्य का आना आदि), **भागवत** ४.१.३५ (अङ्गिरा-पुत्र, बृहस्पति भ्राता, स्वारोचिष मन्वन्तर में ख्याति का उल्लेख), **मत्स्य** ४७.२४३ (१५ वें त्रेतायुग में उतथ्य/उत्तङ्क द्वारा पुरोहित पद को सुशोभित करने का उल्लेख), १४५.९२ (उतथ्य द्वारा तप से ऋषिता प्राप्ति का उल्लेख), **वायु** ५९.९० (ज्ञान से ऋषिता प्राप्त करने वाले ऋषियों में से एक), ५९.१०१ (३३ मन्त्रकर्त्ता अङ्गिरसों में से एक), ६५.१०० (अङ्गिरा व सुरूपा के पुत्रों में से एक), **विष्णु** ४.१९.१६ (उतथ्य-पत्नी ममता के गर्भ में बृहस्पति द्वारा वीर्य स्थापन, गर्भ में स्थित दीर्घतमा द्वारा बृहस्पति के गर्भ पर पाद प्रहार की कथा), **शिव** ३.५.१९ (१७ वें द्वापर में गुहावासी अवतार के पुत्र), ५.२५.२३ (उतथ्य नामक तारे का उल्लेख), ७.२.९.१६ (शिव के योगाचार्य शिष्यों में से एक), **लक्ष्मी नारायण** १.४४५.४९ (बृहस्पति द्वारा उतथ्य-भार्या का हरण करने के कारणस्वरूप चन्द्रमा द्वारा बृहस्पति-भार्या तारा का हरण), २.३१.७८ (बृहस्पति द्वारा उतथ्य-पत्नी ममता में स्व गर्भ स्थापित करने की कथा)।

द्र. उशिज

**महाभारत** आदि ६६.५ (अङ्गिरा-पुत्र, बृहस्पति व संवर्त-भ्राता), शान्ति ९०.१ व ९१.१ (उतथ्य द्वारा मान्धाता को राजा के कर्तव्य/धर्म तथा पाप नाश के विषय में उपदेश का वर्णन), अनुशासन १५४.१२ (उतथ्य द्वारा सोम-कन्या भद्रा से विवाह, वरुण द्वारा भद्रा का अपहरण, उतथ्य द्वारा सम्पूर्ण जल के पान पर वरुण द्वारा भद्रा को मुक्त करने का वृत्तान्त)।

**टिप्पणी-** वैदिक साहित्य में उतथ्य शब्द उचथ्य के रूप में प्रकट हुआ है। ऋग्वेद ९.५० से ९.५२ तक के सूक्तों के ऋषि उचथ्य आंगिरस हैं। इसके अतिरिक्त बृहस्पति द्वारा उतथ्य-पत्नी ममता में गर्भ स्थापित करने की विष्णु पुराण की कथा का संक्षिप्त रूपान्तर बृहद् देवता ४.११ में भी उपलब्ध है जहां उतथ्य के बदले उचथ्य शब्द का उल्लेख है। ऋग्वेद १.११०.१ आदि ऋचाओं में उचथ शब्द आया है जिसका अर्थ सायण भाष्य में स्तुति, स्तोत्र आदि किया गया है। तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.७.११.२ में इसी ऋचा के संदर्भ में उचथ शब्द की निरुक्ति उच-समवाये/सम्बन्धे धातु के आधार पर की गई है। इसका तात्पर्य है कि व्यक्तित्व के उच्चतर व निम्नतर कोशों में सम्बन्ध स्थापित करना है। आप्टे के संस्कृत कोश में उचथ शब्द की व्याख्या उच्यते अनेन, अर्थात् इसके द्वारा उच्चारण किया जाता है, इस आधार पर की गई है। उचथ जीवात्मा की सबसे ऊंची अभिव्यक्ति है। दूसरी ओर उचथ्य को इस प्रकार समझ सकते हैं कि यह जीवात्मा की वह अभिव्यक्ति है जिसे उचथ बनाया जा सकता है, जो उचथ बनने योग्य है। अव्यक्त को अभिव्यक्त करना है और यह कार्य उचथ्य ऋषि के माध्यम से होना है। देवी भागवत पुराण के अनुसार पुत्रेष्टि यज्ञ में रथन्तर साम में श्वास-प्रश्वास चलने से मूर्ख उतथ्य का जन्म होता है जो वेद वाणी का उच्चारण नहीं कर सकता। रथन्तर प्रक्रिया समाधि-पूर्व की अवस्था का प्रतीक है। यदि समाधि में स्थित होने की प्रक्रिया पूरी नहीं की गई तो वेद वाणी की निचले स्तरों पर अभिव्यक्ति नहीं हो पाएगी, पुराणों की भाषा में उतथ्य मूर्ख ही रह जाएगा। इसी कथा के अन्तर्गत निषाद के बाण से विद्ध कोल/शूकर को देखकर उतथ्य के मुख से ऐं बीज उच्चारण तथा निषाद द्वारा कोल का अता-पता पूछने पर इस श्लोक का उच्चारण कि जो देखती है वह कह नहीं सकती, जो कहती है वह देख नहीं सकती, के संदर्भ में ऐं बीज वैखरी वाणी का प्रतीक हो सकता है। इससे आगे ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे मन्त्र में आगे के अक्षर मध्यमा, पश्यन्ती व परा वाक् के प्रतीक हो सकते हैं। जिस श्लोक का उच्चारण उतथ्य ने किया है, उसका भी द्वैध अर्थ किया जा

सकता है। एक अर्थ में चक्षु व जिह्वा तथा दूसरे अर्थ में वैखरी वाक् व पश्यन्ती वाक् आदि किया जा सकता है (ऋग्वेद ९.५०.२ के उचथ्य ऋषि के सूक्त में तीन यज्ञीय वाकों का उल्लेख आया है)।

पुराणों व महाभारत में उतथ्य ऋषि के मान्धाता राजा का पुरोहित होने के सार्वत्रिक उल्लेख के संदर्भ में यह प्रतीत होता है कि उचथ्य की साधना की स्थिति का उपयोग मान्धाता बन कर ही किया जा सकता है। मान्धाता की एक निरुक्ति इस प्रकार कर सकते हैं कि जो मान को, मन के बृहद् रूप को धारण करता हो, वह मान्धाता है। मान्धाता का राज्य जहां से सूर्य उदित होता है तथा जहां तक अस्त होता है, वहां तक है। यह सूर्य के उदित होने का कथन चेतना के उदय व अस्त होने से सम्बन्धित है। यह समाधि से व्युत्थान के पश्चात् मन के बृहद् रूप की, मान की स्थिति है।

भविष्य पुराण में उतथ्य व अंगिरा में श्रेष्ठता विषयक विवाद होने, दोनों के ब्रह्मा के पास जाने, उतथ्य द्वारा सूर्य का आह्वान करने पर भी सूर्य के न आने आदि तथ्यों के संदर्भ में ब्रह्मा वह जीवात्मा है जो सृष्टि करने, नवनिर्माण करने में समर्थ है। उस ब्रह्मा को सूर्य रूपी ब्राह्मी शक्ति की आवश्यकता है। उतथ्य उस ब्राह्मी शक्ति का निचले स्तरों पर अवतरण कराने में असमर्थ रहता है।

विष्णु पुराण में उतथ्य-पत्नी ममता के गर्भ से अन्धे दीर्घतमा की उत्पत्ति के संदर्भ में ऐसा कहा जा सकता है कि जब तक उतथ्य बृहस्पति रूपी बृहती बुद्धि का आदर नहीं करेगा, तब तक वह अन्धा पुत्र ही उत्पन्न कर सकता है।

— डॉ० फतहसिंह से वार्तालाप के आधार पर।

**उत्कच** **गर्ग** १.१४ (हिरण्याक्ष-पुत्र, लोमश शाप से शकटासुर बनना), ७.४२.१९ (पूर्व जन्म में परावसु गन्धर्व-पुत्र, अपान्तरतमा मुनि से कल्याण का उपाय पूछना), **ब्रह्माण्ड** २.३.७.१३८ (उत्कचा : खशा-पुत्री, औत्कचेय राक्षस गण-माता), **भागवत** ७.२.१८ (हिरण्याक्ष व रुषाभानु के ९ पुत्रों में से एक), **वायु** ४०.१७ (औत्कच राक्षसों का मर्यादा पर्वत पर वास), ६९.१७० (उत्कचा : खशा-पुत्री, उत्कचेय राक्षस गण की माता)।

**उत्कट** द्र. पुष्पोत्कटा

**उत्कल** **गर्ग** २.५.३० (हयग्रीव दैत्य-पुत्र, जाजलि ऋषि के शाप से बकासुर बनने का वृत्तान्त), **नारद** २.५२.८+ (उत्कल क्षेत्र माहात्म्य वर्णन : राजा इन्द्रद्युम्न द्वारा मोक्ष प्राप्ति का वृत्तान्त), **पद्म** १.८.१२३ (सुद्युम्न-पुत्र, उत्कला नगरी का राजा), **ब्रह्म** १.४०.४६+ (उत्कल/विरज क्षेत्र माहात्म्य : राजा इन्द्रद्युम्न की यात्रा का वृत्तान्त), **ब्रह्मवैवर्त्त** २.४९.६७+ (राजा उत्कल के जीवन-वृत्त का वर्णन : राजसूय यज्ञों के अनुष्ठान से उत्कल द्वारा सुयज्ञ नाम प्राप्ति, ब्राह्मण अतिथि के तिरस्कार पर शाप प्राप्ति, विभिन्न ऋषियों द्वारा अतिथि महत्व व कृतघ्नता दोष का निरूपण, सुतपा नामक अतिथि ब्राह्मण द्वारा नृप को राधा मन्त्र का दान), **ब्रह्माण्ड** १.२.१६.४२ (मध्यदेश के जनपदों में से एक), २.३.७.३५८ (उत्कल से लेकर कावेरी के पश्चिम तक वामन वन के स्थान का उल्लेख), **भागवत** ४.१०.२ (ध्रुव व इला-पुत्र), ४.१३.६ (ध्रुव-पुत्र उत्कल की चरित्र महिमा का कथन), ५.१५.१५ (उत्कला : सम्राट-पत्नी, मरीचि-माता, गय वंश), ६.१०.२० (वृत्रासुर-सेनानी, इन्द्र की सेना से युद्ध), ८.१०.३३ (बलि-सेनानी,मातृकाओं से युद्ध), ९.१.४१ (सुद्युम्न के तीन पुत्रों में से एक, गय-भ्राता), **मत्स्य** १२.१७ (वही), १४५.१०३ (मन्त्रकर्त्ता ३३ अङ्गिरस ऋषियों में से एक), **वायु** ६९.२४० (उत्कला नगरी से पञ्चम वेदी तक वामन वन के विस्तार का उल्लेख), **स्कन्द** २.२.६+ (उत्कल क्षेत्र माहात्म्य के अन्तर्गत इन्द्रद्युम्न के चरित्र का वर्णन), **लक्ष्मीनारायण** २.२३९.६० (उत्कलराज रोल की सोमनाथ यात्रा)

**टिप्पणी-** यज्ञ कर्म में भूमि की दो सीमाएं निर्धारित कर दी जाती हैं। इनमें से अन्तर्वेदी नामक अन्तः सीमा में यज्ञ के अधिकांश कृत्यों का सम्पादन किया जाता है, जबकि बहिर्वेदी नामक बाह्य सीमा में यज्ञ के कुछ एक कृत्य ही सम्पन्न होते हैं। बहिर्वेदी में उत्तर दिशा में भूमि में एक गर्त्त/गड्ढा बनाया जाता है जिसमें यज्ञ की अनुपयोगी वस्तुओं जैसे अन्तर्वेदी से एकत्रित धूल, सोमलता से सोम निचोडने के पश्चात् सोमलता का अवशिष्ट अंश आदि फेंक दिए जाते हैं। इस गर्त्त का नाम उत्कर है। पुराणों का उत्कल शब्द इसी उत्कर का प्रतीक है।

यज्ञ कर्म में इस बात का ध्यान रखा जाता है कि यज्ञ की किसी भी वस्तु पर असुर अपना आधिपत्य स्थापित न कर सकें। उत्कर में फेंकी गई वस्तुओं को भी असुरों के आक्रमण से सुरक्षित रखना है। यह किस प्रकार किया जा सकता है, इसका उत्तर हमें ब्राह्मण ग्रन्थों और पुराणों से प्राप्त होता है। काठक संहिता ३१.१२ और मैत्रायणी संहिता ४.१.१३ आदि में उत्कर को सर्पों के निवास हेतु वल्मीक कहा गया है। वल्मीक अर्थात् वर्म, कवच, जिसको धारण करने पर शत्रु के आक्रमण से बचा जा सकता है। गोपथ ब्राह्मण १.३.१० तथा काठक संहिता ३१.१२ आदि के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि हमारी चेतना का जो भाग त्वरित गति से युक्त है, जिसे अग्नि कहा गया है, उससे यज्ञ कर्म का सम्पादन तो अन्तर्वेदी में किया जाता है, जबकि चेतना का वह भाग जिसकी गति मंद है और जिसे सर्प/सर्पण करने वाली ऊर्जा कहा जाता है, उसका विकास उत्कर के माध्यम से किया जाता है। हमारी पांच ज्ञानेन्द्रियों तथा पांच कर्मन्द्रियों पर भी सामान्य रूप से यही सर्प गति वाली चेतना विद्यमान रहती है और यदि इस सर्पणशील चेतना को अन्तर्मुखी विकास की ओर लगाना है तो इन्द्रियों के माध्यम से इसके क्षय को रोकना होगा। क्षय को रोकने के उपाय का नाम ही इसे उत्कर रूपी वर्म या कवच प्रदान करना है। शतपथ ब्राह्मण ८.७.२.१६ का कथन है कि उत्कर अतिरिक्त की प्रतिष्ठा है, अर्थात् जिस ऊर्जा को दैनिक जीवन में क्षय से बचा लिया गया हो, उसकी प्रतिष्ठा उत्कर कर सकता है। सरल भाषा में उत् करोति इति उत्कर, अर्थात् जो ऊर्जा को ऊर्ध्वमुखी गति प्रदान करे, वह उत्कर है। ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में सुतपा नामक अतिथि द्वारा राजा उत्कल को राधा कवच प्रदान किया जाता है। पौराणिक रूप में कवच का प्रकार तुलसीदास के शब्दों में यह है कि इन्द्रिय द्वार झरोखा नाना। तहँ तहँ सुर बैठे करि थाना।। (रामचरितमानस उत्तरकाण्ड ११७.११)। अर्थात् सभी इन्द्रियां देवताओं का निवास स्थान बन जाएं तो फिर असुरों का आक्रमण असंभव है। राजा उत्कल/उत्कर को ध्रुव-पुत्र कहने से तात्पर्य भी साधना में ध्रुव या अचल स्थिति प्राप्त करके ऊर्जा के संरक्षण से हो सकता है।

प्रश्न यह है कि यदि अन्तर्वेदी में साधना करने से फल की प्राप्ति हो सकती है तो उत्कर की साधना क्यों की जाए? षड्विंश ब्राह्मण १.१.४ का कथन है कि अन्तर्वेदी में अग्नि की साधना से ब्रह्म तक पंहुचा जा सकता है, जबकि आदित्य सुब्रह्म की स्थिति है। इस सुब्रह्म तक पंहुचने के लिए उत्कर को माध्यम बनाना पड़ता है। उत्कर ब्रह्म और सुब्रह्म के बीच संधि स्थान है। ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में राजा उत्कल के समक्ष सुतपा ऋषि के प्रकट होने से तात्पर्य भी उसके समक्ष सूर्य/आदित्य के प्राकट्य से हो सकता है क्योंकि सूर्य ही शत्रुओं को ताप देने वाला है। स्कन्द पुराण में राजा इन्द्रद्युम्न द्वारा उत्कल क्षेत्र की यात्रा के संदर्भ में, राजा इन्द्रद्युम्न की यह विशेषता है कि वह ब्रह्मलोक तक आ-जा सकता है। इसका तात्पर्य यह है कि उज्जयिनी के राजा इन्द्रद्युम्न ने अन्तर्वेदी में यज्ञ द्वारा ब्रह्म प्राप्ति की साधना पूरी कर ली है। अब उसे उत्कर/उत्कल के माध्यम से सुब्रह्म की प्राप्ति करनी है। तैत्तिरीय आरण्यक १.१२.३, षड्विंश ब्राह्मण १.१.७ आदि में वर्णन आता है कि यज्ञ में सोम का क्रय करते समय सुब्रह्मण्य नामक ऋत्विज उत्कर में बैठकर एक निगद का पाठ करता है 'सुब्रह्मण्यों सुब्रह्मण्यों सुब्रह्मण्यों। इन्द्रागच्छ हरिव आगच्छ मेधातिथेः मेष वृषणश्वस्य मेने। गौरावस्कन्दिन्नहल्यायै जार। कौशिक ब्राह्मण गौतमब्रुवाण।' पुराणों में गौतम-पत्नी अहल्या के साथ इन्द्र के समागम होने और अहल्या का शाप से शिला आदि बनने की कथा सर्वविदित है। लेकिन उपरोक्त निगद के सायण भाष्य के अनुसार गौतम ऋषि असुरों से स्वयं अपनी रक्षा करने में असमर्थ थे, अतः उन्होंने इन्द्र का आह्वान किया। इन्द्र गौतम का रूप धारण करके विचरने लगा। पुराणों में वैदिक संदर्भ भाग १ तथा ५ के अनुसार आत्मा का सर्वश्रेष्ठ ज्ञान रूप गौतम (गो- तम) कहलाता है। मनुष्य व्यक्तित्व के उच्च स्तरों पर अहल्या मित्र की शक्ति है तथा गौतम ऋषि उसकी रक्षा कर सकते हैं। लेकिन जब इस मित्र की शक्ति का अवतरण मनुष्य के उत्कर रूपी निचले व्यक्तित्व में कराना होता है तो केवल गौतम की ज्ञान रूपी ब्राह्मण शक्ति से काम नहीं चलेगा, वहां तो इन्द्र रूपी क्षत्रिय बल से काम लेना होगा। अतः यह कहा जा सकता है कि राजा इन्द्रद्युम्न के पुरोहित विद्यापति द्वारा उत्कल क्षेत्र में दुर्गम स्थान में स्थित नील माधव के दर्शन करना गौतम ऋषि के तुल्य है, जबकि राजा इन्द्रद्युम्न द्वारा उत्कल क्षेत्र की यात्रा करने पर वहां वासुदेव, बलराम, सुदर्शन चक्र व सुभद्रा की मूर्ति चतुष्टय की स्थापना सुब्रह्म की स्थापना करना है, मित्र की अहल्या शक्ति की निचले स्तरों पर प्रतिष्ठा करना है। यह महत्वपूर्ण है कि उत्कर में आरंभ में जो शक्ति सर्प रूप में विद्यमान थी, अब इन्द्रद्युम्न के उत्कल में वह शेष रूप बलराम के रूप में

प्रतिष्ठित हो गई है। सुभद्रा को देव-अरणी कहा गया है तथा सुदर्शन चक्र को तुरीय अवस्था कहा गया है।

भागवत पुराण ४.१३ में ध्रुव-पुत्र उत्कल द्वारा सम्पूर्ण लोकों को अपनी आत्मा में तथा आत्मा को सम्पूर्ण लोकों में स्थित देखने के संदर्भ में जैमिनीय ब्राह्मण २.७८ का यह कथन उपयोगी हो सकता है कि जो यह वेद्या आत्मा है, यही उत्कर है। इस आत्मा रूपी उत्कर में स्थित होकर सुब्रह्म की प्रतिष्ठा करनी है। यह विचारणीय है कि तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.४.१०.१ में जो उत्कूल-विकूल शब्द आया है तथा अथर्ववेद ५.१४.१३ में जो उदक के अनुकूल व प्रतिकूल होने का वर्णन आया है (उत्कूल-चेतना को ऊर्ध्वमुखी करना, विकूल-चेतना को अधोमुखी करना), उसमें उत्कर/उत्कल का सम्बन्ध केवल उत्कूल से ही है या उत्कूल-विकूल दोनों से है। ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में राजा उत्कल के समक्ष प्रकट सुतपा अतिथि को कश्यप कुल का कहा गया है और यही राधा कवच भी प्रदान करता है। डा. फतहसिंह के अनुसार कश्यप समाधि से व्युत्थान की स्थिति को इंगित करता है। अतः यह विकूल से सम्बन्धित होना चाहिए।

गर्ग संहिता में हयग्रीव असुर-पुत्र उत्कल के बकासुर (वाक् असुर) बनने की कथा की एक व्याख्या पुराणों में वैदिक संदर्भ भाग ४ में दी गई है। अन्य व्याख्या अपेक्षित है।

**उत्कुर** **वायु** ६७.६७ (हिरण्याक्ष के पांच पुत्रों में से एक)।

**उत्केश** **वामन** ५७.६४ (इन्द्र द्वारा स्कन्द को प्रदत्त गण का नाम)।

**उत्क्रमण** **लक्ष्मीनारायण** २.२५७.१ (देह के विभिन्न अङ्गों से आत्मा के विनिष्क्रमण पर विभिन्न लोकों में गमन का वर्णन)।

**उत्तङ्क** **देवीभाग** १.३.३१ (२१ वें द्वापर में व्यास), २.११.५२ (जनमेजय के सर्प सत्र में होता), **नारद** १.३७.२७ (गुलिक व्याध द्वारा उत्तङ्क ब्राह्मण की हत्या की चेष्टा पर उत्तंक द्वारा व्याध को उपदेश, व्याध को आत्मबोध प्राप्ति व उत्तङ्क की मुक्ति का वृत्तान्त), **ब्रह्माण्ड** २.३.६३.३४ (बालुका समुद्र में स्थित मधु राक्षस-पुत्र धुन्धु के वध हेतु उत्तंक ऋषि का राजा बृहदश्व से अनुरोध करना, बृहदश्व-पुत्र कुवलयाश्व द्वारा धुन्धु का वध), **वायु** ६८.३१/२.७.३१ (उत्तङ्क के अनुरोध पर कुवलाश्व द्वारा अरूरु-पुत्र धुन्धु के वध का उल्लेख), ८८.३३/२.२६.३३(उत्तंक के अनुरोध पर कुवलयाश्व द्वारा मनु?-पुत्र धुन्धु के वध का वर्णन), **वा.रामायण** ०.४ (उत्तङ्क से रामायण श्रवण से कलिक व्याध की मुक्ति का वर्णन), **विष्णु** ४.२.४० (उदक ऋषि के अनुरोध पर कुवलयाश्व द्वारा दुन्दु असुर के वध का उल्लेख), **विष्णु धर्मोत्तर** १.१६ (उत्तङ्क द्वारा तप से विष्णु से यथेच्छ जल प्राप्ति का वर प्राप्त करना, मधु व कैटभ-पुत्र धुन्धु के निग्रह का वृत्तान्त), **स्कन्द** ३.१.१६.१८+ (उदंक : कक्षीवान-गुरु उदंक द्वारा कक्षीवान को विवाह हेतु अगस्त्य तीर्थ में जाने का परामर्श आदि), ७.१.७७ (उत्तङ्केश्वर लिङ्ग का संक्षिप्त माहात्म्य: किल्बिषों से मुक्ति), ७.३.२.५५ (गौतम-शिष्य उत्तङ्क द्वारा मदयन्ती से प्राप्त कुण्डलों का तक्षक द्वारा हरण, तक्षक नाग से कुण्डलों की प्राप्ति के लिए उत्तङ्क द्वारा पाताल में विवर खोदना तथा उसके पश्चात् वसिष्ठ ऋषि की कामदुघा गौ के उस विवर में गिरने व सरस्वती आदि नदियों द्वारा उस विवर को पूरित करने का वृत्तान्त), **हरिवंश** १.११.२७ (उत्तङ्क द्वारा मधु असुर-पुत्र धुन्धु के वध हेतु राजा बृहदश्व से अनुरोध आदि), **लक्ष्मीनारायण** १.५५१.६४ (उत्तङ्क द्वारा मदयन्ती से कुण्डल प्राप्ति की कथा), ३.९४.६७ (धुन्धु असुर के वध हेतु उत्तङ्क द्वारा रजा बृहदश्व से अनुरोध), **कथासरित्** १२.७.३०५ (राजा भीमभट द्वारा उत्तङ्क के तिरस्कार पर उत्तङ्क द्वारा राजा को हाथी बनने का शाप, शाप मुक्ति के उपाय का कथन)।

**टिप्पणी**- उत्तङ्क-उत् + तङ्क। तकि धातु दुख उठाने के अर्थ में है। उत्-ऊपर। उत्तङ्क तप का प्रतीक है। ऐसे तपस्वी के मार्ग में विभिन्न बाधाएं अपना सिर उठाती हैं। भूख उनमें से एक है। इसी समय में उसकी सत्य की प्राप्ति-कुण्डलों का हरण तक्षक नाग कर लेता है। तपस्वी फिर श्वभ्र खोदने के रूप में तप आरंभ करता है। इन्द्र का वज्र संकल्प, अटूट संकल्प का प्रतीक है। अश्व के अपान में फूंक मारने का अर्थ है कि उसने कुम्भक प्राणायाम द्वारा प्राण और अपान को मिला दिया है। ऐसा करने से अश्व के रूप में एक अग्नि उत्पन्न होती है

जिसके धूम्र से नागलोक व्याकुल हो जाता है और उत्तङ्क को कुण्डलों की प्राप्ति हो जाती है। उत्तङ्क की तपस्या ऐसी है जिसमें उसने अपने आनन्द को भी भुला दिया है। अतः उत्तङ्क द्वारा खोदा गया श्वभ्र शुष्क है, आनन्द रहित है। वसिष्ठ की नन्दिनी गौ उसमें गिर पड़ती है। सरस्वती, रस वाली, इस श्वभ्र को जब रसमय बना देती है, जब परमानन्द रूपी रस प्राप्त होने लगता है तो नन्दिनी, आनन्द की वृत्ति का भी उद्धार हो जाता है। सौदास की पत्नी मदयन्ती शुद्ध अहंकार की आह्लादिनी शक्ति का प्रतीक हो सकता है।—फतहसिंह

पुराणों में उत्तङ्क के नामों में उदङ्क, उदक आदि पाठभेदों से यह स्पष्ट हो जाता है कि उत्तङ्क का सम्बन्ध उदक से है। अतः उत्तङ्क की टिप्पणी से पूर्व उदक शब्द की टिप्पणी पठनीय है। पुराणों में उत्तङ्क ऋषि से रामायण श्रवण से गुलिक/कलिक व्याध के कल्याण के संदर्भ में तैत्तिरीय संहिता ७.४.५.४, ७.५.४.२ तथा शतपथ ब्राह्मण १४.६.१०.२ में शुल्बायन के पुत्र उदङ्क का उल्लेख आता है जो सत्र के अर्धि को ३३ दिवसीय सत्र के अनुष्ठान का वर्णन करता है। ३३ दिवसीय सत्र द्वारा ३३ देवताओं की प्रतिष्ठा की जाती है (८ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य १ प्रजापति?)। इन ३३ दिवसों को आरंभ के १० दिन, बीच के १२ दिवसीय द्वादशाह तथा अन्त के १० दिनों में विभाजित किया गया है। यह विभाजन यज्ञ के तीन सवनों के तुल्य है। आरंभ के १६ दिवसों में से एक प्रायणीय अतिरात्र होता है और अन्त के १६ दिवसों में से एक उदयनीय अतिरात्र का दिन होता है। अन्त के १० दिनों में प्रजा का सृजन होता है। उपरोक्त वर्णन के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि यह साधना के एकान्तिक व सर्वाङ्गीण पक्ष का निरूपण है। एकान्तिक साधना के पक्ष में आत्मा के अनुदिश प्रगति करनी होती है और प्राण रूपी प्रजा का निग्रह करना होता है (तुलनीय : रामायण में दशरथ द्वारा शब्दवेधी बाण से सरयू से जल का आहरण कर रहे श्रवण कुमार का वध)। व्याध भी साधना के एकान्तिक पक्ष का प्रतीक है। आपस्तम्ब श्रौत सूत्र १६.१९.१० तथा शतपथ ब्राह्मण ७.२.४.७ में कृष्ट और अकृष्ट क्षेत्र में उदक सिंचन का वर्णन है। कृष्ट क्षेत्र प्राणों का और अकृष्ट क्षेत्र आत्मा का प्रतीक है। कृष्ट और अकृष्ट, दोनों प्रकार के क्षेत्रों का सिंचन होना आवश्यक है। ऐसा प्रतीत होता है कि पुराणों और महाभारत में उत्तङ्क द्वारा गौतम-पत्नी अहल्या हेतु मदयन्ती से कुण्डल प्राप्ति की कथा में अहल्या अकृष्ट क्षेत्र का प्रतीक है। उत्तङ्क द्वारा मदयन्ती से प्राप्त कुण्डलों की तक्षक नाग द्वारा हरण की कथा में तक्षक की प्रकृति को ऋग्वेद १.१११ सूक्त के आधार पर समझा जा सकता है। वैदिक साहित्य में तक्षण का मार्ग सर्वाङ्गीण साधना का मार्ग है जिसमें प्राणों के लिए स्तोम का, ओंकार की शक्ति का तक्षण किया जाता है (तैत्तिरीय ब्राह्मण २.४.७.४, जैमिनीय ब्राह्मण २.२७१)। अतः यह एकान्तिक साधना में बाधक है। मदयन्ती के कुण्डलों की प्राप्ति के रूप में उत्तङ्क ओंकार श्रवण की शक्ति का वहन कर रहा है जिसे उसे सीधे आत्मा रूपी अहल्या तक पंहुचाना है। सौदास-पत्नी मदयन्ती को प्रवर्ग्य कर्म में मदन्ती नामक पात्र के आधार पर समझा जा सकता है। इस मदन्ती नामक पात्र में तप्त जल भरा रहता है और प्रवर्ग्य नामक यज्ञ कर्म में उदक सम्बन्धी सारा कार्य मदन्ती से जल लेकर ही किया जाता है। ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार मदन्ती में जल के तप्त होने का कारण उसमें तेज की, तप की उपस्थिति है (तैत्तिरीय आरण्यक ५.४.१, मैत्रायणी संहिता ३.७.१०)। स्कन्द पुराण ७.१.३३४.४३ में तप्तोदक की उत्पत्ति शिव के तृतीय नेत्र की ज्वाला से कही गई है। इस प्रकार उदक की सार्थकता तभी है जब वह शब्द, स्पर्श, रूप, रस आदि में से शब्द को ग्रहण करने में सफल हो जाए।

उत्तङ्क द्वारा गौतम ऋषि की सेवा करने के पौराणिक उल्लेख के संदर्भ में ऋग्वेद १.१६१.८ तथा १.१६४.४० में गौ से शुद्ध उदक पीने और तृण भक्षण करने की प्रार्थना की गई है। अग्निहोत्र कर्म में यदि अग्निहोत्री गौ से दुग्ध प्राप्ति में बाधा आ रही हो तो उदक पात्र को गौ के ऊधस(स्तनों) और मुख से लगाने का निर्देश है (आश्वलायन श्रौत सूत्र ३.११.३, ऐतरेय ब्राह्मण ५.२७ व ७.३)।

पुराणों में उत्तङ्क द्वारा राजा कुवलयाश्व की सहायता से धुन्धु असुर के निग्रह के सार्वत्रिक उल्लेख के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि यह उत्तङ्क ऋषि की सर्वाङ्गीण साधना का, प्राणों के उत्थान का परिचायक है। शतपथ ब्राह्मण १४.६.१०.२ में उदङ्क शौल्बायन का कथन है कि प्राण ही ब्रह्म है। वैदिक साहित्य में गौ को एकान्तिक साधना तथा अश्व को सर्वाङ्गीण साधना से सम्बद्ध किया गया है। इसके अतिरिक्त पुराणों में उत्तङ्क ऋषि द्वारा मरुभूमि में उदक प्राप्ति हेतु तप और श्रीकृष्ण द्वारा यथेष्ट जल की प्राप्ति आदि वरदान देने की कथा को भी सर्वाङ्गीण साधना से सम्बद्ध किया जा सकता है।

**उत्तम गरुड** १.८७.९ (उत्तम मनु के पुत्रों के नाम;उत्तम मन्वन्तर के ५ देवगणों, इन्द्र व दानव आदि के नाम), **देवीभाग** १.३.३१ (२१ वें द्वापर में व्यास), ३.६.३६ (भारतवर्ष के जनपदों में से एक), ५.१७.२३ (उत्तानपाद-पुत्र व ध्रुव-अनुज उत्तम द्वारा स्वभार्या को वन में त्यागने का उल्लेख), ८.४.८ (प्रियव्रत व अपास्या के तीन पुत्रों में से एक), १०.८.१३ (प्रियव्रत-पुत्र उत्तम मनु द्वारा गङ्गा तट पर देवी आराधना से सुख प्राप्त करने का कथन), **पद्म** ६.२१६.७ (उत्तमा : देवदास-पत्नी, अङ्गद व वलया-माता), **ब्रह्म** १.२५.६० (उत्तमार्ण : विन्ध्य निवासियों के जनपदों में से एक), **ब्रह्माण्ड** १.२.१९.३६ (शाल्मलि द्वीप के सात पर्वतों में से एक), १.२.२४.६२ (सूर्य का वायु के उत्तम मार्ग का आश्रय लेकर अपने तेज से सारे जगत का तापन करने का कथन), १.२.३५.१२२ (२१ वें द्वापर में व्यास का नाम), १.२.३६.२५ (तृतीय उत्तम मन्वन्तर में देवों के पांच गणों में से प्रत्येक में देवता के नाम, इन्द्र, सप्तर्षियों व उत्तम मनु के पुत्रों के नामों का कथन), १.२.३७.१५ (उत्तम मनु का पृथिवी दोहन में वत्स बनना), २.३.४.२९ (उत्तम मन्वन्तर में सत्य देवगणों के सत्य नाम प्राप्ति के कारण का कथन : उत्तम मनु व सत्या-पुत्र आदि), ३.४.१.५९ (उत्तमक : १२ मरीचि नामक देवगण में से एक), **भागवत** ४.८.९ (उत्तानपाद व सुरुचि-पुत्र, ध्रुव-भ्राता, माता सुरुचि द्वारा ध्रुव को पिता की गोद से वंचित करने की कथा), ४.९.२३ (मृगया काल में उत्तम के नष्ट होने का पूर्व कथन), ४.९.४८ (तप के पश्चात् ध्रुव के गृह आगमन पर उत्तम द्वारा स्वागत का वर्णन), ४.१०.३ (मृगया काल में यक्ष द्वारा उत्तम का वध, ध्रुव द्वारा यक्षों से उत्तम के वध का प्रतीकार), ५.१.२८ (राजा प्रियव्रत के तीन मन्वन्तराधिपति पुत्रों में से एक), ८.१.२३ (तृतीय मनु), **मार्कण्डेय** ५७.५४/५४.५४ (उत्तमार्ण: विन्ध्य पृष्ठ के निवासियों के जनपदों में से एक), ६९+/६६+ (उत्तानपाद व सुरुचि-पुत्र, बहुला-पति, उत्तम द्वारा पत्नी का राज्य से निष्कासन व ब्राह्मण-पत्नी की बलाक राक्षस से रक्षा की कथा, स्व-पत्नी की रसातल में नागराज से पुनः प्राप्ति, नागराज-सुता के वचन से मन्वन्तराधिपति औत्तम पुत्र का जन्म होना, मन्वन्तर वर्णन), ७२.३७/६९.३७ (औत्तम मनु के नाम की निरुक्ति), ७३.१/७०.१ (औत्तम मन्वन्तर के ५ देवगणों, इन्द्र तथा मनु-पुत्रों के नाम), **वामन** ७२.४२ (उत्तम मन्वन्तर में सात मरुतों की उत्पत्ति की कथा), **वायु** ६३.१५/२.२.१५ (उत्तम मन्वन्तर में पृथिवी दोहन हेतु देवभुज द्वारा उत्तम मनु को वत्स बनाने का कथन), ६७.३६/२.६.३७ (उत्तम मन्वन्तर में तुषित देवों का उत्तम व सत्या-पुत्र बनने का कथन), **विष्णु** १.११.१+ (उत्तानपाद-पुत्रों उत्तम व ध्रुव का वृत्तान्त), ३.१.१३ (उत्तम मन्वन्तर के ५ देवगणों, इन्द्र, सप्तर्षियों तथा मनु-पुत्रों आदि के नामों का कथन), ३.१.२८ (चाक्षुष मन्वन्तर के सप्तर्षियों में से एक), **लक्ष्मीनारायण** ३.१५५.४८ (औत्तम मनु के जन्म का वृत्तान्त), ३.१८०.४८ (धनग्राम वासी उत्तम विप्र की हरि कृपा से जलोदर रोग से मुक्ति)।

द्र.: पुरुषोत्तम।

**महाभारत** द्रोण १०.४० (पाञ्चालों में उत्तम वीर, उतम कर्मा उत्तमौजा का उल्लेख)।

**टिप्पणी-** ऋग्वेद २.४१.५ में सदः (यज्ञ में बैठने का स्थान) के ध्रुव और उत्तम होने का एक साथ उल्लेख आता है। इसके अतिरिक्त शतपथ ब्राह्मण ४.२.३.३ में भी ध्रुव व उक्थ ग्रहों के संदर्भ में उत्तम का उल्लेख आता है। तैत्तिरीय संहिता ६.५.२.१ में यज्ञ में आयु को ध्रुव कहा गया है और आयु को ही प्राणों में उत्तम कहा गया है। पुराणों में उत्तानपाद-पुत्रों ध्रुव व उत्तम के रूप में साधना के दो पक्षों का उदय हुआ है-एक तो यम- नियम-तप आदि के द्वारा ध्रुव स्थिति प्राप्त करना तथा दूसरे यम-नियम आदि से रहित केवल आनन्द की स्थिति, उत्तम स्थिति। छान्दोग्योपनिषद ७.४.३ में वाक् और मन से ऊपर संकल्प और चित्त द्वारा ध्रुव स्थिति प्राप्त करने का कथन है। इससे ऊपर ध्यान, विज्ञान, बल, अन्न, आपः आदि आदि की स्थितियों का वर्णन है। ऐसा हो सकता है कि इन सबको उत्तम की श्रेणी में रखा गया हो। ऋग्वेद की कई

ऋचाओं (१.३१.७, ४.५४.२,९.५१.२) में अमृत उत्तम का उल्लेख आता है। शतपथ ब्राह्मण ८.७.४.१८ में अग्नि की सप्तम अमृत उत्तम चिति का उल्लेख आता है जो प्राण है। दूसरी ओर, पुराणों के वर्तमान संदर्भ का उत्तम मरणशील है, यक्षों से युद्ध में उसकी मृत्यु हो जाती है। जैसा कि अन्यत्र टिप्पणियों में कहा जा चुका है, यक्ष एकान्तिक साधना का तथा यश सार्वत्रिक साधना का प्रतीक हो सकता है। तैत्तिरीय ब्राह्मण २.६.१७.५ में होता द्वारा यश हेतु यक्षन् करने का उल्लेख आता है। उत्तम एकान्तिक साधना नहीं कर सकता। यदि इस मरणशील उत्तम को ऋग्वेद का अमृत उत्तम बनाना है तो ध्रुव साधना अनिवार्य है और पुराणों की कथा का उद्देश्य ऋग्वेद के इस कथन की व्याख्या ही हो सकता है। ऋग्वेद का जो अमृत उत्तम है, वह पुराणों का पुरुषोत्तम हो सकता है।

पुराणों में उत्तम के उत्तानपाद का पुत्र होने के संदर्भ में अथर्ववेद के बहुत से मन्त्रों (४.१६.६, ६.६३.३, ६.८४.४, ७.५५.७/७.५३.७, ११.१.४) में रोहण क्रिया द्वारा उत्तम नाक या ज्योति की प्रप्ति का उल्लेख आता है। उत्तानपाद शब्द भी रोहण/आरोहण प्रक्रिया का प्रतीक हो सकता है। देवीभागवत पुराण में उत्तम को प्रियव्रत का पुत्र भी कहा गया है। पुराणों में प्रियव्रत और उत्तानपाद परस्पर भ्राता हैं। सरस्वती रहस्योपनिषद के प्रसिद्ध सूत्र के अनुसार अस्ति, भाति व प्रिय तो अन्तर्जगत से सम्बन्ध रखते हैं और नाम व रूप बाह्य जगत से। इस प्रकार हो सकता है कि अस्ति, भाति व प्रिय का सम्बन्ध ध्रुव स्थिति की साधना से हो और नाम व रूप-साधना का उत्तम स्थिति से। ऋग्वेद व अथर्ववेद में कई स्थानों (ऋग्वेद १.१६३.७, अथर्ववेद ५.४.८) पर उत्तम शब्द के साथ रूप व नाम का उल्लेख आया है। शतपथ ब्राह्मण ८.७.४.७-९, ९.१.१.१, ९.१.२.३२, ९.२.१.१२,१०.२.१.८ में संस्कृत अग्नि में देवों द्वारा उत्तम रूप का आधान करने का कथन आता है।

उत्तम की माता सुरुचि के संदर्भ में ऋग्वेद ३.५.१० की ऋचा विचारणीय है जहां अग्नि के रोचनों में उत्तम बनने का उल्लेख है। ऋग्वेद ३.५६.८ में ३ उत्तम रोचनों का उल्लेख है।

वैदिक व पौराणिक साहित्य के अनुशीलन से ऐसा प्रतीत होता है कि ध्रुव आत्मा से संबंध रखता है और उत्तम परमात्मा से। बृहदारण्यक उपनिषद १.५.१४ में ध्रुव को आत्मा की १६ वीं कला कहा गया है जबकि अन्य १५ कलाएं आत्मा का वित्त हैं। गीता में क्षर व अक्षर से परे परमात्मा कहलाने वाले उत्तम पुरुष का उल्लेख है। शतपथ ब्राह्मण १०.२.१.११, १२.८.२.३५, १३.३.२.३, १३.३.१.४, १३.५.३.९ में उत्तम को सर्व स्थिति से सम्बद्ध किया गया है (डा. फतहसिंह के अनुसार वैदिक साहित्य में विश्व और सर्व दो युगल शब्द हैं। इनमें विश्व आन्तरिक साधना से और सर्व बाह्य साधना से सम्बन्ध रखता है)।

प्रथम दृष्टि में ऐसा प्रतीत होता है जैसे मार्कण्डेय पुराण में स्वभार्या का त्याग करने वाला राजा उत्तम उत्तानपाद-पुत्र उत्तम से भिन्न हो। लेकिन देवीभागवत पुराण का उल्लेख इसकी पुष्टि करता है कि दोनों उत्तम एक ही हैं। इसका निहितार्थ यह होगा कि मार्कण्डेय पुराण की उत्तम की कथा भी वैदिक साहित्य में उत्तम शब्द के उल्लेखों की व्याख्या के लिए ही होनी चाहिए। वैदिक साहित्य (अथर्ववेद १.९.३, शतपथ ब्राह्मण ५.१.५.२, ५.३.५.७, ९.३.४.१८, तैत्तिरीय ब्राह्मण १.७.७.४ व ताण्ड्य ब्राह्मण २.८.२) में ब्रह्म/ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्य/विशः द्वारा उत्तम को प्राप्त करने का उल्लेख आता है। यह तीन जब मिलते हैं, तभी उत्तम मनु का जन्म होता है। मार्कण्डेय पुराण की कथा में ब्राह्मण मनोमय कोश पर नियन्त्रण करके मन्त्र द्वारा अनिष्टों का निवारण कर लेता है, लेकिन (विज्ञानमय कोश के बल से सम्बन्धित?) बलाक राक्षस पर उसका नियन्त्रण नहीं है और बलाक राक्षस उसकी पत्नी का अपहरण कर लेता है जिसकी रक्षा बाद में उत्तम राजा करता है। उत्तम राजा की पत्नी बहुला के संदर्भ में छान्दोग्य उपनिषद ५.१५.१ में आत्मा को बहुल कहा गया है। बहुल का अर्थ है जो प्रजा व धन से बहुल हो। वैदिक साहित्य के अनुसार बहु स्थिति यज्ञ में विश्वेदेवों की स्थिति होती है, बहु देवों की, जिसमें सब देव ही देव हैं, सारी प्रजा देव बन गई है। शतपथ ब्राह्मण १३.३.२.३ में अजा, अवि आदि पशुओं को एकान्तिक साधना से और गव्य, अश्व्य पशुओं को सर्व से, बहु से, वैश्वदेव्य से सम्बद्ध किया गया है। इस कथा में नागराज कपोतक द्वारा बहुला के उपभोग का प्रयास करने के कथन के संदर्भ में, कपोत स्थिति देह में घर्म नामक ऊर्जा के उत्पन्न होने से बनती है। ऋग्वेद १.५०.१० (अथर्ववेद ७.५५.७/७.५३.७) की सार्वत्रिक ऋचा की व्याख्या के रूप में शतपथ ब्राह्मण १४.३.१.२८, जैमिनीय ब्राह्मण २.६८ आदि में कहा गया है कि सूर्य ही उत्तम ज्योति है। सूर्य स्वयं ही घर्म की सर्वोच्च स्थिति है। कपोतक नाग के संदर्भ में, शब्द के अन्त में क जोड देने पर वह शब्द निम्नतर स्थिति का प्रतीक

बन जाता है। फिर यह नाग भी है, अर्थात् यह ऊपर-नीचे सर्पण करता है। इस कारण से कपोतक नाग से बहुला की रक्षा करनी होती है। इस कथा में बहुला पत्नी में पति के प्रति प्रेम उत्पन्न करने के लिए मित्रविन्दा इष्टि कराने के संदर्भ से ऐसा प्रतीत होता है कि इससे पूर्व की कथा का अंश वरुण साधना से सम्बन्धित है और इसके पश्चात् का अंश मित्र से। ऋग्वेद १.२४.१५, १.२५.२१ आदि में वरुण से उत्तम, मध्यम व अधम पाश खोलने की प्रार्थना की गई है। वर्तमान कथा यह संकेत करती है कि इससे ऊपर मित्र की स्थिति है। मित्रविन्दा इष्टि के पश्चात् बहुला-सखी नन्दा के मूकत्व के निवारण के लिए सारस्वती इष्टि का उल्लेख आता है। वैदिक साहित्य (तैत्तिरीय ब्राह्मण १.३.५.५) में वाक् को उत्तमा कहा गया है। इसे यज्ञ की अन्तिम स्थिति कहा गया है।

ब्रह्माण्ड पुराण आदि में उत्तम मन्वन्तर में जिन देवों के नामों का उल्लेख आया है, वह संकेत करते हैं कि उत्तम बनने से पूर्व इन नामों/गुणों के लिए ध्रुव साधना करनी पड़ेगी। ऐसा लगता है कि ऋग्वेद की उत्तम शब्द से संबंधित ऋचाओं में भी यह नाम परिलक्षित होते हैं।

ऋग्वेद १.६३.१८ आदि में सोम से दिवः में उत्तम श्रवों को रखने की प्रार्थना की गई है। ऋग्वेद ४.३१.१५ में भी उत्तम श्रव का उल्लेख है। हो सकता है कि यह पुरुषोत्तम से सम्बन्धित हो। शतपथ ब्राह्मण ७.३.१.४६ का कथन है कि चन्द्रमा दिवि में उत्तम श्रव हो सकता है।

ऋग्वेद ५.२८.३, अथर्ववेद ७.७७.१०/७.७३.१० में अग्नि के द्युम्नों के उत्तम होने की कामना की गई है। ऋग्वेद ९.६१.२९ में इन्दु के उत्तम द्युम्न का उल्लेख है। ऋग्वेद १०.१५९.४ व १०.१७४.४ में इन्द्र के हवि द्वारा उत्तम द्युम्नि होने का उल्लेख है।

ऋग्वेद ९.६७.२८ व ९.१०७.१, अथर्ववेद ६.१५.३, शतपथ ब्राह्मण १२.८.२.१२ में सोम द्वारा उत्तम हवि उत्पन्न करने का उल्लेख है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार सोम उत्तम हवि है। जैमिनीय ब्राह्मण ३.२५२ का कथन है कि छन्दोम ही उत्तम हवि हैं। यह उल्लेखनीय है कि ६ दिनों तक के यज्ञ में वृत्र के मरण के पश्चात् ३ दिनों के छन्दोम दिनों का आरंभ होता है। यह आनन्द की अवस्था है।

अथर्ववेद १.९.२, ४.१४.६, ४.१४.९, ६.६३.३, ६.८४.४, ७.५५.७/७.५३.७, ११.१.४, ११.१.३०, ११.१.३७, शतपथ ब्राह्मण ६.३.३.१४, ७.२.१.१० में उत्तम नाक का उल्लेख है।

भागवत पुराण आदि में ध्रुव द्वारा तप से उत्तमोत्तम स्थान प्राप्त करने का उल्लेख आता है। वैदिक साहित्य में एक ओर तो पृथिवी पर अग्नि उत्तम स्थान प्राप्त करती है (शतपथ ब्राह्मण ९.५.१.५३), दूसरी ओर आदित्य द्युलोक में उत्तम स्थान रखता है (शतपथ ब्राह्मण ९.४.२.२३)। तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.१.१.१२ में पूर्णिमा से तथा ३.८.१०.५, ३.८.११.२ आदि में पूर्णाहुति द्वारा उत्तम की उपलब्धि का उल्लेख है।

**उत्तम-मध्यम-अधम** **कूर्म** २.११.३१ (प्राणायाम के उत्तम, मध्यम व अधम प्रकारों का कथनः आनन्द से संयोग होने पर उत्तमोत्तम योग होने का कथन), **गरुड** १.४३.१५ (सूत्र/पवित्र के अङ्गुष्ठ, अङ्गुलियों आदि के मान से उत्तम-मध्यम-अधम होने का कथन), १.१७३.३० (स्नेह, क्वाथ व ओषधि की उत्तम, मध्यम व जघन्य मात्राओं का कथन), २.२४.१७ (शूद्र के कार्य अनुसार उत्तम, मध्यम या अधम यम लोक में यातना भोगने का कथन), **देवीभाग.** १.६.१२ (सात्त्विक, राजसिक व तामसिक गुणों के उत्तम, मध्यम व अधम प्रकारों का वर्णन), ५.१६.१७ (महिषासुर द्वारा देवी को उत्तम, मध्यम व अधम प्रकार के संयोगों का वर्णन), ७.३५.२१ (प्राणायाम के उत्तम, मध्यम व अधम प्रकारों का कथन), ११.१६.४ (प्रातः व सायं सन्ध्याओं के उत्तम, मध्यम व अधम प्रकारों का कथन), ११.१६.१२ (सन्ध्या के गृह आदि स्थान अनुसार साधारण, मध्यम व उत्तम भेदों का कथन), **पद्म** १.२१.१४५ (दान हेतु सुवर्णाचल की उत्तम, मध्यम व अधम मात्राओं का कथन), १.२१.१५१ (दान हेतु तिलशैल की उत्तम,मध्यम व कनिष्ठ मात्रों का कथन), १.२१.१६२ (दान हेतु घृताचल की उत्तम,मध्यम व अधम मात्राओं का कथन), ६.१३०.५ (भक्ति के सात्त्विक, राजसिक व तामसिक प्रकारों का वर्णन), **ब्रह्मवैवर्त्त** ४.३५.९१ (श्री नारायण के चरणों में प्रीति उत्तमा, सत्कर्म मध्यमा तथा परस्त्री सेवन का स्मरण अधमा होने का कथन), **ब्रह्माण्ड** २.३.३४.३८

(उत्तमा व मध्यमा भक्ति के उद्धव-गोपी आदि उदाहरणों का कथन), ३.४.४३.७२ (तत्त्वचिन्ता उत्तमा, जपचिन्ता मध्यमा व शास्त्रचिन्ता अधमा होने का उल्लेख), **भविष्य** ४.८४.३२ (दान हेतु गुडधेनु के उत्तम,मध्यम व अधम भारों का उल्लेख), ४.१९५.१३ (दान हेतु धान्य पर्वत की उत्तम,मध्यम व कनिष्ठ द्रोण मात्राओं का उल्लेख), ४.१९६.२ (दान हेतु लवणाचल के उत्तम, मध्यम व अधम द्रोण मानों का उल्लेख), ४.१९७.२ (दान हेतु गुड पर्वत के उत्तम,मध्यम व कनिष्ठ भारों का उल्लेख), ४.१९८.२ (दान हेतु सुवर्णाचल के उत्तम, मध्यम व अवर पल मानों का उल्लेख), ४.१९९.१७ (तिलाचल के उत्तम, मध्यम व कनिष्ठ द्रोण मानों का उल्लेख), ४.२००.४ (कार्पासाचल के उत्तम,मध्यम व जघन्य भारों का उल्लेख), ४.२०१.२ (घृताचल के उत्तम, मध्यम व अवर कुम्भ मानों का उल्लेख), ४.२०२.२ (रत्नाचल की उत्तम,मध्यम व अवर संख्या मानों का उल्लेख), ४.२०३.२ (रौप्याचल के उत्तम,मध्यम व अवर पल मानों का उल्लेख), ४.२०४.२ (शर्कराचल के उत्तम, मध्यम व अधम भार मानों का उल्लेख), **भागवत** ९.१८.४४ (ययाति-पुत्र पूरु द्वारा पिता को उत्तम,मध्यम व अधम पुत्र के लक्षणों का कथन), **मत्स्य** ८२.५ (गुड धेनु के उत्तम, मध्यम व कनिष्ठ भारों का उल्लेख), ८५.२ (गुड पर्वत के उत्तम,मध्यम व कनिष्ठ भारों का उल्लेख), ८६.२ (सुवर्णाचल के उत्तम,मध्यम व अधम पल मानों का उल्लेख), ८७.२ (तिल शैल के उत्तम, मध्यम व कनिष्ठ द्रोण मानों का उल्लेख), ८८.२ (कार्पासाचल के उत्तम, मध्यम व अधम भारों का उल्लेख), ८९.२ (घृताचल के उत्तम, मध्यम व अधम कुम्भ मानों का उल्लेख), ९०.१ (रत्नाचल के उत्तम, मध्यम व अधम संख्या मानों का उल्लेख), ९१.२ (रौप्याचल के उत्तम,मध्यम व अधम पल मानों का उल्लेख), ९२.२(शर्करा शैल के उत्तम, मध्यम व अधम भारों का उल्लेख), ९३.४२ (उदुत्तमं वरुण इति मन्त्र के अपां मन्त्र होने का उल्लेख), २१५.४४ (राजा द्वारा कर्मों के उत्तम, मध्यम व अधम प्रकारों को जानकर तदनुसार तद्-योग्य पुरुषों का नियोजन करने का निर्देश), २७९.४(दान हेतु कांचन-निर्मित कामधेनु के उत्तम, मध्यम व कनीयस पल मानों का उल्लेख), **वा.रामायण** ६.६.६ (रावण द्वारा उत्तम-मध्यम-अधम प्रकार के पुरुषों व मन्त्रों का वर्णन), **वराह** १०२.७ (गुड धेनु के उत्तम, मध्यम व अधम भार मानों का उल्लेख), १०३.२ (शर्करा धेनु के उत्तम, मध्यम व कनिष्ठ भार मानों का उल्लेख), १०९.५ (कार्पास धेनु के उत्तम, मध्यम व अधम भार मानों का उल्लेख), ११०.५ (व्रीहि धेनु के उत्तम,मध्यम व अधम द्रोण मानों का उल्लेख), १२८.८० (मणि संख्या या मणि-द्रव्य के अनुसार गणान्तिका/माला के उत्तम, मध्यम व कनिष्ठ प्रकारों का कथन), **वायु** १०.७९/१.१०.७६ (प्राणायाम के उत्तम,मध्यम व मन्द प्रकारों का वर्णन), ७६.३२/२.१४.३२ (उत्तमा द्युति प्राप्ति हेतु पिण्ड को गायों को देने आदि का कथन), **विष्णुधर्मोत्तर** २.२४.४३ (कर्मों के उत्तम, मध्यम व अधम प्रकारों के अनुसार उत्तम, मध्यम व अधम पुरुषों के विनियोजन का उल्लेख), २.७२.११६ (जघन्य द्वारा उत्तमा के सेवन पर जघन्य के वध आदि का निर्देश), ३.३१.१६ (उत्तम, मध्यम व अधम स्वभाव के पुरुषों के अभिनय में संकेतों का कथन), **शिव** १.२१.२८ (उत्तम, मध्यम व अधम लिङ्गों के उच्छ्राय मानों का कथन), २.३.५४.७२ (उत्तमा, मध्यमा, निकृष्टा व अतिनिकृष्टा पतिव्रताओं के लक्षणों का कथन), ५.२०.१५ (सात्त्विक, राजसिक व तामसिक तपों के कथन के पश्चात् सात्त्विक तप को उत्तम कहना), ७.१४.२४ (उत्तम, मध्यम व अधम प्रकार के जपों का कथन), ७.३६.२९ (प्राणायाम के उत्तम, मध्यम व कनीयस् प्रकारों का कथन)।

**महाभारत** उद्योग ३४.५२ (उत्तम, मध्यम व अन्त्य पुरुषों को भय के कारणों का कथन), १२३.१० (ययाति द्वारा उत्तम, ध्रुव, अव्यय आदि स्थान प्राप्त करने का उल्लेख), भीष्म ३९.१७/भगवद्गीता १५.१७

(क्षर व अक्षर पुरुषों से परे पुरुषोत्तम/परमात्मा कहलाने वाले उत्तम पुरुष का कथन), द्रोण ९९.६ (युद्ध में रथ शिक्षा में श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को उत्तम, मध्यम व अधम मण्डलों को दिखाने का उल्लेख), शान्ति ६२.१० (मनुष्य द्वारा काल संचोदित होकर उत्तम, मध्यम व अधम प्रकार के कर्म करने का उल्लेख)।

**उत्तमश्लोक** भागवत १.१.१९, १.३.४०, २.१.९, २.३.१७, ४.१२.२७, ५.१.३, ५.१४.४३, ६.२.१८, ८.४.४, ८.२४.३, ९.४.२४, ९.११.७, १०.३८.४, १०.४७.४८, १०.५५.३५, १०.६६.४३, १०.८०.२, ११.३०.३५ (उत्तमश्लोक शब्द का श्रीकृष्ण, पुरुषोत्तम आदि के लिए प्रयोग)।

टिप्पणी- ऋग्वेद १०.१५९.३ में इन्द्राणी शची द्वारा अपने पति में उत्तम श्लोक उत्पन्न करने का उल्लेख है।

**उत्तमौजा** विष्णु ३.२.२८ (दशम ब्रह्मसावर्णि मनु के १० पुत्रों में से एक), **शिव** ५.३४.४८ (दशम मन्वन्तर में मनु के १० पुत्रों में से एक)।

**उत्तर** भविष्य ३.३.२६.८७ (कलियुग में उत्तर का मदन रूप में अवतरण), **भागवत** १.१६.२ (उत्तर-पुत्री इरावती का परीक्षित से विवाह), **मत्स्य** १९९.१७ (कश्यप वंशीय प्रधान ऋषियों में से एक), **स्कन्द** ५.२.४४.१६ (ब्रह्मा द्वारा उत्तर दिशा में वर्षा हेतु उत्तर नामक मेघ की नियुक्ति, नवग्रहों द्वारा मेघों को पीडित करने पर अनावृष्टि होना, उत्तर मेघ द्वारा उत्तरेश्वर लिङ्ग की आराधना से वृष्टि होना), ५.२.८४ (उत्तरेश्वर लिङ्ग माहात्म्य: दर्दुर/मेंढक द्वारा उत्तरेश्वर लिङ्ग पूजा से गालव के शाप से निवृत्ति), ५.३.२३१.२४ (रेवा-सागर संगम पर २ उत्तरेश्वर तीर्थों की स्थिति का उल्लेख), ७.१.३०३ (सर्पों द्वारा आराधित उत्तरेश्वर लिङ्ग का माहात्म्य : सर्प भय से मुक्ति), ७.१.३१३ (उत्तरार्क का संक्षिप्त माहात्म्य : रोग से मुक्ति), **हरिवंश** ३.३५.३९ (यज्ञवराह द्वारा उत्तर दिशा में निर्मित पर्वतों व नदियों का वर्णन), **कथासरित्** ५.२.२३ (काम्पिल्य नगरी में उत्तर पर्वत पर दीर्घतपा मुनि का वास)।

द्र. महाभारत में उत्तर चरित्र; दिशा।

**उत्तरकुरु** गर्ग ७.२८.१ (उत्तरकुरु देश के राजा गुणाकर द्वारा प्रद्युम्न को भेंट), **देवीभागवत** ८.१०.६ (उत्तरकुरु वर्ष में पृथिवी द्वारा यज्ञवराह की आराधना), **नारद** २.६३.१२० (उत्तरकुरु तीर्थ में गोदान माहात्म्य), **ब्रह्माण्ड** १.२.१५.७१ (उत्तरकुरु वर्ष की महिमा का कथन), २.३.५९.४६ (सूर्य-पत्नी संज्ञा का वडवा होकर उत्तरकुरु वर्ष में विचरण करने का वृत्तान्त), **भागवत** ५.१८.३४ (उत्तरकुरु वर्ष में पृथिवी द्वारा यज्ञवराह की स्तुति का वर्णन), **मत्स्य** १३.५० (उत्तरकुरु तीर्थ में सती देवी का ओषधि नाम से वास), ८ ३.३४ (सुपार्श्व पर्वत पर उत्तरकुरु की स्थिति), ११३.६९ (उत्तरकुरु वर्ष का वर्णन), **वराह** ८४.९ (त्रिशृङ्ग पर्वत पर औत्तर कुरुओं का वास व महिमा कथन), **वायु** ३४.५७ (मेरु के परितः स्थित वर्षों में से एक), ३५.४४ (उत्तरकुरु वर्ष में केतु? वृक्ष की स्थिति, सनत्कुमार आदि ७ ब्रह्मा-पुत्रों द्वारा उत्तरकुरु वर्ष में आराधना से सनातन लोक की प्राप्ति), ४५.११ (उत्तरकुरु वर्ष में स्थित वृक्षों व उत्तरकुरु-निवासियों की महिमा), **स्कन्द** ५.३.१९८.८७ (उत्तरकुरु देश में उमा की ओषधि नाम से स्थिति का उल्लेख), **लक्ष्मीनारायण** २.१८१.३७ (अर्थेष्ट दानव का तुषित देव में रूपान्तरित होकर उत्तरकुरु वर्ष को गमन)।

**उत्तरमन्द्रा** नारद १.५०.३७(षडज् स्वर में मूर्च्छा का नाम)।

**उत्तरा** नारद १.५०.३९ (धैवत स्वर में मूर्च्छा का नाम)।

**उत्तरापाण्डव** योगवासिष्ठ ३.१०४.२ (उत्तरापाण्डव जनपद की शोभा वर्णन, उत्तरापाण्डव के राजा लवण द्वारा इन्द्रजाल दर्शन का वर्णन)।

**उत्तरायण** अग्नि १९९.७ (उत्तरायण में संक्रान्ति पर केशव का आज्य प्रस्थ से स्नान कराने पर पापों से मुक्ति का उल्लेख), २१४.१७ (वाम व दक्षिण नाडी के उत्तरायण व दक्षिणायन होने का कथन), **देवीभाग.**

८.१८.१५ (उत्तरायण के नक्षत्रों की शिशुमार के दक्ष पार्श्व में और दक्षिणायन के नक्षत्रों की वाम पार्श्व में स्थिति का उल्लेख), **पद्म** ६.१२४.४८ (श्री हरि द्वारा उत्तरायण हीन भीष्म हेतु उदक व अर्घ्य दान का वर्णन), **भविष्य** १.१०७.३ (श्रीकृष्ण के वाम पद के उत्तरायण तथा दक्षिण पद के दक्षिणायन होने का उल्लेख), ४.१२१.१७२ (उत्तरायण आरंभ होने पर श्रीहरि का घृतप्रस्थ से स्नान कराने तथा वडवा दान आदि के माहात्म्य का कथन), ४.१३०.६ (संक्रान्ति, सूर्यग्रहण, उत्तरायण व दक्षिणायन आदि पुण्य काल आरंभ होने पर 'भूमि देवताओं' के लिए घृत से पूर्ण दीपक दान का निर्देश), **भागवत** ७.१५.५६ (प्रवृत्तिपरक इष्टापूर्त्त कर्मों के अन्तर्गत आने वाले अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास आदि से दक्षिणायन/पितृयान तथा निवृत्तिपरक कर्मों से उत्तरायण/देवयान प्राप्त होने का वर्णन), **मत्स्य** १९१.६३(उत्तरायण आने पर कठेश्वर तीर्थ में स्नान का संक्षिप्त माहात्म्य : इच्छा पूर्ति), **वायु** ५०.२०१ (उत्तरायण व दक्षिणायन के मासों तथा अजवीथि, नागवीथि आदि का कथन; प्रवृत्ति व निवृत्ति मार्ग से पितृयान व देवयान मार्ग प्राप्त होने का वर्णन), **विष्णु** २.८.८१ (उत्तरायण व दक्षिणायन के अन्तर्गत आने वाले तप, तपस्य, मधु, माधव, शुक्र, शुचि आदि मासों का कथन), **विष्णुधर्मोत्तर** ३.९६.१४ (उत्तरायण में वास्तु प्रतिष्ठा के धन वृद्धि कारक और दक्षिणायन में पाप वृद्धि कारक होने का उल्लेख), ३.३१७.४ (उत्तरायण में वस्त्र दान के फलप्रद होने का उल्लेख), **शिव** ६.२१.१५ (आत्महन्ताकृति, ज्योतिष्पुञ्ज आदि ५ उत्तरायण रूपी व धूम्रा, तमस्विनी आदि ५ दक्षिणायन रूपी योगी देवताओं का कथन), **स्कन्द** १.३.१.९.७२ (उत्तरायण में शिव द्वारा अपने अरुणाद्रि लिङ्ग की प्रदक्षिणा करने का उल्लेख), २.१.३४.२० (मकर संक्रान्ति को सुवर्णमुखरी नदी में स्नान करके अगस्त्येश शिव के दर्शन का निर्देश), २.२.४२ (उत्तरायण उत्सव विधि का वर्णन), २.४.३२.३४ (श्री हरि द्वारा उत्तरायण हीन भीष्म के लिए उदक व अर्घ्य दान का कथन), ६.२७१.६५ (बालक विश्वरूप/बक द्वारा मकर संक्रान्ति को शिव के जागेश्वर लिङ्ग के घृतकुम्भ में प्रक्षेप का माहात्म्य वर्णन), ७.४.१४.२७ (मकर संक्रान्ति को इन्द्रेश्वर लिङ्ग की विशेष रूप से पूजा करने का निर्देश)।

**महाभारत** भीष्म ३२.२४ (उत्तरायण के अग्नि, ज्योति, अह आदि तथा दक्षिणायन के धूम, रात्रि, कृष्ण आदि विशेषणों का कथन; उत्तरायण से ब्रह्म की व दक्षिणायन से चन्द्रमा की प्राप्ति का कथन), ११९.९७ (भीष्म द्वारा उत्तरायण काल आने तक स्वप्राणों को धारण करने का निश्चय करना), अनुशासन ९८.४७ (दक्षिणायन के अन्धतामिस्र नरक होने के कारण अन्धकार की निवृत्ति हेतु उत्तरायण ज्योति रूपी दीप दान की महिमा का वर्णन)।

**टिप्पणी**- पुराणों में मुख्य रूप से तीन आख्यानों को दक्षिणायन-उत्तरायण से सम्बद्ध किया जा सकता है: एक तो दक्ष के यज्ञ में सती का भस्म होना और पुन: हिमवान व मेना की पुत्री के रूप में जन्म लेकर शिव को प्राप्त करना। दूसरा आख्यान महाभारत में भीष्म के दक्षिणायन में युधिष्ठिर से संवाद और उत्तरायण आरम्भ होने पर मृत्यु होने का है। तीसरा आख्यान पूरी रामायण की कथा है। इसके अतिरिक्त मृग द्वारा ब्राह्मण की अरणि व मन्थ के हरण और युधिष्ठिर-यक्ष संवाद को भी दक्षिणायन-उत्तरायण से सम्बद्ध माना जा सकता है। इस अनुक्रमणिका के अन्वाहार्य शब्द शीर्षक के अन्तर्गत उल्लेख आता है कि वीरभद्र द्वारा दक्ष के सिर की आहुति दक्षिणाग्नि में दे दी गई। दक्ष प्रजापति का मार्ग दक्षता प्राप्त करने का मार्ग है-प्राणों की दक्षता प्राप्त करना, किस प्रकार प्राण हमारे लिए आनन्ददायी बनें। बौद्ध मार्ग की विपश्यना साधना के अन्तर्गत वर्णन आता है कि बाहर जाने वाला श्वास भी आनन्दकारक हो गया है, भीतर जाने वाला भी। पुराणों की कथा यह संकेत करती है कि यद्यपि इस स्थिति में सती रूपी ओंकार वाक् की पुत्री रूप में प्राप्ति की जा सकती है, लेकिन यह स्थिति शिव के कल्याणकारी रूप को नहीं देख पाती, केवल भयंकर रूप को ही देख पाने में समर्थ होती है। यह दक्षिण अयन है। उत्तर अयन वह है जब ओंकार वाक् मेना रूपी मन की शक्ति की पुत्री रूप में जन्म लेती है। यज्ञ कार्य में ब्रह्मा नामक ऋत्विज दक्षिण दिशा में स्थित होकर मन से

अथर्ववेद का जप करता रहता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में कहा गया है कि मन ही ब्रह्मा है, अर्थात् मन ब्रह्मा बन सकता है। उत्तर दिशा में उद्गाता नामक ऋत्विज साम गान करता है। ब्रह्मा और उद्गाता ऋत्विजों को दक्षिणायन व उत्तरायण से कैसे सम्बद्ध किया जा सकता है, यह अन्वेषणीय है।

महाभारत में भीष्म को दक्षिणायन से सम्बद्ध करके महाभारतकार ने वैदिक रहस्यों को आश्चर्यजनक रूप से उद्घाटित किया है। भीष्म का अर्थ ऐसे किया जा सकता है कि भी-शम्, जिसने भय का शमन कर लिया हो। जब देवव्रत ने पिता शन्तनु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने की प्रतिज्ञा की तो पिता ने उसे वर दिया कि वह स्वच्छन्द मृत्यु प्राप्त कर सकेगा, अर्थात् अब उसे मृत्यु से भय नहीं रहेगा। दक्षिणायन को भय के शमन की, मृत्यु से भय के शमन की प्रक्रिया कहा जा सकता है। अयन का अर्थ ही यह होता है कि जहां कोई भय न रहे, चारों ओर से कवच का निर्माण हो गया है, जैसे स्वस्ति-अयन। उत्तर अयन का आरंभ भी-शम् (भीष्म) के पश्चात् होता है। उत्तर अयन के रूप में पुराणों में शमी वृक्ष में अश्वत्थ वृक्ष की उत्पत्ति होने का सार्वत्रिक कथन आता है, जैसे पुरूरवा-उर्वशी की कथा में। इन दोनों वृक्षों की अरणियां बनाकर मन्थन करने पर अग्नि प्रकट होती है। अश्वत्थ वृक्ष के स्वरूप को समझने के लिए अश्वत्थ शब्द पर टिप्पणी पठनीय है। अश्वत्थ को विराट पुरुष के रूप में समझ सकते हैं। नारद परिव्राजकोपनिषद ७.१, त्रिशिख ब्राह्मणोपनिषद तथा श्वेताश्वरोपनिषद ३.८ आदि के अनुसार सहस्रशीर्षा पुरुष की स्थिति ही उत्तरायण है। उस स्थिति में अपने और पराये में कोई भेद नहीं रह जाता, सब कुछ विराट पुरुष के अन्दर समाहित हो जाता है। बृहदारण्यक उपनिषद ६.२.९ तथा छान्दोग्योपनिषद ५.४.१ में अर्चि व धूम का वर्णन करते हुए संभवतः इसी सहस्रशीर्षा पुरुष को प्रकट करने की क्रियाविधि को दर्शाया गया है। श्वेताश्वरोपनिषद ३.१३ से प्रतीत होता है कि उत्तरायण स्थिति में एक ओर आत्मा में अङ्गुष्ठ मात्र पुरुष का अस्तित्व रहता है तो दूसरी ओर परमात्मा के सहस्रशीर्षा स्वरूप को व्यक्त करने की सामर्थ्य भी रहती है। भीष्म की उत्तरायण में मृत्यु को अहंकार के विसर्जन के रूप में समझ सकते हैं (त्रिशिखब्राह्मणोपनिषद १६)। चूंकि दक्षिणाग्नि को पुराणों में तीसरे चक्षु का रूप दिया गया है जो आज्ञा चक्र के अन्तर्गत आता है, अतः सहस्रशीर्षा पुरुष की स्थिति को सिर में सहस्रार चक्र के उद्घाटन की स्थिति कहा जा सकता है।

जिस प्रकार भागवत पुराण में इष्टापूर्त कर्म आदि द्वारा दक्षिणायन मार्ग प्राप्त होने का कथन आता है, उसी प्रकार का वर्णन प्रश्नोपनिषद १.९ में भी उपलब्ध है। लेकिन भागवत में तो इससे भी आगे जाकर अग्निहोत्र, दर्शपूर्ण मास, चातुर्मास आदि यज्ञों द्वारा भी दक्षिणायन प्राप्त होने का उल्लेख है। यह उल्लेख ब्राह्मण ग्रन्थों और श्रौत सूत्रों में जहां विभिन्न यज्ञों के संदर्भ में अयन प्राप्ति होने के उल्लेख आए हैं, उनकी प्रकृति के सम्बन्ध में प्रकाश डालता है। उदाहरण के लिए दर्श-पूर्णमास यज्ञ के संदर्भ में जैमिनीय ब्राह्मण २.९८ तथा बौधायन श्रौत सूत्र १८.५३ में सूर्य व चन्द्र का अयन प्राप्त होने का उल्लेख है। शतपथ ब्राह्मण २.२.१.२१ में अग्निहोत्र के संदर्भ में धेनु के अयन की प्राप्ति का तथा २.५.३.१० में चातुर्मास यज्ञ में साकमेध पर्व के अन्तर्गत इडा के अयन तथा अन्य अयन की प्राप्ति का उल्लेख है। जैमिनीय ब्राह्मण २.५० में अग्निष्टोम यज्ञ के अयन का कथन है जहां मन को प्रायण (प्र-अयन) कहा गया है। बौधायन श्रौत सूत्र १८.५२ में दिशाओं, ऋतुओं, ऋषियों व देवताओं के अयनों का वर्णन है। बौधायन श्रौत सूत्र २६.२४ में सर्पों के अयन का वर्णन है। बौधायन श्रौत सूत्र १६.३०.१ में मुनि अयन का उल्लेख है। गायों के संवत्सर सत्र से प्राप्त अयन (गवामयन) को आपस्तम्ब श्रौत सूत्र २६.१४.१० में आदित्यों व अंगिरसों का अयन कहा गया है। जैमिनीय ब्राह्मण २.४३ में संवत्सर दीक्षा के अन्तर्गत प्रथम चार मासों द्वारा अग्नि के अयन, दूसरे ४ मासों द्वारा वायु के और तीसरे ४ मासों द्वारा आदित्य के अयन प्राप्त होने का वर्णन है। भागवत के कथनानुसार यह सब अयन दक्षिणायन प्रकृति के हैं।

एक ओर जहां इष्टापूर्त कर्म द्वारा दक्षिणायन की प्राप्ति होती है तो दूसरी ओर अरण्य में जाकर श्रद्धा और सत्य की उपासना करने से अर्चि मार्ग से देवयान मार्ग अथवा उत्तरायण की प्राप्ति होती है (बृहदारण्यक उपनिषद ६.२.१५, छान्दोग्य उपनिषद ५.१०.१ तथा मुण्डकोपनिषद १.११.२)। आश्वलायन श्रौत सूत्र ८.१४.३ में भी उत्तरायण में ग्राम से बाहर जाकर कृत्य करने का उल्लेख है। इसका अर्थ हुआ कि इष्टापूर्त के अन्तर्गत जो यज्ञ आते हैं, वैदिक साहित्य में उन्हें ग्राम के अन्तर्गत माना जाता है। रामचरितमानस ७.११७.११

के अनुसार इन्द्रियां ही ग्राम हैं। और भागवत ७.१५.५३ में भी उत्तरायण मार्ग की प्राप्ति के लिए इन्द्रियों को मन में, मन को वाक् में, वाक् को वर्ण में, वर्ण को ओंकार आदि में लय करने का निर्देश है। उपरोक्त वर्णन के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि सम्पूर्ण रामायण (राम-अयन) उत्तरायण का ही निरूपण है। दशरथ का पूर्व रूप दक्ष-रथ और दशमुख का पूर्व रूप दक्ष-मुख है। राम पहले अयोध्या रूपी ग्राम से निकल कर अरण्य में जाते हैं और वहां से दक्षिण दिशा में लङ्का पर विजय प्राप्त करते हैं। लङ्का कर्मों के फल की, अंग्रेजी भाषा के लक की तथा संस्कृत में चक्षुओं के निमेष-उन्मेष की, अलख से विपरीत स्थिति का प्रतिनिधित्व करती है, ऐसा कह सकते हैं। हनुमान (हन्-मनः) मन के निग्रह का तथा मन के विराट रूप मान का परिचायक है। उत्तरायण का वास्तविक आरम्भ रामायण के उत्तरकाण्ड से होता है। अयोध्या में आगमन के पश्चात् राम अश्वमेध यज्ञ करते हैं। तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.९.२२.३ का कथन है कि जो अश्वमेध करता है, वह देवों के अयन से यात्रा करता है। इसका अर्थ यह हुआ कि अज, अवि, गौ, अश्व और पुरुष नामक ५ ग्राम्य पशुओं में से अज, अवि और गौ तक की साधना तो दक्षिणायन से संबंधित है और इसके पश्चात् अश्व और पुरुषमेध की साधना उत्तरायण से। पुरुषमेध की साधना के अन्तर्गत ऋग्वेद १०.९० के पुरुष सूक्त के ऋषि नारायण और देवता पुरुष हैं। नारायण(नारा-अयन) की व्याख्या पुराणों ने स्वयं 'आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः। अयनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः।।' (विष्णु पुराण १.४.६ इत्यादि) कह कर दी है। उत्तरायण को उदक-अयन भी कहा जाता है। ज्योतिष में जब सूर्य धनु राशि से मकर राशि में प्रवेश करता है, तब उत्तरायण का आरंभ माना जाता है। मकर, कुम्भ व मीन राशियां जल में निवास करने वाली राशियां हैं। ऋग्वेद ३.३३.७ के अनुसार जब इन्द्र वज्र से वृत्र का वध कर देता है तभी आपः मुक्त होकर अयन की इच्छा करते हैं। शतपथ ब्राह्मण ७.५.२.५०, तैत्तिरीय संहिता ४.३.१.१ तथा काठक संहिता १६.१८ आदि में अग्निचयन के अन्तर्गत प्रथम चिति में आपस्य नामक इष्टिकाओं की स्थापना की जाती है। इनमें से एक आपस्य इष्टिका को आपः के अयन में स्थापित किया जाता है। इसकी व्याख्या के रूप में शतपथ ब्राह्मण का कथन है कि यह पृथिवी ही आपः का अयन बन सकती है, ऐसा अयन जिसमें वासनाओं के कारण आपः का क्षय न हो, अपितु वह ओषधियों व अन्न के रूप में परिवर्तित होकर आयुवर्धक बनें। यह उल्लेखनीय है कि यास्क के निरुक्त में वेदमन्त्रों में जहां भी आयु शब्द प्रकट हुआ है, उसका अर्थ अयन किया गया है (१०.४१, ११.४९)। नार के अयन नारायण ऋषि और आपः की अयन पृथिवी में कैसे सामंजस्य स्थापित किया जा सकता है, यह विचारणीय है। छान्दोग्य उपनिषद ५.४.१ तथा बृहदारण्यक उपनिषद ६.२.९ में पर्जन्य से पुरुष की उत्पत्ति की क्रमिक अवस्थाओं का वर्णन किया गया है जिनमें अन्तिम अवस्था में स्त्री की योनि में गर्भ का विकास होता है और ९ या १० मास बाद वह पुरुष रूप में जन्म लेता है। इन आख्यानों को आध्यात्मिक रूप में समझने की आवश्यकता है। हो सकता है कि पृथिवी रूपी योषा पत्नी जिस सहस्रशीर्षा पुरुष को जन्म देती है, उसके लिए नारायण के वीर्य की आवश्यकता पड़ती हो।

पुराणों में दक्षिणायन व उत्तरायण की शिशुमार देह के दक्षिण व उत्तर पार्श्वों में स्थिति के उल्लेख के संदर्भ में काठक संहिता २०.९ का यह कथन महत्वपूर्ण है कि (मस्तिष्क का?) दक्षिणार्ध मनस्वितर है, मन को धारण करता है। इसके अनुसार उत्तर पक्ष भावना से सम्बन्धित होना चाहिए। लेकिन काठक संहिता में उत्तर में श्रोत्र की स्थिति कही गई है। जाबालदर्शनोपनिषद ४.४० में पिंगला नाडी से इडा नाडी में प्राण के संक्रमण को उत्तरायण तथा इससे विपरीत स्थिति को दक्षिणायन कहा गया है।

**उत्तरार्क स्कन्द** ४.१.४७.२५ (प्रियव्रत की कन्या द्वारा पति प्राप्ति हेतु उत्तरार्क के समीप तप, उत्तरार्क कुण्ड में स्नान से बर्करी के काशिराज-कन्या के रूप में जन्म की कथा), ७.१.३१३ (उत्तरार्क क्षेत्र का संक्षिप्त माहात्म्यः रोग से मुक्ति)।

**उत्तान पद्म** १.१५.३८२ (उत्तान मुख में आहुति देने की महिमा का कथन), १.४३.१४१, १८२ (सामुद्रिक विद्या के संदर्भ में नारद द्वारा हिमवान व मेना-पुत्री गौरी को उत्तानहस्ता तथा सुच्छाया चरण वाली बताना तथा इन गर्हित लक्षणों की दैवी लक्षणों के रूप में व्याख्या करना), ५.११७.९०,१०२ (श्राद्ध में न्युब्ज नामक पात्र को उत्तान करने का निर्देश), **ब्रह्माण्ड** ३.४.२८.७८ (शक्ति देवियों द्वारा उत्तान मुख होकर मधु पान करने

का उल्लेख), **भविष्य** १.४९.२६ (आदित्य के लिए व्योम आदि पांच मुद्राओं के प्रदर्शन के आरंभ में उत्तान हस्त करने का निर्देश), १.२०६.२५ (शक्तियों के लिए मुद्रा प्रदर्शन हेतु उत्तान हस्त करने का निर्देश), १.२१४.१९ (सूर्योदय पर उदया मुद्रा के प्रदर्शन हेतु करों को उत्तान करने का निर्देश), **भागवत** ९.३.२७ (उत्तानबर्हि : शर्याति राजा के तीन पुत्रों में से एक), **मत्स्य** १५४.१४६, १७०, १८८ ( सामुद्रिक लक्षणों के संदर्भ में नारद द्वारा हिमवान-पुत्री गौरी को उत्तानहस्ता तथा सुच्छाया चरण वाली बताना तथा इन गर्हित लक्षणों की दैवी लक्ष्णों के रूप में व्याख्या करना), **वामन** ५७.२१ (स्कन्द के शर वन में जन्म के समय उत्तानशायी होकर मुख में अंगुष्ठ डालकर रोदन करने तथा कृत्तिकाओं से दुग्ध पान करने का उल्लेख), **विष्णु धर्मोत्तर** ३.३३.१ (नृत्य शास्त्र में विभिन्न मुद्राओं के प्रदर्शन हेतु एक या दोनों करों को उत्तान करने के उल्लेख), ३.३०१.२५ (छत्र, कृष्णाजिन, शय्या, रथ, आसन, उपानह, यान तथा अन्य प्राणरहित वस्तुओं की दक्षिणा को उत्तान अंगिरस हेतु ग्रहण करने निर्देश), **शिव** २.१.१३.४४ (शिव पूजा में उत्तान आसन/पर्यंक करने का निर्देश), **स्कन्द** ६.२२४.४३ (श्राद्ध में अर्घपात्र को उत्तान करके देवताओं व पितरों के लिए दक्षिणा देने का निर्देश), **हरिवंश** ३.८२.२० (उत्तानशायी शिशु कृष्ण द्वारा पूतना के स्तनों का पान करके उसे प्राणरहित करने का उल्लेख), **महाभारत** शान्ति २४२.२२ (उत्तानहस्त होकर गुरु के चरण स्पर्श करने का निर्देश)।

**उत्तानपाद** **ब्रह्मवैवर्त्त** ३.५.१७ (मनु-पत्नी शतरूपा द्वारा व्रतोपाय द्वारा प्रियव्रत व उत्तानपाद पुत्रों को जन्म देना), **ब्रह्माण्ड** १.२.३६.८४ (स्वायम्भुव मनु-पुत्र उत्तानपाद के अत्रि का दत्तक पुत्र बनने का उल्लेख; उत्तानपाद द्वारा सूनृता पत्नी से ध्रुव आदि ४ पुत्र व स्वरा आदि २ कन्याएं उत्पन्न होने का कथन), **भविष्य** ४.६९.६१ (रुचि व शुघ्नी-पति, रुचि सपत्ना द्वारा ध्रुव की हत्या पर ध्रुव का पुनः जीवित होना), **भागवत** ३.१२.५४ (स्वायम्भुव मनु व शतरूपा की सन्तानों में से एक, प्रियव्रत-भ्राता), ४.८.८ (सुनीति व सुरुचि-पति, ध्रुव व उत्तम-पिता, उत्तानपाद द्वारा ध्रुव के तिरस्कार पर ध्रुव द्वारा तप का वृत्तान्त), **मत्स्य** ४.३४ (स्वायम्भुव मनु व अनन्ती-पुत्र, सूनृता-पति, अपस्यति आदि पुत्रों के नाम), १२७.२२ (शिशुमार रूपी ध्रुव शरीर में उत्तर हनु रूप होने का उल्लेख), **मार्कण्डेय** ६६.३ (उत्तानपाद व सुरुचि-पुत्र उत्तम का वृत्तान्त), **लिङ्ग** १.६२.३ (सुनीति व सुरुचि-पति, सुनीति-पुत्र ध्रुव द्वारा तप का वृत्तान्त), **वायु** ५१.६ (उत्तानपाद-पुत्र ध्रुव की शिशुमार पुच्छ में स्थिति का उल्लेख), ६२.७५/२.१.७५ (सूनृता-पति, ध्रुव आदि ४ पुत्रों व मनस्विनी आदि २ कन्याओं के पिता, पुत्र ध्रुव का वृत्तान्त), **विष्णु** १.११.१ (सुरुचि व सुनीति-पति, सुरुचि द्वारा बालक ध्रुव का तिरस्कार करने पर ध्रुव के तप करने का विवरण), २.९.५ (उत्तानपाद-पुत्र ध्रुव का आधार शिशुमार व शिशुमार का आधार नारायण होने का कथन), २.१२.३१ (शिशुमार रूपी ज्योति शरीर में उत्तानपाद के उत्तर हनु होने का उल्लेख), **शिव** ५.३०.५ (स्वायम्भुव मनु व वीरा/शतरूपा-पुत्र, काम्या पत्नी से सम्राट आदि तीन पुत्र तथा सुनीति पत्नी से ध्रुव पुत्र उत्पन्न करने का कथन), **स्कन्द** ५.३.४५+ (उत्तानपाद द्वारा शिव से शूलभेद तीर्थ का माहात्म्य श्रवण : अन्धकासुर द्वारा तप करके अवध्य होने का वर प्राप्त करना, शिव द्वारा अन्धक का शूल से भेदन, शूल द्वारा भृगु पर्वत का भेदन करने पर शूल का स्वच्छ होना आदि), ५.३.५०.१ (उत्तानपाद द्वारा श्राद्ध, विवाह आदि में पूजनीय द्विजों के विषय में शिव से पृच्छा), ५.३.५०.३६ (उत्तानपाद द्वारा शिव से वित्त के अभाव में भी कन्यादान करने के उपाय की पृच्छा), ५.३.५१.१ (उत्तानपाद द्वारा शिव से श्राद्ध, दान, यात्रा आदि करने हेतु प्रशस्त काल के विषय में पृच्छा), ५.३.५१.१६+ (उत्तानपाद द्वारा शिव से गुहामध्य में स्थित मार्कण्डेश लिङ्ग के विषय में पृच्छा), ५.३.५१.३० (शिव द्वारा उत्तानपाद को ८ आधिभौतिक व आध्यात्मिक पुष्पों का वर्णन करना), ५.३.५२+ (शूलभेद तीर्थ के माहात्म्य के

संदर्भ में शिव द्वारा उत्तानपाद को राजा चित्रसेन द्वारा दीर्घतपा मुनि व उसके परिवार जनों की अस्थियों के शूलभेद तीर्थ में स्थित कुण्ड में क्षेपण द्वारा मुक्ति प्राप्त होने का वर्णन, राजा चित्रसेन द्वारा भृगु पर्वत पर आरोहण करके स्वयं को कुण्ड में गिराने का प्रयत्न करने पर ब्रह्मा आदि त्रिदेवों का शूलभेद तीर्थ में देवशिला पर स्थित होने का वर्णन), ५.३.५६.१ (उत्तानपाद द्वारा शिव से विन्ध्य पर्वत पर शिव की जटाओं से गङ्गा अवतरण के विषय में पृच्छा), ५.३.५६.१३+ (उत्तानपाद द्वारा शिव से प्रशस्त दान द्रव्यों और देवशिला के माहात्म्य के विषय में पृच्छा तथा शिव द्वारा शूलभेद तीर्थ में शबर व शबरी तथा राजकन्या भानुमती आदि द्वारा स्वयं को भृगु पर्वत से कुण्ड में गिराकर मुक्ति प्राप्त करने का वर्णन), **हरिवंश** १.२.५ (वीर व काम्या-पुत्र, मनु व शतरूपा-पौत्र, प्रियव्रत-भ्राता, सूनृता पत्नी से ध्रुव आदि चार पुत्रों को उत्पन्न करने का कथन)।

**टिप्पणी-** पौराणिक साहित्य में उत्तान के संदर्भ में उल्लेख जितने सरल से लगते हैं, वैदिक साहित्य में उनका निहितार्थ उतना ही गंभीर है। उत्तान शब्द को उत्थान अर्थात् समाधि से व्युत्थान और उदान, इन दो शब्दों से सम्बद्ध किया जा सकता है। यदि उत्तान को उत्थान से सम्बद्ध किया जाए तो इसकी पुष्टि पुराणों के इस कथन से होती है कि उत्तानपाद वीर और काम्या का, अथवा मनु और शतरूपा का पुत्र है। डा. फतहसिंह की विचारधारा के अनुसार वीर स्थिति समाधि की स्थिति होती है। काम्या के संदर्भ में तैत्तिरीय आरण्यक ३.१०.२ में वर्णन आता है कि काम ही दक्षिणा का दाता है, काम ही प्रतिगृहीता है, काम के लिए ही दक्षिणा को ग्रहण किया जाता है, काम के लिए यह दक्षिणा उत्तान अंगिरस ग्रहण करे। स्थावर और जंगम, सारी प्रकृति इसके लिए लालायित है, उसमें काम रूपी कामना विद्यमान है कि कौन ऐसा वीर है जो उसे दिव्य रस का आस्वादन करा सके। समाधि की स्थिति ही वह वीर है जो जड प्रकृति में दिव्य प्राणों का सिंचन कर सकती है। इसी तथ्य को विस्तार देते हुए संभवतः स्कन्द पुराण में शिव द्वारा उत्तानपाद को आठ आधिभौतिक और आध्यात्मिक पुष्पों का वर्णन किया गया है। पुष्प जड प्रकृति की सर्वाधिक चेतन अवस्था है। यदि स्कन्द पुराण में वर्णित इन पुष्पों का विकास कर लिया जाए तो फिर पुराणों में वर्णित काम के पुष्प बाण व्यर्थ हो जाएंगे।

वैदिक साहित्य में सार्वत्रिक रूप से उत्तान अंगिरस के लिए अयानः दक्षिणा देने का उल्लेख आता है (तैत्तिरीय आरण्यक ३.१०.४,आपस्तम्ब श्रौत सूत्र १४.११.३) जिसका अर्थ सोमलता का वहन करने वाली शकट किया जाता है,जबकि ताण्ड्य ब्राह्मण १.८.११, तैत्तिरीय ब्राह्मण २.३.४.५, काठक संहिता ९.९ व मानव श्रौत सूत्र ५.२.१४.१२ में उत्तान अंगिरस के लिए अप्राणत् दक्षिणा का उल्लेख आया है जिसका भाष्य में अर्थ आसन, शय्या आदि प्राणरहित वस्तुएं किया गया है। विष्णु धर्मोत्तर पुराण में यह रहस्य इस रूप में प्रकट हुआ है कि उत्तान अंगिरस के लिए छत्र, कृष्णाजिन, शय्या, रथ, उपानह आदि अप्राणीय वस्तुओं की दक्षिणा दे। इसका अर्थ यह हो सकता है कि उत्तान अंगिरस प्राणों के विकास की स्थिति में यद्यपि उदान प्राण का विकास होता है, लेकिन इस उदान प्राण को छत्र, उपानह, आसन आदि रूप देने के लिए विशेष दक्षता की आवश्यकता होती है। तैत्तिरीय ब्राह्मण २.२.५.३ व २.३.४.६ का कथन है कि यह पृथिवी (इयं) उत्तान आंगिरस बन सकती है, अतः जो कुछ भी इस पृथिवी से सम्बन्धित है, वह सब उत्तान अंगिरस को दक्षिणा में देते हैं। उत्तान अंगिरस को आसन की दक्षिणा के संदर्भ में यह सरलता से कल्पना की जा सकती है कि उत्तान अवस्था में सारी पृथिवी पद्म पुष्प रूपी आसन बन जाती है, वह जीवंत हो जाती है। स्कन्द पुराण में इस स्थिति का चित्रण ऐसी देवशिला के रूप में किया गया है जिस पर ब्रह्मा, विष्णु और महेश, तीनों देव विराजमान हैं। छत्र, उपानह, कृष्णाजिन आदि के निहितार्थ अन्वेषणीय हैं।

पद्म पुराण में पहले तीक्ष्ण तनु में और फिर उत्तानमुख में आहुति देने के उल्लेख की व्याख्या के संदर्भ में तैत्तिरीय संहिता ५.५.३.२ तथा शतपथ ब्राह्मण १०.५.५.१ में यह विवेचन किया गया है कि उखा पर पुरुष शीर्ष को उत्तान मुख स्थापित किया जाए, या अधोमुख, या पार्श्वमुख इत्यादि। पुरुष शीर्ष की स्थापना अग्नि के श्येन रूप के अनुसार करनी है जिससे कि वह उडकर स्वर्ग से सोम ला सके। पक्षी का मुख तो नीचे की ओर होता है। यदि वह उत्तानमुख होगा तो वह उडेगा कैसे? और यदि न्यङ् मुख करते हैं तो प्रश्न होता है कि अग्नि के मुख में आहुति कैसे डालेंगे जिसे अग्नि के माध्यम से देवों

तक पंहुचाना है? इसका उत्तर यह दिया गया है कि अग्नि का विस्तार प्रत्येक दिशा में करना होता है। यदि पुरुष के उत्तान मुख की स्थापना उखा नामक यज्ञ पात्र पर की जाती है तो यह महत्वपूर्ण हो जाता है कि पुराणों के कथन के अनुसार भोजन की मुख में आहुति के लिए केवल उत्तानमुख होना ही आवश्यक नहीं है, अपितु उस उत्तान पुरुष शीर्ष का जो कबन्ध या शरीर है, वह भी उखा का, उत्तान उखा का रूप होना चाहिए। उखा को ब्राह्मण ग्रन्थों में ज्योति का प्रतीक कहा गया है। व्यावहारिक दृष्टिकोण से, योग में यह ध्यान रखना होता है कि केवल उतना ही आहार ग्रहण किया जाए जितने से मुख पर विकसित आभा मण्डल का अधोपतन न हो। लेकिन ऐसा हो सकता है कि मुख पर आभामण्डल का पतन न हो लेकिन उत्तान उखा पात्र से ज्योति विलीन हो जाए। ऐसी स्थिति से बचना है।

स्कन्द पुराण में उत्तानपाद द्वारा शिव से विन्ध्य पर्वत पर गंगा अवतरण के सम्बन्ध में पृच्छा के संदर्भ में पुराणों का यह कथन कात्यायन श्रौत सूत्र ८.२.७ तथा आश्वलायन श्रौत सूत्र ४.५.८ के इस कथन को समझने में उपयोगी हो सकता है कि उत्तान पाणि द्वारा प्रस्तर का निह्नवन करते हैं। भाष्यों में निह्नवन का अर्थ स्पर्श करना और नमस्कार करना किया गया है। प्रस्तर नामक तृण की स्थापना यज्ञ में आहवनीय अग्नि के समीप की जाती है। ब्राह्मण ग्रन्थों में कहा गया है कि प्रस्तर केशों का, जटाओं का रूप है। शिव की इन जटाओं में गंगा जल का वास है। यदि उत्तानपाणि होकर इन जटा रूपी प्रस्तरों का स्पर्श हो जाए तो गंगा का अवतरण हो सकता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में उत्तान पाणि शब्द का उल्लेख कई स्थानों पर आया है। शतपथ ब्राह्मण १०.५.५.७ में पुरुष शीर्ष से नीचे तीन उत्तान यज्ञ पात्रों का उल्लेख है: उखा, उलूखल और स्रुचा। यज्ञ कार्य में अग्नि में आज्य की आहुति देते समय स्रुचा नामक पात्र में आज्य भर कर उसे हाथ में पकड कर उससे आहुति देते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों के कथन हैं कि वाक् ही स्रुचा है, योषा स्रुचा है, स्रुचा रूपी बाहु से ही वृत्र का वध किया जाता है जिसमें घृत वज्र का काम देता है। स्रुचा के उत्तान रूप की सम्यक् व्याख्या अन्वेषणीय है। अथर्ववेद ३.१८.२ तथा ऋग्वेद १०.१४५.२ के भाव सूक्त में उत्तान पर्णा ओषधि का उल्लेख आया है जो पति की सपत्नी का नाश करके पति को वश में करती है। सायण भाष्य में इसका अर्थ पाठा नामक ओषधि किया गया है, लेकिन बिल्वोपनिषद १६, १८ व ३० में उत्तान बिल्व पत्रों को शिव के मस्तक पर अर्पित करने के उल्लेख हैं। देह में हाथ भी पर्ण का प्रतीक हैं। पुराणों में पार्वती के उत्तानहस्ता होने के उल्लेख को समझने के लिए इन सब उल्लेखों की सम्यक् व्याख्या अपेक्षित है। अथर्ववेद ३.२१.१० में आपः उत्तानशीवरी का उल्लेख आया है जिसमें यह अन्वेषणीय है कि क्या उत्तानशीवरी का अर्थ उत्तान शिव किया जा सकता है?

पुराणों में बाल कृष्ण द्वारा उत्तानशायी स्थिति में पूतना के स्तनों व प्राणों के पान के उल्लेख के संदर्भ में त्रिशिखब्राह्मणोपनिषद २.४२ में कूर्म की भांति कूर्मासन में उत्तानशयन का उल्लेख है। अथर्ववेद २०.१३३.४ में कुमारी के उत्तानशयन का उल्लेख है। जैमिनीय ब्राह्मण ३.३६७ में भी उत्तानशय्या का उल्लेख आता है। आपस्तम्ब श्रौत सूत्र १०.१५.९ व काठक संहिता २३.५ में दीक्षित यजमान के लिए आहवनीय के समीप न्यङ् व उत्तान शयन का निषेध किया गया है। वास्तव में उत्तानशयन द्वारा किस रहस्य की ओर इंगित किया जा रहा है, यह अन्वेषणीय है। माता के गर्भ में बालक की स्थिति भी उत्तानवत् ही होती है। ऋग्वेद १.१६४.३३, अथर्ववेद ९.१०.१२, कात्यायन श्रौत सूत्र ७.३.२५ तथा शतपथ ब्राह्मण ३.२.१.२९ में उत्तानमुख वाली योनि में गर्भ का उल्लेख है। यह गर्भ की स्थिति दीक्षा प्राप्त यजमान की स्थिति होती है। क्या उत्तानशयन से तात्पर्य गर्भ में शयन से है अथवा नहीं, यह अन्वेषणीय है। इसके अतिरिक्त, वर्तमान अनुक्रमणिका में आकाशशयन शीर्षक के अन्तर्गत जो पुराणों के निर्देश दिए गए हैं, क्या वह उत्तान शयन से ही संबंधित हैं, यह अन्वेषणीय है।

स्कन्द पुराण में उत्तानपाद व शिव के संवाद में भृगु पर्वत से कुण्ड में पतन के उल्लेखों के संदर्भ में गोपथ ब्राह्मण १.२.९ में अग्नि, आदित्य व यम को अंगिरस और वायु, आपः व चन्द्रमा को भृगु कहा गया है। यहीं पर यह भी वर्णन किया गया है कि इनमें से किसके कितने पाद हैं। अग्नि ६ पादों वाला है जिसके पाद पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्यौ, आपः, ओषधि व वनस्पति हैं। आदित्य ३ पाद वाला है जिसके तीन लोक रूपी तीन पाद हैं। वायु एक पाद है जिसका आकाश पाद है। चन्द्रमा २ पाद वाला है जिसके पूर्व पक्ष व अपर पक्ष २ पाद हैं। शतपथ ब्राह्मण १.७.१.२० में उदक से पूर्ण उत्तान पात्र का उल्लेख है जो असुरों से रक्षा करता है। इसका अर्थ होगा कि

उत्तान अंगिरस होने की सार्थकता तब है जब वह दिव्य सोम रस का, आपः का आहरण कर सके, अंगिरस से भृगु बन सके। ऊर्ध्वमुखी अथवा उत्तान स्थिति को अंगिरस तथा अधोमुखी स्थिति को भृगु कहा जा सकता है ( ?)। ऋग्वेद ४.१३.५, १०.२७.१३ तथा १०.१४२.५ में न्यङ् और उत्तान शब्दों का साथ-साथ उल्लेख आया है और हो सकता है कि इसी तथ्य को पुराणों में अंगिरस और भृगु के रूप में दर्शाया गया हो। यह आरोहण-अवरोहण साधना की की एक स्थिति है। दूसरी स्थिति वह है जब आरोहण-अवरोहण की आवश्यकता नहीं रहती, ध्रुव स्थिति। स्कन्द पुराण में इसे राजा चित्रसेन द्वारा देवशिला पर ब्रह्मा, विष्णु व महेश की स्थिति के रूप में दर्शाया गया है जबकि अन्य पुराणों में उत्तानपाद-पुत्र ध्रुव के रूप में। आधुनिक भौतिक विज्ञान के अनुसार जब पदार्थ में सूक्ष्म कण आरोहण-अवरोहण क्रिया में भाग लेते हैं तो ऊर्जा का क्षय होता है, जबकि वह कण जो अपने ही चक्र की परिधि में चक्कर लगाते रहते हैं, उनमें ऊर्जा का क्षय नहीं होता।

ऋग्वेद १०.१२९, १०.१३०, १०.१४५ आदि सूक्त भावसूक्त कहलाते हैं जिनमें असत् से सत् की उत्पत्ति आदि का वर्णन है। इन सूक्तों की अभी तक कोई सम्यक व्याख्या नहीं हो पाई है। उत्तानपाद का प्रकरण इस संदर्भ में महत्वपूर्ण है क्योंकि ऋग्वेद १०.७२.३ में भी असत् से सत् की उत्पत्ति का उल्लेख है और साथ ही साथ उत्तानपद से भू के उत्पन्न होने आदि का भी उल्लेख है। इसी प्रकार ऋग्वेद १०.१४५.२ के भावसूक्त में उत्तानपर्णा ओषधि का उल्लेख है।

**उत्थान** **अग्नि** ९२.४ (वास्तु प्रतिष्ठा में प्रतिष्ठा के स्थापन, उत्थापन, आस्थापन आदि पांच भेदों का कथन), **देवीभागवत** २.१०.६६ (तक्षक नाग द्वारा राजा परीक्षित के दंशन पर तक्षक के मुख से घोर अग्निशिखाओं के उत्थान का उल्लेख), २.१२.४५ (जरत्कारु मुनि की पत्नी द्वारा सन्ध्याकाल होने पर पति को जगाने पर मुनि के कोपपूर्वक उत्थान का उल्लेख), ३.१७.५२ (स्वप्न में जगदम्बा से वर पाकर शशिकला के मोदयुक्त उत्थान का उल्लेख), ५.२६.५६ (कालिका देवी द्वारा चण्ड असुर के बन्धन पर मुण्ड असुर के उत्थान का उल्लेख), ९.३७.८८ (यमदूतों द्वारा पापियों के कुम्भीपाक नरक कुण्ड में बार-बार निमज्जन व उत्थापन का उल्लेख), **पद्म** १.१६.११४ (ब्रह्मा के यज्ञ में सारी अग्नियों के उत्थान पर दीक्षाकाल प्राप्त होने तथा सावित्री पत्नी को आहूत करने का उल्लेख), ५.२.३० (श्रीराम के वन से प्रत्यागमन पर भरत द्वारा दण्डवत् प्रणाम करने तथा राम द्वारा अनुज का बाहुओं द्वारा उत्थापन का कथन), ५.१०७.२६ (वीरभद्र द्वारा अग्नि ज्वाला से भस्म ऋषियों को मृत्युञ्जय मन्त्र से अभिमन्त्रित करने पर ऋषियों के उत्थान का उल्लेख), ५.१०७.८३ (वीरभद्र द्वारा पञ्चमेढ्र राक्षस द्वारा भस्म किए गए देवताओं को जीवित करने पर मुनियों और देवों के उत्थान का कथन), ५.१०८.३२ (गोमय व गोमूत्र आहरण के लिए गौ के उत्थापन का निर्देश), ६.७.३८ (विष्णु-जालन्धर युद्ध में शुक्राचार्य द्वारा मृत असुरों का जल से स्पर्शन तथा हुंकार से प्रबोधन करने पर मृत असुरों के उत्थापन का कथन), ६.३०.१०७ (मार्जार द्वारा मूषिका को पकडने के लिए उत्थान पर दीप के प्रकाशित होने की कथा), **ब्रह्मवैवर्त्त** १.२७.२४ (वाम हस्त से जल का उत्थान करके पीने का निषेध), १.२९.७ (नारद ऋषि द्वारा बदरिकाश्रम में नारायण ऋषि को प्रणाम करने पर नारायण द्वारा नारद का उत्थान करके आलिंगन आदि करने का उल्लेख), ४.१.४७.२ (श्रीकृष्ण का सुख संभोग से उत्थान करके राधा के साथ मलयद्रोणी में वास करने का उल्लेख), **ब्रह्माण्ड** २.३.२४.२३ (शिव द्वारा भूमि पर नत परशुराम का अपने हाथों से उत्थापन करने का उल्लेख), २.३.२५.४ (परशुराम द्वारा शिव को बार-बार उठकर? उत्थाय-उत्थाय/प्रणाम करने का उल्लेख), ३.४.९.६७ (समुद्र मन्थन क्रिया में वारुणी देवी के उत्थान का उल्लेख), **भविष्य** २.२०.७ (केवल उत्थित अवस्था में ही पूर्णाहुति देने का निर्देश), ४.७०.५१ (कार्तिक शुक्ल एकादशी को विष्णु के उत्थापन उत्सव का वर्णन), ४.७४.५ (पुलस्त्य ऋषि के आगमन पर राजा भीम द्वारा उत्थान करके (उत्थाय) ऋषि को अपना आसन आदि देने का उल्लेख), ४.१३९.२३ (इन्द्रध्वज उत्थापन उत्सव का वर्णन), **भागवत** ३.२.३१ (कृष्ण द्वारा

कालिय नाग के उत्थापन का उल्लेख), ३.२६.५१ (महाभूतों से निर्मित अचेतन अण्ड से पुरुष के उत्थान तथा विराट के उदतिष्ठन् का कथन), ३.२६.५३ (हिरण्मय अण्डकोश से उत्थान करके महान् देव द्वारा उसमें पुनः प्रवेश करने और उसमें मुख, घ्राण, चक्षु आदि छिद्र उत्पन्न करने का वर्णन), ३.२६.६२ (विभिन्न देवों द्वारा विराट् पुरुष में प्रवेश करके उसके उत्थान की चेष्टा तथा असफलता का वर्णन), ३.२६.७० (चैत्य क्षेत्रज्ञ पुरुष द्वारा चित्त के माध्यम से हृदय में प्रवेश करने पर ही विराट् पुरुष के उत्थान का कथन), ४.२१.१४ (महासत्र की दीक्षा से राजा पृथु के उत्थान की नक्षत्रमण्डल में चन्द्रमा के उत्थान से उपमा), १०.१३.२२ (वेणु की ध्वनि सुनते ही ग्वालों की माताओं द्वारा उत्थान करके अपने पुत्रों का हाथों द्वारा उत्थापन करके उन्हें स्तनपान कराने का उल्लेख), १०.१३.६३ (ब्रह्मा द्वारा कनक दण्ड की भांति पृथिवी पर गिर कर कृष्ण को प्रणाम करने और फिर पुनः पुनः उठकर (उत्थायोत्थाय) कृष्ण के चरणों में प्रणाम करने का उल्लेख), **मत्स्य** २६५.११ (मूर्ति प्रतिष्ठा के संदर्भ में रथ यात्रा हेतु उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते इत्यादि मन्त्रों से मूर्ति के उत्थापन का निर्देश), **वायु** २५.४९ (ब्रह्मा के समक्ष शिर का भेदन करके उत्थित होने के कारण सावित्री नाम होने का उल्लेख), **विष्णु** ५.२३.२० (पाद से ताडन पर मुचुकुन्द का उत्थित होकर कालयवन को देखना और कालयवन का भस्म होना), **विष्णुधर्मोत्तर** १.१३.७ (मेषों के हरण पर राजा पुरूरवा का नग्न ही उत्थित होकर मेषों का अन्वेषण करना, उर्वशी का तिरोभूत होना), २.१२३.१० (वीरासन के लिए दिन में उत्थित होकर बैठने और रात्रि में उपविष्ट होने का निर्देश), २.१३७.१० (उत्पातों के संदर्भ में पतित वृक्षों के उत्थान पर भेदकारी भय होने का उल्लेख), २.१५५.१८ (इन्द्रध्वज उत्सव के संदर्भ में ध्वज का यन्त्र द्वारा उत्थापन करने का निर्देश), ३.२९५.६ (उत्थानवान् पुरुष की प्रशंसा), **शिव** २.२.३५.४ (विष्णु द्वारा चरणों में पड़े दक्ष का उत्थापन करने का उल्लेख), २.५.५७.१६ (ब्रह्मा के पुकारने पर गजासुर द्वारा बार-बार उत्थित होकर/उत्थायोत्थाय ब्रह्मा से अवध्यता का वर मांगना), ३.७.८ (शिव द्वारा चरणों में नत नन्दी का उत्थापन करने का उल्लेख), ६.१२.६७ (नान्दीमुख श्राद्ध के संदर्भ में द्विजों को भूमि पर दण्डवत् प्रणाम करने के पश्चात् उत्थित होकर अमृत वचन कहने का निर्देश), **स्कन्द** १.१.२९.२५ (तारक का मूर्च्छा के पश्चात् उत्थित होकर पुनः वीरभद्र से युद्ध करने का उल्लेख), २.१.२५.१८ (जाबालि तीर्थ में स्नान से विप्र के वेताल से मुक्त होकर उत्थित होने का उल्लेख), २.४.३३.३१ (कार्तिक शुक्ल एकादशी को विष्णु के उत्थापन की विधि का वर्णन), ३.१.१२.७५ (पराशर मुनि के स्पर्श से मनोजव राजा का मूर्च्छा त्याग कर उत्थित होने का उल्लेख), ६.२०७.७१ (इन्द्र यष्टि के उत्थापन के महत्व का कथन), ६.२०८.४ (शतानन्द द्वारा पिता गौतम से शिला में रूपांतरित माता अहल्या के उत्थापन की प्रार्थना करना), ६.२३१.८३ (कार्तिक शुक्ल एकादशी को विष्णु के उत्थान करने और क्षीर समुद्र में जाने का उल्लेख), ७.१.३२.९१ (दधीचि-पुत्र पिप्पलाद द्वारा पितृ-हन्ता देवों को कृत्या के उत्थापन द्वारा मार डालने का उद्योग), ७.२.१३.२ (पुनः पुनः उत्थान करके/उत्थायोत्थाय स्नान करने का निर्देश)।

द्र. इन्द्रध्वज।

**महाभारत** आदि २९.२७ (महागज का शब्द सुनकर जल में रहने वाले कूर्म के उत्थित होने का उल्लेख), ३०.३८ (गरुड द्वारा सोम के आहरण हेतु स्वर्ग की ओर अग्रसर होने पर धूलिकणों व उत्पातों के उत्थित होने का उल्लेख), ४७.१९ (सन्ध्याकाल में सुप्त जरत्कारु ऋषि का पत्नी द्वारा उत्थापन तथा जरत्कारु ऋषि का क्रोध आदि), ७८.१९ (देवों द्वारा हत दैत्यों को शुक्र द्वारा विद्या द्वारा उत्थापित करने का उल्लेख), २१६.२२ (वर्गा आदि अप्सराओं का जल से उत्थित होकर अपना पूर्व स्वरूप प्राप्त करने का उल्लेख), सभा ५.८७ (कालज्ञ मन्त्रियों सहित उचित काल में उत्थान का निर्देश?),

३७.३१ (श्रीकृष्ण पर आक्षेपों के पश्चात् शिशुपाल का अपने आसन से उत्थित होकर सभा से बाहर जाने का उद्योग), वन ३२.६ (सब भूतों द्वारा अपने उत्थान को जानने और कर्मों के प्रत्यक्ष फल के उपभोग करने आदि का कथन), ३२.५७ (सतत् उत्थानयुक्त होकर शत्रुओं के छिद्र का अन्वेषण करने का निर्देश), ११५.२८ (जल से एक सहस्र वाजियों के उत्थान के स्थान का अश्वतीर्थ नाम होने का उल्लेख), १७५.१ (रात्रि व्यतीत होने पर युधिष्ठिर द्वारा उत्थित होकर आवश्यक कार्य करने का उल्लेख), १९०.९६ (कलियुग के अन्त में कल्की नामक ब्राह्मण के उत्थित होने का कथन), उद्योग २२.८ (दुर्योधन के लिए उत्थानवीर्य विशेषण का प्रयोग), ३४.९ (कर्मों के विपाक,आत्मा/स्वयं के उत्थान आदि का विचार करके कर्म करने का निर्देश), ३७.५१ (क्रोध और हर्ष के उत्थित वेग को नियन्त्रित करने का निर्देश), भीष्म ५७.२९ (रणभूमि में जगत के विनाश के सूचक असंख्य कबन्धों के उत्थित होने का उल्लेख), द्रोण ९०.२८ (वही), ९७.१२ (वही), १८७.२९ (रणभूमि में रजोमेघ/धूलिमेघ के समुत्थित होने पर अपने और परायों के दृष्टिगोचर न होने का उल्लेख), कर्ण ५२.३५ (रणभूमि में अगणित कबन्धों के उत्थित होने का उल्लेख), शल्य २२.३९ (कृपाचार्य के साथ पांच पाण्डवों के युद्ध की तुलना देहधारियों की बार-बार विषयों की ओर प्रवृत्त होने वाली/उत्थायोत्थाय इन्द्रियों के साथ युद्ध से करना), ३२.४८ (युद्ध के पश्चात् स्तम्भित जल वाले सरोवर में छिपे हुए दुर्योधन के जल से उत्थित होने का उल्लेख), ५४.३३ (वही), सौप्तिक २.६, ११ (अदैव उत्थान/पुरुषार्थ तथा दैव अनुत्थान के व्यर्थ होने का कथन), शान्ति २९.११५ (राजा गय द्वारा प्रतिदिन/उत्थायोत्थाय सहस्रों गौ आदि दान करने का उल्लेख), ४१.१८ (युधिष्ठिर द्वारा विदुर, संजय आदि को प्रतिदिन/उत्थायोत्थाय बूढ़े धृतराष्ट्र की सेवा करने का निर्देश), ५६.१४ (भीष्म-युधिष्ठिर संवाद में भीष्म द्वारा उत्थान/पुरुषार्थ के बिना दैव सिद्ध न होने का कथन), ५८.१३-१५ (बृहस्पति द्वारा राजाओं के लिए उत्थान/उद्योग के महत्व का कथन), ७५.३ (राजा के लिए धार्मिक पुरुषों की उत्थान आदि द्वारा पूजा करने का निर्देश), १४०.२२ (राजा के लिए प्रतिदिन उठ-उठकर/ उत्थायोत्थाय शत्रु के घर जाकर उसका कुशल पूछने का निर्देश), १६६.३८ (ब्रह्मा के यज्ञ में अग्नि से असि रूपी भूत के उत्थित होने का उल्लेख), १७७.७ (उष्ट्र द्वारा २ दम्य गोवत्सों को उठाकर/उत्थाय भागने का उल्लेख), ३३१.३७ (उत्थान/प्रयत्न के फलित हो जाया करने की दशा में मृत्यु, वार्धक्य आदि से मुक्ति होने का उल्लेख), ३५०.१४ (ब्रह्मा द्वारा चरणों में पड़े शिव का सव्य पाणि से उत्थापन करने का उल्लेख), अनुशासन १७.१२९ (उत्थानः सर्वकर्मणाम् : शिव के सहस्र नामों में से एक), ४१.६ (कामलोलुप इन्द्र का स्वागत करने के लिए उत्थातुकामा गुरु-पत्नी रुचि की देह का शिष्य विपुल द्वारा स्तम्भन करने का वर्णन), १०४.१६ (ब्राह्म मुहूर्त में धर्म-अर्थ का चिन्तन करने के पश्चात् उत्थित होकर आचमन आदि करने का निर्देश)।

**टिप्पणी-** भारतीय संस्कृति में विशिष्ट अतिथि के आगमन पर उठकर खडे हो जाने और उसे दण्डवत् प्रणाम करने का प्रचलन है। उत्थान क्यों किया जाता है, इसका उत्तर यह दिया जाता है कि अतिथि के आगमन पर सारे प्राण उत्थित हो जाते हैं, उसी के प्रतीक रूप में उत्थान किया जाता है। लेकिन महाभारत सौप्तिक पर्व में अदैव उत्थान तथा दैव अनुत्थान के विवेचन से यह प्रश्न उठता है कि उत्थान स्वयं अपने पुरुषार्थ द्वारा किया जाता है अथवा वह अतिथि द्वारा, देवशक्तियों द्वारा किया जाता है? महाभारत के विवेचन से हमें यह उत्तर मिलता है कि यद्यपि प्राणों का उत्थान स्वयं करना होता है, लेकिन जब तक देवशक्तियां उसमें सहायक न हों, वह व्यर्थ होता है।

प्राणों के उत्थान का क्या तात्पर्य है, इसका संकेत ऐतरेय ब्राहण ७.२९ से मिलता है जहां कहा गया है कि शूद्र व्यक्तित्व काम द्वारा उत्थाप्य है। सारी जड प्रकृति उत्थान के लिए लालायित है। इसी के फलस्वरूप पेड-पौधों पर पुष्पों का विकास होता है। पुष्प प्राणों की उत्थित अवस्था है। स्वयं पेड-पौधे भी प्रकृति का उत्थान दर्शाते हैं। मनुष्य व्यक्तित्व में मुख का विकास उत्थान की इस प्रक्रिया की उच्च अवस्था है।

लेकिन आवश्यकता इस बात की है कि मनुष्य अपने पुरुषार्थ के द्वारा अपने व्यक्तित्व के कण-कण को पुष्पित कर दे, उसका उत्थान कर दे। जहां पुरुषार्थ का अभाव होता है, वहां उत्थान का कार्य प्रकृति की कामना शक्ति के अनुसार होता है, कामदेव के बाणों के द्वारा होता है। ऐसे व्यक्तित्व को ब्राह्मण ग्रन्थों में शूद्र या क्षुद्र, तुच्छ कहा गया है। मनुष्य द्वारा अपने व्यक्तित्व को पुष्पित करने की प्रक्रिया को वैदिक भाषा में ओदन पकाना या उदान प्राण की वृद्धि करना कहा जाता है। अथर्ववेद १२.३.३० के अनुसार पात्र के जल में जो तण्डुल नीचे पेंदी में पड़े हैं, उन्हें पकाकर शृत करके पेंदी से ऊपर उठाना है। शतपथ ब्राह्मण १३.३.६.६ के अनुसार संवत्सर के १२ मासों के अनुसार १२ ब्रह्मोदनों को पकाना पड़ता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में तण्डुलों को पुरुष के वीर्य के समान कहा गया है। यह वास्तविकता है कि पुरुष वीर्य में ही ऐसी महिमा है कि यदि उसे शृत होने का अवसर मिल जाए तो वह पुष्प की भांति खिलता चला जाता है, ऊपर की ओर अग्रसर होता चला जाता है। शतपथ ब्राह्मण ३.८.३.३० में उत्थित होने वाली वस्तु को मेध नाम दिया गया है। इसके अतिरिक्त, ऋग्वेद १.१२३.१ व ७.७७.२ आदि में उषा के उत्थान का, २.३८.४, ६.७१.४ व ८.२७.१२ आदि में सविता देव के उत्थान का तथा अथर्ववेद ९.७.१९ में अश्विनौ के उत्थान का उल्लेख है। लेकिन शतपथ ब्राह्मण ६.४.३.९ तथा जैमिनीय ब्राह्मण १.११ व २.२३ आदि का कथन है कि आसीन होने वाले/शयन करने वाले देवों में अग्नि श्रेष्ठ है, जबकि उत्थान करने वाले देवों में आदित्य श्रेष्ठ है। गोपथ ब्राह्मण २.४.११ के अनुसार ५ देवता प्राणों के उत्थापन में भाग लेते हैं : अग्नि वाक् का उत्थापन करता है, वरुण प्राण का, इन्द्र मन का, बृहस्पति चक्षु का तथा विष्णु श्रोत्र का। इस कथन का व्यावहारिक रूप अन्वेषणीय है।

उपनिषदों में उत्थान की प्रक्रिया के यौगिक पक्ष पर विचार किया गया है। योगतत्त्वोपनिषद १२१, जाबालदर्शनोपनिषद ६.३३ तथा हंसोपनिषद १ में अपान प्राण को उत्थित करके क्रमशः सात चक्रों की यात्रा करते हुए ब्रह्मरन्ध्र तक पंहुचने का उल्लेख है। महोपनिषद ५.३८ में भी ७ भूमिकाओं में उत्थान का उल्लेख है। शरीर के इन चक्रों को भी पुष्पों का रूप ही कहा जा सकता है। त्रिशिखब्राहमणोपनिषद २.१०४ तथा जाबालदर्शनोपनिषद ६.१४ व ६.४४ में उत्तम प्रकार के प्राणायाम द्वारा शरीर के उत्थान का उल्लेख है। त्रिशिखब्राह्मणोपनिषद २.७० में सुषुम्ना, इडा, पिंगला आदि नाडियों के उत्थान का उल्लेख है। छान्दोग्य उपनिषद ७.८.१ में बल को तथा बृहदारण्यक उपनिषद ५.१३.१ में प्राण को उत्थाता अर्थात् उत्थान करने वाले कहा गयाहै। प्राण के अन्तर्गत यजु, साम तथा क्षत्र को प्राण कहा गया है।

पुराणों में सार्वत्रिक रूप से भक्त द्वारा प्रकट हुए देवता को दण्डवत् प्रणाम करने तथा देवता द्वारा भक्त के उत्थापन का उल्लेख आता है। इन्द्रयाग में इन्द्रध्वज के उत्थापन में भी दण्ड का ही उत्थापन किया जाता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में उत्थापन और दण्ड का एक साथ उल्लेख केवल इस संदर्भ में आता है कि यदि अग्निहोत्र कार्य के लिए दुग्ध प्रदान करने वाली अग्निहोत्री गौ बैठ जाए तो दण्ड से उसे उत्थापन के लिए प्रेरित करते हैं कि हे अदिति, उत्थापन करो और यज्ञपति को आयु प्रदान करो आदि (शतपथ ब्राह्मण १२.४.१.९, जैमिनीय ब्राह्मण १.५९, तैत्तिरीय ब्राह्मण १.४.३.१, ऐतरेय ब्राह्मण ७.३)। दण्ड दमन के अर्थों में आता है। यह एकान्तिक साधना का प्रतीक हो सकता है, जबकि उत्थापन सार्वत्रिक साधना का। जब वृक्ष के स्कन्ध से शाखाओं और पत्तों/पर्णों को काट दिया जाता है, तब दण्ड बनता है। स्कन्द पुराण ६.२६३ के अनुसार योगी तीन दण्डों को धारण करता है— मन दण्ड, वाक् दण्ड व कर्म दण्ड। मन की विजय अश्वमेध यज्ञ के तुल्य है, वाक् की विजय गोमेध यज्ञ के और कर्म/कल्पना की विजय सौत्रामणी यज्ञ के। वाक् दण्ड ब्राह्मण का अस्त्र होता है, वह वाक् द्वारा शाप और वरदान दे सकता है। यह कल्पना की जा सकती है कि ब्राह्मण ग्रन्थों में जिस दण्ड द्वारा गौ के उत्थापन का उल्लेख है, वह वाक् दण्ड होगा। वैसे भी, ब्राह्मण ग्रन्थों में कहा गयाहै कि वाक् ही धेनु है। अतः यह परावाक् के उत्थापन का, परावाक् को वैखरी वाक् के स्तर तक लाने का प्रयत्न है, ऐसी वाक् जो कल्पवृक्ष की भांति हो। जब पुराणों में इन्द्रध्वज के उत्थापन का वर्णन आता है तो उसे मन दण्ड के उत्थापन के रूप में समझा जा सकता है क्योंकि ब्राह्मण ग्रन्थों में इन्द्र का सम्बन्ध मन से कहा गया है (यद् मनः स इन्द्रः-गोपथ २.४.११; इन्द्राय मन्युमते मनस्वते---- तैत्तिरीय संहिता २.२.८.२)। श्रीकृष्ण द्वारा इन्द्रयाग के स्थान पर गोवर्धन की पूजा के निर्देश को समझने में भी यह तथ्य उपयोगी हो सकता है। भविष्य पुराण

३.४.२५.१६५ में गोकुल आदि १० ग्रामों को १० इन्द्रियों का तथा गोवर्धन को मनस् प्रकृति का प्रतीक कहा गया है। इन्द्रध्वज में ध्वज दण्ड मन के नियंत्रण से सम्बन्धित हो सकता है, जबकि गोवर्धन पर्वत के रूप में मन को नियंत्रित करने की कोई आवश्यकता नहीं रह गई है, वह इन्द्रियों रूपी गायों का वर्धन करने वाला है और उससे भी परे जाकर श्रीकृष्ण उसे धारण कर लेते हैं। कर्मदण्ड के उत्थापन को क्या पुराणों में चातुर्मास में विष्णु के शयन के पश्चात् एकादशी को उनके उत्थान के रूप में प्रदर्शित किया गया है, यह अन्वेषणीय है। डा. फतहसिंह के अनुसार पुराणों में सांकृति मुनि के तप में वृक असुर द्वारा विघ्न और विष्णु द्वारा चातुर्मास में वृक के ऊपर शयन की कथा में सांकृति को कृति, सर्वोत्तम कर्म का प्रतीक तथा वृक को अहंकार का प्रतीक मान लेने पर विष्णु के उत्थापन को कर्म दण्ड के उत्थापन का प्रतीक कहना सरल हो जाता है। योगशिखोपनिषद १.८ तथा योगतत्त्वोपनिषद १२ में जीव में अहंकार के उत्थान के कारण काम, क्रोध, भय,मोह, क्षुधा, तृष्णा आदि आदि दोषों के उदय होने का उल्लेख आता है। यह सब वृक असुर के रूप हैं।

स्कन्द पुराण के प्रभास खण्ड में पिप्पलाद ऋषि द्वारा कृत्या के उत्थापन और कृत्या के सूचीमुख होकर समुद्र के जल के भक्षण की कथा के संदर्भ में अथर्ववेद १०.१.२९ में भी छिपी हुई कृत्या के उत्थापन का वर्णन आता है।

जैमिनीय ब्राह्मण १.३२२ तथा १.३३६ में भक्ति की प्रतिहार अवस्था के पश्चात् की अवस्था को उत्थापन करने वाली कहा गया है (हिंकार, प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार और निधन, यह साम की पांच अवस्थाएं हैं)। जैमिनीय ब्राह्मण २.४१८, ३.२८३ तथा ३.२९३ में द्वादशाह यज्ञ के संदर्भ में दशम अह को उत्थापन करने वाला अह कहा गया है। जैमिनीय ब्राह्मण ३.३७९ में दस दिनों की क्रमिक अवस्थाओं का वर्णन किया गया है।

अथर्ववेद सूक्त १५.२ के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि आसीन स्थिति और उत्थान स्थिति के बीच एक उदतिष्ठन् स्थिति है (तुलनीयः भागवत ३.२६.५१ में विराट् का उदतिष्ठन्) जिसमें अन्तरिक्ष में दिशाओं में क्रमण किया जाता है। वैदिक साहित्य में उदतिष्ठन् स्थिति का विस्तृत उल्लेख आता है जिसे इस टिप्पणी में सम्मिलित नहीं किया गया है।

**उत्पत्ति योगवासिष्ठ** ३.१२+ (आत्मा के लय के पश्चात् तन्मात्राओं व जगत की उत्पत्ति का वर्णन), ३.९३ (परमेष्ठी ब्रह्म से मन, मन से हिरण्यगर्भ/ब्रह्मा, उनसे मोह, अहंकार, अहंकार से विश्व की उत्पत्ति का वर्णन), ४.१२ (मोह व अज्ञान से जगत की उत्पत्ति का वर्णन)।

द्र. सर्ग, सृष्टि।

**उत्पल नारद** १.६८.३७ (उत्पल की समित् से भूप-पत्नी व पद्म-समित् से भूपों को वश में करने का उल्लेख), १.८७.१४७ (होम में उत्पल की आहुति द्वारा विश्व के वश में होने का उल्लेख), **पद्म** ६.१३३.२४ (सुभद्रा-सिन्धु संगम पर तीर्थ का नाम), **ब्रह्मवैवर्त्त** ३.४.५२ (चक्षुओं में रूप हेतु लक्ष नीलोत्पल दान का उल्लेख), **भविष्य** ३.४.१०.५४ (वाल्मीकि/मृगव्याध के तप से उत्पलारण्य की उत्पत्ति, ब्रह्मा द्वारा उत्पलारण्य में तप करने का उल्लेख), **मत्स्य** १३.३४ (कमलाक्ष तीर्थ में सती की महोत्पला नाम से स्थिति), १३.४५ (उत्पलावर्तक तीर्थ में सती देवी का लोला नाम से वास), ११४.३० (मलय पर्वत से निकलने वाली उत्पलावती नदी), **मार्कण्डेय** ७४.२१/ ७१.२१ (उत्पलावती : दृढ़धन्वा-पुत्री, राजा स्वराष्ट्र- भार्या, सुतपा ऋषि के शाप से मृगी रूप में जन्म, स्वराष्ट्र द्वारा मृगी की पुच्छ को ग्रहण करके नदी का प्लवन करना, उत्पलावती का लोल/तामस मनु की माता बनना), **वायु** ४५.१०५ (मलय पर्वत से निःस्सृत उत्पलावती नदी), **विष्णुधर्मोत्तर** ३.३७.११ (निर्विकार स्थिति में उत्पल पत्र समान नेत्राकृति होने का कथन), ३.४८.१६ (उमा देवी के हाथ में उत्पल वैराग्य का प्रतीक होने का उल्लेख), ३.१२५.१९ (उत्पलावर्तक तीर्थ में शौरि नाम से श्रीकृष्ण का कीर्तन करने का निर्देश), **शिव** २.५.५९ (विदल व उत्पल दैत्यों की पार्वती पर आसक्ति, पार्वती द्वारा कन्दुक से दोनों दैत्यों का युगपत् नाश), **स्कन्द** २.२.४४.५ (संवत्सर व्रत में कार्तिक पूर्णिमा को उत्पल पुष्प द्वारा श्रीहरि की पूजा का निर्देश, अन्य मासों में

अन्य पुष्पों का उल्लेख), ४.१.२१.३१ (पुष्पों में नीलोत्पल की श्रेष्ठता का उल्लेख), ५.३.१९८.८३ (उत्पलावर्त तीर्थ में उमा की लोला नाम से स्थिति का उल्लेख), **कथासरित्** ९.६.११५ (चन्द्रस्वामी द्वारा देवी से विषघ्न उत्पल की प्राप्ति, उत्पल प्रभाव से सर्प-दंशित पुत्र महीपाल का पुनः जीवित होना), १६.२.८०, १६.२.१७९ (उत्पलहस्त : उज्जयिनी में चाण्डाल, पूर्व जन्म में विद्याधर, कन्या सुरतमंजरी का राजपुत्र अवन्तिवर्धन से विवाह करना, मुक्ति)।

द्र.कमल, कुमुद, पद्म।

**टिप्पणी**– वैदिक साहित्य में उत्पल शब्द केवल कुछेक उपनिषदों में प्रकट हुआ है। वैदिक साहित्य में उत्पल के स्थान पर उत्प्लव शब्द आता है। उत्प्लव अर्थात् ऊपर की ओर प्लवन। मार्कण्डेय पुराण में सुतपा ऋषि द्वारा उत्पलावती को मृगी बनने का शाप देना इस तथ्य की ओर स्पष्ट संकेत है। मृग को विद्वान लोग मृज धातु से व्युत्पन्न मानते हैं। मृज अर्थात् जो मार्जन करे। उत्प्लवन से पूर्व मार्जन आवश्यक है। ब्राह्मण ग्रन्थों में प्लवन और उत्प्लवन के साथ-साथ उल्लेख आते हैं। षड्विंश ब्राह्मण ६.७.२ में पृथिवी से अपेक्षा की गई है कि वह प्लवं करने वाले का मज्जन करने वाली हो और निमग्न का उत्प्लवन करने वाली हो। वह कौन सा जल है, कौन सा समुद्र है जिसमें प्लवन करना है तथा प्लवन का साधन क्या है, इसका उत्तर ब्राह्मण ग्रन्थों में विभिन्न रूपों में मिलता है। जैमिनीय ब्राह्मण ३.१९५ का कथन है कि छन्दोम समुद्र हैं (द्वादशाह नामक १२ दिवसीय यज्ञ में प्रथम ६ दिन तो एकान्तिक साधना के, वृत्र को, अपने दुर्गुणों को समाप्त करने के होते हैं। सातवें, आठवें व नवें दिनों में आनन्द की, रस की प्राप्ति होती है। इन्हें ही छन्दोम दिवस कहा जाता है। दसवें दिन अतीन्द्रिय स्थिति होती है जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता-ऐतरेय ब्राह्मण)। सुबालोपनिषद १३ में उत्पल की भांति स्थित होने की अपेक्षा की गई है। उत्पल जल में स्थित रहता है लेकिन जल में डूबता नहीं है, ऊपर ही रहता है। ऐसा प्रतीत होता है कि छन्दोम दिवसों के पश्चात् अतीन्द्रिय स्थिति को ही उत्पल की संज्ञा दी गई है। गोपथ ब्राह्मण १.५.४ तथा शतपथ ब्राह्मण १२.२.४.८ का कथन है कि प्लवन अंगों के द्वारा किया जाता है, जबकि स्थित(तिष्ठ) होने का कार्य आत्मा द्वारा किया जाता है।

ऋग्वेद १०.१५५.३ में उल्लेख है कि दारु/काष्ठ सिन्धु में अपौरुषेय रूप में प्लवन करती रहती है। कोई भी दारु स्थिति को प्राप्त कर समुद्र पार कर सकता है। अथर्ववेद १२.२.४८ में अनड्वाह/बैल को प्लव कहा गया है (प्राणापानौ अनड्वाहौ-अथर्ववेद)। प्राणों की अर्वाक्-पराक् गति को अनड्वाहौ का प्रथम चरण माना जाता है। काठक संहिता ३३.५, षड्विंश ब्राह्मण ४.२.१४, ऐतरेय ब्राह्मण ४.१३ तथा तैत्तिरीय संहिता ७.५.३.२ में समुद्र में प्लवन के लिए रथन्तर और बृहत् को देवों के प्लव कहा गया है। जैमिनीय ब्राह्मण २.३७९ में जगती व बृहती छन्दों को प्लव कहा गया है। ऋग्वेद १.१८२.५ के अनुसार आत्मवान पक्षी रूपी तुग्र राजा के लिए अश्विनौ ने प्लव बनाया (पक्षी आकाश में बिना किसी प्रयास के प्लवन करता रहता है। शाण्डिल्य भक्ति सूत्र में यह भक्ति की एक स्थिति कही गई है)। जैमिनीय ब्राह्मण १.१८४ में वर्णन आता है कि एकत, द्वित व त्रित नामक भ्राता-त्रय में से त्रित कूप में गया तो एकत और द्वित ने उस कूप को ऊपर से ढंक दिया और गाएं लेकर भाग गए। तब त्रित ने एक साम द्वारा स्तुति की। तब पर्जन्य वृष्टि ने उसका ऊर्ध्व उदप्लावन किया। जैमिनीय ब्राह्मण ३.१९३ में भी पर्जन्य वृष्टि द्वारा ऊर्ध्व उदप्लवन का वर्णन है। जैमिनीय ब्राह्मण २.३८५ से संकेत मिलता है कि प्लवन के लिए जिस ऊर्जा की आवश्यकता होती है, वह अतिरिक्त ऊर्जा है। आपस्तम्ब श्रौत सूत्र १३.२०.११ तथा वैखानस श्रौत सूत्र १६.२६ में यज्ञ में सोमलता से सोमरस निकालने के पश्चात् अवशिष्ट ऋजीष से भिन्दु/बिन्दु के उदप्लवन का उल्लेख आता है। यह भी अतिरिक्त ऊर्जा का रूप हो सकता है।

पुराणों में नीलोत्पल के पुष्पों में सर्वश्रेष्ठ होने के उल्लेख के संदर्भ में तैत्तिरीय आरण्यक ६.७.२ में नळ प्लव का उल्लेख आता है। नल अवस्था को नृ-नृत्य की अवस्था मान सकते हैं। इससे ऊपर की अवस्था निलय की, नील की, आत्मन्वत् स्थित होने की अवस्था है। रामायण की लौकिक कथा में नल और नील वानरों द्वारा समुद्र में पत्थरों द्वारा सेतु तैयार करने का वर्णन आता है। यह कथा इस प्रकरण को समझने के लिए पर्याप्त है।

**उत्पलाक्ष** **देवीभागवत** ७.३८.२८ (सुवर्णाक्ष क्षेत्र में उत्पलाक्षी देवी की स्थिति), **पद्म** ६.१३३.१४ (रेवत गिरि पर उत्पलाक्ष/सहस्राक्ष तीर्थ की स्थिति), **मत्स्य**

१३.३४ (सहस्राक्ष तीर्थ में सती की उत्पलाक्षी नाम से स्थिति), **स्कन्द** ५.३.१९८.७२ (सहस्राक्ष तीर्थ में उमा की उत्पलाक्षी नाम से स्थिति का उल्लेख)।

द्र. कर्णोत्पल।

**उत्पात अग्नि** २६३ (उत्पात प्रकार व शान्तियों का वर्णन), २६४.१ (उत्पात शान्ति हेतु देव पूजा), ३२१ (उत्पात प्रकार अनुसार होम द्रव्य कथन), **देवीभागवत** ११.२४ (उत्पात शान्ति हेतु गायत्री जप विधि), **नारद** १.५१.२ (शान्ति कल्प में उत्पात शान्ति के विधान का कथन), १.५६.७४६ (उत्पात प्रकार वर्णन), **भविष्य** २.३.२० (दिव्य, भौम, अन्तरिक्ष जन्य उत्पात शान्ति उपाय), ४.१३९ (इन्द्रध्वज उत्सव में उत्पात), **भागवत** ३.१७.३ (हिरण्यकशिपु व हिरण्याक्ष के जन्म समय में उत्पात), **मत्स्य** १६३.३० (हिरण्यकशिपु की सभा में उत्पात), २२९+ (उत्पात/ अद्भुत् भेद, लक्षण व शान्ति उपाय), २३७ (पशु-पक्षी जन्य उत्पात कथन), **वा.रामायण** ३.२३.१ (खर द्वारा पञ्चवटी की ओर प्रस्थान करते समय उत्पात), ६.२३.३ (राम द्वारा सेतु पार करने पर द्रष्ट उत्पात), ६.४१.१२ (राम द्वारा वानरों व राक्षसों की मृत्यु सूचक उत्पात दर्शन), ६.५७.३३ (युद्ध के समय रावण-सेनानी प्रहस्त द्वारा द्रष्ट उत्पात), ६.६५.४७ (कुम्भकर्ण की रण यात्रा के समय उत्पात), ६.७८.१७ (मकराक्ष द्वारा युद्ध को प्रस्थान के समय उत्पात), ६.९५.४२ (रावण की रण यात्रा के समय उत्पात), ६.१०६.२० (रावण-राम युद्ध के समय उत्पात), **विष्णुधर्मोत्तर** १.३७ (सिंहिका-पुत्र साल्व के नगर में उत्पात), २.१३४ (नाना विध उत्पात), २.१३७ (वृक्ष विकृति रूपी उत्पात व फल), २.१३८ (वृष्टि विकृति रूपी उत्पात), २.१३९ (जल विकृति रूपी उत्पात), २.१४० (प्रसव विकृति रूपी उत्पात), २.१४३(मृग-पक्षी विकृति रूपी उत्पात), **स्कन्द** २.२.२५.६०(रथ यात्रा काल में रथ के अङ्गों के भङ्ग होने रूपी उत्पात का वर्णन), ५.३.२८.३० (बाण के त्रिपुर नाश हेतु शिव रथ के प्रस्थान के समय उत्पात वर्णन), ५.३.९०.४१ (श्री कृष्ण द्वारा वध से पूर्व तालमेघ दैत्य के समक्ष प्रकट उत्पातों का कथन), **हरिवंश** ३.४६ (दैत्य विनाश सूचक उत्पात), ३.५३.२७ (बलि व इन्द्र के युद्ध में उत्पात), **लक्ष्मीनारायण** २.१७६.३३ (ज्योतिष में उत्पात योग का कथन), ३.१४६+ (दैव, अन्तरिक्ष, भौम आदि उत्पात व उनकी शान्ति का वर्णन), **कथासरित्** ८.५.९६ (श्रुतशर्मा विद्याधर-सेनानी, अर्यमा देवता का अंश)।

द्र. अद्भुत्, अपशकुन।

**उत्सर्ग भविष्य** ४.१२७ (वापी, कूप, तडाग उत्सर्ग विधि व माहात्म्य), **भागवत** ६.१८.६ (मित्र व रेवती-पुत्र)।

**उत्सव अग्नि** ६८ (देवप्रतिष्ठा उपरान्त उत्सव विधि), ६९ (स्नपनोत्सव विधि, कुम्भ विन्यास), ६८, २६८ (शयनोत्थान उत्सव), **नारद** १.१२१.३९ (नीराजन द्वादशी उत्सव विधि), **पद्म** ६.८३ (दोलारोहण उत्सव), ६.८४ (दमनक उत्सव), ६.८५ (जलशयन उत्सव), **भविष्य** ३.३.२६ (वामन उत्सव), ४.१३२ (फाल्गुन पूर्णिमा उत्सव : राजा रघु व ढुण्ढा राक्षसी का वृत्तान्त), ४.१३३+ (दमनक उत्सव, दोलारोहण उत्सव, रथयात्रा उत्सव), ४.१३५ (मदन उत्सव), ४.१३६ (भूतमात्र उत्सव), ४.१३९ (महेन्द्र ध्वज उत्सव), ४.१४० (दीपमालिका उत्सव), **वामन** ९१.५८ (द्वार प्रतिपदा उत्सव, बलि राजा), ९१.६० (कौमुदी उत्सव, बलि राजा), **विष्णु** ५.१० (इन्द्र उत्सव), **विष्णुधर्मोत्तर** २.१५५ (शक्रध्वज उत्सव), **शिव** ५.५१.५५ (चैत्र शुक्ल तृतीया को दोला उत्सव का कथन), **स्कन्द** १.२.२२ (जगदम्वा जन्म उत्सव), २.२.३३ (महादेवी उत्सव),, २.२.३६ (चातुर्मास में पुरुषोत्तम शयन उत्सव विधि व माहात्म्य), २.२.३९ (कौमुदी उत्थापन उत्सव), २.२.३९ (शयन उत्सव, व्रत), २.२.४० (प्रावरण उत्सव : पुरुषोत्तम का वस्त्रों दारा आच्छादन), २.२.४१(पुष्य स्नान उत्सव), २.२.४२ (उत्तरायण उत्सव), २.२.४३ (फाल्गुन में दोलारोहण उत्सव),, २.४.३३.३८ (प्रबोध उत्सव), २.४.३५.३३ (त्रैपुर उत्सव), २.५.१४ (मत्स्य उत्सव विधि व माहात्म्य), २.६.२.२५ (कृष्ण द्वारा उद्धव को आत्मोत्सव रूप

प्रदान करना), **हरिवंश** २.१५ (व्रज में इन्द्र उत्सव), **लक्ष्मीनारायण** १.२८१(दोला उत्सव, मकर संक्रान्ति उत्सव, वसन्त उत्सव, होलिका उत्सव आदि), २.६५+ (यज्ञोपवीत उत्सव वर्णन), २.११५.५४ (फाल्गुन में पुष्प दोला महोत्सव विधि)।

**उत्स्थल** **कथासरित्** ५.२.३३ (उत्स्थल द्वीप निवासी सत्यव्रत निषाद द्वारा शक्तिदेव की कनक द्वीप के अन्वेषण में सहायता करना), ५.३.१३७ (उत्स्थल द्वीप में शक्तिदेव का बन्धन, सत्यव्रत-पुत्री बिन्दुमती से विवाह आदि)।

**उदक** **गरुड** २.८.९/२.१८.९ (उदकुम्भ प्रदान से किंकरों की तृप्ति होने का उल्लेख), २.२७.५/२.३७.५ (उदकुम्भ प्रदान से प्रेत/मृत पुरुष की अस्थियों के पुष्ट होने का उल्लेख), **देवीभाग** ११.१६.५३ (सायंकाल उदक प्रक्षेपण से सूर्य भक्षण के इच्छुक मन्देहा राक्षसों के नाश का कथन), **नारद** २.३२.६० (विरोचन व उसकी पत्नी विशालाक्षी द्वारा द्विज के पादोदक ग्रहण करके उसे सिर पर ग्रहण करने व स्वर्ग जाने का वृत्तान्त), **पद्म** १.१०.२१ (श्राद्ध में तिलोदक से पूर्ण उदकुम्भ दान का निर्देश), ३.२७.३२ (पृथूदक तीर्थ की महिमा का वर्णन), ३.३८.२७ (गया में उदपान तीर्थ का संक्षिप्त माहात्म्य : वाजिमेध फल की प्राप्ति), ३.५३.८ (गुरु के लिए नित्य प्रति उदकुम्भ आदि आहरण का निर्देश), ६.१८८.४१ (महाराष्ट्र में प्रत्युदक नगर में केशव ब्राह्मण द्वारा स्व-पत्नी के ताडन से अगले जन्म में शश बनने आदि की कथा), ६.२५२.३४ (श्रीकृष्ण द्वारा स्वर्ण कलश से जल लेकर सखा सुदामा के पाद प्रक्षालन करने का उल्लेख), ७.२१.३४ (भद्रक्रिय ब्राह्मण के पादोदक के स्पर्श से भषक/श्वान के उद्धार की कथा), **ब्रह्म** १.५७.६० (पितृ तर्पण कर्म में उदक तर्पण की सम्यक् विधि का कथन), **ब्रह्माण्ड** १.२.१९.१३७ (उदधि की निरुक्ति : उदक का अयन), १.२.३६.१०४ (अरण्य-पुत्र उदक द्वारा वरुणत्व प्राप्ति और वारुणी-भ्राता होने का उल्लेख), २.३.१२.२१ (नित्य बलि कर्म में उदकपूर्व तथा उदकान्त में बलि करने का निर्देश), २.३.१३.२६ (ताम्रपर्णी-उदधि संगम से शंख-मौक्तिक युक्त उदक आहरण से व्याधियों आदि से मुक्ति पाने का कथन), **भविष्य** १.६४.२१ (सूर्य का उदक से अभ्युक्षण करने से वरुण लोक प्राप्ति का उल्लेख), १.१०३.३७ (क्षय? में सूर्य का उदक से अभ्युक्षण करने से कृष्ण/गोपति लोक प्राप्ति का उल्लेख), १.१९७.२३ (उदक प्रसृति पीकर उदकसप्तमी व्रत करने का निर्देश), **भागवत** ९.२१.२६ (उदक्स्वनः विष्वक्सेन-पुत्र, भल्लाद-पिता, नीप वंश), १०.८०.२० (श्रीकृष्ण द्वारा सुदामा के पाद प्रक्षालन करके पादोदक को शीर्ष पर धारण करने का उल्लेख), **लिङ्ग** १.४३.४६ (मेघों द्वारा नन्दी के अभिषेक से स्वर्णोदक नदी का प्रादुर्भाव), **वराह** ७६.१३ (पश्चिम दिशा में उदकाधिपति वरुण की शुद्धवती पुरी की स्थिति का उल्लेख), ११२.३४ (कपिला गौ दान के समय ब्राह्मण के हाथ में उदक देकर शुद्ध वाक् द्वारा उच्चारण का निर्देश), २१५.६६ (मृग रूप धारी शिव के शृंग मूल से निस्सृत जल से निर्मित मृग शृंगोदक तीर्थ का माहात्म्य : पाप नाश), २१५.९० (क्रोशोदक तीर्थ का माहात्म्य कथन), **वामन** २१.२१ (कुरुक्षेत्र में स्थित पृथूदक तीर्थ में उदक द्वारा पितरों की पूजा का निर्देश), २२.४५ (पृथूदक तीर्थ की महिमा के संदर्भ में कुरुक्षेत्र की उत्पत्ति का वर्णन : राजा कुरु द्वारा स्व-शरीर का कर्षण), ३१.८५ (उदक रहित पूजा का फल बलि असुरराज को प्राप्त होने का उल्लेख), ५८.११५ (क्रौञ्च पर्वत के वध के पाप से मुक्ति हेतु स्कन्द को पृथूदक तीर्थ में स्नान, तप आदि करने का निर्देश), **वायु** ४९.८५ (उदय पर्वत पर उदक वर्ष की स्थिति का उल्लेख), ७७.२६/२.१५.२६ (ताम्रपर्णी-उदधि संगम से शंख-मौक्तिक युक्त उदक आहरण से व्याधि नाश का कथन), **वा. रामायण** २.६३.२६ (सरयू तट पर माता-पिता हेतु उदक हरणार्थ गए मुनिकुमार के दशरथ द्वारा वध का वृत्तान्त), **विष्णु** ४.२.४० (उदक ऋषि के अनुरोध पर कुवलयाश्व राजा द्वारा दुन्दु असुर के वध का उल्लेख), ४.४.५६ (वसिष्ठ मुनि को शाप देने को उद्धत

राजा सौदास द्वारा शाप हेतु पाणि के अम्बु को अपने पादों पर गिराना और पादों का कल्मषता को प्राप्त होना), ६.४.३२ (प्रत्याहार में भूमि के उदक में व उदक के ज्योति में लीन होने आदि का कथन), **विष्णुधर्मोत्तर** २.२९.७ (वास्तु विद्या के संदर्भ में उदक का शीघ्र शोषण न करने वाली भूमि के प्रशस्त होने का उल्लेख), ३.२३८.३४ (पुण्यात्माओं द्वारा सूर्य के उदक में प्रवृत्त होने पर मृत्यु प्राप्त करने का उल्लेख), ३.२९६.२ (उदक महिमा के अन्तर्गत विभिन्न ऋतुओं में उदक के भण्डारण हेतु कूप, तडाग आदि निर्माण करने पर विभिन्न यज्ञों के फल की प्राप्ति का वर्णन), **शिव** ३.७.१८ (शिव की जटाओं में आश्रित जल से जटोदक और स्वर्णोदक आदि नदियों के प्रादुर्भाव का कथन), **स्कन्द** १.२.४५.१, १.२.४६.१४७ (बहूदक तीर्थ का विस्तृत माहात्म्य : नन्दभद्र वैश्य द्वारा कपिलेश्वर लिङ्ग की स्थापना, कुष्ठी बालक से संवाद आदि), २.४.३२.२५ (कार्तिक शुक्ल एकादशी को अपत्य रहित भीष्म हेतु उदक दान आदि करने का निर्देश), ५.२.६७.१८ (केदारेश्वर तीर्थ में शिव द्वारा मन्त्रपूर्ण उदक निर्माण करने आदि का कथन), ५.२.८४.१६ (परीक्षित राजा द्वारा उदक का दर्शन न कराने की शर्त पर मण्डूकराज आयु की कन्या को प्राप्त करना, उदक दर्शन पर कन्या का अदृश्य होना आदि), ५.३.२१.६ (सरस्वती नदी के तोय द्वारा तीन दिन, यमुना द्वारा ७ दिन आदि में पवित्र करने का कथन), ७.१.३३४.४३ (तप्तोदक तीर्थ माहात्म्य : शिव के तृतीय नेत्र की ज्वाला से निर्माण, विष्णु द्वारा श्रम नाश हेतु तप्तोदक कुण्ड में स्नान), ७.३.२१.१ (पिण्डोदक तीर्थ माहात्म्य: पिण्डोदक ब्राह्मण पर सरस्वती की कृपा से तीर्थ की उत्पत्ति), **हरिवंश** २.७४.४० (श्रीकृष्ण द्वारा बिल्वोदकेश्वर शिव की स्थापना व स्तुति)।

दृ उत्तंक, जल।

**महाभारत** आदि १४९.१५ (लाक्षागृह से सुरक्षित बचे हुए पाण्डवों को मृत समझ कर भीष्म का पाण्डवों के लिए उदक कर्म में प्रवृत्त होना, विदुर द्वारा भीष्म को रोकना), सभा ५०.२५ (मय द्वारा बिन्दु सरोवर के रत्नों से निर्मित पुष्करिणी में दुर्योधन को उदक का भ्रम होना), वन १८७.११ (तपोरत वैवस्वत मनु द्वारा उदक से क्षुद्र मत्स्य की प्राप्ति, मत्स्य द्वारा विशाल रूप धारण और जल प्रलय में मनु की रक्षा का वृत्तान्त), १८८.९० (जल प्रलय की क्रमिक अवस्थाओं के पश्चात् मार्कण्डेय ऋषि द्वारा बाल मुकुन्द के दर्शन का वृत्तान्त), १९२.११ (राजा परीक्षित द्वारा मण्डूकराज आयु की कन्या सुदर्शना को उदक दर्शन न कराने की शर्त पर प्राप्त करना, उदक दर्शन पर कन्या का अदृश्य होने आदि का वृत्तान्त), ३१३.४१ (यक्ष द्वारा युधिष्ठिर को उदक पान से रोकना, युधिष्ठिर द्वारा यक्ष के प्रश्नों का उत्तर देकर उदक पान करना आदि), ३१३.८५ (आकाश के उदक होने का उल्लेख), शान्ति २३.४० (पितरों को उदक प्रदान करने की चेष्टा पर लिखित के कटे हुए हाथों के पुनः प्रकट हो जाने की कथा), ३४७.३ (विष्णु द्वारा उदक्पूर्व में हयग्रीव अवतार धारण करने का उल्लेख), ३४७.३० मधु-कैटभ असुरों द्वारा वेदों का हरण करके उदक्पूर्व में समुद्र में प्रवेश करने का उल्लेख), ३४७.५९ (हयग्रीव अवतार द्वारा वेदों के उद्धार के पश्चात् स्वयं को समुद्र के उदक्पूर्व में स्थापित करने का उल्लेख), अनुशासन ९१.२६ (श्राद्ध हेतु उदक आहरण के समय वरुण की स्तुति करने का निर्देश), १०७.१३३ महाभारत के श्लोक में उदक व उदर्क का पाठ भेद)।

टिप्पणी- पितरों के तर्पण हेतु अथवा अतिथि के पाद प्रक्षालन हेतु जो उदक पात्र लाया जाता है, इस संदर्भ में साधना के दृष्टिकोण से हमें अपनी देह को ही उदक पात्र बनाना है। शतपथ ब्राह्मण १२.१.३.२३ तथा गोपथ ब्राह्मण १.४.१३ का कथन है कि यदि आम/कच्चे पात्र को उदक से सिंचित करने का प्रयत्न किया जाएगा तो पात्र टूट जाएगा, मृत्यु हो जाएगी। इस देह रूपी पात्र को उदक धारण करने योग्य बनाने के लिए इसे सत्य, श्रम, तप, श्रद्धा, यज्ञ, आहुतियों आदि द्वारा पकाना है। महाभारत वनपर्व में उदक पान से पूर्व यक्ष द्वारा युधिष्ठिर से प्रश्नों का पूछा जाना संभवत इसी तथ्य की ओर संकेत करता है। विष्णु धर्मोत्तर पुराण में उदक का शोषण न करने

वाली भूमि के वास्तु प्रतिष्ठा हेतु उत्कृष्ट होने का कथन भी इसी तथ्य से संबंधित हो सकता है।

उदक शब्द की निरुक्ति बहुत प्रकार से की जाती है, जैसे उदञ्चति इति उदक, अर्थात् जो ऊपर की ओर गति करता है,वह उदक है। अथर्ववेद ३.१३.४ में भी उदक की निरुक्ति की गई है। लेकिन सबसे बोधगम्य संकेत हमें महाभारत अनुशासन पर्व में उदर्क और उदक के पाठभेद से मिलता है। उदर्क अर्थात् उत्-अर्क, अग्नि की ऊपर की ओर जाने वाली अर्चियां या लपटें। जैसा कि अर्क शब्द की टिप्पणी में कहा जा चुका है, हमारी आंख, नाक, कान आदि यह सब अर्क के ही रूप हैं। अग्नि की यह अर्चियां उदक का आहरण करने में, वर्षा कराने में समर्थ हैं। अग्नि का जैसा रूप होगा, वैसे ही उदक की प्राप्ति होगी। एक सामान्य अनुभव के रूप में, जब हमारी क्षुधा हमारे उदर के अवयवों को और उसके पश्चात् उदर से नीचे पादों आदि को जलाती है तो वह अंग भी मोम की भांति द्रवित होकर उदक की सृष्टि करते हैं। फिर यह उदक ऊपर की ओर गति करके शीर्ष भाग में पंहुच कर शीतल उदक की वृष्टि करता है। उपवास में क्षुधा के कारण सिर में दर्द होना इस प्रक्रिया की आरंभिक अनुभूति ही है। पितृ तर्पण कर्म के संदर्भ में मत्स्य पुराण १९.२६ में वर्णन आता है कि वासना के अनुसार पितर (डा. फतहसिंह की विचारधारा के अनुसार हमारा पालन करने वाले, हमारे स्व को धारण करने वाले आवेग अथवा स्वधा) सर्प, यक्ष, राक्षस, दानव, मनुष्य आदि आदि का रूप धारण कर सकते हैं। उन सबको उनके यथायोग्य उदक से तृप्त करना है। इसके अतिरिक्त पितरों को वसु, रुद्र और आदित्य, इन तीन श्रेणियों में बांटा गया है। वसुगण (वासनाओं का रूपांतरित रूप जो अब धन बन गया है) पृथिवी लोक व गार्हपत्य अग्नि से, रुद्रगण अन्तरिक्ष लोक व दक्षिणाग्नि से तथा आदित्यगण स्वर्गलोक तथा आहवनीय अग्नि से संबंध रखते हैं। क्रमशः पिता, पितामह तथा प्रपितामह नामक इन तीन पितृगणों के लिए तीन बार उदक से तर्पण किया जाता है (शतपथ ब्राह्मण २.४.२.१६, २.४.२.२३, २.६.१.४१, आपस्तम्ब श्रौत सूत्र १.८.१०)। स्वाभाविक रूप से, यह समझा जा सकता है कि तीनों बार जिस उदक का उपयोग किया जाता है, उसका स्वरूप प्रत्येक बार अलग-अलग होगा। ऐतरेय ब्राह्मण ७.१२, आश्वलायन श्रौत सूत्र २.२.१३ तथा शांखायन श्रौत सूत्र २.६.१२ आदि में गार्हपत्य अग्नि से आहवनीय अग्नि तक अविच्छिन्न उदकधारा ले जाने का निर्देश है। आश्वलायन श्रौत सूत्र के अनुसार दक्षिणाग्नि पिता, गार्हपत्य अग्नि पुत्र और आहवनीय अग्नि पौत्र स्वरूप है। आहवनीय अग्नि पर उदक का स्वरूप गर्ग संहिता के इस कथन से समझा जा सकता है कि गरुड ने गंगा जल से आहवनीय अग्नि को शांत किया। आहवनीय अग्नि की वेदी पर सिर पर केशों के प्रतीक रूप में प्रस्तर नामक तृणों से आच्छादन किया जाता है। अतः आहवनीय अग्नि पर गंगा जल की स्थिति को पौराणिक साहित्य में शिव की जटाओं में गंगा की स्थिति के तुल्य माना जा सकता है। गार्हपत्य अग्नि पर बर्हि नामक तृण द्वारा आच्छादन किया जाता है। बर्हि उदक के १०१ नामों में से एक है। लेकिन प्रश्न यह है कि वैदिक साहित्य में तो गार्हपत्य से आहवनीय तक अविच्छिन्न उदक धारा ले जाने का निर्देश है, जबकि पौराणिक साहित्य में भागीरथ आदि अपने पितरों के उद्धार के लिए गंगा को स्वर्ग से भूतल पर लाते हैं।

जैमिनीय ब्राह्मण १.३३४, ३.३४७, ३.३४८ व ३.३८४ में उपोदक, ऋत, अपराजित, अधिद्यु, प्रद्यु, रोचन, विष्टप/सत्य आदि लोकों का वर्णन है। उदक के १०१ नामों में ऋत और सत्य की भी गणना की गई है।

भारतीय साहित्य में सार्वत्रिक रूप से अतिथि के पाद प्रक्षालन हेतु उदक प्रस्तुत करने के उल्लेख आते हैं। इस संदर्भ में ऐतरेय ब्राह्मण ८.२४ का कथन है कि अतिथि वैश्वानर अग्नि का रूप है और पाद प्रक्षालन का उद्देश्य यह है कि अतिथि के पादों में जो मेनि/क्रोध रूपा शक्ति विद्यमान है, वह शान्त हो जाए। अथर्ववेद ९.६.४ तथा ९.१०.८ में कहा गया है कि जो अतिथि से उदक की याचना की जाती है वह भक्ति के हिंकार, प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार और निधन, इन पांच प्रकारों में से उद्गीथ प्रकार का रूप है। उपनिषदों में ओंकार को ही उद्गीथ कहा गया है। ऋग्वेद १.१६४.७ तथा अथर्ववेद ९.१४.५ में एक ऐसी गौ का उल्लेख है जो सिर से तो दूध देती है और पद से उदक का पान करती है। सहज योग आंदोलन की प्रवर्तक माता निर्मला देवी के अनुसार जब भक्त अपने चरण किसी सिद्ध तीर्थ या स्थान की ओर बढ़ाता है तो उसके चरण दिव्य तरंगों को ग्रहण करने लगते हैं और सूचना देते हैं कि वह किसी दिव्य स्थान की ओर बढ़ रहा है। पदों द्वारा दिव्य तरंगों का ग्रहण करना उदक पान के तुल्य ही है। एक ओर पदों द्वारा उदक का पान है तो दूसरी ओर विष्णु के पदों/पादांगुष्ठ से गंगा के उद्भव का उल्लेख आता है। यह कहा

जा सकता है कि जब साधक के समक्ष दिव्य शक्ति अथवा अतिथि का अवतरण होता है तो उसके पदों से उदक निकल कर शीर्ष की ओर गति करता है। यही पादोदक का पान है।

वायु पुराण में उदय पर्वत पर उदक वर्ष की स्थिति के उल्लेख के संदर्भ में शांखायन गृह्य सूत्र ६.२.४ में अनुदित अवस्था में उदक ग्रहण करने का निर्देश है। षड्विंश ब्राह्मण में भक्ति की हिंकार, प्रस्ताव, उद्गीथ व प्रतिहार अवस्थाओं को क्रमशः सूर्य की अनुदित व उदित तथा चन्द्रमा की अनुदित व उदित अवस्थाओं से सम्बद्ध किया गया है। अथर्ववेद में अतिथि से उदक की याचना को उद्गीथ/ओंकार से सम्बद्ध किया गया है। अतः यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है कि चन्द्रमा की कलाओं के साथ उदक की स्थितियों का निरूपण वैदिक व पौराणिक साहित्य में किस प्रकार किया गया है? अतिथि से प्राप्त उदक को उदक की वह स्थिति मान सकते हैं जो कलाओं से रहित है, पूर्ण है।

**उदक्या** **गरुड** १.१०५.४१ (उदक्या से सम्पर्क पर शुद्धि विधान), **भविष्य** ४.२०५.४६ (उदक्या/रजस्वला स्त्री के दर्शन, स्पर्श, संभाषण का निषेध), **मार्कण्डेय** ३५.३२, ३५.३८ (उदक्या स्त्री से स्पर्श या दर्शन पर स्नान आदि शोधन कर्म का विधान), **स्कन्द** १.२.४१.१५३ (उदक्या स्त्री के दर्शन आदि का निषेध)।

**उदङ्क** **स्कन्द** ३.१.१६.१८+ (कक्षीवान-गुरु, कक्षीवान को विवाह हेतु उपाय का कथन)

द्र उत्तंक

**उदधि** **ब्रह्माण्ड** १.२.१९.१३७ (निरुक्ति)

द्र. समुद्र, सागर, सिन्धु।

**उदय** **अग्नि** ११९.२० (शाक द्वीप के ७ पर्वतों में से एक), **कूर्म** १.४९.३४ (शाक द्वीप के ७ पर्वतों में से प्रथम), **गरुड** १.६२.१ (सूर्य उदय की राशि से आरम्भ करके सूर्य द्वारा दिन व रात में ६-६ राशियों पर भ्रमण करने का कथन), **देवीभागवत** ८.१५.१८ (मेरु के परितः चार दिशाओं में सूर्योदय का कथन), ११.१६.९ (उदय व अस्त के पश्चात् घटिका-त्रय तक सन्ध्या उपासना करने व उसके पश्चात् प्रायश्चित्त करने का निर्देश), **नारद** १.५६.१७ (उदय व अस्त पर सूर्य के शस्त्रों की भांति मेघों से आच्छादित होने के फल का कथन), २.४७.५० (अगस्त्य द्वारा गया में शिला के वाम हस्त पर उदयाद्रि की स्थापना आदि का कथन), **पद्म** १.४५.६० (उदय पर्वत की विशिष्ट संरचना का कथन), ६.२०१.२५ (उदयस्थ पुत्र द्वारा पिता के यश में वृद्धि होने का उल्लेख), **ब्रह्म** १.२७.४४ (उदित हुए सूर्य को अर्घ्य प्रदान करने से सिद्धि प्राप्त होने का कथन), १.११३.५८ (सूर्य के उदय व अस्त काल में शयन के वर्जन का निर्देश), **भविष्य** १.२१४.२० (सूर्योदय पर उदया नामक अंगुलि मुद्रा के स्वरूप का कथन), **भागवत** २.३.१७ (उदय व अस्त होते हुए सूर्य द्वारा पुरुषों की आयु हरण का उल्लेख), **मत्स्य** १२२.८ (मेरु के परितः स्थित पर्वतों में से एक उदय गिरि के स्वरूप का कथन), १२३.३० (चन्द्रमा के उदय व अस्त होने के साथ समुद्र के जल की वृद्धि व क्षय होने का कथन), १२४.२० (मेरु के परितः चार दिशाओं में स्थित इन्द्र आदि की पुरियों में सूर्य के उदय व अस्त होने का वर्णन), १२८.११(सूर्य उदय होने पर रात्रि की अग्नि की उष्मा व तेज के आंशिक रूप में सूर्य में प्रवेश करने का कथन), १६३.६९ (उदय पर्वत की विशिष्ट संरचना का कथन; हिरण्यकशिपु के क्रोध से कम्पित होने वाले पर्वतों में से एक), **मार्कण्डेय** ३१.५९ (भानु के उदय व अस्त पर शयन के निषेध का कथन), **वराह** ८१.२ (चन्द्रोदय पर्वत पर नागों का वास), १७७.३८ (उदयाचल पर सूर्य की आराधना का फल मथुरा में भी मिलने का वर्णन), **वायु** ४९.७७ (शाक द्वीप में मेरु के परितः स्थित सात पर्वतों में से एक स्वर्णिम उदय पर्वत का उल्लेख), ४९.८४ (उदय पर्वत( ?) पर उदय/उदक वर्ष की स्थिति का उल्लेख), ५०.९४(मेरु के परितः चार दिशाओं में स्थित इन्द्र आदि की पुरियों में सूर्य के उदय-अस्त का वर्णन), १०८.४३/२.४६.४६ (गया में अगस्त्य द्वारा शिला के वाम हस्त पर उदय गिरि को स्थापित करने का कथन), **वा.रामायण** ४.४०.५४ (सीता अन्वेषण के संदर्भ में सुग्रीव द्वारा वानरों को

उदयाचल प्रदेश व उसके परितः स्थित प्रदेशों की महिमा का वर्णन), ६.२८.१२ (हनुमान द्वारा उदित होते हुए सूर्य के भक्षण की चेष्टा का कथन), ६.८८.५ (लक्ष्मण का हनुमान के पृष्ठ पर आरूढ होकर उदयाचल पर स्थित सूर्य के समान शोभा पाने का उल्लेख), **विष्णु** २.८.१३ (विभिन्न दिशाओं में स्थित पुरियों में सूर्य के उदय-अस्त होने का वर्णन), **विष्णुधर्मोत्तर** १.८५.४२ (उदय व अस्त काल में सूर्य के आयुध सदृश मेघों से आच्छादित होने पर अशुभ होने का कथन), १.८६.१४ (उदय व अस्त होते हुए बृहस्पति, शुक्र व बुध ग्रहों द्वारा पीडा देने का उल्लेख), २.१२४.२१(उदित हुए तथा उदित होते हुए आदित्य को सात जलांजलि देने से मन के दुःख विनाश का कथन), **शिव** २.५.८.१० (त्रिपुर वध हेतु निर्मित शिव के रथ में उदय पर्वत की कूबर रूप में स्थिति), ५.१८.७१ (चन्द्रमा के उदय व अस्त से जल के वर्धन व क्षय का कथन), **स्कन्द** ३.१.५.१२४ (उदय पर्वत पर राजा उदयन के जन्म की कथा), ३.२.६.५१ (उदय-अस्त आदि होते हुए सूर्य के दर्शन का निषेध), ४.१.२९.३० (उदिताम्बर मार्गा : गंगा सहस्रनामों में से एक), ४.१.३८.४४ (उदय आदि होते हुए सूर्य के दर्शन की निषेध), ५.१.३२.७४ (सूर्य की स्तुति के संदर्भ में उदयाद्रि के नितम्ब रूप का उल्लेख), ६.१३५.६० (पतिव्रता द्वारा माण्डव्य ऋषि से शप्त स्वपति के प्राणों की रक्षा के लिए सूर्योदय के निषेध की कथा), ७.१.२३७.३६ (साम्ब द्वारा मुसल को जन्म देने पर उत्पातों के रूप में उदय व अस्त के समय सूर्य के कबन्धों से आवृत्त होने का उल्लेख), ७.२.१५.११ (रैवतक गिरि पर उदय व अस्त के समय छाया रहित वृक्षों के महत्व का कथन), **हरिवंश** ३.३५.५ (यज्ञ वराह द्वारा निर्मित उदय पर्वत की बाल सूर्य व वेदी से तुलना; उदय पर्वत पर स्थित वृक्षों के स्वरूप का कथन), **लक्ष्मीनारायण** २.६०+ (उदयपुर के राजा उदय द्वारा आर्यायन ऋषि से कृष्ण नाम दीक्षा प्राप्ति, कृष्ण के विराट रूप के दर्शन, स्तुति, कृष्ण द्वारा अतिवृष्टि में रक्षा, मोक्ष), **कथासरित्** २.१.५५ (सहस्रानीक-पत्नी मृगावती का पक्षी द्वारा हरण व उदय पर्वत पर त्याग), ३.४.२३५ (उदय पर्वत का विद्याधरों से अनाक्रम्य होने का उल्लेख), १२.५.२३ (उदयतुङ्ग : अहिच्छत्रा नगरी के राजा; प्रतीहार-पुत्र विनीतमति का वृत्तान्त), १२.५.६६ (उदयतुङ्ग-पुत्री उदयवती के विनीतमति से विवाह का वृत्तान्त)।

द्र. अस्त,नित्योदित, महोदय, शुभोदय।

**महाभारत** वनपर्व १०४.२ (उदय व अस्त के समय सूर्य द्वारा कनकमय मेरु पर्वत की प्रदक्षिणा करने का उल्लेख), १०९.७९ (युगान्त काल में उदय-अस्त के समय भानु के कबन्ध/राहु से ग्रस्त होने का उल्लेख), विराट २९.६ (उपयुक्त काल आने पर पाण्डवों के अज्ञातवास से उदित होने का उल्लेख), उद्योग ९९.१० (पाताल में नित्यप्रति चन्द्रमा के उदय होने तथा प्राणियों को अपने रश्मि रूपी अमृत से जीवित करने का उल्लेख), १०८.१६ (सूर्य द्वारा पूर्व दिशा में उदित होने पर कृतघ्नों,मनुष्यों और असुरों का हनन करने का उल्लेख), १४३.२४ (उदयास्त के समय शिवा/गीदडी द्वारा शब्द के पराभव का लक्षण होने का कथन), भीष्म २.२० (उदयास्त के समय सूर्य का कबन्धों से घिरा होना भय सूचक होने का उल्लेख), ७.३ (कुरुक्षेत्र में कौरव-पाण्डव युद्ध के आरम्भ में उदय के समय सूर्य के द्विधाभूत दिखाई पड़ने का उल्लेख), द्रोण ३४.२१(श्वेत छत्र से सुशोभित दुर्योधन की उदय काल के सूर्य से उपमा), १८७.२ (सूर्योदय होने पर पुनः कौरव-पाण्डव युद्ध आरम्भ होने का उल्लेख), कर्ण १२.२२ (नाग/हस्ती पर बैठे भीमसेन की उदयाद्रि पर उदित भास्कर से उपमा), ६०.४० (रण में श्वेत छत्र से विराजित कर्ण की चन्द्रमा से सुशोभित उदय पर्वत से उपमा), शान्ति ३२८.३८ (सोम आदि ज्योतियों का उदय उदान/उद्वह वायु के कारण होने का उल्लेख), अनुशासन २३.२८ (उदय से अस्त तथा अस्त से उदय होने में समर्थ व्यक्ति के ही केतन/पितृकार्य में उपयुक्त होने का उल्लेख)।

**टिप्पणी-** जिस प्रकार भौतिक जगत में सूर्य के उदय-अस्त का दर्शन होता है, इसी प्रकार मनुष्य देह में भ्रूमध्य में तीसरे चक्षु के स्थान पर सूर्य के उदय-अस्त का दर्शन कुछ लोग करने में समर्थ हो जाते हैं। भ्रूमध्य में तीसरे चक्षु के रूप में स्थित ज्योति का दर्शन तो बहुत व्यक्ति कर लेते हैं, लेकिन यह चक्षु सूर्य की भाति किरणें फैलाने वाला हो, सारे ब्रह्माण्ड को अपनी ज्योति से प्रकाशित कर दे, यह कठिन कार्य प्रतीत होता है। भायला ग्राम स्थित श्री राजपाल जी का कहना है कि इस तीसरे चक्षु से इतनी ज्योति निकलती है कि अन्धा व्यक्ति भी घोर अन्धकार में गिरी हुई सुई तक उठा सकता है। ऋग्वेद १०.८८.६ में सूर्य के उदय होने के लिए अपेक्षित स्थिति का कथन इस प्रकार किया गया है कि रात्रि की अग्नि यदि भुवः लोक की मूर्धा बन जाए तो तब प्रातः सूर्य का उदय होता है। मानव देह में भुवः/अन्तरिक्ष लोक की मूर्धा संभवतः तीसरे चक्षु का स्थान ही है। अतः तीसरे चक्षु का पूर्ण विकास सूर्य के उदय के लिए अनिवार्य है (उपनिषदों आदि में तीसरे चक्षु के दर्शन की विधि यह बताई गई है कि अपने हाथ के दोनों अंगूठों से दोनों कान बंद कर ले, दोनों तर्जनी अंगुलियों को दोनों आंखों के ऊपर रख ले, अनामिका अंगुलियों से नासा छिद्र बन्द कर ले और भ्रूमध्य में ध्यान का प्रयास करे। ऐसा करने से, प्रातःकाल जब पेट स्वच्छ होता है, तब तीसरे चक्षु के दर्शन हो जाते हैं)। वैदिक ऋचाओं में सार्वत्रिक रूप से (उदाहरणार्थ ऋग्वेद ६.५१.१, ७.३५.८, ७.६०.२, ७.६१.१, ७.६३.१, तैत्तिरीय ब्राह्मण २.८.७.३) उदय होते हुए सूर्य को उरुचक्षा आदि कहा गया है जो सारे अदृष्ट विश्व के दर्शन करा देता है। साधारण चक्षुओं में बाहर से प्रकाश जाता है, तभी वह दर्शन करने में समर्थ होते हैं। लेकिन तीसरा चक्षु स्वयं प्रकाशित है, वह औरों को भी प्रकाशित करता है। यह देह के और ब्रह्माण्ड के कण- कण का दर्शन करा देता है (ऋग्वेद १.१९१.८, शतपथ ब्राह्मण ८.१.२.१, ११.३.८.४)। आजकल के विज्ञान में सूक्ष्म दर्शन की एक्स-रे आदि जो विधियां हैं, तीसरा चक्षु उनसे भी उत्कृष्ट है। पुराणों में उदय पर्वत के सम्मुख सुदर्शन पर्वत की स्थिति के उल्लेख के पीछे यही कारण हो सकता है।

मैत्रायणी उपनिषद ७.६, नादबिन्दूपनिषद २२, त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषद ५.२ व ८.१२, महोपनिषद ४.१०८, अन्नपूर्णोपनिषद ४.४८ तथा मुक्तिकोपनिषद २.८ में वासना, अविद्या, तत्त्वज्ञान, कार्य-कारण आदि के उदयों का कथन है। मुक्तिकोपनिषद के अनुसार तो जब साधना द्वारा व्यक्ति वासना का उदय कराने में समर्थ हो जाए, तभी साधना की सफलता समझनी चाहिए। महोपनिषद ने उदय होने वाली वासना को मन नाम दिया है जिसका क्रमशः हरण करने से अविद्या का क्षय होता है। त्रिपाद्विभूति-महानारायणोपनिषद के अनुसार चिरन्तन अति सूक्ष्म वासना के कारण पुनः-पुनः अविद्या का उदय होता है जिससे यथापूर्व अविद्या कार्य होते रहते हैं। इस प्रकार जीव में कार्य और कारण का चक्र चलता रहता है। जब अविद्या का नाश हो जाता है तो हमारी धी एक पतिव्रता की भांति अन्तःपुर रूपी हमारे शरीर में ही व्याप्त हो जाती है। इससे पूर्व वह बाहर भागी-भागी फिरती रहती है।

भौतिक जगत में तो सूर्य का उदय केवल पूर्व दिशा में ही होता है। लेकिन पुराणों में सार्वत्रिक रूप से चार दिशाओं में इन्द्र आदि की पुरियों में सूर्य के उदयास्त का वर्णन मिलता है। इसी से साम्य रखने वाला वर्णन मैत्रायणी उपनिषद ७.१ तथा छान्दोग्य उपनिषद ३.६.४ से ३.११.२ में मिलता है जो एक प्रकार से पुराणों के कथन की अध्यात्म में व्याख्या करता है। प्रत्येक दिशा में सूर्य के उदय का स्वरूप क्या होगा, कौन सा छन्द, कौन सा साम, कौन सी ऋतु, कौन सा देवता आदि आदि, यह सब उपनिषदों के वर्णन में दिया गया है। शतपथ ब्राह्मण २.१.३.५ में वसन्त, ग्रीष्म व वर्षा ऋतुओं को क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्य से सम्बद्ध किया गया है। अतः साधना में यह महत्वपूर्ण हो जाता है कि हम किन गुणों का- ब्राह्मण के, क्षत्रिय के अथवा वैश्य के गुणों का आश्रय लेकर साधना का आरम्भ कर रहे हैं। उसी के अनुसार सूर्योदय की स्थिति में परिवर्तन हो जाएगा। उदयनीय अतिरात्र के संदर्भ में दिशाओं का वर्णन शतपथ ब्राह्मण ३.२.३.१५ में द्रष्टव्य है। अथर्ववेद १३.२.३४ आदि में भी सूर्य के प्रदिशाओं में उदय का उल्लेख है। इस प्रश्न का अन्वेषण महत्वपूर्ण है कि उपनिषदों और पुराणों में जो ६ अथवा ४ दिशाओं में सूर्य के उदय का वर्णन किया गया है, क्या उस वर्णन के संकेत ऋग्वेद व अथर्ववेद की ऋचाओं में भी मिलते हैं और क्या यह वर्णन ऋग्वेद व अथर्ववेद की ऋचाचों को समझने में भी सहायक हो सकता है?

पुराणों में सार्वत्रिक रूप से उदय पर्वत पर मेघों द्वारा वर्षण करने के उल्लेख मिलते हैं। इस संदर्भ को समझने में ऋग्वेद १.१६४.५१ की ऋचा उपयोगी हो सकती है जहां अग्नि और पर्जन्य, दोनों को संभवतः उदक कहा गया है।

इनमें से एक उदक अग्नि ऊपर जाकर उदित होता है और दूसरा उदक पर्जन्य नीचे आकर भूमि को तृप्त करता है। भौतिक जगत में सूर्य जल का कर्षण करता है जिससे मेघ बनता है और तब वर्षण होता है। अध्यात्म का सूर्य प्राण रूपी उदक का कर्षण कर सकता है (द्रष्टव्य-भागवत पुराण २.३.१७ में उदय होते हुए सूर्य द्वारा पुरुषों की आयु का हरण)। जिन प्राणों का सूर्य द्वारा कर्षण किया गया है, उनका वर्षण सूर्य ऐसे रूप में करेगा जिससे यह देह रूपी भूमि आनन्द से परिप्लावित हो जाएगी। शतपथ ब्राह्मण २.३.३.७ के अनुसार यह जो सूर्य है, यह मृत्यु है। यह अपने से नीचे की प्रजा का हनन कर देता है। जो ऊपर की प्रजाएं हैं, वह देव हैं, अमृत हैं। अग्निहोत्र को मृत्यु से बचने का उपाय कहा गया है।

सूर्योदय उषा के आगमन के पश्चात् होता है। उषा शब्द की टिपप्पणी में उषा को आधुनिक भौतिक विज्ञान की एन्ट्रांपी के तुल्य कहा गया है। एन्ट्रांपी में वृद्धि होने के पश्चात् जड पदार्थ का प्रावस्था रूपान्तरण, अंग्रेजी भाषा में फेज ट्रांसफार्मेशन हो सकता है, उदाहरण के लिए ठोस पदार्थ द्रव रूप में, द्रव गैस में, चुम्बकीय पदार्थ अचुम्बकीय पदार्थ में रूपान्तरित हो सकता है। चेतना के विज्ञान में उदय रूपी प्रावस्था रूपान्तरण का रूप क्या होगा, यह विचारणीय है।

स्कन्द पुराण में उदयाद्रि के नितम्ब रूप के उल्लेख के संदर्भ में शतपथ ब्राह्मण १०.६.४.१ में मेध्य अश्व के अवयवों के लिए कहा गया है कि उषा मेध्य अश्व का शिर हो सकता है, सूर्य चक्षु,----उद्यन् पूर्वार्धः, निम्लोचन जघनार्ध।

पुराणों में उदय पर्वत के स्वर्णिम होने के उल्लेख के संदर्भ को समझने में तैत्तिरीय ब्राह्मण १.५.१०.७ का यह उल्लेख सहायक हो सकता है कि उदय होकर आदित्य अह रूपी सुवर्णा कुशी में लीन होता है, जबकि अस्त होकर रात्रि रूपी रजता कुशी में।

ब्राह्मण ग्रन्थों में सार्वत्रिक रूप से (उदाहरण के लिए, शतपथ ब्राह्मण २.३.१.१, ऐतरेय ब्राह्मण ५.२९, तैत्तिरीय ब्राह्मण १.४.४.३, २.१.२.७, २.१.९.३, जैमिनीय ब्राह्मण २.३७) यह विस्तृत चर्चा की गई है कि सूर्य रूपी अग्निहोत्र के लिए अग्नि में आहुति सूर्योदय से पूर्व दी जाए अथवा सूर्योदय के पश्चात्।

**उदयन** **मत्स्य** ५०.८६ (शतानीक-पुत्र, वहीनर/अहीनर-पिता, अधिसोमकृष्ण-वंश), **विष्णु** ४.२१.१५ (वही), ४.२४.१६ (अर्भक-पुत्र, नन्दिवर्धन-पिता, प्रद्योत-वंश), **स्कन्द** ३.१.५.१२४ (सहस्रानीक व मृगावती-पुत्र उदयन द्वारा धृतराष्ट्र नाग-पुत्री ललिता से विवाह, ललिता से वीणा आदि ग्रहण), **कथासरित्** २.१.६८ (सहस्रानीक व मृगावती-पुत्र, वसुनेमि नाग की रक्षा पर नाग से दिव्य वीणा, माला व ताम्बूल लता प्राप्त करना), २.३.१ (उदयन का राज्याभिषेक, चण्डमहासेन राजा द्वारा उदयन से स्वपुत्री वासवदत्ता को संगीत की शिक्षा देने का आग्रह), २.४.१ (यन्त्र हस्ती के लोभ में उदयन का चण्डमहासेन द्वारा बन्धन, उदयन द्वारा वासवदत्ता को शिक्षा, मन्त्रियों द्वारा मुक्ति का उद्योग), २.५.१ (उदयन द्वारा वासवदत्ता के हरण का वृत्तान्त), २.६.१ (उदयन का वासवदत्ता से विधिवत् विवाह), ३.१.७ (उदयन राजा के राज्य के हित हेतु मन्त्रियों द्वारा वासवदत्ता के जल जाने के झूठे संवाद प्रसारण की योजना), ३.१.१२९ (नारद मुनि का आगमन व सत्परामर्श), ३.२.१ (वासवदत्ता के जलने पर उदयन द्वारा मगधराज-पुत्री पद्मावती से विवाह का वर्णन), ३.४.२८ (उदयन द्वारा गोपालकों के स्थान से निधान/खजाना व सिंहासन की प्राप्ति), ३.५.१ (वत्सराज उदयन द्वारा दिग्विजय हेतु शिव की आराधना), ३.५.५० (दिग्विजय के लिए प्रयाण), ४.१.१७ (नारद मुनि से वार्तालाप), ४.१.१४४ (कामदेव के अंश नरवाहनदत्त नामक पुत्र का भावी जन्म), ४.३.६१ (नरवाहन दत्त पुत्र का जन्म), ५.१.९ (उदयन की सभा में शक्तिवेग विद्याधर का प्राकट्य), ६.४.१५ (शिव द्वारा मदनवेग विद्याधर को वत्सराज वेश धारण कर कलिङ्ग सेना से विवाह का परामर्श), ६.४.३६ (कलिङ्ग सेना द्वारा उदयन राजा की कीर्ति का श्रवण), ६.५.८० (उदयन के मन्त्री द्वारा शुभ मुहूर्त्त के बहाने उदयन का कलिङ्गसेना से विवाह स्थगित करना), ६.७.७६ (मन्त्री के परामर्श पर उदयन का कलिंग सेना से विवाह के विचार का त्याग), ६.७.१७०

(मदनवेग विद्याधर द्वारा वत्सराज का रूप धारण कर कलिङ्गसेना से मिलन व विवाह), ६.८.१ (कलिङ्गसेना द्वारा वत्सराज की आसक्ति की उपेक्षा), ७.१.१४५ (उदयन द्वारा पुत्र नरवाहन दत्त की नववधू रत्नप्रभा का अभिनन्दन)।

**टिप्पणी**– वैदिक साहित्य में अग्निष्टोम, द्वादशाह आदि यज्ञों के प्रारम्भ में प्रायणीय इष्टि और अन्त में उदयनीय इष्टि का सम्पादन किया जाता है। उदयनीय इष्टि अवभृथ स्नान के पश्चात् होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि वत्सराज उदयन की कथा का मूल स्रोत यह उदयनीय इष्टि है और यह कथा उदयनीय इष्टि के अन्तर्रहस्यों को समझने में उपयोगी सिद्ध होगी। ब्राह्मण ग्रन्थों में सार्वत्रिक रूप से उल्लेख आता है (शतपथ ब्राह्मण ३.२.३.६, ४.५.१.२) कि प्रायणीय इष्टि की देवता भी अदिति है और उदयनीय इष्टि की भी। इससे उदयन की कथा को समझने में कोई सहायता नहीं मिलती। जैमिनीय ब्राह्मण ३.३०९ का कथन है कि अग्नि प्रायण है, आदित्य उदयन है। यह कथन उदयन के पितामह शतानीक व पिता सहस्रानीक को समझने की कुञ्जी प्रदान करता है। सूर्य उदय से पूर्व अनीकवती (रश्मि युक्त) अग्नि की उपस्थिति होती है (अथर्ववेद १३.२.३५, तैत्तिरीय ब्राह्मण १.६.६.२, शतपथ ब्राह्मण ७.५.२.२७)। कथासरित्सागर की कथा के अनुसार शतानीक की असुरों से लडते समय मृत्यु हो जाती है। इससे निष्कर्ष निकलता है कि अग्नि अनीकवती इतनी बलवान नहीं है कि असुरों से जीत सके।

उदयन द्वारा घोषवती वीणा प्राप्त करने के संदर्भ में, शतपथ ब्राह्मण ३.२.३.८ आदि में उदयनीय इष्टि के अन्तर्गत विभिन्न दिशाओं में पांच देवताओं के यजन का उल्लेख आता है। सर्वप्रथम उत्तर दिशा में पथ्या स्वस्ति, फिर पूर्व दिशा में अग्नि, फिर दक्षिण दिशा में सोम और पश्चिम में सविता देव का यजन किया जाता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में उल्लेख आता है कि वाक् ही पथ्यास्वस्ति है (शतपथ ब्राह्मण ४.५.१.४ आदि)। अतः यह कहा जा सकता है कि उदयन को जो घोषवती वीणा प्राप्त हुई है, वह पथ्यास्वस्ति वाक् ही है। उदयन इस वीणा की सहायता से हाथियों को, इरा प्राणों को वश में करने का प्रयत्न कर रहा है। इळा शब्द शीर्षक की टिप्पणी में यह संभावना व्यक्त की गई है कि इळा/इरा अचेतन प्राणों का प्रतीक हो सकता है। डा.फतहसिंह की भाषा में, इरा/ऐरावत हाथी अहंकार का प्रतीक हो सकता है क्योंकि जब भी इन्द्र ऐरावत पर आरूढ होकर असुरों से युद्ध करने जाता है, वह हार जाता है। उदयनीय इष्टि में अन्य दिशाओं में अग्नि, सोम, सावित्री आदि देवताओं का यजन उदयन की कथा में किस प्रकार प्रस्फुटित हुआ है, यह अन्वेषणीय है। वासवदत्ता, जिसको उदयन संगीत की शिक्षा देता है, और तत्पश्चात् विवाह करता है, को कथासरित्सागर में गौरी, प्रकृति का अंश कहा गया है।

**उदयसिंह भविष्य** ३.३.१.३३ (देशराज व देवकी-पुत्र, कृष्ण का अंशावतार), ३.३.९.३७-(जन्म समय पर सूर्योदय समान दीप्ति से उदयसिंह नाम प्राप्ति), ३.३.१०.१७ (महीपति-पुत्र अभय को मल्ल युद्ध में परास्त करना), ३.३.१०.३५ (महीपति राजा से दिव्य अश्व बिन्दुल की प्राप्ति), ३.३.११.६ (जगदम्बा की आराधना से योगत्व प्राप्ति), ३.३.११.२२ (महीपति का कृष्णांश/उदयसिंह के विरुद्ध पृथिवीराज से सहायता की याचना, कृष्णांश द्वारा पृथिवीराज को सेना सहित परास्त करना), ३.३.१२.२ (रत्नभानु-पुत्र लक्षण की कृष्णांश के दर्शन की उत्कंठा, कृष्णांश द्वारा स्वपिता के वध का समाचार श्रवण), ३.३.१२.१७ (पितृघाती राजा जम्बुक को दण्ड देने के लिए माहिष्मती पुरी गमन, जम्बुक-पुत्री रूपण का पाणिग्रहण), ३.३.१२.६९ (पञ्चशब्द नामक गज के ताडन से मूर्च्छा प्राप्ति, देवकी द्वारा गजराज को तुष्ट करने का उद्योग), ३.३.१३.९४ (राजा नेत्रसिंह द्वारा छल से वध का प्रयास, नेत्रसिंह व पुत्रों का बन्धन), ३.३.१३.१२३ (अनुज आह्लाद को शत्रु के बन्धन से मुक्त करना), ३.३.१६.४९ (गजसेन राजा द्वारा पावकीय हय की सहायता से कृष्णांश को मूर्च्छित करना, वडवामृत हय द्वारा कृष्णांश का पुनः जीवित होना), ३.३.१७.४१ (पृथिवीराज-पुत्र नृहरि से युद्ध), ३.३.२१.३ (मयूरनगरी में गमन, स्त्री वेश धारण करके मयूरध्वज-पुत्री पुष्पवती से मिलन, मयूरध्वज-पुत्र मकरन्द की स्त्री वेश धारी कृष्णांश पर आसक्ति), ३.३.२१.१०३ (उदयसिंह का पुष्पवती से विवाह), ३.३.२२.५ (उदयसिंह द्वारा पुष्पवती को पूर्व जन्म के

वृत्तान्त का कथन : पूर्व जन्म में शालग्राम शिला पूजक चन्द्रदास राजा), ३.३.२२.३१(वीरसेन नृप-सुता चन्द्रावली से मिलन, चन्द्रावली द्वारा उदयसिंह की विषयुक्त भोजन से रक्षा, वीरसेन से युद्ध, वीरसेन के सौर अस्त्र से मूर्च्छित होना, ब्रह्मानन्द द्वारा ब्रह्मास्त्र से रक्षा), ३.३.२३.११ (चित्ररेखा द्वारा आह्लाद-पुत्र इन्दुल के हरण पर उदयसिंह द्वारा मिथ्या दोष प्राप्ति, इन्दुल की मुक्ति का उद्योग), ३.३.२४.७ (पृथिवीराज द्वारा दिव्य अश्वों की मांग, परिमल राजा द्वारा राज्य से निष्कासन, जयचन्द्र द्वारा शरण देने की अस्वीकृति पर जयचन्द्र सेना से युद्ध, कुवलयपीड गज का वध, लक्षण सहित दिग्विजय हेतु प्रस्थान, उष्ट्र, पुण्ड्र आदि देशों पर विजय, वीरसिंह पुर पर विजय प्राप्ति हेतु योगी गोरखनाथ को संतुष्ट करना), ३.३.२८.३४ (उदयसिंह की शोभा वेश्या पर कृपा, शोभा द्वारा कृष्णांश को शुक बनाना, स्वर्णवती द्वारा कृष्णांश का हरण व शोभा की माया से रक्षा), ३.३.३०.२६ (उदयसिंह द्वारा पृथिवीराज द्वारा बन्धित लक्षण के अन्वेषण का उद्योग), ३.३.३१.१२८ सूर्यवर्मा-पत्नी कान्तिमती की कर्बुर राक्षस से मुक्ति का उद्योग), ३.३.३२.११३ (युद्ध में अङ्ग राजा का वध), ३.३.३२.१९६ (चामुण्ड से युद्ध में मृत्यु)।

**टिप्पणी**– भविष्य पुराण में उदयसिंह के अनुज आह्लाद होने के संदर्भ में तैत्तिरीय ब्राह्मण २.७.९.४ का यह कथन युक्तिसंगत है कि सूर्य के उदय होने पर सारी प्रजा आनन्द को प्राप्त होती है। ताण्ड्य ब्राह्मण ५.८.५ व १४.५.१७ के अनुसार गवामयन एवं द्वादशाह यज्ञ ऐसे हैं जैसे समुद्र में स्नान करना। लेकिन इस समुद्र से उदित होने में केवल वही समर्थ होता है जो प्लव का, तैरने के साधन का आश्रय लेकर स्नान करता है। उपरोक्त संदर्भ में प्लव साम है और समुद्र समुद, आनन्द का समुद्र है।

**उदर अग्नि** ३४.३७ (अग्नि के बाह्य स्वरूप में कुण्ड की अग्नि के आत्मिक स्वरूप में उदर से तुलना/साम्य), ३४१.२० (अभिनय कर्म में उदर के दुरतिक्षाम, खण्ड व पूर्ण नामक तीन भेदों का उल्लेख), **गरुड** १.६५.१०८/१.६५.११७ (प्रलम्ब उदर वाली स्त्री के श्वसुर हन्ता होने का कथन), १.१६१.१ (उदर रोगों के निदान का वर्णन), १.१९४.८ (वैष्णव कवच वर्णन के अन्तर्गत मुसल से उदर तथा हल से पृष्ठ की रक्षा की प्रार्थना), १.२०५.१४८/१.२१३.१४८ (मुख में आहवनीय, उदर में गार्हपत्य व पृष्ठ में दक्षिणाग्नि के वास का उल्लेख), **देवीभागवत** २.१.३४ (मत्सी/मत्स्य के उदर विदारण पर मत्स्य नामक राजा व मत्स्यगन्धा कन्या के उत्पन्न होने का वर्णन), ४.३.४२ (इन्द्र द्वारा दिति के उदर में प्रवेश करके गर्भ को सप्तधा काटने तथा मरुतों के जन्म का वर्णन), ६.१२.६५ (पुत्र रोहित को यज्ञपशु न बनाने पर राजा हरिश्चन्द्र द्वारा जलोदर रोग प्राप्ति व उससे मुक्ति का वृत्तान्त), ७.१५.६४ (वही), **नारद** २.१७.२४ (सन्ध्यावली माता द्वारा तीन संवत्सरों तक पुत्र वृषांगद को उदर में धारण करने का उल्लेख), **पद्म** १.१३.३०० (जलमध्य में तपोरत शुक्राचार्य को महादेव द्वारा पीकर उदरस्थ करने और शिश्न मार्ग से विसर्जित करने का उल्लेख), १.३९.८१ (पुरुषोत्तम के उदार से प्रतिहर्त्ता व पोता नामक ऋत्विजों की उत्पत्ति का उल्लेख; अन्य अंगों से अन्य ऋत्विजों की उत्पत्ति), ६.३६.११ (विष्णु मूर्ति की पूजा में मूर्ति के उदर में विश्वनाथ के ध्यान का उल्लेख), ६.४५.५० (परशुराम की मूर्ति की पूजा में उदर में पद्मनाभ के ध्यान का उल्लेख), **ब्रह्मवैवर्त्त** ३.३१.३३ (त्रैलोक्यविजय कवच वर्णन में मुकुन्द कृष्ण से उदर की रक्षा की प्रार्थना), **भागवत** ३.२६.५९ (विराट पुरुष में उदर प्रकट होने पर क्षुधा-पिपासा का प्रकट होना व इनसे समुद्र का प्रकट होना), ९.७.१७ (पुत्र रोहित को यज्ञपशु न बनाने पर राजा हरिश्चन्द्र के महोदर से पीडित होने का वृत्तान्त), **मत्स्य** १६७.९ (पुरुषोत्तम के उदर से प्रतिहर्त्ता व पोता नामक ऋत्विजों की उत्पत्ति का उल्लेख), १९८.१८ (परस्पर विवाह्य गोत्रों के वर्णन के संदर्भ में उदरेणु ऋषि का उल्लेख), **वा. रामायण** ३.६९.२७ (कबन्ध राक्षस का मुख उसके उदर में होने का उल्लेख), ६.५९.१७ (महोदरः रावण-सेनानी, घण्टे की ध्वनि

वाले गज पर आरूढ होने का उल्लेख), **लिङ्ग** १.२०.२२ (विष्णु का ब्रह्मा के मुख द्वारा उदर में प्रविष्ट होकर विविध लोकों के दर्शन करना, तत्पश्चात् पितामह ब्रह्मा द्वारा विष्णु के शाश्वत उदर में प्रविष्ट होकर उन्हीं लोकों का गर्भस्थ रूप में दर्शन करना व नाभि मार्ग से निर्गमित होना), **वराह** १.१५ (पृथिवी द्वारा यज्ञ वराह की कुक्षि में ब्रह्माण्ड दर्शन का उल्लेख), **वामन** ३१.६२ (वामन के अवामन रूप में उदर में गन्धर्वों व मरुतों की स्थिति का उल्लेख), **विष्णु धर्मोत्तर** १.७८.१७ (मार्कण्डेय द्वारा बालमुकुन्द के विग्रह/उदर में प्रवेश करके जगती के दर्शन करने का कथन), १.७९.१९ (ब्रह्मा द्वारा अनन्तशायी विष्णु के उदर में प्रवेश करके जगती के दर्शन करने तथा सूक्ष्म पद्मनाल के मार्ग से विनिर्गत होने का कथन), **स्कन्द** २.२.३.३१ (मार्कण्डेय द्वारा बालमुकुन्द के उदर में १४ भुवनों आदि के दर्शन करने का वर्णन), ४.१.३७.५० (तुच्छ उदर वाली स्त्री के भोगाढ्या आदि होने का कथन), ४.२.७२.६१ (जगदीश्वरी देवी से उदरदरी की रक्षा की प्रार्थना), ५.२.४८.२६ (दानवों से भयभीत केशव व ब्रह्मा को अभय नामक शिव लिङ्ग द्वारा जठर में धारण करने व देव-द्वय द्वारा जठर में सर्व जगत के दर्शन का कथन), ५.३.३९.३१ (कपिला गौ के उदर में यम देव की स्थिति का उल्लेख), ५.३.१११.१६ (शिव के वीर्य रूपी तेज से अग्नि के उदर में व्यथा होने पर शिव द्वारा तेज को गङ्गा जल में फेंकने का निर्देश), **हरिवंश** २.८०.३३ (कृशोदर हेतु अपेक्षित उपाय का कथन), ३.७१.५२ (वामन के विराट रूप में उदर में गन्धर्व व सर्प होने का उल्लेख), **लक्ष्मीनारायण** २.२७९.४१ (गणेश के स्त्री समान उदर के भोज्यप्रद व पुत्रादि दायक होने का उल्लेख), ३.३२.४७ (इलोदर : राहु-पुत्र इलोदर द्वारा अमरता प्राप्ति हेतु तप, रस पान, श्री रस नारायण द्वारा वध की युक्ति), दृ कुण्डोदर, घटोदर, चण्डोदर, दामोदर, धरोदर, न्यास, मन्दोदरी, महोदर, रहोदर, लम्बोदर, शालोदर।

**महाभारत** आदि ११४.११ (गान्धारी द्वारा अपने उदर पर आघात करने से मांसपेशी के जनने तथा मांसपेशी से १०० पुत्रों के जन्म का वृत्तान्त), शल्य ४५.६३ (उदाराक्ष: स्कन्द के सैनिकों में से एक)।

**टिप्पणी**- उदर हमारे शरीर का अत्यधिक महत्वपूर्ण अंग है। उदर के बारे में जो कुछ पौराणिक और वैदिक साहित्य में कहा गया है, उसको महापुरुषों के उपलब्ध वचनों और क्रियाकलापों द्वारा समझने का प्रयत्न किया जा सकता है। वैदिक साहित्य में उदर को उखा/उषा (शतपथ ब्राह्मण ७.५.१.३८, ७.५.२.७), इडा (शतपथ ब्राह्मण ११.२.६.८) तथा इडा को धारण करने वाली पात्री (शतपथ ब्राह्मण १२.५.२.७, जैमिनीय ब्राह्मण १.४८, शांखायन श्रौत सूत्र ४.१४.२७) आदि कहा गया है। शतपथ ब्राह्मण का छठां काण्ड उखा नामक पात्र का निर्माण कैसे करना है, इससे सम्बन्धित है और जो प्रक्रिया उखा के निर्माण के लिए कही गई है, वही उदर के लिए भी लागू होनी चाहिए। यदि उदर में शाश्वत उषा की प्रतिष्ठा हो जाए तो निद्रा से छुटकारा मिल सकता है। उखा का निर्माण मृदा से किया जाता है और मृदा खनन के लिए जिस अभ्रि/छेनी की आवश्यकता होती है, उसे वेणु/बांस से बनाया जाता है। शतपथ ब्राह्मण ६.३.१.३४ के अनुसार वाक् ही अभ्रि है। इससे संकेत मिलता है कि किसी प्रकार के नाद या ओंकार रूपी वाक् की आवश्यकता इस मर्त्य शरीर में से ऐसी मृदा के, ऐसे भौतिक तत्त्वों के खनन के लिए पड़ती है जिसमें उषा का विकास हो सके, असत् से सत् का, तम से प्रकाश का प्रादुर्भाव हो सके। पुराणों में इस तथ्य को उदर के अन्दर लोकों के दर्शन के माध्यम से दर्शाया गया है। लोक शब्द अवलोकन से, अंग्रोजी भाषा के लुक शब्द से साम्य रखता है। इस संदर्भ में व्यावहारिक जीवन में कठिनाई यह आती है कि क्षुधा की शान्ति के लिए जो भोजन किया जाता है, उसे पचाने में ही उदर की सारी शक्ति का व्यय हो जाता है और उषा रूपी ऊर्जा या अग्नि का विकास नहीं हो पाता। तीर्थङ्कर महावीर ने इस संमस्या को जल रहित भोजन के द्वारा हल किया है जिससे कि भोजन को मुख में पचने का पूर्ण अवसर मिले और वह उदर में जाकर पचने में न्यूनतम ऊर्जा को नष्ट करे। बहुत से तीर्थ स्थानों में प्राप्त होने वाला शुष्क प्रसाद भी इसी तथ्य का परिचायक हो सकता है। शतपथ ब्राह्मण १.६.३.१७, १.६.३.३१ तथा तैत्तिरीय संहिता

२.४.१२.६ से संकेत मिलता है कि उदर के क्षुधा रूपी वृत्रासुर का विनाश तो तभी हो सकता है जब पूर्णिमा के चन्द्रमा का, उदान प्राण का पूर्ण विकास हो जाए।

यह उल्लेखनीय है कि शतपथ ब्राह्मण ६.१.२.१७ के अनुसार उखा/उषा का विकास पांच स्तरों पर करना होता है। पांच स्तरों के रूप में लोम, त्वक्, मांस, अस्थि, मज्जा नामक पांच धातुएं, अज, अवि, गौ गादि पांच पशु तथा पांच इष्टकाओं आदि का वर्णन किया गया है। उखा नामक पात्र में चार स्तनों का निर्माण किया जाता है। इससे प्रतीत होता है कि उखा कामधेनु गौ का रूप है। गौ से ऊपर के स्तरों पर अश्व और पुरुष पशु आते हैं। राजा हरिश्चन्द्र द्वारा अपने पुत्र रोहिताश्व तथा ब्राह्मण-पुत्र शुनः शेप को वरुण हेतु मेध्य पशु बनाने के सार्वत्रिक आख्यान को समझने में यह तथ्य उपयोगी हो सकता है। शतपथ ब्राह्मण में रोहित अश्व को अग्नि का, उस अग्नि का जो सूर्य का रूप धारण करने जा रही है, वाहन कहा गया है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि हरित वर्ण के चन्द्रमा से रोहित/लोहित सूर्य का विकास हुआ है। अथर्ववेद १५.१.७ में नील उदर और लोहित पृष्ठ का उल्लेख है। हो सकता है कि यह उल्लेख हरिश्चन्द्र और रोहित के आख्यान का मूल हो। हरिश्चन्द्र के आख्यान में शुनःशेप शब्द में शुनम् सुख के अर्थों में आता है। ऋग्वेद ४.५७.८ में उल्लेख आता है कि शुन्म पर्जन्यो मधुना पयोभिः। अतः यह कहा जा सकता है कि उदर रोग की शान्ति तभी हो सकती है जब शुनम् अवस्था प्राप्त हो जाए, रोहित अवस्था को समाप्त करने से नहीं। रोहित का सात बार लौटने का प्रयत्न करना और ब्राह्मण वेश धारी इन्द्र द्वारा उपदेश देकर उसे वापस भेजना उदर की सात क्रमिक अवस्थाओं का परिचायक है। इस तथ्य की पुष्टि आख्यान में रोहित द्वारा श्री, भग, उदुम्बर आदि की क्रमिक प्राप्ति से होती है। शतपथ ब्राह्मण ३.६.१.१, तैत्तिरीय संहिता ६.२.१०.६ व ६.२.११.४, ताण्ड्य ब्राह्मण ६.४.११ में उदर रूपी सदः में औदुम्बरी के रोपण का वर्णन आता है।

पुराणों में ब्रह्मा द्वारा विष्णु के उदर में प्रवेश करने व नाभिकमल से निर्गत होने के संदर्भ में शतपथ ब्राह्मण ८.६.२.१६ में स्वयमातृण्णा इष्टका का वर्णन आता है जिसे उखा व उलूखल अथवा उदर व योनि के बीच में स्थित कहा गया है। यह एक सुषिर स्थान है जहां से ब्रह्म रूपी सूर्य का उदय होता है। वैदिक साहित्य में आचार्य ब्रह्मचारी शिष्य को उदर में धारण करता है (अथर्ववेद ११.५.३)। शुक्ल यजुर्वेद १९.८६ तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण २.६.४.३ आदि में नाभि को उदर की माता कहा गया है। पद्म पुराण में शुक्राचार्य द्वारा शिव के उदर में जाने व वहां से निर्गत होने के संदर्भ में शांखायन श्रौत सूत्र १४.२७.१ में उशना कवि का वर्णन विचारणीय है।

पुराणों में श्रीकृष्ण द्वारा नवनीत की चोरी और यशोदा माता द्वारा उन्हें उलूखल से बांधे जाने की सार्वत्रिक कथा के संदर्भ में ब्राह्मण तथा श्रौत ग्रन्थों में आन्त्रों में ऊर्जा का विकास होने पर उनके रज्जु/रशना रूप धारण कर लेने का उल्लेख आता है (आपस्तम्ब श्रौत सूत्र १५.१५.१, वैखानस श्रौत सूत्र १३.१७)। उलूखल व मुसल को भी उदर के समीप स्थापित करने का निर्देश है जिसका कारण यह है कि उदर को जिस अन्न की अथवा सर्वश्रेष्ठ अन्न (अन्नाद्य) की आवश्यकता है, उसे उदुम्बर काष्ठ से निर्मित उलूखल-मुसल द्वारा तुरन्त प्राप्त किया जा सके।

वाल्मीकि रामायण में महोदर नामक असुर के घण्टानिनाद वाले गज पर स्थित होने के उल्लेख के संदर्भ में गज इरा प्राण का प्रतीक है। इस गज को घण्टा निनाद वाला कहा गया है। गणेश के लम्बोदर नाम में लम्ब शब्द भी रम्भ का, नाद का प्रतीक हो सकता है। लक्ष्मीनारायण संहिता में इलोदर असुर द्वारा रस पान की कथा के संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि ब्राह्मण ग्रन्थों में मृत यजमान के उदर पर इडा पात्री/संवत्तधानी रखने का सार्वत्रिक उल्लेख आता है (जैमिनीय ब्राह्मण १.४८, शतपथ ब्राह्मण १२.५.२.७)। उदर को सदः कहा गया है जहां ब्राह्मण ऋत्विज, जो विश्वेदेवों का रूप हैं, स्थित होकर भक्षण करते हैं, भोजन को उसके सूक्ष्म अवयवों में परिष्कृत करते हैं, उसमें रस का विकास करते हैं, उसे असत् से सत् की ओर ले जाते हैं (शतपथ ब्राह्मण ३.५.३.६, ३.६.१.१, जैमिनीय ब्राह्मण १.७१)। इरा प्राणों की प्रकृति भी अचेतन से चेतन की ओर विकास करने की है। इलोदर असुर की कथा के माध्यम से वैदिक साहित्य की किस ग्रन्थि की व्याख्या की गई है, यह अन्वेषणीय है।

पुराणों में ब्रह्मा के उदर से प्रतिहर्त्ता नामक ऋत्विज के प्रादुर्भाव का सार्वत्रिक उल्लेख आता है लेकिन वैदिक साहित्य में ऐसा कोई प्रत्यक्ष उल्लेख नहीं है। प्रतिहर्त्ता को भिषक् अथवा व्यान प्राण कहा गया है (शतपथ ब्राह्मण ४.२.५.३, गोपथ ब्राह्मण २.५.४) हो सकता है कि व्यान वायु का विकास उदर से होता हो।

शतपथ ब्राह्मण १०.६.४.१, १०.६.५.३, अथर्ववेद ९.३.१५, १०.७.३२, गोपथ ब्राह्मण १.१.६ आदि में सार्वत्रिक रूप से उदर को अन्तरिक्ष कहा गया है। यह अन्वेषणीय है कि ब्रह्माण्ड में अन्तरिक्ष की स्थिति, जैसे अन्तरिक्ष में वायुओं का व सूर्य का स्थित होना, को उदर के स्तर पर कैसे प्राप्त किया जा सकता है।

**उदान** **अग्नि** २१४.११ (उदान वायु के विशिष्ट कार्यों का कथन : अधर वक्त्र का स्पन्दन, नेत्र रोग प्रकोपक, मर्मों का उद्वेजन), **कूर्म** १.७.३८ (ब्रह्मा द्वारा उदान से पुलस्त्य की सृष्टि करने का उल्लेख), **गरुड** १.१५.७५ (उदानस्य पतिः : विष्णु सहस्रनामों में से एक), १.१४१.४ (सुदानक-पुत्र, अह्निनर-पिता, शतानीक वंश), १.१५३.४ (उदान द्वारा सन्धियों में फेंके गये दोषों से उत्पन्न विकारों का वर्णन : क्लेश, अरुचि आदि आदि), x/२.२.४७ (मृत्यु काल में काया में उष्मा का प्रकोप होने के पश्चात् उदान वायु द्वारा ऊर्ध्व दिशा में गमन करके भुक्त अन्न की अधोगति निरोध करने का कथन), **देवीभागवत** ३.१२.५० (यज्ञ में सभ्य अग्नि का उदान व आवसथ्य का समान वायु से तादात्म्य होने का उल्लेख), ११.२२.२८ (प्राणाग्निहोत्र में मध्यमा, अनामिका व अङ्गुष्ठ से उदान की आहुति देने का निर्देश), ११.२२.३९ (उदान मन्त्र के वर्ण, ऋषि, देवता व छन्द का कथन : शक्रगोप-सम वर्ण आदि), **नारद** १.४२.८० (उदान से उच्छ्वास उत्पन्न होने का उल्लेख), १.६०.१४ (साध्य-पौत्र, समान-पुत्र, व्यान-पिता आदि), **ब्रह्म** १.७०.५८ (देहधारियों में उदान के अर्ध होने का उल्लेख), १.१०५.३३ (मृत्युकाल में उदान का ऊर्ध्व दिशा में प्रवृत्त होकर भुक्त अन्न आदि की अधोगति निरोध करने का कथन), **ब्रह्मवैवर्त्त** २.२.४५ (कृष्ण व उनकी प्रिया के बीच सुरतान्त में प्रिया की निःश्वास वायु से प्राण, अपान आदि के उत्पन्न होने का उल्लेख), **ब्रह्माण्ड** १.१.५.७५ (ब्रह्मा के उदान से पुलस्त्य ऋषि व अन्य वायुओं से अन्य ऋषियों की उत्पत्ति का उल्लेख), १.२.९.२४ (वही), २.३.३.१९ (स्वायम्भुव मन्वन्तर के मन, अनुमन्ता, प्राण, नर आदि १२ साध्य देवों का स्वारोचिष मन्वन्तर में प्राण, अपान, उदान आदि १२ तुषित देव बनने का कथन), २.३.७२.५२ (परमात्मा के साथ वायु का गर्भ में प्रवेश करके प्राण, अपान आदि वायुओं में विभाजित होने तथा उदान के देहधारियों में अर्ध होने का कथन), **भविष्य** १.१५७.४४ (गर्भ में वायु के प्रवेश पर उदान का ऊर्ध्व दिशा में प्रवृत्त होना), **मत्स्य** २९०.६ (१३वें कल्प के रूप में उदान का उल्लेख), **मार्कण्डेय** १०.५० (मृत्यु काल में देह में उष्मा के प्रकुपित होने पर उदान की ऊर्ध्व प्रवृत्ति होने, भुक्त जलों व अन्नों की अधोगति का निरोध होने और दान किये हुए जल व अन्नों द्वारा आह्लाद प्राप्त होने का कथन), **लिङ्ग** १.७०.१८७ (ब्रह्मा द्वारा उदान से पुलस्त्य की सृष्टि का उल्लेख), २.२७.८२ (उदाना : श्रीव्यूह के प्रथम आवरण में स्थित शक्तियों में से एक), **वायु** ९.९४ (ब्रह्मा के उदान से पुलस्त्य की सृष्टि का उल्लेख), २१.४३ (२१वें कल्प में ब्रह्मा के पांच मानस पुत्रों के रूप में प्राण, उदान आदि का उल्लेख), ६६.१८/२.५.१८ (प्राण, अपान, उदान आदि तुषित देवों के स्वारोचिष मन्वन्तर में नामों का कथन), ९७.५४/२.३५.५४ (गर्भ में परमात्मा सहित वायु के प्रवेश पर उदान का शरीर में ऊर्ध्वमुखी होने का उल्लेख), **शिव** २.१.१६.५ (ब्रह्मा द्वारा उदान से पुलस्त्य की सृष्टि का उल्लेख), **स्कन्द** १.२.५०.२२ (देह में प्राण आदि के विशिष्ट कार्यों का कथन : उदान द्वारा वाक् प्रवृत्ति, उद्गार, सर्व कर्मों में प्रयत्न में, कण्ठ के सुर में स्थिति), ७.१.१०५.४८ (३० कल्पों में से १३वें कल्प का नाम), **हरिवंश** १.४०.५८ (अपान के पश्चिम काया में तथा उदान की ऊर्ध्व काया में स्थिति का कथन)।

**महाभारत** वन २१३.८ (प्राण के प्रयत्न, कर्म व बल में प्रवृत्त होने पर प्राण की उदान संज्ञा का उल्लेख), २१३.१२ (समान व उदान के मध्य प्राणापानौ के समाहित होने का उल्लेख), शान्ति ३२८.३३ (समान-पुत्र, व्यान-पिता आदि), ३२८.३८ (आधिभौतिक उद्वह वायु का देह के अन्दर उदान वायु से तादात्म्य तथा उसके विशिष्ट कार्यों का कथन), आश्वमेधिक २०.१६

(अपान व प्राण के मध्य उदान की स्थिति आदि का कथन), २३.५ (व्यान से पुष्ट वायु के उदान तथा उदान से पुष्ट वायु के समान होने आदि का कथन), २३.२० (प्राण, अपान आदि की श्रेष्ठता वर्णन के अन्तर्गत उदान के वश में केवल व्यान होने का कथन), २४.७ (शुक्र और रस से उत्पन्न हर्ष के उदान रूप होने का कथन), २४.१२ (प्राणापान रूप अहोरात्र के मध्य हुताशन/अग्नि के उदान रूप होने आदि का कथन), २४.१५ (सत् व असत् के मध्य हुताशन के उदान रूप होने का कथन), ३९.२० (प्राण, अपान व उदान के रूप में गुण-त्रय का कथन)।

द्र. प्राण-अपान आदि।

**टिप्पणी-** योग में उदान वायु का स्थान कण्ठ में विशुद्धि चक्र कहा जाता है और विशुद्धि चक्र में उदान वायु के विशिष्ट कार्य क्या-क्या हैं, इसका वर्णन स्वामी योगेश्वरानन्द की प्राण विज्ञान आदि पुस्तकों में विस्तार से किया गया है। स्वामी योगेश्वरानन्द ने उदान आदि वायुओं को सत्त्व, रज और तम, तीन भागों में विभाजित किया है और इन्हीं गुणों के आधार पर उनके विशिष्ट कार्यों का वर्णन किया है। पुराणों में एक ओर तो स्थूल स्तर पर उदान वायु के कार्यों का वर्णन आता है। दूसरी ओर जहां मृत्यु के पश्चात् उदान के कार्यों का वर्णन आता है, वह सूक्ष्म स्तर की उदान वायु की ओर संकेत हो सकता है। ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में सुरतान्त में निःश्वास से उदान आदि की उत्पत्ति का उल्लेख आता है। यह संभव है कि समाधि के पश्चात् व्युत्थान की स्थिति में वायु का प्राण, अपान आदि में विभाजन होता हो। शतपथ ब्राह्मण ४.१.२.१ के वर्णन के अनुसार प्राण उपांशु पात्र है और उदान अन्तर्याम पात्र है। अन्तर्याम के लिए कहा गया है कि यह प्रजा का नियमन करता है, अतः इसे अन्तर्याम कहा जाता है। मार्कण्डेय पुराण में उदान वायु द्वारा दान किए हुए अन्नों से आह्लाद प्रदान करने का उल्लेख आता है। यह संभव है कि समाधि से व्युत्थान की प्रारम्भिक अवस्था प्राण हो जिसे उपांशु कहा गया है। यह आत्मा को प्राप्त होने वाले प्राण हो सकते हैं। इसके पश्चात् आत्मिक आनन्द का प्रजा में विस्तार होता है। इसके लिए अन्तर्याम की, नियमन की आवश्यकता पड़ती है (यह उल्लेखनीय है कि जैमिनीय ब्राह्मण २.३७, शांखायन ब्राह्मण १२.४, ऐतरेय ब्राह्मण २.२१, तैत्तिरीय संहिता ६.४.६.४ में अपान के लिए भी अन्तर्याम पात्र की व्यवस्था की गई है)। इस तथ्य की पुष्टि वैदिक साहित्य में प्राण को प्रायणीय अतिरात्र और उदान को उदयनीय अतिरात्र कहने से भी होती है (द्र. उदय शब्द पर टिप्पणी तथा जैमिनीय ब्राह्मण २.५८, ३.३१९, ऐतरेय ब्राह्मण १.७ व ४.१४, गोपथ ब्राह्मण १.५.४)।

ब्रह्मा के उदान से पुलस्त्य तथा व्यान से पुलह ऋषि की सृष्टि होने के पुराणों के सार्वत्रिक उल्लेख के संदर्भ में, वैदिक साहित्य में उदान के साथ बृहती छन्द और बृहत् साम को सम्बद्ध किया गया है (जैमिनीय ब्राह्मण १.२२९)। डा. फतहसिंह के अनुसार पुलस्त्य से तात्पर्य पुरस्त्यान, पुर के विस्तार से है। इस प्रहेलिका को समझने के लिए भौतिक विज्ञान की सहायता लेनी पड़ेगी। भौतिक विज्ञान के अनिश्चितता के सिद्धान्त के अनुसार पदार्थ के सूक्ष्म अंशों के लिए संवेग के प्रसार की अनिश्चितता और दिशा के प्रसार की अनिश्चितता का गुणनफल एक स्थिरांक है। इसका अर्थ है कि यदि किसी सूक्ष्म कण के संवेग को एक निश्चित सीमा में बद्ध कर दिया जाए तो उस कण का दिशा में प्रसार उतना ही अनिश्चित हो जाएगा। यदि दिशा में प्रसार को सीमाबद्ध करें तो संवेग का प्रसार अनिश्चित हो जाएगा। उदान और पुलस्त्य के वर्तमान संदर्भ में उदान को संवेग और पुलस्त्य को दिशा के तुल्य मान सकते हैं। यदि उदान को सीमाबद्ध करेंगे तो पुर का, दिशा का स्त्यान अर्थात् विस्तार हो जाएगा। व्यान और उससे उत्पन्न पुलह ऋषि के संदर्भ में स्थिति इससे भिन्न है। व्यान के साथ वामदेव्य साम को सम्बद्ध किया जाता है (जैमिनीय ब्राह्मण १.२२९)। यह गर्भ रूप स्थिति है। पुलह शब्द की व्याख्या पुरः, पुर में बद्ध के रूप में की जा सकती है। यह उदान से विपरीत स्थिति है। पुराणों में पुलस्त्य से रावण आदि राक्षसों तथा पुलह से वानरों की सृष्टि का वर्णन आता है। राम के अयोध्या में प्रतिष्ठित होने के लिए (जीवात्मा को आत्मा में रमण करने के लिए?) और पुलस्त्य वंश से संघर्ष करने के लिए पुलह-वंश के वानरों की सहायता लेनी पड़ती है। यह उल्लेखनीय है कि उदान, व्यान आदि के साथ पुलस्त्य, पुलह आदि ऋषियों को सम्बद्ध करना पुराणों की अपनी मौलिकता है।

देवीभागवत पुराण में सभ्य अग्नि को उदान रूप कहा गया है। यह अपने प्रकार का एकमात्र उल्लेख है। शतपथ ब्राह्मण ७.१.२.२१, ११.५.३.८, आपस्तम्ब श्रौत सूत्र

९.१०.२, कात्यायन श्रौत सूत्र २५.१०.१७ आदि में गार्हपत्य को उदान और आहवनीय अग्नि को प्राण कहा गया है। ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार प्राण अन्न का भक्षण करने वाले हैं, जबकि उदान अन्नप्रद है (शतपथ ब्राह्मण ११.२.४.६)। यह संभव है कि देवों को जो वास्तविक हवि प्रदान की जानी है, उसके अन्न का एकमात्र स्रोत केवल उदान प्राण ही हो।

डॉ. फतहसिंह का कथन है कि उदान प्राण ओदन के पकने से उत्पन्न होता है। ओदन पकाने का अथर्ववेद में भली भांति वर्णन है। जैमिनीय ब्राह्मण ३.३४६, गोपथ ब्राह्मण २.१.७ तथा तैत्तिरीय संहिता १.६.३.३ के कथन से डा.फतहसिंह की धारणा की पुष्टि होती है।

त्रिपिटक ग्रन्थों के अन्तर्गत वर्गीकृत ग्रन्थ उदान (अनुवादक: भिक्षु जगदीश काश्यप, प्रकाशक: भारतीय बौद्ध शिक्षा परिषद्, बुद्ध विहार, लखनऊ) की प्रस्तावना में कहा गया है कि भावातिरेक मे सन्तों के मुख से जो प्रीति वाक्य निकला करता है, उसे उदान कहते हैं। यह कथन सत्य हो सकता है, क्योंकि उदान प्राण विशुद्धि चक्र में वाणी को नियन्त्रित करता है।

पुराणों में कहीं तो देह में उदान के अर्ध होने का उल्लेख है, कहीं ऊर्ध्व होने का। यह पुस्तक मुद्रण की त्रुटि भी हो सकती है और वास्तविकता भी। हो सकता है कि सामान्य जनों में उदान की अधो दिशा में प्रवृत्ति ही भुक्त अन्न के रसास्वादन आदि के लिए उत्तरदायी हो, और साधना द्वारा उदान को ऊर्ध्व दिशा में प्रवृत्त करना पड़ता हो।

पुराणों में उदान को समान-पुत्र तथा व्यान-पिता कहने के सार्वत्रिक उल्लेख के संदर्भ की पुष्टि बृहदारण्यक उपनिषद ३.९.२६ (शतपथ ब्राह्मण १४.६.९.२७), गोपथ ब्राह्मण १.५.५ आदि के कथनों से होती है।

देह में प्राण, अपान आदि वायुओं का स्पष्ट रूप से अभिज्ञान किस प्रकार होगा, इसका वर्णन मैत्रायणी उपनिषद ७.५ में किया गया है। इस वर्णन के अनुसार उदान के साथ पंक्ति छन्द, हेमन्त व शिशिर ऋतु आदि सम्बद्ध हैं जबकि अन्य वायुओं के साथ वसन्त आदि अन्य ऋतुएं। यदि देह में किसी अंग में आन्तरिक शीतलता का अनुभव हो रहा है तो वह उदान वायु का कार्य हो सकता है। योगीजनों द्वारा लिपिबद्ध किए गए अनुभवों से ज्ञात होता है कि साधना की एक अवस्था में आकर शरीर हिम के समान शीतल हो जाता है। यह भी कहा जाता है कि शरीर में जहां-जहां से कुण्डलिनी शक्ति ऊर्ध्वगमन करेगी, वहीं-वहीं शीतलता आ जाएगी। आधुनिक भौतिक विज्ञान के अनुसार शीतलता तब उत्पन्न होती है जब उष्मा का किसी प्रकार से निर्गमन हो रहा हो। उदान द्वारा शीतलता उत्पन्न करने की प्रक्रिया को आधुनिक ठोस पदार्थ विज्ञान के आधार पर समझा जा सकता है। ठोस पदार्थ में इलेक्ट्रानों का प्रवाह एक ऊर्जा पट्ट (एनर्जी बैण्ड) विशेष में ही सीमित रहता है। इस ऊर्जा पट्ट से ऊपर जो ऊर्जा के स्तर हैं, वहां इलेक्ट्रान गति नहीं कर सकता। यह ऊर्जा का अन्तराल कहलाता है। इस ऊर्जा अन्तराल से ऊपर फिर ऊर्जा पट्ट का आरम्भ हो जाता है। यदि किसी इलेक्ट्रान को पहले ऊर्जा पट्ट से दूसरे ऊर्जा पट्ट में स्थान्तरित करना हो तो उसे बाहर से इतनी ऊर्जा देनी आवश्यक है कि वह ऊर्जा अन्तराल का अतिक्रमण कर सके। शीतलता उत्पन्न करने के आधुनिक विज्ञान में इलेक्ट्रान ऊर्जा अन्तराल को पार करने के लिए ऊर्जा का ग्रहण बाहर से नहीं, अपितु अपने परिवेशी माध्यम/पदार्थ से ही करता है, अत: ऊर्जा की न्यूनता के कारण पदार्थ शीतल हो जाता है। बहुत संक्षेप में वर्णित इस प्रक्रिया को तापवैद्युत शीतन (थर्मोइलेक्ट्रिक कूलिंग) कहा जाता है। उदान के साथ भी ऐसा ही कुछ होता होगा। ब्राह्मण ग्रन्थों में सार्वत्रिक रूप से कहा गया है (शतपथ ब्राह्मण ४.१.२.१२ आदि) कि उदान उदयनीय है। इससे यह समझा जा सकता है कि सूर्य के उदय होने पर सारी ऊर्जा सूर्य में समाहित हो जाती है और इस कारण से शरीर शीतल हो जाता है। पौराणिक व वैदिक साहित्य में जब उदान के लिए ऊर्ध्व दिशा का निर्धारण किया जाता है, तो उससे भी तात्पर्य ऊर्जा के ऊर्ध्व होने, वृद्धि करने से लिया जा सकता है, यद्यपि उदान और ऊर्जा में वही सम्बन्ध हो सकता है जो जड पदार्थ के विज्ञान में संवेग (मोमेन्टम) और ऊर्जा (एनर्जी) में है। शांखायन श्रौत सूत्र १.१०.२ आदि में प्राण के साथ इष तथा उदान के साथ ऊर्ज को सम्बद्ध किया गया है जिसका निहितार्थ अन्वेषणीय है।

सुबालोपनिषद ९ में उदान वायु का अभिज्ञान जिह्वा के माध्यम से, रसों का अनुभव करने के माध्यम से किया गया है। यह रस का अभिज्ञान ही विकसिक होकर उदान का अभिज्ञान करा सकता है।

ध्यानबिन्दूपनिषद ९६ में उदान के शंख? वर्ण का उल्लेख आता है। देवीभागवत पुराण के अनुसार उदान का वर्ण

शक्रगोप सम है। श्री लैडबीटर की पुस्तक दी चक्राज (थियोसोफिकल पब्लिशिंग हाउस, मद्रास), पृष्ठ ४३ में उदान वायु के बैंगनी-नीले रंग का उल्लेख है।

गरुड पुराण में उदान वायु द्वारा दोषों को सन्धियों में फेंकने का उल्लेख आता है। त्रिशिखब्राह्मणोपनिषद ३.८० में भी उदान को सब सन्धियों में स्थित कहा गया है। महाभारत के आश्वमेधिक पर्व में प्राणापान रूप अहोरात्र के मध्य में तथा सत् व असत् के मध्य में अग्नि के उदान रूप होने आदि का कथन है। यह अन्वेषणीय है कि सन्धि से तात्पर्य केवल स्थूल शरीर की सन्धियों से ही है अथवा महाभारत के वर्णन के अनुसार सूक्ष्म शरीर की सन्धियों से भी। ब्राह्मण ग्रन्थों में अग्निहोत्र के वर्णन से संकेत मिलता है कि सन्धि बिन्दुओं, जैसे रात्रि व दिन की संधि पर ऊर्जा की अधिकता होती है। यह स्थिति भौतिक विज्ञान में पदार्थ में प्रावस्था रूपांतरण, फेज ट्रांसफार्मेशन की स्थिति के तुल्य है।

देवीभागवत पुराण में प्राणाग्निहोत्र के संदर्भ में उदान की आहुति मध्यमा, अनामिका व अंगुष्ठ से देने का निर्देश है, जबकि प्राणाग्निहोत्रोपनिषद १ में सब अंगुलियों से।

प्राणाग्नहोत्रोपनिषद ४ में उदान का तादात्म्य उद्गाता नामक ऋत्विज से किया गया है। अत: उदान को समझने के लिए उद्गाता शब्द की टिप्पणी द्रष्टव्य है।

उदान आदि वायुओं को अमृत बनाना वैदिक साहित्य का सार्वत्रक लक्ष्य है। सुबालोपनिषद ९ से संकेत मिलता है कि प्राण, उदान आदि को अमृत बनाने के लिए इन्हें विज्ञान के स्तर तक ले जाना पड़ता है। शतपथ ब्राह्मण १०.१.४.५ के अनुसार अग्निचयन में चतुर्थी चिति उदान का प्रतीक है और अमृत है। तैत्तिरीय आरण्यक १०.३६.१ व १०.६९.१ से संकेत मिलता है कि जब श्रद्धा में प्राण, उदान आदि का निवेश किया जाता है तो अमृत प्राप्त होता है।

**उदार** **ब्रह्माण्ड** १.२.३६.९९ (उदारधी : प्राचीनगर्भ व सुवर्चा-पुत्र, भद्रा-पति, दिवंजय-पिता, उत्तानपाद-वंश), **वायु** ६२.८५ (वही), **कथासरित्** ९.१.१७४ (पत्रपुर के राजा उदारचरित के राज्य में राजा पृथ्वीरूप का आगमन, उदारचरित द्वारा सत्कार)।

**उदासीन** **पद्म** २.१२.२२ (उदासीन पुत्र के लक्षण)।

**उदुम्बर** **कूर्म** २.१७.२१ (द्विज के लिए उदुम्बर आदि भक्षण का निषेध), **नारद** १.५६.२०४ (उदुम्बर वृक्ष की कृत्तिका नक्षत्र से उत्पत्ति का उल्लेख), १.६८.३८ (उदुम्बर की समिधा की आहुति से नृपतियों के वश में होने का उल्लेख), १.९०.१८० (शुक्रवार को अग्नि में उदुम्बर की आहुति देने से इष्ट फल प्राप्ति का कथन), १.११९.६० (औदुम्बर: १४ यमों सें से एक; फाल्गुन शुक्ल दशमी को १४ यमों के यजन का निर्देश), **पद्म** १.१६.९० (ब्रह्मा के यज्ञ में ब्रह्मा का मृगचर्म से आवृत? औदुम्बर दण्ड द्वारा सुशोभित होने का उल्लेख), १.१९.२३५ (दुर्भिक्ष काल में राजा द्वारा ऋषियों को हेमपूर्ण उदुम्बर दान करने का प्रयास, ऋषियों की प्रतिक्रियाओं का वर्णन), ३.५६.२२ (द्विज के लिए उदुम्बर आदि भक्षण के निषेध का कथन), ६.१२२.१३ (औदुम्बर: १४ यमों में से एक; कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी को १४ यमों के लिए दीप दान का निर्देश), **भविष्य** ४.११३.३२ (शनि? ग्रह हेतु उदुम्बर की समिधा होम का निर्देश), ४.१४१.३१ (वही), **भागवत** ९.११.३२ (श्रीराम के महल में विद्रुम निर्मित उदुम्बर देहली होने का उल्लेख), **मत्स्य** ९३.१०१ (अग्नि में वसुधारा होम के लिए आर्द्र औदुम्बरी स्रुचा निर्माण का निर्देश), ९६.८ (फल त्याग माहात्म्य के अन्तर्गत रजत से निर्माण किए जाने वाले १६ फलों में से एक उदुम्बर का उल्लेख), **योगवासिष्ठ** ६.२.१३.६ (उदुम्बर फल की जगत से उपमा), **लिङ्ग** १.४९.६१ (उदुम्बर वन में कर्दम तथा अन्य महात्माओं के निवास का उल्लेख), २.६.५१ (गृह में उदुम्बर आदि वृक्ष होने पर गृह में अशुभा-पुत्र दु:सह के प्रवेश का कथन), **वराह** ८०.१ (इक्षुक्षेप पर्वत शिखर पर स्थित उदुम्बर वन का माहात्म्य : महाकूर्म समान फल, कर्दम मुनि का आश्रम आदि), १२८.१८ (वैश्य वर्ण की दीक्षा के अन्तर्गत उदुम्बर दन्तकाष्ठ दक्षिण हस्त में लेकर दीक्षा ग्रहण करने का निर्देश), १८९.११ (प्रेतान्न भक्षण के पश्चात् देह शोधन व औदुम्बर पात्र में स्थित शान्ति उदक द्वारा गृह का प्रोक्षण करने का विधान कथन), **वामन** १४.७०

(औदुम्बर पात्रों की अम्ल द्वारा शुद्धि होने का उल्लेख), १७.७ (यम के दक्षिणोत्तर पार्श्व से कृष्ण उदुम्बर की उत्पत्ति का उल्लेख), ३६.७ (ब्रह्मोदुम्बर तीर्थ का माहात्म्य कथन), **वायु** ३८.३ (पृथुक्षेप शिखर पर स्थित उदुम्बर वन के माहात्म्य का वर्णन), **शिव** ४.२७.४ (गौतम ऋषि के स्नान हेतु उदुम्बर शाखा से गंगा के प्रकट होने का उल्लेख), **स्कन्द** २.७.२०.८३ (वैशाख मास में उदुम्बर आदि फलों के वर्जन का निर्देश), ६.१८८.८ (ब्रह्मा के अग्निष्टोम यज्ञ में उद्गाता के शंकु प्रचार कर्म में औदुम्बरी कन्या का आगमन; औदुम्बरी कन्या का वृत्तान्त), ६.२५२.३६ (शुक्र ग्रह द्वारा स्वीकृत वृक्ष), ७.२३.९१ (चन्द्रमा के यज्ञ में चन्द्रमा के मृगचर्म से आवृत?औदुम्बर दण्ड से सुशोभित होने का उल्लेख), **लक्ष्मीनारायण** १.४४१.९०(उदुम्बर वृक्ष के शुक्र ग्रह का रूप होने का उल्लेख), १.५११.७५ (उदुम्बरी: देवशर्मा व सत्यभामा-पुत्री उदुम्बरी का ब्रह्मा के यज्ञ में आगमन, उद्गाता से वर प्राप्ति, मोक्ष, पूर्व जन्म में पर्वत ऋषि की पुत्री), १.५४०.८० (राजा वृषादर्भि द्वारा दुर्भिक्ष काल में ऋषियों को हेमपूर्ण उदुम्बर देने के प्रयास की कथा), २.२७.१०४(कृष्ण उदुम्बर की यम से उत्पत्ति का उल्लेख), **कथासरित्** १०.७.९७(वानर से प्राप्त उदुम्बर फल भक्षण पर शिशुमार/मकर-पत्नी द्वारा वानर के हृत्पद्म को खाने की इच्छा, वानर का बन्धन, वानर द्वारा उदुम्बर वृक्ष में निहित हृत्पद्म को लाने के बहाने शिशुमार से मुक्ति पाना)।

**महाभारत** कर्ण १०.४६ (कौरव सेना के सेनापति पद पर अभिषेक हेतु कर्ण के औदुम्बर आसन पर आसीन होने का उल्लेख), अनुशासन १०४.९२ (उदुम्बर आदि न खाने का निर्देश)।

**टिप्पणी**- उदुम्बर के बारे में पुराणों से उपरोक्त संकलन अपूर्ण है। अथर्ववेद १९.३१ सूक्त औदुम्बर मणि का है। डा. फतहसिंह के अनुसार मणि मन के उच्च स्तर का प्रतीक है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि उदुम्बर का एक पक्ष वह है जो मन से अथवा मणि से भी उच्च स्तरों से संबंधित है और औदुम्बर मणि के रूप में उदुम्बर का मनुष्य व्यक्तित्व के निचले स्तरों पर विस्तार करना है। इस विस्तार का क्या परिणाम होगा, यह सूक्त में वर्णित है। इस सूक्त के अतिरिक्त वेदों की ऋचाओं में उदुम्बर शब्द बहुत कम प्रकट हुआ है, लेकिन ब्राह्मण व श्रौत ग्रन्थों में कर्मकाण्ड के संदर्भ में उदुम्बर का प्रचुरता से उल्लेख हुआ है। प्रश्न यह है कि उदुम्बर वृक्ष की कल्पना की आवश्यकता क्यों पड़ी? ऋग्वेद की बहुत सी ऋचाएं, और कई सूक्त भी, उदु त्यं, उदु ष्य आदि शब्दों से आरंभ होती हैं। अतः ऐसा हो सकता है कि उदुम्बर की कल्पना इन्हीं ऋचाओं की व्याख्या के लिए की गई हो। इसकी पुष्टि में एकमात्र प्रमाण हमें काठक संहिता २१.८ तथा तैत्तिरीय संहिता ५.४.५.१ से मिलता है जहां अग्नि में औदुम्बरी समित् रखने के साथ उदु त्वा विश्वेदेवा (शुक्ल यजुर्वेद १२.३१, १७.५३) यजु के विनियोग का उल्लेख है।

उदुम्बर शब्द की निरुक्ति क्या हो सकती है? डा. फतह सिंह ने इसकी निरुक्ति उत्-ॐ-वर, ऊपर की ओर, ॐ की ओर चलने वाले के रूप में की है। ऋग्वेद की ऋचाओं में जहां उदु शब्द प्रकट हुआ है, उसका पद पाठ शाकल्य ने उत्-ॐ इति किया है। शतपथ ब्राह्मण ७.५.१.२२ का कथन है कि इसने मेरा समस्त पापों से उदभर्षण किया है, अतः इसका नाम उदुम्भर या उदुम्बर है। शतपथ ब्राह्मण ६.६.३.२ में उल्लेख आता है कि देवों और असुरों की प्रतिस्पर्धा में सब वनस्पतियां देवों का साथ छोड़कर चली गईं, लेकिन उदुम्बर ने उन्हें नहीं त्यागा। बाद में देवों ने असुरों को जीतकर सब वनस्पतियों का रस उदुम्बर में स्थापित कर दिया। इसी कारण से उदुम्बर सर्वदा आर्द्र, सर्वदा क्षीरी बना रहता है। शतपथ ब्राह्मण के उपरोक्त २ कथन परस्पर विरोधी प्रतीत होते हैं, इस दृष्टि से कि उदुम्बर वृक्ष उत्पन्न होकर स्वयं पापों का नाश करेगा या उदुम्बर वृक्ष को उत्पन्न करने के लिए ही पहले पापों का नाश करना होगा। ऐतरेय ब्राह्मण ७.१५ में हरिश्चन्द्र-पुत्र रोहित के अरण्य में विचरण के आख्यान में उल्लेख आता है कि ६ संवत्सर तक रोहित ने अरण्य में विचरण किया। इनमें से प्रत्येक संवत्सर में उसने कोई न कोई विशिष्ट प्राप्ति की। पांचवें संवत्सर में उसने कलियुग से कृतयुग की प्राप्ति की। छठें संवत्सर में मधु व स्वादु उदुम्बर की प्राप्ति का उल्लेख है। छठें संवत्सर में ही उसने यज्ञ पशु के रूप में शुनः शेप का क्रयण किया। इस आख्यान में दो तथ्य महत्वपूर्ण हैं। एक तो यह कि साधना में उदुम्बर स्थिति की प्राप्ति से पूर्व की

अवस्था कृतयुग है। पुराणों में कृत्तिका नक्षत्र से उदुम्बर के उत्पन्न होने का उल्लेख है। कृत्तिकाएं पापों को काटने वाली कैंची हैं। दूसरी ओर कृत का अर्थ हो सकता है कि अब कोई पाप शेष नहीं रह गया है (कृतयुग को सत्ययुग भी कहते हैं)। आख्यान का दूसरा महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि उदुम्बर अवस्था प्राप्ति के पश्चात् शुनः अवस्था, शून्य अवस्था की प्राप्ति होती है। पुराणों में सप्तर्षियों द्वारा राजा से उदुम्बर प्रतिग्रह के अस्वीकार की कथा में सप्तर्षियों का शुनः सख/इन्द्र से मिलन होता है। ऋग्वेद १०.१४.१२ तथा अथर्ववेद १८.२.१३ में यम के चार आंखों वाले २ श्वानों का उल्लेख है जिन्हें उदुम्बलौ कहा गया है। अत यह शुनः अवस्था ऐसी हो सकती है जो उदु अवस्था को बल प्रदान करती हो, उसे पुष्ट करती हो (यह उल्लेखनीय है कि वैदिक मन्त्रों में शून्य का उल्लेख कहीं नहीं है। शून्य संभवतः शुनम् के माध्यम से प्रकट हुआ है)।

शब्दकल्पद्रुम कोश से संकेत मिलता है कि उदुम्बर/उडुम्वर की निरुक्ति नक्षत्रों के दर्शन के रूप में भी की जा सकती है। ताण्ड्य ब्राह्मण ४.९.१५ का सायण भाष्य इसकी पुष्टि करता है। यह सब ऊर्जा के विकास से संबंधित है।

पुराणों में सप्तर्षियों द्वारा हेमपूर्ण उदुम्बर के अस्वीकार करने का क्या अर्थ हो सकता है? सारे ब्राह्मण और श्रौत ग्रन्थ एक ही रट लगाए हुए हैं कि अन्न ऊर्क् है और ऊर्ज उदुम्बर है (उदारण के लिए, शतपथ ब्राह्मण ३.२.१.३३)। केवल ऐतरेय ब्राह्मण ५.२४ में इष व ऊर्ज से उदुम्बर वृक्ष की उत्पत्ति का उल्लेख है। इष शब्द की टिप्पणी में यह लिखा जा चुका है कि इष व ऊर्ज इडा के, अचेतन मन की विकासशील अवस्था के दो भाग हैं। इनमें ऊर्ज ऊर्जा है, उदान प्राण है जिसका विकास ऊर्ध्वमुखी होता है। हमारे शरीर में आंख, नाक, कान आदि यह सात ऋषि हैं। इन ऋषियों का जन्म भी जड पदार्थ में ऊर्जा के विकास से ही संभव हुआ है। ऊर्जा की प्रत्येक प्रकार से रक्षा करनी है, तभी वह शरीर में अन्य यज्ञीय विकास करेगी। सप्तर्षियों द्वारा उदुम्बर भक्षण के अस्वीकार करने के पीछे यही कारण हो सकता है। स्वामी ब्रह्मानन्द के अनुसार भक्षण का अर्थ किसी तत्त्व को सूक्ष्म बनाना होता है। लेकिन उदुम्बर को अन्नाद्य, अन्नों में श्रेष्ठतम, कहा गया है जिसको सूक्ष्म बनाने की कोई आवश्यकता नहीं रह गई है। पुराणों में उदुम्बर भक्षण के निषेध के पीछे भी यही कारण हो सकता है। सप्तर्षियों के संदर्भ में उदुम्बरों का हेमपूर्ण होना एक दूसरी प्रहेलिका है। बौधायन श्रौत सूत्र १२.१३ व १२.१४ में राजसूय के संदर्भ में ३ प्रकार की मणियों का उल्लेख हुआ है: रजतमय, उदुम्बरमय और सुवर्णमय। यह उल्लेखनीय है कि शब्दकोशों में उदुम्बर का अर्थ ताम्र भी किया गया है। हो सकता है कि ताम्र, रजत व सुवर्ण ऊर्जा की क्रमिक अवस्थाएं हों। शिव पुराण में गौतम ऋषि के स्नान हेतु उदुम्बर शाखा से गंगा के प्रकट होने तथा अन्य पापी मुनियों द्वारा उसमें स्नान न कर पाने के उल्लेख के संदर्भ में, शतपथ ब्राह्मण ५.३.४.२ में राजसूय में जल द्वारा अभिषेक हेतु औदुम्बर पात्र के उल्लेख आए हैं। कहा गया है कि औदुम्बर पात्र से स्वः अभिषेक करता है, अन्य पात्रों से अन्य। शिव पुराण का कथन संकेत करता है कि जब तक पाप रहेंगे, तब तक उदुम्बर पात्र से अभिषेक हो ही नहीं सकता।

वैदिक साहित्य में उदुम्बर के विकल्प से ऊर्ज होने के सार्वत्रिक कथन को समझने के लिए हमारे पास इष/आश्विन तथा ऊर्ज/कार्तिक मासों के कृत्य हैं। आश्विन मास में पितरों हेतु श्राद्ध किया जाता है, जबकि कार्तिक मास में दीप प्रज्वलित किया जाता है, देवों का प्रबोधन किया जाता है। ऊर्ज से दीप का प्रज्वलित होना ऊर्जा का एक उपयोग है। वैदिक साहित्य में उदुम्बर काष्ठ से प्लेङ्खा, आसन्दी, सीर/हल, दीक्षा में धारण हेतु दण्ड, स्रुवा, चमस, उलूखल, मुसल आदि आदि यज्ञ पात्रों का निर्माण किया गया है। यह सब यज्ञ पात्र उस अल्प-अल्प ऊर्जा के एकत्रीकरण से बने हैं जिसे उदान प्राण कहते हैं। वराह पुराण आदि में उदुम्बर के जिन महाकूर्म समान फलों का उल्लेख है, वह कूर्म भी उदान प्राण का ही प्रतीक है। शतपथ ब्राह्मण १४.९.३.२१ में उदुम्बर के चार प्रकार कहे गए हैं: चमस, स्रुव, इध्म और उपमन्थ-द्वय।

कथासरित्सागर में मकर-पत्नी द्वारा वानर के हृत्पद्म को खाने की इच्छा के संदर्भ में, यज्ञ में सदो-मध्य में औदुम्बरी शाखा का रोपण किया जाता है। ताण्ड्य ब्राह्मण ६.४.६ के अनुसार सदः आत्मा का प्रतीक है और उसका मध्य हृदय का। औदुम्बरी का रोपण करते समय कहा जाता है कि मैं तुझे आयु के सदन में स्थापित करता हूं, अवतः/यज्ञ की छाया में तथा समुद्र के हृदय में। समुद्र के लिए नमः तथा समुद्र के चक्षु के लिए नमः। ताण्ड्य ब्राह्मण इस कथन की व्याख्या में कहता है कि समुद्र वाक् का रूप है जबकि मन समुद्र-चक्षु का रूप है। कथासरित्सागर की कथा की व्याख्या का प्रयास

वानर को मन का और मकर-पत्नी को वाक् का प्रतीक मान कर किया जा सकता है।

यद्यपि उदुम्बर को ऊर्जा से उत्पन्न कहा गया है, तथापि उदुम्बर वृक्ष का मूल कहां है और शाखाएं कहां हैं, यह उतना स्पष्ट नहीं हो सका है जितना अश्वत्थ की स्थिति में हो सका था। बौधायन गृह्य सूत्र १.७.८ में ब्रह्मचारी की दीक्षा वर्णन के अन्तर्गत उदुम्बर मूल में बकों के लिए पुत्रों व पशुओं रूपी मत्स्यों की बलि देने के विधान का कथन है।

पुराणों में एक ओर तो कृष्ण उदुम्बर की यम से उत्पत्ति का उल्लेख है, दूसरी ओर शुक्र ग्रह को उदुम्बर का रूप कहा गया है। यह अन्वेषणीय है कि कृष्ण और शुक्र/शुक्ल उदुम्बर से क्या तात्पर्य हो सकता है?

**उदूखलमेखला** **वामन** ३४.४५ (कपिल यक्ष की भार्या उदूखलमेखला यक्षी का कुरुक्षेत्र तीर्थ में वास, उदूखलमेखला द्वारा पाप युक्त स्त्री को रात्रि में भक्षण की पूर्व-चेतावनी), ५७.९५ (उलूखलमेखला: बदरिकाश्रम द्वारा स्कद को प्रदत्त गणों में से एक)।

**उद्गत** **विष्णुधर्मोत्तर** ३.१८.१ (७ षड्ज ग्रामिकों में से एक)।

**उद्गाता** **देवीभागवत** ३.१०.२२ (तमसा तीर पर देवदत्त द्विज के पुत्रेष्टि यज्ञ में गोभिल के उद्गाता व पैंल के प्रस्तोता होने का उल्लेख, गोभिल द्वारा देवदत्त को शाप का वर्णन), ११.२२.३१ (प्राणाग्नि होत्र में प्राण के उद्गाता होने का उल्लेख, **पद्म** १.१६.९८ (ब्रह्मा के यज्ञ में मरीचि के उद्गाता होने का उल्लेख), १.३४.१४ (पुष्कर में ब्रह्मा के यज्ञ में अंगिरस के उद्गाता, पुलह के प्रत्युद्गाता/प्रस्तोता, नारायण के प्रतिहर्त्ता तथा अत्रि के सुब्रह्मण्य होने का उल्लेख), **ब्रह्माण्ड** २.३.४७.४८ (परशुराम के हयमेध में गौतम के उद्गाता बनने का उल्लेख), **भागवत** ५.१५.५ (प्रतीह/प्रतिहार व सुवर्चला-पुत्र, प्रतिहर्त्ता व प्रस्तोता-भ्राता, भरत वंश),९.१६.२१ (परशुराम द्वारा उद्गाता को उत्तर दिशा देने का उल्लेख), **मत्स्य** १६७.७ (यज्ञपुरुष के मुख से उद्गाता, ब्रह्म/सर्व से प्रस्तोता, उदर से प्रतिहर्त्ता व जानु से सुब्रह्मण्य की उत्पत्ति का उल्लेख), **स्कन्द** ५.१.२८.७७ (चन्द्रमा के राजसूय यज्ञ में हिरण्यगर्भ ऋषि के उद्गाता बनने का उल्लेख), ५.१.६३.२४१ (वामनावतार प्रसंग में बलि के वाजिमेध में नारद के उद्गाता होने का उल्लेख), ५.३.१९४.५४ (नारायण व श्री के विवाह यज्ञ में अत्रि, अंगिरस व मरीचि के उद्गाता होने का उल्लेख), ६.५.६ (विश्वामित्र द्वारा सम्पादित त्रिशंकु के यज्ञ में याज्ञवल्क्य के उद्गाता, जैमिनि के प्रतिहर्त्ता व शंकुवर्ण के प्रस्तोता होने का उल्लेख), ६.१८०.३५ (पुष्कर में ब्रह्मा के यज्ञ में गोभिल उद्गाता, कौथुम प्रस्तोता, शांडिल्य प्रतिहर्त्ता व अंगिरा के सुब्रह्मण्य ऋत्विज होने का उल्लेख), ७.१.२३.९३ (प्रभास क्षेत्र में ब्रह्मा के यज्ञ में मरीचि उद्गाता, कश्यप प्रस्तोता, गालव प्रतिहर्त्ता व गर्ग के सुब्रह्मण्य ऋत्विज होने का उल्लेख), **हरिवंश** ३.१०.६ (श्री हरि की यज्ञ देह से ऋत्विजों की उत्पत्ति का कथन : मुख से उद्गाता, सर्व से प्रस्तोता, उदर से प्रतिहर्त्ता व पाणि से सुब्रह्मण्य की उत्पत्ति), **लक्ष्मीनारायण** १.५११.८६ (ब्रह्मा के यज्ञ में उद्गाता द्वारा उदुम्बरी कन्या को वरदान), २.१०६.४७ राजा दक्षजवंगर के वैष्णव यज्ञ में बलायन उद्गाता, मषीग्रीव आहर्त्ता व रवासन के प्रतिहर्त्ता होने का उल्लेख), २.१२४.११ (शिबिदेव के वैष्णव मख में वेदों-उपवेदों के गाता तथा शाखामूर्तियों के उद्गाता होने का उल्लेख), २.२४८.३६ (सोमयाग में पंचम दिवस में बहिष्पवमान हेतु ऋत्विजों के प्रसर्पण क्रम का कथन : अध्वर्यु, प्रस्तोता, प्रतिहर्त्ता, उद्गाता, ब्रह्मा), ४.८०.१२ (राजा नागविक्रम के सर्वमेध यज्ञ में फालायन के उद्गाता, सारायण के प्रत्युद्गाता, अजायन के आहर्त्ता, दण्डायन के प्रतिहर्त्ता, भालायन के प्रस्तोता व रसायन के प्रतिप्रस्तोता होने का उल्लेख)।

**महाभारत** उद्योगपर्व १४१.२९ (कर्ण द्वारा भावी कौरव-पाण्डव युद्ध की यज्ञ से तुलना : अभिमन्यु उद्गाता, भीम प्रस्तोता, युधिष्ठिर ब्रह्मा, युद्ध में सिंहनाद सुब्रह्मण्य आदि)।

**टिप्पणी-** वैदिक यज्ञ में १६ ऋत्विज यजमान के आरोहण में सहायता करते हैं। इन १६ ऋत्विजों को होतृगण, अध्वर्युगण,

उद्गातृगण और अथर्ववेदी गण, इन चार गणों में बांटा जाता है। उद्गातृगण के ४ ऋत्विजों की संज्ञा प्रस्तोता, उद्गाता, प्रतिहर्त्ता व सुब्रह्मण्य है। उद्गाता इनमें से प्रमुख ऋत्विज है। यद्यपि वैदिक साहित्य में ऋत्विजों और यजमान में पृथकता दिखाई गई है, किन्तु पुराणों के वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि यजमान साधक के अंदर ही ऋत्विजों का विकास भी होता है। पुराण कथाओं में सार्वत्रिक रूप से वर्णन आता है कि पहले साधक तप करके अपने इष्ट देवता के दर्शन करता है, फिर उसकी स्तुति करता है, फिर स्तोत्र गाता है, फिर अपने इष्ट देव से वर प्राप्त करता है। इस क्रम में स्तुति करना प्रस्तोता का कार्य है, स्तोत्र (जैसे विष्णु सहस्रनाम आदि) उद्गाता का तथा वर प्राप्त करना प्रतिहर्त्ता का कार्य है (द्र. उद्गीथ)।

पुराणों में विभिन्न यज्ञों में गौतम, गोभिल, हिरण्यगर्भ आदि उद्गाताओं के नाम आए हैं तो वैदिक साहित्य में चक्षु, श्रोत्र, अयास्य, सूर्य, पर्जन्य, समान, बृहस्पति, प्रजापति आदि नाम आए हैं। पुराणों में उद्धृत उद्गाताओं के नामों से वैदिक साहित्य के उद्गाताओं पर क्या प्रकाश पड़ सकता है? वैदिक साहित्य में उद्गाता की मुख्य रूप से दो श्रेणियां हैं: मानुषी और दैवी (आर्षेय कल्प: उपोद्घात, पृष्ठ २ आदि)। अत: जब यजमान यज्ञ के आरंभ में उद्गाता ऋत्विज का वरण करता है तो वह कहता है कि यद्यपि दैवी उद्गाता पर्जन्य आदि हैं, तथापि मनुष्य रूप में मैं अमुक का वरण कर रहा हूं। मनुष्य रूप में जिस उद्गाता का वरण किया गया है, उसी को दैवी उद्गाता में रूपांतरित करना है। यह कार्य मनुष्य व्यक्तित्व के क्रमिक विकास से होगा। इसका उदाहरण हिरण्यगर्भ उद्गाता है। ऋग्वेद १०.१७१ सूक्त हिरण्यगर्भ ऋषि का है जो प्रजापति पद की प्राप्ति के लिए अपने पाशों का क्रमिक रूप से छेदन करता है (डा. अभयदेव)।

मानुषी उद्गाताओं में वैदिक साहित्य में सार्वत्रिक रूप से अयास्य आंगिरस के नाम का उल्लेख हुआ है। अयास्य क्या है, कौन है, इसकी व्याख्या का प्रयास बृहदारण्यक उपनिषद १.३.८, १.३.१९ शतपथ ब्राह्मण १४.४.१.८, जैमिनीय उपनिषद ब्राह्मण २.४.२.८ आदि में किया गया है। इस वर्णन के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि जड पदार्थ में प्राणों का योजन करना, उसे देव प्राप्ति की ओर उन्मुख करना, उसमें अभीप्सा उत्पन्न करना उद्गाता का कार्य है (जैमिनीय ब्राह्मण १.१३९ के अनुसार काम का उद्गान करना है)। इस हेतु वाक्, चक्षु, श्रोत्र आदि सभी प्राण जड पदार्थ में आंशिक चेतना उत्पन्न कर सकते हैं। लेकिन उपरिलिखित संदर्भों के अनुसार यह उद्गान शाश्वत नहीं है, अपितु क्षणिक है। यद्यपि आरंभ में तो उद्गाता यही बनेंगे, लेकिन जब तक मुख्य प्राण को उद्गाता न बना लिया जाए, तब तक अन्य सब प्राणों का उद्गातृत्व क्षणिक है, मृत्यु से विद्ध है। यह मुख्य प्राण कौन सा है, इसकी व्याख्या जैमिनीय उपनिषद ब्राह्मण ३.१.१.१४ के वर्णन के आधार पर की जा सकती है। स्वप्न में जिस प्राण का आश्रय हमारे वाक्, श्रोत्र, चक्षु, मन आदि ले लेते हैं, वह प्राण ही मुख्य है। एक बार यदि मुख्य प्राण को उद्गाता बना लिया जाए तो अन्य वाक्, श्रोत्र, चक्षु आदि प्राण स्वयं ही अक्षित् उद्गाता बन जाते हैं। ऋग्वेद १०.६७ तथा १०.६८ सूक्त अयास्य आंगिरस ऋषि के हैं तथा इनका देवता बृहस्पति है। बृहस्पति वैदिक साहित्य में दैवी उद्गाताओं में से एक है (तैत्तिरीय संहिता ३.३.२.१, बृहदारण्यक उपनिषद १.१.२२, ताण्ड्य ब्राह्मण ६.५.५, ६.७.१, जैमिनीय ब्राह्मण ३.३७४)। बृहती के पति को बृहस्पति कहते हैं और वाक् को बृहती बनाया जा सकता है। जब वाक् बृहती बनती है तो श्रोत्र दिशाओं में, चक्षु सूर्य में बदल जाते हैं। अत: यह कहा जा सकता है कि अयास्य उद्गाता के रूप में साधक की साधना का आरंभ एकान्तिक साधना से होता है (ताण्ड्य ब्राह्मण १६.१२.१) और बृहस्पति की स्थिति में पूरा होता है। अयास्य के साथ आंगिरस विशेषण जोडना इसी तथ्य का परिचायक है कि अयास्य अपनी एकान्तिक साधना का विस्तार करना चाहता है, अंगों को भी रस प्रदान करना चाहता है। तैत्तिरीय संहिता ७.५.८.४ के अनुसार उद्गाता दिशाओं में फैल कर दिशाओं से अन्नाद्य, अन्नों में श्रेष्ठतम अन्न का संभरण करता है और उससे स्वयं में तेज को धारण करता है।

उपर्युक्त तथ्य को प्रजापति नामक दैवी उद्गाता के माध्यम से भी समझ सकते हैं। शतपथ ब्राह्मण ४.२.५.३, ४.३.२.३, ४.४.२.१८, जैमिनीयं ब्राह्मण १.७०, १.७२, १.८८, काठक संहिता २५.१० आदि में प्रजापति का उद्गाता के रूप में उल्लेख आता है। कहा गया है कि पुरुष षोडशी है। १७वां प्रजापति है। षोडशी आत्मा है और पूर्ववर्ती १५ कलाएं उसका वित्त हैं। आत्मा को उसकी १५ कलाओं से युक्त करने वाला प्रजापति है। यह १५ अथवा १६ कलाएं कौन सी हैं, यह विचारणीय प्रश्न है। जैमिनीय उपनिषद ब्राह्मण १.१५.१.२ में इनका नाम भद्र, सम्-आप्ति, आभूति, संभूति आदि लिया गया है तथा उनकी परिभाषा भी की गई है। इसी तथ्य की जैमिनीय ब्राह्मण १.३३१ में इस प्रकार व्याख्या की गई है कि जो १५ हैं, वह

वज्र है, जो १६ वां है, वह इन्द्र है और प्रजापति रूपी उद्गाता इस वज्र को इन्द्र रूपी यजमान के हाथों में देने वाला है। षड्विंश ब्राह्मण ३.१.१० तथा ३.२.१ के अनुसार आत्मा व प्रजा के विकास का कार्य उद्गाता का है। जब तक आत्मा दिव्य प्रजा से युक्त नहीं होगा, तब तक वह स्थिर नहीं रहेगा। वह अल्पायु होगा। संभवतः इसी कारण से तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.८.५.४ आदि में उद्गाता को आयु भी कहा गया है। ताण्ड्य ब्राह्मण २५.१८.४ में उद्गाता को अमृत कहा गया है।

शतपथ ब्राह्मण १३.२.३.२, तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.८.२२.१ आदि में अश्वमेध यज्ञ में अश्व के हिंकार शब्द द्वारा ही उद्गाता का कार्य सम्पन्न किया जाता है तथा मानुषी उद्गाता उसका अनुसरण करता है। उद्गाता के रूप में अश्व का उल्लेख पौराणिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है क्योंकि पुराणों में तो गौतम, गोभिल आदि का नाम उद्गाता के रूप में लिया गया है। इसका तात्पर्य यह हो सकता है कि उद्गाता के गौ और अश्व, ये दो रूप है।

देवीभागवत पुराण में प्राणाग्निहोत्र के संदर्भ में प्राण के उद्गाता होने का उल्लेख है। गोपथ ब्राह्मण २.५.४, महानारायणोपनिषद २५.१ में भी प्राण को उद्गाता कहा गयाहै, लेकिन प्राणाग्निहोत्र उपनिषद में उदान को उद्गाता कहा गया है। षड्विंश ब्राह्मण २.५.५, २.६.२ व २.७.२ में यज्ञ में प्रातः सवन में, जब प्राण यजमान बनता है, तब पर्जन्य के उद्गाता होने का उल्लेख है। माध्यन्दिन सवन में अपान यजमान बनता है, तब श्रोत्र उद्गाता हैं। तृतीय सवन में उदान यजमान है और समान उद्गाता है। वैदिक साहित्य में दैवी उद्गाता के रूप में पर्जन्य का सार्वत्रिक रूप से उल्लेख आता है (उदाहरण के लिए, षड्विंश ब्राह्मण ३.३.२, ३.३.९, शतपथ ब्राह्मण १२.१.१.३)। ऋग्वेद के ५.८३, ७.१०१, ७.१०२ व ७.१०३ सूक्त पर्जन्य देवता के है। सूक्त ७.१०३ में मण्डूक रूपी प्राण पर्जन्य की कामना करते रहते हैं। पर्जन्य वृष्टि से प्राण तृप्त हो जाते हैं। पर्जन्य कैसे उत्पन्न होता है?गोपथ ब्राह्मण १.४.३ में पर्जन्य, आदित्य और चक्षु में समानता का उल्लेख है। गोपथ ब्राह्मण १.२.११ में चक्षु को उद्गाता कहा गया है जबकि गोपथ ब्राह्मण १.१.१३ में सूर्य को। डा.फतह सिंह के अनुसार चक्षु से अर्थ दो सामान्य आंखों से नहीं, अपितु भ्रूमध्य में उत्पन्न होने वाले तृतीय चक्षु से है। सामान्य आंखों में जब बाहर से प्रकाश की किरणें जाती हैं, तब वह देखने में समर्थ होती हैं। किन्तु तृतीय चक्षु स्वयं सूर्य का रूप है। वह किरणें बाहर फेंकता है। चक्षु का बृहद् रूप ही आदित्य बनने में समर्थ है। आदित्य होकर वह शरीर रूपी पृथिवी से रस का आकर्षण करता है। वह रस एकत्रित होकर मेघ या पर्जन्य बनता है।

यज्ञ में माध्यन्दिन सवन के पश्चात् ऋत्विजों को दक्षिणा दी जाती है। उद्गाता को यजमान अपने चक्षु प्रदान करता है (गोपथ ब्राह्मण १.५.८,आपस्तम्ब श्रौत सूत्र १३.६.६)। फिर किसी अन्य दक्षिणा को लेकर उद्गाता यजमान के चक्षु वापस कर देता है। यह संभावित है कि जब उद्गाता चक्षुओं को वापस करता है तो उनका रूप पहले वाला नहीं होगा, अपितु परिवर्तित, परिवर्धित होगा।

गोपथ ब्राह्मण १.२.२४, १.५.११ आदि में प्रायः उल्लेख आता है कि असामविद् उद्गाता का वरण न करे। साम क्या है, इसकी व्याख्या जैमिनीय उपनिषद ब्राह्मण ३.१.१.१४ में की गई है। इसके अनुसार स्वप्न में वाक्, चक्षु, श्रोत्र आदि जिस प्राण का आश्रय लेकर अदृश्य हो जाते हैं, वह वही प्राण है, वह साम का ही रूप है, साम अवस्था उत्पन्न होने पर भी यही स्थिति होनी चाहिए जैसी स्वप्न में होती है। यदि उद्गाता इस स्थिति को प्राप्त कर सकता है तभी वह सामवित् है। इसका निहितार्थ यह हुआ कि वैदिक साहित्य उद्गाता के विकास के विभिन्न स्तरों को स्वीकार करता है। साम की अवस्था में ७ स्वरों की उत्पत्ति होती है। श्रीकृष्ण की वेणु से भी सात स्वर निकलते हैं जिन्हें सुनकर गाएं उनके पास दौडी चली आती हैं। क्या कृष्ण को भी उद्गाता कहा जा सकता है?

तैत्तिरीय ब्राह्मण १.८.२.३, ताण्ड्य ब्राह्मण १८.३.२, १८.९.८, द्राह्यायण श्रौत सूत्र २५.२.८ आदि में बहिष्पवमान हेतु सर्पण करने को उद्धत उद्गाता को स्रग/माला/हार की दक्षिणा देने का निर्देश है। कहा गया है कि इससे सूर्य रूपी उद्गाता के लिए उषा का व्युच्छन होता है। निहितार्थ अपेक्षित है।

**उद्गीथ** **अग्नि** १०७.१५ (भुव-पुत्र, प्रस्तार-पिता, भरत वंश), **ब्रह्माण्ड** १.२.१४.६७ (भूमा-पुत्र, प्रस्ताव-पिता, भरत/नाभि वंश), **भागवत** ५.१५.६ (भूमा व ऋषिकुल्या-पुत्र, देवकुल्या-पति, प्रस्ताव-पिता), १०.८५.५१ (वसुदेव व देवकी के ६ षड्गर्भ संज्ञक पुत्रों में से एक), **वायु** ३३.५६ (भुव-पुत्र, प्रस्तार - पिता, भरत वंश), **स्कन्द** ७.१.१७.१४१ (साम की सिद्धि के हुंकार आदि ७ लक्षणों में से एक)।

टिप्पणी- सामवेद में ऋग्वेद की तीन ऋचाओं से एक साम बनता है। इन तीन ऋचाओं में से प्रत्येक ऋचा में प्रायः भक्ति की तीन,चार, पांच अथवा सात अवस्थाएं व्यक्त होती हैं। कहीं पर तो भक्ति की यह अवस्थाएं हिंकार, प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार और निधन होती हैं। कहीं पर हिंकार, प्रस्ताव, आदि, उद्गीथ, प्रतिहार, उपद्रव और निधन आदि होती हैं। कठिनाई यह है कि सामवेद की उपलब्ध पुस्तकों में इन भक्तियों को ऋचाओं के शब्दों के साथ इंगित नहीं किया गया है। श्री श्रीकृष्ण श्रौती, नं ९, पोस्टल कालोनी, तृतीय स्ट्रीट, वेस्ट माम्बलम्, चेन्नई द्वारा दिल्ली में पौण्डरीक याग काल में प्रदत्त सूचना के आधार पर राजनम् साम की एक ऋचा में भक्तियों का विभाजन उदाहरण के रूप में निम्नलिखित है:

**तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णः।**
**सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रूननु यं विश्वे मदन्त्यूमाः।।**

(साम १४८३)

(स्वर चिह्नों से रहित) साम गान प्रकार निम्नलिखित है:

हिम्। हिम् (५ आवृत्तियां)। हो (५)। हँ (५)। ओहा (५)। औहोइ (५)।। तदिदासा। भुव। नेषुज्येष्ठाम् (तीन शब्दों की ५ आवृत्तियां)।। हिम् (५)। हो (५)। हँ (५) ओहा (५)। औहोइ (५)। वयोबृहत् (५)। विभ्राष्टयेविधर्मणे (५)।। प्रस्तावः।। ओम्। हिम् (५)। हो (५)। हँ (५)। ओहा (५)। औहोइ (५)। यतोजज्ञाइ। उग्रः। त्वेषनृम्णाः (तीन शब्दों की पांच आवृत्तियां)। हिम् (५)। हो (५)। हँ (५)। ओहा (५)। औहोइ (५)। सत्यमोजः (५)। रजस्सुवः (५) (उद्गीथः)।। हिम् (५)। हो (५)। हँ (५)। (५)। औहोइ (५)। सद्योजज्ञाः। नोऽ३निरि। णातिशत्रून् (तीन शब्दों की पांच आवृत्तियां)। हिम् (५)। हो (५)। हँ (५)। ओहा (५)। औहोइ (५)। भद्रँ सुधा (५)। भद्रँसुधे। षमूर्जम्। इषमूर्जम् (५)। (प्रतिहारः)।। हिम् (५)। हो (५)। हँ (५)। ओहा (५)। औहोइ (५)। अनुयम्वाइ। श्वेम। दन्तियूमाः (तीन शब्दों की पांच आवृत्तियां)। हिम् (५)। हो (५)। हँ (५)। ओहा (५)। औहोइ (५)। बृहद्यशः (५)। दिविदधेऽ३हसः (५)। दिविदधेऽ३। हाउवा। (उपद्रवः)। वागीडासूवोबृहद्भा ऽ२३४५। निधनम्।। श्रीः।।

-उह्यगानम्, संवत्सर पर्व-दशतिः४.८

उपरोक्त सामगान में आरंभ में हिंकार शब्द का उच्चारण सामवेद के प्रस्तोता, प्रतिहर्त्ता व उद्गाता नामक तीनों ऋत्विज करते हैं। -- -- का कथन है कि इससे तीनों ऋत्विज परस्पर संयुक्त हो जाते हैं। जैमिनीय ब्राह्मण १.१५५ से संकेत मिलता है कि हिंकार तुरीय वाक् का रूप है जिसका उच्चारण गौ अपने वत्स को देखने आदि पर करती है (तुरीय वाक् का अर्थ है जिस वाक् में प्राणों का समावेश हो)। साम गान में ओहा आदि का उच्चारण आश्चर्य प्रकट करने के हेतु हो सकता है, यद्यपि सामवेद के ग्रन्थों में प्रत्येक अक्षर की सम्यक् व्याख्या की गई है। प्रस्तोता ऋत्विज मुख्य रूप से प्रस्ताव भक्ति का गान करता है, उद्गाता उद्गीथ का और प्रतिहर्त्ता प्रतिहार का ( ?)। निधन भक्ति का गान सब मिलकर करते हैं। उद्गीथ गान के आरंभ में प्रायः ओम् शब्द का उच्चारण किया जाता है। छान्दोग्य उपनिषद १.१.१, जैमिनीय उपनिषद ब्राह्मण आदि के अनुसार सारी उद्गीथ भक्ति ओम् पर ही आधारित है, जैसा कि निम्नलिखित विवरण से स्पष्ट होगा। जैमिनीय उपनिषद ब्राह्मण १.४.१ आदि के सार्वत्रिक वर्णन के अनुसार मृत्यु से बचने का एकमात्र उपाय ओम् की प्राप्ति ही है। इस वर्णन के अनुसार मृत्यु से बचने के लिए सबसे पहले देवताओं ने छन्दों का सम्भरण किया और फिर उनसे स्वयं को आच्छादित कर लिया। लेकिन वहां भी मृत्यु ने उन्हें नहीं छोड़ा। स्वर से रहित ऋचाओं में मृत्यु ने उन्हें देख लिया। तब देवताओं ने स्वर में प्रवेश किया। मृत्यु स्वर में तो नहीं घुस सकी, लेकिन स्वर के घोष से उसने देवताओं का पता लगा लिया। तब देवगणों ने ओम् में प्रवेश किया। वहां रहकर वह मृत्यु से बचे रहे। इसी तथ्य का विस्तार छान्दोग्योपनिषद १.१.१ में इस प्रकार किया गया है कि पृथिवी सब भूतों/प्राणों का रस है, आपः पृथिवी का रस हैं, ओषधियां आपः का, पुरुष ओषधियों का, वाक् पुरुष का, ऋक् वाक् का, साम ऋक् का तथा उद्गीथ साम का। उद्गीथ रसों का रस है। यही ओम् है जो अक्षर है। उद्गीथ की प्रकृति को समझने के लिए ओम् की अक्षर प्रकृति को समझना होगा। अक्षर अर्थात् जब ऐसी तुरीयावस्था आ जाए जहां साधक के व्यक्तित्व से किसी भी प्रकार से ऊर्जा का क्षरण न हो। हमारे देखने, सुनने, चलने आदि में हमारी सारी ऊर्जा का व्यय हो रहा है (रजनीश के अनुसार देखने में हमारी १० प्रतिशत ऊर्जा का व्यय होता है)। ऐसी अवस्था कैसे उत्पन्न की जाए जहां किसी भी ऊर्जा का क्षरण न हो? ओम् की व्यावहारिक रूप में प्रकृति अस्पष्ट होने से केवल ओम् के उच्चारण मात्र से ऊर्जा के क्षरण को रोका नहीं जा सकता। बृहदारण्यक उपनिषद १.३.७ के उद्गीथ

नामक ब्राह्मण का कथन है कि यदि चक्षु, श्रोत्र, वाक् आदि के बदले मुख्य प्राण को उद्गाता बना लिया जाए तो मृत्यु से बचा जा सकता है। जैमिनीय उपनिषद ब्राह्मण १.६.२.२ में इस समस्या का एक नवीन हल प्रस्तुत किया गया है। इस कथन के अनुसार प्रजापति ने तो हर द्वारा हिंकार पर विजय प्राप्त की, अग्नि ने तेज द्वारा प्रस्ताव पर, बृहस्पति ने रूप द्वारा उद्गीथ पर, पितरों ने स्वधा द्वारा प्रतिहार पर और इन्द्र ने वीर्य द्वारा निधन पर। यहां उद्गीथ के साथ रूप को जोडना यह संकेत करता है कि यह मधु विद्या की ओर संकेत है: रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव-प्रत्येक चीज में उसी का रूप दिखाई देने लगे, रसो वै सः।

ऊर्जा के क्षरण को भौतिक विज्ञान में अनुनाद, रेजोनेन्स के माध्यम से समझा जा सकता है। किन्हीं विशेष परिस्थितियों में ध्वनि को अथवा विद्युत तरंगों आदि को एक आयतन में बद्ध कर दिया जाता है जिससे ऊर्जा की मात्रा/आयाम में बहुत अधिक वृद्धि हो जाती है। लेकिन ऐसा कोई उपाय नहीं है कि ऊर्जा के क्षरण को शून्य कर दिया जाए।

ब्रह्माण्ड पुराण में उद्गीथ को भूमा पिता व ऋषिकुल्या माता का पुत्र कहना बहुत सार्थक वचन है। इस कथन को समझने के लिए भूमा और कुल्या शब्दों पर ध्यान देना होगा। छान्दोग्य उपनिषद ७.२४ का कथन है कि जब साधक की अवस्था ऐसी हो जाए कि उसे उस परमात्मा के रूप के सिवाय कोई अन्य रूप दिखाई ही न पड़े, परम ध्वनि ओंकार के सिवाय और कोई ध्वनि सुनाई ही न पड़े, परमात्मा के सिवाय उसे किसी अन्य का ज्ञान ही न हो, वह भूमा स्थिति है। जैमिनीय उपनिषद ब्राह्मण १.१५.१.१ में प्रजापति भूमा स्थिति प्राप्त करने के लिए १६ गुणों का स्वयं में सृजन करते हैं। कुल्या शब्द के संदर्भ में जैमिनीय उपनिषद ब्राह्मण १.१८.३.३ का कथन है कि यह जो मन है, यह कामों से पूर्ण एक ह्रद है। और वाक् इसकी कुल्या है, ह्रद से पानी को ले जाने वाली एक नाली है। जैसे ह्रद से शुद्ध जल के प्रवाह के लिए कुल्या का निर्माण किया जाता है, वैसे ही उद्गाता अपनी वाक् रूपी कुल्या से यजमान के लिए अपने मन से कामों/कामनाओं को प्रदान करता है।

ब्राह्मण ग्रन्थों में उद्गीथ शब्द की निरुक्ति द्वारा भी उद्गीथ की प्रकृति पर प्रकाश डाला गया है। जैमिनीय उपनिषद ब्राह्मण १.१८.२.८ के अनुसार अध्यात्म में प्राण ही उत् है, वाक् ही गी है और मन ही थम् है। जैमिनीय ब्राह्मण ३.३७९ के अनुसार जो उत् है, इससे यह सब उत्तब्ध हो जाता है, जो गी है, यह सर्व का गिरण करती है (खाती है/गान करती है, डॉ. फतहसिंह की विचारधारा के अनुसार विज्ञानमय कोश का वाक्)। और जो थम् है, यह इसका अन्न है। इन निरुक्तियों से इतना तो समझ ही सकते हैं कि उद्गीथ में वाक्, प्राण और मन तीनों का समावेश हो जाता है। यह पूर्ण अनुनाद की अवस्था है।

ब्रह्माण्ड पुराण में उद्गीथ को प्रस्ताव का पिता कहना एक पहेली है। सामगान में उद्गीथ भक्ति से पूर्व प्रस्ताव का गान किया जाता है, अतः आभासी रूप में नियमानुसार तो प्रस्ताव को पुत्र के बदले उद्गीथ का पिता होना चाहिए। इस प्रहेलिका का हल जैमिनीय उपनिषद ब्राह्मण २.२.४.१० के इस कथन के आधार पर किया जा सकता है कि यह जो आदित्य की रश्मियां हैं, यह इसके पुत्र रूप ही हैं। चूंकि प्रस्ताव तेज का रूप है, अतः आदित्य रूपी उद्गीथ अवस्था से प्रस्ताव रूपी तेज का उत्पन्न होना संभावित है।

भागवत पुराण में उद्गीथ को षड्गर्भ समूह में से एक कहा गया है। भागवत पुराण में षड्गर्भ के स्मर, उद्गीथ, परिष्वङ्ग, पतङ्ग, क्षुद्रभृद् व घृणि जो नाम आए हैं, वह अन्य पुराणों से सर्वथा भिन्न हैं। मत्स्य पुराण आदि में षड्गर्भ के नामों सुषेण, कीर्तिमान, उदासी आदि का उल्लेख हुआ है। केवल भागवत पुराण में उद्गीथ का उल्लेख होने से ही यह आभास होता है कि वसुदेव व देवकी के ६ पुत्र जिन्हें कंस ने मारा था, भक्ति की ६ अवस्थाएं हो सकते हैं। भक्ति की यह ६ अवस्थाएं शाश्वत हैं, अनश्वर हैं, लेकिन यह केवल गर्भ रूप में ही विद्यमान रह सकती हैं। जैसे ही यह मूर्त्त रूप धारण करने का प्रयास करती हैं, कंस रूपी हमारा यह व्यक्तित्व (कंस पात्र को कहते हैं जिसमें देवगण सोम का पान करते हैं अथवा असुर सुरा का-दृष्टव्य पुराणों में वैदिक संदर्भ/वैदिक तत्त्व मंजूषा भाग ४) उनका हनन कर देता है। इनका उद्धार तब कृष्ण रूपी उद्गाता के बिना नहीं हो सकता। उद्गीथ को गर्भ कहने के पीछे एक दूसरा तथ्य यह भी है कि ब्राह्मण ग्रन्थों में भक्ति की इन अवस्थाओं को अप्रत्यक्ष रूप में गर्भ ही कहा गया है जिनके पोषण के लिए हिंकार आदि से अन्न की व्यवस्था करनी होती है।

**उद्दालक** पद्म ४.१०.१३ (विष्णु द्वारा लक्ष्मी से विवाह हेतु लक्ष्मी की ज्येष्ठ भगिनी ज्येष्ठा का उद्दालक से विवाह

करना), ६.११६ (वेद ध्वनि आदि सुनने पर ज्येष्ठा के व्यथित होने के कारण उद्दालक द्वारा ज्येष्ठा को अश्वत्थमूल में स्थापित करके ज्येष्ठा के निवास योग्य स्थान के अन्वेषण के लिए जाना), **ब्रह्म** १.५.६१ (उत्तंक-धुन्धु-कुवलाश्व कथा में समुद्र का उद्दालक नाम, अन्य पुराणों में उज्जानक नाम), **योगवासिष्ठ** ५.५१+ (उद्दालक ऋषि की चित्त के विकारों से मुक्ति पाकर आत्मबोध की अभीप्सा, प्रणव द्वारा निर्विकल्प समाधि की प्राप्ति, खिंखिनी देवी द्वारा उद्दालक की देह को मुकुट का भूषण बनाने का उल्लेख), **लिङ्ग** २.६ (उद्दालक के स्थान पर दुःसह नाम, मार्कण्डेय ऋषि द्वारा ज्येष्ठा-पति दुःसह को ज्येष्ठा सहित निवास योग्य स्थानों का वर्णन), **वराह** १९३.१२+ (पिता उद्दालक के वचन से नचिकेता का यम के पास गमन, प्रत्यागमन पर ऋषियों को यमलोक स्थित पापियों व धर्मराजपुरी आदि का विस्तृत वर्णन), **वामन** ३७.३२ (उद्दालक द्वारा उत्तरकोसल तीर्थ में मनोहरा नाम से सरस्वती का आह्वान), **वायु** ४१.४४ (उद्दालक आदि ऋषियों के कलाप ग्राम में वास का कथन), **स्कन्द** १.१.७.५४ (उद्दालक द्वारा काशिराज-पुत्री सुन्दरी से शिव मन्दिर में सम्मार्जन के महत्व के विषय में पृच्छा), २.४.३टीका (उद्दालक-भार्या ज्येष्ठा की अश्वत्थ के नीचे स्थिति की कथा), ४.२.७०.७८ (उद्दालक तीर्थ में यमदंष्ट्रा देवी का वास), ४.२.८४.२९ (उद्दालक तीर्थ का संक्षिप्त माहात्म्य : अघनाशक व ऋद्धिदायक), ४.२.९७.८३ (उद्दालकेश्वर लिङ्ग का संक्षिप्त माहात्म्य : सिद्धि प्राप्ति), ७.२.७ (उद्दालक वीर्य से मृगानना कन्या के जन्म का वृत्तान्त), ७.३.४२ (उद्दालकेश्वर लिङ्ग का संक्षिप्त माहात्म्य : रोग व पाप से मुक्ति, गार्हस्थ्य प्राप्ति), ७.४.१.१८ (कलियुग में विष्णु का परम रूप जानने के लिए उद्दालक सहित ऋषियों का ब्रह्मा के निकट गमन, ब्रह्मा के कथनानुसार बलि के निकट गमन), **लक्ष्मीनारायण** २.६३.१० (उद्दालक- पुत्र शतानन्द का वृत्तान्त); द्र. अलक्ष्मी, आरुणि।

**टिप्पणी-** उद्दालक की टिप्पणी से पूर्व आरुणि शब्द की टिप्पणी का पठन उपयोगी होगा। उद्दालक और ज्येष्ठा के सम्बन्धों की कुंजी षड्विंश ब्राह्मण १.६.२ के आधार पर प्राप्त की जा सकती है जहां उद्दालक ऋषि उन लोगों के लिए यजन विधि का वर्णन करते हैं जो यज्ञ की असमृद्धि से, अंग वैकल्य से आनन्दित नहीं होते हैं, अपितु यज्ञ की समृद्धि से आनन्दित होते हैं। इसका अर्थ हुआ कि समुद्र मन्थन से जो लक्ष्मी - भगिनी ज्येष्ठा के उत्पन्न होने का वर्णन आता है, उसमें ज्येष्ठा यज्ञ की असमृद्धि का तथा लक्ष्मी यज्ञ की समृद्धि का प्रतीक हैं। स्वाभाविक है कि साधना रूपी अथवा यज्ञ रूपी समुद्र मन्थन के आरंभ में यज्ञ की समृद्धि की आशा नहीं की जा सकती। ऐसा लगता है कि उद्दालक ऋषि को यज्ञ की समृद्धि की, यज्ञ के अंगों की पूर्णता की चिन्ता नहीं है। वह तो एकान्तिक साधना के साधक हैं, छलांग लगाकर निर्विकल्प समाधि प्राप्त करना चाहते हैं। विष्णु और लक्ष्मी द्वारा यज्ञ की समृद्धि, जो साधना का सर्वांगीण पक्ष है, बाद में होती रहेगी।

उद्दालक शब्द की निरुक्ति उत्-दारक के रूप में की जा सकती है। ऋग्वेद ६.२०.१०, ६.२७.५ तथा ८.९८.६ में उल्लेख आता है कि इन्द्र ७ पुरों का दर्ता (दृ-विदारणे) है तथा दस्युओं का हन्ता है। ७ पुरों का विदारण करके इन्द्र अद्रियों द्वारा रोके गए आपः को मुक्त करता है। इन ऋचाओं में मुख्य तथ्य यह है कि दारण और हनन शब्द साथ-साथ आए हैं। आरुणि उद्दालक की कथाओं में आरुणि ऋषि के समक्ष व्याध की हिंसा वृत्ति के समाप्त होने का उल्लेख आता है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि दारण द्वारा आपः को मुक्त करना और दस्यु रूपी बुराईयों का हनन करना मनुष्य व्यक्तित्व के दो स्तर हैं जिनमें दारण की सफलता पर व्याध पक्ष द्वारा हनन की आवश्यकता नहीं रहती। यह पुराणों का अपना पक्ष है जिसकी व्याख्या वैदिक साहित्य में नहीं है।

अथर्ववेद ३.२९ सूक्त के ऋषि उद्दालक हैं तथा देवता अवि है। इस सूक्त के प्रथम मन्त्र में कहा गया है कि जिस इष्टापूर्त के १६वें भाग का यम के सदस्य विभाजन करते हैं, अवि उससे रक्षा करती है। इष्टापूर्त को समझने के लिए इष्टापूर्त शब्द पर टिप्पणी दृष्टव्य है। मार्कण्डेय पुराण १८.८/१६.१२५ में अग्निहोत्र की इष्ट संज्ञा होने का उल्लेख आता है। शतपथ ब्राह्मण ११.५.३.१ तथा गोपथ ब्राह्मण १.३.११ में उद्दालक ऋषि प्राचीनयोग्य को अग्निहोत्र के रहस्यों का वर्णन करते हैं, लेकिन शतपथ ब्राह्मण ११.४.१.१ तथा गोपथ ब्राह्मण १.३.६

में उद्दालक को दर्श-पूर्णमास के रहस्यों को स्वेदायन ऋषि से सीखना पड़ता है। बृहदारण्यक उपनिषद १.५.१५ के अनुसार संवत्सर प्रजापति १६ कलाओं वाला है जिसमें से १५ कलाएं तो उसका वित्त हैं और १६ वीं कला आत्मा है। आत्मा नाभि है और वित्त परिधि। इस तथ्य के समांतर यह मान सकते हैं कि उद्दालक-अवि सूक्त में इष्टापूर्त के जिस १६वें भाग की रक्षा का प्रश्न है,वह आत्मा से संबंधित है, एकान्तिक साधना से सम्बन्धित है, जबकि शेष १५ भाग वित्त से, यज्ञ की समृद्धि से, लक्ष्मी से सम्बन्धित हैं। ऐसा लगता है कि उद्दालक की इस वित्त में कोई रुचि नहीं है। यह विचारणीय है कि क्या अग्निहोत्र, जिसके उद्दालक विशेषज्ञ हैं, इस १६वीं कला से सम्बन्ध रखता है और दर्शपूर्ण मास शेष १५ कलाओं से? अथवा क्या अग्निहोत्र और दर्शपूर्ण मास, दोनों में ही १६ कलाएं निहित हैं? सूक्त में अवि से आकूति की प्राप्ति और आकूति से सब कामों की पूर्ति का उल्लेख आता है। यह स्पष्ट नहीं है कि जब वैदिक साहित्य में सार्वत्रिक रूप से उद्दालक को गौतम कह कर सम्बोधित किया गया है, फिर भी उद्दालक को अपनी साधना गौ के स्तर की अपेक्षा अवि के स्तर पर क्यों करनी पड़ती है (कठोपनिषद में भी उद्दालक केवल बूढ़ी गायों का ही दान कर पाने में समर्थ हैं)। अवि शब्द की टिप्पणी में यह उल्लेख किया जा चुका है कि अवि अपान से, समाधि में शेष बचे एकमात्र प्राणों से, तथा वाक् से सम्बन्धित है, जबकि गौ को प्राण तत्त्व कहा जाता है। पुराणों में अवि को पाप कहा गया है जिससे मुक्त होकर अविमुक्त/काशी क्षेत्र में प्रवेश करना है।

उद्दालक की साधना में दारण की क्रियाविधि क्या हो सकती है, इस संदर्भ में ऋग्वेद १.५३.४ में उल्लेख आता है कि इन्द्र ने इन्दुओं द्वारा दस्यु का दारण किया। पुराणों में श्रीकृष्ण-पिता वासुदेव का नाम दर दुन्दुभि है। अतः यह कहा जा सकता है कि दारण की प्रक्रिया ओंकार के नाद से, वाक् को दुन्दुभि का रूप देने से सम्बन्धित है। अग्निहोत्र का रहस्य बताते हुए उद्दालक कहते हैं कि इडा ही उनकी मानवी अग्नहोत्री है जिससे वह (प्रणव रूपी) दुग्ध की प्राप्ति करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ओंकार रूपी वाक् का प्रभाव इडा रूपी अचेतन मन पर पड़ता है और तब पयः की प्राप्ति आरंभ हो जाती है। अथर्ववेद ६.१५ सूक्त उद्दालक ऋषि और वनस्पति देवता का है। पुराणों में इरा को वनस्पतियों की माता कहा गया है।

**उद्धव गर्ग** १.५.२४ (वसु नामक वसु के अंश), ५.१३ (श्रीकृष्ण के निर्देश पर कृष्ण वेश में व्रज में जाना तथा गोपों को कृष्ण का सन्देश देना), ५.१४ (नन्द व यशोदा के कृष्ण प्रेम को जानकर उद्धव के ज्ञान अभिमान का गलना, उद्धव द्वारा यशोदा को कृष्ण चरित्र का वर्णन), ५.१५ (प्रातः काल व्रज में गोपियों द्वारा उद्धव व उनके रथ के दर्शन, उद्धव का कदली वन में राधा के दर्शन करके उनकी स्तुति करना व उन्हें कृष्ण का सन्देश देना), ५.१६ (राधा द्वारा उद्धव के समक्ष अपनी विरह व्यथा प्रस्तुत करना, उद्धव द्वारा गोपियों से भेंट प्राप्ति तथा गोपियों को कृष्ण का मौखिक सन्देश देना : मन के कषाय का त्याग व वियोग द्वारा भी प्रभु की प्राप्ति), ५.१७ + (कृष्ण का सन्देश सुनकर गोपियों के ४४ प्रकार के गणों द्वारा स्व-उद्गार प्रकट करना तथा उद्धव का मथुरा गमन), ५.१९ (उद्धव का कृष्ण को लेकर मथुरा से व्रज में आगमन आदि), ५.२४.६८ (बलराम द्वारा माण्डूकदेव को उद्धव चरित्र की महिमा का वर्णन), ७.२.१९ (उद्धव द्वारा प्रद्युम्न को किंजल्किनी माला भेंट करने का उल्लेख), **पद्म** ५.७४.१ (उद्धव द्वारा सनत्कुमार से गोपी-कृष्ण क्रीडा रहस्य सम्बन्धी पृच्छा, सनत्कुमार द्वारा अर्जुन के अर्जुनी गोपी बनकर रहस्य दर्शन करने की घटना का वर्णन), **ब्रह्मवैवर्त्त** ४.९२ (कृष्ण के निर्देश पर उद्धव का गोकुल गमन, रासमण्डल के अन्तर्गत विभिन्न वनों का दर्शन, वृन्दावन वन के अन्तर्गत विभिन्न द्वारों को पार करके षष्ठम द्वार के पश्चात् विरहातुर राधा के दर्शन करना, राधा की स्तुति करना), ४.९३.१ (उद्धव द्वारा राधा को स्वयं का परिचय देना, राधा का कृष्ण विरह में मूर्च्छित होना, उद्धव द्वारा राधा की परिचारक सखियों के दर्शन करना), ४.९३.५२ (राधा द्वारा उद्धव को दिव्य अंगुलीयक, मणिकुण्डलद्वय, हीरक हार आदि प्रदान करना, राधा का कृष्ण के विरह में पुनः मूर्च्छित होना), ४.९४.१ (उद्धव तथा राधा की सखियों द्वारा कृष्ण को उपालम्भ पूर्वक राधा के प्रबोधन की चेष्टा), ४.९६.६ (उद्धव द्वारा राधा से काल की शुद्ध गति का

ज्ञान प्रदान करने की प्रार्थना), ४. ९७.१ (राधा द्वारा उद्धव को विदा करना), **भागवत** ३.१.२४ (यमुना तट पर विदुर की उद्धव से भेंट, विदुर द्वारा उद्धव से यादवों व पाण्डवों की कुशल-क्षेम पूछना), ३.२.२ (उद्धव की कृष्ण-भक्ति की पराकाष्ठा का कथन, उद्धव द्वारा विदुर को कृष्ण की लीलाओं का वर्णन), ३.४.१ (उद्धव द्वारा प्रभास क्षेत्र में यादवों के नाश का वर्णन), ३.४.११ (उद्धव के पूर्व जन्म में वसु होने का उल्लेख; कृष्ण द्वारा उद्धव को भागवत ज्ञान प्रदान करना), ३.४.२५ (विदुर का उद्धव से कृष्ण से प्राप्त ज्ञान प्रदान करने का अनुरोध, उद्धव द्वारा विदुर को गङ्गा तट पर मैत्रेय ऋषि से ज्ञान प्राप्ति का निर्देश), ३.४.३२ (कृष्ण के निर्देश पर उद्धव द्वारा मर्त्य लोक में अस्तित्व बनाए रखने व बदरिकाश्रम में जाकर हरि की आराधना करने का उल्लेख), १०.४६.१ (कृष्ण के निर्देश पर उद्धव की व्रज यात्रा, नन्द व उद्धव द्वारा परस्पर कृष्ण लीलाओं का गुणगान करना), १०.४७.११ (गोपियों द्वारा कृष्ण-दूत उद्धव की तुलना षट्पद/भ्रमर से करना, भागवत के प्रसिद्ध भ्रमर गीत का वर्णन), १०.४७.२८ (उद्धव द्वारा गोपियों को कृष्ण का सन्देश अथवा योगमार्ग का उपदेश देना), १०.४७.६१ (उद्धव की वृन्दावन में गुल्म, लता, ओषधि बनकर गोपियों की चरणधूलि सेवन की इच्छा का उल्लेख), ११.६.४० (उद्धव का कृष्ण के साथ प्रभास क्षेत्र जाने का आग्रह), ११.७.१ + (कृष्ण द्वारा उद्धव को आत्मा-इन्द्रिय योग का उपदेश, योग ज्ञान के विस्तार के रूप में यदु-दत्तात्रेय उपाख्यान के अन्तर्गत २४ गुरुओं से शिक्षा प्राप्त करने का वृत्तान्त), ११.१०.३५ (देही/आत्मा के देह के गुणों से बद्ध अथवा मुक्त होने के सम्बन्ध में उद्धव द्वारा कृष्ण से पृच्छा, कृष्ण द्वारा द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया इत्यादि द्वारा उत्तर), ११.११.२६ (उद्धव द्वारा कृष्ण से साधु पुरुष के लक्षण तथा कृष्ण भक्ति की विधि की पृच्छा), ११.१२.१ (कृष्ण द्वारा उद्धव को सत्संग की महिमा का वर्णन), ११.१२.१७ (कृष्ण द्वारा उद्धव को अव्यक्त ब्रह्म के संसार में व्यक्त रूप की भक्ति/सेवन हंस रूप होकर करने का निर्देश), ११.१३.१ (कृष्ण द्वारा उद्धव को सत्त्व गुण की वृद्धि करने का निर्देश), ११.१३.८ (उद्धव के प्रश्न के उत्तर में कृष्ण द्वारा मर्त्य जीव द्वारा दुःख प्राप्ति के कारण के रूप में अहंकार तथा रजोगुण की वृद्धि को कारण बताना), ११.१३.१७ (कृष्ण द्वारा उद्धव को त्रिगुणों से पार होने के लिए जाग्रत, स्वप्न आदि से परे तुरीय/समाधि अवस्था को जानने का निर्देश), ११.१४.१ (उद्धव के प्रश्न के उत्तर में श्रीकृष्ण द्वारा भक्तियोग को ही सर्वश्रेष्ठ बताना),११.१४.३१ (उद्धव के प्रश्न के उत्तर में श्रीकृष्ण द्वारा हृदय कमल में अपने स्वरूप के ध्यान की विधि का वर्णन), ११.१५.२ (उद्धव के प्रश्न के उत्तर में श्रीकृष्ण द्वारा किस धारणा से कौन सी सिद्धि प्राप्त होती है, इसका वर्णन; कृष्ण की धारणा से सभी सिद्धियों की प्राप्ति का कथन), ११.१६.५ (उद्धव के प्रश्न के उत्तर में श्रीकृष्ण द्वारा अपनी विभूतियों का वर्णन), ११.१७.१+ (उद्धव के प्रश्न के उत्तर में श्रीकृष्ण द्वारा चार वर्णों और चार आश्रमों की विराट् पुरुष/स्वयं से उत्पत्ति तथा उनके स्वभाव व कर्तव्यों का वर्णन), ११.१९.१ (कृष्ण द्वारा उद्धव को तप आदि से भी ऊपर ज्ञान व विज्ञान के महत्व तथा उनकी शुद्ध रूप में प्राप्ति के उपाय का वर्णन), ११.१९.१९ (कृष्ण द्वारा उद्धव को भक्तियोग के स्वरूप का वर्णन), ११.१९.२८ (उद्धव के प्रश्न के उत्तर में कृष्ण द्वारा यम, नियम, शम, दम आदि को परिभाषित करना), ११.२०.५ (उद्धव द्वारा गुण-दोष में भेद दृष्टि रखने या न रखने का प्रश्न, कृष्ण द्वारा निरपेक्षता की परम स्थिति प्राप्त करने का उपदेश, अनन्य भक्ति में गुण-दोषों के समाप्त होने का कथन), ११.२१.१० (कृष्ण द्वारा उद्धव को द्रव्यों के शोधन की भांति स्नान, दान, तप आदि से आत्मा की शुद्धि करने का वर्णन; गुणों और दोषों का अतिक्रमण करने का निर्देश), ११.२१.३६ (शब्द ब्रह्म/ओंकार· वाक् का वर्णन), ११.२२.१ (उद्धव द्वारा कृष्ण से तत्त्वों की संख्या के विषय में पृच्छा), ११.२२.२६ (उद्धव द्वारा पुरुष और प्रकृति में भेद अथवा अभेद के विषय में

पृच्छा), ११.२२.३४ (उद्धव द्वारा कृष्ण से भक्ति रहित जीव द्वारा अपने कर्मों के फलस्वरूप देह ग्रहण करने के विषय में पृच्छा, कृष्ण द्वारा निरपेक्ष स्थिति/साक्षी भाव में जाकर जन्म-मृत्यु आदि की सापेक्ष स्थिति को देखने का निर्देश), ११.२३.६ (दुष्ट पुरुषों के मर्मवेधी बाण रूपी वचनों की पीडा से बचने के संदर्भ में कृष्ण द्वारा उद्धव को तितिक्षु ब्राह्मण का वृत्तान्त कथन : दुःख प्राप्ति में मन के ही कारण होने का वर्णन), ११.२४.१ (कृष्ण द्वारा उद्धव हेतु सांख्य योग का कथन : भूतों को क्रमशःएक दूसरे में लीन करने तथा उनकी क्रमिक सृष्टि करने का वर्णन), ११.२५.१ (कृष्ण द्वारा उद्धव हेतु सत्त्व आदि गुणों के अन्तर्गत वर्गीकृत शम,दम आदि वृत्तियों का निरूपण और अन्त में निरपेक्ष स्थिति प्राप्त करके ब्रह्म की अनुभूति करने का निर्देश),११.२६.१ (कृष्ण द्वारा उद्धव हेतु पुरूरवा-उर्वशी आख्यान का संक्षेप में कथन), ११.२७.१ (उद्धव के अनुरोध पर कृष्ण द्वारा क्रियायोग/देवार्चन विधि का वर्णन), ११.२८.१ (कृष्ण द्वारा उद्धव को प्रकृति व पुरुष में द्वैत के स्थान पर अद्वैत दृष्टि विकसित करने का निर्देश), ११.२८.१० (उद्धव द्वारा आत्मा को अव्यय, स्वयंज्योति युक्त द्रष्टा तथा देह को जड दृश्य कहकर इनसे संसार के उत्पन्न होने/संसृति के पीछे कारण की पृच्छा, कृष्ण द्वारा देह में स्थित आत्मा के अहंकार से युक्त हो जाने पर उसे जीव की संज्ञा देना और स्वयंज्योति ब्रह्म को जानने का निर्देश) ११.२९.१ (उद्धव द्वारा कृष्ण से मन का निग्रह करने वाली कठिन योगसाधना के बदले सरल व सुगम साधन बताने का अनुरोध, कृष्ण द्वारा समस्त भूतों में परमेश्वर के दर्शन का निर्देश), ११.२९.४१ (कृष्ण द्वारा उद्धव को अलकनन्दा तट पर बदरिकाश्रम में तप करके शुद्ध होने का निर्देश), **मत्स्य** ४६.२३ (वसुदेव-भ्राता देवभाग के पुत्र), **विष्णु** ५.३७.३१ (यादवों के विनाश के समय कृष्ण की आज्ञा से बदरिकाश्रम क्षेत्र में जाना), **स्कन्द** २.६.२ (कृष्ण के परमधाम गमन के पश्चात् साधना हेतु बदरिकाश्रम में निवास, अन्य रूप में व्रज की लताओं के रूप में वास), २.६.३ (उद्धव की श्रीकृष्ण से एकात्मता, उद्धव द्वारा कृष्ण-पत्नियों को कृष्ण-व भागवत-माहात्म्य कथन), ७.४.१७.२६ (उद्धवार्कः द्वारका के पश्चिम द्वार पर स्थित सूर्य का नाम), **हरिवंश** १.३४.३१ (देवभाग-पुत्र), **लक्ष्मीनारायण** १.२२४.३ (द्वारका स्थित कृष्ण द्वारा गोकुल में गोपियों की कुशल-क्षेम जानने के लिए उद्धव का प्रेषण), १.४२९.४८ (गोवर्धन की लताओं में व्याप्त उद्धव द्वारा गोपियों का कृष्ण से विरहाभास नष्ट करना)

**टिप्पणी-** वाराह श्रौत सूत्र १.७.४.२१ में प्रस्तर उद्धव का उल्लेख आया है जिसे तूष्णीं ग्रहण किया जाता है। इस उल्लेख से प्रतीत होता है कि प्रस्तर और उद्धव एक ही हैं। किन्तु आपस्तम्ब श्रौत सूत्र ८.१४.६ व २२.४.२० तथा मानव श्रौत सूत्र १.७.६.१९ के अनुसार यज्ञ कार्य हेतु अरण्य से जिस बर्हि नामक तृण को बांधकर लाया जाता है, उसे वेदी पर फैलाते समय उसका उद्धून्वन/कम्पन किया जाता है और तब उसे फैलाया जाता है। इस उद्धूत बर्हि से प्रस्तर का ग्रहण किया जाता है। बर्हि और प्रस्तर में अन्तर यह है कि बर्हि का आस्तरण गार्हपत्य वेदी के निकट किया जाता है जबकि प्रस्तर का आहवनीय वेदी के निकट। शतपथ ब्राह्मण २.५.१.१८ के अनुसार बर्हि के साथ जो अंकुरित बर्हि/प्रस्व होती हैं, उनका प्रस्तर हेतु ग्रहण किया जाता है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि उद्धव का सम्बन्ध यज्ञ कार्य में प्रयुक्त प्रस्तर और बर्हि से है। वैदिक साहित्य में सार्वत्रिक उल्लेख आता है कि यजमान प्रस्तर है (तैत्तिरीय संहिता १.७.४.४, २.६.५.३, शतपथ ब्राह्मण १.८.३.११, १.८.३.१६, तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.३.६.७, ३.३.९.२ आदि)। इस यजमान रूपी प्रस्तर की आहवनीय अग्नि में आहुति दी जाती है, इसे आहुति देने योग्य हवि बनाया जाता है (तैत्तिरीय संहिता २.६.५.५, काठक संहिता २५.५, ३२.३, ताण्ड्य ब्राह्मण ६.७.१८ आदि; तुलनीयः पुराणों में उद्धव के देवभाग का पुत्र होने का उल्लेख)। कहा गया है कि आहवनीय अग्नि रोहित अश्व बन कर प्रस्तर रूपी यजमान को स्वर्ग ले जाता है। अथवा इन्द्र के हरि इसे इन्द्र देवता तक ले जाते हैं। अन्यत्र सार्वत्रिक रूप से उल्लेख आता है कि प्रस्तर आश्ववाल (आश्ववाल नामक ओषधि, अथवा अश्व के बाल) है (तैत्तिरीय संहिता ६.२.१.५, शतपथ ब्राह्मण ३.४.१.१७, ३.६.३.१०, ३.६.३.१४ आदि)। ताण्ड्य ब्राह्मण ६.७.१८ के अनुसार यज्ञ अश्व होकर देवों से दूर भाग गया।

तब उसे प्रस्तर नामक तृण दिखाकर पास लाए, अथवा उसे प्रस्तर नामक तृण खाने को दिया, तब वह देवों के निकट आया। शतपथ ब्राह्मण १.३.३.५, ७, १२ में प्रस्तर को विष्णु का स्तुप/शिखा कहा गया है। पुराणों में शिव की जटाओं में गंगा का वास प्रसिद्ध ही है। वैदिक साहित्य में अश्व को ब्रह्माण्ड में व्याप्त चेतना का प्रतीक माना जाता है। यह विचारणीय है कि ऐसे यज्ञीय अश्व के भोजन के लिए किस प्रकार के तृण की आवश्यकता पड़ेगी। ऋग्वेद १०.१४.४ तथा अथर्ववेद १८.१.५९ का कथन है कि यम तो प्रस्तर पर आकर विराजमान हो और यम-पिता विवस्वान/आदित्य बर्हि पर आकर विराजमान हो। पुराणों में उद्धव के पूर्वजन्म में वसु होने का उल्लेख आता है। डा. फतहसिंह के अनुसार वसु वासनाओं के परिष्कृत रूप का, विवस्वान का प्रतीक है। वसु बनने के पश्चात् उसमें यम, नियम, आसन, प्राणायाम आदि ८ यमों का समावेश करना है जिसका वर्णन उद्धव के संदर्भ में भागवत पुराण में किया गया है। यह विचारणीय है कि ऋग्वेद १०.२० से आरंभ होने वाले सूक्तों के ऋषि के रूप में जिस वसुक्र अथवा वसुकृत् ऋषि का उल्लेख आता है, उन सूक्तों को समझने में पुराणों में वर्णित उद्धव के चरित्र से कितनी सहायता मिल सकती है।

वैदिक साहित्य में बर्हि का उद्धून्वन करने के पश्चात् प्रस्तर ग्रहण करने का निर्देश है। प्रश्न यह है कि उद्धून्वन कैसे हो? ऋग्वेद १०.२३.४ के वसुक्र ऋषि वाले सूक्त में उल्लेख आता है कि मधु का शोधन/सोतन होने के पश्चात् इन्द्र अपने गृह में प्रवेश कर जाता है और उसके पश्चात् ऐसे उद्धून्वन/कम्पन करता है जैसे वात वन का। हठयोग में प्राणायाम की एक स्थिति में कम्पन होने का उल्लेख आता है। ऐसा भी हो सकता है कि ओंकार की कलाओं में नाद की अवस्था में कम्पन अथवा उद्धून्वन होता हो। लेकिन तैत्तिरीय ब्राह्मण १.६.८.८ तथा आपस्तम्ब श्रौत सूत्र ८.१४.७ में तूष्णीं रहकर बर्हि से प्रस्तर ग्रहण करने का उल्लेख आता है। अतः सारे व्यक्तित्व का उद्धून्वन करने वाली अवस्था भक्ति मार्ग में कोई आनन्द की अवस्था हो सकती है। भागवत पुराण के भ्रमर गीत में उद्धव को ६ पदों वाला भ्रमर कहा गया है जिसका कार्य पुष्पों से मधु का पान करना होता है। ऐसा हो सकता है कि उद्धव के यह ६ पद आनन्दमय कोश/हिरण्यय कोश से नीचे की छह अवस्थाएं हों जिनमें रहकर वह आनन्दमय कोश से क्षरित होने वाले मधु का पान करता रहता हो। सारे व्यक्तित्व का उद्धून्वन करने के लिए क्या-क्या आवश्यक है, इसका वर्णन भागवत के ११ वें स्कन्ध में उद्धव और कृष्ण के प्रश्नोत्तरों के रूप में किया गया है।

वैदिक साहित्य में मधु पान का तात्पर्य कण-कण में भगवान के रूप के दर्शन से लिया जाता है तथा मधु विद्या का उपदेश अश्वमुख से किया जाता है। भागवत के ११ वें स्कन्ध में जब कृष्ण विश्व में अपनी विभूतियों का वर्णन करते हैं तो उसका उद्देश्य यही है कि कहां-कहां किस-किस प्रकार से भगवद्-दर्शन हो सकता है, मधु की प्राप्ति हो सकती है। उद्धव के मथुरा से गोकुल में जाने के तथ्य को अश्व अवस्था से गौ/गोकुल अवस्था में संक्रमण के माध्यम से समझने का प्रयत्न किया जा सकता है (छान्दोग्य आदि उपनिषदों में भक्ति की अज, अवि, गौ, अश्व व पुरुष अवस्थाओं का वर्णन आता है)। पुराणों में मथुरा को हृदय प्रदेश में स्थित अधोमुखी कमल का प्रतीक तथा वृन्दावन को इस कमल से विकसित ऊर्ध्वमुखी कमल का प्रतीक कहा गया है। डा. फतहसिंह की विचारधारा के अनुसार इसे समनी और उन्मनी, अर्थात् ऊपर से मन की ओर आने वाली शक्ति और मन से ऊपर की ओर जाने वाली शक्ति का प्रतीक कह सकते हैं।

पुराणों में उद्धव के निवास के दो स्थानों-यमुना के निकट मथुरा-वृन्दावन तथा गंगा के निकट बदरीवन में से यमुना के निकट वास की व्याख्या तो ऋग्वेद १०.१४.४ के आधार पर की जा सकती है जहां यम से प्रस्तर पर आकर विराजमान होने की प्रार्थना की गई है। डा. फतहसिंह के अनुसार यमुना नदी यम-नियम-संयम का प्रतीक है। लेकिन प्रस्तर की दूसरी अवस्था जो गंगा के निकट है, जिसमें शिव की जटाओं में गंगा का वास है, की व्याख्या का प्रयत्न भागवत के तीसरे स्कन्ध में उद्धव द्वारा विदुर को स्वयं उपदेश न देकर बदरीवन में मैत्रेय ऋषि के पास भेजने के आधार पर किया जा सकता है। वैदिक साहित्य में प्राणोदानौ या प्राणापानौ को मित्रावरुण का रूप कहा गया है। वरुण की स्थिति में अपने पापों का प्रक्षालन स्वयं करना होता है, जबकि मित्र की स्थिति मात्र करुणा की होती है, माता की करुणा जहां भले-बुरे का कोई भेदभाव नहीं है। शतपथ ब्राह्मण १.८.१.४४ तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.३.६.७ में प्रस्तर पर पवित्र (पवन अथवा शुद्ध करने वाला) पात्र रखने का उल्लेख है। पवित्र को प्राणोदानौ या प्राणापानौ का प्रतीक कहा गया है। अतः प्रस्तर को और

उसके प्रतीक के रूप में उद्धव को पवित्र करने के लिए प्राण और उदान या प्राण और अपान रूपी अर्वाक्-पराक् गतियों का आश्रय लेना होता है। तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.७.६.८ में प्रस्तर में प्रयाजों और अनुयाजों की स्थिति का उल्लेख है। प्रयाज को प्रयाग का, एकान्तिक साधना का तथा अनुयाज को सार्वत्रिक साधना का प्रतीक कहा जा सकता है (ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार छन्द ही अनुयाज हैं)। शतपथ ब्राह्मण १.३.३.५,७ व १२ में प्रस्तर को विष्णु का स्तुप/शिखा कहा गया है। यह प्रस्तर की मित्र स्थिति का प्रतीक हो सकता है। मित्र स्थिति में किसी यम-नियम की आवश्यकता नहीं है। यह गौ की स्थिति हो सकती है। दूसरी ओर अश्व स्थिति में अशान्त अश्व को शान्त करने के लिए यम- नियम की आवश्यकता हो सकती है। वैदिक साहित्य में जहां प्रस्तर के साथ अश्व का उल्लेख आया है, वहां अश्व के अशान्त होने का भी उल्लेख आया है जो उपरोक्त धारणा की पुष्टि करता है।

**उद्भिद् ब्रह्माण्ड** १.२.१४.२७ (उद्भिज्ज : कुशद्वीप के अधिपति ज्योतिष्मान के सात पुत्रों में से एक व कुशद्वीप का एक वर्ष), **वायु** ३३.२४ (उद्भिद् : कुशद्वीप के अधिपति ज्योतिष्मान के सात पुत्रों में से एक व कुशद्वीप का एक वर्ष), **विष्णु** २.४.३६ (वही), **महाभारत** वनपर्व १९७.२८ (शिबि द्वारा कपोतरोमा नामक उद्भिद पुत्र प्राप्त करने की कथा)।

**उद्यमश्री लक्ष्मीनारायण** ३.२२३ (पशुपालक उद्यमश्री द्वारा कृष्ण भक्तों से कृष्ण नाम ग्रहण, कृष्ण के दर्शन)।

**उद्यान कूर्म** २.१३.४० (उद्यान में मल-मूत्र त्याग का निषेध), **शिव** ६.६.१३ (संकल्प का प्रतीक), **स्कन्द** ५.३.२०९.८७ (उद्यान छेदन के पाप का कथन), ७.१.२०७.५१ (बिना अनुमति पराये उद्यान का उपयोग करने पर पाप का कथन), **लक्ष्मीनारायण** २.२३९.६६ (रोल राजा की सेना द्वारा उद्यान नष्ट करने पर नृसिंह प्रतिमा का अदृश्य होना), **कथासरित्** १.६.७५ (गोदावरी तट पर देवीकृति नामक उद्यान के निर्माण की कथा: ब्राह्मण द्वारा देवी की कृपा से निर्माण), ६.३.५८ (सोमप्रभा-सखी कलिङ्गसेना द्वारा स्वयंप्रभा के दिव्य उद्यान का दर्शन), ६.८.१४१ (सोमप्रभा द्वारा कलिङ्गसेना की कन्या के लिए दिव्य उद्यान का निर्माण)।

**उद्यापन नारद** २.२२.६७ (चातुर्मास्य व्रत उद्यापन विधि), **पद्म** ६.९५ (कार्तिक व्रत उद्यापन), **भविष्य** ४.१२८.१६ (वृक्ष उद्यापन विधि : अपुत्रा पार्वती द्वारा अशोक वृक्ष की पुत्र रूप में कल्पना करके जातकर्म आदि संस्कार करना), **मत्स्य** ९८ (सङ्क्रान्ति व्रत उद्यापन विधि), **स्कन्द** २.४.३४ (कार्तिक व्रत उद्यापन विधि व माहात्म्य), २.५.१२.३४ (एकादशी व्रत उद्यापन विधि), २.८.३.५५ (चन्द्रहरि व चन्द्रसहस्र व्रत उद्यापन), ५.३.२६.१५१ (शुक्ल तृतीया संवत्सर व्रत की उद्यापन विधि का वर्णन), **लक्ष्मीनारायण** १.२६३.६०, १.२६५ (एकादशी व्रत उद्यापन विधि)।

**उद्वर्तन अग्नि** २६५.५ (उद्वर्तन/उबटन हेतु ओषधियां), **पद्म** १.४३.४३३ (पार्वती के उद्वर्तन मल से गणेश के प्रादुर्भाव का उल्लेख), **स्कन्द** १.२.२७.४, ३.२.१२.१०, ६.२१४.४७ (वही)।

**उन्नत ब्रह्माण्ड** १.२.११.९ (द्युतिमान-पुत्र, स्वनवात-भ्राता, भृगु वंश), **मत्स्य** १२२.५३ (कुश द्वीप का एक पर्वत, अन्य नाम हेम पर्वत), **वायु** ४९.३३ (शाल्मलि द्वीप के ७ पर्वतों में से एक), **विष्णु** २.४.२६ (वही), **स्कन्द** ७.१.३१९.८ (उन्नत शब्द के तात्पर्य का निरूपण, उन्नत स्थान पर नगर निर्माण, उन्नत विनायक माहात्म्य आदि), ७.१.३२५ (प्रभास क्षेत्र में उन्नत क्षेत्र में स्थित गज रूपी विनायक का संक्षिप्त माहात्म्य), ७.१.३२९ (उन्नत विनायक का संक्षिप्त माहात्म्य)।

**महाभारत** द्रोण ११६.२ (कन्या के श्रोणी, ललाट, ऊरु-द्वय, घ्राण नामक ६ अंगों के उन्नत होने पर प्रशस्त होने का उल्लेख)। द्र. समुन्नत।

**उन्नति भागवत** ४.१.५१ (दक्ष-पुत्री, धर्म-पत्नी, दर्प-माता)।

**उन्नेता पद्म** १.३४.१७ (पुष्कर में ब्रह्मा के यज्ञ में शांशपायन के उन्नेता होने का उल्लेख), **ब्रह्माण्ड** १.२.१४.६६ (प्रतिहर्त्ता-पुत्र, भूमा-पिता, नाभि वंश),

**मत्स्य** १६७.१० (यज्ञ के १६ ऋत्विजों में यजुर्वेदी ऋत्विज, यज्ञपुरुष के चरणों से उत्पत्ति), **वायु** ३३.५६ (प्रतिहर्त्ता-पुत्र, भूमा-पिता, नाभि वंश), **स्कन्द** ६.५.७ (त्रिशंकु के यज्ञ में गालव के उन्नेता बनने का उल्लेख), ६.१८०.३४(पुष्कर में ब्रह्मा के यज्ञ में सनातन ऋषि के उन्नेता होने का उल्लेख), ७.१.२३.९९(प्रभास क्षेत्र में चन्द्रमा के यज्ञ में अंगिरा के उन्नेता बनने का उल्लेख)।

**टिप्पणी**- यज्ञ के १६ मुख्य ऋत्विजों में उन्नेता यजुर्वेद के ४ ऋत्विजों में से एक है। चूंकि १६ ऋत्विजों को शतपथ ब्राह्मण में प्रजापति की १६ कलाएं कहा गया है, अत: प्रत्येक ऋत्विज की प्रकृति को हृदयंगम करना आवश्यक है। उन्नेता (उत्-नय)समझने के लिए पहले नय शब्द को समझना आवश्यक है। अभिधान राजेन्द्र कोश में नय का विस्तार से वर्णन किया गया है जो वैदिक साहित्य में केवल संकेत रूप में उपलब्ध है। इस वर्णन के अनुसार जो ज्ञान श्रुत द्वारा प्राप्त होता है, उसे स्मृति में लाना नय कहलाता है। अन्य शब्दों में, अनेकांशात्मक वस्तु के एक अंश को प्रतीति में लाना, व्यवहार में लाना नय है।

ऐसा कहा जा सकता है कि श्रुत ज्ञान को प्राप्त होना एकान्तिक साधना का मार्ग है, जबकि नय को प्राप्त होना सार्वत्रिक साधना का। ऐसा हो सकता है कि श्रुत को प्राप्त करने में मनुष्य के पाप आदि बाधक न बनते हों, लेकिन नय को प्राप्त करने के लिए वैदिक ऋचाओं के अनुसार पापों का प्रक्षालन आवश्यक है।

पुराणों में उन्नेता ऋत्विजों के रूप में अंगिरा, शांशपायन आदि नाम आए हैं। वैदिक साहित्य में प्रत्यक्ष रूप में तो केवल ताण्ड्य ब्राह्मण २५.१५.३ में ही चक्र व पिशंग नामक उन्नेता-द्वय का उल्लेख आया है। ताण्ड्य ब्राह्मण २५.१८.४ में आध्यात्मिक रूप से ऊर्क को उन्नेता कहा गया है। शतपथ ब्राह्मण १२.१.१.११ में प्राण को उन्नेता कहा गया है। जैमिनीय ब्राह्मण २.६८ में विष्णु को उन्नेता कहा गया है।

अथर्ववेद ६.११९.१ के अनुसार साधक जो अपनी इन्द्रियों से जुआ खेल कर ऋण को प्राप्त होता है, वैश्वानर अग्नि उसका सुकृत के लोक को उन्नयन कर सकती है। अथर्ववेद ३.१२०.१ के अनुसार जो माता व पिता आदि की हिंसा की गई है, गार्हपत्य अग्नि उससे सुकृत के लोक को उन्नयन करती है। इसी प्रकार अथर्ववेद ३.१२१.२ के अनुसार जो दारु के, रज्जु के, भूमि के, वाक् के बंधन हैं, गार्हपत्य अग्नि उनसे बचाकर सुकृत के लोक को उन्नयन करती है। ऋग्वेद ३.८.४ व ३.८.९ की सार्वत्रिक ऋचाओं में कविगण यूप रूपी ज्योतियों का उन्नयन करते हैं। अथर्ववेद १३.१.२३ के अनुसार जो रोहित का रोहिणी नामक सद:/निवास स्थान है, गन्धर्व व कश्यप उसका उन्नयन करते हैं। अथर्ववेद ८.७.६ में अरुन्धती ओषधि को उन्नयन करने वाली कहा गया है। अथर्ववेद २.९.१ में वनस्पति राक्षसों के बंधन से मुक्त करके जीवों के लोक को उन्नयन करती है। अथर्ववेद १३.२.४ के अनुसार अत्रि ने सूर्य का उन्नयन करके द्युलोक में स्थापित किया। अथर्ववेद ७.१०८.१/ ७.१०३.१ में क्षत्रिय रूपी क:/प्रजापति द्रोह व निन्दा करने वालों से रक्षा करके उन्नयन करता है। अथर्ववेद ३.१९.३ में ब्रह्मत्व द्वारा अमित्रों का नाश करके स्व के उन्नयन का उल्लेख है। ऋग्वेद६.७२.२ में इन्द्रासोमौ देवता-द्वय से सूर्य के उन्नयन की प्रार्थना की गई है। ऋग्वेद १.११६.८ व १.११६.२४ में अश्विनौ देवता-द्वय उन्नयन करते हैं। ऐसा लगता है कि उपरोक्त सब उल्लेख उन्नेता ऋत्विज के अप्रत्यक्ष रूप हैं।

उन्नेता उन्नयन किस प्रकार करता है, उसका उत्तर हमें ताण्ड्य ब्राह्मण से प्राप्त हो सकता है जहां ऊर्क को उन्नेता कहा गया है। वैदिक साहित्य में प्राय: कहा जाता है कि यह जो ओषधि-वनस्पतियां ऊपर की ओर बढ़ती हैं, यह ऊर्जा के कारण है। पहले ऊपर से इष रूपी वर्षा होती है और उसके पश्चात् ऊर्ज का आरोहण होता है। प्रसंग की व्याख्या मात्र के लिए, केवल काल्पनिक रूप में, इष को समाधि से प्राप्त शक्ति मान सकते हैं जो वनस्पतियों के मूल को प्राप्त होती है। इस मूल से यह शक्ति वृक्ष रूप में, ऊर्जा के रूप में पल्लवित होती है, पुष्प, फल व बीज का रूप ग्रहण करती है, भक्ति के मार्ग में नृत्य का रूप ग्रहण करती है। तैत्तिरीय ब्राह्मण २.३.७.२, जैमिनीय ब्राह्मण १.४० के अनुसार अग्निहोत्र में स्रुचा/स्रुवा का ४ बार उन्नयन किया जाता है। प्रथम बार के उन्नयन से दर्शपूर्ण मास के फल की, दूसरी बार से चातुर्मास की, तृतीय से इष्टिपशुबन्ध की व चौथी बार से वाजपेय, अश्वमेध आदि के फल की प्राप्ति होती है। यह यज्ञीय पल्लवन है। ऊर्ज की निरुक्ति भी, काल्पनिक रूप में ऊ से जायमान शक्ति के रूप में कर सकते हैं। तैत्तिरीय संहिता १.३.१३.२, शतपथ ब्राह्मण ३.९.३.२७, मैत्रायणी संहिता ४.५.२ आदि में सार्वत्रिक रूप से समुद्र से अक्षित उन्नयन का उल्लेख आता है। यह महत्वपूर्ण

है कि उन्नयन के लिए ऊर्जा प्राप्त करते समय यह ध्यान रखा जाए कि आनन्द समुद्र को कोई हानि न पंहुचे।

गोपथ ब्राह्मण १.४.६, कात्यायन श्रौत सूत्र १२.२.१५, शतपथ ब्राह्मण १२.१.१.९ आदि के अनुसार उन्नेता ऋत्विज नेष्टा, आग्नीध्र, सुब्रह्मण्य व ग्रावस्तुत् ऋत्विजों को दीक्षा देता है, जबकि उन्नेता को दीक्षित करने के लिए ब्रह्मचारी, स्नातक आदि की आवश्यकता पड़ती है।

ब्राह्मण और श्रौत ग्रन्थों (शतपथ ब्राह्मण ४.३.५.९, १८,१९,४.४.३.२, तैत्तिरीय संहिता ६.५.८.३, द्राह्यायण श्रौत सूत्र ६.३.१८, आपस्तम्ब श्रौत सूत्र १३.१७.१, मैत्रायणी संहिता ४.७.४, आश्वलायन श्रौत सूत्र ६.१२.१) में उन्नेता ऋत्विज का प्रत्यक्ष उल्लेख प्रायः अग्निष्टोम यज्ञ के तृतीय सवन के अन्त में आदित्य और हारियोजन ग्रहों के वर्णन में आता है। हारियोजन ग्रह के संदर्भ में कहा गया है कि ऋक् और साम ही इन्द्र के २ हरी हैं जिन्हें उन्नेता धान और सोम के रूप में भक्षण प्रदान करता है। इस धान का भक्षण ऋत्विज गण भी करते हैं। इन्द्र के रथ में यह हरि-द्वय जुडने पर इन्द्र सोम पान के लिए आने को उत्सुक होता है। हारियोजन ग्रह का वास्तविक अर्थ स्पष्ट होने पर ही उन्नेता के विशिष्ट कार्यों को समझा जा सकता है। हारियोजन ग्रह के संदर्भ में ही उन्नेता को अतिरिक्त कहा गया है, जिस प्रकार द्रोण कलश व विष्णु अतिरिक्त हैं।

वैदिक साहित्य में सार्वत्रिक रूप से अग्निहोत्र के संदर्भ में गौ के दोहन का वर्णन आता है (जैमिनीय ब्राह्मण १.२१, गोपथ ब्राह्मण १.३.१२, तैत्तिरीय ब्राह्मण २.१.७.१, २.१.८.२, शतपथ ब्राह्मण ११.५.३.५, काठक संहिता ३४.१६)। दुग्ध के अधिश्रित होने के पश्चात् उसका उन्नयन किया जाता है। उन्नयन करते समय दुग्ध को प्रायः वैश्वदेव या त्वाष्ट्र देवता वाला कहा गया है जबकि उन्नीत दुग्ध को प्रायः सावित्र देवता का कहा गया है।

**उन्मत्त अग्नि** २५६.२७ (उन्मत्त के लिए सम्पत्ति में भाग विषयक निर्देश), **नारद** १.२५.३८ (उन्मत्त को अभिवादन का निषेध), **ब्रह्माण्ड** ३.४.१९.७८ (गीति चक्र रथ के षष्ठम पर्व में स्थित आठ भैरवों में से एक), **भागवत** १.७.३६ (उन्मत्त के वध का निषेध), **वा.रामायण** ७.५.३७ (माल्यवान राक्षस व सुन्दरी के ७ पुत्रों में से एक), **स्कन्द** ७.४.१७.३२ (द्वारका के उत्तर दिशा में स्थित द्वारपालों का अधिपति), **कथासरित्** ८.४.८३ (उन्मत्तक : सूर्यप्रभ-सेनानी, कालकम्पन विद्याधरराज द्वारा वध)।

**उन्माद ब्रह्माण्ड** १.२.११.३ (नारायण व श्री -पुत्र, संशय-पिता), **भागवत** ४.२.१६ (उन्मादननाथ : शिव का नाम), १०.६.२८ (विष्णु नाम ग्रहण से उन्मादों से रक्षा ), **वामन** ५७.६९ अम्बिका द्वारा कुमार कार्तिकेय को प्रदत्त गण का नाम)

**उन्मादिनी ब्रह्माण्ड** ३.४.१९.६६ (गीति चक्र रथ के तृतीय पर्व में स्थित कामदेव के बाणों की पांच शक्तियों में से एक), **कथासरित्** ३.१.६५ (वणिक् की सुन्दर कन्या उन्मादिनी द्वारा देवसेन राजा के सेनापति से विवाह, राजा द्वारा उन्मादिनी के दर्शन पर कामवियोग से राजा की मृत्यु), ६.७.६२ (वही), १२.२४.८ (विस्तार सहित वही कथा)।

**उपकोशा कथासरित्** १.४.४ (उपवर्ष-कन्या उपकोशा के वररुचि से विवाह की कथा)।

**उपचार ब्रह्मवैवर्त्त** ४.८.१० (कृष्ण जन्माष्टमी प्रसंग में कृष्ण की षोडशोपचार पूजा विधि), **भविष्य** २.१.१६ (अग्नि पूजार्थ षोडशोपचार पूजा विधि), **शिव** १.१६.१६ (पूजा में षोडश उपचारों के फलों का कथन)।

द्र. षोडशोपचार, पूजा।

**उपजङ्घनि स्कन्द** ४.२.६५.८ (उपजङ्घनि लिङ्ग का संक्षिप्त माहात्म्य), ४.२.९४.३ (सनारु-पुत्र उपजङ्घनि की सर्पदंश से मृत्यु, अमृतेश्वर लिङ्ग प्रभाव से पुनर्जीवन)।

**उपदानवी पद्म** १.६.५४ (दनु-पुत्र मय की कन्या), **ब्रह्माण्ड** २.३.६.२३ (यम/मय/सद ?-पुत्री, दुष्यन्त-माता), **भागवत** ६.६.३३ (दनु-पुत्र वैश्वानर की ४ कन्याओं में से एक, हिरण्याक्ष से विवाह), **मत्स्य** ६.२१ (मय की तीन कन्याओं में से एक), ४९.१० (इलिना-पुत्र ऐलिन की भार्या, दुष्यन्त आदि ४ पुत्रों की माता),

**वायु** ६८.२३ (यम/मय/सद?-पुत्री, दुष्यन्त-माता), **विष्णु** १.२१.७ (दनु-पुत्र वृषपर्वा की तीन कन्याओं में से एक), **हरिवंश** १.३.९१(पुलोमा दानव की तीन कन्याओं में से एक, दनु वंश), १.३६.१९ (राजा ज्यामघ द्वारा युद्ध में प्राप्त कन्या, उपदानवी का ज्यामघ की पुत्रवधू व विदर्भ की भार्या बनने का वृत्तान्त, पुत्रों के नाम)।

**उपदेव** **भागवत** ८.१३.२७ (१२वें ऋतु/रुद्र सावर्णि मनु के १० पुत्रों में से एक), ९.२४.१८ (अक्रूर-पुत्र, देववान-भ्राता, वृष्णि वंश), ९.२४.२२ (देवक के ४ पुत्रों में से एक, सात्वत वंश), ९.२४.२३ (उपदेवा : देवक की सात कन्याओं में से एक), **मत्स्य** ४६.१७ (उपदेवी : वसुदेव-पत्नियों में से एक, ४ पुत्रों के नाम) इत्यादि।

**उपनन्द** **भागवत** ९.२४.४८ (आनकदुन्दुभि/ वसुदेव की मदिरा पत्नी से उत्पन्न पुत्रों में से एक), १०.११.२२ (गोकुल में उपद्रवों को देखकर उपनन्द नामक वृद्धगोप द्वारा वृन्दावन में स्थान्तरण का परामर्श), १०.६३.३ (बाणासुर पर आक्रमण के समय कृष्ण के सहायकों में से एक), **शिव** ३.१.१० (उपनन्दन : सद्योजात शिव का ध्यान करते समय ब्रह्मा से प्रकट कुमारों में से एक)।

द्र. नन्द।

**उपनयन** **नारद** १.५६.३४४ (उपनयन संस्कार विधि व काल विचार), **भविष्य** १.४.५ (उपनयन संस्कार विधि), २.१.१८.१२ (उपनयन में अग्नि का नाम वीतिहोत्र), **वामन** ८८.४२ (ऋषियों द्वारा अदिति-पुत्र वामन के उपनयन संस्कार का वर्णन), **स्कन्द** ४.१.३६.२२ (उपनयन संस्कार विधि)।

द्र. यज्ञोपवीत,संस्कार।

**उपनिषद** **देवीभागवत** ७.३६.५ (उपनिषद धनुष, उपासना शर), **स्कन्द** ४.१.२१.३४ (उपनिषद की वेदों में श्रेष्ठता का उल्लेख), **लक्ष्मीनारायण** १.२१(उपनिषदों की कुमारी साध्वी रूप में कल्पना, कुमारियों के स्वरूप व महिमा का वर्णन), २.१५७.१२ (उपनिषदों का हृदय में न्यास), २.२४६.७८ (ज्ञान का उपनिषत् शान्ति, शान्ति का सुख, सुख का तृप्ति, तृप्ति का त्याग होने का कथन), २.२४९.४१ (ब्रह्म प्राप्ति के मार्ग का उपनिषद नाम कथन व व्याख्या), २.२४९.४४ (उपनिषद का व्यापक अर्थ), ३.१८६.७८ (साधु के विवेक में उपनिषद का वास)।

**उपपुराण** **स्कन्द** ५.३.१.४५ (उपपुराणों तथा उनसे सम्बद्ध पुराणों के नाम)।

**उपबर्हण** **गर्ग** ५.२१.१५ (नारद द्वारा पिता ब्रह्मा की सृष्टि उत्पन्न करने की आज्ञा का उल्लंघन, शाप से उपबर्हण गन्धर्व बनना, पुनः सुंदरियों में आसक्ति के कारण शाप से शूद्र बनना, कालंतर में सत्संग प्रभाव से ब्रह्मा का पुत्र बनना), **ब्रह्मवैवर्त्त** १.१२.४५ (ब्रह्मा के पुत्र नारद द्वारा गन्धर्वराज-पुत्र उपबर्हण के रूप में जन्म लेना, नाम निरुक्ति : अधिक पूज्य), १.१३+ (चित्ररथ गन्धर्व की ५० कन्याओं द्वारा उपबर्हण का वरण, रम्भा अप्सरा के दर्शन से संगीत में त्रुटि पर ब्रह्मा द्वारा शूद्र योनि में जन्म का शाप, उपबर्हण द्वारा शरीर त्याग पर प्रधान पत्नी मालावती द्वारा देवों को शाप देने की चेष्टा आदि), १.१८.१ (देवों द्वारा मृत उपबर्हण के शरीर में प्रवेश करके प्राणों का संचार करना), १.२०.७ (कालांतर में मृत्यु पश्चात् उपबर्हण गन्धर्व का शूद्र योनि में दुमिल-भार्या कलावती से जन्म, नारद नाम प्राप्ति,कालांतर में मृत्यु पर शाप से विमोचन), **भागवत** ७.१५.६९ (संक्षिप्त रूप में वही कथा), २.२.४ (बाहुओं के होने पर उपबर्हण के निरर्थक होने का उल्लेख), ५.२०.२१ (उपबर्हिण : क्रौञ्च द्वीप के ७ पर्वतों में से एक), **लक्ष्मीनारायण** १.२००+ (ब्रह्मवैवर्त्त पुराण जैसी कथा)।

टिप्पणी- ऋग्वेद की कई ऋचाओं में बर्हणा शब्द प्रकट हुआ है जिसका सायण भाष्य अधिकांश स्थानों पर बर्ह-हिंसायाम् धातु के आधार पर करने का प्रयत्न किया गया है। लेकिन यह प्रयत्न ऋचाओं के रहस्यों पर प्रकाश डालने में असफल है।

यास्क के निघंटु में बर्हणा को पद नामों के अन्तर्गत रखा गया है। इसके अतिरिक्त, ऋग्वेद १०.८'१.७, अथर्ववेद ९.५.२९, १२.२.१९ व २० तथा १५.३.७ में आसन्दी के संदर्भ में उपबर्हण (पर्यंक पर तकिया?)शब्द प्रकट हुआ है। कहीं पर ब्रह्म को (अथर्ववेद १५.३.७),कहीं चित्ति को (ऋग्वेद १०.८५.७), कहीं अनड्वान को (अथर्ववेद ९.५.२९), कहीं रूप/छन्द को (तैत्तिरीय ब्राह्मण १.१६.१०, काठक संहिता २८.४, मैत्रायणी संहिता १.६.४), कहीं श्री को (कौषीतकिब्राह्मणोपनिषद १.५, ऐतरेय ब्राह्मण ८.१२) उपबर्हण कहा गया है। शब्द कोशों में बर्हण को पुच्छ कहा गया है। शरीर में मेरुदण्ड भी मस्तिष्क की पुच्छ जैसा है। इस आधार पर उपबर्हण को समझने का सूत्र हमें आपस्तम्ब श्रौत सूत्र ५.२०.७ तथा १२.६.१ से प्राप्त होता है जहां उल्लेख आता है कि आग्नीध्र नामक ऋत्विज को अज पूर्णपात्र अथवा हिरण्य पूर्णपात्र तथा सार्वसूत्र उपबर्हण की दक्षिणा दी जाए। इसका तात्पर्य हुआ कि उपबर्हण से पूर्व अज अवस्था तथा हिरण्यय कोश की अवस्था को पुष्ट करना है, उसे पूर्ण बनाना है, उसके पश्चात् मनुष्य व्यक्तित्व के निचले कोशों में व्युत्थान करना है, उसे मयूर पुच्छ की भांति चित्रित करना है, संगीत से ओतप्रोत करना है। जब वैदिक साहित्य में उपबर्हण द्वारा रूप प्राप्त करने की बात कही जाती है तथा उसे श्री, चित्ति आदि कहा जाता है, तो उससे यही तात्पर्य हो सकता है। बर्हण व उपबर्हण में क्या अन्तर है तथा ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में उपबर्हण की निरुक्ति को किस प्रकार उचित सिद्ध किया जा सकता है, यह विचारणीय है। पुराणों में उपबर्हण गन्धर्व की विस्तृत कथा वैदिक ऋचाओं की किन-किन ग्रन्थियों पर प्रकाश डालती है, यह भी अन्वेषणीय है।

**उपभृत् गरुड** १.१०७.३२ (मृत पुरुष की देह में वाम हस्त में उपभृत् रखने का विधान)।

**उपमन्यु कूर्म** १.२५ (पुत्र प्राप्ति हेतु श्रीकृष्ण द्वारा उपमन्यु के आश्रम में तप, उपमन्यु द्वारा रुद्र अर्चना विधि का कथन), **देवीभाग** ४.२५.३० (जाम्बवती द्वारा श्रीकृष्ण से पुत्र की याचना पर कृष्ण द्वारा उपमन्यु ऋषि से पाशुपत दीक्षा ग्रहण करके पुत्रार्थ शिव की आराधना), **ब्रह्म** २.५७ (आर्ष्टिषेण-पुरोहित, देवापि-पिता, मिथु दानव द्वारा यज्ञ से उपमन्यु के हरण पर पुत्र देवापि द्वारा रक्षा का उद्योग), **ब्रह्माण्ड** १.२.३३.३ (८६ श्रुतर्षियों सें से एक), २.३.८.९८ (वसु-पुत्र, वसिष्ठ-प्रपौत्र), **लिङ्ग** १.१०७ (क्षीर प्राप्ति हेतु उपमन्यु द्वारा शिव की अर्चना), **वामन** ८२.५ (वीतमन्यु व धर्मशीला-पुत्र उपमन्यु द्वारा दुग्ध प्राप्ति हेतु विरूपाक्ष शिव की आराधना), **वायु** ७०.८९/२.९.८९ (वसु-पुत्र, वसिष्ठ-प्रपौत्र), **शिव** ३.३२ (व्याघ्रपाद-पुत्र उपमन्यु का क्षीरार्थ तप,शक्र रूप धारी शंभु द्वारा परीक्षा व वरदान), ५.१ (उपमन्यु ऋषि का श्रीकृष्ण से संवाद, शिव भक्त निरूपण), ७.१.३४ (धौम्य-अग्रज व व्याघ्रपाद-पुत्र उपमन्यु द्वारा क्षीर प्राप्ति हेतु साम्ब शिव की आराधना), ७.१.३५ (शक्र रूप धारी शिव द्वारा उपमन्यु के समक्ष शिव की निन्दा, उपमन्यु द्वार शक्र के घात की चेष्टा, शिव द्वारा प्रकट होकर उपमन्यु को क्षीर आदि के समुद्र व अमरता प्रदान करना), ७.२.१ (उपमन्यु द्वारा श्रीकृष्ण को पाशुपत व्रत प्रदान करना, कृष्ण द्वारा तप करके साम्ब नामक पुत्र की प्राप्ति का उल्लेख), ७.२.२ (उपमन्यु द्वारा कृष्ण को शिव के पशुपति होने के कारण का वर्णन), ७.२.३ (उपमन्यु द्वारा शिव की ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव व सद्योजात नामक पांच मूर्तियों व भीम, उग्र, शर्व आदि ८ मूर्तियों के तत्वों का वर्णन), ७.२.४ (उपमन्यु द्वारा शिव के स्त्री-पुरुष अथवा शिव-शक्ति भाव का वर्णन), ७.२.५(उपमन्यु द्वारा शिव के व्यक्त-अव्यक्त आदि रूपों का कथन), ७.२.६ (उपमन्यु द्वारा प्रणव की अकार, उकार आदि मात्राओं के रहस्य का कथन), ७.२.१०.३० (उपमन्यु द्वारा कृष्ण को पशु के ज्ञान, क्रिया, चर्या व योग नामक चार पादों का वर्णन), ७.२.१३.३८ (उपमन्यु द्वारा पंचाक्षरी विद्या नमः शिवाय के माहात्म्य का वर्णन), ७.२.१५.४+ (उपमन्यु द्वारा षडध्वशोधन/दीक्षा विधि का वर्णन)।

**टिप्पणी**- पुराणों में मन्यु के संदर्भ में मुख्य रूप से दो ही शब्दों को लेकर कथाओं का सृजन किया गया है-अभिमन्यु और उपमन्यु। मन्यु के संदर्भ में अभिमन्यु पर टिप्पणी पठनीय है। ऋग्वेद ९.९७.१३- १५ के ऋषि वासिष्ठ उपमन्यु हैं। इसके अतिरिक्त ९.९७.७-९ के ऋषि वासिष्ठ वृषगणः, ९.९७.१०-

१२ के वासिष्ठ मन्यु और ९.९७.१६-१८ के वासिष्ठ व्याघ्रपाद हैं। देवता पवमान सोम है। पौराणिक साहित्य में व्याघ्रपाद को उपमन्यु का पिता बना दिया गया है। इस संदर्भ में शतपथ ब्राह्मण १२.७.२.८ तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण २.६.११.८ का यह कथन महत्वपूर्ण है कि व्याघ्र लोम होकर आरण्यक पशुओं के मन्यु पर आधिपत्य प्राप्त किया जाता है। पुराणों में यत्र-तत्र कथाओं में व्याघ्र का उल्लेख आता है और इन कथाओं में भक्ति को पाकर व्याघ्र का रूप सौम्य हो जाता है। उपमन्यु पुत्र के रूप में व्याघ्रपाद ने भक्ति को ही प्राप्त किया है। इसकी पुष्टि ऋग्वेद १.१०२.९ (वैदिक मन्त्रों में उपमन्यु का एकमात्र उल्लेख) में उपमन्यु के कारु (स्तुति सूचक) तथा उद्भिद् विशेषणों से होती है। उद्भिद् अर्थात् जो पृथिवी को फोडकर बाहर निकले, वनस्पति जगत। पुराणों में अन्यत्र वीतमन्यु को उपमन्यु का पिता कहा गया है। अथर्ववेद ६.४२ तथा ६.४३ सूक्त मन्यु व मन्यु-शमन देवताओं के हैं। अथर्ववेद ६.४३.२ का कथन है कि यों तो दर्भ के मूल समुद्र में बहुत फैले रहते हैं, लेकिन जब यह पृथिवी से ऊपर उठने लगे तब मन्युशमन कहा जाता है। यह दर्भ विमन्यु कहलाता है। यह कहा जा सकता है कि पुराणों का वीतमन्यु दर्भ की यह विमन्यु अवस्था ही है। पहले समाधि अवस्था में आनन्द का समुद्र विद्यमान था। समाधि से व्युत्थान की अवस्था में इस आनन्द का क्रमण दर्भ के रूप में दिखाया गया है, ऐसा प्रतीत होता है। मन्युशमन के पश्चात् उपमन्यु की, भक्ति की, स्तुति की अवस्था आती है। समाधि में प्राप्त आनन्द को, शक्ति को व्युत्थान की अवस्था में निचले स्तरों पर अवतरित करना होता है, अपने पाशों को खोलना होता है। यही उपमन्यु द्वारा कृष्ण को पशुपति व्रत प्रदान करना हो सकता है। उपमन्यु द्वारा क्षीर की प्राप्ति भी यही आनन्द समुद्र से अवतरण की अवस्था हो सकती है। ऋग्वेद ९.९७.१४ में भी उपमन्यु ऋषि मधुमान् अंशु के अवतरण की कामना करता है। महाभारत आदिपर्व अध्याय २ में आचार्य धौम्य के शिष्य उपमन्यु की कथा आती है जिसके लिए आचार्य ने भिक्षा से प्राप्त अन्न, गौ दुग्ध, गौ फेन आदि के भक्षण का निषेध कर दिया। तब वह अर्क पत्र भक्षण करने के कारण अन्धा होकर कूप में गिर पड़ा। तब अश्विनीकुमारों ने उसे भक्षण के लिए दिव्य अपूप प्रदान किए। यह उल्लेखनीय है कि पुराणों में उपमन्यु को धौम्य-अग्रज कहा गया है, जबकि महाभारत में धौम्य-शिष्य। इसके अतिरिक्त, यह प्रश्न अनुत्तरित रह जाता है कि ऋग्वेद ९.९७ सूक्त में मन्यु, उपमन्यु तथा व्याघ्रपाद ऋषियों का क्रम किस आधार पर निश्चित किया गया है।

पौराणिक कथाओं में उपमन्यु द्वारा क्षीरार्थ तप करते समय शक्र और शिव के दर्शन करने का वैदिक आधार क्या हो सकता है, इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि वैदिक ऋचाओं में इन्द्र के संदर्भ में तो मन्यु का उल्लेख बहुत बार आया है, जैसे ऋग्वेद १.१०१.२ में इन्द्र हर्षयुक्त मन्यु से युक्त होकर शम्बर आदि असुरों का वध करता है। ऋग्वेद १०.७३.१० में तो मन्यु से ही इन्द्र का जन्म कहा गया है। लेकिन पुराणों में इन्द्र के पश्चात् शिव कैसे प्रकट हो गए? इसका आधार यह प्रतीत होता है कि यास्क के निघंटु में मन्यु का पद नामों के अन्तर्गत वर्गीकरण किया गया है। ऋग्वेद १.१०४.२, ६.२५.२ तथा १०.१५२.३ में दास के मन्यु व अमित्र के मन्युओं का उल्लेख है जिनका इन्द्र से नियमन करने की प्रार्थना की गई है। दूसरी ओर, ऋग्वेद २.२४.१४ व ४.१७.१० में क्रमशः ब्रह्मणस्पति व इन्द्र द्वारा मन्यु को सत्य बनाने के पश्चात् उनके पराक्रमों का उल्लेख है। मन्यु का यह सत्य रूप पुराणों का शिव हो सकता है। शतपथ ब्राह्मण ९.१.१.६ में उल्लेख है कि प्रजापति के शिथिल होने पर सब देवता उन्हें त्याग कर चले गए, लेकिन मन्यु ने उन्हें नहीं त्यागा। वह (करुणा से?) रोये। उनके अश्रुओं से शतशीर्षा रुद्र का जन्म हुआ। यह मन्यु और शिव में तादात्म्य के संदर्भ में एक प्रमाण हो सकता है। मन्यु का व्यावहारिक पक्ष क्या है, और मन्यु शब्द का तात्विक अर्थ क्या हो सकता है, इस सम्बन्ध में ब्रह्म पुराण २.९२ में मन्यु को तृतीय नेत्र कहा गया है जो असुरों के विरुद्ध देवों का सेनापति बनता है। अथर्ववेद ९.१२.१३ के अनुसार मन्यु क्रोध का वह रूप है जिसकी उत्पत्ति अण्ड-द्वय से होती है। यह वीर्य में व्याप्त होता है, जबकि साधारण क्रोध की व्याप्ति रक्त में होती है। तृतीय नेत्र के संदर्भ में किसी व्यावहारिक अनुभव के अभाव में यह कहना कठिन है कि अमित्र का मन्यु कौन सा होगा और सत्य मन्यु कौन सा। लेकिन सत्य मन्यु का अनुमान शिव पुराण ७.२.३ में उपमन्यु द्वारा शिव की ईशान, तत्पुरुष, अघोर आदि ५ मूर्तियों के तत्त्वों के वर्णन के आधार किया जा सकता है। यह सत्य मन्यु ऐसा है जो अविद्या को विद्या में रूपांतरित कर देता है, अव्यक्त को व्यक्त में। यह आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी, पांचों तत्त्वों में व्याप्त होता है। अथर्ववेद ६.११६.३ में माता, पिता, भ्राता, पुत्रों, पितरों आदि के मन्युओं के हमारे लिए शिव होने की कामना की गई है।

मन्यु के शाब्दिक अर्थ के संदर्भ में, डा. फतहसिंह की शैली का अनुसरण करते हुए मन्यु को मन-ॐ अर्थात् मन की ओंकार की ओर प्रवृत्ति, कहा जा सकता है। मन्यु का वर्गीकरण यास्क निघंटु में क्रोध नामों के अन्तर्गत किया गया है। तैत्तिरीय संहिता २.१.३.१, २.२.८.२ तथा काठक संहिता १०.८ में मन्युमान व मनस्वान इन्द्र का उल्लेख है जिसके लिए एकादश कपाल निर्वपन का निर्देश है। लेकिन यह उल्लेख भी मन्यु और मन में अन्तर को समझने में कोई स्पष्ट दिशा निर्देश देता प्रतीत नहीं होता। अथर्ववेद ११.१०.१/११.८.१ सूक्त का देवता मन्यु है जिसमें मन्यु संकल्प के गृह से आकूति नामक जाया का आवहन करता है। अथर्ववेद ५.१३.६ तथा ६.४२.१ में मन्यु की हृदय में व्याप्ति इस प्रकार है जैसे धनुष पर ज्या। अथर्ववेद ८.३.१२ के अनुसार मन के मन्यु युक्त होने पर जिस शर का जन्म होता है, उससे यातुधानों के हृदय का विदारण किया जाता है।

**उपमा अग्नि** ३४४.६ (उपमा शब्द की व्याख्या का कथन)।

**उपयमनी नारद** १.५१.२७ (उपयमनी पात्र के द्वयङ्गुल होने का उल्लेख)।

**उपयाज** द्र. याज-उपयाज।

**उपरिचर वसु देवीभागवत** २.१ (गिरिका-पति, श्येन के माध्यम से पत्नी हेतु वीर्य प्रेषण, मत्स्य द्वारा वीर्य ग्रहण करने पर सत्यवती के जन्म की कथा), **ब्रह्माण्ड** १.२.३० (यज्ञ में हिंसा के समर्थन पर उपरिचर वसु के पतन की कथा), २.३.१०.६८ (अमावसु पितर से साम्य?), **भविष्य** ४.१३९ (उपरिचर वसु द्वारा इन्द्रध्वज उत्सव का आयोजन), **भागवत** ९.२२.५ (कृती-पुत्र, बृहद्रथ आदि पुत्रों के नाम, दिवोदास-वंश), **मत्स्य** १४३.१७ (उपरिचर वसु द्वारा यज्ञ में हिंसा का समर्थन, ऋषियों से शाप प्राप्ति), **वायु** ५७.१०३ (यज्ञ में हिंसा के समर्थन पर पतन), ७३.२० (अमावसु पितर से साम्य), **विष्णु** ४.१९.८० (कृतक-पुत्र, दिवोदास-वंश), **विष्णु धर्मोत्तर** ३.३४५ (ऋषियों के शाप से भू विवर में पतित उपरिचर वसु हेतु बृहस्पति द्वारा वसुधारा व वैष्णवी विद्या प्रदान करना), ३.३४६ + (उपरिचर वसु द्वारा वैष्णवी विद्या की सहायता से असुरों से स्वयं की रक्षा, विष्णु के दर्शन आदि), **लक्ष्मीनारायण** १.५२.७५ (वसु : उत्तानपाद-पुत्र, विश्वभुक् इन्द्र के हिंसापूर्ण यज्ञ में हिंसा का समर्थन करने पर रसातल में पतन)।

**उपल अग्नि** १६९.३२ (उपल हरण पर प्रायश्चित्त विधान), १७३.४४ (वही), **गरुड** १.१०६.२२ (वैश्यवृत्ति धारी द्विज के लिए उपल विक्रय का निषेध कथन), **स्कन्द** १.२.४.८१ (उपल दान का कनीयस् कोटि के दानों में वर्गीकरण), ४.१.२१.३१ (उपलों में स्फटिक की श्रेष्ठता का उल्लेख), **लक्ष्मीनारायण** १.३७५.११० (इन्द्र द्वारा धर्षण के पश्चात् अहल्या का उपल/शिला बनना), १.३८८.७८ (उपला : मेरु-पुत्री, नन्द राजा की भार्या, नारद के सुझाव पर पति के प्रेम की परीक्षा के लिए धन प्रदान करने वाली दन्तास्थि को नष्ट करना), ३.५५.२ (उपलेष्टि नगरी में रक्षा नामक श्वपची द्वारा मोक्ष प्राप्त करने का वृत्तान्त)।

**उपवन अग्नि** ३४८.९ (उपवन हेतु प एकाक्षर का प्रयोग)।

**उपवर्ष कथासरित्** १.४.१७ (उपकोशा कन्या के पिता, वर्ष उपाध्याय के भ्राता, वेदान्त के आचार्य, स्वकन्या उपकोशा का विवाह वररुचि से करना)।

**उपवास पद्म** ६.११९ (मास उपवास व्रत का माहात्म्य), ६.१२३ (मास उपवास व्रत का माहात्म्य), **भविष्य** १.१६.४५ + (विभिन्न तिथियों में उपवास विधि, अर्चनीय देवता व फल), १.६४ + (सप्तमी तिथि को उपवास, सूर्य आराधना विधि व फल), ४.९६ (नक्त उपवास व्रत विधि), **विष्णुधर्मोत्तर** १.५९+ (वार, नक्षत्र व तिथि अनुसार उपवास व हरि पूजा से प्राप्त काम्य फल का वर्णन), ३.२२२.१२८+ (कुबेर द्वारा अष्टावक्र को रुचि अनुसार मास के ३० रोचों में अर्चनीय देवता व फल का कथन), ३.२७४ (उपवास महिमा का कथन), ३.३२० (विभिन्न कृच्छ्र उपवासों का फल), **स्कन्द** ५.३.१६८.४० (अङ्कूरेश्वर तीर्थ में

उपवास के आपेक्षिक फल का कथन), **लक्ष्मीनारायण** ३.७५.७९ (उपवास से गन्धर्व लोक की प्राप्ति का उल्लेख)।

द्र. प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया आदि विभिन्न तिथियां व तिथि, व्रत।

**उपसद** **विष्णुधर्मोत्तर** १.१३६.३१ (चतुर्व्यूह के अन्तर्गत वासुदेव आदि तीन अग्नियों के रूपों का कथन; उपसद अनिरुद्ध का रूप; पुरूरवा द्वारा त्रेताग्नि यजन प्रसंग)।

**उपस्कर** **अग्नि** ३७१.३७ (उपस्कर हरण पर गृह-काक योनि प्राप्ति का कथन), **मत्स्य** २३६ (उपस्कर/घरेलू वस्तुओं रथ,वाद्य यन्त्रों आदि में विकृति लक्षण व शान्ति उपाय), **शिव** ५.६.४८ (उपानह, छत्र आदि गृह उपस्करों के हरण पर नरक प्राप्ति का कथन)।

**उपस्थ** **अग्नि** १११.४ (गङ्गा-यमुना के मध्य में पृथिवी की जघन में प्रयाग तीर्थ का उपस्थ रूप), **पद्म** ३.३९.७२ (वही)।

**उपहार** द्र. भेंट।

**उपाध्याय** **गरुड** १.२१७.१३ (उपाध्याय का अप्रिय करने पर श्वान योनि प्राप्ति का कथन), **मार्कण्डेय** १४.७७ (उपाध्याय को नीचे रखकर अध्ययन करने पर यमलोक यातना का वर्णन), १५.२ (उपाध्याय की निन्दा करने पर श्वान योनि का प्राप्ति), **स्कन्द** ६.१३९ (उपाध्याय ब्राह्मण द्वारा पुत्र मरण पर यम को अपूज्यत्व व अपुत्रत्व का शाप, यम द्वारा ब्राह्मण-पुत्र का पुनः संजीवन), **कथासरित्** १.४.४ (व्याकरण के विद्वान भ्राताद्वय वर्ष व उपवर्ष उपाध्यायों का वृत्तान्त)।

**उपानह** **गरुड** २.८.१८/२.४.९ (आतुर के लिए देय छत्र, उपानह, वस्त्र आदि ८ पदों का उल्लेख), २.८.१६/२.१८.१६ (मृतक के त्रयोदशाह में छत्र, उपानह आदि ७ पदों के दान का निर्देश; उपानह दान से अश्वारूढ होकर यमलोक की यात्रा करने का उल्लेख), **पद्म** १.१९.२५५ (पाद को उपानह द्वारा गूढित करने पर सारी पृथिवी को चर्म से आवृत करने के तुल्य होने का सार्वत्रित श्लोक), १.३४.३०८ (आदित्य की मूर्ति में छत्र, पादुका, उपानह आदि का विधान), २.४०.४५ (उपानह दान से विपुल सुख प्राप्ति का उल्लेख), २.६७.१०० (उपानह आदि के हरण पर नरक प्राप्ति का उल्लेख), ४.२४.२४ (ब्राह्मण को उपानह दान से मृत्यु पश्चात् इन्द्रलोक की प्राप्ति का उल्लेख), ६.११८.३३ (कार्तिक मास में उपानह, छत्र आदि दान का निर्देश), ६.१२५.१२ (आखेट हेतु गमन के समय राजा दिलीप के उपानह द्वारा गूढ पाद होने का उल्लेख), ७.९.१५ (गंगा यात्रा में आतपत्र/छत्र तथा उपानह का निषेध), **ब्रह्म** १.१०७.१२ (उपानह, छत्र आदि दान से अश्व,रथ, कुंजर आदि से अलंकृत होकर यमपुरी की यात्रा करने का उल्लेख), **भविष्य** १.१२३.५७ (सूर्य के तेज के कर्तन के संदर्भ में विश्वकर्मा द्वारा सूर्य के पदों के तेज का कर्तन न करने का उल्लेख), १.१९१.१७ (उपानह आदि हरण पर नरक प्राप्ति का उल्लेख), ४.५.७२ (वही), ४.१००.७ (माघ मास में मघा नक्षत्र में उपानह दान से सर्व कामनाओं की प्राप्ति का उल्लेख), ४.१२१.१४४ (माघ मास में एकादशी आदि तिथि पर उपानह आदि दान से अश्वमेध फल प्राप्ति का उल्लेख), **मत्स्य** ११.३० (त्वष्टा द्वारा सूर्य के तेज के कर्तन के प्रसंग में सूर्य के पदों के तेज का कर्तन न होने आदि का कथन), **वराह** २०७.४६ (उपानह द्वय प्रदान से रथ प्राप्ति का उल्लेख), २०८.८० (राजा मिथि व उनकी पत्नी रूपवती द्वारा क्षेत्र का शोधन, सूर्य के ताप से रानी के पातन पर राजा द्वारा कोप से सूर्य का पतन, सूर्य द्वारा राजा को जल पात्र, उपानह-द्वय तथा छत्र आदि प्रदान करना), **वामन** १६.५८ (ज्येष्ठ कृष्ण अष्टमी को रुद्र/सूर्य हेतु उपानह, छत्र आदि दान करने का उल्लेख), ७९.५२ (वणिक्-प्रेत संवाद में प्रेतराज द्वारा पूर्वजन्म में एकादशी को उपानह दान करने से प्रेत जन्म में प्रेत वाहन प्राप्त करने का वर्णन), **विष्णुधर्मोत्तर** १.३५.१७ (धनुर्वेद अभ्यास में रत जमदग्नि ऋषि की पत्नी रेणुका के पद सूर्य के ताप से जलने पर सूर्य द्वारा

छत्र और उपानह भेंट करने का वर्णन), १.२५०.१५ (सूर्य के अभिषेक के समय विरूपाक्ष द्वारा उपानह देने का उल्लेख), २.११६.४९ (उपानह दान से अश्वतरी युक्त यान द्वारा यम मार्ग की यात्रा पूरी करने का उल्लेख), ३.१३४.९ (त्रैविक्रम व्रत के अन्तर्गत उपानह-युगल व छत्र दान का उल्लेख), ३.२३३.४७ (अन्य द्वारा धारित उपानह-द्वय व वस्त्र को धारण न करने का निर्देश), ३.३०१.२५ (छत्र, कृष्णाजिन, शय्या, रथ, आसन, उपानह, यान तथा अन्य प्राणरहित वस्तुओं की दक्षिणा को उत्तान अंगिरस हेतु ग्रहण करने का निर्देश), ३.३४१.१२४ (उपानह दान से विमान में यात्रा करने का उल्लेख), **शिव** ५.११.४ (उपानह/काष्ठपादुका दान से अश्वारूढ होकर यमलोक जाने का उल्लेख), ६.२२.४३ (एकादशाह श्राद्ध कृत्य विधि के अन्तर्गत ब्राह्मणों को उपानह, छत्र आदि देने का निर्देश), **स्कन्द** १.२.४.८० (दान के उत्तम, मध्यम व कनिष्ठ प्रकारों के अन्तर्गत उपानह, छत्र आदि के कनिष्ठ प्रकार के दान होने का उल्लेख), १.२.५०.७६ (उपानह दान से यान द्वारा यमलोक की यात्रा करने का उल्लेख), २.७.१७.१२ (व्याध द्वारा शंख ब्राह्मण के उपानह आदि का लुंठन, सूर्य के ताप से पादों के संतप्त होने पर व्याध द्वारा ब्राह्मण को उपानह देने से वैशाख/माधव मास का पुण्य अर्जित करने का वर्णन),५.३.२६.१२५ (चतुर्दशी को धर्म हेतु उपानह दान के माहात्म्य का कथन), ५.३.५०.१९ (शूलभेद तीर्थ में उपानह दान के फल का उल्लेख : हयारूढ होकर स्वर्ग प्राप्ति), ७.१.२८.२५ (छत्र व उपानह से हीन भिक्षु द्विज द्वारा तीर्थयात्रा करने से महान फल प्राप्ति का कथन), ७.४.४.२६ (द्वारका की यात्रा को प्रस्थित यात्रियों के लिए उपानह दान पर गजस्कन्ध पर यात्रा करने का उल्लेख), ७.४.११.१० (द्विजों को उपानह आदि दान का निर्देश), ७.४.४०.२५ (कार्तिक में द्वादशी को श्राद्ध में उपानह, छत्र आदि दान से प्राप्त फल का कथन), **लक्ष्मीनारायण** ३.१११.११ (उपानह दान से कण्टकों के नाश का उल्लेख)।

द्र. पादुका।

**महाभारत** अनु. ६६.२ (ब्राहणों को उपानह दान के फल का कथन : कण्टकों का मर्दन, अश्वतरी युक्त यान की प्राप्ति आदि)।

**टिप्पणी–** पुराणों में ब्राह्मण को उपानह-द्वय दान के सार्वत्रिक उल्लेख के संदर्भ में तैत्तिरीय संहिता ५.४.४.४, ५.६.६.१, काठक संहिता २१.७ आदि में कृष्णाजिन से निर्मित उपानह - द्वय का उल्लेख आता है। कहा गया है कि कृष्णाजिन ब्रह्मा का, छन्दों का, यज्ञ का, ब्रह्मवर्चस आदि का प्रतीक है जो अग्नि रूपी मृत्यु का छादन करता है। पौराणिक संदर्भ को ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि ब्राह्मण का पद अग्नि का रूप है जिसका छादन कृष्णाजिन से निर्मित उपानह करते हैं। उपानह शब्द की निरुक्ति उप-नह (नह-बन्धने) के आधार पर की जाती है। यज्ञ कार्य में सोमलता को रस्सी से बांधकर (उपनह्य) यज्ञस्थल पर लाया जाता है। सोम का उपनहन करते समय मन्त्र पढ़ा जाता है (तैत्तिरीय संहिता २.४.७.२, २.४.९.४, मानव श्रौत सूत्र ५.२.६.७, बौधायन श्रौत सूत्र १३.३८, आपस्तम्ब श्रौत सूत्र १६.२६.१) कि हे रस्सी, तू वर्षण करने वाले अश्व या पर्जन्य का नियंत्रण करने वाली है, वृष्टि हेतु मैं तुझे बांधता हूं। बंधा हुआ सोम वरुण देवतात्मक होता है, वह पाश में बंधा होता है। उस सोम को वर्षण करने वाले अश्व का, पर्जन्य का रूप देना होता है। तैत्तिरीय संहिता २.४.९.४ का कथन है कि चूंकि वर्षण करने पर पर्जन्य का रूप कृष्ण होता है, अतः सोम/हवि को कृष्णाजिन में बांधते हैं। उपरोक्त तथ्य पुराणों में उपानह दान से अश्व (अश्-व्याप्तौ) युक्त यान प्राप्त होने के उल्लेख की व्याख्या हो सकता है। लेकिन यह उल्लेखनीय है कि वैदिक साहित्य में एक ओर तो उपानह के संदर्भ में कृष्णाजिन रूपी ब्रह्मा द्वारा अग्नि का नियमन किया जा रहा है और दूसरी ओर कृष्णाजिन द्वारा सोम का छादन करने का उल्लेख है। इनमें अंतर विचारणीय है। हो सकता है कि कृष्णाजिन अग्नि और सोम, दोनों का रूप धारण करने में समर्थ होता हो। वरुण के पाशों में बद्ध सोम शूद्र के उपानह का तथा पाशों से मुक्त सोम, वृष्टि करने में समर्थ सोम ब्राह्मण के उपानह का प्रतीक हो सकता है। पापों के संचय का मुख्य स्थान पाद ही होते हैं। पापों से मुक्त पाद ब्राह्मण व्यक्तित्व के हो सकते हैं।

शतपथ ब्राह्मण ५.४.३.१९ तथा काण्व शतपथ ७.३.३.१६ में राजसूय यज्ञ में अभिषेक के पश्चात् वाराही उपानह-द्वय का उल्लेख आया है। कहा गया है कि वराह की

उत्पत्ति घृत से पूर्ण कुम्भ में अग्नि के प्रवेश से हुई है, इसीलिए वराह मेदपूर्ण होता है। राजसूय में अभिषेक के पश्चात् यजमान द्वारा हर समय उपानह धारण करना अनिवार्य हो जाता है। अग्निचयन नामक इष्टि में भी यजमान वाराही उपानह-द्वय का उपयोग करता है जिन्हें चिति पूर्ण होने पर त्याग दिया जाता है क्योंकि उपानह का उपयोग तभी तक किया जाता है जब तक अग्नि द्वारा हिंसा की संभावना हो। जब अग्नि का चयन पांच चितियों में कर दिया जाता है तो वह अहिंसक हो जाती है, वह यजमान का वाहन बनकर उसे स्वर्ग में ले जाने में समर्थ होती है। ब्राह्मण ग्रन्थों में उपानह - द्वय को यज्ञ वराह का रूप देने का क्या तात्पर्य हो सकता है, यह विचारणीय है। हरिवंश पुराण ३.३५ से संकेत मिलता है कि यज्ञ वराह का कार्य पृथिवी पर संचित अनियंत्रित ऊर्जा को, सुवर्ण को, नियंत्रित करना है, उसे यज्ञ कार्य में प्रयुक्त करना है, उसे पर्वतों और नदियों का रूप देना है, उसे प्रवाह योग्य बनाना है। साधक को यज्ञ वराह की सृष्टि भी स्वयं अपने अंदर ही करनी होती है। वराह को घृत और मेद आदि से संबंधित करने का तात्पर्य उसे शरीर की धातुओं मेद और मज्जा से जोडने से हो सकता है क्योंकि वराह के संदर्भ में कहा गया है कि वराह पशुओं के मन्यु का रूप है (तैत्तिरीय ब्राह्मण १.७.९.४), वराह की उत्पत्ति अण्ड कोशों से हुई है (जैमिनीय ब्राह्मण २.२६७)। मन्यु वह क्रोध है जो वीर्य सें उत्पन्न होता है। साधारण क्रोध केवल रक्त तक ही सीमित रहता है।

विष्णु धर्मोत्तर पुराण में जमदग्नि ऋषि की पत्नी रेणुका द्वारा जमदग्नि ऋषि द्वारा छोड़े गए तीरों को लाने के लिए भागने और सूर्य के ताप से उसके पद जलने के वर्णन के संदर्भ में जमदग्नि ऋषि के तीरों को अग्नि का नियमन करने वाले तीर कहा जा सकता है। पृथिवी तत्त्व में अग्नि का नियमन होने पर सुगन्ध की उत्पत्ति होती है। धूलि कणों को तथा पुष्प के पराग कणों को भी रेणु कहा जाता है। रेणुका के पद संतप्त होने से क्या तात्पर्य है, यह अन्वेषणीय है।

**उपासङ्गधर** **मत्स्य** ४६.१६ (वसुदेव व देवरक्षिता-पुत्र)।

**उपासना** **वराह** ११५ (चतुर्वर्ण उपासना विधि), **लक्ष्मीनारायण** २.२५७.१६ (उपासना बल का वर्णन : विभिन्न देवों की उपासना से आत्मा द्वारा देह से निष्क्रमण पर विभिन्न लोकों की प्राप्ति)।

द्र. अर्चना, आराधना, पूजा।

**उपेन्द्र** **अग्नि** ४८.११ (उपेन्द्र मूर्ति के आयुध), **ब्रह्माण्ड** २.३.७३.८४ (बलि यज्ञ प्रसंग में उपेन्द्र के विराट रूप का दर्शन करने पर देव, दानव व मानवों का मोहित होना), **भागवत** २.७.४५ (उपेन्द्रदत्त : शुकदेव का उपनाम), १०.३.४२ (अदिति व कश्यप-पुत्र, वामन व उरुक्रम उपनाम), १०.६.२३ (बाल कृष्ण पर प्रयुक्त विष्णु कवच में उपेन्द्र द्वारा ऊपर की रक्षा), **मत्स्य** २४४.२६(वामन के प्राकट्य पर अदिति माता द्वारा वामन की स्तुति में उपेन्द्र से माया जाल भङ्ग करने, अविद्या से पार होने, तम रूप असुर का नाश करने, अज्ञान का नाश करने, शुभाशुभ कर्मों को देखने के लिए चक्षु प्राप्त करने का कथन), **वायु** ९८.८४ (बलि यज्ञ प्रसंग में उपेन्द्र के विराट रूप का दर्शन करने पर देव, दानव व मानवों का मोहित होना), **स्कन्द** ४.२.६१.२३१ (उपेन्द्र मूर्ति के लक्षण), **लक्ष्मीनारायण** १.२५८.६ (आश्विन् शुक्ल एकादशी को उपेन्द की पूजा), **कथासरित्** २.२.२१ (उपेन्द्रबल : श्रीदत्त ब्राह्मण का एक मित्र), १२.६.३२५ (उपेन्द्रशक्ति वणिक् द्वारा रत्नविनायक की प्राप्ति व उसे राजपुत्र श्रीदर्शन को देना), १२.६.३८० (उपेन्द्रशक्ति के विक्षिप्त पुत्र महेन्द्रशक्ति का तपस्वी ब्रह्मसोम द्वारा पाणि से ताडन करने पर स्वास्थ्य लाभ)।

**उमा** **कूर्म** २.४१.५७ (उमाहक तीर्थ : जल मध्य में गज रूपी शिला का स्थान), **देवीभाग** ७.३०.७१ (विनायक क्षेत्र में विराजमान देवी का उमा नाम), **नारद** १.११८.९ (ज्येष्ठ शुक्ल नवमी को उमा व्रत की संक्षिप्त विधि व माहात्म्य), **पद्म** ६.१३३.१९ (विनायक पर्वत पर उमा तीर्थ की स्थिति), **ब्रह्म** १.३२.८५ (हिमवान व मेना की ज्येष्ठ पुत्री अपर्णा द्वारा उमा नाम प्राप्ति के कारण का कथन, उमा द्वारा तप से शिव को पति रूप में प्राप्त करना), **ब्रह्मवैवर्त्त** ३.९.१७ (बाल गणेश रूप

धारी कृष्ण द्वारा उमा शब्द करने का उल्लेख), **मत्स्य** १३.४१ (विनायक तीर्थ में सती देवी की उमा नाम से स्थिति), १५४.२९४ पार्वती द्वारा उमा नाम प्राप्ति का कारण), **लिङ्ग** १.८५.४५ (शिव के प्रणव में अ, उ व म तथा उमा के प्रणव में उ, म व अ), २.१९.२४ (उमा सोम का रूप, शिव सूर्य का रूप), **वामन** ५१.२१ (मेना की तृतीय तपोरत कन्या द्वारा उमा नाम प्राप्ति का कारण, वटु रूप धारी शिव का दर्शन और अन्ततः शिव से विवाह), **वायु** ४१.३६ (उमा वन में शिव द्वारा अर्धनारी रूप धारण का उल्लेख), १०६.३९/२.४४.३९ (उमाव्रत : ब्रह्मा के यज्ञ के एक ऋत्विज का नाम), **विष्णुधर्मोत्तर** १.१६४.२३ (उमा का वितस्ता नदी के रूप में अवतरण), **शिव** २.३.५.९ (हिमालय-पत्नी मेना द्वारा उमा की आराधना, उमा द्वारा मेना-पुत्री बनने का वरदान), २.३.७.१७ (मेना-पुत्री के तप से निषेध किए जाने पर उमा नाम प्राप्ति, शिव से विवाह प्रसंग का वर्णन), ५.१+ (शिव पुराण की उमा संहिता का आरंभ), ५.३.३३ (पार्वती द्वारा श्रीकृष्ण को प्रदत्त वरों का कथन), ५.१९.३६ (ब्रह्मलोक, वैकुण्ठ आदि से ऊपर उमा लोक का उल्लेख), ५.४९ (दानवों पर विजय से गर्वोन्मत्त देवों के समक्ष महातेज का प्रकट होकर देवों के गर्व का खण्डन करना, चैत्र शुक्ल नवमी को उमा देवी का प्रादुर्भाव, उमा द्वारा स्व महिमा का कथन), ५.५१.२ (उमा देवी के क्रिया योग का वर्णन : देवी आराधना विधि का वर्णन), **स्कन्द** ३.३.६ (विप्र-पत्नी उमा द्वारा निराश्रित नृप-पुत्र का पालन, शाण्डिल्य से नृप-पुत्र के जन्म के वृत्तांत का श्रवण), ४.२.८४.८४ (उमा तीर्थ का संक्षिप्त माहात्म्य : औमेय लोक प्राप्ति), ७.१.५७.५ सोम की कला अमा से तादात्म्य; इच्छा शक्ति की प्रतीक), ७.१.६१ (वैष्णवी देवी का रूप, ललिता,विशालाक्षी उपनाम), **हरिवंश** २.७८+ (उमा द्वारा अरुन्धती को पतिव्रता स्त्री माहात्म्य, पुण्यक व्रत विधि तथा स्त्री योग्य अन्य कृत्यों का वर्णन), **लक्ष्मीनारायण** २.१९७ (उमा पुरी में स्तोकहोम राजा द्वारा श्रीकृष्ण का स्वागत, कृष्ण द्वारा उपदेश)

**टिप्पणी-** उमा के संदर्भ में वैदिक साहित्य से प्रत्यक्ष मार्गदर्शन के अभाव में, उमा को समझने के सूत्र पुराणों से ही प्राप्त करने होंगे। पुराणों में ओंकार में तीन अक्षरों की स्थिति का उल्लेख आता है-अ, उ तथा म। इनमें से अकार बीज है, उकार योनि है तथा म बीजी है। उकार के योनि होने के तथ्य को वामन पुराण में इस प्रकार स्पष्ट किया गया है कि मेना व हिमालय की केवल तीसरी पुत्री ही (अकार रूपी) शिव वीर्य को धारण करने में समर्थ हो सकती है, अन्य दो नहीं। इस हेतु, अर्थात् शिव की पति रूप में प्राप्ति हेतु पार्वती को तप करना पड़ता है। पार्वती की माता मेना उ मा कह कर पार्वती का तप से निषेध करती है, अतः पार्वती की उमा नाम से प्रसिद्धि होती है। पुराणों के इस सार्वत्रिक कथन का तात्पर्य क्या हो सकता है, यह आगे की कथा से स्पष्ट होता है। ब्रह्मवैवर्त पुराण के गणेश खण्ड आदि के अनुसार कार्तिकेय और गणेश, दोनों के जन्म के समय देवगण शिव-पार्वती की रति में विघ्न डालते हैं जिससे शिव का वीर्य पार्वती को प्राप्त होने के बदले अग्नि आदि को प्राप्त हो जाता है और वहीं से कार्तिकेय आदि का जन्म होता है। यह कथा संकेत करती है कि उमा के देवी रूप के लिए उ अर्थात् योनि, शिव वीर्य को धारण करने वाली योनि का विकास न हो। उमा का दूसरा अर्थ यह हो सकता है कि मा अर्थात् माया रूपी प्रकृति या भूमि ही शिव के वीर्य को धारण करने वाली योनि बने। पुराणों में सार्वत्रिक रूप से विनायक क्षेत्र में उमा देवी की स्थिति का उल्लेख आता है। विनायक शब्द को विनय उत्पन्न करने वाले व्यक्तित्व के रूप में समझ सकते हैं। अभिधान राजेन्द्र कोश में विनय की व्याख्या विस्तार से की गई है। वहां ज्ञान विनय, दर्शन विनय, चरित्र विनय, मन विनय, वय विनय, काय विनय, लोकोपचार विनय आदि का उल्लेख है। विनय अर्थात् जो सब क्लेशों का विनयन करे, उनका नाश करे। विनय में नय शब्द नीति के, नेता के, मार्गदर्शन करने वाले के अर्थों में आता है। ऐसा प्रतीत होता है कि हरिवंश पुराण व ब्रह्मवैवर्त पुराण में उमा-प्रोक्त पुण्यक व्रत के वर्णन के रूप में इसी विनय प्राप्ति का वर्णन है। यही नहीं, शिव पुराण की पूरी उमा संहिता भी विनय प्राप्ति का वर्णन हो सकती है। पार्वती-माता मेना द्वारा पार्वती का तप से निषेध किए जाने का तात्पर्य यह हो सकता है कि विनय की प्रतिष्ठा स्वाभाविक रूप से होनी चाहिए, उसके लिए किसी प्रयत्न की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। ऐसी स्थिति विघ्न नाशक विनायक के जन्म के पश्चात् ही हो सकती है।

शतपथ ब्राह्मण ६.६.१.२४ में उमा को मुञ्ज से निर्मित योनि में स्थित गर्भ का उल्ब (आवरण) कहा गया है। उणादि कोश २.२.२४५ की भोज वृत्ति आदि में उमा की व्युत्पत्ति अव-रक्षणे धातु से की गई है। उ अर्थात् योनि भी गर्भ का रक्षण करती है। वैदिक पदानुक्रम कोश में ऋग्वेद की ऋचाओं में प्रकट हुए ऊमा शब्द का अव धातु के अन्तर्गत वर्गीकरण किया गया है। यह अन्वेषणीय है कि क्या ऊमा और उमा में कोई सम्बन्ध हो सकता है?

**उमा-महेश्वर** **नारद** १.१२४.३३ (उमा-महेश्वर पूर्णिमा व्रत विधि), **भविष्य** ४.२३ (उमा-महेश्वर व्रत विधि), **लिङ्ग** १.८४ (वही), **स्कन्द** ६.४८ (हरिश्चन्द्र द्वारा पुत्र प्राप्ति हेतु स्थापित उमा-महेश्वर लिङ्ग का माहात्म्य), ७.१.२७६.११ (देविका तट पर स्थित उमापति का माहात्म्य), ७.३.५८ (धुन्धुमार द्वारा स्थापित उमा-महेश्वर तीर्थ का माहात्म्य)।

**उर** **अग्नि** २४२.४२, ४५ (सप्तांग युद्ध व्यूह वर्णन के अन्तर्गत उर:स्थान में नागों की स्थापना करने का निर्देश), २४३.१३ (पुरुष के अंगों की उत्कृष्टता के वर्णन में उर, ललाट व मुख इन तीनों के विस्तीर्ण होने पर प्रशस्त होने का उल्लेख), २५२.२० (उरोललाटघात : क्षेपणी नामक अस्त्र के कर्मों में से एक), २५२.२७ (उरोललाटघात : गदा अस्त्र के कर्मों में से एक), **गरुड** १.१०७.३५ (शव दाह में शव के अंगों में यज्ञपात्रों की स्थापना के वर्णन के अन्तर्गत उर में दृषद रखने का निर्देश), **पद्म** १.३४.१२५ (सावित्री शाप से दग्ध रुद्र द्वारा ब्रह्मा की स्तुति के प्रसंग में विश्वसृक् से उर की रक्षा करने की प्रार्थना), १.४१.२८८ (गरुड द्वारा उर से ताडन करके कालनेमि के वध का उल्लेख), ५.१०८.५८ (उर आदि अंगों में अघोर आदि शिव नामों से भस्म लगाने का निर्देश), **भविष्य** ४.८३.९२ (ज्येष्ठ मास की द्वादशी को विष्णु की आराधना में उर में संवर्त नाम से विष्णु के न्यास का निर्देश आदि), ४.८३.१२३ (आश्वयुज मास की शुक्ल पक्ष की द्वादशी को उर में पुष्कराक्ष के न्यास का निर्देश), **भागवत** २.१.२८ (भगवान के अंगों की लोकों से तादात्म्यता के वर्णन में उर के ज्योतीरनीक/स्वर्ग लोक होने का उल्लेख), **वा. रामायण.** ३.५.१७ (राम द्वारा देवताओं के उर देशों में अग्नि के समान तेजस्वी हार देखने का उल्लेख), ३.१४.३० (कश्यप-पत्नी मनु के उर से क्षत्रियों व मुख आदि से ब्राह्मण आदि वर्णों के उत्पन्न होने का उल्लेख), ४.३.३१ (सुग्रीव-दूत हनुमान के उर से निकलने वाली मध्यमा वाक् आदि के मध्यम स्वर वाली होने का उल्लेख), ५.१.४ (समुद्रलंघन से पूर्व हनुमान की स्थिति के वर्णन में उर द्वारा पादपों के हरण का उल्लेख), ५.१.६९ (हनुमान द्वारा समुद्रलंघन काल में सागर की शैल समान ऊर्मियों/लहरों का उर से हनन करने का उल्लेख), ५.१.१०८ (समुद्रलंघन काल में हनुमान द्वारा उर से मैनाक पर्वत को गिरा देने की वायु द्वारा मेघ को छिन्न करने से उपमा), ५.४४.१४ (जम्बुमाली राक्षक द्वारा हनुमान के उर में एक बाण से ताडन करना तथा हनुमान द्वारा जम्बुमाली के उर में परिघ मार कर उसका वध करना), ६.७७.१२ (निकुम्भ राक्षस द्वारा हनुमान के उर में परिघ से प्रहार करने पर परिघ का शतधा विभक्त होना, हनुमान द्वारा निकुम्भ के उर में मुष्टि प्रहार करके उसके वध का वर्णन), ७.६९.३५ (शत्रुघ्न द्वारा लवण के उर में दिन्य महाबाण मार कर उसके वध का वर्णन), **लिङ्ग** १.२६.३८ (प्रात:काल पंचयज्ञ वर्णन के अन्तर्गत अघोर आदि मन्त्रों से उर आदि अंगों के अभिषेक का निर्देश), **वराह** ४५.३ (ज्येष्ठमास में रामद्वादशी व्रत में उर आदि में संवत्सर आदि के न्यास का कथन), **विष्णुधर्मोत्तर** २.८.१२ (त्रिगम्भीर लक्षणों वाले पुरुष के उर, नाभि व सक्थि गंभीर होने का उल्लेख), २.११५.८३ (पुरुष के उर में १७ अस्थियां होने का उल्लेख), २.१२४.७२ (उरोष्ट इति सूक्त (ऋ. ५.३८.१) द्वारा वित्त प्राप्त होने का उल्लेख), २.१८२.२४ (उरोललाटघात : गदा कर्म के विशिष्ट नामों में से एक), **शिव** २.१.४.६९ (उर में शिव के चरणकमलों को धारण कर शिवतीर्थों में विचरने का निर्देश), ३.१०.२९ (नृसिंह द्वारा प्रह्लाद का उर से आलिंगन करने का उल्लेख), **स्कन्द** १.१.३४.४८ (शिव का उर विशाल

होने का उल्लेख), ५.३.८४.१०५ (गौ के अंगों में देवप्रतिष्ठा वर्णन के अंतर्गत उर में स्कन्द की स्थिति का उल्लेख), ६.२६२.४० (मूर्त-अमूर्त्त देव के लिए पृथिवीलोक के उर होने का उल्लेख), **हरिवंश** २.२४.३५ (केशी असुर द्वारा उर से कृष्ण के उर पर प्रहार करने की चेष्टा का उल्लेख), द्र. न्यास, पुरुष

**महाभारत** वन २७९.२९ (कबन्ध राक्षस की विशाल आंखें उर में तथा मुख उदर में होने का उल्लेख), उद्योग १८०.१४ (परशुराम द्वारा युद्ध में भीष्म के उर का बाण द्वारा वेधन करने पर भीष्म के मूर्च्छित होने का उल्लेख), भीष्म ७५.१९ (भीष्म द्वारा निर्मित क्रौञ्च व्यूह के उर में राजा भगदत्त आदि की स्थिति का उल्लेख), १११.४६ (भूरिश्रवा द्वारा भीमसेन के उर के नाराचों द्वारा वेधन की स्कन्द शक्ति द्वारा क्रौञ्च के वेधन से उपमा), द्रोण २९.१८ (भगदत्त द्वारा अर्जुन के उर पर दिव्य अंकुश द्वारा प्रहार, कृष्ण द्वारा दिव्य अस्त्र को अपने उर पर ग्रहण करने पर अस्त्र के वैजयन्ती माला में परिवर्तित हो जाने का वर्णन), ११३.१९ (युद्ध में अश्वों के उरच्छदों द्वारा सुशोभित होने का उल्लेख), १२९.२८ (भीमसेन द्वारा कर्ण के उर पर तीन शरो से प्रहार, शरों के कर्ण के उर में त्रिशृंग पर्वत के समान शोभा पाने का उल्लेख), १७५.९ (घटोत्कच के उर में धारित निष्क की अग्निमाला धारण किए हुए पर्वत से तुलना), शल्य १७.५० (युधिष्ठिर द्वारा उर में दिव्य शक्ति का प्रहार करके शल्य का वध), शान्ति ३१७.४ (अङ्गों से प्राणों के निष्क्रमण के संदर्भ में उर से प्राणों के निष्क्रमण पर रुद्रलोक की प्राप्ति का उल्लेख)।

**उरभ्र** **विष्णुधर्मोत्तर** १.२१५.५१ (चक्षु नदी के उरभ्र वाहन का उल्लेख), २.९९.८८ (भरणी नक्षण में स्नान के अन्तर्गत उरभ्र शृंग के धूपार्थ उपयोग का उल्लेख)।

**उरलकेतु** **लक्ष्मीनारायण** २.१६४.९७ (उरल : माल्यवान देश का नाम), २.१६७.१८ (उरलकेतु- पूर्व प्रदेशों का राजा, यवक्रीत के साथ यज्ञ में आना), २.१७२.५६+ (मोक्षिका नगरी के राजा उरलकेतु द्वारा श्री हरि का सत्कार, प्रजा द्वारा मोक्ष प्राप्ति, राजा को श्री हरि द्वारा उपदेश),।

**उरि** **स्कन्द** ५.३.८५.२७ (रेवा-उरि संगम का माहात्म्य), ५.३.८५.९६ (सोम द्वारा रेवा-उरि संगम पर लिङ्ग की स्थापना)।

**उरु** **ब्रह्माण्ड** ३.४.१.११४ (भौत्य मनु के ९ पुत्रों में से एक), **भागवत** ८.१३.३३ (१४वें इन्द्रसावर्णि मनु के पुत्रों में से एक), **मार्कण्डेय** ७६.५६/७३.५६ (चाक्षुष मनु के पुत्रों में उरू, पुरु आदि का उल्लेख)।

**उरुकण्टक** **भविष्य** २.२.९.५ (आत्रेय प्रवर के ५ नामों में से एक),

**उरुक्रम** **भागवत** ८.२१.४ (ब्रह्मा के कमण्डलु के जल द्वारा वामन/उरुक्रम के पाद प्रक्षालन), १०.६.२२ (उरुक्रम विष्णु से मुख की रक्षा की प्रार्थना), **लक्ष्मीनारायण** ४.१०१.११६ (उरुक्रमा : कृष्ण-पत्नी, संक्रमा व वामन युगल की माता)।

**उरुक्षय** **मत्स्य** १९६.२८ (ऋषि प्रवर वर्णन के अन्तर्गत उरुक्षय प्रवर के अवैवाह्य गोत्रों का कथन), २७१.४ (बृहद्बल-पुत्र, वत्सद्रोह-पिता)।

**उरुक्षव** **मत्स्य** ४९.३७ (अहार्य-पुत्र, विशाला-पति, त्र्युषण आदि ३ पुत्रों के नाम)।

**उरुगवाक्ष** **लक्ष्मीनारायण** २.२२२+ (उरोगमन राष्ट्र के राजा उरुगवाक्ष द्वारा श्री हरि का स्वागत, श्री हरि द्वारा उपदेश)।

**उरुगाय** **भागवत** १०.६.२३ (उरुगाय विष्णु से कोणों में रक्षा की प्रार्थना)।

**उरुबिन्दु** **हरिवंश** १.२३.२ (जन्मान्तर में मानस पर्वत पर हंस बने ७ कौशिक-पुत्रों में से एक, जन्मान्तरों का वृत्तान्त)।

**उरुवल्क** **भागवत** ९.२४.४९ (वसुदेव व इला-पुत्र)।

**उरुशृंग** **भागवत** ५.२०.२६ (शाकद्वीप के ७ मर्यादा पर्वतों में से एक)।

**उरुश्रवा** **भागवत** ९.२.२० (सत्यश्रवा-पुत्र, देवदत्त-पिता)।

**उर्मिला** **अग्नि** ५.१२ (लक्ष्मण द्वारा उर्मिला का वरण), **भविष्य** ४.५४ (निमि-पत्नी, पुत्री श्यामला द्वारा माता का सात यातना कक्षों से उद्धार का उद्योग), **वा.रामायण** १.३३.१२(उर्मिला गन्धर्वी की पुत्री सोमदा द्वारा चूली मुनि की सेवा से ब्रह्मदत्त पुत्र की प्राप्ति), **स्कन्द** ४.१.२९.३३ (ऊर्मिला: गङ्गा सहस्रनामों में से एक)।

**उर्व** **पद्म** १.४१.७१ (ब्रह्मर्षि-पुत्र, ब्रह्मचर्य व्रत धारी उर्व का देवों द्वारा पुत्र उत्पन्न करने के आग्रह पर उरु रूपी अरणि मन्थन से और्व अग्नि को प्रकट करना, हिरण्यकशिपु को और्वी माया प्रदान करना), **मत्स्य** ५०.८५ (पुरञ्जय-पुत्र, तिग्मात्मा-पिता, अधिसोमकृष्ण-वंश)।

द्र. ऊर्व, और्व।

**उर्वशी** **कूर्म** १.२३ (उर्वशी का राजा दुर्जय के साथ रमण, राजा को अपने घोर रूप के दर्शन कराना), **देवीभागवत** १.१३.६ (उर्वशी-पुरूरवा कथा), ४.६.३४ (इन्द्र व अप्सराओं के गर्व हरणार्थ नारायण द्वारा ऊरु से उर्वशी को प्रकट करके इन्द्र को भेंट करना), **नारद** २.६३.१४२ (प्रयाग में उर्वशी पुलिन/सरोवर पर प्राण त्याग का माहात्म्य), **पद्म** १.१२.६८ (पुरूरवा द्वारा उर्वशी की केशी दानव से रक्षा, उर्वशी द्वारा अभिनय में लक्ष्मी रूप धारण, नृत्य में त्रुटि पर भरत द्वारा उर्वशी को शाप, उर्वशी द्वारा पुरूरवा से ८ पुत्रों की उत्पत्ति), **ब्रह्म** १.१२०.१०४ (उर्वशी का सिद्ध से संवाद, मूर्ख ब्राह्मण से मिलन व संवाद, वृद्धा रूप धारण करके ब्राह्मण को शर्करा शकट प्रदान करना, ब्राह्मण का अगले जन्म में पुरूरवा बनना), **ब्रह्माण्ड** १.२.२३.१८ (सह व सहस्य मास में सूर्य रथ में उर्वशी व पूर्वचित्ति अप्सराओं की स्थिति), २.३.६६.१ (उर्वशी-पुरूरवा की संक्षिप्त कथा), **भागवत** २.३.६ (पत्नी प्राप्ति की कामना पूर्ति हेतु उर्वशी की आराधना का विधान), ९.२१.३५ (उर्वशी दर्शन से शरद्वान के वीर्य का स्खलन, कृप व कृपी का जन्म), ११.२६.४ (उर्वशी द्वारा पुरूरवा के परित्याग पर पुरूरवा को वैराग्य बोध उत्पन्न होना), १२.११.४१ (सह/मार्गशीर्ष मास में सूर्य रथ व्यूह में उर्वशी की स्थिति), **मत्स्य** २४.२७ (पुरूरवा पर अनुराग के कारण नृत्य में त्रुटि पर भरत मुनि द्वारा उर्वशी को भूतल पर सूक्ष्म लता बनने का शाप, पुरूरवा-उर्वशी कथा, आठ पुत्रों के नाम), ६१.२६ (तपोरत नारायण से उर्वशी की उत्पत्ति, वरुण व मित्र की उर्वशी पर आसक्ति, उर्वशी द्वारा वरुण को चित्त प्रदान करने पर मित्र द्वारा उर्वशी को शाप, मित्रावरुण वीर्य से वसिष्ठ व अगस्त्य मुनियों का जन्म आदि), ६९.५९ (आभीरी कन्या का भीम द्वादशी व्रत से अगले जन्म में उर्वशी बनना), **वा. रामायण** ७.५६.१ (उर्वशी द्वारा वरुण को अपना हृदय और मित्र को देह दान करने पर मित्र द्वारा उर्वशी को भूतल पर जाने का शाप), **वराह** १४१.५२ (उर्वशी कुण्ड माहात्म्य), **वामन** ७.४ (उर्वशी की नर-नारायण से उत्पत्ति व इन्द्र के आधीन होना), **वायु** ९१/२.२९.१ (उर्वशी-पुरूरवा कथा, ६ पुत्रों के नाम), **विष्णु** ४.६.३४ (उर्वशी-पुरूरवा कथा, ६ पुत्रों के नाम), **विष्णु धर्मोत्तर** १.११७.२५ (उर्वशी दर्शन से मित्रावरुण का वीर्य स्खलन, अगस्त्य व वसिष्ठ की उत्पत्ति), १.१२९.१२ (नारायण की ऊरु से उर्वशी की उत्पत्ति का प्रसंग), १.१३०.१ (इला-पुत्र पुरूरवा के सम्बन्ध में उर्वशी का रम्भा से संवाद), १.१३१.१ (उर्वशी का रम्भा के साथ पुरूरवा के क्रीडावन में अवतरण), १.१३२.१ (रम्भा द्वारा क्रीडावन में स्थित वृक्षों की उर्वशी के अंगों से उपमा), १.१३३.१ (पुरूरवा की उर्वशी पर आसक्ति का वर्णन, पुरूरवा व उर्वशी का मिलन, ५ पुत्रों के नाम), ३.३५.१ (नारायण द्वारा सबसे पहले चित्र रूप में उर्वशी की कल्पना, तत्पश्चात् विश्वकर्मा द्वारा उर्वशी का निर्माण), **स्कन्द** १.२.१३.१७४ (शतरुद्रिय प्रसंग में उर्वशी द्वारा शिव के सिन्दूर निर्मित लिङ्ग की पूजा), २.३.७.५८ (नर-नारायण आश्रम में उर्वशी की उत्पत्ति की कथा),

२.८.७.८५ (उर्वशी द्वारा रैभ्य मुनि के तप में विघ्न, कुरूपता शाप प्राप्ति, अयोध्या स्नान से मुक्ति), ३.१.२८ (पुरूरवा से मिलन, वियोग, पुनः मिलन, तुम्बुरु का शाप आदि), ५.१.८ (नारायण से उर्वशी की उत्पत्ति की कथा), ५.३.१७२.१४ (उर्वशी द्वारा शम्बर राक्षस को दिए गए शाप का कथन), ५.३.१९८.८७ (बदरी तीर्थ में उमा की उर्वशी नाम से स्थिति का उल्लेख), ७.४.१७.२१ (द्वारका के दक्षिण द्वार पर उर्वशी की स्थिति का उल्लेख), **हरिवंश** १.२६.४ (पुरूरवा-उर्वशी कथा), **लक्ष्मीनारायण** १.८९.१७ (इन्द्र सभा में उर्वशी के नृत्य काल में इन्द्र द्वारा बृहस्पति का तिरस्कार तथा शाप प्राप्ति), १.२०८.६७ (इन्द्र के गर्व नाशार्थ नारायण द्वारा आम्र मंजरी से ऊरु का मन्थन करके उर्वशी को प्रकट करना, इन्द्र द्वारा उर्वशी की याचना, उर्वशी के उत्पत्ति स्थल उर्वशी कुण्ड में स्नान का माहात्म्य), १.२०९.३९ (बदरी तीर्थ में उर्वशी संगम तीर्थ की स्थिति), १.२५५.८१ (पुत्रदा एकादशी व्रत प्रभाव से पुरूरवा को उर्वशी से पुत्रों की प्राप्ति), १.४३३ (उर्वशी के पूर्व जन्मों का वृत्तान्त : पतिद्रोही ब्राह्मणी का सौ बार शुनी रूप में जन्म, अंतिम शुनी जन्म में सोपान पर बैठी शुनी पर कृष्ण पूजा जल से अभिषेक पर शुनी को जाति ज्ञान उत्पन्न होना व नारायण-सुता बनना), २.९८ (उर्वशी द्वारा अनासक्त सनत्सुजात मुनि को मार्जारी बनने का शाप, सनत्सुजात द्वारा उर्वशी को चक्रवाकी बनने का शाप), २.१०० (चक्रवाकी रूप धारी उर्वशी की शिवराज-पुत्री लक्ष्मी से भेंट, माता लक्ष्मी के पिंजरे में वास करना), २.१०४ (लक्ष्मी व चक्रवाकी का तप हेतु हिमालय पर हनुमान आश्रम में गमन व तप), २.१०५ (चक्रवाकी द्वारा पिता नारायण के दर्शन, नारायण से केवल शृंग पर स्थित जल पीने का हठ, नारायण द्वारा अन्ततः शृंग पर जल उपलब्ध कराना, मुक्ति, शृंग द्वारा उर्वशी शृंग नाम प्राप्ति), २.२३०.६ (उर्वशी का आम्रजानी से तादात्म्य), **कथासरित्** ३.३.५ (पुरूरवा-उर्वशी कथा)।

द्र. पुरूरवा।

**टिप्पणी-** ऋग्वेद १०.९५ सूक्त पुरूरवा व उर्वशी के वार्तालाप से सम्बन्धित है जिसका आरंभिक पद हये जाये मनसा तिष्ठ घोरे इत्यादि है (पुराणों में अधिकांश स्थानों पर हये जाये के स्थान पर अये जाये पाठ किया गया है)। ऋग्वेद के इस सूक्त की व्याख्या का प्रयत्न शतपथ ब्राह्मण ११.५.१.१, बौधायन श्रौत सूत्र १८.४४ तथा बृहद् देवता ७.१४७ में किया गया है। इन ग्रन्थों में उपलब्ध पुरूरवा-उर्वशी की कथा तथा पुराणों की कथा में पर्याप्त साम्य है। उर्वशी-पुरूरवा आख्यान को समझने की कुंजी हमें मैत्रायणी संहिता ३.९.५ से प्राप्त होती है जहां उर्वशी को वाक् तथा पुरूरवा को प्राण कहा गया है। इनके मिथुन से आयु रूपी पुत्र का जन्म होता है। वैदिक साहित्य में वाक् और प्राण के मिथुन के व्यापक उल्लेख मिलते हैं। बृहदारण्यक उपनिषद ५.८.१ के अनुसार वाक् धेनु है, प्राण ऋषभ है और मन इनका वत्स है (इसके विपरीत, बृहदारण्यक उपनिषद १.४.१७ तथा १.५.७ में वाक् को माता, मन को पिता और प्राण को प्रजा कहा गया है)। शतपथ ब्राह्मण १४.४.१.२३ में वाक् को ब्रह्म कहा गया है जिसका पति प्राण रूपी ब्रह्मणस्पति है। शतपथ ब्राह्मण ४.१.१.९ तथा ६.३.१.१९ में भी प्राण को वाचस्पति कहा गया है। यदि उर्वशी-पुरूरवा आख्यान की व्यावहारिकता पर ध्यान दिया जाए तो उर्वशी व पुरूरवा के मिथुन से, अथवा वाक् और प्राण के मिथुन से वास्तविक प्राप्ति आयु की होती है, अमृत आयु की होती है। वैदिक साहित्य में उल्लेख आता है कि यह कैसे पता लगेगा कि आयु की प्राप्ति हो गई है? इसका चिह्न यह है कि अशना/क्षुधा व पिपासा का शमन हो जाएगा। अशना व पिपासा की अनुभूति प्राण अथवा श्वास द्वारा होती है। यदि पुरूरवा रूपी प्राण का संयोग उर्वशी रूपी वाक् से हो जाए तो अमृत आयु की प्राप्ति हो सकती है। शतपथ ब्राह्मण १.४.१.२ का परोक्ष कथन है कि वाक् और प्राण मिलकर ओंकार को, प्रणव को अभिव्यक्त करने का प्रयत्न कर रहे हैं। यह ओंकार ही अमृतत्व लाता है। ओंकार की अभिव्यक्ति करने वाली वाक् का स्वरूप कैसा होगा, यह उर्वशी के माध्यम से चित्रित किया गया है। यास्क निरुक्त ५.१३में उर्वशी शब्द की ३ निरुक्तियां दी गई हैं-जो उरु को अश्नुत/व्याप्त करती है, जो ऊरुओं द्वारा व्याप्त करती है तथा उरु जिसके वश में है। अतः उर्वशी को समझने के लिए उरु शब्द को सम्यक् प्रकार से समझना आवश्यक होगा। ऋग्वेद १.९३.६, ६.२३.७, ७.३३.५, ७.६०.९, ७.८४.२, ७.९९.४,

१०.१८०.३ आदि में ॐ लोक को उरु बनाने के उल्लेख आए हैं। इसके अतिरिक्त, अथर्ववेद १०.७.३५ आदि में उरु अन्तरिक्ष के भी व्यापक उल्लेख आए हैं। शतपथ ब्राह्मण १.२.२.८ में पुरोडाश का उरु प्रथन करने का उल्लेख है। शतपथ ब्राह्मण ४.५.१.१६ आदि में यज्ञ या विष्णु को उरु करने का निर्देश है। तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.११.७.४ के अनुसार जो लोक सूर्य से नीचे हैं, वह उरु हैं और अन्तवान हैं, जबकि वह लोक जो सूर्य से परे हैं, वह वरीय और अनन्तवान हैं। उरु का साधारण अर्थ महत्, विस्तीर्ण आदि किया जाता है। लेकिन आधुनिक भौतिक विज्ञान में अनिश्चितता के सिद्धांत ($\Delta p \Delta x = \lambda$) को ध्यान में रखते हुए यह सोचने की आवश्यकता है कि उरु/महत् का यह विकास ऊर्जा के सापेक्ष है अथवा स्थान के सापेक्ष? आधुनिक ठोस अवस्था भौतिक विज्ञान के अनुसार यदि द्रव्य सूक्ष्म अवस्था में हो और उसके घटकों की गति( momentum )को स्थान के सापेक्ष सीमित कर दिया जाए तो उस द्रव्य के घटकों के ऊर्जा तल परस्पर मिलकर एक व्यापक ऊर्जा पट्ट का निर्माण कर लेते हैं (उदाहरण के लिए देखें 'फिजिकल प्रिंसिपल्स आफ मैग्नीटिज्म', ले. ब्राइल्सफोर्ड (डी० वान नोर्स्ट्रेण्ड कम्पनी, लंदन, १९६६), पृ.६९)। वैदिक साहित्य में इस स्थिति को उरु कहा गया है। उरु स्थिति में घटकों के ऊर्जा तलों का अपना कोई अस्तित्व नहीं है, सब ऊर्जा तल एक साथ मिलकर काम कर रहे हैं। पुराणों में इस स्थिति का स्पष्टीकरण सह शब्द द्वारा किया गया है-यहां सब ऊर्जा तल एक दूसरे का सहयोग कर रहे हैं। पुराणों में नारायण से उर्वशी की उत्पत्ति की कथा में सहकार शब्द का चुपचाप समावेश कर दिया गया है। इसके अतिरिक्त सूर्य रथ में उर्वशी की स्थिति भी सह मास में ही कही गई है। डा. फतहसिंह के अनुसार सह स्थिति विज्ञानमय कोश में होती है। ऋग्वैदिक ऋचा हये जाये मनसा तिष्ठ घोरे इत्यादि से प्रतीत होता है कि वेद का ऋषि विज्ञानमय कोश की सह स्थिति को मनोमय कोश में अवतरित कराना चाहता है।

लक्ष्मीनारायण संहिता में उर्वशी को पूर्व जन्म में शुनी कहा गया है जो गृह में सोपान/सीढ़ी पर बैठी रहती है। वैदिक साहित्य में वाक् को पदों वाली कहा गया है (गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी। अष्टापदी नवपदी बभूवुषी सहस्राक्षरा परमे व्योमन्।।– ऋ. १.१६४.४१)। ऐसा हो सकता है कि वाक् के इन पदों का चित्रण सोपान से किया गया हो। जब वाक् उर्वशी बनेगी तो यह सब पद मिलकर एक हो जाएंगे। पुराणों में जो उर्वशी कुण्ड का व्यापक उल्लेख है, वह वाक् की विज्ञानमय कोश में स्थिति का, वाक् समुद्र का प्रतीक हो सकता है।

उर्वशी-पुरूरवा आख्यान के संदर्भ में पुरूरवा शब्द की व्याख्या उणादि कोश ४.१२२ में पुरु-रौति अर्थात् जो बहुत से शब्द करता है, के रूप में की गई है। चूंकि मैत्रायणी संहिता ३.९.५ में पुरूरवा को प्राण का प्रतीक कहा गया है, अतः यह कहा जा सकता है कि यदि प्राण विज्ञानमय कोश के वाक्-समुद्र से ऊर्जा ग्रहण करने में समर्थ हो जाए तो अमृत आयु की प्राप्ति हो सकती है। यह उल्लेखनीय है कि कई वैदिक ऋचाओं में उरु और पुरु शब्दों का साथ- साथ उल्लेख आया है (ऋग्वेद ६.६२.१, ८.२५.१६ तथा ५.७०.१)। पुरु को इस देह रूपी पुर तक सीमित प्राण मान सकते हैं जबकि उरु को ब्रह्माण्ड में व्याप्त ऊर्जा या वाक्। पुरूरवा-उर्वशी कथा के शेष तथ्यों की व्याख्या अन्वेषणीय है।

पौराणिक साहित्य में उर्वशी के दर्शन से मित्रावरुण के वीर्य स्खलन और वसिष्ठ व अगस्त्य मुनियों की उत्पत्ति के सार्वत्रिक आख्यान के संदर्भ में ऋग्वेद ७.३३.११ दृष्टव्य है। पुराणों में सह व सहस्य मास में सूर्य रथ में उर्वशी व पूर्वचित्ति अप्सराओं की उपस्थिति का सार्वत्रिक उल्लेख आता है। शतपथ ब्राह्मण ८.६.१.११ तथा तैत्तिरीय संहिता ४.४.३.२ आदि में इस आख्यान का रूप यह है कि नाकसद् इष्टि, जो आत्मा का प्रतीक है, के पश्चात् पंचचूडा इष्टि की जाती है जो प्रजा का, अतिरिक्त ऊर्जा का प्रतीक है। अतः यह कहा जा सकता है कि पुराणों में सूर्य रथ अतिरिक्त ऊर्जा का प्रतीक है, जबकि स्वयं सूर्य आत्मा का प्रतीक हो सकता है। कुछ भाष्यकारों ने यह कहने का प्रयत्न किया है कि उर्वशी व पुरूरवा के जो ६ या ८ पुत्र कहे जाते हैं, वह पंचचूडा अप्सराओं और पुरूरवा के पुत्र हैं। शतपथ ब्राह्मण ८.६.१.२० में उर्वशी व पूर्वचित्ति अप्सराओं को आहुति व दक्षिणा कहा गया है। उर्वशी के आहुति नामकरण की व्याख्या अपेक्षित है। भागवत पुराण में पुरूरवा की वैराग्योक्ति में तो इन्द्रियों में विषयों की आहुति से काम के प्रज्वलित होने का उल्लेख आता है, जबकि वास्तव में आहुति से देवों का आह्वान किया जाता है। पुराणों में नारायण ऋषि द्वारा पहले चित्र रूप में उर्वशी की कल्पना का उल्लेघ आता है। हो सकता है कि यह चित्र चित्त/चित्ति और पूर्वचित्ति से सम्बन्धित हो। यह भी

अन्वेषणीय है कि पुराणों के मित्रावरुण आख्यान में उर्वशी द्वारा वरुण को चित्त/हृदय तथा मित्र को तनु दान से क्या तात्पर्य है?

यह महत्वपूर्ण है कि अग्निहोत्र आदि किसी भी कर्मकाण्ड में उर्वशी-पुरूरवा आख्यान की उपेक्षा नहीं की जा सकती क्योंकि उर्वशी की प्राप्ति के लिए ही पुरूरवा ने अग्नि को गार्हपत्य, आहवनीय आदि नामों से त्रेधा विभाजित किया था। अग्नि के यह तीन रूप कर्मकाण्ड के अभिन्न अंग हैं।

**उर्वीश** **पद्म** ७.१९ (उर्वीशु : भ्रष्ट ब्राह्मण, विष्णु को शकट दान से मुक्ति), **ब्रह्माण्ड** ३.४.४४.४९ (लिपि मातृका न्यास प्रसंग में एक स्वर के देवता का नाम)।

**उलूक** **कूर्म** २.३४.११(उलूक आदि के मांस भक्षण पर प्रायश्चित्त कथन : सान्तपन व्रत), **गरुड** १.१७७.७४ (वैर उपन्न करने के लिए उलूक व कृष्ण काक के रुधिर से सिक्त समित् का होम करने का निर्देश), **नारद** १.३०.८१ (उलूक आदि के वध पर प्रायश्चित्त कथन : द्वादशाह अभोजन), **पद्म** १.६.६३ (शुकी-पुत्र), १.३७.६६ (गृध्र द्वारा उलूक के निवास पर अधिकार, राम द्वारा उलूक के पक्ष में निर्णय), ३.५६.३३ (उलूक आदि के भक्षण का निषेध), **ब्रह्म** २.५५ (अग्नि-उपासक उलूक का यम-उपासक कपोतों से युद्ध, उलूक द्वारा यम-उपासना तथा कपोतों द्वार अग्नि-उपासना से शांति), **ब्रह्माण्ड** २.३.७.४५५ (गरुड व भासी से उलूक जाति की उत्पत्ति), २.३.६३.२०५ (बल-पुत्र, वज्रनाभ-पिता, कुश वंश), ३.४.२८.६, ३.४.२८.३८ (उलूकजित् : भण्ड-भगिनी धूमिनी के १० पुत्रों में से एक, भण्डासुर-सेनानी, अश्वारूढा देवी से युद्ध व मृत्यु), **मत्स्य** ६.१४ (हिरण्याक्ष के ४ पुत्रों में से एक), १४८.८९ (यक्षों की ध्वजा पर ताम्र उलूक चिह्न), २३७.१२ (नृपद्वार व गृह में उलूक दर्शन का फल : गृहपति की मृत्यु), **मार्कण्डेय** ५१.६९ (शकुनि-पुत्र, निर्ऋति द्वारा उलूक को ग्रहण करना), **लिङ्ग** १.८९.४६ (उलूक आदि की हत्या पर प्रायश्चित्त कथन: १०८ बार प्रणव जप), २.३.२१ (नारद का गानविद्या प्राप्ति हेतु गानबन्धु नामक उलूक से अनुरोध, उलूक द्वारा नारद को भुवनेश राजा व हरिमित्र ब्राह्मण के वृत्तांत का कथन, उलूक द्वारा नारद से गुरु दक्षिणा में चिरंजीविता प्राप्ति), **वराह** ८१.२ (उलूक आदि ३ विद्याधरों का वेणुमान पर्वत पर वास), २००.३० (नरक में वैतरणी नदी में स्थित उलूकों का घोर स्वरूप), **वायु** २३.२१३/१.२३.२०४ (२७ वें द्वापर में हरि-अवतार सोमशर्मा के ४ पुत्रों में से एक), ३९.३८ (उलूक विद्याधर का वेणुमान पर्वत पर वास), **विष्णु धर्मोत्तर** २.१४३.१४ (उलूक के शब्द करने अथवा घर में पतन पर मृत्यु से बचने का उपाय : देवाः कपोत इति सूक्त का जप), **शिव** ३.५.४० (२६ वें द्वापर में सहिष्णु नामक शिव अवतार के ४ शिष्यों में से एक), ३.५.४२ (२७ वें द्वापर में सोमशर्मा नामक शिव अवतार के ४ शिष्यों में से एक), ७.२.९.२० (शिव के योगाचार्य शिष्यों में से एक), **स्कन्द** १.२.८.२० (प्राकारकर्ण नामक दीर्घजीवी उलूक का राजा इन्द्रद्युम्न से वार्तालाप : घण्ट नामक ब्राह्मण का शाप से उलूक बनना आदि), ४.२.५१.४ (विनता का ज्येष्ठ पुत्र, निर्गुणता के कारण राज्य से च्युति), ५.३.१५९.२२ (क्रयवंचन से उलूक योनि प्राप्ति का उल्लेख), ६.२७१.१३७ (प्राकारकर्ण नामक दीर्घजीवी उलूक का इन्द्रद्युम्न से संवाद : घण्टक नामक ब्राह्मण का भार्गव-शाप से उलूक बनने का वृत्तांत आदि), **हरिवंश** २.३५.४५ (शकुनि-पुत्र उलूक द्वारा जरासंध-सेनानी रूप में मथुरा के पूर्व द्वार पर आक्रमण), २.४२.३४ (उलूक आदि द्वारा गोमन्त पर्वत के पूर्व भाग पर आक्रमण), **योगवासिष्ठ** १.१७.१ (तृष्णा के कारण चेतनाकाश में दोषों रूपी कौशिक पंक्तियों के स्फुरण का उल्लेख), ६.१.७.२० (उलूक की लोभ से उपमा), **लक्ष्मीनारायण** ३.५९ (नारद का गानविद्या प्राप्ति हेतु गानबन्धु नामक उलूक से अनुरोध, उलूक द्वारा नारद को भुवनेश राजा व हरिमित्र ब्राह्मण के वृत्तान्त का कथन, उलूक द्वारा नारद से गुरु दक्षिणा में चिरंजीविता प्राप्ति), **कथासरित्** ६.७.१०७ (मूषक द्वारा उलूक व नकुल से स्वयं की रक्षा के लिए मार्जार से क्षणिक मित्रता की कथा), ८.२.३७८ (उलूक नामक

दनु-पुत्र का सूर्यप्रभ/मय? के मन्त्री शुभंकर रूप में अवतरण), १०.६.७ (उलूकराज अवमर्द के राज्याभिषेक में काकों द्वारा विघ्न पर उलूकराज की काकों से शत्रुता, काकराज मेघवर्ण के मन्त्री चिरजीवी द्वारा युक्तिपूर्वक उलूकों को नष्ट करना), **महाभारत** सौप्तिक १.३७ (अश्वत्थामा द्वारा रात्रि में उलूक द्वारा काकों के संहार का दृश्य देखकर रात्रि में ही पाण्डव-पुत्रों के संहार का निश्चय करना), शान्ति १३८.३३ (पलित नामक मूषक द्वारा अपने शत्रु चन्द्रक नामक उलूक को देखने पर मार्जार से मित्रता की कथा)

**टिप्पणी-** तैत्तिरीय आरण्यक ४.३३ में हिरण्य अक्ष व अयोमुख वाले उलूक का उल्लेख आता है जो राक्षसों का दूत है और जिसके नाश की अग्नि से प्रार्थना की गई है। महाभारत में शकुनि/कितव-पुत्र उलूक का वर्णन आता है जो दुर्योधन का दूत बन कर पाण्डवों के पास जाता है। महाभारत युद्ध में सहदेव द्वारा उलूक का वध होता है। दूसरी ओर अश्वत्थामा सुप्त पाण्डव-पुत्रों के वध की प्रेरणा उलूक से प्राप्त करता है। यह संकेत करता है कि उलूक के गौ और अश्व अथवा अक्ष साधना और अश्व साधना, इस प्रकार दो पक्ष हैं। कितव-पुत्र उलूक अक्ष या एकान्तिक साधना से संबंधित है। अथर्ववेद के अनुसार अक्षों से कितव न करे। तैत्तिरीय आरण्यक के अनुसार अक्ष साधना की पराकाष्ठा हिरण्य अक्ष हो सकती है। सहदेव, जो उलूक का वध करता है, गायों का विशेषज्ञ है। दूसरी ओर, अश्वत्थामा को अश्व साधना का प्रतीक माना जा सकता है। उसे शत्रु नाश के लिए उलूक रूपी गौ साधना का आश्रय लेना पड़ता है। साधना के गौ और अश्व रूपों का उपयोग पुराणों में उलूक से सम्बन्धित कथाओं की व्याख्या के लिए भी किया जा सकता है। स्कन्द पुराण की कथा के अनुसार उलूक घण्ट नामक ब्राह्मण था जिसे अपनी वासनाओं के कारण शापवश निशाचारी उलूक बनना पड़ा। गीता २.६९ के अनुसार जो सब भूतों के लिए रात्रि है, उसमें संयमी पुरुष जागता है। यही स्थिति उलूक की है। वह अवलोकन करता है कि उसकी चेतना में कहां-कहां काक रूपी कालिमा है जो सुप्त है। प्रत्येक अक्ष/इन्द्रिय से कालिमा को समाप्त करना होगा, तभी वह हिरण्य अक्ष बन सकेगा। इसे गौ साधना या एकान्तिक साधना कहा जा सकता है।

लिङ्ग पुराण में गानबन्धु नामक उलूक द्वारा राजा भुवनेश को अपनी देह का भक्षण करते हुए देखने के पश्चात् हरिमित्र नामक ब्राह्मण से संगीत की शिक्षा लेने आदि की कथा में राजा भुवनेश एकान्तिक साधना का प्रतीक है। भुवनेश, जो केवल अपना ही गुणगान चाहता है, अहं ब्रह्मास्मि की स्थिति हो सकती है। जैसा कि ईश की टिप्पणी में कहा जा चुका है, अपनी वासनाओं को वसु बनाना ही ईश बनना है। दूसरी ओर हरिमित्र ब्राह्मण विष्णु का, यज्ञ का गुणगान करता है। यह सार्वत्रिक साधना, सारे जीवन को विष्णुमय या यज्ञमय बनाने की साधना, अश्व साधना है।

ब्रह्म पुराण में उलूकों व कपोतों के वैर और मित्रता की कथा का स्रोत ऋग्वेद १०.१६५ सूक्त है जिसकी व्याख्या अपेक्षित है। पुराणों में इसी सूक्त का विनियोग यजमान के गृह पर उलूक के बोलने पर, जो मृत्यु का सूचक है, किया गया है। ऐसी संभावना है कि उलूक समाधि से पूर्व की अवस्था है और कपोत समाधि से व्युत्थान पर आनन्द की अवस्था है। शिव पुराण ५.२६.४० में शब्द अथवा नाद के घोष, कांस्य, शृङ्ग, घण्टा, वीणा, दुन्दुभि आदि ९ प्रकारों का उल्लेख है। ऐसा हो सकता है कि उलूक के गृह पर आकर बोलने से तात्पर्य निम्न कोटि का शब्द करने से हो। तैत्तिरीय आरण्यक में तो हिरण्याक्ष और अयोमुख वाले उलूक को राक्षसों का दूत कहा गया है जिसके नष्ट होने की कामना की गई है। यहां अयोमुख से तात्पर्य निम्न कोटि का शब्द करने से हो सकता है। पैप्पलाद संहिता २०.५९.५ में क्रमशः इन्द्र, सूर्य, सोम, बृहस्पति, प्रजापति, निर्ऋति,, वरुण, यम व मृत्यु द्वारा प्रेषित उलूकों का उल्लेख आता है जो कृष्ण त्वचा को नष्ट करते हैं।

लोक में उलूक के लक्ष्मी का वाहन होने का कथन प्रचलित है। इसकी व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है कि उलूक वासनाओं को वसुओं में, धन में रूपांतरित कर सकता है। ऐसा पक्षी लक्ष्मी का वाहन होने योग्य है।

उलूक के पास ऐसा कौन सा शस्त्र है जिससे वह वासनाओं को नष्ट कर सके? शिव पुराण के अनुसार तो घोष, कांस्य आदि शब्दों में ही वह शक्ति है जो शत्रुओं को नष्ट कर देती है। महाभारत में अश्वत्थामा उलूक बनकर रुद्र से असि ग्रहण करता है जिससे वह सुप्त पाण्डव-पुत्रों का नाश करता है। असि शब्द की व्याख्या के लिए असि पर टिप्पणी दृष्टव्य है। उलूक के संदर्भ में असि का क्या महत्व है, यह विचारणीय है। असि को संवत्सर में १३ वें मास अथवा

चन्द्रमा का रूप कहा गया है। महाभारत में पलित मूषक के संदर्भ में उलूक का चन्द्रक नाम आया है। हो सकता है कि शब्द ब्रह्म की साधना चन्द्र साधना के अन्तर्गत आती हो। उलूक को दिवान्ध कहा गया है। यह कथन भी उलूक के चन्द्रमा से सम्बन्धित होने की पुष्टि करता है।

पद्म पुराण में वनस्पतियों पर उलूक के राज्य की कथा के संदर्भ में, मैत्रायणी संहिता ३.१४.४ में भी वनस्पतियों के लिए उलूक के आलभन का उल्लेख आता है। अरण्य में वनस्पति की चरम परिणति मधु उत्पन्न करने में है। अतः हो सकता है कि उलूक की चरम परिणति भी मधुमान अवस्था उत्पन्न करने में हो।

उणादिकोश ४.४१ में उलूक शब्द की निरुक्ति वलेरूकः के रूप में की गई है जिसकी सम्यक् व्याख्या अपेक्षित है।

आश्वलायन श्रौत सूत्र ३.३.१, शांखायन श्रौत सूत्र ५.१७.९, तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.६.६.३, ऐतरेय ब्राह्मण २.७ आदि के अनुसार यज्ञ में पशु को काटने वाले शामित्र को निर्देश दिया जाता है कि इस पशु की वनिष्ठु/बडी आन्त्र को उरूकं मानकर काटना मत। इस कथन की सम्यक् व्याख्या अपेक्षित है।

उलूक की व्याख्या के लिए ऋग्वेद और अथर्ववेद में उ लोक शब्द पर भी विचार करना होगा (तुलनीय : लिङ्ग पुराण में उलूक हत्या के प्रायश्चित्त रूप में प्रणव जप का निर्देश)। वैदिक ऋचाओं में जहां-जहां उ अक्षर स्वतन्त्र रूप से प्रकट हुआ है उसका अर्थ सायण ने छन्द के अक्षर पूरा करने के लिए प्रयुक्त निरर्थक अक्षर के रूप में किया है, लेकिन पद-पाठकार ने उ का अर्थ ऊँ किया है। इस ऊँ की अभिव्यक्ति सर्वत्र हो, उ लोक का यह अर्थ लिया जा सकता है। ऋग्वेद २.४१.७ में ऊँ सु के साथ गौ और अश्व का साथ-साथ उल्लेख आया है, अतः यह कल्पना की जा सकती है कि ओंकार की साधना के दो पक्ष हैं-गौ और अश्व। ऋग्वेद ४.५१.२ में ऊँ व्रज का उल्लेख है। व्रज गौ के निवास स्थान को कहते हैं। अत यह गौ पक्ष से सम्बन्धित ओंकार साधना हुई। ऋग्वेद ७.३५.१२ में भी ऊँ गावः का उल्लेख है। दूसरी ओर, ऋग्वेद ७.३५.७, ७.४२.२, ७.६१.६ व १०.८८.६ में ऊँ यज्ञ का उल्लेख आया है। यह ऊँ के अश्व रूप का प्रतीक हो सकता है।

**उलूकी** **भविष्य** १.४२.२८ (उलूकी के गर्भ से उत्पन्न कणाद मुनि का तप से ब्राह्मण होने का उल्लेख), **भागवत** २.७.२७ (कृष्ण द्वारा बाल्यावस्था में उलूकी के वध का उल्लेख,पूतना का नाम), **मत्स्य** १७९.१५ (अन्धकासुर का रक्तपान करने के लिए शिव द्वारा सृष्ट मातृकाओं में से एक), **स्कन्द** ४.१.४.४० (भर्ता को त्याग जार का संग करने पर प्राप्त योनि), ४.१.४५.३५ (६४ योगिनियों में से एक)।

**उलूखल** **अग्नि** ७७.१७ (उलूखल पूजा विधि में उलूखल के रौद्रिका व गिरिका नामों का उल्लेख), **गरुड** १.१०७.३३ (मृत पुरुष की देह के पार्श्व में उलूखल रखने का विधान), **गर्ग** १.१९ (यशोदा द्वारा श्रीकृष्ण का उलूखल-बन्धन व यमलार्जुन के उद्धार की कथा), **ब्रह्मवैवर्त्त** ४.१४.११ (वृक्ष से बद्ध कृष्ण द्वारा वृक्ष के पात की कथा; तुलनीय : यमलार्जुन कथा), **ब्रह्माण्ड** १.२.३५.५२ (उलूखलक : सामवेद की २४ शाखाएं करने वाले कृत मुनि के शिष्यों में से एक), २.३.७.३७८ (उलूखल व उलूखली : कपिशा द्वारा उत्पन्न पिशाच मिथुनों में से एक), २.३.७.३९३ (उलूखल गण के पिशाचों के स्वरूप का कथन), **भागवत** १०.९.८ (कृष्ण द्वारा उल्टी उलूखल पर खडे होकर माखन खाने का उल्लेख), १०.९.१४ (यशोदा द्वारा कृष्ण को उलूखल से बांधने का उद्योग, दाम/रज्जु के छोटी पड़ने व यमलार्जुन के उद्धार की कथा), ११.१८.५ (वानप्रस्थी के लिए उलूखल में कूटे धान्य के भक्षण अथवा दन्त-उलूखल द्वारा भक्षण का निर्देश), **मत्स्य** ७.३८ (मरुतों को गर्भ में धारण करने वाली दिति के लिए कश्यप द्वारा उलूखल पर बैठने का निषेध), **वामन** ५७.९५ (उलूखलमेखला : बदरिकाश्रम द्वारा स्कन्द को प्रदत्त गणों में से एक), ५८.६९ (उलूखल देवी द्वारा तारक असुर पर प्रहार का उल्लेख), **वायु** ६१.४६ (उलूखलक : सामवेद शाखा के प्रवर्तक कृत के शिष्यों में से एक), ६९.२६० (उलूखल व उलूखली : कपिशा द्वारा उत्पन्न पिशाच मिथुनों में से एक मिथुन), ६९.२६४/२.८.२५४ (उलूखलिक : पिशाचों के १६ गणों में से एक), ६९.२७४/२.८.२६८ (उदूखलिक गण के पिशाचों के स्वरूप का कथन), ७५.२८/२.१३.२८

(पिण्ड दान काल में दोनों हाथों द्वारा जल से उलूखल का लेखा चित्र बनाने का विधान), **विष्णु** ५.६.१४ (उलूखल में बंधे कृष्ण द्वारा यमलार्जुन के उद्धार की कथा), **हरिवंश** २.७.१४ (कृष्ण द्वारा यमलार्जुन के उद्धार की कथा), **लक्ष्मीनारायण** १.३२२.१३६ (सती के उलूखल आदि पर बैठने का निषेध)।

**महाभारत** वन १२९.८ (प्रसर्पण तीर्थ में उलूखल के आभरणों वाली पिशाची द्वारा स्त्री को अद्भुत श्लोक का कथन), कर्ण ४४.४४ (उलूखल मेखला धारण करने वाली राक्षसी द्वारा तीर्थयात्री से अद्भुत श्लोक का कथन)।

**टिप्पणी**– वैदिक साहित्य में उलूखल और मुसल यज्ञ आयुधों के पांच मिथुनों में से एक है (शतपथ ब्राह्मण १.१.१.२२)। यज्ञ में उलूखल का उपयोग इस प्रकार किया जाता है कि पृथिवी पर कृष्णाजिन बिछाकर उस पर उलूखल को रखा जाता है (शतपथ ब्राह्मण १.१.४.१)। कृष्णाजिन के संदर्भ में कहा गया है कि यज्ञ कृष्ण बन कर देवों से दूर चला गया। तब देवों ने उसका चर्म ग्रहण कर लिया। यह कृष्णाजिन पृथिवी पर बिछाने से पृथिवी की, अदिति की त्वचा का कार्य भी करता है। इसके कारण उलूखल व पृथिवी में परस्पर वैर भाव नहीं होता, यह एक दूसरे की हिंसा नहीं करते। कृष्णाजिन बिछाते समय बांये हाथ में कृष्णाजिन पकडा जाता है और दायें हाथ से उलूखल पकडा जाता है। ऐसा इस कारण किया जाता है कि यदि कृष्णाजिन पर उलूखल रखने से पहले ही उलूखल को छोड़ दिया जाए तो कृष्णाजिन में राक्षसों का प्रवेश हो सकता है। कृष्णाजिन पर उलूखल की स्थापना के पश्चात् उलूखल में व्रीहि आदि धान्य डालकर उसे मुसल से कूटा जाता है और कुटे हुए धान्य से भूसी अलग करके तण्डुल को अन्वाहार्यपचन/दक्षिणाग्नि पर पकाकर देवताओं की हवि हेतु ओदन आदि बनाया जाता है। उलूखल में ऐसी क्या विशेषता है जो इसे यज्ञ आयुधों में, राक्षसों को मारने वाले आयुधों में स्थान दिया गया है? उलूखल शब्द की निरुक्ति के संदर्भ में उरु मे कुरु इति कहने से इसका नाम उरुकरं या परोक्ष में उलूखल हुआ (यास्क निरुक्त ९.२० तथा शतपथ ब्राह्मण ७.५.१.२२)। अथवा ऊर्क/अन्न को करने से ऊर्करं/उलूखल हुआ, अथवा ऊर्ध्व खं (उलूखल में ऊपर खात या गड्ढा होता है) होने से उलूखल हुआ। अतः यह कहा जा सकता है कि उलूखल की विशेषता यह है कि यह उरु स्थिति, विस्तीर्ण ऊर्जा की स्थिति लाती है। उलूखल साधना में उरु स्थिति को किस प्रकार प्राप्त किया जाता है, इसका भी संकेत किया गया है। शतपथ ब्राह्मण १.१.४.७ के अनुसार उलूखल पृथुबुध्न वाला ग्रावा/पत्थर है, अर्थात् इसका अधोतल पृथु या चौड़ा है। पृथु शब्द को पुराणों में राजा पृथु आदि की कथाओं के माध्यम से भली भांति समझ लेना होगा। राजा पृथु ने सारी पृथिवी को, जो पर्वतों आदि से भरी पड़ी थी, समतल बनाया, फिर उसे सभी प्रकार के दुग्धों के दोहन के लिए तैयार किया। देवता, ऋषि, गन्धर्व, सर्प, मनुष्य, सभी अपने-अपने हित के दुग्ध का पृथिवी रूपी गौ से दोहन करते हैं। यह पृथु अवस्था ऐसी है जैसे स्थिर जल में ढेला मारने से लहरें उत्पन्न होकर चारों ओर फैल जाती हैं। लेकिन लहरें जैसे-जैसे अपने केन्द्र बिन्दु से दूर जाती हैं, उनकी तीव्रता कम होती जाती है। चेतना की पृथु स्थिति में ऐसा नहीं होगा। सारे शरीर की चेतना में कहीं भी कोई विक्षोभ उत्पन्न हुआ कि वह सारे शरीर में फैल जाएगा। चेतना में यह पृथु अवस्था प्राप्त करना शारीरिक पीडा को समाप्त करने की कुंजी है। चाहे किसी भी प्रकार की पीडा हो, यदि उस पीडा को स्थानिक होने के बदले चेतना में फैलने वाली बना दिया जाए तो पीडा लगभग समाप्त ही हो जाती है। ऐसी चेतना को अदिति, अखंडित शक्ति कह सकते हैं। उपवास में ऐसी स्थिति प्राप्त करने में श्वास का स्थानिक होने के बदले विस्तीर्ण होना अपेक्षित है।। हो सकता है कि विस्तीर्ण/पृथु होने में अस्थि-मज्जा का या शुक्र का भी योगदान हो। चेतना की जो खंडित स्थिति प्राणियों में है,वही हाल जड पदार्थ का भी है। आधुनिक पदार्थ विज्ञान के अनुसार ठोस पदार्थ छोटे-छोटे कणों में विभाजित रहता है तथा उनके बीच की सीमा शक्ति के प्रवाह में बाधा बन सकती है। एक चुम्बकीय पदार्थ, जैसे लौह धातु,में चुम्बकीय शक्ति छोटे-छोटे क्षेत्रों में बंटी रहती है जिन्हें डोमेन कहा जाता है। यह सब पृथु अवस्था से विपरीत चिह्न हैं। और जड पदार्थ के अध्ययन से हमें यह भी ज्ञात होता है कि जड पदार्थ में पृथु अवस्था का अवलोकन ऊर्जा के विभिन्न प्रकारों, जैसे ध्वनि, विद्युत, चुम्बक आदि के दृष्टिकोण से करना होगा। यही तथ्य जीव चेतना पर भी लागू किया जा सकता है। इस प्रकार पृथु अवस्था प्राप्त करना उलूखल की पहली साधना है। इसके पश्चात् ऊर्जा को उरु बनाने का कार्य आरंभ होता है। भौतिक विज्ञान में इसे प्रवर्धन,

एम्प्लीफिकेशन नाम दिया गया है। जैसी ऊर्जा की आवश्यकता हो, जैसे ध्वनि की, उसी का प्रवर्धन यंत्रों के माध्यम से किया जा सकता है। उलूखल की स्थिति में यह उरु स्थिति किस प्रकार प्राप्त की जाती है, यह अन्वेषणीय है। यह उल्लेखनीय है कि उलूखल के पृथुबुध्न ग्रावा होने के साथ ही, मुसल को बृहद् ग्रावा कहा गयाहै (शतपथ ब्राह्मण १.१.४.११)।

चेतना की उलूखल स्थिति प्राप्त हो जाने पर उसका क्या उपयोग हो सकता है? इस संदर्भ में शतपथ ब्राह्मण ७.५.१.२६ व ३८, काठक संहिता २०.७, तैत्तिरीय संहिता ५.२.८.७ आदि का कथन है कि उलूखल योनि स्वरूप है। जैसे योनि में गर्भ का विकास होता है, ऐसे ही उलूखल रूपी योनि में जो कुछ भी रखा जाएगा, उसी का वर्धन या विकास हो जाएगा। शतपथ ब्राह्मण ७.५.१.१ में उलूखल रूपी योनि का उपयोग उखा रूपी उषा या अग्नि के वर्धन के लिए किया गया है। शतपथ ब्राह्मण ७.५.१.२२ में उलूखल को प्राणों की योनि कहा गया है, जैसे शिर प्राणों की योनि है, वैसे ही। शतपथ ब्राह्मण ७.५.१.१२ के अनुसार उलूखल-मुसल की साधना द्वारा विष्णु अन्नाद बनने में, अन्न का भक्षण करने में समर्थ हुए, जैसे अग्नि अन्नाद है। जो कुछ अग्नि में डालो, अग्नि सब खा जाती है (अन्नाद-अर्थात अन्न-अद्/भक्षण)। अतः उलूखल साधना का एक उपयोग तो यह है कि शरीर की चेतना इतनी प्रबल हो, उरु हो कि वह चाहे जिस जड पदार्थ पर, अन्न पर केंद्रित की जाए, उसे ही स्वादिष्ट या मधुर बना दे, उसी में मधु का, परमात्मा का दर्शन करने लगे। दूसरा विकल्प यह है कि पहले अन्न की चेतना को उलूखल में डालकर उरु बनाया जाए और तब उसे ग्रहण किया जाए अथवा देवों को अर्पित किया जाए।

वैदिक साहित्य में, तथा पुराणों में भी, कहीं शिर को, कहीं मुख में दांतों को, कहीं ऊरुओं को, कहीं पैरों को उलूखल का रूप दिया गया है (अथवा वहां उलूखल रखी जाती है)। अतः ऐसा कहा जा सकता है कि शरीर में जहां-जहां भी ऊर्जाओं की योनियां बन सकती हों, वहीं-वहीं उलूखल स्थापित की जा सकती है।

उलूखल रूपी ऊर्जा की उरु स्थिति को सर्वदा बनाए रखना संभव नहीं है, जैसे जड पदार्थ में प्रवर्धित ऊर्जा को अधिक देर स्थिर नहीं रखा जा सकता। इसका उपाय यह किया गया है कि इस उलूखल रूपी ऊर्जा का वर्धन कृष्णाजिन पर, कृष्ण स्थिति पर करो। कृष्ण अर्थात् जिसमें से कोई ऊर्जा बाहर न निकलती हो, जिसमें से ऊर्जा का क्षय न होता हो। पुराणों में संभवतः इसी तथ्य का स्पष्टीकरण उल्टी रखी उलूखल पर चढ़कर कृष्ण द्वारा छींके पर रखे गोरस का भक्षण करने तथा उलूखल से बंध कर यमलार्जुन का उद्धार करने के रूप में किया गया है। छींके पर गोरस का होना बहुत उच्च ऊर्जा की स्थिति में अन्न का स्थित होना हो सकता है जिसे केवल विशेष उपायों द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। कृष्णोपनिषद २१ में उलूखल को कश्यप व रज्जु को माता अदिति कहा गया है। कश्यप अवस्था समाधि से व्युत्थान की अवस्था को भी कहा जाता है। अतः यदि उलूखल को उल्टा कर दिया जाए अर्थात् ऊर्जा को उरु बनाने की अपेक्षा लघु बनाया जाए तो वह समाधि में जाने की अथवा कृष्ण अवस्था प्राप्त करने की स्थिति होगी। समाधि में ऊर्जा का क्षय नहीं होगा। पुराणों में कृष्ण द्वारा यमलार्जुन के उद्धार की कथा के संदर्भ में, कृष्ण ने अर्जुन वृक्षों के मूल में उलूखल को तिर्यक/तिरछा करके लगाया और खींचा तो अर्जुन वृक्ष उखड कर गिर पड़े। जैसा कि अर्जुन शब्द की टिप्पणी में कहा जा चुका है, अर्जुन अवस्था समाधि में पर्जन्य वर्षा होने पर उत्पन्न अर्जुनी/श्वेत उषा की स्थिति हो सकती है। लेकिन कठिनाई यह है कि इसकी गति दो तरफा नहीं है। ऐसा नहीं है कि जब चाहे इस स्थिति से बाहर निकल आओ। कृष्ण ने उलूखल के माध्यम से सारी ऊर्जा का कर्षण कर लिया है (कृष्ण अर्थात् कर्षण करने वाला, खींचने वाला)। अतः वृक्ष के रूप में जो ऊर्जा का क्षय हो रहा था, वह समाप्त हो गया है। यह भी संभव है कि कृष्ण और रज्जु के माध्यम से ऊर्जा के कर्षण की कथा में कोई अन्य रहस्य छिपा हो जिसका आधुनिक विज्ञान में उपयोग हो सकता हो।

अथर्ववेद ११.३.३ में बार्हस्पत्य ओदन के संदर्भ में चक्षु को मुसल और काम को उलूखल कहा गया है। शतपथ ब्राह्मण में उलूखल केवल अन्न व प्राण तक सीमित है। ऐसा लगता है कि अथर्ववेद का प्रसंग मन के स्तर पर उलूखल होने का प्रतीक है।

ऋग्वेद १.२८ सूक्त उलूखल से सम्बन्धित है और इसकी पांचवी ऋचा का विनियोग वैदिक साहित्य में सार्वत्रिक रूप से किया गया है। इसमें उलूखल से दुन्दुभि जैसा जयकारक शब्द करने की प्रार्थना की गई है। अन्य बहुत से वैदिक संदर्भ भी

उलूखल और वाक् से संबंधित हैं जिनकी व्याख्या अपेक्षित है। उलूखल और मुसल के मिथुन की व्याख्या भी अपेक्षित है। इसके अतिरिक्त वैदिक साहित्य में यज्ञ में यूप (काष्ठ स्तम्भ जिससे यज्ञ पशु बांधा जाता है) के सार्वत्रिक रूप से उलूखलबुध्न होने का उल्लेख आता है (जैमिनीय ब्राह्मण २.२९८ आदि)जिसकी व्याख्या अपेक्षित है।

**उलूपी** **भागवत** ९.२२.३२ (नाग कन्या, अर्जुन-भार्या, इरावान-माता)।

**उल्का** **भविष्य** ४.६२ (उल्का नवमी व्रत विधि व माहात्म्य : चामुण्डा की आराधना)।

**उल्कामुख** **ब्रह्मवैवर्त्त** २.२९.१९ (नरक में स्थित कुण्ड का नाम), **ब्रह्माण्ड** १.२.२०.२९ (वितल नामक तृतीय तल में उल्कामुख राक्षस के वास के स्थान का कथन), **मत्स्य** १७९.२४ (उल्कामुखी : अन्धक के रक्तपान हेतु शिव द्वारा सृष्ट मातृकाओं में से एक), **वायु** ५०.२८ (वितल नामक तृतीय तल में उल्कामुख राक्षस के वास के स्थान का कथन), **वा.रामायण** ४.४१.४ (सीता अन्वेषण के संदर्भ में सुग्रीव द्वारा दक्षिण दिशा में भेजे गए वानरों में से एक, हुताशन-पुत्र)।

**उल्मुक** **कूर्म** २.३४.८७ (देवों और ऋषियों की ओर थूकने पर उल्मुक/मशाल द्वारा जिह्वा जलाने का विधान), **भागवत** ४.१३.१५ (चाक्षुष मनु व नड्वला-पुत्र, पुष्करिणी-पति, ६ पुत्रों के नाम), **विष्णु** ४.१५.२० (बलभद्र व रेवती-पुत्र, विशठ/निशठ-भ्राता), **हरिवंश** २.१०३.२४ (वही)।

**उशना** **ब्रह्माण्ड**-१.२.१०.७७ (भव शिव व धात्री-पुत्र), २.३.७०.२४ (सुयज्ञ-पुत्र, मरुत्त-पिता, क्रोष्टा वंश), **भागवत** ३.१२.१३ (रुद्र की ११ पत्नियों में से एक), ४.१.४५ (कवि-पुत्र, भृगु-पौत्र, शुक्राचार्य का नाम), ९.२३.३४ (धर्म-पुत्र, रुचक-पिता, यदु वंश), **मत्स्य** ४४.२३ (सुयज्ञ-पुत्र, तितिक्षु-पिता, मरुत्त-पितामह, क्रोष्टु/यदु वंश), **वामन** ३९.१ (औशनस तीर्थ का माहात्म्य : उशना द्वारा सिद्धि प्राप्ति का स्थान, रहोदर मुनि की ग्रीवा से लग्न राक्षस शिर का अलग होना), **वायु** २३.१७३/१.२३.१६२ (१६वें द्वापर में शिव-अवतार, गोकर्ण के पुत्रों में से एक), २७.५० (भव शिव व उषा-पुत्र), ६५.७४/२.४.७४ (भृगु व दिव्या-पुत्र, शुक्र का एक नाम, गौ-पति, त्वष्टा आदि ४ पुत्रों के पिता), ६९.३०१/२.८.२९३ (मनुष्यों के स्वेद मल से उशना नामक जन्तुओं की उत्पत्ति का उल्लेख), ७२.१६/२.११.१६ (भृगु-पुत्र उशना के उमा देवी के दत्तक पुत्र होने का उल्लेख), **विष्णु** २.७.७ (शुक्र ग्रह का नाम), ३.३.१२(तृतीय द्वापर के व्यास का नाम), ४.१२.९ (पृथुतम-पुत्र, शितपु-पिता, यदु वंश, उशना द्वारा १०० अश्वमेध यज्ञों के अनुष्ठान का उल्लेख), **शिव** ७.२.९.१५ (शिव के योगाचार्य शिष्यों में से एक उशना का उल्लेख)।

**टिप्पणी**- ऋग्वेद में ८.८४, ९.८७-९.८९ सूक्तों के ऋषि उशना काव्य हैं। इसके अतिरिक्त सामवेद में ९ सामों के ऋषि उशना काव्य हैं। यह आश्चर्यजनक है कि पुराण उशना, कवि और शुक्र को एक ही बताते हैं, जबकि वैदिक साहित्य में ऐसा कोई उल्लेख ही नहीं है। अतः पुराणों के इस कथन पर बहुत ही सावधानी से विचार करना होगा। पुराणकार को उशना नाम उतना प्रिय नहीं है जितना शुक्र। लेकिन पुराण कथा बताती है कि शुक्र का शुक्र नाम तब पड़ा जब वह शिव के शुक्र मार्ग से बाहर आए। उशना ऋषि के वैदिक दर्शन को समझने के लिए उशना शब्द का तात्पर्य समझ लेना होगा। ऋग्वेद की ऋचाओं में उशन्, उशती आदि शब्दों का व्यापक प्रयोग हुआ है और वैदिक पदानुक्रम कोश में इन शब्दों की व्युत्पत्ति वश्-कामना के अर्थ वाली धातु से की गई है। सायण भाष्य में भी उशन् का अर्थ सार्वत्रिक रूप से कामना ही किया गया है। ऋग्वेद १.६२.११, १.७१.१, १.१२४.७, ४.३.२, ९.९५.३, १०.३०.६, १०.४३.१, १०.७१.४, १०.८५.३७, १०.९१.१३ में उल्लेख आता है कि जैसे पत्नी उशती होकर उशन्त पति का आलिंगन करती है, ऐसे ही मनीषा या मतियां इन्द्र का आलिंगन करती हैं। इसके अतिरिक्त, ऋग्वेद १.२२.९, १.१०९.४, १.१२४.१३, ५.४३.११, ५.४६.७, १०.९.२ आदि में उशती स्थिति में स्थित माता जैसे वत्स को दुग्ध का पान कराती है, वैसे ही देव-पत्नियों से कल्याणतम रस प्राप्त होने की कामना की गई है। ऋग्वेद ३.५.७ के अनुसार अग्नि का उशन करने पर वह

उशन्त घृतवन्त योनि में स्थित हो जाती है। ऋग्वेद ७.१७.२ व ७.३९.४, ८.६०.४, १०.१६.१२ आदि में अग्नि से प्रार्थना की गई है कि वह उशत् स्थिति में आकर हमारे लिए देवताओं का आह्वान करे। ऋग्वेद ७.९८.२ में उशन् इन्द्र से सोम पान की प्रार्थना की गई है। ऋग्वेद ७.१०३.३ में मण्डूकों के उशत स्थिति में आने पर ईं की वर्षा होने का उल्लेख है। ऋग्वेद ९.६८.६ में उशन्त अंशु का उल्लेख है। ऋग्वेद १०.३०.१५ में उशती बर्हि का उल्लेख है जिस पर आप: आकर विराजमान होते हैं? ऋग्वेद १०.१६०.३ में उशत मन से सोम का सवन करने पर इन्द्र द्वारा उसकी गायों की रक्षा का उल्लेख है। उशन के संदर्भ में इन सभी उल्लेखों को समझने की एक कुंजी हमें सामवेद में उशना ऋषि के साम इनो राजन् अरति: समिद्धो इत्यादि (ऋग्वेद १०.३.१) से प्राप्त होती है। आधुनिक रसायन शास्त्र में दो तत्वों के बीच रासायनिक क्रिया का आधार रति, दो तत्वों का एक दूसरे के प्रति आकर्षण है। अरति की स्थिति एकमात्र हीलियम, नीओन, आर्गन आदि अक्रिय गैसों के लिए होती है। साधना के दृष्टिकोण से, पहले तो रति या उशना को उत्पन्न करना है। इस संदर्भ में ऋग्वेद की ऋचाओं का संकेत है कि उशना ऐसी होनी चाहिए जैसे पत्नी व पति के बीच, अंग-प्रत्यंग में, शरीर के कण-कण में। ऐसा कैसे हो? इस सम्बन्ध में ताण्ड्य ब्राह्मण ७.५.१७ का कहना है कि प्राण औशन हैं। वायु उशन् है। ऋग्वेद ८.७.२६ में भी उशना को मरुत कहा गया है। वायु उशन् है। अत: यह कहा जा सकता है कि साधना द्वारा शरीर के कण-कण में प्राण वायु अथवा आक्सीजन का जितना अधिक प्रवेश होगा, उशन् अथवा कामना अथवा रति की स्थिति उतनी ही पुष्ट होती जाएगी। इस रति की स्थिति से अरति की स्थिति को कैसे प्राप्त किया जा सकता है, यह विचारणीय है। पुराणों में उशना को तितिक्षु-पिता कहने का तात्पर्य भी अरति से हो सकता है। तितिक्षु शब्द तिज्-त्यागे धातु से निष्पन्न होता है। जहां उशना में आकर्षण है, तितिक्षा में विकर्षण है।

आर्षेय कल्प में उल्लेखों से ज्ञात होता है कि यज्ञों में प्राय: माध्यन्दिन सवन के अन्त में औशनस साम (ऋग्वेद ९.८७.३) का गान किया जाता है। इसके पश्चात् ऋभु से सम्बन्धित आर्भव पवमान आरंभ होता है। ऋग्वेद ९.८७.३ के साम के अनुसार उशना काव्य द्वारा धीर ऋभु की उत्पत्ति होती है? ऋभु को वैदिक साहित्य में देवों का शिल्पी कहा जाता है (त्वष्टा असुरों का शिल्पी है)। अत: यह संकेत मिलता है कि जैसे रसायन शास्त्र में सृजन के लिए तत्वों का ऊर्जित अवस्था में होना आवश्यक है, इसी प्रकार अध्यात्म में ऋभु की सृष्टि से पूर्व उशना की ऊर्जित अवस्था प्राप्त करना आवश्यक है। श्री अरविन्द के हिन्दी में अनुवादित साहित्य में संभवत उशना को अभीप्सा नाम दिया गया है-किसी परम तत्व को प्राप्त करने की चाह। अंग्रेजी भाषा में ओशन शब्द की निरुक्ति इस प्रकार की जाती है कि जो पृथ्वी को चारों ओर से घेरे रहता है, वह ओशन है। इस कथन का रूपांतर अध्यात्म की दृष्टि से करने पर यह प्रस्तुत संदर्भ के उशना से तादात्म्य रखता है।

आश्वलायन श्रौत सूत्र ९.५.१, बौधायन श्रौत सूत्र १८.४७ तथा शांखायन श्रौत सूत्र १४.२८.१ में उशन स्तोम -द्वय का वर्णन आता है। इनमें से प्रथम स्तोम हमारे व्यक्तित्व में व्याप्त विष के नाश के लिए है और दूसरा अन्नाद्य अर्थात् मधुरतम अन्न की प्राप्ति के लिए। ऐसा प्रतीत होता है कि केवल उशना स्थिति उत्पन्न करना विष का नाश करने के अन्तर्गत आता है, जबकि उशना स्थिति से काव्य स्थिति उत्पन्न करना अन्नाद्य प्राप्ति के अन्तर्गत आता है। ऋग्वेद १.५१.१० व ५.२९.९ में उशना के साथ सह शब्द का उल्लेख आता है। उशना सह द्वारा सह का तक्षण करता है। कहा जा सकता है कि केवल उशना की ऊर्जित अवस्था में होना ही पर्याप्त नहीं है, अपितु ऊर्जित अवस्थाओं का विन्यास इस प्रकार करना है कि वह सब सह स्थिति में हों, एक दूसरे से सहयोग करें, विरोध नहीं। यह काव्य की स्थिति हो सकती है। जैमिनीय ब्राह्मण १.१६६ तथा २.४२१ में कवि को पिता और उशना को पुत्र कहा गया है। नौका के ठीक प्रकार से चालन के लिए इन पिता-पुत्रों द्वारा नौका का संचालन आवश्यक कहा गया है। पुराणों में उशना के त्वष्टा पुत्र के उल्लेख को भी उपरोक्त वर्णन के आधार पर समझा जा सकता है। त्वष्टा अर्थात् तक्षण करने वाला।

पुराणों में उशना के २ रूप मिलते हैं-एक तो क्षत्रिय रूप जिसमें वह अश्वमेध यज्ञ द्वारा अश्व का शोधन करता है, और दूसरा विप्र रूप जिसमें वह असुरों का आचार्य बनता है और गौ-पति है। उशना काव्य के सार्वत्रिक साम प्र तु द्रव इत्यादि (ऋग्वेद ९.८७.१) में पवमान सोम की तुलना अश्व से की गई है जिसका शोधन अपेक्षित है। जैमिनीय ब्राह्मण १.१२६, ताण्ड्य ब्राह्मण ७.५.२०, बौधायन श्रौत सूत्र १८.४६ आदि में आख्यान आता है कि उशना काव्य असुरों के पुरोहित थे। इन्द्र ने उन्हें कामदुघा गाएं प्रदान करके अपनी ओर मिला लिया। जो साम हैं, वही कामदुघा धेनु हैं। ऋग्वेद १.८३.५ में भी

उशना काव्य के साथ गौ का उल्लेख आता है। निहितार्थ अपेक्षित है। पृथिवी को भी गौ कहते है। इस दृष्टि से पृथिवी के कण-कण में साम उत्पन्न होना, काव्य उत्पन्न होना भी गौ के पति बनने के समान हो सकता है।

ऋग्वेद ८.८४ सूक्त उशना काव्य ऋषि का है जिसकी ऋचा प्रेष्ठं वो अतिथिं इत्यादि का विनियोग अतिथि आगमन पर सामगान के रूप में किया जाता है। अतिथि तिथि से रहित अवस्था, अथवा चन्द्रमा की १५ क्षर कलाओं से भी आगे १६ वीं अक्षर अवस्था का प्रतीक है। भौतिक विज्ञान की दृष्टि से यह महत्वपूर्ण है कि उशना ऋषि ने ऊर्जा की अक्षर अवस्था को कैसे प्राप्त किया है क्योंकि सामान्यतः तो पदार्थ में अतिरिक्त ऊर्जा क्षरित होती रहती है।

पुराणों में उशना और शुक्र के परस्पर सम्बन्ध के के संदर्भ में, ऋग्वेद ६.५८ सूक्त शुक्रं ते अन्यद् यजतं ते अन्यद् इत्यादि का विनियोग शुक्र ग्रह हेतु किया जाता है। ऐसा हो सकता है कि यजत रूप, जिसमें तप द्वारा, यजन द्वारा ऊर्जा का सम्पादन करना होता है, उशना हो और ऊर्जा को बाहर निकालने वाला रूप शुक्र हो।

**उशिक** **ब्रह्माण्ड** १.२.१२.३० (एक अग्नि, अन्य नाम काव्य व पोता), **भागवत** ९.२४.२ (कृति-पुत्र, चेदि-पिता, क्रोष्टु/यदु वंश), **वायु** २१.३२ (१२वें कल्प का नाम), **शिव** ३.५.३४ (२३ वें द्वापर में श्वेत नामक शिव अवतार के एक पुत्र का नाम)

टिप्पणी के लिए दृष्टव्यः उशिज

**उशिज** **मत्स्य** ४८.३२ (उशिज : ममता-पति, बृहस्पति-अग्रज, दीर्घतमा व भरद्वाज के जन्म की कथा), **वायु** ६५.१००/२.४.१०० (अथर्वण व पथ्या के पुत्रों में से एक), ६५.१०६/२.४.१०६ (उशिज : १५ अंगिरस ऋषियों में से एक), ९९.३६/२.३७.३६ (अशिज : ममता-पति, बृहस्पति-अग्रज, दीर्घतमा व भरद्वाज के जन्म की कथा), **शिव** ७.२.९.१९ (शिव के योगाचार्य शिष्यों में से एक)।

द्र. उतथ्य, कक्षीवान, दीर्घतमा।

**टिप्पणी-** वायु पुराण में उशिज को पथ्या व अथर्वण का पुत्र कह कर यह संकेत किया गया है कि उशिज समाधि से व्युत्थान की अवस्था है क्योंकि ऐतरेय ब्राह्मण १.७ का कथन है कि पथ्या अदिति है, अखण्ड शक्ति है जिससे सूर्य का उदय होता है और जिसमें अस्त होता है। पथ्या स्वस्ति है, कल्याण की स्थिति है। जैसा कि अथर्वा शब्द की टिप्पणी में कहा जा चुका है, मनोमय कोश से लेकर अन्नमय कोश तक के जीवात्मा का नाम अथर्वण है जो अपने सच्चे स्वरूप को भूला हुआ है। इन दोनों के संयोग से उशिज का जन्म होता है। यह अदिति के विपरीत दिति अवस्था है (गोपथ ब्राह्मण २.२.१३ आदि)। वैदिक साहित्य में उशिक् और उशिज्, दो शब्द आते हैं। उशिक् शब्द निघण्टु में कामना के अर्थों में और उशिजः मेधावी नामों के अन्तर्गत आता है। उशिजः का प्रयोग ऋग्वेद में बहुवचन में हुआ है, अर्थात् उशिजः शब्द उशिज् का बहुवचन हो सकता है। उशिक् शब्द का प्रयोग प्रायः वासनाओं के शोधन हेतु किया गया है। यज्ञ में पोता नामक ऋत्विज की अग्नि के लिए उशिगसि कविः, इस प्रकार कहा जाता है (तैत्तिरीय संहिता १.३.३.१ इत्यादि)। वासनाएं शुद्ध होने के पश्चात् ८ वसुओं में परिवर्तित हो जाती हैं। अतः तैत्तिरीय संहिता ४.४.१.१आदि में उशिक् से वसुओं को प्रसन्न करने की प्रार्थना की गई है। भौतिक विज्ञान की दृष्टि से उशिक् को इस प्रकार समझा जा सकता है कि यदि किसी गैस में से विद्युत का प्रवाह किया जाए तो गैस प्लाज्मा स्थिति में परिवर्तित हो जाती है जिसका प्रत्येक कण कामना से पूर्ण होता है, किसी दूसरे से मिलने के लिए आतुर रहता है। अन्य शब्दों में, यदि अणु में किसी भौतिक प्रक्रिया से झूलते हुए बंधन उत्पन्न कर दिए जाएं तो वह अणु कामना युक्त हो जाता है। इतना ही नहीं, जैसा कि वैदिक साहित्य में कामनाओं का रूपांतरण करके उन्हें वसु बनाने का उल्लेख है, ऐसे ही आजकल भौतिक विज्ञान ऐसे झूलते बंधन उत्पन्न करने में समर्थ हो गया है जिन्हें किसी विशेष प्रयोजन के लिए, किसी विशेष कार्य की सिद्धि के लिए प्रयोग किया जा सकता है। लेकिन अध्यात्म में कामनाओं का रूपांतरण वसुओं में कैसे किया जाए, यह अन्वेषणीय है (ऋग्वेद १.१८९.७)।

पुराणों में उशिज द्वारा ममता के गर्भ में अपना वीर्य स्थापित करने की कथा में उशिज को उशिक् ही माना जा सकता है। इस कथा में ममता का, ममत्व का, जहां भी वासना है उसका, रूपांतरण करना है। उस ममत्व को देवों को अर्पित करने योग्य सर्वश्रेष्ठ अन्न जिसे अन्नाद्य कहते हैं, में रूपांतरित करना है (ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार प्राण ही अन्नाद्य

है)। और पौराणिक साहित्य का कथन है कि यह कार्य उस शक्ति द्वारा किया जा सकता है जो जीवात्मा समाधि अवस्था से ग्रहण करने में सफल होता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि निघण्टु में मेधावी अर्थ वाले उशिजः शब्द का विस्तार पुराणों में दीर्घतमा की कथा द्वारा किया गया है। ऋग्वेद की ऋचाओं में सार्वत्रिक रूप से उल्लेख आता है (जैसे ऋग्वेद ४.१.१५, ४.१६.६ आदि) कि उशिजों ने गोमन्त व्रज का आच्छादन किया। दीर्घतमा गौ धर्म का पालन करता है और अन्त में सुरभि गौ प्रसन्न होकर उसे चाटकर उसका तमस् व अन्धत्व नष्ट कर देती है। महानारायणोपनिषद १६.६ तथा तैत्तिरीय आरण्यक १०.४१ व १०.४२.१ में सुरभि से मेधा प्रदान करने की प्रार्थना की गई है। हो सकता है कि ऋग्वेद की ऋचाओं (जैसे ऋग्वेद ४.६.११, १०.४६.२ व ४)में उशिजों द्वारा नमः की ओर प्रवृत्त होकर (डा० फतहसिंह के अनुसार नमः मनः का उल्टा है) जो उपलब्धियां की गई हैं, गौ धर्म का पालन उसी नमः का संकेत हो।

यह एक विचित्र तथ्य है कि मेधा प्राप्ति के लिए जिस कथा का वर्णन उशिज के लिए होना चाहिए था, वह देवीभागवत पुराण में उतथ्य के लिए किया गया है। मूर्ख उतथ्य जो सत्यव्रत भी है, बाण से विद्ध शूकर को देखकर दयार्द्र हो उठता है और उसके मुख से सरस्वती के बीज मन्त्र ए का अनायास उच्चारण हो जाता है और वह विद्वान बन जाता है। आपस्तम्ब श्रौत सूत्र २४.६.१२ तथा आश्वलायन श्रौत सूत्र १२.११.४ आदि में औचथ्य गौतम और औशिज गौतमों के प्रवरों का साथ-साथ ही उल्लेख आता है। अतः हो सकता है कि उचथ्य और उशिज किसी प्रकार परस्पर सम्बद्ध हों।

पुराणों में उशिज के अंगिरस ऋषियों में से एक होने के कथन के संदर्भ में, जैसा कि अंगिरस शब्द की टिप्पमी में कहा जा चुका है, अंगिरस क्रमशः प्रगति करने वाले प्राण हैं। तैत्तिरीय संहिता ६.३.६.१ आदि का कथन है कि ऋत्विज ही उशिज नामक वह्नियां हैं। शतपथ ब्राह्मण ९.५.२.१६ का कथन है कि आत्मा ही यज्ञ का यजमान है और अंग ही ऋत्विज हैं। शतपथ ब्राह्मण १०.४.१.१९के अनुसार प्रजापति की जो षोडश कलाएं हैं, वही यज्ञ के १६ ऋत्विज हैं। पुराणों में उशिज के अंगिरसों में से एक होने का कथन ऋग्वेद की उन ऋजाओं को समझने में सहायता करता है जहां इन्द्र व अग्नि आदि के साथ उशिज शब्द का उल्लेख आता है (उदाहरण के लिए ऋग्वेद १.१३१.५)।

**उशीनर** **गर्ग** ७.१२.१ (उशीनर देश के राजा हेमांगद द्वारा प्रद्युम्न को भेंट), १०.१६.१ (उशीनर देश के राजा हेमांगद द्वारा उग्रसेन के यज्ञीय अश्व का बन्धन, अनिरुद्ध-सैनिकों से युद्ध व पराजय), **ब्रह्म** १.११.२० (महामना-पुत्र, तितिक्षु-भ्राता, नृगा, कृमि आदि ५ पत्नियां, शिबि आदि ५ पुत्र, अनु वंश), **भागवत** ७.२.२८ (उशीनर देश के राजा सुयज्ञ की युद्ध में मृत्यु पर रानियों का विलाप, बालक रूप धारी यम द्वारा उपदेश), ९.२३.२ (महामना-पुत्र, तितिक्षु-भ्राता, शिबि, वन, शमी व दक्ष नामक ४ पुत्र, अनु वंश), **मत्स्य** ४२.१९ (उशीनर-पुत्र शिबि की अन्य राजाओं की अपेक्षा श्रेष्ठता का कारण), ४८.१५ (उशीनर-वंश का कथन, भृशा, कृशा आदि ५ पत्नियां), **वायु** ९९.१८/२.३७.१९ (महामना-पुत्र, भृगा, कृमी, नवा, दर्वा, दृषद्वती आदि ५ पत्नियां, शिबि आदि ५ पुत्र), **विष्णु** ४.१८.८ (उशीनर-वंश का कथन), **कथासरित्** १.३.५(उशीनर पर्वत के भेदन से गंगा के अवतरण का कथन)।

**टिप्पणी-** वैदिक साहित्य में उशीनर शब्द का उल्लेख प्रत्यक्ष रूप से बहुत कम हुआ है। ऋग्वेद १०.५९.१० में इन्द्र से प्रार्थना की गई है कि वह ऐसा अनड्वाह/बैल प्रदान करे जिसने उशीनराणी की अनः/गाडी का वहन किया था। उशीनर का दूसरा संदर्भ ऋग्वेद १०.१७९.१ में मिलता है जिसके ऋषि शिबि औशीनर (उशीनर-पुत्र शिबि) हैं। उशीनर का शाब्दिक अर्थ उशी वाञ्छायां के आधार पर कामनाओं वाला मनुष्य किया जा सकता है। ऊपर उशना ऋषि की टिप्पणी में उशना का अर्थ भी कामनाओं वाला किया गया है। उशीनर और उशना में क्या सूक्ष्म अंतर है, यह विचारणीय है। उशीनर के संदर्भ में तितिक्षु (तिज्-त्यागे) उशीनर का भ्राता है, जबकि उशना के संदर्भ में उशना का पुत्र। इस प्रकार कामना और त्याग, अथवा रति और अरति, दोनों साथ-साथ जुडी हैं।

महाभारत अनुशासन पर्व अध्याय ३२में राजा शिबि के लिए वृषदर्भ व उशीनर नामों का प्रयोग हुआ है। वनपर्व

१३१.२३ में भी शिबि के लिए उशीनर का प्रयोग हुआ है, लेकिन वनपर्व १९७.१ में शिबि को औशीनर ही कहा गया है जो ऋग्वेद तथा पुराणों के अनुकूल है। महाभारत वनपर्व १९६ आदि में वृषदर्भ नाम को राजा शिबि के लिए ही प्रयुक्त किया गया है, जबकि पुराणों में वृषादर्भ को शिबि का पुत्र कहा गया है। बौधायन श्रौत सूत्र १८.४९ में इन्द्र द्वारा वर्षिष्ठीय प्रस्थ में उशीनर-पुत्र शिबि का यज्ञ कराने का वर्णन है। अतः यह कहा जा सकता है कि उशीनर रूप में प्राणों की कामना दिव्य वर्षा से तृप्त होने की है। लेकिन यह वर्षा कैसे हो? इसका सूत्र ऋग्वेद १०.१७९ में प्राप्त होता है जहां शिबि औशीनर हवि को पकाने की, शृत करने की बात करता है। इस सूक्त का विनियोग आश्वलायन श्रौत सूत्र में दधिघर्म उत्पन्न करने के लिए है। ऐसा हो सकता है कि शृत होने पर यह दधिघर्म ही वर्षा करने के लिए उत्तरदायी होता हो। राजा शिबि के संदर्भ में महाभारत आदि में कपोत और श्येन की कथा में कपोत भी दधिघर्म का प्रतीक हो सकता है।

पुराणों में उशीनर के मृग, कृमि आदि ४ या ५ पुत्रों के उल्लेखों के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि उशीनर रूप में प्राण जड प्रकृति में कामना उत्पन्न करते हैं, उसे गतिशील बनाते हैं, उसे ईश्वर तत्व की प्राप्ति की ओर उन्मुख करते हैं। कथासरित्सागर में उशीनर पर्वत के भेदन से गंगा अवतरण का कथन बहुत सार्थक है।

**उशीर** **मत्स्य** १६३.८७ (उशीरबिन्दु पर्वत का हिरण्यकशिपु के कारण कम्पित होना), **वा.रामायण** ७.१८.२ (उशीरबीज : राजा मरुत्त के यज्ञ का स्थान)

**उषद्रथ** **ब्रह्म** १.११.२८ (तितिक्षु-पुत्र, फेन-पिता), **ब्रह्माण्ड** २.३.७४.३५ (तितिक्षु-पुत्र, हेम-पिता), **भागवत** ९.२३.४ (उषद्रथ का रुशद्रथ से तादात्म्य), **मत्स्य** ४८.२२ (वृषद्रथ : तितिक्षु-पुत्र, सेन-पिता), **वायु** ९९.२५/२.३७.२५ (तितिक्षु-पुत्र, हेम-पिता), **विष्णु** ४.१८.११ (रुशद्रथ : तितिक्षु-पुत्र, हेम-पिता)

**उषा** **देवीभागवत** ११.२.५ (उषा काल निर्धारण), **पद्म** ६.२५० (अनिरुद्ध से विवाह की कथा), **ब्रह्म** १.९६ (उषा के अनिरुद्ध से विवाह का प्रसंग), २.१९.१२ (छाया -सूर्य संज्ञा कथा में संज्ञा का नाम), **ब्रह्मवैवर्त** ४.२३.१५१ (तिलोत्तमा व बलि -पुत्र साहसिक की कामक्रीडा से दुर्वासा का ध्यान भंग होने पर दुर्वासा द्वारा तिलोत्तमा को बाण असुर की पुत्री उषा व साहसिक को गर्दभासुर बनने का शाप), ४.११४+ (अनिरुद्ध-उषा उपाख्यान), **भविष्य** ३.३.२२.२० (बाण-पुत्री व अनिरुद्ध-पत्नी उषा का कलियुग में मयूरध्वज-कन्या पुष्पवती के रूप में उत्पन्न होकर कृष्णांश उदयसिंह की पत्नी बनना, पूर्वजन्मों में चन्द्रकान्ति वेश्या का देवपूजा के कारण उषा बनने का वृत्तान्त), **भागवत** ६.६.१६ (विभावसु-पत्नी, व्युष्ट आदि तीन पुत्रों की माता), १०.६२ (उषा-अनिरुद्ध उपाख्यान), **मत्स्य** १७९.२० (अन्धकासुर के रक्त पानार्थ शिव द्वारा सृष्ट मातृकाओं में से एक) **वायु** २७.५० (भव शिव-पत्नी, उशना-माता),५०.१६१ (उषा रात्रि का रूप, व्युष्टि अह का रूप), **विष्णु** ५.३२ (उषा-अनिरुद्ध चरित्र), **शिव** २.५.५१+ (उषा -अनिरुद्ध-बाणासुर उपाख्यान), **स्कन्द** ७.१.७१(वरुण-पत्नी उषा द्वारा सौभाग्य प्राप्ति हेतु स्थापित उषेश्वर लिंग का संक्षिप्त माहात्म्य), **हरिवंश** २.११७ (शिव-पार्वती की क्रीडा को देखकर बाण-पुत्री उषा के मन में पति प्राप्ति की इच्छा जाग्रत होना, पार्वती द्वारा पति प्राप्ति का वर, उषा की विरह व्यथा का वर्णन), २.११८+ (उषा द्वारा स्वप्न में प्रियतम के दर्शन, चित्रलेखा सखी द्वारा बनाए गए चित्र से अनिरुद्ध का अभिज्ञान, चित्रलेखा द्वारा द्वारका से अनिरुद्ध के हरण का उद्योग), २.११९+ (उषा व अनिरुद्ध का गान्धर्व विवाह, कृष्ण द्वारा बाणासुर द्वारा बंधित अनिरुद्ध की मुक्ति का उद्योग), २.१२८ (उषा का द्वारका में अन्तःपुर में प्रवेश, द्वारका में उत्सव), **कथासरित्** ६.५.११(उषा-अनिरुद्ध उपाख्यान)

द्र.ओषधि, प्रत्यूष

**टिप्पणी-** ऋग्वेद की कई ऋचाओं जैसे १.९२.९, १.११३.८, १.१२४.४ आदि में उषा द्वारा मृत/सुप्त व्यक्ति के प्रबोधन का उल्लेख आता है। यह भौतिक जगत में सर्वविदित तथ्य है कि उषा काल के आगमन पर सारे प्राणी जाग जाते हैं, पक्षी अपने घोंसलों से निकल पड़ते हैं, चिडिया चहचहाने लगती हैं। इन्हीं

तथ्यों का उल्लेख ऋग्वेद १.४९.३, १.९२.९ आदि में भी मिलता है। लेकिन ऐसा क्यों होता है कि उषा काल में प्राणी जाग जाते हैं? आधुनिक विज्ञान के अनुसार जब प्राणी सुप्तावस्था से जागता है तो उसकी आन्तरिक अव्यवस्था सुप्तावस्था की अपेक्षा अधिक होती है। विज्ञान में आन्तरिक अव्यवस्था के इस आपेक्षिक माप को एन्ट्रोपी नाम दिया गयाहै (ट्रोपी अर्थात् ट्रांसफार्मेशन, रूपांतरण)। ऐसा प्रतीत होता है कि वेदों की उषा का आधुनिक विज्ञान की ऐन्ट्रोपी से तादात्म्य है। आधुनिक विज्ञान में जड पदार्थ में एन्ट्रोपी का परिवर्तन किस-किस प्रकार से होता है, इसका भली भांति अध्ययन किया गया है। दूसरी ओर, वेदों में जीवित प्राणी में उषा का विकास किन-किन रूपों में हो सकता है, इसका भली भांति उल्लेख है। ऐसा पाया गया है कि प्रकृति में जो नियम जड पदार्थ पर लागू होते हैं, वही नियम न्यूनाधिक रूप में जीवित प्राणियों पर भी सत्य सिद्ध होते हैं। अत: एन्ट्रोपी को समझने से वेद की उषा को समझा जा सकता है और उषा को समझने से एन्ट्रोपी को।

भौतिक जगत में प्रतिदिन नई-नई उषाओं का आविर्भाव स्वत:स्फूर्त रूप में होता जाता है औप हम उसे अधिक महत्व भी नहीं देते। लेकिन साधक को अपनी उषा का निर्माण स्वयं करना होता है। उषा के निर्माण की विधि का वर्णन शतपथ ब्राह्मण के छठे काण्ड में उखा निर्माण की याज्ञिक विधि के वर्णन द्वारा समझाया गया है। उदाहरण के लिए, पृथिवी में वैणवी अभ्रि/छेनी द्वारा गड्ढा बनाया जाता है और उस मिट्टी में श्लेष/चिपकाहट उत्पन्न करने के लिए उसमें पलाश पत्रों का क्वाथ मिलाया जाता है। इसके अतिरिक्त अज लोम भी उसमें मिलाए जाते हैं। मिट्टी को गीला करने के लिए जिस तालाब के जल का उपयोग किया जाना है, उस तालाब में पहले ही अश्व, गौ, अवि आदि पशुओं के कबन्ध/धड भाग को फेंक दिया जाता है। इन पशुओं के शीर्ष भाग को संभवत: उस स्थान पर दबा दिया जाता है जहां से मिट्टी खोदी जानी है। केवल अज पशु ही ऐसा है जिसके सम्पूर्ण शरीर, शीर्ष और कबन्ध दोनों, को मिट्टी में ही दबाया जाता है। फिर गीली मिट्टी से हांडी सदृश उखा/उषा पात्र का निर्माण किया जाता है। मिट्टी से बनी कच्ची उखा को पकाया जाता है और फिर उसका अज के पयस् से सिंचन किया जाता है। इस उखा का उपयोग अग्नि को धारण करने के लिए किया जाता है। यह अग्नि पाशों से बद्ध होता है और पाशों के मोचन के लिए विशेष याज्ञिक प्रक्रिया का वर्णन आता है। वेद में सार्वत्रिक रूप से अग्नि के उषा के अग्र में स्थित होने का उल्लेख आता है (उदाहरण के लिए, ऋग्वेद ४.१३.१, ४.१४.१, १०.१.१)। ऋग्वेद १०.९२.२ में अग्नि को उषा का पुरोहित कहा गया है।

शतपथ ब्राह्मण में उखा संभरण काण्ड के पश्चात् चिति और संचिति नामक काण्ड आते हैं। इन काण्डों में अग्नि को श्येन का रूप देने के लिए, ऐसी अग्नि जो श्येन बन कर स्वर्ग से अमृत ला सके, विभिन्न इष्टकाओं का चयन किया जाता है। इसे चिति बनाना कहते हैं। चिति धातु संज्ञान के अर्थ में प्रयुक्त होती है। चयन के इस प्राचीन कृत्य को हम आधुनिक विज्ञान की भाषा में ऑर्डर उत्पन्न करना, अव्यवस्था से व्यवस्था उत्पन्न करना, डिस-आर्डर से ऑर्डर को जाना कह सकते हैं। विज्ञान में यह नियम है कि जब कोई पदार्थ अव्यवस्था से व्यवस्था की ओर जाता है तो उसकी एन्ट्रोपी कम होजाती है। उदाहरण के लिए, यदि नमक के चूर्ण को उसके क्रिस्टलों में रूपांतरत किया जाए तो उसकी एन्ट्रोपी कम हो जाएगी। यह उल्लेखनीय है कि प्रकृति में जहां भी क्रिस्टल बनने की प्रवृत्ति होती है, वहां जीवन समाप्त हो जाता है। सारा प्राणी जगत अक्रिस्टलीय है।

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, जागने पर एन्ट्रोपी में वृद्धि होती है। अत: जीवित प्राणी की अवस्था में तो चिति अर्थात् संज्ञान उत्पन्न करने से एन्ट्रोपी में वृद्धि होनी चाहिए। डा० श्रीकान्त नारायण एकबोटे से वार्तालाप में इस समस्या का समाधान इस प्रकार हुआ है कि वास्तविक जागरण वह प्रबोध है जिसमें अव्यवस्था न्यूनतम रहती है। दूसरे शब्दों में, चिति की व्याख्या के लिए हमें सुप्त और जाग्रत अवस्थों की एन्ट्रोपियों की तुलना नहीं करनी है, अपितु जाग्रत अवस्था में ही अबोध अर्थात् सामञ्जस्य से हीन अवस्था और बोध अर्थात् सामञ्जस्य से युक्त अवस्थाओं की एन्ट्रोपियों की तुलना करनी है।

शतपथ ब्राह्मण में उखा सम्भरण के अन्तर्गत वर्णित वैणवी अभ्रि द्वारा मृदा खनन ध्यान देने योग्य है। यहां वेणु साम उत्पन्न करने का, सामञ्जस्य उत्पन्न करने का प्रतीक हो सकती है। साधक अपनी श्वास रूपी वेणु से जैसे-जैसे अपने शरीर में प्रवेश पाता जाता है, वहां की मिट्टी उखा निर्माण के योग्य बनती जाती है। यही उखा फिर इतनी शक्तिशाली बन जाती होगी कि इससे प्रकाश निकलने लगे, यह उखा से वेद की उषा बन जाए।

उखा सम्भरण के अन्तर्गत ही पलाश पत्रों के क्वाथ द्वारा मृदा में आसंजन या श्लेष उत्पन्न करने का उल्लेख आता है। आधुनिक विज्ञान में श्लेष की स्थिति चुम्बकीय पदार्थों में उत्पन्न होती है और कहा जाता है कि यह श्लेष अव्यवस्था से व्यवस्था की ओर जाने से उत्पन्न हुआ है, अतः चुम्बकीय पदार्थ की एन्ट्रोपी उसकी अचुम्बकीय स्थिति की अपेक्षा कम होगी। साधना की स्थिति में अथवा उखा निर्माण की स्थिति में इसका निहितार्थ क्या होगा, यह विचारणीय है। ऐसा लगता है कि उषा के साथ आए शब्द उशती (उश-वष्टि धातु कामना के अर्थों में प्रयुक्त होती है) में तथा स्वयं उष शब्द में भी आकर्षण या श्लेष निहित है।

पुराणों में बाणासुर की पुत्री उषा और कृष्ण-पौत्र अनिरुद्ध के विवाह की कथा की व्याख्या रजनीश के सूत्रों से आंशिक रूप में इस प्रकार की जा सकती है कि उषा की सखी चित्रलेखा ने जब द्वारका से अनिरुद्ध का अपहरण किया, उस समय अनिरुद्ध सो रहा था। जैमिनीय उपनिषद ब्राह्मण १.११.१.४ के अनुसार मन ही अनिरुद्ध है। अतः सोए हुए अनिरुद्ध को अचेतन मन का प्रतीक मान सकते हैं। साधना की पूर्व स्थिति में तो उषा का मिलन अचेतन मन से होगा, उषा अचेतन मन को चेतन मन में रूपांतरित करेगी। यह आधुनिक विज्ञान की एन्ट्रोपी के नियमों के अनुसार होगा। फिर उषा और चेतन मन के मिलन पर, विवाह पर क्या रूपांतरण होंगे, इस पर पुराण चुप हैं। ऐतरेय ब्राह्मण ३.३३ आदि में सार्वत्रिक आख्यान आता है कि प्रजापति ने अपनी दुहिता उषा को अपनी पत्नी बनाना चाहा तो प्रजापति तो चन्द्रमा बन गए और उषा रोहिणी बन गई आदि आदि। वैदिक साहित्य में तो मन से चन्द्रमा की उत्पत्ति कही गई है (पुरुष सूक्त, ऋग्वेद १०.९०.)। अतः अनिरुद्ध और उषा का मिलन चन्द्रमा व रोहिणी के मिलन के समान होना चाहिए। दूसरी ओर कठिनाई यह है कि ऋग्वेद की ऋचाओं में सार्वत्रिक रूप से उषा को सूर्य की पत्नी के रूप में दर्शाया गया है (उदाहरणार्थ, ऋग्वेद १.११५.२, ७.७५.५, ९.८४.२)। यह अवश्य है कि कुछेक ऋचाओं जैसे ४.५१.८ आदि में उषा को समना भी कहा गया है तथा ऋग्वेद ३.६१.२ व ६.६५.२ में उषाओं को चन्द्ररथों वाला कहा गया है। ऋग्वेद १.१५७.१ आदि में चन्द्रा उषाओं का उल्लेख है।

ऋग्वेद की बहुत सी ऋचाओं में उषा को पूर्वी (ऋ१.११३.११, ३.५५.१, ४.१९.८, ६.२८.१, ९.७१.७, १०.३१.७, तै.सं.१.४.३३.१), अपूर्व्या (१.४६.१) और नूत्ना (७.१८.२०) कहा गया है। तै.सं. १.४.३३.१ से प्रतीत होता है कि पूर्वी उषा मर्त्य स्तर पर है। अन्य अपर रूप अमर्त्य है। ऋग्वेद ३.६१.३ व ५.८०.६ में प्रतीची उषा का भी उल्लेख है। ताण्ड्य ब्राह्मण २०.१.४ की टीका में तो स्पष्ट रूप से प्रतीची उषा को व्युत्क्रमणीय कहा गया है। तैत्तिरीय ब्राह्मण १.४.४.५में पराची उषा को प्रतीची उषा में रूपांतरित करने का निर्देश है। तुलना के लिए, आधुनिक विज्ञान में एन्ट्रोपी दो प्रकार की कही जाती है-व्युत्क्रमणीय तथा अव्युत्क्रमणीय (रिवर्सिबिल व नांन रिवर्सिबिल)। मोटे रूप में ऐसा कहा जा सकता है कि यदि किसी पदार्थ में अव्यवस्था से व्यवस्था की ओर अथवा व्यवस्था से अव्यवस्था की ओर रूपांतरण करते समय यदि इस रूपांतरण की पुनरावृत्ति पूर्ण रूप से की जा सके तो वह व्युत्क्रमणीय एन्ट्रोपी होगी। इसके विपरीत, यदि उस पदार्थ में रूपांतरण करते समय कुछ व्यवस्था या अव्यवस्था शेष रह जाए जो रूपांतरण की पूर्ण रूप से पुनरावृत्ति में बाधक हो, तो यह अव्युत्क्रमणीय एन्ट्रोपी होगी। अव्युत्क्रमणीय एन्ट्रोपी में पदार्थ में अनिवर्तनीयता या हिस्टेरेसिस को कारण कहा जाता है। ऋग्वेद १०.१७२.४ व अथर्ववेद१९.१२.१ में उषा के वर्तनीय होने की प्रार्थना की गई है। वेद की पूर्वी और नूत्ना उषाओं को भी अव्युत्क्रमणीय एन्ट्रोपी का प्रतीक मान सकते हैं। भौतिक जगत की उषाओं के तादात्म्य से कहा जाता है कि यद्यपि प्रतिदिन प्रकट होने वाली उषाएं समान ही होती हैं, किन्तु फिर भी वह भिन्न होती हैं।

उषा के सम्बन्ध में बहुत सारे वेद के उल्लेखों की व्याख्याएं अपेक्षित हैं। वैदिक ऋचाओं में सार्वत्रिक रूप से उषाओं को गोमती व अश्ववती कहा गया है (ऋग्वेद १.९२.१४, १.१२३.१२, ७.४१.७, ७.७१.१)। शतपथ ब्राह्मण १०.६.४.१ व तैत्तिरीय संहिता ७.५.२५.१ में तो मेध्य अश्व के शीर्ष को उषा कहा गया है। ऋग्वेद ७.६७.२, ७.७५.४ आदि में उषा को दिवः दुहिता कहा गया है जबकि ब्राह्मण ग्रन्थों में उषा के प्रजापति की दुहिता होने का प्रत्यक्ष व परोक्ष उल्लेख आता है (ऐतरेय ब्राह्मण ३.३३, जैमिनीय ब्राह्मण १.२१३, ३.२६२)। ऋग्वेद २.१५.६, १०.७३.६ व १०.१३८.५ में इन्द्र उषा के अनः/शकट को भंग कर देता है। उषा देवता के सूक्तों में उषा शब्द के उ उदात्त तथा ष उदात्त, दोनों रूप प्रकट होते हैं जिनके सूक्ष्म भेद की जानकारी अपेक्षित है (हरिवंश पुराण

में ऊषा व उषा शब्दों का प्रयोग हुआ है)। उषा आदि वैदिक देवताओं के असोमपा होते हुए भी उन्हें वैदिक सूक्तों में अश्विनौ के साथ प्रातः सवन में सोम पान के लिए क्यों आमन्त्रित किया जाता है? भौतिक जगत में तो उषाएं प्रतिदिन अपने आप प्रकट होती रहती हैं, लेकिन वेद में उषाओं के व्युच्छन के लिए विशेष प्रार्थना की गई है (ऋग्वेद १.११३.१२, १०.१११.७)।

ऋग्वेद २.२.८ व २.३४.१२ में राम शब्द का प्रयोग केवल उषा के विशेषण के रूप में ही मिलता है। हरिवंश पुराण आदि में बाणासुर-पुत्री उषा की सखी चित्रलेखा का नाम रामा कहा गया है। निहितार्थ अपेक्षित है।

—एन्ट्रोपी पर डॉ० ईश्वर सिंह त्यागी व डा० श्रीकान्त एकबोटे से वार्तालाप के आधार पर लिखित।

'उषा द्विविध अन्तर्ज्योति का सूचक शब्द है। यह विज्ञानमय कोश की समनी शक्ति द्वारा मनोमय कोश को प्रकाशित करती हुई पूरे समन व्यक्तित्व को आलोकित करती है। इसके विपरीत विज्ञानमय कोशीय उन्मनी शक्ति से प्रकट होने वाली ज्योति आनन्दमय कोश की ओर जाती है जिसका प्रमुख नाम ओदती है, जब कि पहली को योयुवती उषा कहा जाता है। इन दोनों के साथ जो नाद सुनाई पड़ता है, वह भिन्न प्रकार का होता है (तु. - नदं व ओदतीनाम् नदं योयुवतीनाम्, ऋ.८.६९.२)। इन दो से परे द्वंद्वातीत उषाओं को अघ्न्या कहा जाता है जिनका पति स्वयं परब्रह्म हिरण्यय कोश में है। उदाहरण के लिए आप ऋ.१.४८ को लीजिए। इसकी ऋचा ४ में आद्युदात्त उर्षः है, और ऋचा ५ में अन्त्योदात्त उ॒षाः है। पहली उषा का सम्बन्ध अतिमानसिक योग-मार्गों (यामों, विज्ञानमय कोश से ऊर्ध्व मार्ग) से है, जहां साधक अपने मन को योग-युक्त करता हुआ उसे समाधि में खो देता है। इन उषाओं की गतियों में (आचरणेषु) समुद्र-तरंगों जैसी चेतना-धाराएं उठने लगती हैं (ऋचा ३)। इसके विपरीत, दूसरी उषा की गति सेंद्रिय मन की वक्रता से युक्त होती है। इसका गमन वृजनं पतवत् अर्थात् निम्नगामी गति जिसमें इन्द्रियों रूपी पक्षी उडने लगते हैं, होता है। पहली उषा सायंकालीन उषा से तुलनीय है और दूसरी प्रातःकालीन उषा से। पहली समाधि में परिणत होती है, दूसरी सुन्दर आचरण के व्युत्थान में।'-फतहसिंह

'अतिमानसिक स्तर ही वह द्यौ है जिसकी दुहिता होकर उषा नीचे व्युत्थान में आती है। यह उषा तीन रूप धारण करती है: ज्ञान शक्तिरूप गो, भावशक्ति रूप अश्वों और क्रियाशक्ति रूप प्राणों रूपी वीरों के सम्बन्ध से गोमती, अश्वावती और वीरवती होती है। ऋ. १.४८ को अच्छी तरह अध्ययन कीजिए। इसमें उषा के सभी रूप हैं।' —फतहसिंह

'पुरुषसूक्त का यह वाक्य स्मरण करो— चन्द्रमा मनसो जातः अर्थात् चन्द्रमा मन से पैदा हुआ। मन को ऊर्ध्वमुखी करने का उत्तरोत्तर अभ्यास करना ही बहिर्मुखी क्रिया प्रधान यजमान को मृत करना है। मृत का अर्थ है 'म' (प्रकाश) में ऋतम् (बहिर्मुखी यज्ञकर्म) को लीन करना। इसी अभ्यास की परिणति अमृतम् में होती है। यही समाधि है। इस प्रकार के उत्तरोत्तर अभ्यास का एक नाम अग्निचयन भी है। आध्यात्मिक दृष्टि से, अन्तर्मुखी चेतना की एक के बाद दूसरी तह (चिति) रखते जाना है। इसी को कर्मप्रधान यजमान को चिति में मृत करके रखना कहा जाता है। ज्यों ज्यों ऊर्ध्वमना व्यक्तित्व इस प्रकार अतिमानसिक चेतना की चितियों को उत्तरोत्तर बढ़ाता जाएगा, त्यों त्यों चन्द्र का म (प्रकाश) अपनी शीतलता फैलाता जाएगा और चन्द्रलोक का प्रसार बढ़ता जाएगा। इस प्रकार की प्रक्रिया से कर्मप्रधान बहिर्मुखी यजमान अन्तर्मुखी 'म' (चन्द्र का म) में ऋत प्रविष्ट करते हुए मृत होता होता उस भाव-समाधि को प्राप्त कर लेगा जिसे अमृत कहा जाता है। इस तरह जो बहिर्मुखी ऋतम् (यज्ञकर्म) था वह मृत(चन्द्र के मा) में प्रविष्ट होकर अमृतम् की अवस्था प्राप्त करता है।

कर्मकाण्ड में ऊर्ध्वमना होकर अतिमानसिक चितियों को ग्रहण करने का प्रतीक अग्निचयन है जिसमें विभिन्न नामों की इष्टिकाओं का चयन करते हुए वेद मन्त्र बोले जाते हैं। ऐसी चितियों में से एक श्येन चिति का नाम आपने सुना होगा। इसमें ईटों से श्येनाकार वेदी बनाई जाती है, परन्तु यह इष्टका चयन वस्तुतः पूर्वोक्त आध्यात्मिक चेतना के उत्तरोत्तर चयन (चिति) का प्रतीक है। उषा की अव्यवस्था का उल्लेख मैं नहीं समझा। अव्यवस्था संभवतः अंग्रेजी के disorder का अनुवाद है। भारतीय दृष्टि से, आन्तरिक उषा तरंगें नाना रंग-रूप धारण करती हुई उत्तरोत्तर ऊपर उठती हैं जिसके परिणामस्वरूप यजमान साधक की मृत्यु चार प्रकार की होती है-तैत्तिरीय आरण्यक १.७ में उद्धृत मन्त्र के अनुसार, सूर्य परं मृत्यु है,

वायु मध्यम मृत्यु है और अग्नि अवमं मृत्यु है, जबकि चन्द्रमा को चतुर्थ मृत्यु कहते हैं। अध्यात्मिक दृष्टि से प्रथम तीन क्रमशः कारण देह, सूक्ष्म देह और स्थूल देह से सम्बन्ध रखती हैं।— फतहसिंह

डॉ. ईश्वर सिंह त्यागी, रुडकी से हुए वार्तालाप के मध्य अव्यवस्था की व्याख्या इस प्रकार हुई— मान लिया एक कमरे में १० कुर्सियां रखी हुई हैं और बाहर पांच आदमी खडे हैं। यह पांच आदमी इन १० कुर्सियों में से किसी पर भी बैठ सकते हैं। इस प्रकार एक कुर्सी पर एक विशेष व्यक्ति के बैठने की संभावना १०x५=५० वां अंश है। दूसरे शब्दों में, यहां अव्यवस्था की माप ५० है। यदि यह कहें कि कमरे में ५ कुर्सियां हैं और ५ ही बैठने वाले आदमी हैं तो एक कुर्सी पर व्यक्ति विशेष के बैठने की संभावना ५x५=२५ वां अंश है। यदि यह कहें कि ५ कुर्सियां हैं और ५ व्यक्ति हैं तथा एक-एक कुर्सी पर व्यक्ति विशेष ही बैठ सकता है तो बैठने की संभावना १ है। इस स्थिति में अव्यवस्था न्यूनतम है। जो तथ्य डा. फतहसिंह जी ने अपने पत्र में बहिर्मुखी व अन्तर्मुखी प्रवृत्तियों के माध्यम से व्यक्त किया है, उसी की व्याख्या अव्यवस्था के माध्यम से, भौतिक विज्ञान के माध्यम से इस प्रकार की जा सकती है कि अन्तर्मुखी वृत्ति में चेतना के बैठने के लिए आसन विशेष का निर्धारण कर दिया गया है। बहिर्मुखी वृत्ति में पूरी छूट है कि चेतना कहां जाकर प्रतिष्ठित हो। यह अव्यवस्था की स्थिति है। यह उल्लेखलीय है कि भौतिक विज्ञान में अव्यवस्था-व्यवस्था प्रणाली का उपयोग शीतलता उत्पन्न करने के लिए वास्तविक रूप में किया जाता है जो चन्द्रमा की शीतलता के तुल्य हो सकता है। एक ओर व्यवस्था का प्रतीक चन्द्रमा है तो दूसरी ओर अव्यवस्था के प्रतीक क्रमशः उषा व सूर्य।

यह उल्लेखनीय है कि डा. एच. वी. गुन्थर ने स्वामी शिवानन्द राधा की पुस्तक 'कुण्डलिनी योगा फार द वेस्ट' के प्राक्कथन में एन्ट्रापी पर अपने आध्यात्मिक विचार व्यक्त किए हैं।

**उषाक्ष** **देवीभागवत** ९.२२.८ (शंखचूड-सेनानी, मंगल से युद्ध)

**उष्ट्र** **अग्नि** २२७.३२ (उष्ट्र घातक के लिए दण्ड विधान का कथन), **कूर्म** २.३४.६२ (उष्ट्र यान पर आरूढ होने पर प्रायश्चित्त विधान), **गर्ग** ७.३६.१ (हिरण्याक्ष-पुत्र महानाभ का वाहन, कृष्ण-पुत्र दीप्तिमान द्वारा उष्ट्र सहित महानाभ का वध), **गरुड** १.१०५.४४ (उष्ट्रयानग के लिए प्रायश्चित्त कथन), **पद्म** १.३.१०६ (ब्रह्मा के पद से उष्ट्र की सृष्टि), **भविष्य** १.४०.३८ (उष्ट्री क्षीर पान पर द्विजत्व से च्युति का कथन), **मत्स्य** १४८.५० (तारक-सेनानी महिषासुर के रथ में उष्ट्र वाहन का उल्लेख), २२७.८८ (उष्ट्र घातक के लिए दण्ड विधान का कथन), **वा. रामायण** ५.२७.२९ (त्रिजटा का स्वप्न में उष्ट्र पर आरूढ कुम्भकर्ण को दक्षिण में जाते देखने का उल्लेख), वराह २०३.१२ (उष्ट्र आदि के मांस भेदन पर यम यातना का वर्णन), **विष्णुधर्मोत्तर** ३.१०५.३३ (उष्ट्र आवाहन मन्त्र; महामोह का रूप), **शिव** ७.२.४०.४० (सनत्कुमार द्वारा अज्ञान से शिव की उपेक्षा करने पर नन्दी के शाप से उष्ट्रता प्राप्ति, ब्रह्मा के प्रयत्न से उष्ट्रता निवारण), **स्कन्द** २.६.४.१९ (कृष्ण कथा श्रोता का एक भेद : मधुर को त्याग कर कटु को ग्रहण करने वाला), ४.१.४५.३४ (उष्ट्रग्रीवा : ६४ योगिनियों में से एक), ५.१.२८.७ (शिव द्वारा करभ रूप धारण, करभेश्वर लिङ्ग का माहात्म्य), ५.२.७३ (राजा वीरकेतु द्वारा करभ/उष्ट्र का पीछा, करभ के पूर्व जन्म का वृत्तान्त, महाकाल वन में करभेश्वर लिङ्ग के दर्शन से करभ की मुक्ति आदि), ५.३.१५६.२३ (उष्ट्री क्षीर भक्षण से उत्पन्न पाप के चान्द्रायण व्रत आदि से नष्ट होने का कथन), **लक्ष्मीनारायण** २.९७.८७ (उष्णालय खण्ड की कृष्ण द्वारा रक्षा पर उष्ट्रालय/ऊर्ध्वालय नाम होना), २.१७८.५७+ (उष्ट्राल : वियाना नगरी-पति, हङ्कार आदि भ्राताओं के नाम, उष्ट्राल द्वारा श्री हरि का स्वागत, पूर्व जन्मों में आरण्यक ऋषियों के सहयोगी ऋषियों में से एक व पुनः चतुर्थ मनु बनना), २.२००.६१ (उष्ट्र के लम्बे कण्ठ की लम्बी तृष्णा से उपमा), ३.९२.९० (उष्ट्र की मूर्खता का उल्लेख), ३.२२४ (दीर्घरव आदि उष्ट्रपालों की रामायण साधु के सत्संग से मोक्ष प्राप्ति), **कथासरित्** १०.४.१४६ (सिंह द्वारा उष्ट्र से मैत्री करना, सिंह के सहयोगियों बाघ,

वायस व शृगाल द्वारा षडयन्त्र करके उष्ट्र को सिंह का भक्ष्य बनाना), १२.२.८७ (राजा पुष्कराक्ष द्वारा मिथुनासक्त सर्प युगल के भक्षण के लिए उद्धत करभ/उष्ट्र का वध, उष्ट्र का विद्याधर रूप में परिणत होना, विद्याधर द्वारा पूर्व जन्म के वृत्तान्त का वर्णन), १७.४.१३० (विद्याधर-पुत्र मुक्ताफलकेतु का वाहन)।

द्र. करभ

**महाभारत** शान्ति ११२.४ (उष्ट्र द्वारा तप करके चरने हेतु दीर्घ ग्रीवा का वरदान पाना, जम्बुक द्वारा उष्ट्र की ग्रीवा का भक्षण आदि), १७७.६ (उष्ट्र द्वारा गोयुगल को उठाकर भागने का दृष्टांत)।

**टिप्पणी-** शतपथ ब्राह्मण १.२.३.९ तथा ऐतरेय ब्राह्मण २.८ में पुरोडाश के संदर्भ में वर्णन आता है कि जब देवों ने अवि पशु का आलभन किया तो उसका जो मेध अपक्रान्त हुआ, वह उष्ट्र पशु बन गया। अवि यज्ञीय है, जबकि उष्ट्र अयज्ञीय पशु है। पुराणों और वैदिक साहित्य में उपलब्ध सामग्री के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अवि पशु असि और वरणा नदियों का, अथवा इडा और पिङ्गला नाडियों का प्रतीक है। इनमें एक सूर्य कलावाहिनी है तो दूसरी चन्द्र कला वाहिनी। प्राणायाम की सम्यक् अवस्था में जीवात्मा इन दोनों प्रकार की नाडियों द्वारा संतुलित अवस्था में शक्ति ग्रहण करता रहेगा। लेकिन जैसा कि स्कन्द पुराण में उष्ट्र के पूर्व जन्म के वृत्तांत में कहा गया है, यदि वह प्राणायाम का उपहास करेगा तो उसे उष्ट्रता की प्राप्ति होगी। उष्ट्र के बारे में कहा गया है कि एक आंखों को छोड़कर उसका कोई भी अंग रूपवान नहीं है-ओष्ठ मोटे-मोटे हैं, ग्रीवा अतिदीर्घ है इत्यादि। व्यावहारिक जीवन में भी ऐसा ही देखने को मिलता है कि प्राणों का आकर्षण सम्यक् प्रकार से न होने के कारण मनुष्य के शरीर में उष्ट्र की भांति ही विरूपता आ जाती है, भले ही आधुनिक चिकित्सा विज्ञान उसके लिए अलग-अलग कारण ढूंढता रहे। मनुष्य प्राणों का सम्यक् कर्षण करने में क्यों असमर्थ रहता है, इसका कारण भी पुराणों और वैदिक साहित्य में व्यापक रूप से दिया गया है। कहा गया है कि जब तक जीवात्मा मोह से (विष्णुधर्मोत्तर पुराण), तृष्णा से ग्रस्त रहेगा, तब तक वह प्राणों का सम्यक् कर्षण नहीं कर पाएगा (बौधायन श्रौत सूत्र २.५)। आयुर्वेद में तृष्णा का अर्थ है कि मनुष्य जिस तृषा का अनुभव कर रहा है, उस तृषा की शांति का उपाय जल पान नहीं है, अपितु वात, पित्त अथवा कफ के कारण उत्पन्न दोषों की शान्ति के लिए औषध सेवन है। जीवात्मा के मोह अथवा अज्ञान से ग्रस्त होने के कारण उसको पता ही नहीं चलता कि उसकी व्याधि की शांति का उपाय कहीं और निहित है। अत: वह भौतिक रूप में उपलब्ध आनंददायक वस्तुओं से ही अपनी तृष्णा शांत करना चाहता है। यह वस्तुएं उसके प्राणायाम में बाधा डालकर उसको उष्ट्र बनाती हैं।

उष्ट्रता से मुक्ति का क्या उपाय हो सकता है, इस संदर्भ में स्कन्द पुराण में तो महाकाल क्षेत्र में उष्ट्र के प्रवेश करने और करभेश्वर लिङ्ग के दर्शन से ही उष्ट्र की मुक्ति कही गई है। वैदिक साहित्य में प्राय: त्वष्टा के लिए उष्ट्र के आलभन का उल्लेख आता है (वाजसनेयि संहिता २४.२८, शतपथ ब्राह्मण ७.५.२.३५, पारस्कर गृह्य सूत्र३.१५.५)। हो सकता है कि जिस प्रकार त्वष्टा ने सूर्य को भ्रमि पर रखकर उसके तेज का कर्तन करके सूर्य को रूप प्रदान किया था तथा कर्तित तेज से देवों के अस्त्र बनाए थे, ऐसी ही कोई स्थिति उष्ट्र के लिए भी होती हो। ताण्ड्य ब्राह्मण १.८.१२ में पूषा के लिए उष्ट्र की दक्षिणा दी गई है जिसका निहितार्थ अपेक्षित है। वाजसनेयि संहिता २४.३९ में मति देवी के लिए घृणीवान उष्ट्र का आलभन किया गया है।

उष्ट्र की ग्रीवा दीर्घ होने के संदर्भ में डा० फतहसिंह की धारणा है कि ग्री-विज्ञाने धातु के अनुसार ग्रीवा विज्ञानमय कोश का प्रतीक है। इसका तात्पर्य हुआ कि उष्ट्र में विज्ञानमय कोश तक पहुंचने की शक्ति तो है, लेकिन ग्रीवा के संकुचन की शक्ति उसमें नहीं है। हो सकता है कि पुराणों में उष्ट्र के महाकाल वन में जाने से तात्पर्य इस ग्रीवा के संकोचन से हो और इस स्थिति में भी भौतिक विज्ञान का अनिश्चितता का सिद्धांत (ऊर्जा में अनिश्चितता या प्रसार x समय में अनिश्चितता या प्रसार = स्थिरांक) लागू होता हो।

वैदिक साहित्य में उष्टा शब्द का प्रयोग अनड्वान के लिए हुआ है जो वर्तमान टिप्पणी की धारणा को पुष्ट करता है।

**उष्ण** **देवीभागवत** ७.३० (उष्ण तीर्थ में अभया देवी का वास), **नारद** १.४२.९४ (उष्ण, शीत आदि के स्पर्श तन्मात्रा के अन्तर्गत होने का उल्लेख), **ब्रह्माण्ड** १.२.१४.२५(द्युतिमान-पुत्र उष्ण के देश का उष्ण नाम

होने का उल्लेख), ३.४.३५.८३ (उष्णा : अग्नि की १० कलाओं में मे एक), **भविष्य** १.२४.१८ (चरण-द्वय के उष्ण होने पर प्रशस्त होने का उल्लेख), **मत्स्य** १३.४२ (उष्ण तीर्थ में अभया देवी का वास), १२२.८५ (क्रौंच द्वीप के सात वर्षों में से एक), **वराह** १२६.७६ (अग्नि तीर्थ में हेमन्त ऋतु में उष्ण व उष्णकाल में शीतल होने का उल्लेख), **वायु** ३३.२१ (क्रौञ्च द्वीप-अधिपति द्युतिमान का एक पुत्र), ४९.६६ (क्रौञ्च द्वीप के ७ देशों में से एक), ९९.२७२ (निर्वक्त्र-पुत्र, चित्ररथ-पिता, परीक्षित वंश), **विष्णु** २.४.४८ (क्रौञ्च द्वीप-अधिपति द्युतिमान के ७ पुत्रों में से एक व तदनुसार एक वर्ष का नाम), ४.२१.९ (निचक्नु-पुत्र, विचित्ररथ-पिता, परीक्षित वंश), **विष्णुधर्मोत्तर** १.८.१४ (बदरिकाश्रम में उष्ण तोयवहा गङ्गा होने का उल्लेख), **शिव** ४.३५.७१ (शिव सहस्रनामों में से एक), स्कन्द २.७.२५.१२ (माधव मास व तिथित्रय में उष्णोदक से स्नान के दोष कथन), ४.१.९.७८ (उष्णगु : सूर्य का एक नाम), ४.१.५०.३२ (कद्रू-विनता प्रसंग में सूर्य व उसकी किरणों के लिए उष्ण गो नामों का प्रयोग), ५.३.१९८.७९ (उष्ण तीर्थ में उमा की अभया नाम से प्रतिष्ठा का उल्लेख), **हरिवंश** २.८७.२९ (महादेव के क्रुद्ध होने पर चन्द्रमा के उष्णभा व सूर्य के शीतप्रभ होने का कथन), ३.४ १.५७ (हिरण्यकशिपु की सभा में उष्ण ऋतु में शीत तथा शीत ऋतु में उष्ण होने का उल्लेख), **लक्ष्मीनारायण** २.९५+ (उष्णालय खण्ड में अगस्त्य सहित ११ ऋषियों द्वारा कृष्ण नाम का जप, उष्णालय खंड का उपद्रवों के कारण समुद्र में निमग्न होना, कृष्ण द्वारा ऋषियों की रक्षा), २.२२८.३८ (उष्णाली स्वामी की पूजा आदि से अन्न ऋतु फल की प्राप्ति), २.२९७.९२ (उष्णालयी नारियों के साथ बालकृष्ण का व्यवहार)।

द्र. पयोष्णी, परुष्णी।

**टिप्पणी**- उष्ण शब्द ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में केवल २-३ बार ही प्रकट हुआ है। अथर्ववेद ६.६८.१ में दीक्षा हेतु यजमान का क्षौर कर्म करने हेतु वर्णन आता है कि सविता देव क्षौर कर्म हेतु छुरी/उस्तरा ग्रहण करता है तथा वायु उष्ण उदक लाता है। अन्य देवता अन्य कार्य करते हैं। वायु उष्ण उदक क्यों लाता है, इसका उत्तर नारद पुराण में उष्ण, शीत आदि के स्पर्श तन्मात्रा के अन्तर्गत होने के उल्लेख के आधार पर दिया जा सकता है। स्पर्श तन्मात्रा का वर्गीकरण वायु तत्त्व के अन्तर्गत किया जाता है। डा. फतहसिंह का विचार है कि समाधि अवस्था में केवल आकाश तत्त्व प्रधान होता है। समाधि से व्युत्थान पर अन्य तत्त्वों-वायु, अग्नि, जल, पृथिवी आदि का क्रमशः प्रादुर्भाव होता है।

उष्ण उदक से क्या तात्पर्य है, इसका स्पष्टीकरण हमें वाल्मीकि रामायण में कई स्थानों पर मिलता है। वा.रामायण २.५९.१ व ४.५५.१८ में विरहजनित उष्ण अश्रुओं का उल्लेख है। वा.रामायण ३.२२.५ में राक्षसी द्वारा राम के उष्ण रुधिर पान करने की इच्छा का उल्लेख है। इसका अर्थ यह हुआ कि रामायणकार ने क्रोध आदि की स्थिति में रक्त के उष्ण हो जाने के तथ्य को परोक्ष रूप से स्वीकार किया है। वैदिक कर्मकाण्ड में प्रवर्ग्य कर्म में उबलते हुए घृत में दुग्ध डालकर घर्म उत्पन्न किया जाता है। यह घर्म अतिरिक्त ऊर्जा का प्रतीक कहा जाता है। घर्म की प्रकृति भी उष्ण कही जा सकती है। मुख पर प्रकट होने वाले तेज को भी गर्भोपनिषद १ में उष्ण कहा गया है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि अथर्ववेद ६.६८.१ में श्मश्रु वपन हेतु जिस उष्ण उदक का उल्लेख है, वह मुख के तेज जैसी ही कोई घटना है। शतपथ ब्राह्मण ८.७.२.११ के अनुसार अग्निचिति में प्राण तो स्वयमातृण्णा (नैसर्गिक रूप से छिद्र धारण करने वाली) इष्टका है जबकि आदित्य लोकम्पृणा इष्टका है जो प्राण में उष्णता उत्पन्न करने के लिए उत्तरदायी है। लोक में, उष्णता से रहित प्राण को मृत कहा जाता है। अध्यात्म में, समाधि अवस्था मृत अवस्था के तुल्य है।

ऋग्वेद १०.४.२ में गायों के उष्ण व्रज का उल्लेख आता है। यदि गायों को प्राणों का प्रतीक मान लिया जाए तो इन्द्रियों सहित हमारा यह शरीर उष्ण व्रज कहा जा सकता है। ऐसा संभव है कि हमारी जो सारी इन्द्रियां बहिर्मुखी होकर कार्य कर रही हैं, जो बाहर के संसार से आवेगों को ग्रहण करके उन्हें अन्दर भेज रही हैं और डा. फतहसिंह के शब्दों में जिन्हें आदित्य, आदान करने वाले, कहा जाता है, उसका कारण उष्णता ही हो। जैसे-जैसे उष्णता समाप्त होती है, इन्द्रियां स्वयं ही अन्तर्मुखी होने लगती हैं, हमारे अंग चुम्बक की भांति क्रियाशील होकर हमारी श्वास को ग्रहण करने लगते हैं।

वैदिक साहित्य (जैसे बौधायन श्रौत सूत्र १७.४०, भारद्वाज गृह्य सूत्र २.१२ में उष्ण उदक में शीत उदक तथा शीत उदक में उष्ण उदक ग्रहण करने के उल्लेख आते हैं जिसकी व्यावहारिक व्याख्या अपेक्षित है। पुराणों में सार्वत्रिक रूप से उष्ण तीर्थ में अभया देवी के वास तथा उष्ण के द्युतिमान-पुत्र होने के उल्लेखों की व्याख्या भी अपेक्षित है।

**उष्णीष** **विष्णुधर्मोत्तर** १.१०३.६ (राहु को दातव्य दक्षिणा द्रव्यों में उष्णीश का उल्लेख), **स्कन्द** १.२.१३.१७५ (ब्रह्मचारी द्वारा शतरुद्रिय प्रसंग में शिव की उष्णीश नाम से आराधना), ५.२.६७.१५ (हिमालय पर्वत के लिए जाह्नवी निर्झर रूपी उष्णीष का उल्लेख), **हरिवंश** ४.४.२४ (उष्णीश धारण करके कथा श्रवण के दोष का कथन)।

**महाभारत** द्रोण १४.११ (युद्ध में रक्त की नदी में उष्णीषों की फेन से उपमा), २१.४२ (वही), ९९.५२ (युद्ध रूपी सागर में उष्णीषो की कमठ/कछुओं से उपमा), शान्ति २१७.१२ (सत्त्व आदि तीन गुणों से आवृत्त पुरुष की तीन वस्त्रों से संवृत उष्णीषवान् पुरुष से उपमा), अनुशासन १६८.१४ (भीष्म के दाहसंस्कार के समय नकुल व सहदेव द्वारा भीष्म के सिर पर उष्णीष धारण कराने का उल्लेख)।

**उष्मा** **भविष्य** ४.९३.२४ (वंश का अग्नि के शाप से उष्मा से कल्मषीभूत होने व देवों के वरदान से अग्नि गर्भ धारण करने का उल्लेख)।

**उष्माण** द्र. ऊष्माण

**उस्रा** **स्कन्द** ४.१.२९.३० (गङ्गा सहस्रनामों में से एक, शाब्दिक अर्थ द्योतनात्मिका)।

# परिशिष्ट

## (वैदिक वाक्यांश)

**ईश** (अनुद्धृत अंश)

१. दर्शपूर्ण मास में स्विष्टकृत आहुति : योऽयं देवः पशूनामीष्टे-य इहाहीयत। तस्माद् वास्तव्य इत्याहुः।— श.ब्रा. १.७.३.२

२. ब्रह्मणः प्राशित्रहरणम् : ते देवाः ऊचुर्योऽयं देवः पशूनामीष्टे-अतिसन्धं वा अयं चरति-य इत्थं स्वां दुहितरमस्माकं स्वसारं करोति, विध्येममिति।— श.ब्रा. १.७.४.३

३. मित्रावरुणौ त्वा वृष्टयावताम्। तद्यो वर्षस्येष्टे-स त्वा वृष्ट्यावतु। अयं वै वर्षस्येष्टे योऽयं पवते।--- ताविमौ प्राणोदानौ।— श.ब्रा. १.८.३.१२

४. प्रजापतिर्वा एष भूत्वा-यावत ईष्टे, यावदेनमनु तस्य रेतः सिंचति-यदग्निहोत्रं जुहोति।— श.ब्रा. २.३.४.८

५. दक्षिणादानम् : (आग्नीध्र पर दो या एक आहुति देता है)। अग्निर्वै पशूनामीष्टे।— श.ब्रा. ४.३.४.११

६. देव त्वष्टर्वसु रम। त्वष्टा वै पशूनामीष्टे। पशवो वसु।— श.ब्रा. ३.७.३.११

७. सोमस्य आनयनम् : चत्वारो राजासन्दीमाददते। द्वौ वा ऽस्मै मानुषाय राज्ञऽआददते। अथैतां चत्वारो योऽस्य सकृत्सर्वस्येष्टे।— श.ब्रा. ३.३.४.२६

८. गृहाणां ह पितर ईशते।— श.ब्रा. २.६.१.४२, २.४.२.२४

९. त्र्यम्बक हविर्यागः :- या ह वै सा रुद्रस्य स्वसाऽम्बिका नाम-सा ह वै भगस्येष्टे।— श.ब्रा. २.६.२.१३

१०. शुक्रपात्रम् : पुरुषो वै पशूनामैन्द्रः। तस्मात्पशूनामीष्टे।— श.ब्रा. ४.५.५.७

११. पत्नी : ता हता निरष्टा नात्मनश्चनैशत, न दायस्य चनैशत। (दृष्टव्यःसायण भाष्य)। — श.ब्रा. ४.४.२.१३

१२. एष वै प्रजापतेः प्रत्यक्षतमां-यद्राजन्यः। तस्मादेकः सन् बहूनामीष्टे। चतुरक्षरो प्रजापतिः चतुरक्षरो राजन्यः।— श.ब्रा. ५.१.५.१४

१३. त्वाष्ट्रं दशकपालं पुरोडाशं निर्वपति। त्वष्टा वै रूपाणां ईष्टे। त्वष्ट्रैव तद्रूपैर्वरुणोऽनुसमसर्पत्।— श.ब्रा. ५.४.५.८

१४. एता वै देवाः सवस्येशते। तस्माद्देवस्वो नाम।— श.ब्रा. ५.३.३.१३

१५. भव, शर्व, महादेव, ईशान आदि नामों का निर्वचनः आदित्यो वा ऽईशानः। आदित्यो ह्यस्य सर्वस्येष्टे।— श.ब्रा. ६.१.३.१७

१६. गार्हपत्य अग्नि चयनम् : अदाद्यमोऽवसानं पृथिव्याः। यमो ह वा अस्या अवसानस्येष्टे।— श.ब्रा. ७.१.१.३

१७. विश्वे च वै देवा मरुतश्च वर्षस्येशते।— श.ब्रा. ७.२.२.१०

१८. इमा मे अग्न इष्टका धेनवः सन्तु। अग्निर्हैतासां धेनुकरणस्येष्टे।— श.ब्रा. ९.१.२.१६

१९. --- -मरुतो वै वर्षस्येशते। अश्मस्ते क्षुत् इति निदधाति। तदश्मनि क्षुधं दधाति।----स्थिरो वा अश्मा, स्थिरा क्षुत्। (तुलनीय : ऋग्वेद १०.४३.३ में इन्द्र का क्षुधा का ईश होना) — श.ब्रा. ९.१.२.५

२०. त्वं साहस्रस्य राय ईशिषे इति।— श.ब्रा. ९.२.३.३२

२१. प्राण एव पशुबन्धः। तस्माद्यावज्जीवति। नास्यान्यः पशूनामीष्टे। बद्धा हि अस्मिन् ऐते भवन्ति।— श.ब्रा. ११.८.३१।४

२२. सौत्रामणी यागः :- (इन्द्र के लोहित से) सह अस्रवत। स सिंहो ऽभवत्। आरण्यानां पशूनामीशः।— श.ब्रा. १२.७.१.८

२३. सिंह लोमानि भवन्ति। सह एवेशा-मारण्यानां पशूनामवरुन्धे।— श.ब्रा. १२.७.२.८

२४.-रुद्रो हि पशूनामीष्टे। सुराग्रह--(प्राणा वै पयोग्रहाः, शरीरं सुराग्रहाः— श.ब्रा. १२.७.३.२०

२५. अश्वमेधीय प्रायश्चित्तानि : अथ यदि स्रामो विन्देत्। पौष्णं चरुमनुनिर्वपेत्। पूषा वै पशूनामीष्टे।— श.ब्रा. १३.३.८.२

२६. अग्निर्वा आयुष्मान् आयुष ईष्टे।— श.ब्रा. १३.८.४.८

२७. नहि मन्युः पौरुषेय ईशे हि वः प्रियजात। त्वमिदसि क्षपावान्। (अग्निः) — ऋ. ८.७१.२

२८. विश्वस्यैक ईशिषे सास्युक्थ्यः। (इन्द्रः)— ऋ. २.१३.६

२९. त्वं ह्येक ईशिषे इन्द्र वाजस्य गोमतः। स नो यन्धि महीमिषम्।।— ऋ. ४.३२.७

३०. सं सहसे पुरुमायो जिहीते नमो अस्य प्रदिव एक ईशे। (इन्द्रः) — ऋ. ३.५१.४

३१. मनो न यो ऽध्वनः सद्य एत्येकः सत्रा सूरो वस्व ईशे। (अग्निः) — ऋ. १.७१.९

३२. स विश्वस्य करुणस्येक ईशे (इन्द्रः)— ऋ. १.१००.७

३३. मा त्वा तनदीशिषे वीर्यस्योभयेभ्यः प्र चिकित्सा गविष्टौ।। (सोमः) — ऋ. १.९१.२३

३४. त्वं शर्धो मारुतं पृक्ष ईशिषे। (अग्निः)— ऋ. २.१.६

३५. त्वं भगो नृपते वस्व ईशिषे त्वं पायुर्दमे यस्तेऽविधत्। (अग्निः)— ऋ. २.१.७

३६. मा नो अरातिरीशत देवस्य मर्त्यस्य च। (अग्निः)— ऋ. २.७.२

३७. सेमामविड्ढि प्रभृतिं य ईशिषे-(ब्रह्मणस्पतिः)— ऋ. २.२४.१

३८. दामेव वत्साद् वि मुमुग्ध्यंहो नहि त्वदारे निमिषश्चनेषे (वरुणः) — ऋ. २.२८.६

३९. होत्रादा सोमं प्रथमो य ईशिषे (इन्द्रः)— ऋ. २.३६.१

४०. मा नः स्तेन ईशत माघशंसः (शकुन्त)— ऋ. २.४२.३

४१. अयमग्निः सुवीर्यस्य ईशे महः सौभगस्य। राय ईशे स्वपत्यस्य गोमत ईशे वृत्रहथानाम्।।— ऋ. ३.१६.१

४२. अग्निरीशे बृहतः क्षत्रियस्य। अग्निर्वाजस्य परमस्य रायः।— ऋ. ४.१२.३

४३. अस्य घा वीर ईवतो अग्नेरीशीत मर्त्यः।— ऋ. ४.१५.५

४४. स्थूरस्य रायो बृहतो य ईशे (इन्द्रः) — ऋ. ४.२१.४

४५. उत सखास्यश्विनो उत माता गवामसि। उतोषो वस्व ईशिषे।।— ऋ. ४.५२.३

४६. अग्निरीशे वसव्यस्या अग्निर्महः सौभगस्य। तान्यस्मभ्यं रासते।।— ऋ. ४.५५.८

४७. य आश्वश्वा अमवद् वहन्ते उतेशिरे अमृतस्य स्वराजः। (मरुतः) — ऋ. ५.५८.१

४८. उतेशिषे प्रसवस्य त्वमेक इत् उत पूषा भवसि देव यामभिः।— ऋ. ५.८१.५

४९. अदेव ईशे पुरुहूत योतोः।—ऋ.६.१८.११

५०. मा वः स्तेन ईशत माघशंसः(गावः)— ऋ. ६.२८.७

५१. एतं पिब हरिवः स्थातरुग्र यस्येशिषे प्रदिवि यस्ते अन्नम्।— ऋ. ६.४१.३

५२. हिरण्यजिह्वः सुविताय नव्यसे रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत। (सविता)— ऋ. ६.७१.३

५३. पूषा नः पातु दुरितादृतावृधो रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत।— ऋ. ६.७५.१०

५४. ईशे ह्यग्निः अमृतस्य भूरे ईशे रायः सुवीर्यस्य दातोः।— ऋ. ७.४.६

५५. यदिन्द्र यावतस्त्वम् एतावदहमीशीय— ऋ. ७.३२.१८

५६. अभि यं देवी निर्ऋतिश्चिदीशे नक्षन्त इन्द्रं शरदः सुपृक्षः।— ऋ. ७.३७.७

५७. उत स्वराजो अदितिरदब्धस्य व्रतस्य ये। महो राजान ईशते।। (आदित्याः) — ऋ. ७.६६.६

५८. वाजिनीवती सूर्यस्य योषा चित्रामघा राय ईशे वसूनाम्। (उषाः) — ऋ. ७.७५.५

५९. बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य— ऋ. ७.९७.१०

६०. यो वर्धन ओषधीनां यो अपां यो विश्वस्य जगतो देव ईशे।— ऋ. ७.१०१.२

६१. यदिन्द्राहं यथा त्वं ईशीय वस्व एक इत्।— ऋ. ८.१४.१

६२. वचः दीर्घप्रसद्मनी ईशे वाजस्य गोमतः। ईशे हि पित्वोऽविषस्य दावने।। (मित्रावरुणौ) — ऋ. ८.२५.२०

६३. क्षेमस्य च प्रयुजस्य त्वमीशिषे शचीपत— ऋ. ८.३७.५

६४. ईशिषे वार्यस्य हि दात्रस्याग्ने स्वर्पतिः।— ऋ. ८.४४.१८

६५. मनोर्विश्वस्य घेदिम आदित्या राय ईशते— ऋ. ८.४७.४

६६. मा नो निद्रा ईशत मोत जल्पिः।— ऋ. ८.४८.१४

६७. त्वमीशिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुतानाम्।— ऋ. ८.६४.३

६८. य इन्द्र चमसेष्वा सोमश्चमूषु ते सुतः। पिबेदस्य त्वमीशिषे। यो अप्सु चन्द्रमा इव सोमश्चमूषु ददृशे। पिबेदस्य त्वमीशिषे। यं ते श्येनः पदाभरत् तिरो रजांस्यस्पृतम्। पिबेदस्य त्वमीशिषे।।— ऋ. ८.८२.७

६९. ईशे यो वृष्टे उत उस्रियो वृषा (पवमान सोमः)— ऋ. ९.७४.३

७०. माकिर्नो अस्य परिषूतिरीशतेन्दो जयेम त्वया धनंधनम्।— ऋ. ९.८५.८

७१. ईशे यो विश्वस्या देववीतेरीशे विश्वायुरुषसो व्युष्टौ (अग्निः)— ऋ. १०.६.३

७२. ईशाना वार्याणां क्षयन्तीश्चर्षणीनां। अपो याचामि भेषजम्। (आपः)— ऋ. १०.९.५

७३. सेध राजन्नप स्रिधो वि वो मदे मा नो दुःशंस ईशता विवक्षसे। (सोमः)— ऋ. १०.२५.७

७४. यदीशीयामृतानां उत वा मर्त्यानाम्। जीवेदिन्मघवा मम।— ऋ. १०.३३.८

७५. मा दुर्विदत्रा निर्ऋतिर्न ईशत तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे।— ऋ. १०.३६.२

७६. विषूवृदिन्द्रो अमते उत क्षुधः स इद्रायो मघवा वस्व ईशते।— ऋ. १०.४३.३

७७. य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम। (सार्वत्रिक ऋचा)—ऋ.१०.१२१.३

७८. नहि तेषाममा चन नाध्वसु वारणेषु। ईशे रिपुरघशंसः।।— ऋ.१०.१८५.२

७९. त्वमीशिषे सास्मित्रा सत्सि बर्हिषि-- — ऋ.१०.४४.५

८०. महिम्न एषां पितरश्चनेशिरे देवा देवेष्वदधुरपि क्रतुम्। (विश्वेदेवाः)— ऋ.१०.५६.४

८१. न सेशे यस्य रम्बते अन्तरा सक्थ्या कपृत्। सेदीशे यस्य रोमशं निषेदुषो विजृम्भते विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।। न सेशे यस्य रोमशं निषेदुषो विजृम्भते। सेदीशे-----ऋ.१०.८६.१६

८२. इन्द्रो दिव इन्द्र ईशे पृथिव्या इन्द्रो अपामिन्द्र इत् पर्वतानाम्। इन्द्रो वृधामिन्द्र इन्मेधिराणामिन्द्रः क्षेमे योगे हव्य इन्द्रः— ऋ.१०.८९.१०

८३. द्विपद व चतुष्पद का ईशन— अथर्ववेद २.३४.१, ४.२.१, ६.२८.३, ८.२.२३, ४.२८.६

८४. यावदीशे ब्रह्मणा वन्दमान इमां धियं शतसेयाय देवीम्।— अ.३.१५.३

८५. यस्य नेशे यज्ञपतिर्न यज्ञो नास्य दातेशे न प्रतिग्रहीता। यो विश्वजिद् विश्वभृद् विश्वकर्मा घर्मं नो ब्रूत यतमश्चतुष्पात्।।— अ.४.११.५

८६. सर्वे देवा अतित्रसन् ये संग्रामस्येशते।— अ. ५.२१.७

८७. समुद्र ईशे स्रवतामग्निः पृथिव्या वशी। चन्द्रमा नक्षत्रामीषे त्वमेकवृषो भव।।— अ.६.८६.२

८८. देव संस्फान सहस्रापोषस्येशिषे। तस्य नो रास्व तस्य नो धेहि तस्य ते भक्तिवांसः स्याम— अ.६.७९.३

८९. मृत्युरीशे द्विपदां मृत्युरीशे चतुष्पदां।— अ.८.२.२३

९०. भवो दिवो भव ईशे पृथिव्या भव आ पप्र उर्वन्तरिक्षम्।— अ.११.२.२७

९१. ईशा वशस्य या जाया सास्मिन् वर्णमाभरत् (विवाह/वधू सूक्त ?) — अ.११.८.१७

९२. ईशां वो वेद राज्यं त्रिषंधे अरुणैः केतुभिः सह।— अ.११.१२.२/११.१०.२

९३. मा नो अद्य गवां स्तेनो मावीनां वृक ईशत— अ.१९.४७.६

९४. यो अस्य विश्वजन्मन ईशे विश्वस्य चेष्टतः।— अ.११.६.२३/११.४.२३।

(तैत्तिरीय संहिता नहीं लिखी)

## ईशान

१. इन्द्रश्च सोम गोपती ईशाना पिप्यतं धियः द्वारा इन्द्र व सोम द्वारा प्रजा के ऐश्वर्य व आधिपत्य की प्राप्ति।— जै.ब्रा.१.९५

२. यद् ईशानम् इन्द्र इति प्रतिहरेद् ईशानो यजमानस्य पशून् अभिमानुकस् स्यात्। अथ यत् शानम् इन्द्र इति प्रतिहरति नेशानो यजमानस्य पशून् अभिमन्यते शान्ताः प्रजा एधन्ते।— जै.ब्रा.१.१३३

३.-----पुरूतमं पुरूणां ईशानं वार्याणाम्। इन्द्रं सोमे सचा सुते। स घा नो योग आ भुवत् स राये स पुरंध्याम्। पशवो वै रयिः। ततो वै ते तान् पशून् भूतान् उदसृजन्त।— जै.ब्रा.१.२२६

४. अभि त्वा शूर नोनुमो ऽदुग्धा इव धेनवः। ईशानम् अस्य जगतस् स्वर्दृशम् ईशानम् इन्द्र तस्थुषः।। इति स्तोम्या। न त्वावं अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते। इति स्तोत्रिया— जै.ब्रा.१.२९३

५.--- -ते देवा ईशानं देवं अब्रुवंस् त्वं वै न श्रेष्ठो ऽसि। तम् उद्धारम् उद्धरस्वेति।— जै.ब्रा.२.२५४

६. इन्दुर् इन्द्राय पवते इति देवासो अब्रुवन्। वाचस् पतिर् मखस्यते विश्वस्येशान ओजसा।। इति विश्ववतीर् भवन्ति। वैश्वदेवं हि एतद् अहः।— जै.ब्रा.३.५३

७. ईशाना पिप्यतं धियः।—जै.ब्रा.३.६५,२.१२

८. ईशान इमा भुवनानि वीयस इति वीति सिमानां रूपं। युजान इन्दो हरितस् सुपर्ण्य इति शक्वर्यो वै हरितस् सुपर्ण्यः।— जै.ब्रा.३.८४

९. त्रिणवेन स्तोमेन पंक्तिम् अभ्यक्रन्दत। ततो मरुतो ऽसृजतेशान मुखान्।— जै.ब्रा.३.३८१

१०. तम् अस्यां ऊर्ध्वायां दिशि मरुतो ऽन्वैच्छन्न ईशानमुखाः। ते अन्वविन्दन् यत् श्वेतं रूपं तत्।— जै.ब्रा.३.३८२

११. यद् घर्मः पर्यवर्तयत्। अन्तान्पृथिव्या दिवः। अग्निरीशान ओजसा। 'वरुणो धीतिभिः सह। इन्द्रो मरुद्भिः सखिभिः सह।— तै.ब्रा.१.५.५.२

१२. साकमेध पर्व अनन्तरभावि वपन मन्त्रौ : यो अस्या पृथिव्यास्त्वचि। निवर्तयत्योषधीः। अग्निरीशान ओजसा। वरुणो धीतिभिः सह। इन्द्रो मरुद्भिः सखिभिः सह।— तै.ब्रा.१.५.५.४

१३. ईशानं त्वा भुवनानां अभिश्रियम्। स्तौम्यग्न उरुकृतं सुवीरम्। हविर्जुषाणः सपत्नां अभिभूरसि। जहि शत्रूंरप मृधो नुदस्व।। (अग्निः)— तै.ब्रा.२.४.७.११

१४. ईशाना वार्याणाम्। क्षयन्तीश्चर्षणीनाम्। अपो याचामि भेषजम्।।— तै.ब्रा.२.५.८.५

१५. ब्रह्मणस्पते सुयमस्य विश्वहा। रायः स्याम रथ्यो विवस्वतः। वीरेषु वीरां उपपृङ्धि नस्त्वम्। यदीशानो ब्रह्मणा वेषि मे हवम्।— तै.ब्रा.२.८.५.३

१६.--- -ईशानो मे मन्यौ श्रितः। मन्युर्हृदये। हृदयं मयि। अहममृते। अमृतं ब्रह्मणि।— तै.ब्रा.३.१०.८.९

१७. श्रद्धा देवी प्रथमजा ऋतस्य। विश्वस्य भर्त्री जगतः प्रतिष्ठा। तां श्रद्धां हविषा यजामहे। सा नो लोकममृतं दधातु। ईशाना देवी भुवनस्याधिपत्नीः।— तै.ब्रा.३.१२.३.२

१८. ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशम् इति असौ वाव स्वर्दृक्तेन सूर्य नातिशंसति— ऐ.ब्रा.४.१०

१९. ओंकार की मात्राएं: या सा तृतीया मात्रा ईशानदेवत्या कपिला वर्णेन। यस्तां ध्यायते नित्यं, स गच्छेदैशानं पदं।— गोपथ ब्रा.१.१.२५

२०. ब्रह्मन् इत्येव चतुर्थमामन्त्रयते। त्वं ब्रह्मासि- इतीतरः प्रत्याह। रुद्रोऽसि सुशेवः।----तद्- वीर्याण्येवास्मिन्नेतत् पूर्वेण दधाति। अथैनमेतच्छमयत्येव। तस्मादेव सर्वस्येशानो मृडयति यदेनं शमयति।— श.ब्रा.५.४.४.१२

२१. यान्येतानि देवत्रा क्षत्त्राणि। इन्द्रो वरुणः सोमो रुद्रः पर्जन्यो यमो मृत्युरीशान इति। तस्मात् क्षत्त्रात्परं नास्ति।— श.ब्रा.१४.४.२.२३

२२. यदैतमनुपश्यत्यात्मानं देवमंजसा। ईशानं भूत भव्यस्य न तदा विचिकित्सति।— श.ब्रा.१४.७.२.१८

२३. शारीरक ब्राह्मणम् : स वा अयमात्मा। सर्वस्य वशी। सर्वस्येशानः। सर्वस्याधिपतिः।--एष भूताधिपतिः। एष लोकेश्वरः।— श.ब्रा.१४.७.२.२४

२४: शाण्डिल्य विद्या ग्रन्थः। मनोमय पुरुषोपासना : मनोमयोऽयं पुरुषः भाः सत्यः। तस्मिन्नन्तर्हृदये यथा व्रीहिर्वा यवो वा, एवमयन्तरात्मन्पुरुषः। स एष सर्वस्य वशी। सर्वस्येशानः— श.ब्रा.१४.८.८.१

२५. श्रीमन्थ कर्म ब्राह्मणम् : अथैनमुद्यच्छति- आमोऽस्यामं हि ते मयि। स हि राजा ईशानोऽधिपतिः स मा राजेशानोऽधिपतिं करोतु।— श.ब्रा.१४.९.३.१०

२६. ऋग्वेद में ईशानासः (सायण भाष्य : ऋत्विज)

२७. पुरुष एवेदं सर्वम्। यद्भूतं यच्च भव्यम्। उतामृतत्वस्येशानः। यदन्नेनातिरोहति।— तै. आ. ३.१२.१

२८. हरिं हरन्तं अनुयन्ति देवाः। विश्वस्येशानं वृषभं मतीनाम्। ब्रह्म सरूपमनु मेदमागात्। अयनं मा विवधीर्विक्रमस्व।।— तै.आ.३.१५.१, तै. आ. आ. ४९।

(ऋग्वेद आदि नहीं लिखे)

## ईश्वर

१. (शकट से अवरोहण के समय) : दृंहन्तां दुर्याः पृथिव्याम्। गृहा वै दुर्याः। ते हैत ईश्वरो गृहा यजमानस्य— शतपथ ब्रा.१.१.२.२२

२. यज्ञः :- यस्मात् पराङ् भवति, पराङु हैवास्माद्यज्ञो भवति। स यो हैनं तत्रानुव्याहरेत्- पराङस्माद्यज्ञोऽभूत् इति, ईश्वरो ह यत्तथैव स्यात्।— श.ब्रा.२.१.४.१९,२१

३. प्राणः :- यस्मात् पराङ् भवति, पराङु हैवास्मात् प्राणो भवति। स यो हैनं तत्र अनुव्याहरेत्- पराङस्मात्प्राणोऽभूत् इति, ईश्वरो ह यत्तथैव स्यात्।— श.ब्रा.२.१.४.२०, २२

४. वाजपेयः - तस्येश्वरः प्रजा पापीयसी भवितोरिति।— श.ब्रा.५.१.१.९

५. वयो वा एष रूपं भवति-यो ऽग्निं चिनुते। ईश्वर आर्तिमार्तोः। तस्मान्न वयसोऽग्निचिदश्नीयात्।— श.ब्रा.१०.१.४.१३

६. (दक्षिण हाथ में जुहू और सव्य में उपभृत लेते हैं)। न तथा कुर्यात्। यो हैनं तत्र ब्रूयात्-प्रतिप्रतिं न्वा अयमध्वर्युर्यजमानस्य द्विषंतं भ्रातृव्यमकत्प्रत्युद्यामिनं इति। ईश्वरो ह तथैव स्यात्।— श.ब्रा.११.४.२.१

७. प्रगृह्य बाहू स्रुचौ धारयंति। न तथा कुर्यात्।-- - शूलौ न्वा अयमध्वर्यु बाहू अकृत। शूलबाहुर्भविष्यति। ईश्वरो ह तथैव स्यात्। अथ हैष मध्यमः प्राणः, तस्मादु तमुपन्यच्येवैव धारयेत्।— श.ब्रा.११.४.२.४

८. अथ हैतत् कृपणम्, यो ऽयमणु दीर्घमस्वरमाश्रावयति। यो हैनं तत्र ब्रूयात्, कृपणं न्वा अयमध्वर्युर्यजमानमकत्; द्विषतो भ्रातृव्यस्योपावसायिनमिति। ईश्वरो ह तथैव स्यात्।— श.ब्रा.११.४.२.९

९. पार्श्वत उ हैके स्रुचमुपावहृत्य पर्याहृत्योपभृत्यधिनिदधति। न तथा कुर्यात्।---अतीर्थेन न्वा अयमध्वर्युराहुतीः प्रारौत्सीत्। सं वा शरिष्यते घुणिर्वा भविष्यतीति। ईश्वरो ह तथैव स्यात्।— श.ब्रा.११.४.२.१४

१०. तां हैतामेके सावित्रीमनुष्टुभमन्वाहुः। वाग्वा अनुष्टुप्। तदस्मिन्वाचं दध्म इति। न तथा कुर्यात्।---- आ न्वा अयमस्य वाचमदित, मूको भविष्यतीति। ईश्वरो ह तथैव स्यात्। तस्मादेतां गायत्रीमेव सावित्रीमनुब्रूयात्।— श.ब्रा.११.५.४.१३

११. अथ हैके दक्षिणतस्तिष्ठते वाऽसीनाय वाऽऽन्वाहुः। न तथा कुर्यात्।---बुल्बं न्वा अयमिमजीजनत। बुल्बो भविष्यतीति। ईश्वरो ह तथैव स्यात्।— श.ब्रा.११.५.४.१४

१२. बहिर्द्धा न्वा अयं प्राणेभ्यो दक्षिणा अनैषीत्। न प्राणानददक्षत्। अन्धो वा स्रामो वा बधिरो वा पक्षहतो वा भविष्यतीति। ईश्वरो ह तथैव स्यात्।— श.ब्रा.११.७.२.४

१३. विष्णुक्रमणम् : भस्मनाऽस्य पदमपि वपाम इति वदन्तः। तदु तथा न कुर्यात्।---आसां न्वा अयं यजमानस्यावाप्सीत्। क्षिप्रे परमा सा नावप्स्यते। ज्येष्ठगृह्यं रोत्स्यतीति। ईश्वरो ह तथैव स्यात्।— श.ब्रा.१२.४.१.४

१४. स्वर्ग्यं वा एतत्। यदग्निहोत्रम्।---प्रति न्वा अयं स्वर्गाल्लोकादवारुक्षत्। नास्येदं स्वर्ग्यमिव भविष्यति। ईश्वरो ह तथैव स्यात्।— श.ब्रा.१२.४.२.७

१५. अग्निहोत्रम् : परासिचत न्वा अयमग्निहोत्रम्। क्षिप्रे ऽयं यजमानः परासेक्ष्यत् इति। ईश्वरो ह तथैव स्यात्।— श.ब्रा.१२.४.२.९

१६. यस्याग्नावग्निमभ्युद्धरेयुः। किं तत्र कर्म। का प्रायश्चित्तिः ? ईश्वरौ वा एतौ संपाद्याशांतौ यजमानस्य प्रजां च पशूंश्च निर्दहतः।— श.ब्रा.१२.४.३.४

१७. (आहवनीय अननुगत रहने पर) गार्हपत्यः अनुगच्छेत्। (तो क्या प्रायश्चित्त है ?) तं हैके तत एव प्राञ्चमुद्धरन्ति। प्राणा वा अग्नयः। प्राणानेवास्मा एतदुद्धराम इति वदन्तः। तदु तथा न कुर्यात्। प्राचो न्वा अयं यजमानस्य प्राणान् प्रारौत्सीत्। मरिष्यत्ययं यजमानः। ईश्वरो ह तथैव स्यात्।— श.ब्रा.१२.४.३.६

१८. (आहवनीय अननुगत रहते हुए) गार्हपत्य अनुगच्छेत्। अथ हैके प्रत्यंचमाहरन्ति। प्राणोदानाविमाविति वदन्तः। न तथा कुर्यात्। स्वर्ग्यं वा एतत्। यदग्निहोत्रम्।---- -नास्येदं स्वर्ग्यमिव भविष्यतीति। ईश्वरो ह तथैव स्यात्।— श.ब्रा.१२.४.३.७

१९. अथ हैकेऽन्यं गार्हपत्यं मन्थन्ति। तदु तथा न कुर्यात्।----अग्नेर्न्वा अयमधिद्विषन्तं भ्रातृव्यमजीजनत। क्षिप्रेऽस्य द्विषन् भ्रातृव्यो जनिष्यते। प्रियतमं रोत्स्यति इति। ईश्वरो ह तथैव स्यात्।— श.ब्रा.१२.४.३.८

२०. अथ हैके अनुगमय्यान्यं मन्थन्ति। तस्याशां नेयात्। अपि यत् परिशिष्टमभूत्। तदजीजसत। नास्य दायादश्चन परिशेक्ष्यत इति। ईश्वरो ह तथैव स्यात्। —श.ब्रा.१२.४.४.९

२१. (दीर्घसत्री के अग्निहोत्र करते हुए मरने पर): तं हैके ग्रामाग्निना दहंति। न तथा कुर्यात्। एष वै विश्वात्

क्रव्यादग्निः। स हैनं ईश्वरः सपुत्रं सपशुं समत्तोः।— श.ब्रा.१२.५.१.१४

२२. अथ हैके-प्रदव्येन दहन्ति। न तथा कुर्यात्। एष वा अशान्तोऽग्निः। स हैनमीश्वरः सपुत्रं सपशुं प्रदग्धोः।— श.ब्रा.१२.५.१.१५

२३. अथ हैके उल्मुक्येन दहंति। न तथा कुर्यात्। एष वै रुद्रियो ऽग्निः। स हैनमीश्वरः सपुत्रं सपशुमभिमन्तोः। १६। अथ हैके अन्तरेणाग्नींश्चितिं चित्वा तमग्निभिः समुपोषन्ति। ---- क्षिप्रेऽस्याशसनं जनिष्यते। प्रियतमं रोत्स्यतीति। ईश्वरो ह तथैव स्यात्।— श.ब्रा.१२.५.१.१७

२४. ईश्वरो वा एष आर्तिमार्तोः। यो ब्रह्मणे देवेभ्योऽप्रतिप्रोच्याश्वं बध्नाति।— श.ब्रा.१३.१.२.४

२५. ईश्वरो वा एष पराङ्प्रदघोः। यः पराचीराहुतीर्जुहोति। पुनरावर्तते। अस्मिन्नेव लोके प्रतितिष्ठति।— श.ब्रा.१३.१.३.४

२६. अग्निः पशुरासीत्।---यावानग्नेर्विजयः। यावान् लोकः। यावदैश्वर्यं तावांस्ते विजयः।— श.ब्रा.१३.२.७.१३

२७. वायुः पशुरासीत्।---- -सूर्यः पशुरासीत्।— श.ब्रा.१३.२.७.१५

२८. रश्मिना वा अश्वो यतः। ईश्वरो वा अश्वोऽयतोऽधृतोऽप्रतिष्ठितः परां परावतं गन्तोः।— श.ब्रा.१३.३.३.५

२९. पारिप्लव : सर्वासां विशामैश्वरयमाधिपत्यं गच्छति।— श.ब्रा.१३.४.३.१५

३०. अंतरतरम्-यदयमात्मा। स योऽन्यमात्मनः प्रियं ब्रुवाणं ब्रूयात्। प्रियं रोत्स्यतीति। ईश्वरो ह तथैव स्यात्। आत्मानमेव प्रियमुपासीत।— श.ब्रा.१४.४.२.१९

३१. पुत्रमन्थ कर्म ब्राह्मणम् : स य इच्छेत्। पुत्रो मे गौरो जायेत। वेदमनुब्रुवीत। सर्वमायुरियात्। क्षीरौदनं पाचयित्वा। सर्पिष्मंतमश्नीयाताम्। ईश्वरौ जनयितवै।---दध्योदनं---उदौदनं--तिलौदनं---- मांसौदनम्— श.ब्रा.१४.९.४.१३

३२. अतिथिमिति पदं भवति नैतत्कुर्यादित्याहुरीश्वरो ऽतिथिरेव चरितोः।— ऐतरेय आरण्यक १.१.१

३३. तदेतत्पुष्पं फलं वाचो यत्सत्यं स हेश्वरो यशस्वी कल्यणकीर्तिर्भवितोः— ऐ.आ.२.३.६

३४. वाचि वै तदैन्द्रं प्राणं न्यचायन्नित्येतत्तदुक्तं भवति। स हेश्वरो यशस्वी कल्याणकीर्तिर्भवितोरीश्वरो ह तु पुरायुषः प्रैतोरिति— ऐ.आ.२.३.५

३५. मध्यं ह्येषामंगानामात्मा मध्यं छन्दसां बृहती। स हेश्वरो यशस्वी कल्याणकीर्तिर्भवितोरीश्वरो ह तु पुरायुषः प्रैतोरिति।— ऐ.आ.२.३.५

३६. मेक्षाम्यूर्ध्वस्तिष्ठन् मा मा हिंसिषुरीश्वराः।— अथर्ववेद ७.१०२.१/७.१०७.१

३७. उतामृतत्वस्येश्वरो यदन्येनाभवत् सह। (पुरुष सूक्त)— अथर्ववेद १९.६.४

३८. प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे। यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्त्सर्वं प्रतिष्ठितम्।— अथर्ववेद११.६.१/११.४.१

३९. प्राणो ह सर्वस्येश्वरो यच्च प्राणति यच्च न।— अथर्ववेद ११.६.१०/११.४.१०

४०. ईश्वरो वा एष पराङप्रदघः। यो यूपं रोहति। हिरण्यमध्यवरोहति। अमृतं वै हिरण्यम्।------- बस्ताजिनमध्यवरोहति— तै.ब्रा.१.३.७.७

४१. रुद्रो वा एषः। यदग्निः। स आधीयमान ईश्वरो यजमानस्य पशून्हिंसितोः। संप्रियः पशुभिः भुवदित्याह।— तै.ब्रा.१.१.८.४

४२. एकधा तेजस्विनी देवतामुपैतीत्याहुः। सैनमीश्वरा प्रदह इति।— तै.ब्रा.१.३.१.४, १.३.१.६

४३. एष वै मनुष्याणां यज्ञः। देवानां वा इतरे यज्ञाः। तेन वा एतत्पितृलोके चरति। प्रजापते न त्वदेतानि इति मन्त्र से गार्हपत्य देश को प्रत्यागमन करता है। यः पितृभ्यः करोति। स ईश्वरः प्रमेतोः।---पितृलोके वा एतद्यजमानश्चरति। यत्पितृभ्यः करोति। स ईश्वर आर्तिमार्तोः।— तै.ब्रा.१.३.१०.१०

४४. ईश्वरो वा एष दिशो ऽनून्मदितोः। यं दिशोऽनुव्यास्थापयन्ति। दिशामवेष्टयो भवन्ति। दिक्ष्वेव प्रतितिष्ठत्यनुन्मादाय।— तै.ब्रा.१.८.३.१

४५. ईश्वरं तं यशोऽर्तोरित्याहुः। यस्यां ते व्याचष्ट इति।— तै.ब्रा.२.२.१.६

४६. घर्मो वा एषो ऽशान्तः। अर्धमासेऽर्धमासे प्रवृज्यते। यत्पुरोडाशः। स ईश्वरो यजमानं शुचाऽप्रदहः। पर्यग्निं करोति। पशुमेवैनमकः। शान्त्या अप्रदाहाय।— तै.ब्रा.३.२.८.५

४७. चक्षुर्वै सत्यम्। सत्येनैवैनदभिघारयति। ईश्वरो वा एषोऽन्धी भवितोः। यश्चक्षुषाऽऽज्यमवेक्षते। निमील्यावेक्षेत। दाधाराऽऽत्मन्चक्षुः।— तै.ब्रा.३.३.५.२

४८. ईश्वरो वा अश्वः प्रमुक्तः परां परावतं गन्तोः। इह धृतिः स्वाहेह विधृतिः स्वाहेह रन्तिः स्वाहेह रमति स्वाहेति चतृषु पत्सु जुहोति। एता वा अश्वस्य बन्धनम्।— तै.ब्रा.३.८.९.३

४९. ४ दिशाएं। चारों से परिग्रहण करता है।— तै.ब्रा.३.८.१२.२

५०. ईश्वरो वा अश्वः प्रमुक्तः परां परावतं गन्तोः। यत्सायंधृतीर्जुहोति। अश्वस्य यत्यै धृत्यै।— तै.ब्रा.३.९.१३.२

५१. एवं हीश्वरा या दीक्षिता जाया पुत्रं लभेतेति।— गोपथ ब्रा. १.३.२३

५२. शं नो भव हृद आ पीत इन्दो पितेव सोम सूनवे सुशेवः इति। आत्मानं प्रत्यभिमृशति। ईश्वरो वा एषोऽप्रत्यभिमृष्टो यजमानस्यायु प्रत्यवहर्तुमनर्हन् मा भक्षयेदिति।— गो.ब्रा.२.३.६

५३. जागृयाद् रात्रिम्। यावदु ह वै न वा स्तुवते न वा शस्यते तावदीश्वरा असुरा रक्षांसि च यज्ञमन्ववनयन्ति।— गो.ब्रा.२.५.५

५४. एषा ह वै यज्ञस्य पुरोगवी यद् दक्षिणा। यथार्हामः स्रस्तमतिरेतदन्त्येतेष एवेश्वर उन्नेता।— गो.ब्रा.२.६.१४

५५. पशोर्वै प्रतिमा पुरोडाशः। स नायजुष्कमभिवास्यः। वृथेव स्यात्। ईश्वरा यजमानस्य पशवः प्रमेतोः। सं ब्रह्मणा पृच्यस्वेत्याह। प्राणा वै ब्रह्म। प्राणाः पशवः।— तै.ब्रा.३.२.८.८

५६. (होता) यद्विच्छन्दसः कुर्याद् ग्रीवासु तद् गण्ड दध्यादीश्वरो ग्लावोजनितोः।— ऐ.ब्रा.१.२५

५७. ईशान दिशा : सैषा दिगपराजिता। तस्मादेतस्यां दिशि यतेत वा यातयेद्वेश्वरो हानृणाकर्तोः।— ऐ.ब्रा.१.१४

५८. ईश्वरौ वा एतौ संयन्तौ यजमानं हिंसितोर्यश्चासौ पूर्व उद्धृतो भवति यमु चैनमपरं प्राणयन्ति।-- -(पहली अग्नि जिसे उत्तरवेदी पर लाकर स्थापित करते हैं। दूसरी अग्नि जिसे आग्नीध्र-धिष्ण्य के प्रति लाते हैं। यह दो अग्नियां ईश्वर हैं।)— ऐ.ब्रा.१.३०

५९. ईश्वरो ह यद्यप्यन्नो यजेताथ होतारं यशोऽर्तोस्तस्मादनु ब्रुवतैव अनुप्रपत्तव्यम्। (यद्यपि होता यागकर्ता नहीं होता, किन्तु अनुव्रजन करते होता को) यशः कीर्ति अर्तो, ईश्वरो ह प्राप्तुं समर्थैव।— ऐ.ब्रा.२.२०

६०. तद्धैक आहुस्तान्वो मह इति शंसेत्-- -यदेतां शंसेदीश्वरः पर्जन्योऽवर्षोः। पिन्वन्त्यप इत्येव शंसेत्।— ऐ.ब्रा.३.१८

६१. यदेना एषिष्यमाणस्य संनिर्वपेदीश्वरो हास्य वित्ते देवा अरन्तो (अक्रीडितुं)— ऐ.ब्रा.३.४८

६२. यदि सोमं ब्राह्मणानां स भक्षो----यदा वै क्षत्रियाय पापं भवति ब्राह्मणकल्पोऽस्य प्रजायामाजायत ईश्वरो हास्माद् द्वितीयो वा तृतीयो वा ब्राह्मतामभ्युपैतोः-- -अथ यदि दधि वैश्यानां स भक्षो----यदा वै क्षत्रियाय पापं भवति वैश्यकल्पो ऽस्य प्रजायामाजायत ईश्वरो हास्माद् द्वितीयो वा तृतीयो वा वैश्यतामभ्युपैतोः----अथ यद्यपः शूद्राणां स भक्षः----यदा वै क्षत्रियाय पापं भवति शूद्रकल्पोऽस्य प्रजायामाजायत ईश्वरो हास्माद् द्वितीयो वा तृतीयो वा शूद्रतामभ्युपैतोः— ऐ.ब्रा.७.२९

६३. अवरोध आदि भक्षण : ईश्वरो ह वा एषोऽप्रत्यभिमृष्टो मनुष्यस्यायुः प्रत्यवहर्तारनर्हन्मा भक्षयतीति— ऐ.ब्रा.७.३३

६४. कल्पते ह वा अस्मै योगक्षेम उत्तरोत्तरिणीं ह श्रियमश्नुतेऽश्नुते ह प्रजानामैश्वर्यं आधिपत्यं य एवमेता अनु देवता एतामासन्दीमारोहति क्षत्रियः सन्।— ऐ.ब्रा.८.६

६५. यदसर्वेण वाचोऽभिषिक्तो भवतीश्वरो ह तु पुरायुषः प्रैतो इति।----ईश्वरो ह सर्वमायुरैतोः सर्वमाप्नोद्विजयेनेत्यु ह स्माह उद्दालक आरुणिः— ऐ.ब्रा.८.७

६६. अश्नुते ह प्रजानामैश्वर्यं आधिपत्यं य एवमेताममित्राणां व्यपनुत्तिं ब्रुवन्गृहानभ्येति।— ऐ.ब्रा.८.११

६७. अति ब्रह्मवर्चसं क्रियत इत्याहुरीश्वरो दुश्चर्मा भवितोरिति।— बौ.श्रौ.सू.१३.१७

६८. अथ वा यस्यैष धिष्णियो हीयते सो अनुध्यायति स ईश्वरो रुद्रो भूत्वा प्रजां पशून्यजमानस्य शमयितो— बौ.श्रौ.सू.१४.३.५

६९. यो वै सोमस्याभिषूयमाणस्य प्रथमो अंशु स्कन्दति स ईश्वर इन्द्रियं वीर्यं प्रजां पशून्यजमानस्य निर्हन्तोः-----उपायः— बौ.श्रौ.सू.१४.४.१२

७०. --- प्रथमं मेधाकामस्य मध्यतो रुक्कामस्य ता वा एताः क्षीरे शृता भवन्ति ता यत्सह सर्वा निर्वपेदीश्वरा एनं प्रदहो द्वे प्रथमे निरुप्य धातुस्तृतीयं निर्वपेत्।— बौ.श्रौ.सू.१४.१९.५

७१. वायुः पशुरासीदादित्यः पशुरसीदितीश्वरो अवघ्रातोरित्येतस्मिन्काल आहवनीये स्रुवाहुतिं जुहोति।— बौ.श्रौ.सू.१५.२७

७२. अग्निर्वै कामो देवानामीश्वरः।— शांखायन श्रौ.सू.१६.१०.६

७३. स यदोपतापी स्याद् यत्रास्य समं सुभूमिस्पष्टं स्यात् तद् ब्रूयाद् इह मे अग्निं मन्थतेति। ईश्वरो हागंदो भवितोः।— जैमिनीय ब्रा. १.४६

७४. अरण्यं इव वा एते यन्ति ये बहिष्पवमानं सर्पन्ति। तान् ईश्वरो रक्षो वा हन्तोर् अन्या वा नंष्ट्रा। अथ द्वितीयां जुहोति— जै.ब्रा.१.८३

७५. तिसृभिर् अन्तरिक्षात् तिसृभिर् दिवं गमयन्ति। स्वर्गलोको यजमानो भवति। ईश्वरो ह तु प्रमायुको भवितोः।— जै.ब्रा.१.८७

७६. एतेन (यज्ञायज्ञीयेन) ह स्म वै पुरा सर्वाणि स्तोत्राणि स्तुवन्ति। तद् आहुर् ऊर्ध्वा वा एते स्वर्गं लोकं रोहन्ति ये यजन्ते। त ईश्वराः परांचो अतिपत्तोर् इति तद् यज्ञायज्ञीयेनोपरिष्टात् स्तुवन्ति।— जै.ब्रा.१.१७३

७७. आपो वा इदम् अग्रे महत् सलिलम् आसीत्। तद् अपाम् एवैश्वर्यं आसीत्। यद् अपाम् एवैश्वर्यम् आसीद् अपां राज्यम् अपाम् अन्नाद्यं तद् अग्निर् अभ्यध्यायन् ममेदम् ऐश्वर्यं मम राज्यं ममान्नाद्यं स्याद् इति। स एतम् अग्निष्टोम संपदम् अपश्यत्।— जै.ब्रा.१.२३७

७८. --- अदन्ति ह वा अमुष्ममिन् लोके पशवः पुरुषम्। तस्माद् उ ह गोर् अन्ते नग्नो न स्यात्। ईश्वरो हास्माद् अपक्रमितोस् त्वचं अस्य बिभर्मीति।— जै.ब्रा.२.१८२

७९. तद् उ विराजो ऽन्नाद्यस्यैश्वर्यम् आधिपत्यं गच्छन्ति।— जै.ब्रा.२.३३९

८०. यद् गायत्र्या अध्य् उत्तिष्ठेयुर् ईश्वरा अप्रतिष्ठिताश् चरितोः।— जै.ब्रा.२.३४९

८१. अग्नी रात्रि असौ आदित्यो अहरेते एव भंगे ईट्ट ईश्वरो भूतं च भविष्यद्याज्ञातोर्य एवं वेद।— काठक सं. ७.६

८२. --- बिभ्यति वै देवेभ्यः पशवो देवानामेष एको योऽग्निमुपतिष्ठते। ते ऽस्मादीश्वराः प्रत्रसस्संहितासि विश्वरूपेत्येतानि वै गोर्नामानि— काठक सं ७.७

८३. तस्मादपि ये ऽल्पा पशवस्ते नक्तं बहव इव दृश्यन्ते त ईश्वरा अमुं लोकमनुपदो— काठक सं. ७.८

८४. ईश्वरं वा एता उभौ यशोऽर्तोर्यो व्याचष्टे यश्च दक्षिणत आस्ते— काठक सं. ९.१६

८५. एकमेव दद्याद् त्रिवृतं तु त्रिवृद्धि प्राणो बहु वा एतदन्यदन्यज्जुहोति स ईश्वरो ऽन्यद्रूपं— काठक सं११.२

८६. ---अतः प्राचीनमोषधयो रौद्रीः प्रतीचीनं शुष्यन्ति प्राचीनं शुष्यन्ति प्रतीचीनं प्रत्यक्षमेवैना ऋध्नोतीश्वरो दुश्चर्मा भवितोर्य एतया यजते।— काठक सं. ११.५

८७. षड्वा ऋतव ऋतुष्वेव प्रतितिष्ठतीश्वरस्तु तदति दुश्चर्मैव भवितो तेजांसि ह्येष प्रत्यारोहन्नेति— काठक सं.११.५

८८. सर्वाणि वा एतानीन्द्रियाणि वीर्याणि यत् पृष्ठानि तान्येनमीश्वराण्यनायतनानि निर्मृजो व्यतिषजेद्— काठक सं. १२.५

८९. ईश्वराणि वा एनमेतानि छन्दांसि अशान्तानि निर्मजः पशुमालभेत शान्त्या अनिर्मार्गाय।— काठक सं. १२.८

९०. एष वै रुद्रः पशुश्रपण एव ईश्वरो वा एष एतमतोऽनूत्थाय हन्तोः— काठक सं २२.११

९१. दीक्षितम् : पत्नीं तु न संयाजयेदमेध्या वा एषापूता नेश्वरा स्वर्गलोकं गन्तोः तामुदयनीये संयाजयति— काठक सं. २३.९

९२. अनग्नौ वा एतामाहुतिं जुहोति तामीश्वराणि रक्षांस्यनूदय्य हन्तोर्यदपो निनयति शान्त्या एव— काठक सं. २४.४

९३. अग्निर्वा एष वैश्वानर उपावसृज्यते यदग्निष्टोमस्स ईश्वरो ऽशान्तो यजमानं च सदस्यांश्चाभ्युषः प्रोर्णुवीत यजमान आत्मनो ऽनभिदाहाय।— काठक सं. २६.१

९४. अग्निना वा एष तन्वं विपरिधत्ते तानूनप्त्रे सैनमीश्वरा हिंसितोः— काठक सं. २६.२

९५. यात्मनस्तां पूर्वां ब्रूयाद्यदितरस्य पूर्वां ब्रूयादीश्वरो निकमो— काठक सं.२६.२

९६. ईश्वरो यज्ञो विवृहो यदुक्थं विगृह्णाति— काठक सं. २७.१०

९७. सोमपा वा एते ब्राह्मणास्तेषां तेजस्वीनि चक्षूंष्यरातीयन्ति वा एते ददते त एनमीश्वराः प्रतिनुदस्तेभ्य एव नमस्करोति— काठक सं. २८.४

९८. पात्नीवतम् : वज्रो वा एष पुरस्तात् संमीयते यदेकादशिनी स ईश्वरः प्रत्यंचं यज्ञं संपुरो यत् पात्नीवतो मीयते— काठक सं. ३०.१

९९. पात्नीवतम् : परांच इव ह्येते न रोहन्ति त ईश्वराः प्रमेतो— काठक सं. ३०.५

१००. स ईश्वरो यजमानो ऽपशुः पराभवितोर्ये बध्यमानमनुबध्यमानाः— काठक सं. ३०.९

१०१. पुरोडाश— काठक सं ३१.७

१०२. छन्दोभिर्हि पराङ् रोहति स ईश्वरः प्रमेतोः।— काठक सं. ३२.५

१०३. असुर्यं वा एतस्माद्वर्णं कृत्वा तेज इन्द्रियं वीर्यं प्रजा पशवो ऽपक्रामन्ति यस्य यूपो विरोहति स ईश्वर ईजानः पापीयान् भवति— काठक सं.३४.२

१०४. अग्नये वीतमन्यवे स्वाहेति जुहुयादीश्वरो वा अभिचरो ऽशान्तः प्रत्यङ्डेता शान्त्यै।— काठक सं.३७.१४

(तैत्तिरीय संहिता, मैत्रायणी संहिता नहीं देखे।)

## उक्थ

१. वाय उक्थेभिर्जरन्ते त्वामच्छा जरितारः। सुतसोमा अहर्विदः।।— ऋग्वेद १.२.२

२. त्वां स्तोमा अवीवृधन् त्वामुक्था शतक्रतो। त्वां वर्धन्तु नो गिरः।।— ऋ.१.५.८

३. एवा ह्यस्य काम्या स्तोम उक्थं च शंस्या। इन्द्राय सोमपीतये।।— ऋ.१.८.१०

४. उक्थमिन्द्राय शंस्यं वर्धनं पुरुनिष्षिधे। शक्रो यथा सुतेषु णो रारणत् सख्येषु च।।— ऋ.१.१०.५

५. इन्द्रः सहस्रदाव्नां वरुणः शंस्यानाम्। क्रतुर्भवत्युक्थ्यः।।— ऋ.१.१७.५

६. स रेवाँ इव विश्पतिर्दैव्यः केतुः शृणोतु नः। उक्थैरग्निर्बृहद्भानुः।।— ऋ.१.२७.१२

७. मिमीहि श्लोकमास्ये पर्जन्य इव ततनः। गाय गायत्रमुक्थ्यम्।।— ऋ.१.३८.१४

८. प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं वदत्युक्थ्यम्।— ऋ.१.४०.५

९. उक्थेभिरर्वागवसे पुरूवसू अर्कैश्च नि ह्वयामहे।— ऋ.१.४७.१०

१०. सास्मासु धा गोमदश्वावदुक्थ्यमुषो वाजं सुवीर्यम्।।— ऋ.१.४८.१२

बृहत् स्वश्चन्द्रममवद् यदुक्थ्यमकृण्वत भियसा रोहणं दिवः।— ऋ.१.५२.९

११. उक्था वा यो अभिगृणाति राधसा दानुरस्मा उपरा पिन्वते दिवः।।— ऋ.१.५४.७

१२. अस्येदु प्र ब्रूहि पूर्व्याणि तुरस्य कर्माणि नव्य उक्थैः।— ऋ.१.६१.१३

१३. धनस्पृतमुक्थ्यं विश्वचर्षणिं तोकं पुष्येम तनयं शतं हिमाः।।— ऋ.१.६४.१४

१४. वीळु चिद् दृळ्हा पितरो न उक्थैरद्रिं रुजन्नङ्गिरसो रवेण।— ऋ.१.७१.२

१५. सहस्राक्षो विचर्षणिरग्नी रक्षांसि सेधति। होता गृणीत उक्थ्यः।।— ऋ.१.७९.१२

१६. तस्मिन् ब्रह्माणि पूर्वथेन्द्र उक्था समग्मतार्चन्ननु स्वराज्यम्।।— ऋ.१.८०.१६

१७. अधि द्वयोरदधा उक्थ्यं वचो यतस्रुचा मिथुना या सपर्यतः।— ऋ.१.८३.३

१८. ग्रावा यत्र वदति कारुरुक्थ्यस्तस्येदिन्द्रो अभिपित्वेषु रण्यति।— ऋ.१.८३.६

१९. इन्द्राय नूनमर्चतोक्थानि च ब्रवीतन। सुता अमत्सुरिन्दवो ज्येष्ठं नमस्यता सहः।।— ऋ.१.८४.५

२०. अस्य वीरस्य बर्हिषि सुतः सोमो दिविष्टिषु। उक्थं मदश्च शस्यते।।— ऋ.१.८६.४

२१. यस्याजस्रं शवसा मानमुक्थं परिभुजद् रोदसी विश्वतः सीम्।— ऋ.१.१००.१४

२२. नव्यं तदुक्थ्यं हितं देवासः सुप्रवाचनम्।— ऋ.१.१०५.१२

२३. अग्ने तव त्यदुक्थ्यं देवेष्वस्त्याप्यम्।— ऋ.१.१०५.१३

२४. स नो नव्येभिर्वृषकर्मन्नुक्थैः पुरां दर्तः पायुभिः पाहि शग्मैः।— ऋ.१.१३०.१०

२५. अथा दधाते बृहदुक्थ्यं वय उपस्तुत्यं बृहद् वयः।।— ऋ.१.१३६.२

२६. उक्थैर्य एनोः परिभूषति व्रतं स्तोमैराभूषति व्रतम्।।— ऋ.१.१३६.५

२७. अभी नो अग्न उक्थमिज्जुगुर्या द्यावाक्षामा सिन्धवश्च स्वगूर्ताः।— ऋ.१.१४०.१३

२८. आ शासते प्रति हर्यन्त्युक्थेमा हरी वहतस्ता नो अच्छ।।— ऋ.१.१६५.४

२९. असद् यथा न इन्द्रो वन्दनेष्ठास्तुरो न कर्म नयमान उक्था।।— ऋ.१.१७३.९

३०. ता वामद्य तावपरं हुवेमोच्छन्त्यामुषसि वह्निरुक्थैः।— ऋ.१.१८४.१

३१. अत्रिमनु स्वराज्यमग्निमुक्थानि वावृधुः।— ऋ.२.८.५

३२. अमर्त्यं चिद् दासं मन्यमानमवाभिनदुक्थैर्वावृधानः।।— ऋ.२.११.२

३३. उक्थेष्विन्नु शूर येषु चाकन् त्स्तोमेष्विन्द्र रुद्रियेषु च।— ऋ.२.११.३

३४. बृहन्त इन्नु ये ते तरुत्रोक्थेभिर्वा सुम्नमाविवासान्।— ऋ.२.११.१६

३५. तदाहना अभवत् पिप्युषी पयोऽंशोः पीयूषं प्रथमं तदुक्थ्यम्।।— ऋ.२.१३.१

३६. समानो अध्वा प्रवतामनुष्यदे यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः।।— ऋ.२.१३.२

३७. विश्वा एकस्य विनुदस्तितिक्षते यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः।।— ऋ.२.१३.३

३८. असिन्वन् दंष्ट्रैः पितुरत्ति भोजनं यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः।।— ऋ.२.१३.४

३९. तं त्वा स्तोमेभिरुदभिर्न वाजिनं देवं देवा अजनन् त्सास्युक्थ्यः।।— ऋ.२.१३.५

४०. स शेवधिं नि दधिषे विवस्वति विश्वस्यैक ईशिषे सास्युक्थ्यः।।— ऋ.२.१३.६

४१. यश्चासमा अजनो दिद्युतो दिव उरुरूर्वा अभितः सास्युक्थ्यः।।— ऋ.२.१३.७

४२. ऊर्जयन्त्या अपरिविष्टमास्यमुतैवाद्य पुरुकृत् सास्युक्थ्यः।।— ऋ.२.१३.८

४३. अरज्जौ दस्यून् त्समुनब्दभीतये सुप्राव्यो अभवः सास्युक्थ्यः।।— ऋ.२.१३.९

४४. षळस्तभ्ना विष्टिरः पञ्च संदृशः परि परो अभवः सास्युक्थ्यः।।— ऋ.२.१३.१०

४५. जातूष्ठिरस्य प्र वयः सहस्वतो या चकर्थ सेन्द्र विश्वास्युक्थ्यः।।— ऋ.२.१३.११

४६. नीचा सन्तमुदनयः परावृजं प्रान्धं श्रोणं श्रवयन् त्सास्युक्थ्यः।।— ऋ.२.१३.१२

४७. आविस्तत् कृष्व यदसत् त उक्थ्यं बृहस्पते वि परिरापो अर्दय।।— ऋ.२.२३.१४

४८. सीव्यत्वपः सूच्याच्छिद्यमानया ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यम्।। (दे.राका)— ऋ.२.३२.४

४९. ऋतावानं यज्ञियं विप्रमुक्थ्यमा यं दधे मातरिश्वा दिवि क्षयम्।— ऋ.३.२.१३

५०. मन्द्रं होतारं शुचिमद्वयाविनं दमूनसमुक्थ्यं विश्वचर्षणिम्।— ऋ.३.२.१५

५१. प्रेद्वग्निर्वावृधे स्तोमेभिर्गीर्भिः स्तोतॄणां नमस्य उक्थैः।— ऋ.३.५.२

५२. अग्निं वर्धन्तु नो गिरो यतो जायत उक्थ्यः।— ऋ.३.१०.६

५३. प्र वामर्चन्त्युक्थिनो नीथाविदो जरितारः। इन्द्राग्नी इष आ वृणे।।— ऋ.३.१२.५

५४. अग्निमुषसमश्विना दधिक्रां व्युष्टिषु हवते वह्निरुक्थैः।— ऋ.३.२०.१

५५. तं शुभ्रमग्निमवसे हवामहे वैश्वानरं मातरिश्वानमुक्थ्यम्।— ऋ.३.२६.२

५६. उक्थेषु कारो प्रति नो जुषस्व मा नो नि कः पुरुषत्रा नमस्ते।।— ऋ.३.३३.८

५७. विवस्वतः सदने अस्य तानि विप्रा उक्थेभिः कवयो गृणन्ति।।— ऋ.३.३४.७

५८. रारन्धि सवनेषु ण एषु स्तोमेषु वृत्रहन्। उक्थेष्विन्द्र गिर्वणः।।— ऋ.३.४१.४

५९. इन्द्रं सोमस्य पीतये स्तोमैरिह हवामहे। उक्थेभिः कुविदागमत्।।— ऋ.३.४२.४

६०. चर्षणीधृतं मघवानमुक्थ्यमिन्द्रं गिरो बृहतीरभ्यनूषत।— ऋ.३.५१.१

६१. नृणामु त्वा नृतमं गीर्भिरुक्थैरभि प्र वीरमर्चता सबाधः।— ऋ.३.५१.४

६२. धानावन्तं करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनम्। इन्द्र प्रातर्जुषस्व नः।— ऋ.३.५२.१

६३. एदं बर्हिर्यजमानस्य सीदाऽथा च भूदुक्थमिन्द्राय शस्तम्।।— ऋ.३.५३.३

६४. शुचीदयन् दीधितिमुक्थशासः क्षामा भिन्दन्तो अरुणीरप व्रन्।।— ऋ.४.२.१६

६५. कदा त उक्था सधमाद्यानि कदा भवन्ति सख्या गृहे ते।।— ऋ.४.३.४

६६. सेदग्ने अस्तु सुभगः सुदानुर्यस्त्वा नित्येन हविषा य उक्थैः।— ऋ.४.४.७

६७. अकारि ब्रह्म समिधान तुभ्यं शंसात्युक्थं यजते व्यू धाः।— ऋ.४.६.११

६८. त्वदग्ने काव्या त्वन्मनीषास्त्वदुक्था जायन्ते राध्यानि।— ऋ.४.११.३

६९. शंसात्युक्थमुशनेव वेधाश्चिकितुषे असुर्याय मन्म।।— ऋ.४.१६.२

७०. श्रवस्यवः शशमानास उक्थैरोको न रण्वा सुदृशीव पुष्टिः।।— ऋ.४.१६.१५

७१. नव्ये देष्णे शस्ते अस्मिन् त उक्थे प्र ब्रवाम वयमिन्द्र स्तुवन्तः।।— ऋ.४.२०.१०

७२. ऋञ्जसानः पुरुवार उक्थैरेन्द्रं कृण्वीत सदनेषु होता।।— ऋ.४.२१.५

७३. ब्रह्म स्तोमं मघवा सोममुक्था यो अश्मानं शवसा बिभ्रदेति।।— ऋ.४.२२.१

७४. उत त्यं पुत्रमग्रुवः परावृक्तं शतक्रतुः। उक्थेष्विन्द्र आभजत्।— ऋ.४.३०.१६

७५. ये हरी मेधयोक्था मदन्त इन्द्राय चक्रुः सुयुजा ये अश्वा।— ऋ.४.३३.१०

७६. अनश्वो जातो अनभीशुरुक्थ्यो रथस्त्रिचक्रः परि वर्तते रजः।— ऋ.४.३६.१

७७. अथा देवेष्वमृतत्वमानश श्रुष्टी वाजा ऋभवस्तद् व उक्थ्यम्।।— ऋ.४.३६.४

७८. यन्मा सोमासो ममदन्यदुक्थोभे भयेते रजसी अपारे।।— ऋ.४.४२.६

७९. इदं वामास्ये हविः प्रियमिन्द्राबृहस्पती। उक्थं मदश्च शस्यते।— ऋ.४.४९.१

८०. यास्वीजानः शशमान उक्थैः स्तुवञ्छंसन् द्रविणं सद्य आप।।— ऋ.४.५१.७

८१. विचक्षणः प्रथयन्नापृणन्नुर्वजीजनत् सविता सुम्नमुक्थ्यम्।।— ऋ.४.५३.२

८२. वयं ते अग्न उक्थैर्विधेम वयं हव्यैः पावक भद्रशोचे।— ऋ.५.४.७

८३. उतो न उत् पुपूर्या उक्थेषु शवसस्पत इषं स्तोतृभ्य आ भर।।— ऋ.५.६.९

८४. चित्रा वा येषु दीधितिरासन्नुक्था पान्ति ये। स्तीर्णं बर्हिः स्वणरि श्रवांसि दधिरे परि।।— ऋ.५.१८.४

८५. समिधानः सहस्रजिदग्ने धर्माणि पुष्यसि। देवानां दूत उक्थ्यः।।— ऋ.५.२६.६

८६. पुरू यत् त इन्द्र सन्त्युक्था गवे चकर्थोर्वरासु युध्यन्।— ऋ.५.३३.४

८७. अस्मा इत् काव्यं वच उक्थमिन्द्राय शंस्यम्।— ऋ.५.३९.५

८८. विसर्माणं कृणुहि वित्तमेषां ये भुञ्जते अपृणन्तो न उक्थैः।— ऋ.५.४२.९

८९. विदा दिवो विष्यन्नद्रिमुक्थैरायत्या उषसो अर्चिनो गुः।— ऋ.५.४५.१

९०. अस्मा उक्थाय पर्वतस्य गर्भो महीनां जनुषे पूर्व्याय।— ऋ.५.४५.३

९१. उक्थेभिर्हि ष्मा कवयः सुयज्ञा आविवासन्तो मरुतो यजन्ति।।— ऋ.५.४५.४

९२. वेदी सूनो सहसो गीर्भिरुक्थैरा ते भद्रायां सुमतौ यतेम।।— ऋ.६.१.१०

९३. यस्ते यज्ञेन समिधा य उक्थैरर्केभिः सूनो सहसो ददाशत्।— ऋ.६.५.५

९४. पुर उक्थेभिः स हि नो विभावा स्वध्वरा करति जातवेदाः।।— ऋ.६.१०.१

९५. पीपाय स श्रवसा मर्त्येषु यो अग्नये ददाश विप्र उक्थैः।— ऋ.६.१०.३

९६. यस्ते सूनो सहसो गीर्भिरुक्थैर्यज्ञैर्मर्तो निशितिं वेद्यानट्।— ऋ.६.१३.४

९७. कृष्वा कृत्नो अकृतं यत् ते अस्त्युक्थं नवीयो जनयस्व यज्ञैः।।— ऋ.६.१८.१५

९८. सुत इत् त्वं निमिश्ल इन्द्र सोमे स्तोमे ब्रह्मणि शस्यमान उक्थे।— ऋ.६.२३.१

९९. सुते सोमे स्तुमसि शंसदुक्थेन्द्राय ब्रह्म वर्धनं यथासत्।।— ऋ.६.२३.५

१००. अर्चत्र्यो मघवा नृभ्य उक्थैर्बुक्षो राजा गिरामक्षितोतिः।।— ऋ.६.२४.१

१०१. वि त्वदापो न पर्वतस्य पृष्ठादुक्थेभिरिन्द्रानयन्त यज्ञैः।— ऋ.६.२४.६

१०२. वृद्धस्य चिद् वर्धतामस्य तनूः स्तोमेभिरुक्थैश्च शस्यमाना।।— ऋ.६.२४.७

१०३. त्वं तदुक्थमिन्द्र बर्हणा कः प्र यच्छता सहस्रा शूर दर्षि।— ऋ.६.२६.५

१०४. इन्द्रं नरः स्तुवन्तो ब्रह्मकारा उक्था शंसन्तो देववाततमाः।।— ऋ.६.२९.४

१०५. वर्धाद् यं यज्ञ उत सोम इन्द्रं वर्धाद् ब्रह्म गिर उक्था च मन्म।— ऋ.६.३८.४

१०६. तद् व उक्थस्य बर्हणेन्द्रायोपस्तृणीषणि।— ऋ.६.४४.६

१०७. नयसीद्वति द्विषः कृणोष्युक्थशंसिनः। नृभिः सुवीर उच्यसे।।— ऋ.६.४५.६

१०८. इन्द्राग्नी उक्थवाहसा स्तोमेभिर्हवनश्रुता।— ऋ.६.५९.१०

१०९. इदा विप्राय जरते यदुक्था नि ष्म मावते वहथा पुरा चित्।।— ऋ.६.६५.४

११०. सत्यान्युक्था नकिर्देवेभिर्यतथो महित्वा।।— ऋ.६.६७.१०

१११. सं वामञ्जन्त्वक्तुभिर्मतीनां सं स्तोमासः शस्यमानास उक्थैः।।— ऋ.६.६९.३

११२. सद्यश्चिन्नु ते मघवन्नभिष्टौ शास उक्था।— ऋ.७.१९.९

११३. तस्मा उक्थं जनये यज्जुजोषन्नृवन्नवीयः शृणवद् यथा नः।।— ऋ.७.२६.१

११४. उक्थउक्थे सोम इन्द्रं ममाद नीथेनीथे मघवानं सुतासः।— ऋ.७.२६.२

११५. शंसेदुक्थं सुदानव उत द्युक्षं यथा नरः। चकृमा सत्यराधसे।।— ऋ.७.३१.२

११६. उक्थभृतं सामभृतं बिभर्ति ग्रावाणं बिभ्रत् प्र वदात्यग्रे।— ऋ.७.३३.१४

११७. अब्जामुक्थैरहिं गृणीषे बुध्ने नदीनां रजःसु षीदन्।।— ऋ.७.३४.१६

११८. य ईवतो वृषणो अस्ति गोपा सो अद्वयावी हवते व उक्थैः।।— ऋ.७.५६.१८

११९. भूरि चक्र मरुतः पित्र्याण्युक्थानि या वः शस्यन्ते पुरा चित्।— ऋ.७.५६.२३

१२०. इन्द्रमित् स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत।।— ऋ.८.१.१

१२१. उक्थं चन शस्यमानमगोररिरा चिकेत। न गायत्रं गीयमानं।।— ऋ.८.२.१४

१२२. वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः। कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते।।— ऋ.८.२.१६

१२३. गिरश्च यास्ते गिर्वाह उक्था च तुभ्यं तानि। सत्रा दधिरे शवांसि।।— ऋ.८.२.३०

१२४. त्वामिच्छवसस्पते कण्वा उक्थेन वावृधुः। त्वां सुतास इन्दवः।।— ऋ.८.६.२१

१२५. इन्द्रमुक्थानि वावृधुः समुद्रमिव सिन्धवः। अनुत्तमन्युमजरम्।— ऋ.८.६.३५

१२६. इमां सु पूर्व्यां धियं मधोर्घृतस्य पिप्युषीम्। कण्वा उक्थेन वावृधुः।।— ऋ.८.६.४३

१२७. यदद्य वां नासत्योक्थैराचुच्युवीमहि।— ऋ.८.९.९

१२८. यन्नूनं धीभिरश्विना पितुर्योना निषीदथः। यद् वा सुम्नेभिरुक्थ्या।।— ऋ.८.९.२१

१२९. यद् वासि सुन्वतो वृधो यजमानस्य सत्पते। उक्थे वा यस्य रण्यसि समिन्दुभिः।।— ऋ.८.१२.१८

१३०. इन्द्रः सुतेषु सोमेषु क्रतुं पुनीत उक्थ्यम्। विदे वृधस्य दक्षसो महान् हि षः।।— ऋ.८.१३.१

१३१. स्तोता यत् ते अनुव्रत उक्थान्यृतुथा दधे। शुचिः पावक उच्यते सो अद्भुतः।।— ऋ.८.१३.१९

१३२. त्वं हि स्तोमवर्धन इन्द्रास्युक्थवर्धनः। स्तोतॄणामुत भद्रकृत्।।— ऋ.८.१४.११

१३३. तदद्या चित् त उक्थिनो ऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा।— ऋ.८.१५.६

१३४. यस्मिन्नुक्थानि रण्यन्ति विश्वानि च श्रवस्या। अपामवो न समुद्रे।— ऋ.८.१६.२

१३५. अग्निरुक्थे पुरोहितो ग्रावाणो बर्हिरध्वरे।— ऋ.८.२७.१

१३६. यदि मे रारणः सुत उक्थे वा दधसे चनः। आरादुप स्वधा गहि।— ऋ.८.३२.६

१३७. पन्य इदुप गायत पन्य उक्थानि शंसत। ब्रह्मा कृणोत पन्य इत्।— ऋ.८.३२.१७

१३८. स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः।— ऋ.८.३३.२

१३९. नायमच्छा मघवा शृणवद् गिरो ब्रह्मोक्था च सुक्रतुः।।— ऋ.८.३३.१३

१४०. आ नो याह्युपश्रुत्युक्थेषु रणया इह।— ऋ.८.३४.११

१४१. ऋभुक्षणं न वर्तव उक्थेषु तुग्र्यावृधम्।— ऋ.८.४५.२९

१४२. य उक्थेभिर्न विन्धते चिकिद्य ऋषिचोदनः।— ऋ.८.५१.३

१४३. य उक्था केवला दधे यः सोमं धृषितापिबत्।— ऋ.८.५२.३

१४४. प्र सू तिरा शचीभिर्ये त उक्थिनः क्रतुं पुनत आनुषक्।।— ऋ.८.५३.६

१४५. उक्थैरिन्द्रस्य माहिनं वयो वर्धन्ति सोमिनो भद्रा इन्द्रस्य रातयः।— ऋ.८.६२.१

१४६. दिवो मानं नोत्सदन् त्सोमपृष्ठासो अद्रयः। उक्था ब्रह्म च शंस्या।— ऋ.८.६३.२

१४७. कं ते दाना असक्षत वृत्रहन् कं सुवीर्या। उक्थे क उ स्विदन्तमः।।— ऋ.८.६४.९

१४८. य आदृत्या शशमानाय सुन्वते दाता जरित्र उक्थ्यम्।।— ऋ.८.६६.२

१४९. वयं तत् त इन्द्र सं भरामसि यज्ञमुक्थं तुरं वचः।।— ऋ.८.६६.५

१५०. तेषां हि चित्रमुक्थ्यं वरूथमस्ति दाशुषे। आदित्यानामरंकृते।।— ऋ.८.६७.३

१५१. तुभ्येदिन्द्र मरुत्वते सुता सोमासो अद्रिवः। हृदा हूयन्त उक्थिनः।।— ऋ.८.७६.८

१५२. आ त्वशत्रवा गहि न्युक्थानि च हूयसे। उपमे रोचने दिवः।।— ऋ.८.८२.४

१५३. वयमु त्वा शतक्रतो गावो न यवसेष्वा। उक्थेषु रणयामसि।।— ऋ.८.९२.१२

१५४. आ ते दधामीन्द्रियमुक्था विश्वा शतक्रतो। स्तोतृभ्य इन्द्र मृळय।।— ऋ.८.९३.२७

१५५. तमु ष्टवाम यं गिर इन्द्रमुक्थानि वावृधुः।— ऋ.८.९५.६

१५६. एतो न्विन्द्रं स्तवाम शुद्धं शुद्धेन साम्ना। शुद्धैरुक्थैर्वावृध्वांसं शुद्ध आशीर्वान् ममत्तु।।— ऋ.८.९५.७

१५७. उक्थवाहसे विभ्वे मनीषां द्रुणा न पारमीरया नदीनाम्।— ऋ.८.९६.११

१५८. तव श्रवांस्युपमान्युक्थ्या सुतेष्विन्द्र गिर्वणः।।— ऋ.८.९९.२

१५९. स वीरं धत्ते अग्न उक्थशंसिनं त्मना सहस्रपोषिणम्।।— ऋ.८.१०३.४

१६०. आ कलशेषु धावति पवित्रं परि षिच्यते। उक्थैर्यज्ञेषु वर्धते।— ऋ.९.१७.४

१६१. यत् सोम चित्रमुक्थ्यं दिव्यं पार्थिवं वसु। तन्नः पुनान आ भर।— ऋ.९.१९.१

१६२. पवस्व वृत्रहन्तमोक्थेभिरनुमाद्यः। शुचिः पावको अद्भुतः।।— ऋ.९.२४.६

१६३. सप्तिं मृजन्ति वेधसो गृणन्तः कारवो गिरा। ज्योतिर्जज्ञानमुक्थ्यम्।। सुषहा सोम तानि ते पुनानाय प्रभूवसो। वर्धा समुद्रमुक्थ्यम्।।— ऋ.९.२९.२

१६४. पुनान इन्दवा भर सोम द्विबर्हसं रयिम्। वृषन्निन्दो न उक्थ्यम्।— ऋ.९.४०.६

१६५. आत् सोम इन्द्रियो रसो वज्रः सहस्रसा भुवत्। उक्थं यदस्य जायते।।— ऋ.९.४७.३

१६६. संवृक्तधृष्णुमुक्थ्यं महामहिव्रतं मदम्। शतं पुरो रुरुक्षणिम्।— ऋ.९.४८.२

१६७. अर्षा णः सोम शं गवे धुक्षस्व पिप्युषीमिषम्। वर्धा समुद्रमुक्थ्यम्।।— ऋ.९.६१.१५

१६८. पवस्व सोम क्रतुविन्न उक्थ्यो ऽव्यो वारे परि धाव मधु प्रियम्।— ऋ.९.८६.४८

१६९. दिवः पीयूषं पूर्व्यं यदुक्थ्यं महो गाहाद्दिव आ निरधुक्षत।— ऋ.९.११०.८

१७०. अग्मन्नुक्थानि पौंस्येन्द्रं जैत्राय हर्षयन्। वज्रश्च यद्भवथो अनपच्युता समत्स्वनपच्युता।।— ऋ.९.१११.३

१७१. विप्रस्य वा यच्छशमान उक्थ्यं वाजं ससवाँ उपयासि भूरिभिः।।— ऋ.१०.११.५

१७२. त्वां यज्ञेभिरुक्थैरुप हव्येभिरीमहे। शचीपते शचीनां वि वो मदे श्रेष्ठं नो धेहि वार्यं विवक्षसे।।— ऋ.१०.२४.२

१७३. एते शमीभिः सुशमी अभूवन् ये हिन्विरे तन्वः सोम उक्थैः।— ऋ.१०.२८.१२

१७४. समानमु त्यं पुरुहूतमुक्थ्यं रथं त्रिचक्रं सवना गनिग्मतम्।— ऋ.१०.४१.१

१७५. समीचीने धिषणे वि ष्कभायति वृष्णः पीत्वा मद उक्थानि शंसति।— ऋ.१०.४४.८

१७६. आ तं भज सौश्रवसेष्वग्न उक्थउक्थ आ भज शस्यमाने।— ऋ.१०.४५.१०

१७७. पुरू सहस्रा नि शिशामि दाशुषे यन्मा सोमास उक्थिनो अमन्दिषुः।।— ऋ.१०.४८.४

१७८. दिद्युं यदस्य समिथेषु मंहयमादिदेनं शंस्यमुक्थ्यं करम्।।— ऋ.१०.४८.९

१७९. स्वां प्रजां बृहदुक्थो महित्वा ऽऽवरेष्वदधादा परेषु।— ऋ.१०.५६.७

१८०. सं यन्मित्रावरुणावृञ्ज उक्थैर्ज्येष्ठेभिरर्यमणं वरूथैः।।— ऋ.१०.६१.१७

१८१. वर्धदुक्थैर्वचोभिरा हि नूनं व्यध्वैति पयस उस्रियायाः।।— ऋ.१०.६१.२६

१८२. उक्थशुष्मान् वृषभरान् त्स्वप्रसस्ताँ आदित्याँ अनु मदा स्वस्तये।।— ऋ.१०.६३.३

१८३. उक्थेभिरत्र मतिभिश्च विप्रो ऽपीपयद्गयो दिव्यानि जन्म।।— ऋ.१०.६४.१६

१८४. इमां धियं सप्तशीर्ष्णीं पिता न ऋतप्रजातां बृहतीमविन्दत्। तुरीयं स्विज्जनयद्विश्वजन्यो ऽयास्य उक्थमिन्द्राय शंसन्।।— ऋ.१०.६७.१

१८५. देवानां नु वयं जाना प्र वोचाम विपन्यया। उक्थेषु शस्यमानेषु यः पश्यादुत्तरे युगे।।— ऋ.१०.७२.१

१८६. अग्निमुक्थैर्ऋषयो वि ह्वयन्ते ऽग्निं नरो यामनि बाधितासः।— ऋ.१०.८०.५

१८७. नीहारेण प्रावृता जल्प्या चाऽसुतृप उक्थशासश्चरन्ति।।— ऋ.१०.८२.७

१८८. तं त्वाहेम मतिभिर्गीर्भिरुक्थैः स यज्ञियो अभवो रोदसिप्राः।।— ऋ.१०.८८.५

१८९. त्वं हर्यसि तव विश्वमुक्थ्यमसामि राधो हरिजात हर्यतम्।।— ऋ.१०.९६.५

१९०. इन्द्र उक्थेन शवसा परुर्दधे बृहस्पते प्रतरीतास्यायुषः।— ऋ.१०.१००.५

१९१. मिमिक्षुर्यमद्रय इन्द्र तुभ्यं तेभिर्वर्धस्व मदमुक्थवाहः।।— ऋ.१०.१०४.२

१९२. तमेव ऋषिं तमु ब्रह्माणमाहुर्यज्ञन्यं सामगामुक्थशासम्।— ऋ.१०.१०७.६

१९३. हर्षस्व हन्तवे शूर शत्रूनुक्थेभिष्टे वीर्या प्र ब्रवाम।।— ऋ.१०.११२.१

१९४. सहस्रधा पञ्चदशान्युक्था यावद् द्यावापृथिवी तावदित् तत्।— ऋ.१०.११४.८

१९५. छन्दः किमासीत् प्रउगं किमुक्थं यद्देवा देवमयजन्त विश्वे।।— ऋ.१०.१३०.३

१९६. अनुष्टुभा सोम उक्थैर्महस्वान् बृहस्पतेर्बृहती वाचमावत्।।— ऋ.१०.१३०.४

१९७. बृहद्भानो शवसा वाजमुक्थ्यं दधासि दाशुषे कवे।।— ऋ.१०.१४०.१

१९८. इदं देवाः शृणुत ये यज्ञिया स्थ भरद्वाजो मह्यमुक्थानि शंसति।— अथर्ववेद २.१२.२

१९९. इन्द्र उक्थामदान्यस्मिन् यज्ञे प्रविद्वान् युनक्तु सुयुजः स्वाहा।— अ.५.२६.३

२००. वैश्वानरो न आगमदिमं यज्ञं सजूरुप। अग्निरुक्थेष्वंहसु।। वैश्वानरोऽङ्गिरसां स्तोममुक्थं च चाक्लृपत्। ऐषु द्युम्नं स्वर्यमत्।।— अ.६.३५.२-३

२०१. सा (कुहू) नो रयिं विश्ववारं नि यच्छाद् ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यम्।।— अ.७.४९.१

२०२. सीव्यत्वपः सूच्याच्छिद्यमानया ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यम्।। (राका)— अ.७.५०.१

२०३. पृतनाजितं सहमानमग्निमुक्थैर्हवामहे परमात् सधस्थात्।— अ.७.६५.१

२०४. एकरात्रो द्विरात्रः सद्यःक्रीः प्रक्रीरुक्थ्यः। ओतं निहितमुच्छिष्टे यज्ञस्याणूनि विद्यया।।— अ.११.९.१०

२०५. क्रव्यादमग्निं शशमानमुक्थ्यं हिणोमि पथिभिः पितृयाणै।— अ.१२.२.१०

२०६. विप्रस्य वा यच्छशमान उक्थ्यो वाजं ससवाँ उपयासि भूरिभिः।।— अ.१८.१.२२

२०७. सरस्वति या सरथं ययाथोक्थैः स्वधाभिर्देवि पितृभिर्मदन्ती।— अ.१८.१.४३

२०८. शुचीदयन् दीध्यत उक्शासः क्षामा भिन्दन्तो अरुणीरप व्रन्।।— अ.१८.३.२१

२०९. विवस्वतः सदने अस्य तानि विप्रा उक्थेभिः कवयो गृणन्ति।।— अ.२०.११.७

२१०. वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः। कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते।— अ.२०.१८.१

२११. रारन्धि सवनेषु ण एषु स्तोमेषु वृत्रहन्। उक्थेष्विन्द्र गिर्वणः।।— अ.२०.२३.४

२१२. इन्द्रं सोमस्य पीतये स्तोमैरिह हवामहे। उक्थेभिः कुविदागमत्।— अ.२०.२४.४

२१३. अधि द्वयोरदधा उक्थ्यं वचो यतस्रुचा मिथुना या सपर्यतः।— अ.२०.२५.३

२१४. ग्रावा यत्र वदति कारुरुक्थ्यस्तस्येदिन्द्रो अभिपित्वेषु रण्यति।— अ.२०.२५.६

२१५. त्वं हि स्तोमवर्धन इन्द्रास्युक्थवर्धनः। स्तोतॄणामुत भद्रकृत्।।— अ.२०.२९.१

२१६. त्वं हर्यसि तव विश्वमुक्थ्यमसामि राधो हरिजात हर्यतम्।।— अ.२०.३०.५

२१७. मिमिक्षुर्यमद्रय इन्द्र तुभ्यं तेभिर्वर्धस्व मदमुक्थवाहः।।— अ.२०.३३.१

२१८. अस्येदु प्र ब्रूहि पूर्व्याणि तुरस्य कर्माणि नव्य उक्थैः।— अ.२०.३५.१३

२१९. सद्यश्चिन्नु ते मघवन्नभिष्टौ नरः शंसन्त्युक्थशास उक्था।— अ.२०.३७.९

२२०. यस्मिन्नुक्थानि रण्यन्ति विश्वानि च श्रवस्या। अपामवो न समुद्रे।।— अ.२०.४४.२

२२१. स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः। कदा सुतं तृषाण ओक आ गम इन्द्र स्वब्दीव वंसगः।।— अ.२०.५२.२

२२२. स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः।— अ.२०.५७.१५

२२३. एवा ह्यस्य काम्या स्तोम उक्थं च शंस्या। इन्द्राय सोमपीतये।— अ.२०.६०.६

२२४. तदद्या चित्त उक्थिनोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा। वृषपत्नीरपो जया दिवदिवे।।— अ.२०.६१.३

२२५. त्वां स्तोमा अवीवृधन् त्वामुक्था शतक्रतो। त्वां वर्धन्तु नो गिरः।।— अ.२०.६९.६

२२६. एवा ह्यस्य काम्या स्तोम उक्थं च शंस्या। इन्द्राय सोमपीतये।।— अ.२०.७१.६

२२७. शंसात्युक्थमुशनेव वेधाश्चिकितुषे असुर्याय मन्म।।— अ.२०.७७.२

२२८. इन्द्रमित् स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत।।— अ.२०.८५.१

२२९. तुरीयं स्विज्जनयद् विश्वजन्योऽयास्य उक्थमिन्द्राय शंसन्।।— अ.,२०.९१.१

२३०. यद् वासि सुन्वतो वृधो यजमानस्य सत्पते। उक्थे वा यस्य रण्यसि समिन्दुभिः।।— अ.२०.१११.३

२३१. यदद्य वा नासत्योक्थैराचुच्युवीमहि। यद्वा वाणीभिरश्विनेवेत्काण्वस्य बोधतम्।।— अ.२०.१४०.४

२३२. यन्नूनं धीभिरश्विना पितुर्योना निषीदथः। यद्वा सुम्नेभिरुक्थ्या।।— अ.२०.१४२.६

२३३. ब्रह्मणः प्राशित्रहरणम् : तस्मादेतदृषिणाभ्यनूक्तम्- 'पिता यत् स्वां दुहितरमधिष्कन् क्ष्मया रेतः सञ्जग्मानो निषिञ्चत्' इति। तदाग्निमारुतमित्युक्थम्।— शतपथ ब्रा. १.७.४.४

२३४. सप्त चैव शतानि विंशतिश्च। संवत्सरे-संवत्सरे ह वा अस्याग्निहोत्रं महतोक्थेन सम्पद्यते। संवत्सरे-संवत्सरे महदुक्थमाप्नोति-य एवं विद्वानग्निहोत्रं जुहोति -एतदु हास्याग्निहोत्रं महतोक्थेन सम्पद्यते-महदुक्थमाप्नोति।— श. २.३.३.२०

२३५. यद्युक्थ्यः स्यात्। मध्यमं परिधिमुपस्पृशेत्। त्रयः परिधयः-त्रीण्युक्थानि। एतै रु हि तर्हि यज्ञः प्रतितिष्ठति।— श. ३.९.३.३३

२३६. आग्रयण ग्रहः - आत्मा ह्यस्यैषः, मध्यऽइव ह्ययमात्मा दक्षिणोक्थ्यस्थाली भवति, उत्तराऽऽदित्यस्थाली।— श.४.२.२.१६

२३७. उक्थग्रहः - अयं ह वाऽअस्यैषोऽनिरुक्त आत्मा, यदुक्थ्यः, सोऽस्यैष आत्मैव।— श.४.२.३.१

२३८. सैषा कामदुघैवेन्द्रस्योद्धारः। त्रिभ्य एवैनं प्रातःसवनऽउक्थेभ्यो विगृह्णाति, त्रिभ्यो माध्यन्दिने सवने-तत् षट्कृत्वः। षड्वाऽऋतवः। ऋतवो वाऽइमान्त्सर्वान्कामान्पचन्ति।— श.४.२.३.६

२३९. तं वा अपुरोरुक्कं गृह्णाति। उक्थं हि पुरोरुक्। ऋग्घि पुरोरुक्। ऋग्घ्युक्थम्।— श.४.२.३.७

२४०. ऋग्घि पुरोरुक्। ऋग्घ्युक्थम्। स यदेवैनमुक्थेभ्यो विगृह्णाति-तेनो हास्यैष पुरोरुङ्गान्भवति।— श.४.२.३.९

२४१. उक्थाव्यं गृह्णामि इति। उक्थेभ्यो ह्येनं गृह्णाति।— श.४.२.३.१०

२४२. तदु ह चरकाध्वर्यवो विगृह्णन्ति-उपयामगृहीतोऽसि देवेभ्यस्त्वा देवाव्ययम्। उक्थेभ्यः उक्थाव्यम्।— श.४.२.३.१५- १७

२४३. विप्रुड् होमः - तद्धि सलोम-यदाग्नेयम्; अग्निष्टोमऽआलभेत। यद्युक्थ्य स्यात्-ऐन्द्राग्नं द्वितीयमालभेत। ऐन्द्राग्नानि ह्युक्थानि।— श.४.२.५.१४

२४४. स शुक्रामन्थिनौ प्रथमौ गृह्णाति। शुक्रवद्ध्येतत्सवनम्। अथाग्रयणम्। अथ मरुत्वतीयम्। अथोक्थ्यम्। उक्थ्यानि ह्यत्रापि भवन्ति। तद्धैके-उक्थ्यं गृहीत्वाऽथ मरुत्वतीयं गृह्णन्ति। तदु तथा न कुर्यात्। मरुत्वतीयमेव गृहीत्वाऽथोक्थ्यं गृह्णीयात्।— श.४.३.३.३

२४५. पात्नीवत ग्रहः - यद्युक्थ्यः स्यात्-सोमं प्रभावयेति ब्रूयात्।— श.४.४.२.१८

२४६. हारियोजन ग्रहः - शस्तोक्थस्य इति शस्तानि ह्युक्थानि भवन्ति।— श.४.४.३.११

२४७. अनुबन्ध्यायागः - यत्र वै देवा रेतः सिक्तं प्राजनयन्-तदाग्निमारुतमित्युक्थम्।— श.४.५.१.८

२४८. माध्यन्दिने वैनान्त्सवने गृह्णीयात्। उक्थ्यं गृहीत्वा उपाकरिष्यन्वा पूतभृतः। अयं ह वाऽअस्यैषोऽनिरुक्त आत्मा-यदुक्थ्यः।— श.४.५.४.७

२४९. आग्रयणपात्रम्, उक्थ्यपात्रम्, आदित्यपात्रम्-एतान्येवानु गावः प्रजायन्ते। तानि वै तानि पुनर्यज्ञे प्रयुज्यन्ते।— श.४.५.५.८

२५०. पञ्च ह त्वेव तानि पात्राणि-यानीमाः प्रजा अनु प्रजायन्ते-समानमुपांश्वन्तर्यामयोः, शुक्रपात्रम्, ऋतुपात्रम्, आग्रयणपात्रम्, उक्थ्यपात्रम्। पञ्च वाऽऋतवः सम्वत्सरस्य।— श.४.५.५.१२

२५१. पात्रावकाशमन्त्राः - अथोक्थ्यम्-ओजसे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व इति।— श.४.५.६.३

२५२. अथ सोमातिरिक्तानाम्। यद्यग्निष्टोममतिरिच्येत-पूतभृत एवोक्थ्यं गृह्णीयात्। यद्युक्थ्यमतिरिच्येत-षोडशिनमुपेयुः। यदि षोडशिनमतिरिच्येत-रात्रिमुपेयुः। यदि रात्रिमतिरिच्येत-अहरुपेयुः।— श.४.५.१०.८

२५३. विषुवदहः - यद्युक्थ्यः स्याद्-ऐन्द्राग्नं द्वितीयमालभेत। ऐन्द्राग्नानि ह्युक्थ्यानि।— श.४.६.३.३

२५४. अग्निर्वाऽअग्निष्टोमः। अग्निष्टोममेवैतेनोज्जयति। ऐन्द्राग्नमुक्थेभ्यः आलभते। ऐन्द्राग्नानि वाऽउक्थानि उक्थान्येवैतेनोज्जयति। ऐन्द्रं षोडशिनऽआलभते।— श. ५.१.३.१

२५५. केशवपनीय अतिरात्रः - तस्यैकविंशं प्रातःसवनम्, सप्तदशं माध्यन्दिनं सवनम् पञ्चदशं तृतीयसवनम्। सहोक्थैः, सह षोडशिना, सह रात्र्या।— श.५.५.३.३

२५६. बृहद्भानो शवसा वाजमुक्थ्यम्-इति। बलं वै शवः। बृहद्भानो बलेनान्नमुक्थ्यमित्येतत्।— श.७.३.१.२९

२५७. पञ्चनाकसदिष्टकोपधानम्: - स पुरस्तादुपदधाति---आज्यमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु इति। आज्येन हैषोक्थेनाव्यथायै पृथिव्यां स्तब्धा।— श.८.६.१.५

२५८. अथ दक्षिणतः, प्रउगमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु इति। प्रउगेण हैषोक्थेनाव्यथायै पृथिव्यां स्तब्धा।— श.८.६.१.६

२५९. अथ पश्चात्।-----मरुत्वतीयमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु इति। मरुत्वतीयेन हैषोक्थेनाव्यथायै पृथिव्यां स्तब्धा।— श.८.६.१.७

२६०. अथोत्तरतः। --निष्केवल्यमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु इति। निष्केवल्येन हैषोक्थेनाव्यथायै पृथिव्यां स्तब्धा।— श.८.६.१.८

२६१. अथ मध्ये।-- -वैश्वदेवाग्निमारुते उक्थे अव्यथायै स्तभ्नीताम् इति। वैश्वदेवाग्निमारुताभ्यां हैषोक्थाभ्यामव्यथायै पृथिव्यां स्तब्धा।— श.८.६.१.९

२६२. एकत्रिंशच्छन्दस्येष्टकोपधानम् :- सा-या सा श्रीः। महत्तदुक्थम्। तद्यत्तन्महदुक्थम्-एतास्ताश्छन्दस्याः।— श.८.६.२.२

२६३. प्रतिष्ठा द्विपदाः। एतावद्वै महदुक्थम्। महदुक्थं श्रीः।— श.८.६.२.४

२६४. तदाहुः- कथमस्यैतच्छतरुद्रियं महदुक्थमाप्नोति, कथं महतोक्थेन सम्पद्यत इति।---अशीतिभिर्हि महदुक्थमाख्यायते। अथ यदूर्ध्वमशीतिभ्यो यदेवादो महत उक्थस्योर्ध्वमशीतिभ्यः- एतदस्य तत्। एवमु हास्यैतच्छतरुद्रियं महदुक्थमाप्नोति। एवं महतोक्थेन सम्पद्यते।— श.९.१.१.४४

२६५. समिद्धे अग्नावधि मामहानः-इति। यजमानो वै मामहानः। उक्थपत्रः-इति। उक्थानि ह्येतस्य पत्राणि।— श.९.२.३.९

२६६. तदाहुः-कथमस्यैषा वसोर्धारा महदुक्थमाप्नोति, कथं महतोक्थेन सम्पद्यते इति।---अशीतिभिर्हि महदुक्थमाख्यायते। अथ यदूर्ध्वमशीतिभ्यो-यदेवादो महत उक्थस्योर्ध्वमशीतिभ्यः एतदस्य तत्। एवमु हास्यैषा वसोर्धारा महदुक्थमाप्नोति, एवं महतोक्थेन सम्पद्यते।— श.९.३.३.१९

२६७. उख्यसंभरणमीमांसा : स यद्यसंवत्सरभृते महदुक्थं शंसेद्-ऋगशीतीः शंसेत्। असर्वं वै तद्-यदसंवत्सरभृतः।------ यदि चासंवत्सरभृतः-सर्वमेव महदुक्थं शंसेत्।— श.९.५.१.६३

२६८. त्रयो ह वै समुद्राः-अग्निर्यजुषाम्, महाव्रतं साम्नाम्, महदुक्थमृचाम्।— श.९.५.२.१२

२६९. अथ योऽस्य सोऽग्रं रसोऽगच्छत्-महत्तदुक्थम्। तमस्य तं रसमृक्सामाभ्यामनुयन्ति।— श.१०.१.१.४

२७०. तस्मिन् होता महतोक्थेन रसं दधाति। सर्वा हैता ऋचो यन्महदुक्थम्।— श.१०.१.१.५

२७१. न वै महाव्रतमिदं स्तुतं शेत इति पश्यन्ति, नो महदिदमुक्थमिति।— श.१०.१.१.६.

२७२. स तृतीयं वयोविधमात्मानमपश्यत्। महदुक्थं तद्व्यधत्त। तेन दिवमाप्नोत्।— श.१०.१.२.१

२७३. अयं वाव लोकः-एषोऽग्निश्चितः। अन्तरिक्षं महाव्रतम्। द्यौर्महदुक्थम्। तस्मादेतानि सर्वाणि सहोपेयात्। अग्निम्, महाव्रतम्, महदुक्थम्।— श.१०.१.२.२

२७४. अथाध्यात्मम्। मन एवाग्निः। प्राणो महाव्रतम्। वाङ्महदुक्थम्।— श.१०.१.२.३

२७५. आत्मैवाग्निः। प्राणो महाव्रतम्। वाङ्महदुक्थम्।— श.१०.१.२.४

२७६. शिर एवाग्नि। प्राणो महाव्रतम्। आत्मा महदुक्थम्।--------महदेवोक्थमातमां ख्यायते। आत्मा हि महदुक्थम्।— श.१०.१.२.५

२७७. अशीतिभिर्हि महदुक्थमाख्यायते।----ततो यानि पञ्चविंशतिः। स पञ्चविंश आत्मा।------एतावद्वै महदुक्थम्। तदेतदत्रैव महदुक्थमाप्नोति।— श.१०.१.२.९

२७८. अथ यत्तत्रोद्गातुः पुरस्ताज्जप्यम्-तच्छतरुद्रियम्। वसोर्धारा महदुक्थम्।— श.१०.१.५.३

२७९. एष उ एवोक्। तस्यैतदन्नं थम्। तदुक्थम्-ऋक्तः। तदेतदेकं सत्-त्रेधाऽऽख्यायते।— श.१०.४.१.४,१५,२१,२२

२८०. तस्मिन् (ग्रहे) होता महतोक्थेन रसं दधाति। सर्वा हैता ऋचो-यन्महदुक्थम्।— श.१०.४.१.१३

२८१. प्राण उ एवोक्-तस्यान्नमेव थं तदुक्थं ऋक्तः।— श.१०.४.१.२३

२८२. मण्डलपुरुषोपासनं ब्राह्मणम् : यदेतन्मण्डलं तपति-तन्महदुक्थम्। ता ऋचः, स ऋचां लोकः।— श.१०.५.२.१

२८३. तस्मान्महदुक्थं परस्मै न शंसेत्-नेदेतां प्रतिष्ठां छिनदा इति। एतां ह स प्रतिष्ठां छिन्ते-यो महदुक्थं परस्मै शंसति। तस्मादुक्थशसं भूयिष्ठं परिचक्षते।— श.१०.५.२.५

२८४. उक्थमिति बह्वृचाः, एष हीदं सर्वमुत्थापयति।— श.१०.५.२.२०

२८५. उक्थविधोपासनम् : अथोक्थस्य। अग्निर्वा उक् तस्याहुतयः एव थम्। आहुतिभिर्ह्यग्निरुत्तिष्ठति।— श. १०.६.२.८

२८६. आदित्यो वा उक्, तस्य चन्द्रमा एव थम्। चन्द्रमसा हि आदित्य उत्तिष्ठति इत्यधिदेवतम्। अथाध्यात्मम्-प्राणो वाऽउक्, तस्यान्नमेव थम्। अन्नेन हि प्राण उत्तिष्ठति-इति नु एवोक्थस्य। स एषोऽग्निविधः, अर्कविधः, उक्थविधः। यत् पुरुषः सः। यो हैतमेवमग्निविधमर्कविधमुक्थविधं पुरुषमुपास्ते।— श.१०.६.२.९

२८७. उत नो ब्रह्मन्नविषऽउक्थेषु देवहूतमः— श.११.४.३.१९

२८८. ते (देवाः) शताग्निष्टोमं सत्रमुपैम। ते यावदासीनः परापश्येत्तावतस्तमोऽपाहन्महि। एवमेव शतोक्थ्येन। यावत्तिष्ठन्परापश्येत्तावतस्तमो-ऽपाहन्महि।--- स होवाच असर्वक्रतुभ्यां वै यज्ञाभ्यामगंत। यदग्निष्टोमेन चोक्थ्येन च। शतातिरात्रं सत्रमुपेत।— श.११.५.५.४

२८९. सम्वत्सरे समुद्रप्रतरणोपासनम् : तदाहुः-कति संवत्सरस्यातिरात्राः। कत्यग्निष्टोमाः। कत्युक्थ्याः। कति षोडशिनः।— श.१२.२.१.६

२९०. द्वादशशतमग्निष्टोमाः। द्वे चतुस्त्रिंशे शते उक्थ्यानाम्। द्वादश षोडशिनः।— श.१२.२.१.७

२९१. एकविंशतिरुक्थ्याः। द्वादश वै मासाः संवत्सरस्य। पञ्चर्तवः। त्रयो लोकाः। तद्विंशतिः। एष एवैकविंशः। य एष तपति एतामभिसंपदम्।------एक उक्थ्यः षोडशिमान्। अन्नं वा उक्थ्यः। वीर्यं षोडशी।— श.१२.२.२.७

२९२. तद्वा एतत्त्रयं सह क्रियते। अग्निरर्क्यं महदुक्थ्यम्।-----अथ यत्संवत्सरं सुत्याभिरेति, तेनो एवास्य महदुक्थ्यमाप्तं भवन्ति।— श.१२.३.३.१४

२९३. अहं वै ते तद्वक्ष्यामि। यथा त उक्थ्यानि मणिरिव सूत्र ओतानि भविष्यन्ति। सूत्रमिव वा मणाविति।— श.१२.३.४.२

२९४. विंशतिशतं पुरस्तात् विषुवत उक्थ्यान्यहान्युपयन्ति। विंशतिशतमुपरिष्टात्। इति नु य उक्थ्यान् स्वरसाम्न उपयन्ति।---- -सप्तदशं शतं पुरस्तात् विषुवत उक्थ्यान्यहान्युपयन्ति। सप्तदशमुपरिष्टात्।— श.१२.३.५.१३

२९५. अथ क्वैतस्य साम्न उक्थम्। का प्रतिष्ठा।---त्रया देवा एकादशेति। एतद्वा एतस्य साम्न उक्थम्। एषा प्रतिष्ठा।— श.१२.८.३.२७

२९६. तस्य हैकेऽग्निष्टोमसाम चतुःसाम कुर्वन्ति। नाग्निष्टोमः। नोक्थ्य इति वदन्तः।— श.१३.५.१.२

२९७. उत्तर महिम ग्रहः - उक्थ्यो यज्ञः। तेनान्तरिक्षलोकमृध्नोति।— श.१३.५.३.९

२९८. त्रयस्त्रिंशमग्निष्टोमसाम। एकविंशा-न्युक्थानि। एकविंशः षोडशी।— श.१३.५.३.१०

२९९. त्रिवृदग्निष्टोमः। पंचदश उक्थ्यः सप्तदशं तृतीयमहः सोक्थकम्। एकविंशः षोडशी।— श.१३.५.४.९

३००. द्वात्रिंशान्युक्थानि। एकविंशः षोडशी।— श.१३.५.४.१०

३०१. एकविंशान्याज्यानि। त्रिणवान्युक्थानि।-----एकविंशान्युक्थानि। एकविंशः षोडशी।— श.१३.५.४.२०

३०२. पुरुषमेधः - तस्याग्निष्टोमः प्रथममहर्भवति। अथोक्थ्यः। अथातिरात्रः। अथोक्थ्यः। अथाग्निष्टोमः। स वा एष उभयतोज्योतिः। उभयतउक्थ्यः।— श. १३.६.१.८

३०३. पुरुषमेधः - अन्नमुक्थ्यः। आत्माऽतिरात्रः। तद्यदेता उक्थ्यावतिरात्रमभितो भवतः। तस्मादयमात्माऽन्नेन परिवृढः।— श.१३.६.१.९

३०४. सर्वमेधः - इन्द्रस्तुदुक्थ्यो द्वितीयमहर्भवति।------ सूर्यस्तुदुक्थ्यस्तृतीयमहर्भवति।— श.१३.७.१.४

३०५. त्र्यन्न ब्राह्मणं :- त्रयं वा इदं नाम रूपं कर्म। तेषां नाम्नां वागित्येतदेषामुक्थ्यम्। अतो हि सर्वाणि नामान्युत्तिष्ठन्ति। अथ रूपाणाम्। चक्षुरित्येतदेषामुक्थ्यम्। अतो हि सर्वाणि रूपाण्युत्तिष्ठन्ति।-अथ कर्मणाम्। आत्मेत्येतदेषामुक्थ्यम्। ' अतो हि सर्वाणि कर्माण्युत्तिष्ठन्ति।— श.१४.४.४.१

३०६. प्राणोपासनाब्राह्मणम् : उक्थम्। प्राणो वा उक्थम्। प्राणो हीदं सर्वमुत्थापयति। उद्धास्मा उक्थविद्धीरस्तिष्ठति। उक्थस्य सायुज्यं सलोकतां जयति।— श.१४.८.१.४१

३०७. देवाश्च ह वा असुराश्च संग्रामं समयतन्त। तत्रैतास्तिस्रो होत्रा जिह्मं प्रतिपेदिरे। तासामिन्द्र उक्थानि सामानि लुलोप। तानि होत्रे प्रायच्छत्। आज्यं ह वै होतुर्बभूव, प्रउगं पोतुः।— गोपथ ब्राह्मण १.३.५

३०८. एकविंशतिउक्थ्याः। एक उक्थ्यः षोडशी। अन्नं वा उक्थ्यो, वीर्यं षोडश्येव।— गो.ब्रा.१.४.२०

३०९. अथ यद् द्वादशमासान् सुत्याभिः, तेनेदं महदुक्थमवाप्नोति।----------अथ यद् द्वादशाहं सुत्याभिः, तेनेदं महदुक्थमवाप्नोति।— गो.ब्रा.१.५.१०

३१०. यजस्वैव हन्त तु ते तद् वक्ष्यामि, यथा सूत्रे मणिरिव सूतान्युक्थाहानि भवन्ति सूत्रमिव वा मणाविति।— गो.ब्रा.१.५.११

३११. अग्निष्टोमो ऽत्यग्निष्टोम उक्थ्यः षोडशिमांस्ततः। वाजपेयो ऽतिरात्रश्चाप्तोर्यामात्र सप्तमः। इत्येते सुत्याः।— गो.ब्रा.१.५.२३

३१२. ऋचो ऽस्य भागांश्चतुरो वहन्त्युक्थशस्त्रैः प्रमुदो मोदमानाः।— गो.ब्रा. १.५.२४

३१३. उक्थ्या वाजिनः।— गो.ब्रा.२.१.२२

३१४. अथ यद्यहीन उक्थ्यः षोडशी वाजपेयो ऽतिरात्रो ऽप्तोर्यामा वा स्यात्, सर्वाभिः सर्वाभिरत ऊर्ध्वं व्याहृतिभिरनुजानाति,--।— गो.ब्रा.२.२.१४

३१५. हिंकृत्योक्थश ऋचार्त्विज्यं कुर्वन्ति।— गो.ब्रा.२.३.९

३१६. गायत्रीमेवैतत् पुरस्तात् प्रातःसवने ऽचीक्लृपताम्। उक्थं वाचीत्याह शस्त्वा चतुरक्षरम्। ओमुक्थशा इत्यध्वर्युः प्रतिगृणाति चतुरक्षरम्।------ -त्रिष्टुभमेवैतत् पुरस्ताद् माध्यंदिने ऽचीक्लृपताम्। उक्थं वाचीन्द्रायेत्याह शस्त्वा षडक्षरम्। ओमुक्थशा यजेत्यध्वर्युः प्रतिगृणाति पञ्चाक्षरम्।------ - जगतीमेवैतत् पुरस्तात् तृतीयसवने ऽचीक्लृपताम्। उक्थं वाचीन्द्राय देवेभ्य इत्याह शस्त्वा नवाक्षरम्। ओमुक्थशा इत्यध्वर्युः प्रतिगृणाति त्र्यक्षरम्। तद् द्वादशाक्षरं संपद्यते।— गो.ब्रा.२.३.१०

३१७. तस्मादेकमेवोक्थं होता मरुत्वतीयेन प्रतिपद्यते निष्केवल्यमेव।— गो.ब्रा.२.३.१२

३१८. प्र वो मित्राय गायत इत्युक्थमुखम्।— गो.ब्रा.२.३.१३

३१९. अयमु त्वा विचर्षणे इत्युक्थमुखम्।— गो.ब्रा.२.३.१४

३२०. सद्यो ह जातो वृषभः कनीनः इत्युक्थमुखम्।— गो.ब्रा.२.४.१

३२१. इन्द्रः पूर्भिदातिरद्दासमर्कैः इत्युक्थमुखम्।— गो.ब्रा.२.४.२

३२२. भूय इद् वावृधे वीर्याय इत्युक्थमुखम्।— गो.ब्रा. २.४.३

३२३.--- -प्रगाथायोक्थमुखाय परिधानीयाया इति पञ्चकृत्व आह्वयन्ते।— गो.ब्रा.२.४.४

३२४. पञ्चोक्थानि माध्यंदिनस्य सवनस्य। स एतैः पञ्चभिरुक्थैरेताः पञ्च दिश आप्नोति, ---।— गो.ब्रा.२.४.४

३२५. यदभ्युत्थायाहोरात्रयोः संधेर्निर्जघ्नुः, तस्मादुत्थाः।----यदग्निरश्वो भूत्वा प्रथमः प्रजिगाय, तस्मादाग्नेयीभिरुक्थानि प्रणयन्ति।---- यत् पञ्च देवता अभ्युत्तस्थुः, तस्मात् पञ्च देवता उक्थे शस्यन्ते।----एते ह वा एतान् पञ्चभिः प्राणैः समीर्योदस्थापयन्। तस्मादु एवैताः पञ्च देवता उक्थे शस्यन्ते।— गो.ब्रा.२.४.११

३२६. ये ह वा एनं पञ्चभिः प्राणैः समीर्योदस्थापयन् ता उ एवैताः पञ्च देवता उक्थे शस्यन्ते।— गो.ब्रा.२.४.१२

३२७. अथ कस्माद् भूयिष्ठा देवता उक्थे शस्यन्त इति? अन्तो वा आग्निमारुतमन्तरुक्थान्यन्त आश्विनम्।---- अथ कस्माद् भूयिष्ठा देवता उक्थे शस्यन्त इति? द्वे द्वे उक्थमुखे भवतः, तद् यद् द्वे द्वे।— गो.ब्रा.२.४.१३

३२८. अथ यदैन्द्रावरुणं मैत्रावरुणस्योक्थं भवति, ऐन्द्राबार्हस्पत्यं ब्राह्मणाच्छंसिन उक्थं भवति, ऐन्द्रावैष्णवमच्छावाकस्योक्थं भवति।----- -।— गो.ब्रा.२.४.१४

३२९. अथ यदैन्द्रावारुणं मैत्रावरुणस्योक्थं भवति- इन्द्रावरुणा सुतपाविमं सुतं सोमं पिबतं मद्यं धृतव्रतौ इत्यृचाभ्यनूक्तम्।---- -चर्षणीधृतं मघवानमुक्थ्यम् इत्युक्थमुखम्। --------ऐन्द्रावरुणमस्यैतद् नित्यमुक्थम्।— गो.ब्रा.२.४.१५

३३०. अथ यदैन्द्राबार्हस्पत्यं ब्राह्मणाच्छंसिन उक्थं भवति-इन्द्रश्च सोमं पिबतं बृहस्पते--------। प्र

मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये इत्युक्थमुखम्।----- ऐन्द्राबार्हस्पत्यमस्यैतद् नित्यमुक्थम्।— गो.ब्रा.२.४.१६

३३१. अथ यदैन्द्रावैष्णवमच्छावाकस्योक्थं भवति- इन्द्राविष्णू मदपती मदानामा सोमं यातं----। ऋतुर्जनित्री तस्या अपस्परि इत्युक्थमुखम्। ---- ऐन्द्रावैष्णवमस्यैतद्, नित्यमुक्थम्।— गो.ब्रा.२.४.१७

३३२. अथाध्वर्यो शंशंसावोमिति स्तोत्रियानुरूपायोक्थमुखाय परिधानीयाया इति चतुश्चतुराह्वयन्ते।---- -असौ वै लोकस्तृतीयसवनम्। तस्य पञ्च दिशः। पञ्चोक्थानि तृतीयसवनस्य। स एतैः पञ्चभिरुक्थैरेताः पञ्च दिश आप्नोति।— गो.ब्रा.२.४.१८

३३३. पुरुषो वै यज्ञः। तस्य शिर एव हविर्धानम्, मुखमाहवनीयः, उदरं सदः, अन्नमुक्थानि, ------। — गो.ब्रा.२.५.४

३३४. तदाहुः-यदेतत् साम गीयते, अथ क्वैतस्य साम्न उक्थम्? का प्रतिष्ठा? त्रया देवा एकादशेत्याहुः, एतद् वा एतस्य साम्न उक्थम्, एषा प्रतिष्ठा।— गो.ब्रा.२.५.७

३३५. ता (प्रजाः) अतिरिक्तोक्थे वारवन्तीयेनावारयन्। तस्मादेषो ऽतिरिक्तोक्थवान् भवति।— गो.ब्रा.२.५.९

३३६. तद् यथैवादो ऽह्न उक्थानामाग्नेयं प्रथमं भवति, एवमेवैतदत्राप्याग्नेयं प्रथमं भवति।---- ऐन्द्रावैष्णवमच्छावाकस्योक्थं भवति। चतुराहा- वान्यतिरिक्तोक्थानि भवन्ति। पशवो वा उक्थानि।— गो.ब्रा.२.५.१०

३३७. तदाहुः -- कथं द्वयुक्थो होतैकसूक्त एकोक्था होत्रा द्विसूक्ता इति? असौ वै होता यो ऽसौ तपति, स वा एक एव, तस्मादेकसूक्तः।------रश्मयो वाव होत्रा, ते वा एकैकं, तस्मादेकोक्थाः। तद् यदेकैकस्य रश्मेर्द्वौ द्वौ वर्णौ भवतः, तस्माद् द्विसूक्ताः। संवत्सरो वाव होता, स वा एक एव, तस्मादेकसूक्तः। तस्य यद्द्वयान्यहानि भवन्ति शीतान्यन्यान्युष्णान्यन्यानि, तस्माद् द्वयुक्थः। ऋतवो वाव होत्राः, ते वा एकैकम्, तस्मादेकोक्थाः।-----स यत् पुरुषो भवत्यन्यथैव प्रत्यङ् भवत्यन्यथा प्राङ्, तस्माद् द्वयुक्थः। अङ्गानि वाव होत्राः, तानि वा एकैकम्, तस्मादेकोक्थाः। तद् यदेकैकमङ्गं द्युतिर्भवति, तस्माद् द्विसूक्ताः। तदाहुः -- यद् द्वयुक्थो होतैकसूक्त एकोक्था होत्रा द्विसूक्ताः, कथं तत् समं भवति ?-------। तदाहुः -- यदग्निष्टोम एव सति यज्ञे सर्वा देवताः सर्वाणि छन्दांस्याप्याययन्ति, अथ कतमेन छन्दसायातयामान्युक्थानि प्रणयन्ति, कया देवतयेति? गायत्रेण छन्दसाग्निना देवतयेति ब्रूयात्।— गो.ब्रा.२.६.६

३३८. आग्नेयीषु मैत्रावरुणस्योक्थं प्रणयन्ति।---- -- -ऐन्द्रीषु ब्राह्मणाच्छंसिन उक्थं प्रणयन्ति।---- - वीर्यं वा इन्द्रः, ब्रह्म बृहस्पतिः, पशव उक्थानि, वीर्येणैव तद् ब्रह्मणा चोभयतः पशून् परिगृह्णाति, स्थित्यै, अनपक्रान्त्यै। ऐन्द्रीष्वच्छावाकस्योक्थं प्रणयन्ति।-३--- -- -धराणि ह वा अस्यैतान्युक्थातानि भवन्ति यद् नाभानेदिष्ठो वालखिल्यो वृषाकपिरेवयामरुत्।— गो.ब्रा.२.६.७

३३९. एतेषां वा एषां शिल्पानां विश्वजिति सांवत्सरिके द्वे होतुरुक्थे माध्यंदिनमभिप्रच्यवेते, हन्ताहमित्थमेवयामरुतं शंसयानीति।— गो.ब्रा.२.६.९

३४०. यद् वेवैनाः संशंसति, यद् नाभानेदिष्ठो वालखिल्यो वृषाकपिरेवयामरुदेतानि वा अत्रोक्थानि भवन्ति, तस्माद् न संशंसति।— गो.ब्रा.२.६.१६

३४१. महावीर प्रवर्ग्य पात्र हेतु एकपातिनी ऋचाएं : परि त्वा गिर्वणो गिरोऽधि द्वयोरदधा उक्थ्यं वचः— ऐतरेय ब्राह्मण १.१९

३४२. अधि द्वयोरदधा उक्थ्यं वच इति, द्वयोर्ह्येतत्तृतीयं छदिरधि निधीयते, इति। उक्थ्यं वच इति यदाह यज्ञियं वै कर्मोक्थ्यं वचो यज्ञमेवैतेन समर्धयति, इति।— ऐ.ब्रा.१.२९

३४३. प्रजापतेर्वा एतदुक्थं यत्प्रातरनुवाकस्तस्मिन्सर्वे कामा अवरुन्ध्यन्ते— ऐ.ब्रा.२.१७

३४४. समस्यत्युत्तरे पदे तस्मात्पुमानूरू समस्यति तन्मिथुनं मिथुनमेव तदुक्थमुखे करोति प्रजात्यै।— ऐ.ब्रा.२.३५

३४५. सा विराट् त्रयस्त्रिंशदक्षरा भवति त्रयस्त्रिंशद्वै देवा-----तत्प्रथम उक्थमुखे देवता आक्षरभाजः करोत्यक्षरमेव तद्देवता अनुप्रपिबन्ति देवपात्रेणैव तद्देवतातृप्यन्ति।----या वा आग्नेन्द्रयैन्द्राग्नी वै सा सेन्द्राग्नमेतदुक्थं ग्रहेण च तूष्णींशंसेन च।— ऐ.ब्रा.२.३७

३४६. अच्छिद्रोक्था कवयः शंसन्निति ये वा अनूचानास्ते कवयस्त इदमच्छिद्रं रेतः प्रजनयन्नित्येव तदाह।--- -ब्रह्म वै बृहस्पतिः क्षत्रं सोम स्तुतशस्त्राणि नीथानि चोक्थामदानि च दैवेन चैवैतद्ब्रह्मणा प्रसृतो दैवेन च क्षत्रेणोक्थानि शंसति।— ऐ.ब्रा.२.३८

३४७. ग्रहोक्थं वा एतद्यत्प्रउगं नव प्रातर्ग्रहा गृह्यन्ते नवभिर्बहिष्पवमाने स्तुवते----। वायव्यं शंसति तेन वायव्य उक्थवान्। ऐन्द्रवायवं शंसति तेनैन्द्रवायव उक्थवान्। मैत्रावरुणं शंसति तेन मैत्रावरुण उक्थवान। आश्विन शंसति तेनाऽऽश्विन उक्थवान्। ऐन्द्रं शंसति तेन शुक्रामन्थिना उक्थवन्तौ। वैश्वदेवं शंसति तेनाऽऽग्रयण उक्थवान्। सारस्वतं शंसति। न सारस्वतो ग्रहोऽस्ति। वाक्तु सरस्वती ये तु के च वाचा ग्रहा गृह्यन्ते तेऽस्य सर्वे शस्तोक्थाः। उक्थिनो भवन्ति य एवं वेद।— ऐ.ब्रा.३.१

३४८. यजमान का पुनर्जन्म : अन्नाद्यं वा एतेनावरुन्धे यत्प्रउगयन्याऽन्या देवता प्रउगे शस्यतेऽन्यदन्यदुक्थं प्रउगे क्रियते। अन्यदन्यदस्यान्नाद्यं गृहेषु य एवं वेद। एतद्ध वै यजमानस्याध्यात्मतमिवोक्थं यत्प्रउगं तस्मादेनेनैतदुपेक्ष्यतममिवेत्याहुरेतेन ह्येनं होता संस्करोति। वायव्यं शंसति---- -। ऐन्द्रवायवं शंसति-----। मैत्रावरुणं शंसति------- -। आश्विनं शंसति----- -। ऐन्द्रं शंसति-- ----। वैश्वदेवं शंसति---- ---। सारस्वतं शंसति— ऐ.ब्रा.३.२

३४९. प्राणानां वा एतदुक्थं यत्प्रउगं सप्त देवताः शंसति सप्त वै शीर्षन्प्राणाः शीर्षन्नेव तत्प्राणादधाति।— ऐ.ब्रा.३.३

३५०. विश्वेभिः सोम्यं मध्वग्न इन्द्रेण वायुना। पिबा मित्रस्य धामभिरिति वैश्वदेवमुक्थं शस्त्वा वैश्वदेव्या जयति यथाभागं तद्देवता प्रीणाति।— ऐ.ब्रा.३.४

३५१. गर्भा वा एत उक्थानां यन्निविदस्तद्यत्पुरस्तादुक्थानां प्रातःसवने धीयन्ते तस्मात्पराञ्चो गर्भा धीयन्ते पराञ्चः संभवन्ति। पेशा वा एत उक्थानां यन्निविदस्तद्यत्पुरस्तादुक्थानां प्रातःसवने धीयन्ते यथैव प्रवयणतः पेशः कुर्यातादृक्तत्---- -।— ऐ.ब्रा.३.१०

३५२. सौर्या वा एता देवता यन्निविदस्तद्यत्पुरस्तादुक्थानां प्रातःसवने धीयन्ते मध्यतो मध्यंदिने ततस्तृतीयसवन आदित्यस्यैव तद्व्रतमनु पर्यावर्तन्ते।— ऐ.ब्रा.३.११

३५३. उक्थं वाचीन्द्रायेत्याह शस्त्वा सप्ताक्षरमोमुक्थशा इत्यध्वर्युश्चतुरक्षरं तदेकादशाक्षरं संपद्यत।-------- उक्थं वाचीन्द्राय देवेभ्य इत्याह शस्त्वैकादशाक्षरमोत्यध्वर्युरेकाक्षरं तद्द्वादशाक्षरं संपद्यते।— ऐ.ब्रा.३.१२

३५४. तान्यु वा एतान्युपसदामेवोक्थानि यद्धाय्या अग्निर्नेतेत्याग्नेयी प्रथमोपसत्तस्या एतदुक्थं त्वं सोम क्रतुभिरिति सौम्या द्वितीयोपसत्तस्या एतदुक्थं पिन्वन्त्यप इति वैष्णवी तृतीयोपसत्तस्या एतदुक्थम्।— ऐ.ब्रा.३.१८

३५५. सो (इन्द्रः)ऽवेदिमे वै लोक मे सचिवा इमे माऽकामयन्त हन्तेमानस्मिन्नुक्थ आभजा इति तानेतस्मिन्नुक्थ आभजदथहैते तर्ह्युभे एव निष्केवल्ये उक्थे आसतु।----मरुत्वतीयमुक्थं शस्त्वा मरुत्वतीयया यजति यथाभागं तद्देवताः प्रीणाति।— ऐ.ब्रा.३.२०

३५६. स एतं माहेन्द्रं ग्रहमब्रूत माध्यंदिनं सवनानां निष्केवल्यमुक्थानां त्रिष्टुभं छन्दसां---।—ऐ.ब्रा.३.२१

३५७. पाञ्चाजन्यं वा एतदुक्थं यद्वैश्वदेवं सर्वेषां वा एतत्पञ्चजनानामुक्थं देवमनुष्याणां गन्धर्वाप्सरसां सर्पाणां च पितृणां चैतेषां वा एतत्पञ्चजनामुक्थं सर्व एनं पञ्चजना विदुः।— ऐ.ब्रा.३.३१

३५८. अग्ने मरुद्भिः शुभयद्भिर्ऋक्वभिरित्याग्निमारुतमुक्थं शस्त्वाऽऽग्निमारुत्या यजति यथाभागं तद्देवताः प्रीणाति।— ऐ.ब्रा.३.३८

३५९. इति नु पुरस्तादथोपरिष्टात्पञ्चदशोक्थ्यस्य स्तोत्राणि पञ्चदश शस्त्राणि स मासो मासधा संवत्सरो विहित संवत्सरोऽग्निर्वैश्वानरोऽग्निष्टोमः संवत्सरमेवानूक्थ्योऽग्निष्टोममप्येत्युक्थ्यमपि यन्तमनु वाजपेयोऽप्येत्यत्युक्थ्यो हि स भवति।— ऐ.ब्रा.३.४१

३६०. अग्निष्टोमं वै देवा अश्रयन्तोक्थान्यसुरास्ते समावद्वीर्या एवाऽऽसन्न व्यवर्तन्त तान्भरद्वाज ऋषीणामपश्यदिमे वा असुरा उक्थेषु श्रितास्तानेषां न कश्चन पश्यतीति सोऽग्निमुदह्वयत्। ऐह्यू षु ब्रवाणि ते ऽग्न इत्थेतरा गिर। असुर्या ह वा इतरा गिरः।---- भरद्वाजो ह वै कृशो दीर्घः पलित आस। सोऽब्रवीदिमे वा असुरा उक्थेषु श्रितास्तान्वो न कश्चन पश्यतीति। तानग्निरश्वो भूत्वाऽभ्यत्यद्रवद्यदग्निरश्वो भूत्वाऽभ्यत्यद्रवत्तत्साकमश्वं समाभवत्तत्साकमश्वस्य साकमश्वत्वम्। तदाहुः साकमश्वेनोक्थानि प्रणयेदप्रणीतानि वाव तान्युक्थानि यान्यन्यत्र साकमश्वादिति। प्रमंहिष्ठीयेन प्रणयेदित्याहुः प्रमंहिष्ठीयेन वै देवा असुरानुक्थेभ्यः प्राणुदन्त।— ऐ.ब्रा.३.४९

३६१. ते वा असुरा मैत्रावरुणस्योक्थमश्रयन्त सोऽब्रवीदिन्द्र कश्चाहं चेमानितोऽसुरान्नोत्स्यावहा इत्यहं चेत्यब्रवीद्वरुणस्तस्मादैन्द्रावरुणं----ते वै ततोऽपहता असुरा ब्राह्मणाच्छंसिन उक्थमश्रयन्त सोऽब्रवीदिन्द्रः कश्चाहं चेमानितोऽसुरान्नोत्स्यावहा इत्यहं चेत्यब्रवीद्बृहस्पतिस्तस्मादैन्द्राबार्हस्पत्यं ब्राह्मणाच्छंसी तृतीयसवने शंसति---ते वै ततोऽपहता असुरा अच्छावाकस्योक्थमश्रयन्त सोऽब्रवीदिन्द्रः कश्चाहं चेमानितोऽसुरान्नोत्स्यावहा इत्यहं चेत्यब्रवीद्विष्णुस्तस्मादैन्द्रावैष्णवमच्छावाकस्तृतीयसवने शंसति— ऐ.ब्रा.३.५०

३६२. वज्रो वै षोळशी पशव उक्थानि तं परस्तादुक्थानां पर्यस्य शंसति। तं यत्परस्तादुक्थानां पर्यस्य शंसति वज्रेणैव तत्षोळशिना पशून्परिगच्छति — ऐ.ब्रा.४.१

३६३. चितैधमुक्थमिति ह स्म वा एतदाचक्षते यदेतदाश्विनं— ऐ.ब्रा.४.१०

३६४. उक्थ्यो भवति पशवो इति उक्थानि पशूनामवरुद्ध्यै।— ऐ.ब्रा.४.१२

३६५. उक्थ्य एव स्यात्पशुसमृद्धो यज्ञः पशुसमृद्धं सत्रं सर्वाणि चतुर्विंशानि स्तोत्राणि प्रत्यक्षाद्ध्येतदहश्चतुर्विंशं तस्मादुक्थ्य एव स्यात्।— ऐ.ब्रा.४.१२

३६६. आदित्यों व अङ्गिरसों में स्वर्ग लोक हेतु प्रतिस्पर्धा : यथा वा प्रायणीयोऽतिरात्रश्चतुर्विंश उक्थ्यः सर्वेऽभिप्लवाः षळहा आक्ष्यन्त्यन्यान्यहानि तदादित्यानामयनम्। प्रायणीयोऽतिरात्रश्चतुर्विंश उक्थः सर्वे पृष्ठ्याः षळहा अक्ष्यत्यन्याहानि तदङ्गिरसामयनम्।— ऐ.ब्रा.४.१७

३६७. तदाहुर्विषुवत्येवैतदहः शंसेद्विषुवान्वा एतदुक्थानामुक्थं विषुवान्विषुवानिति ह विषुवन्तो भवन्ति श्रेष्ठतामश्नुवत।— ऐ.ब्रा.४.२२

३६८. अनश्वो जातो अनभीशुरुक्थ्य इत्यार्भवं रथस्त्रिचक्र इति त्रिवत्तृतीयेऽहनि तृतीयस्याह्नो रूपम्।— ऐ.ब्रा.५.२

३६९. भूर्भुवः स्वरित्युक्थ्ये वाऽतिरात्रे वा ब्रूयादिन्द्रवन्तः स्तुध्वमिति।— ऐ.ब्रा.५.३४

३७०. अथाऽऽह यदेतास्तिस्र उक्थिन्यो होत्राः कथमितरा उक्थिन्यो भवन्तीति। आज्यमेवाऽऽग्नीध्रीयाया उक्थं मरुत्वतीयं पोत्रीयायै वैश्वदेवं नेष्ट्रीयायै ता वा एता होत्रा एवं न्यङ्गा एव भवन्ति।— ऐ.ब्रा.६.१४

३७१. ऐरयेथामेरयेथामित्यच्छावाक उक्थ्येऽभ्यस्यति स हि तत्रान्त्यो भवति।— ऐ.ब्रा.६.१५

३७२. एतानि वा अत्रोक्थानि नाभानेदिष्ठो वालखिल्या वृषाकपिरेवयामरुत्स यत्संशंसेदपैव स एतेषु कामं राध्नुयात्।— ऐ.ब्रा.६.३६

३७३. उक्थ्य एवायं पञ्चदशः स्यादित्याहुरोजो वा इन्द्रियं वीर्यं पञ्चदश ओजः क्षत्रं वीर्यं राजन्यस्तदेनमोजसा क्षत्रेण वीर्येण समर्धयति।---- विराज्येवैनं तदन्नाद्ये प्रतिष्ठापयति तस्मात्तदुक्थ्यः पञ्चदशः स्यादित्याहुः।— ऐ.ब्रा.८.४

३७४. -------तं वाजपेयं तं षोडशिनं तम् उक्थ्यं तम् अग्निष्टोमं तम् इष्टिपशुबन्धांस्---- अभिसमभरन्।— जैमिनीय ब्राह्मण १.४

३७५. एते असृग्रम् इन्दवः तिरः पवित्रम् आशवः इति। आशवः इति स्तोमान् विश्वानि इत्य् उक्थानि अभि सौभगा इत्य् एवैनान् जातान् सौभाग्येनाभ्यानक्।— जै.ब्रा.१.९४

३७६. ते ऽसुरास् त्रयाणां सवनानां रसं वीर्यं प्रवृह्यान्धं तमः प्राविशन्।-----ते देवा असुरान् अन्वभ्यवायन्। तान् असुरान् एतैर् एवोक्थैः प्रत्युदतिष्ठन्। यद् उक्थैः प्रत्युदतिष्ठंस् तद् उक्थानाम् उक्थत्वम्।— जै.ब्रा.१.१७९

३७७. पशवो वा उक्थानि वज्रष् षोडशी। यद् उक्थानाम् अन्ततष् षोडशिना स्तुवन्ति वज्रेणैव तत् पशून् परिगृह्णन्त्य् अपरावापाय।— जै.ब्रा.१.२०१

३७८. तद् आहुर् नोक्थष् षोडशी कार्य इति। पशवो वा उक्थानि वज्रष् षोडशी।— जै.ब्रा.१.२०२

३७९. एषा वा उक्थस्य संमा यद् रात्रिः। त्रीण्य् उक्थानि त्रिदेवत्यस् संधिः।------रात्र्या त्वाव त्रयोदशो मास आप्यते।— जै.ब्रा.१.२०६

३८०. ब्रह्म वा अग्निष्टोमः। ब्रह्म वै ब्राह्मणस्य स्वम्। अग्निष्टोमं च ह्य् अतिमन्यत उक्थं च षोडशिनम्। तद् उ वा आहुर् अग्निष्टोममात्रं वावाग्निष्टोमेनाभिजयत्य् उक्थमात्रम् उक्थेन षोडशिमात्रं षोडशिना रात्र्या त्वाव सर्वम् अवरुन्द्ध इति।— जै.ब्रा.१.२०७

३८१. आश्विनं ह खलु वै संधेर् उक्थम्।— जै.ब्रा.१.२०९

३८२. चतुर्विंशत्यर्धमासस् संवत्सरश् चतुर्विंशति रात्र्या उक्थामदानि।— जै.ब्रा.१.२१२

३८३. --- इमं जम्भसुतं पिब धानावन्तं करम्भिणम् अपूपवन्तम् उक्थिनम् इति।— जै.ब्रा.१.२२०

३८४. ----ऽत्य् उ वा एकविंशान्य् उक्थानि रात्रिर् एत्य् अथ केनैषाम् एकविंशम् अनु रात्रिस् संतिष्ठत इति।— जै.ब्रा.१.२३२

३८५. कस्माद् यन्ति पवमानाः पराञ्चः कस्माद् उक्थ्या पुनर् अभ्याकनिक्रति इति। देवा अन्यां वर्तनिम् अध्वरस्य मानुषास उपजीवन्त्य् अन्याम्। तस्माद् यन्ति पवमानाः पराञ्चस् तस्माद् उक्थ्याः पुनर् अभ्याकनिक्रति इति।— जै.ब्रा.१.२७७

३८६. अथोक्थानि छन्नमिश्राणीव गायेत्। अह्नो ह्य् उक्थानि अथ रात्रिम् आविर् एव गायेत्। छन्नेवाह्नो रात्रिः।— जै.ब्रा.१.३४०

३८७. यदीतरे ऽग्निष्टोमं कुर्वीरन्न् अथात्मनोक्थ्यं कुर्वीरन्। यदीतर उक्थ्यं कुर्वीरन्न् अथात्मना षोडशिनं गृह्णीरन्।— जै.ब्रा.१.३४४

३८८. यदि तृतीयसवनात् सोमो ऽतिरिच्यते ऽतो उक्थ्यं कुर्वीरन्। यद्य् उक्थ्यम् अतिरिच्येत षोडशिनं गृह्णीरन्।— जै.ब्रा.१.३५०

३८९. यदि तृतीयसवने कलशो दीर्येतोक्थ्यं कृत्वा यत् सोमम् इन्द्र विष्णवे इत्य् एतासु ब्रह्मसाम कुर्युः।— जै.ब्रा.१.३५२

३९०. अथ यद् उक्थ्या भवन्ति। पशवो वा उक्थ्यानि। अन्नं पशवः। स यथान्नेन सह श्रेयांसं प्रतिनन्दन्तम् उपेयाद् एवम् एवैनम् एतद् उक्थ्यै स्वरसामभिर् उपयन्ति।------ -तद् यद् उक्थान्य् अन्तरेण भवन्ति। पशवो वा उक्थानि। अन्नं पशवः। अन्नेनैतम् अशमयन्।— जै.ब्रा.२.७

३९१. तान् (गर्भान्) उक्थैर् उत्थापयति। तद् उक्थानां उक्थत्वम्। तेभ्य एतद् देव्यं मध्व् अशीतीर् अन्नाद्यं प्रयच्छति।— जै.ब्रा.२.२४

३९२. तद् धैतद् एके ऽभिप्लवस्य षष्ठम् अहर् उक्थ्यं कुर्वन्त्य् एवं सभारम् इति।— जै.ब्रा. २.३२

३९३. अथ यास् तिस्रः परिशिष्टा आसुस् तानि हैवोक्थानि चक्रतुः। स एष उक्थ्यो यज्ञः। शश्वद् धैष एव प्रथम उक्थ्यानाम्-अथ ततो ऽग्निष्टोमा एव पराञ्चः।।— जै.ब्रा.२.८४

३९४. स (मनुस्तोमः) उक्थ्यो भवति। प्रजा वै पशव उक्थानि। प्रजा वै पशवः प्रजननम्।— जै.ब्रा.२.१०८

३९५. यजमानकामो वा एष यद् ब्रह्मसाम। स्व एव तद् आयतने यजमानम् अन्नाद्येन समृद्ध्यन्ति। स उक्थ्यो भवति-प्रजा वै पशव उक्थानि। प्रजा वै पशव स्वर्गो लोक।— जै.ब्रा.२.१०९

३९६. प्रजापतिः पशून् असृजत। ते ऽस्मात् सृष्टाः प्राद्रवन्। तान् अग्निष्टोमेनाविवारयिषत। ते तद् अत्याद्रवन्। तान् उक्थ्येनाविवारयिषत। ते तद् अत्याद्रवन्। तान्----।— जै.ब्रा.२.११०

३९७. एहीळा एहीळा इति -- पशवो वा इळा -- तस्माद् एतान्य् अतिरिक्तोक्थानि कार्याणीति।------ तस्माद् एतान्य् अतिरिक्तोक्थानि कार्याण्य् एवेति।— जै.ब्रा.२.११२

३९८. स (गोसवः) उक्थ्यो भवति -- प्रजा वै पशव उक्थानि। प्रजा वै पशव स्वर्गो लोक।— जै.ब्रा.२.११३

३९९. स (विवधः) उक्थ्यो भवति -- पशवो वा उक्थानि -- पशूनाम् एवावरुद्ध्यै।— जै.ब्रा. २.११४

४००. अग्निष्टोमयज्ञा वा आदित्या उक्थ्ययज्ञा अंगिरसः। स एष उक्थ्यो निदानेन सन् अग्निष्टोमः प्रत्याह्रियते क्षिप्रतायै।— जै.ब्रा.२.१२१

४०१. स उक्थ्यो भवति। विड् वा उक्थानि। क्षत्रम् एव तद् विश्य् अध्यूहन्ति।— जै.ब्रा.२.१४०

४०२. तस्य प्रत्नं पीयूषं पूर्वं यद् उक्थ्यम् इत्य् एताः सतोबृहतयो भवन्ति गायत्रीभाजनम्।— जै.ब्रा.२.१४२

४०३. तस्य पञ्च स्तोत्राणि चतुस्त्रिंशानि कुर्युस् सर्वान् पवमानान् उभे ब्रह्मसामनी। तावतीर् उक्थ्यस्य स्तोत्र्याः। आप्नुवन्ति तं कामं य उक्थ्ये। नो वा अग्निष्टोमाद् यन्ति। न ह खलु वा एषो ऽग्निष्टोमो नोक्थ्यो न षोडशिमान् नातिरात्रः।— जै.ब्रा.२.१९२

४०४. हाविष्मतम् एवोत्तरस्याह्न उक्थेषु ब्रह्मसाम कुर्युः।— जै.ब्रा.२.२३७

४०५. अथ यस्यैतस्य ज्योतिर् उक्थ्यः पूर्वम् अहर् भवत्य् आयुर् अतिरात्र उत्तरम्,------।— जै.ब्रा.२.२३८

४०६. तस्य (प्राजापत्यस्य)अग्निष्टोमाव् अभितो भवत, उक्थ्यौ मध्ये। ब्रह्म वा अग्निष्टोमः, प्रजा पशव उक्थ्यानि।— जै.ब्रा. २.२८८

४०७. अथ यस्यैतस्य ज्योतिषी अग्निष्टोमाव् अभितो भवतो, गोआयुषी उक्थ्याव् अन्तरौ, ज्योतिर् अतिरात्रो मध्ये, प्रजननकामो हैतेन यजेत।-------गोआयुषी उक्थ्याव् अन्तरौ भवतः। पशवो वा उक्थानि।---- अथ यस्यैतस्य ज्योतिषी अतिरात्राव् अभितो भवतो, गोआयुषी उक्थ्याव् अन्तरौ, ज्योतिर् अग्निष्टोमो मध्ये,-- --। गोआयुषी उक्थ्याव् अन्तरौ भवतः। पशवो वा उक्थानि।— जै.ब्रा.२.२९६

४०८. अथ यस्यैतस्य विश्वजिद् अभिजिताव् अतिरात्राव् अभितो भवतो, गौर् आयुर् गौर् आयुर् इति चत्वार उक्थ्या मध्ये, पशुकामो हैतद् उपेयुः।---- अथैते चत्वारो मध्य उक्थ्या भवन्ति। पशवो वा उक्थानि।— जै.ब्रा.२.३००

४०९. संवत्सरो वा एष यद् अग्निष्टोमः।---- अथैकविंशैर् उक्थ्यै रात्रिम् उपावरोहेयुर् इति।— जै.ब्रा.२.३०४

४१०. --- -चत्वार एते मध्य उक्थ्या भवन्ति। पशवो वा उक्थानि। तेषां सहस्रं स्तोत्र्याः।— जै.ब्रा.२.३१५

४११. अथैष विविधः। तस्य ज्योतिर् अग्निष्टोमो गौर् उक्थ्य आयुर् उक्थ्यो ज्योतिर् अग्निष्टोम आयुर् अतिरात्रो ज्योतिर् अग्निष्टोमो गौर् उक्थ्य आयुर् उक्थ्यो ज्योतिर् अग्निष्टोमः। पशुकामो हैतेन यजेत। तस्यैषो ऽन्यतस्संगो गोआयुषी उक्थ्याव् अन्तरौ भवतः। पशवो वा उक्थानि।------।— जै.ब्रा.२.३२१

४१२. अथैष कुसुर्विन्ददशरात्रः। तस्य त्रयस् त्रिवृतो ऽग्निष्टोमास् त्रयः पञ्चदशा उक्थ्यास् त्रयस् सप्तदशा उक्थ्या ज्योतिर् अतिरात्रो,---- -।— जै.ब्रा.२.३३२

४१३. अथैषो ऽभ्रिर् उभयतःक्ष्णूः। तस्य त्रिवृद् अग्निष्टोमः पुरस्ताद् भवति, त्रिवृद् अग्निष्टोम उपरिष्टाद्, अष्टाव् उक्थ्याः सप्तदशा मध्ये।--------ब्रह्म वा अग्निष्टोमः, पशव उक्थानि। ब्रह्मणैव तद् उभयतः पशून् परिगृहीते ऽपरावापाय।— जै.ब्रा.२.३३३

४१४. अथैते सप्ताहा भवन्ति।-----अग्निष्टोमाः परस्ताद् भवन्त्य, अग्निष्टोमा अवस्ताद्, उक्थ्या मध्ये। ब्रह्म वा अग्निष्टोमः, पशव उक्थ्यानि।— जै.ब्रा.२.३४७

४१५. पूर्वस्याह्नस् सौभरम् उक्थेषु ब्रह्मसामं कुर्युर् यद्य् उभे बार्हते अहनी संपद्येयाताम्।— जै.ब्रा.२.३५८

४१६.--अग्निष्टोमाद् एव ज्योतिर् निरमिमीत, उक्थ्येभ्यो गां, रात्र्या आयुः।— जै.ब्रा.२.३७५

४१७. पशवो वा उक्थानि -तेभ्यो हि यन्ति। तस्य त्रीणि स्तोत्राण्य् अष्टाचत्वारिंशानि कुर्युर् पवमानौ ब्रह्मसाम। तावतीर् उक्थ्यस्य स्तोत्र्याः। आप्नुवन्ति तं कामं य उक्थ्ये, नो वा अग्निष्टोमाद् यन्ति।— जै.ब्रा.२.३७८

४१८. तद् आहुर् विलोमेव वा एतद् यज्ञः क्रियते यदाग्निष्टोमौ विश्वजिदभिजितौ भवतो ऽग्निष्टोमो विषुवान् उक्थ्या स्वरसामानः।— जै.ब्रा.२.३८७

४१९. त उ वा उक्थ्या भवन्ति-पशवो वा उक्थान्य्, अन्नं पशवः-पशुभ्यो ऽन्नाद्यात् प्रजां नेद् अन्तरयामेति।— जै.ब्रा.२.३८८

४२०.---तेनाग्नष्टोम। तान्य् उ एव द्वादश सन्ति पञ्चदश चतुर्विंशानि स्तोत्राणि भवन्ति। तेनोक्थ्यः। स वा एषो ऽग्निष्टोमस् सन्न् उक्थ्य, उक्थ्यस् सन्न् अग्निष्टोमः। उभौ ह तौ कामाव् उपाप्नोति यश् चाग्निष्टोमे यश् योक्थ्ये य एवं वेद।— जै.ब्रा.२.४३८

४२१.--- -त एते चत्वारो मध्य उक्थ्या भवन्ति। पशवो वा उक्थानि। तेषां सहस्रं स्तोत्र्याः।— जै.ब्रा.२.४४२

४२२. एते वै सर्वे यज्ञक्रतवो यद् अग्निष्टोम उक्थो ऽतिरात्रः।— जै.ब्रा.३.८

४२३. यद् एतान्य् अष्टाव् अहानि मध्य उक्थ्यानीति, न तत्र जाम्य् अस्तीति ब्रूयात्। पशवो वा उक्थानि। पशून् एवैतत् पशुभिस् समाकरोति।— जै.ब्रा.३.९

४२४. एतस्माद् ध वा इदं ब्राह्मणानां राज्ञाम् इव प्रकाशो यद् गायत्रीषूक्थं ब्रह्मसाम भवति।— जै.ब्रा.३.३४

४२५. तासु सत्रासाहीयम् उक्तब्राह्मणम्। तद् उक्थसाम भवति-पशवो वा उक्थानि- पशूनाम् एवावरुद्ध्यै। तद् आहुर् उक्थसाम सत् पवमाने क्रियते कस्मात् तद् इति।---- तद् यद् अत्र सत्रासाहीयं क्रियते तेनैनद् उक्थेभ्यो न च्यावयन्ति।---- अथो पशवो वा उक्थान्य्, आत्मा मध्यन्दिनः।— जै.ब्रा.३.६९

४२६. अथैतद् उक्थभाजनम्। उक्थानां वा एष एको यत् षोडशी।— जै.ब्रा. ३.८३

४२७. यत् सोम चित्रम् उक्थ्यम् इति चित्रवतीर् भवन्ति-चित्ररूपा वै पशवः।— जै.ब्रा.३.१०१

४२८. एतो न्व् इन्द्रं स्तवाम शुद्धं शुद्धेन साम्ना। शुद्धैर् उक्थैर् वावृध्वांसं शुद्धैर् आशीर्वान् ममत्तु इति। ततो वा इन्द्रश् शुद्धः पूतो मेध्यो ऽभवत्।— जै.ब्रा.३.२२८

४२९. इन्द्रम् इत् स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुर् उक्था च शंसत। अवक्रक्षिणं वृषभं यथाजुवं गां न चर्षणीसहम्। इति।— जै.ब्रा.३.२९३

४३०. स (प्रजापतिः) एतान् अष्टाव् उक्थ्यान् अष्टातयान् पशून् दिशो ऽनुव्यतनोद् वामदेव्यम् अन्तरिक्षम्, — जै.ब्रा.३.३१८

४३१. तस्यैषा देवता दीक्षमाणस्य तेज इन्द्रियं वीर्यं यशो नादत्ते। तद् एतद् उक्थस्यैव स्तम्भः। ते ये ऽर्वाञ्चो रश्मयस् तैर् अस्येमे लोका स्तब्धा य एतस्माद् अर्वाञ्चो, ऽथ यत् किं च प्राणभृत् सशरीरम्। अथ य ऊर्ध्वास्----।— जै.ब्रा.३.३५९

४३२. अथ यद् धा इत्य् एष हीदं सर्वं हरति। स एष एवोक्थ्यम्। एष हीदं सर्वम् उत्थापयतीव। तस्माद् एष एवोक्थम्।— जै.ब्रा.३.३७९

४३३. आज्यानां प्रथमा (विष्टुतिः) पृष्ठानां द्वितीयोक्थानां तृतीया। याज्यानां सा होतुर्य्या पृष्ठानां सा मैत्रावरुणस्य योक्थानां सा ब्राह्मणाछंसिनो— ताण्ड्य ब्राह्मण ३.११.२

४३४. यज्ज्योतिष्टोमो भवति यज्ञमुखन्तदृध्नुवन्ति यदुक्थो यज्ञक्रतोरनन्तरयाय यद्रात्रिः सर्वस्याप्त्यै।— तां.ब्रा.४.१.६

४३५. यावत्यश्चतुर्विंशस्योक्थस्य स्तोत्रीयास्तावत्यः संवत्सरस्य रात्रयः स्तोत्रीयाभिरेव तत् संवत्सरमाप्नुवन्ति।— तां.ब्रा.४.२.७

४३६. यद्युक्थं स्मात्रैककुभश्चोद्वंशीयश्चान्तत प्रतिष्ठाप्ये वीर्य्यं वा एते सामनी वीर्य्य एवान्ततः प्रतितिष्ठन्ति।— तां.ब्रा.४.२.१०

४३७. अथो खल्वाहुरुक्थमेव कार्य्यमह्नः समृद्ध्यै।— तां.ब्रा.४.२.१३

४३८. तानाहुरुक्था कार्य्या अग्निष्टोमा इति यद्युक्थाः स्युः। पशवो वा उक्थानि शान्तिः पशव शान्तेनैव तद्विषुवन्तमुपयन्ति। तदाहुर्विवीवधमिव वा एतद् यदग्निष्टोमो विषुवानग्निष्टोमौ विश्वजिदभिजितावथेतर उक्थाः स्युरिति।— तां.ब्रा.४.५.१९

४३९. यद्युत्सृजेयुरुक्थान्युत्सृजेयुस्तदेवोत्सृष्टं तदनुत्सृष्टं।— तां.ब्रा.५.१०.५

४४०. देवा वा अग्निष्टोममभिजित्योक्थानि नाशक्नुवन्नभिजेतुं तेऽग्निमब्रुवंस्त्वया मुखेनेदञ्जयामति सोऽब्रवीत् किम्मे ततः स्यादिति यत्कामयस इत्यब्रुवन् सोऽब्रवीन्मद्देवत्यासूक्थानि प्रणयानिति। तस्मादाग्नेयीषूक्थानि प्रणयन्ति।— तां.ब्रा.८.८.२

४४१. तस्मात्साकमश्वेनोक्थानि प्रणयन्त्येतेन हि तान्यग्रेऽभ्यजयन्।— तां.ब्रा.८.८.५

४४२. पशून् वा एभ्यस्तानाहरत्पशवो वा उक्थानि पशुकाम उक्थेन स्तुवीत पशुमान् भवति।— तां.ब्रा.८.८.८

४४३. यदि बृहत्सामातिरात्रः स्यात्सौभरमुक्थानां ब्रह्मसाम कार्य्यं बृहदेव तत्तेजसा समर्द्धयति।— तां.ब्रा.८.८.११

४४४. नार्मेध साम : विच्छन्दसऋचो भवन्त्यहोरात्रयो रूपं। नैव ह्येतदह्नोरूपं न रात्रेर्य्यदुक्थानां।— तां.ब्रा.८.८.२५

४४५. गायत्रीषु ब्रह्मवर्च्चसकामायोक्थानि प्रणयेयुर्गायत्र्यां ब्रह्मसामानुष्टुभ्यछावाकसाम सैषा गायत्री सम्पद्यते।— तां.ब्रा.८.१०.१

४४६. विराट्स्वन्नाद्यकामायोक्थानि प्रणयोयुरुष्णिहि ब्रह्मसामानुष्टुभ्यछावाकसाम सैषा विराट् सम्पद्यते।— तां.ब्रा.८.१०.७

४४७. अक्षरपङ्क्तिषु ज्यैष्ठ्यकामायोक्थानि प्रणयेयुरुष्णिहि ब्रह्मसामानुष्टुभ्यछावाकसाम सैषानुष्टुप् सम्पद्यते।— तां.ब्रा.८.१०.९

४४८. देवा वा उक्थान्यभिजित्य रात्रिन्नाशक्नुवन्नभिजेतुन्तेऽसुराव्रात्रिन्तमः प्रविष्टान्नानुव्यपश्यंस्तेतमनुष्टुप्शिरसं प्रगाथमपश्यन्-----तां.ब्रा.९.१.१

४४९. एषा वा उक्थस्य सम्मा यद्रात्रिः। त्रीण्युक्थानि त्रिदेवत्यः सन्धिः। यथा वा अह्न उक्थान्येवमेषरात्रेः सन्धिर्नानारूपाण्यह्न उक्थानि नानारूपा एते तृचा भवन्ति।— तां.ब्रा.९.१.२७

४५०.--- तौ (अश्विनौ) अब्रूतामस्मद्देवत्यमिद-मुक्थमुच्याता इति तस्मादाश्विनमुच्यते।— तां.ब्रा.९.१.३६

४५१. अग्निष्टोमेन वै देवा इमं लोकमभ्यजयन्नन्तरिक्षमुक्थेनातिरात्रेणामुन्त इमं लोकं पुनरभ्यकामयन्त-----— तां.ब्रा.९.२.९

४५२. यदीतरोऽग्निष्टोमः स्यादुक्थः कार्य्योयद्युक्थोऽतिरात्रो यो वै भूयान्यज्ञक्रतुः स इन्द्रस्य प्रियो— तां.ब्रा.९.४.१५

४५३. तृतीयसवने सोमातिरेके : एतदन्यत् कुर्युरुक्थान्यत्प्रणयेयुरुक्थानि वा एष निकामयमानोऽभ्यतिरिच्यते योऽग्निष्टोमादतिरिच्यते यद्युक्थ्येभ्योऽतिरिच्येतातिरात्रः कार्य्यो रात्रिं वा एष निकामयमानोऽभ्यतिरिच्यते य उक्थ्येभ्यो-ऽतिरिच्यते— तां.ब्रा.९.७.११

४५४. गायत्रीं वा एतां ज्योतिष्पक्षामासते यदेतं द्वादशाहमष्टौ मध्य उक्था अग्निष्टोमावभितो मासा स्वर्गं लोकमति— तां.ब्रा.१०.४.५

४५५. जामि वा एतद्यज्ञे क्रियत इत्याहुर्यत् त्रिष्पुरस्ताद्रथन्तरमुपयन्तीति सौभरमुक्थानां ब्रह्मसाम भवति तेनैव तदजामि।— तां.ब्रा.१०.४.७

४५६. मैत्रावरुणोक्थस्य स्तोत्रीयम् : अपच्छिदिव वा एतद्यज्ञकाण्डं यदुक्थानि यदेति सलोमत्वाय।— तां.ब्रा.११.११.२

४५७. द्वितीयस्योक्थस्य स्तोत्रीयं : एवाह्यसि वीरयुरिति समानं वदन्त्य इदमित्थमसदिति। (अथ तृतीयस्योक्थस्य स्तोत्रीयं तृचं) - इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्नित्यवर्द्धन्त ह्येतर्हि यजमानमेवैतया वर्द्धयन्ति।— तां.ब्रा.११.११.४

४५८. मैत्रावरुणोक्थसाम : साकमश्वं भवत्युक्थानामभिजित्या अभिक्रान्त्यै। एतेन ह्यग्र उक्थान्यभ्यजयन्नेतेनाभ्यक्रामन्।— तां.ब्रा.११.११.५

४५९. स्तोम क्लृप्ति विधाने उक्थानां प्रथमस्य स्तोत्रीयं तृचं : आते अग्न इधीमहीति। अपच्छिदिव वा एतद्यज्ञकाण्डं यदुक्थानि यदेति सलोमत्वायैव।— तां.ब्रा.१३.६.२

४६०. द्वितीयस्योक्थस्य स्तोत्रीयं तृचं : इन्द्राय साम गायतेति पूर्णा ककुभस्तेनानशनायुको भवति।— तां.ब्रा.१३.६.३

४६१. तृतीयस्योक्थस्तोत्रीयं तृचं : असावि सोम इन्द्र त इति सिमानां रूपं स्वेनैवैनांस्तद्रूपेण समर्द्धयति।— तां.ब्रा.१३.६.५

४६२. द्वितीयस्योक्थस्य साम : सौमित्रं भवति।— तां.ब्रा.१३.६.८

४६३. मैत्रावरुणोक्थस्य साम : गूर्द्धो भवति।-— तां.ब्रा.१३.१२.४

४६४. ब्रह्मण उक्थस्तोत्रस्य साम : गोतमस्य भद्रं भवति।-— तां.ब्रा.१३.१२.६

४६५. अच्छावाकोक्थस्य साम : उद्वंशपुत्रो भवति।— तां.ब्रा.१३.१२.९

४६६. चतुर्विंश स्तोम। उक्थस्तोत्राणां प्रथमस्य स्तोत्रीयं तृचं : आते वत्सोमनो यमदित्यपच्छिदिव वा एतद्यज्ञकाण्डं यदुक्थानि यदेति सलोमत्वायैव।— तां.ब्रा.१४.६.१

४६७. द्वितीयस्योक्थस्य स्तोत्रीयं तृचं : त्वन्न इन्द्राभरेति पूर्णाः ककुभः।— तां.ब्रा.१४.६.२

४६८. तृतीयस्योक्थस्य स्तोत्रीयं तृचं : यदिन्द्र चित्रं मइह नास्ति त्वादातमद्रिवो-— तां.ब्रा.१४.६.४

४६९. तृतीयस्योक्थस्य साम : वीङ्कं भवति।— तां.ब्रा.१४.६.९

४७०. पूर्भवदेषूक्थेषु स्तोत्रीयेषु स्तोमक्लृप्तिः - चतुर्व्विंश एव स्तोमो भवति तेजसे ब्रह्मवर्च्चसाय।— तां.ब्रा.१४.६.११

४७१. छन्दोमा। चतुश्चत्वारिंशत्स्तोमः। उक्थानां प्रथमस्य स्तोत्रीयं तृचं : प्रेष्ठं वो अतिथिमित्यातिथ्यस्यैव तद्रूपं क्रियते।— तां.ब्रा.१४.१२.१

४७२. द्वितीयस्योक्थस्य स्तोत्रीयं तृचं : ऐन्द्रनोगधिप्रियेतीन्द्रियस्य वीर्य्यस्यावरुध्यै।— तां.ब्रा.१४.१२.२

४७३. तृतीयस्योक्थस्य स्तोत्रीयं तृचं : पुरां भिन्दुर्य्युवकविरमितौजा अजायतेन्द्रो विश्वस्य कर्म्मणो-- — तां.ब्रा.१४.१२.३

४७४. प्रथमस्योक्थस्य सामः औशनं भवति।— तां.ब्रा.१४.१२.४

४७५. द्वितीयस्योक्थस्य साम : सांवर्त्तं भवति।— तांब्रा१४१२६

४७६. तृतीयस्योक्थस्य साम : मारुतं भवति।— तां.ब्रा.१४.१२.८

४७७. त्रिषूक्थस्तोत्रेषु स्तोमं : चतुश्चत्वारिंश एव स्तोमो भवत्योजस्येव तद्वीर्य्ये प्रतितिष्ठत्योजो वीर्य्यं त्रिष्टुप्।— तां.ब्रा.१४.१२.१०

४७८. नवम् अहः। उक्थेषु प्रथमस्य स्तोत्रीयं तृचं : आग्नेयीषु पूर्व्वेषामह्नामुक्थानि प्रणयन्त्यथैतस्याह्न आग्नेय्यैन्द्र्यां प्रणयन्त्युभयोरेव रूपयोः प्रतितिष्ठति।— तां.ब्रा.१५.६.१

४७९. प्रथमोक्थस्तोत्रनिर्वर्त्तकं साम : ऐध्मवाहं भवति।— तां.ब्रा.१११५६२

४८०. द्वितीयोक्थस्तोत्रनिर्वर्त्तकं साम : त्रैककुभं भवति।— तां.ब्रा.१५.६.४

४८१. तृतीयस्योक्थस्य निर्वर्त्तकं साम : उद्वंशीयं भवति।— तां.ब्रा.१५.६.६

४८२.--- -यदन्तरा सोमा यन्त्यन्तरोक्थानि शस्यन्तेऽन्तरा वषट्कुर्वन्ति तेनाजामि।— तां.ब्रा.१६.५.२५

४८३. अथैष विश्वज्योतिरुक्थ्यः। पशवो वा उक्थानि पशवो विश्वं ज्योतिर्विश्व एव ज्योतौ पशुषुप्रतितिष्ठति।— तां.ब्रा.१६.१०.१

४८४. उक्थस्तोत्रेष्वन्तिमेऽन्यत्साम : उद्वंशीयमुक्थानामन्ततो भवति सर्व्वेषां वा एतत् पृष्ठानां रूपं सर्वेष्वेव रूपेषु प्रतितिष्ठति। उक्थो भवति पशवो वा उक्थानि पशव सहस्रं पशुष्वेव तत्पशून्दधाति।— तां.ब्रा.१६.१०.११

४८५. माध्यन्दिने पवमाने यौधाजयस्याधारभूतास्तिस्रः स्तोत्रीया : प्रत्नम्पीयूषम् पूर्व्यं यदुक्थमिति सतोबृहत्यो भवन्ति।— तां.ब्रा.१६.११.८

४८६. उक्थो भवति पशवो वा उक्थानि पशवो नृशंसमग्रं परिणयन्ति पशुभिरेवैनानग्रं परिणयति।— तां.ब्रा.१७.२.४

४८७. तीव्रसोमाख्यं सप्तदशस्तोमकमुक्थ-संस्थमेकाहः- सप्तदश उक्थ्यः।— तां.ब्रा.१८.५.१

४८८. तृतीयोक्थे उद्वंशीयमनूद्य प्रशंसा : उद्वंशीयमुक्थानामन्ततो भवति सर्वेषां वा एतत्पृष्ठानां रूपं सर्वेष्वेव रूपेषु प्रतितिष्ठति। उक्थो भवति पशवो वा उक्थानि पशुष्वेव प्रतितिष्ठति।— तां.ब्रा.१८.५.२४

४८९. वाजपेयैकाहः - सप्तदश उक्था षोडशिमान् सप्तदशी।— तां.ब्रा.१८.६.१

४९०. उद्वंशीयमुक्थानामन्ततो भवति सर्वेषां वा एतत् पृष्ठानां रूपं सर्वेष्वेव रूपेषु प्रतितिष्ठति।— तां.ब्रा.१८.६.१७

४९१. उक्थं शस्यते वषट्कारोऽन्तरा तेनाजामि।— तां.ब्रा.१८.६.२२

४९२. यज्ञारण्ये सन्तिष्ठत इत्याहुरत्युक्थान्येत्यतिषोडशिनन्न रात्रिं प्राप्नोतीति।— तां.ब्रा.१८.६.२४

४९३. अभिषेचनीयस्योक्थसंस्थारूपत्वं : आत्मना वा अग्निष्टोमेनर्ध्नोत्यात्मना पुण्योभवत्यथ यदुक्थानि पशवो वा उक्थानि विडुक्थानि यदुक्थानि भवन्त्यनुसन्तत्याएव।— तां.ब्रा.१८.८.६

४९४. चतुष्टोम क्रतु विधानं : आत्मा वा अग्निष्टोमः पशवश्छन्दांस्यात्मन्येव तत्पशून् प्रतिष्ठापयति नोक्थोनाग्निष्टोमो न हि ग्राम्याः पशवो नारण्याः।— तां.ब्रा.१९.५.११

४९५. उक्थः षोडशिमान् भवति पशवो वा उक्थानि वज्रः षोडशी वज्रेणैवास्मै पशून् परिगृह्णात्यनपक्रामुका अस्मात्पशवो भवन्ति नोक्थोनातिरात्रो न हि ग्राम्याः पशवो नारण्याः।— तां.ब्रा.१९.६.३

४९६. इन्द्रस्तोमाख्यं क्रतुः - अथैष पञ्चदश इन्द्रस्तोम उक्थ्यः। एतेन वा इन्द्रोऽत्यन्या देवता अभवदत्यन्या प्रजा भवति य एवं वेद।— तां.ब्रा.१९.१६.१

४९७. उक्थ्यो भवति पशवो वा उक्थानि विडुक्थानि विशमेवास्मै पशूननुनियुनक्त्यन-पक्रामुकास्माद्विड् भवति।— तां.ब्रा.१९.१६.६

४९८. अतिरात्रस्तोम क्लृप्तिः--- एकविंशोऽग्निष्टोमः सोक्थः पञ्चदशी रात्रिस्त्रिवृत्सन्धिः।--एषोऽग्निष्टोम एष उक्थ एषोऽतिरात्रोऽग्निष्टोमेन वै देवा इमं लोकमभ्य-जयन्नुक्थैरन्तरिक्षंरात्र्यामुं लोकमजयन्न-होरात्राभ्यामभ्य-वर्त्तन्त।— तां.ब्रा.२०.१.३

४९९. सर्वस्तोमातिरात्रः- त्रयस्त्रिंशोऽग्निष्टोमः प्रत्यवरोहीण्युक्थानि-— तां.ब्रा.२०.२.२.१

५००. आप्तोर्याम क्रतुस्तोमः--- त्रयस्त्रिंशोऽग्निष्टोमः प्रत्यवरोहीण्युक्थानि त्रिणवं प्रथममथैकविंशमथ सप्तदशमेकविंशः षोडशी-— तां.ब्रा.२०.३.१

५०१. प्रजापतिः पशूनसृजत तेऽस्मात् सृष्टा अपाक्रामंस्तानग्निष्टोमेन नाप्नोत्तानुक्थैर्नाप्नोत्तान् षोडशिना नाप्नोत्---— तां.ब्रा.२०.३.२

५०२. विषुवदतिरात्राख्य क्रतुः --- एकविंशोऽग्निष्टोमः सप्तदशान्युक्थानि पञ्चदशी रात्रिस्त्रिवृत्सन्धिः।— तां.ब्रा.२०.५.१

५०३. अभिजिदतिरात्राख्य क्रतुः - त्रयस्त्रिंशोऽग्निष्टोमः प्रत्यवरोहीण्युक्थानि-— तां.ब्रा.२०.८.१

५०४. विश्वजिदतिरात्राख्य क्रतुः - त्रयस्त्रिंशोऽग्निष्टोमः प्रत्यवरोहीण्युक्थानि त्रिणवं प्रथमं द्वे एकविंशे---— तां.ब्रा.२०.९.१

५०५. अङ्गिरसां द्विरात्रं : त्रयस्त्रिंशोऽग्निष्टोमः प्रत्यवरोहीण्युक्थानि---— तां.ब्रा.२०.११.२

५०६. यदग्निष्टोमः पूर्वमहर्भवत्युक्थ्य-मन्तर्य्यन्ति यद्युक्थोऽग्निष्टोमं। यज्ज्योतिरुक्थ्यः पूर्वमहर्भवति नाग्निष्टोममन्तर्यन्ति नोक्थानि। अथोत्तरस्याह्न उक्थेभ्योऽधिरात्रिमुपयन्ति तेनोक्थान्यनन्तरितानि।— तां.ब्रा.२०.११.६

५०७. चैत्ररथं द्विरात्रम् : अथ यस्य ज्योतिरुक्थ्यः पूर्वमहर्भवत्यायुरतिरात्र उत्तरं।— तां.ब्रा.२०.११.८

५०८. अश्वत्रिरात्रम् : चतुष्टोमोग्निष्टोम एकविंश उक्थः सर्व्वस्तोमोतिरात्रः।— तां.ब्रा.२१.४.१

५०९. छन्दोमपवमानाख्यं चतुर्थं त्रिरात्रम् :----- एकविंशोग्निष्टोमः सोक्थोष्टाचत्त्वारिंशाः पवमानाएकविंशान्याज्यानि त्रिणवानि पृष्ठानि त्रयस्त्रिंशोग्निष्टोमेकविंशान्युक्थानि सषोडशिकानि-— तां.ब्रा.२१.६.१

५१०. चतुर्व्वीराख्यं चतूरात्रम् :--- एकविंशोऽग्निष्टोमः सोक्थश्चतुर्विंशाः पवमाना---- त्रिणवोग्निष्टोमः सोक्थश्चतुर्विंशाः पवमाना एकविंशान्याज्यानि----त्रयस्त्रिंशोऽग्निष्टोम एकविंशान्युक्थानि--- तां.ब्रा.२१.९.१

५११. चतुर्णामह्नां संस्थानं : अग्निष्टोमः प्रथममहरुक्थोद्वितीयं षोडशी तृतीयमतिरात्रश्चतुर्थन्नानावीर्य्यतायै।—तां.ब्रा.२१.९.६

५१२. जमदग्नेश्चतूरात्रम् : अथोत्तरस्याह्नः---- एकविंशं तृतीयसवनं सोक्थं। तृतीयस्याह्न-----त्रिणवं तृतीयसवनं द्वे चोक्थे एकविंशमच्छावाकस्य। ------

चतुर्थस्याह्न---- त्रयस्त्रिंशोग्निष्टोम एकविंशोक्थानि स षोडशिकानि।—तां.ब्रा.२१.१०.३

५१३. वसिष्ठस्य चतूरात्रम् :---- -एकविंशं तृतीयसवनं सोक्थं---- -त्रिणवं तृतीयसवनं सोक्थम्-----त्रयस्त्रिंशं तृतीयसवनं प्रत्यवरोहीण्युक्थानि त्रिणवं प्रथमं-— तां.ब्रा.२१.११.१

५१४. प्रत्यवरोहीण्युत्तमस्याह्न उक्थानि भवन्ति प्रतिष्ठित्यै।— तां.ब्रा.२१.११.४

५१५. सञ्जयाख्यं चतूरात्रम् :-----त्रिवृदग्निष्टोमः पञ्चदशउक्थः सप्तदशउक्थ एकविंशोतिरात्रो विश्वामित्रस्य सञ्जयः।— तां.ब्रा.२१.१२.१

५१६. अभ्यासंग्याख्यं पञ्चरात्रम् : -- - प्रत्यवरोहीण्युक्थानि त्रिणवं प्रथमं द्वे एकविंशे-—— तां.ब्रा.२१.१३.१

५१७. पञ्चशारदीयाख्यं पञ्चरात्रम् : त्रिवृदग्निष्टोमः पञ्चदश उक्थः सप्तदश उक्थः पञ्चदश उक्थः सप्तदशातिरात्रः-—तां.ब्रा.२१.१४.१

५१८. अन्तर्म्महाव्रतस्य पञ्चरात्रम् : ज्योतिष्टोमोग्निष्टोमो गौरुक्थो महाव्रतं गौरुक्थ आयुरतिरात्रः।— तां.ब्रा.२१.१५.१

५१९. त्रिकद्रुकाख्यं द्वितीयं षड्रात्रम् : त्रिवृदग्निष्टोमः पञ्चदशउक्थः सप्तदशउक्थो ज्योतिर्गौरायुरतिरात्रः।— तां.ब्रा.२२.२.१

५२०. ऐन्द्रं पञ्चमं सप्तरात्रम् : ज्योतिष्टोमोग्निष्टोमो गौरुक्थ आयुरुक्था-भिजिदग्निष्टोमो— तां.ब्रा.२२.८.१

५२१. पशुसाधनं द्वितीयन्नवरात्रम् : ज्योतिष्टोमोग्निष्टोमो गौरुक्थ आयुरुक्थोभ्यासंग्यः पञ्चाहो-—— तां.ब्रा.२२.१३.१

५२२. त्रिकद्रुकाख्यं प्रथमं दशरात्रम् : त्रिवृदग्निष्टोमः पञ्चदश उक्थ्यस्त्रिवृदग्निष्टोमः सप्तदशोग्निष्टोमः एकविंश उक्थ्यः सप्तदशोग्निष्टोमस्त्रिणवोग्निष्टोमस्त्रयस्त्रिंश उक्थ्यः--अग्निष्टोमेन वै देवा असुरान्निगृह्य मध्यत उक्थ्यैः प्रजया पशुभिः प्राजायन्ताग्निष्टोमेनैव भ्रातृव्यन्निगृह्य मध्यत उक्थ्यैः प्रजया पशुभिः प्रजायते।— तां.ब्रा.२२.१४.१

५२३. द्वितीयं कुसुरुविन्ददशरात्रम् : त्रयस्त्रिवृतोग्निष्टोमास्त्रयः पञ्चदश उक्थ्यास्त्रयः सप्तदश उक्थ्या एकविंशोतिरात्रः-—— तां.ब्रा.२२.१५.१

५२४. देवपुराख्यं चतुर्थं दशरात्रम् : त्रिष्टोमोग्निष्टोमो ज्योतिरुक्थ्यस्त्रिष्टोमोग्निष्टोमो गौरुक्थ्याभिजिदग्निष्टोमो गौरुक्थ्यो विश्वजिदग्निष्टोम आयुरुक्थ्यो विश्वजिदग्निष्टोमस्य सर्वस्तो-मातिरात्रः।— तां.ब्रा. २२.१७.१

५२५. विधृतिसंज्ञकानामेकोनपञ्चाशद्रात्रीणां सप्तानाम्मध्ये प्रथमं सत्रं : अतिरात्रस्त्रीणि त्रिवृन्त्यहान्यग्निष्टोममुखान्यतिरात्रो दश पञ्चदशा उक्थ्याः षोडशिमद्दशममहरतिरात्रो द्वादश सप्तदशा उक्थ्या अतिरात्रः पृष्ठयः षडहातिरात्रो द्वादशैकविंशा उक्थ्यातिरात्रः।— तां.ब्रा.२४.११.१

५२६. सवितुः ककुभ इति संज्ञं पञ्चममेकोनपञ्चाशद्रात्रंः-----अग्निष्टोममुखः षडहोथ यानित्रीण्यहान्यग्निष्टोमावभित उक्थ्यम्मध्यतोनवपञ्चदशान्यग्निष्टोममुखः षडहोऽथ यानि त्रीण्यहान्यग्निष्टोमावभित उक्थ्यं मध्यतो---अथ यानि त्रीण्यहान्यग्निष्टोमावभित उक्थ्यम्मध्यतो----अथ यानि त्रीण्यहान्यग्निष्टोमावभित उक्थ्यम्मध्यतो द्वादशाहस्य-— तां.ब्रा.२४.१५.१

५२७. पृष्ठ्यमयनम् :----त्रयः स्वरसामानः पञ्चदश इन्द्रस्तोम उक्थ्यः पृष्ठ्यः षडह-—— तां.ब्रा. २५.१.१

५२८. अथैष पञ्चदश इन्द्रस्तोम उक्थ्य एतेन वा इन्द्रोत्यन्यादेवता अभवदत्यन्याः प्रजा भवन्ति य एतदुपयन्ति।— तां.ब्रा. २५.१.९

५२९. पृष्ठ्याख्यमङ्गिरसामयनम् :----- त्रयः स्वरसामानः पञ्चदश इन्द्रस्तोम उक्थ्यः पृष्ठ्यः षडहः-— तां.ब्रा. २५.२.१

५३०. तेषां पौर्णमास्यां गोष्टोमस्तोमो भवत्युक्थ्यो बृहत् सामा।-------तेषाममावास्यायामायुष्टोमः स्तोमो भवत्युक्थ्योरथन्तरसामा।— तां.ब्रा. २५.१०.७

५३१. अग्निर्यजुर्भिः। सविता स्तोमैः। इन्द्र उक्थामदैः। मित्रावरुणावाशिषा।--- तैत्तिरीय आरण्यक ३.८.१

५३२. नोक्थ्ये प्रवृञ्ज्यात्। प्रजा वै पशव उक्थानि। यदुक्थ्ये प्रवृञ्ज्यात्। प्रजां पशूनस्य निर्दहेत्।— तै.आ. ५.६.८

५३३. तत्तन्न सूर्क्ष्यम्। उक्थ्या एव सप्तदशाः परःसामानः कार्याः। पशवो वा उक्थानि। पशूनामवरुद्ध्यै।— तै.ब्रा.१.२.२.१

५३४. उक्थ्याः सप्तदशाः परःसामानः। ते सँस्तुता विराजमभिसंपद्यन्ते। द्वे चर्चावतिरिच्येते।----- तैत्तिरीय ब्राह्मण १.२.२.२

५३५. देवा वै यथादर्शं यज्ञानाहरन्त। योऽग्निष्टोमम्। य उक्थ्यम्। योऽतिरात्रम्। ते सहैव सर्वे वाजपेयमपश्यन्।— तै.ब्रा.१.३.२.१

५३६. ब्रह्मवादिनो वदन्ति। नाग्निष्टोमो नोक्थ्यः। न षोडशी नातिरात्रः। अथ कस्माद्वाजपेये सर्वे यंज्ञक्रतवोऽवरुध्यन्ति इति।-----आग्नेयं पशुमालभते। अग्निष्टोममेव तेनावरुन्धे। ऐन्द्राग्नेनोक्थ्यम्। ऐन्द्रेण षोडशिनः स्तोत्रम्।— तै.ब्रा.१.३.४.१

५३७. आत्मानमेव स्पृणोत्यग्निष्टोमेन। प्राणापानावुक्थ्येन। वीर्यं षोडशिनः स्तोत्रेण।------ इममेव लोकमभिजयत्यग्निष्टोमेन। अन्तरिक्षमुक्थ्येन। सुवर्गं लोकँ षोडशिनः स्तोत्रेण---- -।— तै.ब्रा.१.३.४.२

५३८. तामिन्द्र उक्थ्यस्थाल्येन्द्रियमदुहत्। यदुक्थ्यस्थाली भवति। इन्द्रियमेव तया यजमान इमां दुहे।— तै.ब्रा.१.४.१.५

५३९.---यत्प्रतीचीनँ संगवात्। प्राचीनं मध्यंदिनात्। ततो देवा उक्थ्यं निरमिमत।— तै.ब्रा.१.५.३.१

५४०.----- -आत्मन आग्रयणम्। अङ्गेभ्य उक्थ्यम्। आयुषो ध्रुवम्।— तै.ब्रा.१.५.४.२

५४१. आत्मनैवाग्निष्टोमेनर्ध्नोति। आत्मना पुण्यो भवति। प्रजा वा उक्थानि। पशव उक्थानि। यदुक्थ्यो भवत्यनुसंतत्यै।— तै.ब्रा.१.८.७.२

५४२. अग्निष्टोममुक्थ्यमतिरात्रमृचः। एता वै व्याहृतय इमे लोकाः। इमान्खलु वै लोकाननु प्रजाः पशवश्छन्दांसि प्राजायन्त।— तै.ब्रा.२.२.४.३

५४३. (तं सोमं) उक्थैरुदस्थापयन्। तदुक्थानामुक्थत्वम्।— तै.ब्रा.२.२.८.७

५४४. समुद्रं न सिन्धव उक्थशुष्माः। उरुव्यचसं गिर आविशन्ति।— तै.ब्रा.२.४.५.२

५४५. सोमान्त्सुराम्णः। उपो उक्थामदाः श्रौद्विमदा अदन्।— तै.ब्रा.२.६.१५.२

५४६. होता यक्षच्छतक्रतुम्। हिरण्यपर्ण-मुक्थिनम्। रशनां बिभ्रतं वशिम्।— तै.ब्रा.२.६.१७.७

५४७. एष गोसवः। षट्त्रिंश उक्थ्यो बृहत्सामा।— तै.ब्रा.२.७.६.१

५४८. प्रजापतिः पशूनसृजत। तेऽस्मात्सृष्टाः पराञ्च आयन्। तानग्निष्टोमेन नाऽऽप्नोत्। तानुक्थ्येन नाऽऽप्नोत। तान्षोडशिना नाऽऽप्नोत्।------ तान्विष्णुरेकविँशेन स्तोमेनाऽऽप्नोत्।— तै.ब्रा.२.७.१४.१

५४९. सूर्यवन्तं मघवानं विषासहिम्। इन्द्रमुक्थ्येषु नामहूतमँ हुवेम।— तै.ब्रा.२.७.१५.६

५५०. यो राय ईशे शतदाय उक्थ्यः। यः पशूनाँ रक्षिता विष्ठितानाम्। प्रजापतिः प्रथमजा ऋतस्य। सहस्रधामा जुषताँ हविर्नः।— तै.ब्रा.२.८.१.४

५५१. मनोतासूक्ताभिधानम् : अस्मा उ ते महि महे विधेम। नमोभिरग्ने समिधोत हव्यैः। वेदी सूनो सहसो गीर्भिरुक्थैः। आ ते भद्रायाँ सुमतौ यतेम।— तै.ब्रा.३.६.१०.४

५५२. सावित्र चयनाभिधानम् : अथ यदाह। अग्निष्टोम उक्थ्योऽग्निर्ऋतुः प्रजापतिः संवत्सर इति। एष एव तत्।— तै.ब्रा.३.१०.९.८

५५३. यो ह वै यज्ञक्रतूनां चर्तूनां च संवत्सरस्य च नामधेयानि वेद। न यज्ञक्रतुषु नर्तुषु न संवत्सर आर्तिमार्च्छति। अग्निष्टोम उक्थ्योऽग्निर्ऋतुः प्रजापतिः संवत्सर इति।— तै.ब्रा.३.१०.१०.४

५५४. चातुर्होत्र चयनाभिधानम् : इममेव लोकं पशुबन्धेनाभिजयति। अथो अग्निष्टोमेन। अन्तरिक्षमुक्थ्येन। स्वरतिरात्रेण।—तै.ब्रा.३.१२.५.६

५५५. प्र सू तिरा शचीभिर्ये त उक्थिन इत्युक्थं वा एतदहरुक्थवद्रूपसमृद्धमेतस्याह्नो रूपम्।— ऐतरेय आरण्यक १.२.१

५५६. प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं वदत्युक्थ्यमित्युक्थं वा एतदहरुक्थवद्रूप-समृद्धमेतस्याह्नो रूपम्।— ऐ.आ.१.२.१

५५७. सर्वान्प्रगाथाञ्छंसति सर्वेषामह्नामाप्त्यै सर्वेषामुक्थानां सर्वेषां पृष्ठानां सर्वेषां शस्त्राणां सर्वेषां प्रउगाणां सर्वेषां सवनानाम्।— ऐ.आ.१.२.१

५५८. आ शासते प्रति हर्यन्त्युक्थेत्युक्थं वा एतदहरुक्थवद्रूपसमृद्धमेतस्याह्नो रूपम्।— ऐ.आ.१.२.२

५५९. वृषा वै प्रेङ्खो योषासन्दी तन्मिथुनं मिथुनमेव तदुक्थमुखे करोति प्रजात्यै।— ऐ.आ.१.२.४

५६०. नृणामु त्वा नृतमं गीर्भिरुक्थैरित्युक्थं वा एतदहरुक्थवद्रूपसमृद्धमेतस्याह्नो रूपम्।— ऐ.आ.१.३.७

५६१. सहस्रधा पञ्चदशान्युक्थेति पञ्च हि दशतो भवति-— ऐ.आ.१.३.८

५६२. सहस्रधा महिमानः सहस्रमित्युक्थान्येव महयति।— ऐ.आ.१.३.८

५६३. उक्थमुक्थमिति वै प्रजा वदन्ति तदिदमेवोक्थमियमेव पृथिवीतो हीदं सर्वमुत्तिष्ठति यदिदं किञ्च।----अन्तरिक्षमेवोक्थमन्तरिक्षं वा अनु पतन्त्यन्तरिक्षमनु धावयन्ति तस्य वायुरर्कोऽन्नमशीतयोऽन्नेन हीदं सर्वमश्नुते। असावेव द्यौरुक्थममुत प्रदानाद्धीदं सर्वमुत्तिष्ठति यदिदं किञ्च तस्यासावादित्योऽर्कोऽन्नमशीतयो ऽन्नेन हीदं सर्वमश्नुते। इत्यधिदैवतम्। अथाध्यात्मम्। पुरुष एवोक्थमयमेव महान्प्रजापतिरहमुक्थमस्मीति विद्यात्। तस्य मुखमेवोक्थं यथा पृथिवी तथा। तस्य वागर्कोऽन्नमशीतयोऽन्नेन हीदं सर्वमश्नुते। नासिके एवोक्थं यथान्तरिक्षं तथा। तस्य--------। ललाटमेवोक्थं यथा द्यौस्तथा। तस्य चक्षुरर्कोऽन्नमशीतयोऽन्नेन हीदं सर्वमश्नुते।— ऐ.आ.२.१.२

५६४. ता अहिंसन्ताहमुक्थमस्म्यह-मुक्थमस्मीति। ता अब्रुवन्हन्तास्माच्छरीरादुत्क्रामास तद्यस्मिन्न उत्क्रान्त इदं शरीरं पत्स्यति तदुक्थं भविष्यतीति। वागुदक्रामद-----चक्षुरुदक्रामद---- -मन उदक्रामत्---- -प्राण उदक्रामत्तत्प्राण उत्क्रान्ते ऽपद्यत।-- -ता अहिंसन्तैवाहमुक्थ-मस्म्यहमुक्थमस्मीति। ता अब्रुवन्हन्तेदं पुनः शरीरं प्रविशाम तद्यस्मिन्नः प्रपन्न इदं शरीरमुत्थास्यति तदुक्थं भविष्यतीति।-----प्राण प्राविशत्तत्प्राणे प्रपन्न उदतिष्ठत्तदुक्थमभवत्। तदेतदुक्थाँ प्राण एव। प्राण उक्थमित्येव विद्यात्। तं देवा अब्रुवंस्त्वमुक्थमसि त्वमिदं सर्वमसि------।— ऐ.आ.२.१.४

५६५. यो ह वा आत्मानं पञ्चविधमुक्थं वेद यस्मादिदं सर्वमुत्तिष्ठति स संप्रतिवित्। पृथिवी वायुराकाश आपो ज्योतींषीत्येष वा आत्मोक्थं पञ्चविधमेतस्माद्धीदं सर्वमुत्तिष्ठत्येतमेवाप्येति।— ऐ.आ.२.३.१

५६६. एष वै यज्ञे यज्ञोऽहन्यहर्देवेषु देवोऽध्यूळ्हो यदेतन्महदुक्थम्। तदेतत्पञ्चविधं त्रिवृत्पञ्चदशं सप्तदशमेकविंशं पञ्चविंशमिति स्तोमतो---- -।— ऐ.आ.२.३.४

५६७. स वा एष वाचः परमो विकारो यदेतन्महदुक्थं तदेतत्पञ्चविधं मितममितं स्वरः सत्यानृते इति।--- ऐ.आ.२.३.६

५६८. एतं ह्येव बह्वृचा महत्युक्थे मीमांसन्त एतमग्नावध्वर्यव---।— ऐ.आ.३.२.३

५६९. नृणामु त्वा नृतमं गीर्भिरुक्थैरिति तिस्रः।— ऐ.आ.५.१.६

५७०. परिहित उक्थ उक्थसंपदं जपति। उक्थवीर्यस्य स्थान उक्थदोहः।— ऐ.आ.५.३.१

५७१. एतास्त उक्थ भूतय एता वाचो विभूतयः। ताभिर्म इह धुक्ष्वामृतस्य श्रियं महीम्।।— ऐ.आ.५.३.२.५

५७२. ओमुक्थशा यज सोमस्येतीज्यायै संप्रेषितो-— ऐ.आ.५.३.२.७

५७३. आहरत्यध्वर्युरुक्थपात्रमतिग्राह्यांश्च-मसांश्च।-—अथैतदुक्थपात्रं होतोपसृष्टेन जपेन भक्षयति।— ऐ.आ.५.३.२

५७४. होतृशस्त्रेषूक्थशा यज सोमस्येत्येकः प्रैषः-— ऐ.आ.५.३.३

५७५. काम्यसामिधेनीयाज्यापुरोनुवाक्यानाम-भिधानम् : सेदग्ने अस्तु सुभगः सुदानुर्यस्त्वा नित्येन हविषा य उक्थैः। प्रप्रीषति स्व आयुषि दुरोणे विश्वेदस्मै सुदिना साऽसदिष्टिः।— तैत्तिरीय संहिता १.२.१४.३

५७६. उक्थ्यग्रहाभिधानम् : उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा बृहद्वते वयस्वत उक्थायुवे यत्त इन्द्र बृहद्वयस्तस्मै त्वा विष्णवे त्वैष ते योनिरिन्द्राय त्वोक्थायुवे।— तै.सं.१.४.१२.१

५७७. काम्ययाज्यापुरोनुवाक्या : - उक्थउक्थे सोम इन्द्रं ममाद नीथेनीथे मघवानम् सुतासः।— तै.सं.१.४.४६.१

५७८. द्वादशद्वंद्वसंपत्त्यभिधानम् : प्रजापतिर्यज्ञानसृजताग्निहोत्रं चाग्निष्टोमं च पौर्णसासीं चोक्थ्यं चामावास्यां चातिरात्रं च तानुदमिमीत यावदग्निहोत्रमासीत्तावानग्निष्टोमो यावती पौर्णमासी तावानुक्थ्यो-----— तै.सं.१.६.९.१

५७९. काम्ययाज्यापुरोनुवाक्याभिधानम्: नव्ये देष्णे शस्ते अस्मिन्त उक्थे प्र ब्रवाम वयमिन्द्र स्तुवन्तः।— तै.सं.१.७.१३.३

५८०. त्रैधातवीयेष्टिविधि :- साम्नो वा एष वर्णो यद्धिरण्यं यजुषां तार्प्यमुक्थामदानां धेनुरेतानेव सर्वान्वर्णानवरुन्धे।— तै.सं.२.४.११.६

५८१. पितृयज्ञहविर्होत्रमन्त्राभिधानम् : शुचीदयन्दीधितिमुक्थशासः क्षामा भिन्दन्तो अरुणीरप व्रन्।— तै.सं.२.६.१२.४

५८२. सोमोपस्थानयन्त्रोत्पादनम् : वायव्यं वै सोमस्य प्रतिष्ठा चमसोऽस्य प्रतिष्ठा सोमः स्तोमस्य स्तोम उक्थानां----प्रत्येव सोमँ स्थापयति प्रति स्तोमं प्रत्युक्थानि-— तै.सं.३.१.२.४

५८३. अभिमर्शनविधीनां मन्त्रविशेषाणां चाभिधानम् : आग्रयणस्य पात्रमसीन्द्रो देवता ककुच्छन्द उक्थानां पात्रमसि पृथिवी देवता विराट्छन्दो ध्रुवस्य पात्रमसि।— तै.सं.३.१.६.३

५८४. परस्परमात्सर्यप्रवृत्तयजमानयोर्नैमित्तिकप्रयोगा-भिधानम् : यद्यग्निष्टोमः सोमः परस्तात्स्यादुक्थ्यं कुर्वीत यद्युक्थ्यः स्यादतिरात्रं कुर्वीत— तै.सं.३.१.७.३

५८५. प्रतिगरान्तरभाविमन्त्राभिधानम् : यद्वै होताऽध्वर्युमभ्याह्वयते वज्रमनभि प्रवर्तयत्युक्थशा इत्याह प्रातःसवनं प्रतिगीर्य------उक्थं वाचीत्याह माध्यंदिनँ सवनं प्रतिगीर्य--------उक्थं वाचीन्द्रायेत्याह तृतीयसवनं प्रतिगीर्य----— तै.सं.३.२.९.१

५८६. उद्गीथ उद्गीथ एवोद्गातृणाम् ऋचः प्रणव उक्थशंसिनां प्रतिगरोऽध्वर्यूणां-— तै.सं.३.२.९.५

५८७. याज्यापुरोनुवाक्याभिधानम् : इदं वामास्येहविः प्रियमिन्द्राबृहस्पती। उक्थं मदश्च शस्यते।— तै.सं.३.३.११.१

५८८. सीव्यत्वपः सूच्याऽच्छिद्यमानया ददातु वीरँ शतदायमुक्थ्यम्।— तै.सं.३.३.११.५

५८९. आसन्दीस्थापिताग्नेरुपस्थानम् : आ तं भज सौश्रवसेष्वग्न उक्थउक्थ आ भज शस्यमाने।— तै.सं.४.२.२.४

५९०. आहवनीयचयनार्थलोष्टक्षेपाद्यभिधानम् : बृहद्भानो शवसा वाजमुक्थ्यं दधासि दाशुषे कवे।— तै.सं.४.२.७.२

५९१. नाकसदाख्येष्टकाभिधानम् : राज्ञसि प्राची दिग्वसवस्ते देवा अधिपतयो-- -त्रिवृत्त्वा स्तोमः पृथिव्याँ श्रयत्वाज्यमुक्थमव्यथयत्स्तभ्नातु---- विराडसि दक्षिणा दिग्रुद्रास्ते देवा अधिपतय---- पञ्चदशस्त्वा स्तोमः पृथिव्याँ श्रयतु प्रउगमुक्थमव्यथयत्स्तभ्नातु---- सम्राडसि प्रतीची दिक् आदित्यास्ते देवा अधिपतयः----सप्तदशस्त्वा स्तोमः पृथिव्याँ श्रयतु मरुत्वतीय-मुक्थमव्यथयत्स्तभ्नातु----स्वराडस्युदीची दिग्विश्वे ते देवा अधिपतयो---- -एकविँशस्त्वा स्तोमः पृथिव्याँ श्रयतु निष्कैवल्यमुक्थम-व्यथयत्स्तभ्नातु---- -बृहती दिङ्ग्रुतस्ते देवा अधिपतयः---- त्रिणवत्रयस्त्रिँशौ त्वा स्तोमौ पृथिव्याँ श्रयतां वैश्वदेवाग्निमारुते उक्थे अव्यथयन्ती स्तभ्नीताँ---— तै.सं.४.४.२.१

५९२. अग्निप्रणयनाभिधानम् : उक्थपत्र ईड्यो गृभीतस्तप्तं घर्मं परिगृह्यायजन्त।— तै.सं.४.६.३.२

५९३. अग्निसंयोजनाभिधानम्---यत्सर्वाभिः पञ्चभिः (देवरथं) युञ्ज्याद्युक्तोऽस्याग्निः प्रच्युतः स्यादप्रतिष्ठिता आहुतयः स्युरप्रतिष्ठिताः स्तोमा अप्रतिष्ठितान्युक्थानि-— तै.सं.५.४.१०.१

५९४. अन्वारोहणाद्यभिधानम् : सोमो विश्ववित्रेता नेषद् बृहस्पतिरुक्थामदानिशँसिषदित्याहैतद्वा अग्नेरुक्थं तेनैवैनमनु शँसति।— तै.सं.५.६.८.६

५९५. सोमोपावहरणकथनम् : यद्यग्निष्टोमो जुहोति यद्युक्थ्यः परिधौ नि मार्ष्टि यद्यतिरात्रो यजुर्वदन्प्र पद्यते यज्ञक्रतूनां व्यावृत्त्यै।— तै.सं.६.४.३.४

५९६. उक्थ्यग्रहकथनम् : इन्द्रो बृत्राय वज्रमुदयत्छत्स-----तस्मा उक्थ्यं प्रायच्छत्तस्मै द्वितीयमुदयच्छत्---तस्मा उक्थ्यमेव प्रायच्छत् तस्मै तृतीयमुदयच्छत्-----तस्मा उक्थ्यमेव प्रायच्छत् तं निर्मायं भूतमहन्यज्ञो हि तस्य मायाऽऽसीद्यदुक्थ्यो गृह्यत इन्द्रियमेव तद्वीर्यं----- -चक्षुर्वा एतद्यज्ञस्य यदुक्थ्यस्तस्मादुक्थ्यँ हुतँ सोमा अन्वायन्ति— तै.सं. ६.५.१.१

५९७. ध्रुवग्रहकथनम् : पुरस्तादुक्थ-स्याहवनीय इत्याहुः पुरस्ताद्ध्यायुषो भुङ्क्ते— तै.सं.६.५.२.३

५९८. सोमपात्रस्तुति : आज्यमित्युक्थं तद्वै ग्रहाणां निदानं— तै.सं.६.५.११.२

५९९. अतिग्राह्यग्रहकथनम् : यदुक्थ्ये गृह्णीयात्प्रत्यञ्चं यज्ञमतिग्राह्याः सँ शृणीयुः— तै.सं.६.६.८.१

६००. षोडशिग्रहकथनम् : वज्रो वै षोडशी पशवस्तृतीयसवनं वज्रेणैवास्मै तृतीयसवनात्पशूनव रुन्धे नोक्थ्ये गृह्णीयात्प्रजां पशूनस्य निर्दहेत्।— तै.सं.६.६.११.३

६०१. गर्गत्रिरात्राभिधानम् : सोऽग्निष्टोमेन वसूनयाजयत्त इमं लोकमजयन्तच्चाददुः स उक्थ्येन रुद्रानयाजयन्तेऽन्तरिक्षमजयन्तच्चाददुः— तै.सं.७.१.५.३

६०२. तस्मात्त्रिरात्रस्याग्निष्टोम एव प्रथममहः स्यादथोक्थ्योऽथातिरात्र एषां लोकानां विधृत्यै।— तै.सं.७.१.५.४

६०३. दशरात्रकथनम् : त्रिवृदग्निष्टोमो-ऽग्निष्टदाग्नेयीषु भवति तेज एवाव रुन्धे पञ्चदश उक्थ्य ऐन्द्रीष्विन्द्रियमेवाव रुन्धे------सप्तदशोऽग्निष्टोमः प्राजापत्यासु तीव्रसोमो-ऽन्नाद्यस्यावरुद्ध्या अथो प्रैव तेन जायते एकविँश उक्थ्यः सौरीषु प्रतिष्ठित्या अथो रुचमेवाऽऽत्मन्धत्ते।-----त्रिणवावग्निष्टोमावभित ऐन्द्रीषु विजित्यै त्रयस्त्रिँश उक्थ्यो वैश्वदेवीषु प्रतिष्ठित्यै--— तै.सं.७.२.५.६

६०४. द्वादशरात्रकथनम् : उक्थ्याग्रान्गृहीता-भिचर्यमाणः सर्वेषां वा एतत्पात्राणामिन्द्रियं यदुक्थ्यपात्रँ सर्वेणैवैनमिन्द्रियेणाति प्र युङ्क्ते— तै.सं.७.२.७.४

६०५. द्वादशरात्रकथनम् : यावग्निष्टोमौ तौ पक्षौ ये ऽन्तरेऽष्टावुक्थ्याः स आत्मैषा वै गायत्री ज्योतिपक्षा य एवं वेद------- यावतिरात्रौ तौ पक्षौ येऽन्तरेऽष्टावुक्थ्याः स आत्मा प्रजापतिर्वावैष सन्त्सद्ध वै सत्रेण स्पृणाति— तै.सं.७.२.९.१

६०६. अश्वमेधगतमन्त्रकथनम् : आ माऽग्निष्टोमो विशतूक्थ्यश्चातिरात्रो माऽऽविशत्वा-पिशर्वरः।— तै.सं.७.३.१३.१

६०७. प्रायणीयाख्यप्रथमाहाभिधानम् : अतिरात्रः परमो यज्ञक्रतूनां कस्मात्तं प्रथममुप यन्तीत्येतद्वा अग्निष्टोमं प्रथममुप यन्त्यथोक्थ्यमथ षोडशिनमथातिरात्रम्---- तै.सं.७.४.१०.१

६०८. मासगताहकथनम् : अग्निष्टोमावभितः प्रधी तावुक्थ्या मध्ये नभ्यं तत्तदेतत्परियद्देवचक्रं यदेतेन षडहेन यन्ति-— तै.सं.७.४.११.२

## उक्षा

१. नि त्वामग्ने मनुर्दधे ज्योतिर्जनाय शश्वते। दीदेथ कण्व ऋतजात उक्षितो यं नमस्यन्ति कृष्टयः।।— ऋ.१.३६.१९

२. ते जज्ञिरे दिव ऋष्वास उक्षणो रुद्रस्य मर्या असुरा अरेपसः। पावकासः शुचयः सूर्या इव सत्वानो नं द्रप्सिनो घोरवर्पसः।। — दे. मरुतः— ऋ.१.६४.२

३. त उक्षितासो महिमानमाशत दिवि रुद्रासो अधि चक्रिरे सदः। अर्चन्तो अर्कं जनयन्त इन्द्रियमधि श्रियो दधिरे पृश्निमातरः।। दे.मरुतः— ऋ.१.८५.२

४. उपह्वरेषु यदचिध्वं ययिं वय इव मरुतः केन चित् पथा। श्चोतन्ति कोशा उप वो रथेष्वा घृतमुक्षता मधुवर्णमर्चते।। दे. मरुतः— ऋ. १.८७.२

५. अमी ये पञ्चोक्षणो मध्ये तस्थुर्महो दिवः। देवत्रा नु प्रवाच्यं सध्रीचीना नि वावृतुर्वित्तं मे अस्य रोदसी।। (पञ्च उक्षणः - इन्द्र, वरुण, अग्नि, अर्यमा, सविता अथवा अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र-सायण)— ऋ.१.१०५.१०

६. मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम्। म नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः।।— ऋ.१.११४.७

७. इमे ये ते सु वायो बाह्वोजसो ऽन्तर्नदी ते पतयन्त्युक्षणो महि व्राधन्त उक्षणः। धन्वञ्चिद् ये अनाशवो जीराश्चिदगिरौकसः। सूर्यस्येव रश्मयो दुर्नियन्तवो हस्तयोर्दुर्नियन्तवः।— ऋ.१.१३५.९

८. होता यक्षद् वनिनो वन्त वार्यं बृहस्पतिर्यजति वेन उक्षभिः पुरुवारेभिरुक्षभिः।— ऋ.१.१३९.१०

९. यद् युञ्जाथे वृषणमश्विना रथं घृतेन नो मधुना क्षत्रमुक्षतम्। अस्माकं ब्रह्म पृतनासु जिन्वतं वयं धना शूरसाता भजेमहि।।— ऋ.१.१५७.२

१०. शकमयं धूममारादपश्यं विषूवता पर एनावरेण। उक्षाणं पृश्निमपचन्त वीरास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।।— ऋ.१.१६४.४३

११. यस्मा ऊमासो अमृता अरासत रायस्पोषं च हविषा ददाशुषे। उक्षन्त्यस्मै मरुतो हिता इव पुरू रजांसि पयसा मयोभुवः।।— ऋ.१.१६६.३

१२. सहस्रियासो अपां नोर्मय आसा गावो वन्द्यासो नोक्षणः।।— ऋ.१.१६८.२

१३. तमुक्षमाणं रजसि स्व आ दमे चन्द्रमिव सुरुचं ह्वार आ दधुः।। पृश्न्याः पतरं चितयन्तमक्षभिः पाथो न पायुं जनसी उभे अनु।।— ऋ.२.२.४

१४. साध्वपांसि सनता न उक्षिते उषासानक्ता वय्येव रण्विते। तन्तुं ततं संवयन्ती समीची यज्ञस्य पेशः सुदुघे पयस्वती।।— ऋ.२.३.६

१५. इन्द्रमजुर्यं जरयन्तमुक्षितं सनाद् युवानमवसे हवामहे।। — ऋ. २.१६.१

१६. सत्रासाहो जनभक्षो जनंसहश्च्यवनो युध्मो अनु जोषमुक्षितः। दे.इन्द्रः— ऋ.२.२१.३

१७. उक्षन्ते अश्वाँ अत्याँ इवाजिषु नदस्य कर्णैस्तुरयन्त आशुभिः। हिरण्यशिप्रा मरुतो दविध्वतः पृक्षं याथ पृषतीभिः समन्यवः।।— ऋ.२.३४.३

१८. अध्वर्युभिः पञ्चभिः सप्त विप्राः प्रियं रक्षन्ते निहितं पदं वेः। प्राञ्चो मदन्त्युक्षणो अजुर्या देवा देवानामनु हि व्रता गुः।।(सप्त विप्राः-सप्त वषट्कर्तारः- सायण)— ऋ.३.७.७

१९. त्रीणि शता त्री सहस्राण्यग्निं त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन्। औक्षन् घृतैरस्तृणन् बर्हिरस्मा आदिद्धोतारं न्यसादयन्त।।— ऋ.३.९.९

२०. आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम्। मध्वा रजांसि सुक्रतू।— ऋ.३.६२.१६

२१. स तू नो अग्निर्नयतु प्रजानन्नच्छा रत्नं देवभक्तं यदस्य। धिया यद् विश्वे अमृता अकृण्वन् द्यौष्पिता जनिता सत्यमुक्षन्।।— ऋ.४.१.१०

२२. अहमपो अपिन्वमुक्षमाणा धारयं दिवं सदन ऋतस्य। ऋतेन पुत्रो अदितेर्ऋतावोत त्रिधातु प्रथयद् वि भूम।।— ऋ.४.४२.४

२३. मही द्यावापृथिवी इह ज्येष्ठे रुचा भवतां शुचयद्भिरर्कैः। यत् सीं वरिष्ठे बृहतीविमिन्वन् रुवद्धोक्षा पप्रथानेभिरेवैः।।— ऋ.४.५६.१

२४. देवी देवेभिर्यजते यजत्रैरमिनती तस्थतुरुक्षमाणे। ऋतावरी अद्रुहा देवपुत्रे यज्ञस्य नेत्री शुचयद्भिरर्कैः।।— ऋ.४.५६.२

२४. त्वामग्ने प्रदिव आहुतं घृतैः सुम्नायवः सुषमिधा समीधिरे। स वावृधान ओषधीभिरुक्षितो ऽभि ज्रयांसि पार्थिवा वि तिष्ठसे।।— ऋ.५.८.७

२५. यस्य मा परुषाः शतमुद्धर्षयन्त्युक्षणः। अश्वमेधस्य दानाः सोमा इव त्र्याशिरः।।— ऋ.५.२७.५

२६. प्र सुष्टुतिः स्तनयन्तं रुवन्तमिळस्पतिं जरितर्नूनमश्याः। यो अब्दिमाँ उदनिमाँ इयर्ति प्र विद्युता रोदसी उक्षमाणः।।— ऋ.५.४२.१४

२७. उक्षा समुद्रो अरुषः सुपर्णः पूर्वस्य योनिं पितुरा विवेश। मध्ये दिवो निहितः पृश्निरश्मा वि चक्रमे रजसस्पात्यन्तौ।।— ऋ.५.४७.३

२८. ते स्पन्द्रासो नोक्षणो ऽति ष्कन्दन्ति शर्वरीः। मरुतामधा महो दिवि क्षमा च मन्महे।।— ऋ.५.५२.३

२९. साकं जाताः सुभ्वः साकमुक्षिताः श्रिये चिदा प्रतरं वावृधुर्नरः। विरोकिणः सूर्यस्येव रश्मयः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत।।— ऋ.५.५५.३

३०. हये नरो मरुतो मृळता नस्तुवीमघासो अमृता ऋतज्ञाः। सत्यश्रुतः कवयो युवानो बृहद्गिरयो बृहदुक्षमाणाः।।— ऋ.५.५७.८,५.५८.८

३१. प्र वः स्पळक्रन् त्सुविताय दावने ऽर्चा दिवे प्र पृथिव्या ऋतं भरे। उक्षन्ते अश्वान् तरुषन्त आ रजो ऽनु स्वं भानुं श्रथयन्ते अर्णवैः।।— ऋ.५.५९.१

३२. रथं युञ्जते मरुतः शुभे सुखं शूरो न मित्रावरुणा गविष्टिषु। रजांसि चित्रा वि चरन्ति तन्यवो दिवः सम्राजा पयसा न उक्षतम्।।— ऋ.५.६३.५

३३. आ ते अग्न ऋचा हविर्हृदा तष्टं भरामसि। ते ते भवन्तूक्षण ऋषभासो वशा उत।।— ऋ.६.१६.४७

३४. ते त्वा मदा बृहदिन्द्र स्वधाव इमे पीता उक्षयन्त द्युमन्तम्। महामनूनं तवसं विभूतिं मत्सरासो जर्हृषन्त प्रसाहम्।।— ऋ.६.१७.४

३५. यो वां गर्तं मनसा तक्षदेतमूर्ध्वां धीतिं कृणवद् धारयच्च। उक्षेथां मित्रावरुणा घृतेन ता राजाना सुक्षितीस्तर्पयेथाम्।।— ऋ.७.६४.४

३६. आ नो मित्रावरुणा हव्यजुष्टिं घृतैर्गव्यूतिमुक्षतमिळाभिः। प्रति वामत्र वरमा जनाय पृणीतमुद्नो दिव्यस्य चारोः।।— ऋ.७.६५.४

३७. अध प्लायोगिरति दासदन्यानासंगो अग्ने दशभिः सहस्रैः। अधोक्षणो दश मह्यं रुशन्तो नळा इव सरसो निरतिष्ठन्।।— ऋ.८.१.३३

३८. ता सुदेवाय दाशुषे सुमेधामवितारिणीम्। घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम्।।— ऋ.८.५.६

३९. उशना यत् परावत उक्ष्णो रन्ध्रमयातन। द्यौर्न चक्रदद् भिया।।— ऋ.८.७.२६

४०. व्यश्वस्त्वा वसुविदमुक्षण्युरप्रीणादृषिः। महो राये तमु त्वा समिधीमहि।।— ऋ.८.२३.१६

४१. ऋज्रमुक्षण्यायने रजतं हरयाणे। रथं युक्तमसनाम सुषामणि।।— ऋ.८.२५.२२

४२. वयं हि वां हवामह उक्षण्यन्तो व्यश्ववत्। सुमतिभिरुप विप्राविहा गतम्।।— ऋ.८.२६.९

४३. उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे। स्तोमैर्विधेमाग्नये।।— ऋ.८.४३.११

४४. शतं श्वेतास उक्षणो दिवि तारो न रोचन्ते। मह्ना दिवं न तस्तभुः।।— ऋ.७.५५.२

४५. उक्षा मिमाति प्रति यन्ति धेनवो देवस्य देवीरुप यन्ति निष्कृतम्। अत्यक्रमीदर्जुनं वारमव्ययमत्कं न निक्तं परि सोमो अव्यत।।— ऋ.९.६९.४

४६. नाभा पृथिव्या धरुणो महो दिवो ऽपामूर्मौ सिन्धुष्वन्तरुक्षितः। इन्द्रस्य वज्रो वृषभो विभूवसुः सोमो ह्रदे पवते चारु मत्सरः।।— ऋ.९.७२.७

४७. अरूरुचदुषसः पृश्निरग्रिय उक्षा बिभर्ति भुवनानि वाजयुः। मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षसः पितरो गर्भमा दधुः।।— ऋ.९.८३.३

४८. दिवो नाके मधुजिह्वा असश्चतो वेना दुहन्त्युक्षणं गिरिष्ठाम्। अप्सु द्रप्सं वावृधानं समुद्र आ सिन्धोरूर्मा मधुमन्तं पवित्र आ।।— ऋ.९.८५.१०

४९. अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुं रिहन्ति मधुनाभ्यञ्जते। सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणं हिरण्यपावाः पशुमासु गृभ्णते।।— ऋ.९.८६.४३

५०. सिंहं नसन्त मध्वो अयासं हरिमरुषं दिवो अस्य पतिम्। शूरो युत्सु प्रथमः पृच्छते गा अस्य चक्षसा परि पात्युक्षा।।— ऋ.९.८९.३

५१. तं मर्मजानं महिषं न सानावंशुं दुहन्त्युक्षणं गिरिष्ठाम्। तं वावशानं मतयः सचन्ते त्रितो बिभर्ति वरुणं समुद्रे।।— ऋ.९.९५.४

५२. तमुक्षमाणमव्यये वारे पुनन्ति धर्णसिम्। दूतं न पूर्वचित्तय आ शासते मनीषिणः।।— ऋ.९.९९.५

५३. अभूर्वौक्षीर्व्यु आयुरानड् दर्षन्नु पूर्वो अपरो नु दर्षत्। द्वे पवस्ते परि तं न भूतो यो अस्य पारे रजसो विवेष।।— ऋ.१०.२७.७

५४. तेभ्यो गोधा अयथं कर्षदेतद्ये ब्रह्मणः प्रतिपीयन्त्यन्नैः। सिम उक्ष्णो ऽवसृष्टाँ अदन्ति स्वयं बलानि तन्वः शृणानाः।।— ऋ.१०.२८.११

५५. नैतावदेना परो अन्यदस्त्युक्षा स द्यावापृथिवी बिभर्ति। त्वचं पवित्रं कृणुत स्वधावान् यदीं सूर्यं न हरितो वहन्ति।— ऋ.१०.३१.८

५६. त्रीणि शता त्री सहस्राण्यग्निं त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन्। औक्षन् घृतैरस्तृणन् बर्हिरस्मा आदिद्धोतारं न्यसादयन्त।।— ऋ.१०.५२.६

५७. वृषाकपायि रेवति सुपुत्र आदु सुस्नुषे। घसत् त इन्द्र उक्षणः प्रियं काचित्करं हविर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।।— ऋ.१०.८६.१३

५८. उक्ष्णो हि मे पञ्चदश साकं पचन्ति विंशतिम्। उताहमद्मि पीव इदुभा कुक्षी पृणन्ति मे विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।।— ऋ.१०.८६.१४

५९. यस्मिन्नश्वास ऋषभास उक्षणो वशा मेषा अवसृष्टास आहुताः। कीलालपे सोमपृष्ठाय वेधसे हृदा मतिं जनये चारुमग्नये।।— ऋ.१०.९१.१४

६०. यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरोहितं हविष्मन्त ईळते सप्त वाजिनम्। शृण्वन्तमग्निं घृतपृष्ठमुक्षणं पृणन्तं देवं पृणते सुवीर्यम्।।— ऋ.१०.१२२.४

६१. अभि त्वा जरिमाहित गामुक्षणमिव रज्ज्वा। यस्त्वा मृत्युरभ्यधत्त जायमानं सुपाशया। तं ते सत्यस्य हस्ताभ्यामुदमुञ्चद् बृहस्पतिः।।-अथर्ववेद ३.११.८

६२. इहैव ध्रुवां नि मिनोमि शालां क्षेमे तिष्ठाति घृतमुक्षमाणा। तां त्वा शाले सर्ववीराः सुवीरा अरिष्टवीरा उप सं चरेम।— अ.३.१२.१

६३. इमां शालां सविता वायुरिन्द्रो बृहस्पतिर्नि मिनोतु प्रजानन्। उक्षन्तूद्ना मरुतो घृतेन भगो नो राजा नि कृषिं तनोतु।।— अ.३.१२.४

६४. उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे। वैश्वानरज्येष्ठेभ्यस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत्।।— अ.३.२१.६

६५. यस्य वशास ऋषभास उक्षणो यस्मै मीयन्ते स्वरवः स्वर्विदे। यस्मै शुक्रः पवते ब्रह्मशुम्भितः स नो मुञ्चत्वंहसः।।— अ.४.२४.४

६६. सिलाची नाम कानीनोऽजबभ्रु पिता तव। अश्वो यमस्य यः श्यावस्तस्य हास्नास्युक्षिता। — अ.५.५.८

६७. शकमयं धूममारादपश्यं विषूवता पर एनावरेण। उक्षाणं पृश्निमपचन्त वीरास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।।— अ.९.१५.२५/९.१०.२५

६८. यस्यामापः परिचरा समानीरहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति। सा नो भूमिर्भूरिधारा पयो दुहामथो उक्षतु वर्चसा।।— अ.१२.१.९

६९. उत् त्वा वहन्तु मरुत उदवाहा उदप्रुतः। अजेन कृण्वन्तः शीतं वर्षेणोक्षन्तु बालिति।।— अ.१८.२.२२

७०. अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुं रिहन्ति मधुनाभ्यञ्जते। सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणं हिरण्यपावाः पशुमासु गृह्णते।। — अ. १८.३.१८

७१. उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे। स्तोमैर्विधेमाग्नये।।— अ.२०.१.३

७२. वृषाकपायि रेवति सुपुत्र आदु सुस्नुषे। घसच इन्द्र उक्षणः प्रियं काचित्करं हविर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।।— अ.२०.१२६.१३

७३. उक्ष्णो हि मे पञ्चदश साकं पचन्ति विंशतिम्। उताहमद्मि पीव इदुभा कुक्षी पृणन्ति मे विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।।— अ.२०.१२६.१४

७४. ते (असुराः) होचुः-हन्तेमां पृथिवीं विभजामहै, तां विभज्योपजीवामेति। तामौक्ष्णैश्चर्म्मभिः पश्चात् प्राञ्चो विभजमाना अभीयुः।-------ते (देवाः) यज्ञमेव विष्णुं पुरस्कृत्येयुः।-शतपथ ब्राह्मण १.२.५.२

७५. अनुबन्ध्यायागः - अथ यदा न कश्चन रसः पर्यशिष्यत्-तत एषा मैत्रावरुणी वशा समभवत्। तस्मादेषा न प्रजायते। रसाद्धिरेतः सम्भवति। रेतसः पशवः।----तस्माद्वाऽएषाऽत्र मैत्रावरुणी वशाऽवक्लृप्ततमा भवति। यदि वशां न विन्देदप्युक्षवश एव स्यात्।— श.ब्रा.४.५.१.९

७६. उक्षा वयः-इति। उक्षाणं वयसाऽऽप्नोत्। ककुप्छन्दः-इति। ककुब्भ भूत्वोक्षाण उच्चक्रमुः। — श.ब्रा.८.२.४.७

७७. उक्षा समुद्रो अरुणः सुपर्णः-इति। उक्षा ह्येष समुद्रोऽरुणः सुपर्णः। पूर्वस्य योनिं पितुराविवेश-इति। पूर्वस्य ह्येष एतं योनिं पितुराविशति। मध्ये दिवो निहितः पृश्निरश्मा -इति। मध्ये ह्येष दिवो निहितः पृश्निरश्मा।-- — श.ब्रा.९.२.३.१८

७८. स यथा ब्राह्मणमावसथवासिनं क्रुद्धं यंतमुक्षवे हतोपमन्त्रयेत। एवमेवैतत् विश्वान्देवानुपमन्त्रयते।— श.ब्रा.१२.४.४.६

७९. पुत्रमन्थकर्म ब्राह्मणम् : अथ य इच्छेत्। पुत्रो मे पंडितो विजिगीथः समितिङ्गमः शुश्रूषितां वाचं भाषिता जायेत। सर्वान् वेदाननुब्रुवीत। सर्वमायुरियात् इति। मांसौदनं पाचयित्वा। सर्पिष्मन्तमश्नीयाताम्। ईश्वरौ जनयितवै। औक्ष्णेन वा। आर्षभेण वा।— श.ब्रा.१४.९.४.१७

८०. उक्षान्नाय वशान्नाय इत्याग्नीध्रो यजति। सोमपृष्ठाय वेधसे इति। इन्द्रो वै वेधाः।-गोपथ ब्राह्मण २.२.२०

८१. त्वामग्ने प्रदिव आहुतं घृतेन। सुम्नायवः सुषमिधा समीधिरे। स वावृधान ओषधीभिरुक्षितः। उरु ज्रयाँसि पार्थिवा वितिष्ठसे।-तैत्तिरीय ब्राह्मण १.२.१.१२

८२. सुराया अनुमन्त्रणम् : यस्मिन्नश्वास ऋषभास उक्षणः। वशामेषा अवसृष्टास आहुताः। कीलालपे सोमपृष्ठाय वेधसे। हृदा मतिं जनय चारुमग्नये।— तै.ब्रा.१.४.१.२

८३. पञ्चन्तर विषये प्रयाजार्था मैत्रावरुण प्रैषाः - होता यक्षत्सुरेतसम्। त्वष्टारं पुष्टिवर्धनम्। रूपाणि बिभ्रतं पृथक्। पुष्टिमिन्द्रं वयोधसम्। द्विपदं छन्द इहेन्द्रियम्। उक्षाणं गां न वयो दधत्। वेत्वाज्यस्य होतर्यज।— तै.ब्रा.२.६.१७.६

८४. कौकिल सौत्रामणी : त्वष्टा तुरीपो अद्भुतः। इन्द्राग्नी पुष्टिवर्धना। द्विपाच्छन्द इहेन्द्रियम्। उक्षा गौर्न वयो दधुः।— तै.ब्रा.२.६.१८.४

८५. पञ्चशारदीये पशु विधिः - अगस्त्यो मरुद्भ्य उक्ष्णः प्रौक्षत्। तानिन्द्र आदत्त। त एनं वज्रमुद्यत्याभ्यायन्त। तानगस्त्यश्चैवेन्द्रश्च कयाशुभीयेनाशमयताम्।---तस्मादेत ऐन्द्रा मारुता उक्षाणः सवनीया भवन्ति। त्रयः प्रथमे ऽहन्नालभ्यन्ते। एवं द्वितीये। एवं तृतीये। एवं चतुर्थे। पञ्चोत्तमेऽहन्नालभ्यन्त। वर्षिष्ठमिव ह्येतदहः।----- पञ्चशारदीयो वा एष यज्ञः। आपञ्चमात्पुरुषादन्नमत्ति। य एतेन यजते।— तै.ब्रा.२.७.११.१

८६. अथाऽऽग्रयणस्य पुरोरुचम्:त्रीणि शता त्रीषहस्राण्यग्निम्। त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन्। औक्षन्घृतैरास्तृणन्बर्हिरस्मै। आदिद्धोतारं न्यषादयन्त।— तै.ब्रा.२.७.१२.२

८७. यद् आहवनीयम् अनुद्धृतम् अभ्य् अस्तम् इयात् किं तत्र कर्म का प्रायश्चित्तिर् इति।------ -तद् यथा वा अदवद आवथवासिनं क्रुद्धं यन्तम् उक्षवेहता वानुमन्त्रयेतान्येन वा प्रियेण धाम्नैवम् एव तद् विश्वान् देवान् अनुमन्त्रयते। ते हास्मै सर्व एवाक्रुद्धा भवन्ति।— जै.ब्रा.१.६२

८८. अथैष पञ्चशारदीयः।----तस्य पञ्च शरदः पञ्चोक्षाणः प्रोक्षिताश् चरन्ति। तद् यत् पञ्चशरदः पञ्चोक्षाणः प्रोक्षिताश् चरन्ति, तस्मात् पञ्चशारदीयः। त उ सर्वे पृश्नयो भवन्ति।— जै.ब्रा.२.१७६

८९. एतान्य् उ ह स्म वै तत् कुंस्थः कालाशभिर् उपगायति-अरुणान् सदम् उक्षन्न् अश्वान काष्ठातो यथा। पूर्णान् परिस्रुतः कुम्भाञ् जनमेजयसादन।। इति। यं ह वा एतैस् सामभिः कामं कामयते तम् एवावरुन्द्धे।— जै.ब्रा.२१।३३१

९०. यथा ह वै शारद उक्षैवं महाव्रतम्। स यथा शारदम् उक्षाणं वागराभिः परितत्यालभेरन् एवम् एवैतत् परिमाद्भिर् महाव्रतम् आलभन्ते व्रतस्याप्रक्षयाय।— जै.ब्रा.२.४०३

९१. सो (मनुः) ऽकामयताप रक्षांसि हनीयेति। स एतत् सामापश्यत्। तेनास्तुत। नि त्वाम् अग्ने मनुर् दधे ज्योतिर् जनाय शश्वते। दीदेथ कण्व ऋतजात उक्षितो यं नमस्यन्ति कृष्टयः।— जै.ब्रा.३.९८

९२. अथौक्ष्णोरन्ध्रम्। उक्ष्णो वै रन्ध्रः काव्यो ऽकामयताद्भिः प्रतीपं स्वर्गं लोकम् आरोहेयम् अप्सु मे वर्त्मानि पश्येयं नियानम् इति। स एतत् सामापश्यत्। तेनास्तुत।----स एवोशना काव्यः। स ह स यमुनयैव प्रतीपं स्वर्गं लोकम् आरोहत्। तद् एतत् स्वर्ग्यं साम।— जै.ब्रा.३.१५०

९३. अथ ह वा इमानि वनानीमाश् च नद्यो ऽपरतार आस पुरा सिन्धोर् आसुः। तौ ह पश्चात् परीत्य प्राचीः प्ररुरुधतुः। ततो यान्य् उक्षशर्धतान्य् आसंस्, तानीमानि लवणानि।— जै.ब्रा.३.२३९

९४. उक्षा मिमाति प्रति यन्ति धेनवो देवस्य देवीर् उप यन्ति निष्कृतम्। अत्य् अक्रमीद् अर्जुनं वारम् अव्ययम् अत्कं न निक्तं परि सोमो अव्यत।। इति परिवतीर् भवन्त्य् अन्तस्य रूपम्। अन्तो ह्य् एतद् अहः।— जै.ब्रा.३.२९८

९५. अष्टम अहः (माध्यंदिन पवमानः) - औक्ष्णोरन्ध्रे भवतः। उक्ष्णोरन्ध्रो वा एताभ्याङ्काव्योऽञ्जसा स्वर्गं लोकमपश्यत् स्वर्गस्य लोकस्यानुख्यात्यै स्वर्गात् लोकान्न च्यवते तुष्टुवानः।-ताण्ड्य ब्रा.१३.९.१८

९६. अगस्त्यो वै मरुद्भ्य उक्ष्नः प्रौक्षत्तानिन्द्रायावघ्नात्ते वज्रमादायाभ्यपतत्ता एतत्कयाशुभीयमपश्यत्तेनाशमयत्।----- सप्तदश पृश्नीनुक्ष्णः पञ्चवर्षात् सप्तदश पृश्नीस्त्रिवत्सा अप्रवीतास्तान् पर्यग्निकृतान् प्रोक्षितानेतरालभन्ते प्रेतरान्

सृजन्ति। ततः संवत्सरे नवनीतपृश्नीररुणा आनयन्ति ताँश्चैवोक्ष्णस्तान् पर्यग्निकृतान् प्रोक्षितानेतरालभन्ते प्रेतरान् सृजन्ति ततः संवत्सरे राजीवा आनयन्ति ताँश्चैवोक्ष्णस्तान् पर्यग्निकृतान् प्रोक्षितानेतरालभन्ते प्रेतरान् सृजन्ति ततः संवत्सरे पिशङ्गीरानयन्ति ताँश्चैवोक्ष्णस्तान् पर्यग्निकृतान् प्रोक्षितानेतरालभन्ते प्रेतरान् सृजन्ति ततः संवतत्सरे सारङ्गीरानयन्ति ताँश्चैवोक्ष्णस्तान् पर्यग्निकृतान् प्रोक्षितानेतरालभन्ते प्रेतरान् सृजन्ति। ततः संवत्सरे सोमा भवन्ति। त्रींस्त्रीनन्वहमालभन्ते पञ्चोत्तमेहनि। अजोग्नीषोमीयः। ऐन्द्रामारुता उक्षाणो मारुत्यो वत्सतर्य्यः।-ताण्ड्य ब्राह्मण२१.१४.७

९७. अग्निं मन्थन्ति सोमे राजन्यागते। तद्यथैवादो मनुष्यराज आगतेऽन्यस्मिन्वार्हत्युक्षाणं वा वेहतं वा क्षदन्त एवमेवास्मा एतत्क्षदन्ते यदग्निं मन्थन्त्यग्निर्हि देवानां पशुः।—ऐतरेय ब्राह्मण १.१५

९८. मही द्यावापृथिवी इह ज्येष्ठे इति द्यावापृथिवीयं रुवद्धोक्षेति पशुरूपं पञ्चमेऽहनि पञ्मस्याह्नो रूपम्।-ऐ.ब्रा.५.८

९९. प्रस्थित याज्या : आग्नीध्रस्य याज्याया ऐन्द्रत्वं संपादयति-उक्षान्नाय वशान्नायेत्याग्नीध्रो यजति सोमपृष्ठाय वेधस इतीन्द्रो वै वेधास्तदैन्द्रं रूपं तेनेन्द्रं प्रीणाति।-ऐ.ब्रा.६.१०

१००. काम्ययाज्यापुरोनुवाक्या :- उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे। स्तोमैर्विधेमाग्नये।-तैत्तिरीय संहिता १.३.१४.७

१०१. ब्रह्मवर्चसकामादीनां पशुविधिः - ते (देवाः) प्रजापतिमुपाधावन्त्स एतौ प्रजापतिरात्मन उक्षवशौ निरमिमीत ते देवा वैष्णावरुणीं वशामाऽलभन्तैन्द्रमुक्षाणं ते वरुणेनैव ग्राहयित्वा विष्णुना यज्ञेन प्राणुदन्तैन्द्रेणैवास्येन्द्रियमवृञ्जत यो भ्रातृव्यवान्त्स्यात्स स्पर्धमानो वैष्णावरुणीम् वशामा लभेतैन्द्रमुक्षाणं---- — तै.सं.२.१.४.४

१०२. वषट्कारो वै गायत्रियै शिरोऽच्छिनत्तस्यै रसः पराऽपतत्तं बृहस्पतिरुपागृह्णात्सा शितिपृष्ठा वशाऽभवद्यो द्वितीयः परापतत्तं मित्रावरुणावुपागृह्णीताँ सा द्विरूपा वशाऽभवद्यस्तृतीयः परापतत्तं विश्वे देवा उपागृह्णन्त्सा बहुरूपा वशाऽभवद्यश्चतुर्थः परापतत्स पृथिवीं प्राविशत्तं बृहस्पतिरभि अगृह्णादस्त्वेवायं भोगायेति स उक्षवशः समभवत्— तै.सं.२.१.७.१

१०३. छन्दसां वा एष रसो यद् वशा रस इव खलु वै सजाताश्छन्दसामेव रसेन रसँ सजातानव रुन्धे बार्हस्पत्यमुक्षवशमालभेत ब्रह्मवर्चसकामो बृहस्पतिमेव स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवास्मिन्ब्रह्मवर्चसं दधाति ब्रह्मवर्चस्येव भवति वशं वा एष चरति यदुक्षा वश एव खलु वै ब्रह्मवर्चसं— तै.सं.२.१.७.६

१०४. वयस्याख्येष्टकाभिधानम् . उक्षा वयः सतोबृहती छन्द — तै.सं.४.३.५.१

१०५. चित्याग्निहोमोक्तिः - मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम्। मा नो वधीः पितरं मोत मातरं प्रिया मा नस्तनुवः रुद्र रीरिषः।— तै.सं.४.५.१०.२

१०६. अग्निप्रणयनाभिधानम् : उक्षा समुद्रो अरुणः सुपर्णः पूर्वस्य योनिं पितुरा विवेश। मध्ये दिवो निहितः पृश्निरश्मा वि चक्रमे रजसः पात्यन्तौ।— तै.सं.४.६.३.४

१०७. वसोर्धाराद्यभिधानम् :- उक्षा च मे वशा च म— तै.सं.४.७.१०.१

१०८. त्वामग्ने प्रदिव आहुतं घृतेन सुम्नायवः सुषमिधा समीधिरे। स वावृधान ओषधीभिरुक्षित उरु ज्रयांसि पार्थिवा वितिष्ठसे।।-आप.श्रौ.सू.५.६.३

१०९. अग्निहोत्री के प्रवास से गृह आगमन पर : इरां वहन्तो घृतमुक्षमाणास्तेष्वहं सुमना संविशामीति प्रविश्य जपति।— आप.श्रौ.सू.६.२७.५

११०. अग्निचयनम् : उक्षान्नाय वशान्नायेत्येताभिः षड्भिश्चितिंचितिमुपधाया-भिजुहोति।— आप.श्रौ.सू.१६.३५.१

१११. सोमस्याग्ने वीहीत्यनुयजति।----- यस्मिन्नश्वास ऋषभास उक्षणो वशा मेषा अवसृष्टास आहुताः।---- आप.श्रौ.सू१९.३.२

११२. प्राशृङ्गो ऽवाशृङ्ग उक्षा वशा वेहद्धेनुर्वत्स ऋषभोऽनड्वान्पुनरुत्सृष्टो गोमृग इति गव्याः। अन्नाय वेहतमालभते---- आप.श्रौ.सू.१९.१६.१६

११३. पञ्चशारदीयेन बहोर्भूयान्भवति।-- -सप्तदश पृश्नीनुक्ष्णः पञ्चवर्षानानयन्ति।---- प्रोक्षितान्पर्यग्निकृतानुक्ष्ण उत्सृजन्ति।-- -एत उक्षाणः सवनीयाः। त्रींस्त्रीनन्वहमालभन्ते। पञ्चोत्तमे ऽहन्। ऐन्द्रमारुता उक्षाणः। मारुत्यो वत्सतर्यः। यद्युक्ष्णो रुद्रो ऽभिमन्येत।— आप.श्रौ.सू.२२.२०.९

११४. अग्निहोत्री के प्रवास से गृह आगमन पर : -- -- इरां वहन्तो घृतमुक्षमाणास्तेष्वहं सुमना संविशानीति -आश्वलायन श्रौ.सू.२.५.१७

११५.--उक्षान्नाय वशान्नायेति प्रातःसवनिक्यः प्रस्थितयाज्याः।-आश्वलायन श्रौ.सू.५.५.१९

११६. पञ्चशारदीयस्य तु सप्तदशोक्षाण ऐन्द्रामारुता मारुतीभिः सह वत्सतरीभिः सप्तदशभिः सप्तदशभिः पञ्चवर्षपर्यग्निकृताः सवनीयाः। तेषां त्रींस्त्रीश्चतुर्ष्वहस्वालभे-रन्परिशिष्टान्पञ्च पञ्चमे।— आश्वलायन श्रौ.सू.१०.२.२९

११७. वैश्यस्तोमदक्षिणालिङ्गान्। उक्ष्णो वत्सतरीवर्णानुपूर्व्येण।-- पर्यग्निकृतानुत्सृजन्त्युक्ष्णो वत्सतरीभिः संस्थापयन्ति। एवं पञ्च वर्षाण्युक्ष्णो नियुञ्जन्ति। षष्ठे सवनीया भवन्ति त्रयस्त्रयोऽन्वहमैन्द्रामारुताः। पञ्चोत्तमे।-कात्यायन श्रौ.सू.२३.४.५

११८. अग्निचयनम् : ----अथ विषुवत्याग्नीध्रस्य काले पृश्निमश्मानं निदधाति विमान एष दिव उक्षा समुद्र इति द्वाभ्यामथ चतसृभिः---बौ.श्रौ.सू.१०.५१

११९. इष्टिकल्पः - अग्नये ऽन्नवते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेद्यः कामयेतान्न-वान्त्स्यामिति तस्या एते भवत उक्षान्नाय वशान्नाय— बौ.श्रौ.सू.१३.६

१२०. सौत्रामणी : यस्मिन्नश्वास ऋषभास उक्षण इत्यनुवषट्कृते हुत्वाश्विनस्य सँस्रावँ सारस्वते ऽवनयति---- बौ.श्रौ.सू.१७.३५

१२१. पञ्चशारदीयः - अथैतेषां पशूनां त्रयः प्रथमे ऽहन्नैन्द्रामारुता उक्षाणः सवनीया आलभ्यन्त एवं द्वितीय एवं तृतीय एवं चतुर्थे पञ्चोत्तमे ऽहन्नालभ्यन्ते वर्षिष्ठमिव ह्येतदहर्मन्यन्ते-बौ.श्रौ.सू.१८.११

१२२. वनिष्ठुसवः - स उपकल्पयते शतमुक्षवेहतः शतं दार्वाचितानि शतं सर्पिष्पात्राञ्छतं पयःपात्रान्---- -- -अथैतानि दार्वाचितानि प्रदोष एवाग्नावादधाति तेषु प्रज्योतिषूक्षवेहतो निघ्नन्ति----बौ.श्रौ.सू.१८.४०

१२३.---आज्ञा औक्षा भूरयः---- बौ.श्रौ.सू.प्रवर१७

१२४. अथ जायामानीय स्वान् गृहान् प्रपादयति-भद्रान् गृहान् सुमनसः प्रपद्येऽवीरघ्नी वीरवतस्सुवीरान्। इरां वहतो घृतमुक्षमाणास्तेष्वहं सुमनास्संविशानि इति।-बौधायन गृह्य सूत्र १.५.७

**उग्र** (केवल अनुद्धृत अंश)

१. शुभे यदुग्राः पृषतीरयुग्ध्वम्। (दे. मरुतः)।— ऋ.५.५७.३

२. सेदुग्रो अस्तु मरुतः स शुष्मी यं मर्त्यं पृषदश्वा अवाथ।— ऋ.७.४०.३

३. क्षेमेण मित्रो वरुणं दुवस्यति मरुद्भिरुग्रः शुभमन्य ईयते।-ऋग्वेद ७.८२.५

४. तिग्ममेको बिभर्ति हस्त आयुधं शुचिरुग्रो जलाषभेषजः।— ऋ.८.२९.५

५. आराच्छत्रुमप बाधस्व दूरमुग्रो यः शम्बः पुरुहूत तेन।— ऋ.१०.४२.७

(ऋग्वेद के अन्य मन्त्र नहीं लिखे)

६. उग्रस्य मन्योरुदिमं नयामि— अ.१.१०.१

७. नमस्ते राजन् वरुणास्तु मन्यवे विश्वं ह्युग्र निचिकेषि दुग्धम्।— अ.१.१०.२

८. इन्द्रेण दत्तो वरुणेन शिष्टो मरुद्भिरुग्रः प्रहितो न आगन्।— अ.२.२९.४

९. पांच दिशाएं : वर्ष्मन् राष्ट्रस्य ककुदि श्रयस्व ततो न उग्रो वि भजा वसूनि।— अ.३.४.२

१०. जायाः पुत्राः सुमनसो भवन्तु बहुं बलिं प्रति पश्यासा उग्रः।— अ.३.४.३

११. अधा मनो वसुदेयाय कृणुष्व ततो न उग्रो वि भजा वसूनि।— अ.३.४.४

१२. तास्त्वाः सर्वाः संविदाना ह्वयन्तु दशमीमुग्रः सुमना वशेह।— अ.३.४.७

१३. सोमस्य पर्णः सह उग्रमागन्निन्द्रेण दत्तो वरुणेन शिष्टः।— अ.३.५.४

१४. शाला निर्माण : ऋतेन स्थूणामधि रोह वंशोग्रो विराजन्नप वृङ्क्ष्व शत्रून्।-अथर्ववेद ३.१२.६

१५. यस्याञ्जन प्रसर्पस्यङ्गमङ्गं परुष्परुः। ततो यक्ष्मं विबाधस उग्रो मध्यमशीरिव।।— अ.४.९.४

१६. आ त्वागमं शंतातिभिरथो अरिष्टतातिभिः। दक्षं त उग्रमाभारिषं परा यक्ष्मं सुवामि ते।। (दे. चन्द्रमा)— अ.४.१३.५

१७. शतेन मा परि पाहि सहस्रेणाभि रक्ष मा। इन्द्रस्ते वीरुधां पत उग्र ओज्मानमा दधत्।। (दे. अपामार्ग)— अ.४.१९.८

१८. यः उग्रीणामुग्रबाहुर्ययुर्यो दानवानां बलमारुरोज। येन जिताः सिन्धवो येन गावः स नो मुञ्चत्वंहसः।। — अ.४.२४.२

१९. सहस्राक्षौ वृत्रहणा हुवेऽहं दूरे गव्यूति स्तुवन्नेम्युग्रौ।— अ.४.२८.३

२०. यं ग्राममाविशत इदमुग्रं सहो मम। पिशाचास्तस्मान्नश्यन्ति न पापमुप जानते।।— अ.४.३६.८

२१. तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णः। (दे. वरुण)।— अ.५.२.१

२२. उग्रो राजा मन्यमानो ब्राह्मणं यो जिघत्सति। परा तत् सिच्यते राष्ट्रं ब्राह्मणो यत्र जीयते।। (दे. ब्रह्मगवी)।— अ.५.१९.६

२३. उग्रस्य चेत्तुः संमनसः सजाताः— अ.६.७३.१

२४. यथादित्या वसुभिः संबभूवुर्मरुद्भिरुग्रा अहृणीयमानाः— अ.६.७४.३

२५. इमं वीरमनु हर्षध्वमुग्रं इन्द्रं सखायो अनु संरभध्वम्। ग्रामजितं गोजितं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा।। अ.६.९७.३

२६. ह्वयामि उग्रं चेत्तारं पुरुणामानमेकजम्— अ.६.९९.१

२७. इदमुग्राय बभ्रवे नमो यो अक्षेषु तनूवशी। घृतेन कलिं शिक्षामि स नो मृडातीदृशे।।— अ.७.१०९.१/७.११४.१

२८. अयं मणिः सपत्नहा सुवीरः सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः।— अ.८.५.२

२९. ऐन्द्राग्नं वर्म बहुलं यदुग्रं विश्वेदेवा नाति विध्यन्ति सर्वे।— अ.८.५.१९

३०. यस्ते गर्भं प्रतिमृशाज्जातं वा मारयाति ते। पिंगस्तमुग्रधन्वा कृणोतु हृदयाविधम्।— अ.८.६.१८

३१. गर्भं ते उग्रौ रक्षतां भेषजौ नीविभार्यौ— अ.८.६.२०

३२. वीरुधो वैश्वदेवीरुग्राः पुरुषजीवनीः— अ.८.७.४

३३. उन्मुंचन्तीर्विवरुणा उग्रा या विषदूषणीः— अ.८.७.१०

३४. सेदिरुग्रा व्यृद्धिरार्तिश्चानपवाचना— अ.८.८.९

३५. मधुविद्या : अग्नेर्वातान्मधुकशा हि जज्ञे मरुतामुग्रा नप्तिः।— अ.९.१.३

३६. स्तनयित्नुस्ते वाक् प्रजापते वृषा शुष्मं क्षिपसि भूम्यामधि। अग्नेर्वातान्मधुकशा हि जज्ञे मरुतामुग्रा नप्तिः।।— अ.९.१.१०

३७. काम : उग्र ईशानः प्रति मुंच तस्मिन् यो अस्मभ्यं अंहूरणा चिकित्सात्।— अ.९.२.३

३८. काम : अध्यक्षो वाजी मम काम उग्रः कृणोतु मह्यमसपत्नमेव।— अ.९.२.७

३९. काम : उत पृथिव्यां अव स्यन्ति विद्युत उग्रो वो देवः प्र मृणत् सपत्नान्।— अ.९.२.१४

४०. प्रियाप्रियाणि बहुला स्वप्नं सम्बाधतन्द्र्यः। आनन्दानुग्रो नन्दांश्च कस्माद् वहति पूरुषः।।— अ.१०.२.९

४१. उदप्लुतमिव दार्वहीनामरसं विषं वारुग्रम्।— अ.१०.४.३, १०.४.४

४२. यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे। तमग्निः प्रत्यमुंचत सो अस्मै दुह आज्यं-।--तमिन्द्रः प्रत्यमुंचत-।---- तं सोमः प्रत्यमुंचत-।- तं सूर्यः प्रत्यमुंचत---।— अ.१०.६.६

४३. अयं यज्ञो गातुवित्नाथवित् प्रजाविदुग्रः पशुविद् वीरविद् वो अस्तु।— अ.११.१.१५

४४. सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति।— अ.१२.१.१

४५. यूयमुग्रा मरुतः पृश्निमातरः इन्द्रेण युजा प्र मृणीत शत्रून्।— अ.१३.१.३

४६. अष्टधा युक्तो वहति वह्निरुग्रः पिता देवानां जनिता मतीनाम्।— अ.१३.३.१९

४७. तस्मा उदीच्या दिशो अन्तर्देशादुग्रं देवमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन्। उग्र एनं देव इष्वास उदीच्या दिशो----।— अ.१५.५.१०

४८. पितृमेधः - स्तुहि श्रुतं गर्तसदं जनानां राजानं भीममुपहत्नुमुग्रम्।— अ.१८.१.४०

४९. आ यूथेव क्षुमति पश्वो अख्यद् देवानां जनिमान्त्युग्रः। मर्तासश्चिदुर्वशीरकृप्रन् वृधे चिदर्य उपरस्यायोः।।— अ.१८.३.२३

५०. अप्रतिरथ सूक्तम् : उग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता— अ.१९.१३.४

५१. सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः— अ.१९.१३.५

५२. अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदाय उग्रः शतमन्युरिन्द्रः।— अ.१९.१३.७

५३. इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुतां शर्ध उग्रम्। — अ.१९.१३.१०

५४. उग्रा त इन्द्र स्थविरस्य बाहू उप क्षयेम शरणा बृहन्ता।— अ.१९.१५.४

५५. दर्भो य उग्र ओषधिस्तं ते बध्नाम्यायुषे।— अ.१९.३२.१

५६. ओजो देवानां बलमुग्रमेतत् तं ते बध्नामि जरसे स्वस्तये।— अ.१९.३३.४

५७. विबाध उग्रो जंगिडः परिपाणः सुमंगलः।— अ.१९.३४.७

५८. पुरा त उग्रा ग्रसत उपेन्द्रो वीर्यं ददौ।— अ.१९.३४.८

५९. उग्र इत् ते वनस्पत इन्द्र ओज्मानमा दधौ।— अ.१९.३४.९

६१. काम : त्वमुग्रः पृतनासु सासहिः सह ओजो यजमानाय धेहि।— अ.१९.५२.२

६२. अव तां जहि हरसा जातवेदोऽबिभ्यदुग्रोऽर्चिषा दिवमारोह सूर्य।— अ.१९.६५.१

६३. शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रं अस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ। शृण्वन्तमुग्रं ऊतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजित धनानां।।— अ.२०.११.११

६४. स नो युवोग्रश्चक्राम यो धृषत्— अ.२०.१४.२

६५. प्रोग्रां पीतिं वृष्ण इयर्मि सत्यां— अ.२०.२५.७, २०.३३.२

६६. तमिन्द्रं जोहवीमि मघवानमुग्रं सत्रा दधानमप्रतिष्कुतं श्रवांसि।— अ.२०.५५.१

६७. य उग्रः सन्ननिष्टृत स्थिरो रणाय संस्कृतः।— अ.२०.५७.१३, २०.५३.३

६८. क्रत्वा वरिष्ठं वर आमुरिमुतोग्रमोजिष्ठं तवसं तरस्विनम्।— अ.२०.५४.१

६९. उप त्वा कर्मन्नूतये स नो युवोग्रश्चक्राम यो धृषत्।— अ.२०.६२.२

७०. उग्रं तत् पत्यते शव इन्द्रो अंग।— अ.२०.६३.६

७१. इन्द्र वाजेषु नो अव सहस्रप्रधनेषु च। उग्र उग्राभिरूतिभिः।— अ.२०.७०.१०

७२. कस्ते मद इन्द्र रन्त्यो भूद् दुरो गिरो अभ्युग्रो वि धाव।— अ.२०.७६.३

७३. त्वामुग्रं अवसे चर्षणीसहं राजन् देवेषु हूमहे।— अ.२०.८०.२

७४. आराच्छत्रुमप बाधस्व दूरमुग्रो यः शम्बः पुरुहूत तेन।— अ.२०.८९.७

७५. अषाळहमुग्रं पृतनासु सासहिं यस्मिन् महीरुरुज्रयः।— अ.२०.९२.१९

७६. एन्द्रवाहो नृपतिं वज्रबाहुं उग्रमुग्रासस्तविषास एनम्।— अ.२०.९४.३

७७. तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेष नृम्णः।— अ.२०.१०७.४

७८. ममेदुग्रस्य चर्कृधि सर्व इत् ते पृणादरिः।— अ.२०.१२७.११

७९. कुलायं कृणवादिति। उग्रं वनिषदाततम्।।— अ.२०.१३५.६

८०. तास्ते यक्ष्मं वि बाधन्तां उग्रो मध्यमशीरिव।।— ऋ.१०.९७.१२, तै.सं.४.२.६.४, अथर्ववेद

८१. राक्षसों द्वारा उग्र तप का उल्लेख। प्रजापति से आदित्य से युद्ध का वर प्राप्त करना।-तैत्तिरीय आरण्यक २.२.१

८२. मित्रावरुणौ : आदित्यानां प्रसितिर्हेतिः। उग्रा शतापाष्ठाघविषा परि णो वृणक्तु।-तैत्तिरीय आरयक ४.२०.३

८३. अग्नि के घोर तनु : स्निक्च स्नीहितिश्च स्निहितिश्च। उष्णा च शीता च। उग्रा च भीमा च। सदाम्नी सेदिरनिरा।— तै.आ.४.२३.१

८४. मरुद्गण : उग्रश्च धुनिश्च ध्वान्तश्च ध्वनश्च ध्वनयंश्च।--— तै.आ.४.२५.१

८५. उग्र प्रतिग्रह : अत्याशनादतीपानाद्यच्च उग्रात्प्रतिग्रहात्। यन्मे वरुणो राजा पाणिना ह्यवमर्शतु।। तै.आ.१०.१.१३

८६. पृतनाजितं सहमानमुग्रमग्निं हुवेम परमात्सधस्थात्।— तै.आ.१०.१

८७. मृत्यु : मा छिदो मृत्यो मा वधीर्मा मे बलं विवृहो मा प्रमोषीः। प्रजां मा मे रीरिष आयुरुग्र नृचक्षसं त्वा हविषा विधेम।।— तै.आ.१०.५.१

८८. जनिष्ठा उग्रः सहसे तुरायेति सूक्तम् (ऋ.१०.७३.१) उग्रवत्सहस्वत्तत्क्षत्रस्य रूपं।-ऐतरेय ब्राह्मण ८.२

८९. जनिष्ठा उग्रः--- -- से यजमान का देवयोनि में जन्म।-ऐ.ब्रा.३.१९

९०. ब्रह्म वै रथंतरं क्षत्रं बृहद् ब्रह्म खलु वै क्षत्रात्पूर्वं ब्रह्म पुरस्तान्म उग्रं राष्ट्रं अव्यथ्यमसद्---- ऐ.ब्रा.८.१, ८.४

९१. उग्रं सहोदामिह तं हुवेमेति (मरुत्वां इन्द्र वृषभो रणाय-सूक्त ३.४७.१) हववच्चतुर्थेऽहनि चतुर्थस्याह्नो रूपं-ऐ.ब्रा.५.४

९२. पिबा सोममभि यमुग्र तर्द इति सूक्तं (ऋ. ६.१७.१) ऊर्वं गव्यं महि गृणान इन्द्रेति महद्वदष्टमेऽहन्यष्टमस्याह्नो रूपम्-ऐ.ब्रा.५.१८, ऐ.आ.१.२.२

९३. पिबा सोमं----होता यजति माध्यंदिने---- गोपथ ब्राह्मण २.२.२१

९४. होता की याज्या : पिबा सोममभि यमुग्र तर्द इति होता यजति-ऐ.ब्रा.६.११

९५. अषाळहमुग्रं सहमानमाभिरित्युग्रवत्सह-मानवत्तत्क्षत्रस्य रूपं-ऐ.ब्रा.८.३

९६. एतेन ह वा ऐन्द्रेण महाभिषेकेण पर्वतनारदौ युधांश्रौष्टिमौग्रसेन्यं अभिषिषिचतुः तस्माद् युधां

श्रौष्टिरौग्रसेन्यः समन्तं सर्वतः पृथिवीं जयन्परीयाश्वेन च मेध्येनेजे।-ऐ.ब्रा.८.२१

९७. यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्ण इत्यतोह्येष जात उग्रस्त्वेषनृम्णः।-ऐ.आ.१.३.४

९८. एष स्तोमो सह उग्राय वाह इति महद्वत्या रूपसमृद्ध्या। ऐतरेय आरण्यक १.५.२

९९. सोमानयनम् : श्येनो भूत्वा परापत इति। वय एवैनमेतद्भूतं प्रपातयति। यद्वाऽउग्रं-तन्नाष्ट्रा रक्षांसि नान्वयन्ति। एतद्वै वयसामोजिष्ठं-यच्छ्येनः।-शतपथ ब्राह्मण ३.३.४.१५

१००. तृतीय उपयाम नामक मरुत्वतीय ग्रह ग्रहण मन्त्र : मरुत्वन्तं वृषभं वावृधानमकवारिं दिव्यं शासमिन्द्रम्। विश्वासाहमवसे नूतनायोग्रं सहोदामिह तं हुवेम।---- श.ब्रा.४.३.३.१४, तै.ब्रा.२.८.३.४

१०१. महाव्रतीय ब्राह्मणम् : विश्वकर्मन् हविषा वर्धनेन त्रातारमिन्द्रमकृणोरवध्वम्। तस्मै विशः समनमन्त पूर्वीरयमुग्रो विहव्यो यथासत्। उपयाम गृहीतोऽसि----।— श.ब्रा.४.६.४.६

१०२. मधु जो दध्यङ्ग अथर्वण ने अश्विनौ को कहा : तद्वां नरा सनये दंस उग्रमाविष्कृणोमि तन्यतुर्न वृष्टिम्। दध्यङ् ह यन्मध्वाथर्वणो वामश्वस्य शीर्ष्णा प्र यदीमुवाच (ऋग्वेद)।— श.ब्रा.१४.५.५.१६

१०३. ज्योति ब्राह्मणम् (देहांतर पर शरीर प्राप्ति के संदर्भ में टीका) - तद्यथा राजानमायन्तमुग्राः प्रत्येनसः सूतग्रामण्योऽन्नैः पानैरावसथैः प्रतिकल्पन्ते। अयमायाति। अयमागच्छतीति। एवं ह, एवं विदं सर्वाणि भूतानि प्रतिकल्पन्ते। इदं ब्रह्मायाति।।— श.ब्रा.१४.७.१.४३

१०४. तद्यथा राजानं प्रयियासन्तं उग्राः प्रत्येनसः सूतग्रामण्य उपसमायन्ति। एवं ह, एवं विदं सर्वे प्राणा उपसमायन्ति। यत्रैतदूर्ध्वोच्छ्वासी भवति।— श.ब्रा.१४.७.१.४४

१०५. इन्द्र वाजेषु नो अव। सहस्रप्रधनेषु च। उग्र उग्राभिरूतिभिः।-तैत्तिरीय ब्राह्मण १.५.८.२

१०६. दिशा का अभिजय : उग्रा मा तिष्ठेत्याह। इन्द्रियमेवावरुन्धे।— तै.ब्रा.१.७.७.२

१०७. धूनुथ द्यां पर्वतान्दाशुषे वसु। नि वो वना जिहते धामनो भिया। कोपयथ पृथिवीं पृश्निमातरः। युधे यदुग्राः पृषतीरयुग्ध्वम्।।— तै.ब्रा.२.४.४.३

१०८. अग्निः क्षत्रभृदनिभृष्टमोजः। सहस्रियो दीप्यतामप्रयुच्छन्। विभ्राजमानः समिधान उग्रः। आऽन्तरिक्षमरुहदगन्द्याम्।।- तै.ब्रा.२.४.६.१२

१०९. उपांशु सवन में ग्रावा द्वारा सोम अंशुओं का सवन : वृषाऽस्यंशुर्वृषभाय गृह्यसे। वृषाऽयमुग्रो नृचक्षसे। दिव्य कर्मण्यो हितो बृहन्नाम। वृषभस्य या ककुत्।।— तै.ब्रा.२.४.७.१

११०. (हे इन्द्र!) इममाभज ग्रामे अश्वेषु गोषु। निरमुं भज यो मित्रो अस्य। वर्ष्मन्क्षत्रस्य ककुभि श्रयस्व। ततो न उग्रो वि भजा वसूनि।।— तै.ब्रा.२.४.७.७

१११. यूयमुग्रा मरुतः पृश्निमातरः। इन्द्रेण सयुजा प्रमृणीथ शत्रून्। आ वो रोहितो अशृणोदभिद्यवः। त्रिसप्तासो मरुतः स्वादुसंमुदः।।— तै.ब्रा.२.५.२.३

११२. सुब्रह्माणं वीरवन्तं बृहन्तम्। उरुं गभीरं पृथुबुध्नमिन्द्र। श्रुतर्षिमुग्रमभिमातिषाहम्। अस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः।।— तै.ब्रा.२.५.७.१

११३. तमिन्द्रं जोहवीमि मघवानमुग्रम्। सत्रा दधानमप्रतिष्कुतं शवांसि। मंहिष्ठो गीर्भिरा च यज्ञियोऽववर्तत्। राये नो विश्वा सुपथा कृणोतु वज्री।।— तै.ब्रा.२.५.८.९

११४. मरुत्वतीय ग्रहों में तीन पुरोरुक् में से प्रथम : अग्निश्रियो मरुतो विश्वकृष्टयः। आत्वेषमुग्रमव ईमहे वयम्। ते स्वामिनो रुद्रिया वर्षनिर्णिजः। सिंहा न हेषक्रतवः सुदानवः।।— तै.ब्रा.२.७.१२.३

११५. रथारोहण मन्त्राः: अभि प्रेहि वीरयस्व। उग्रश्चेत्ता सपत्नहा।— तै.ब्रा.२.७.१६.१

११६. यजमान का अभिषेक ?: अरुणं त्वा वृकमुग्रं खजंकरम्। रोचमानं मरुतामग्रे अर्चिषः। सूर्यवन्तं मघवानं

विषासहिम्। इन्द्रमुक्थेषु नामहूतमं हुवेम।।— तै.ब्रा.२.७.१५.६

११७. राजा द्वारा औदुम्बरी आसन्दी पर आरोहण मन्त्र : आरोह प्रोष्ठं विषहस्व शत्रून्। अवास्राग्दीक्षा वशिनी ह्युग्रा। देहि दक्षिणां प्रतिरस्वाऽऽयुः। अथा मुच्यस्व वरुणस्य पाशात्।।— तै.ब्रा.२.७.१७.१

११८. हवि की याज्या : आराच्छत्रुमपबाधस्व दूरम्। उग्रो यः शम्बः पुरुहूत तेन। अस्मे धेहि यवमद्गोमदिन्द्र। कृधी धियं जरित्रे वाजरत्नाम्।।— तै.ब्रा.२.८.२.७

११९. पशोः सूक्ते वपायाः पुरोनुवाक्या : मरुत्वन्तं वृषभं वावृधानम्। अकवारिं दिव्यं शासमिन्द्रम्। विश्वासाहमवसे नूतनाय। उग्रं सहोदामिह तं हुवेम।।— तै.ब्रा.२.८.३.४

१२०. वपा की याज्या : जनिष्ठा उग्रः सहसे तुराय। मन्द्र ओजिष्ठो बहुलाभिमानः। अवर्धन्निन्द्रं मरुतश्चिदत्र। माता यद्वीरं दधनद्धनिष्ठा।।— तै.ब्रा.२.८.३.५

१२१. पुरोडाश की पुरोनुवाक्या : क्व स्या वो मरुतः स्वधाऽऽसीत्। यन्मामेकं समधत्ताहिहत्ये। अहं ह्युग्रस्तविषस्तुविष्मान्। विश्वस्य शत्रोरनमं वधस्नैः।।— तै.ब्रा.२.८.३.५

१२२. इन्द्रायाभिमातिघ्ने ललामं प्राशृंगमालभेत इत्यस्य पशोः सूक्ते वपायाः पुरोनुवाक्या : इन्द्रस्तरस्वानभिमातिहोग्रः। हिरण्यवाशीरिषिरः सुवर्षाः। तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्य। अपि भद्रे सौमनसे स्याम।।— तै.ब्रा.२.८.४.१

१२३. पुरोडाश की याज्या : तमु ष्टुहि यो अभिभूत्योजाः। वन्वन्नवातः पुरुहूत इन्द्रः। अषाड्हमुग्रं सहमानमाभिः। गीर्भिर्वर्ध वृषभं चर्षणीनाम्।।— तै.ब्रा.२.८.५.८

१२४. यथा देवा असुरेषु। श्रद्धामुग्रेषु चक्रिरे। एवं भोजेषु यज्वसु। अस्माकमुदितं कृधि।।— तै.ब्रा.२.८.८.७

१२५. वपा की याज्या : प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम। वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता। आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुरश्चित्। राजाचिद्यं भगं भक्षीत्याह।।— तै.ब्रा.२.८.९.७

१२६. उप नो मित्रावरुणाविहावतम्। अन्वादीध्याथामिह नः सखाया। आदित्यानां प्रसितिर्हेतिः। उग्रा शतापाष्ठाघविषा परि णो वृणक्तु।।— तै.ब्रा.३.७.१३.४

१२७. ब्रह्मा द्वारा यजमान का प्रोक्षण : शतेनाराजभिरुग्रैः सह ब्रह्मा दक्षिणत उदङ्तिष्ठन्प्रोक्षति। अनेनाश्वेन मेध्येनेष्ट्वा। अयं राजाऽप्रतिधृष्योऽस्त्विति। बलं वै ब्रह्मा। बलमराजोग्रः। बलेनैवास्मिन्बलं दधाति।— तै.ब्रा.३.८.५.१

१२८. इरा पत्नी विश्वसृजाम्। आकूतिरपिनद्ध्वविः। इध्मं ह क्षुद्वैभ्य उग्रे। तृष्णा चाऽऽवहतामुभे।।— तै.ब्रा.३.१२.९.५

१२९. अहोरात्रे पशुपाल्यौ। मुहूर्ताः प्रेष्या अभवन्। मृत्युस्तदभवद्धाता। शमितोग्रो विशां पतिः।।— तै.ब्रा.३.१२.९.६

१३०. हविर्होमानुमन्त्रणम् (दक्षिण परिधिः): ध्रुवोऽसि ध्रुवोऽहं सजातेषु भूयासं धीरश्चेत्ता वसुविदुग्रोऽस्युग्रोऽहं सजातेषु भूयासमुग्रश्चेत्ता वसुविदभिभूरस्यभिभूरहं सजातेषु भूयासम्----- — तै.सं.१.६.२.१, १.६.१०.१, २.३.९.१

१३१. य उग्र इव शर्यहा तिग्मशृंगो न वंसगः। अग्ने पुरो रुरोजिथ।— तै.सं.२.६.११.४

१३२. अदाभ्य अंशु ग्रहापेक्षित मन्त्राः: आऽस्मिन्नुग्रा अचुच्यवुर्दिवो धारा असश्चत।— तै.सं.३.३.३.२, ३.३.४.१

१३३. वृषालम्भन कर्म : वर्ष्मन्क्षत्रस्य ककुभि शिश्रियाणस्ततो न उग्रो वि भजा वसूनि।— तै.सं.३.३.९.२

१३४. जय मन्त्र होमम् : इन्द्राय वृष्णे प्रायच्छदुग्रः पृतनाज्येषु तस्मै विशः समनमन्त सर्वा स उग्रः स हि हव्यो बभूव।— तै.सं.३.४.४.१

१३५. आप्री नामक प्रयाज याज्या : येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढे येन सुवः स्तभितं येन नाकः। यो

अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम।।— तै.सं.४.१.८.५

१३६. आहवनीय चयनार्थ ओषधि वापन : याः त आतस्थुरात्मानं या आविविशुः परुः परुः। तास्ते यक्ष्मं वि बाधन्तां उग्रो मध्यमशीरिव।।— तै.सं.४.२.६.४, जै.ब्रा.२.४१०, ऋ१०.९७.१२

१३७. ऋतव्य इष्टका : उग्रा च भीमा च पितृणां यमस्य इन्द्रस्य — तै.सं.४.४.११.२

१३८. उग्रा दिशामभिभूतिर्वयोधाः शुचिः शुक्रे अहन्योजसीनां। (द्र.: सायण टीका)— तै.सं.४.४.१२.१

१३९. सूक्ताभ्यां होमाः विश्वकर्मन् हविषा वर्धनेन त्रातारमिन्द्रमकृणोरवध्वम्। तस्मै विशः समनमन्त पूर्वीरयमुग्रो विहव्यो यथाऽसत्।।— तै.सं.४.६.२.६

१४०. अप्रतिरथ सूक्तम् : बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान्वाजी सहमान उग्रः। अभि वीरो अभि सत्वा सहोजा जैत्रमिन्द्र रथमा तिष्ठ गोवित्।।— तै.सं.४.६.४.२

१४१. इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुतां शर्ध उग्रम्। महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात्।।— तै.सं.४.६.४.३

१४२. आख्यान : गन्धर्वमुग्रं बलिनम् अश्मघातिनम् अंसलम्। भारद्वाजस्य हन्तारं विश्वज्योतिषम् आ वह।।— जै.ब्रा.२.२७०

१४३. उग्रो वा एष मध्यमशीवा यन् महाव्रतम्। यद् वा उग्रो मध्यमशीवा भवति, सर्वान् वै सो ऽन्यान् व्यकीर्याथैकश् शेते।— जै.ब्रा.२.४१०

१४४. बृहत्यां बृहद् भवति, बृहत्यां रथन्तरम्। यथोग्रगाधे संरभ्यातीयाद् एवम् एवैतं तृतीयं त्रियहं देवा अत्यायन्।— जै.ब्रा.३.३२९

१४५. एष ह वाव स देवानाम् अधि देवो य एष तपति। तस्यैतत् सहस्रस्थूणं विमितं दृढम् उग्रं यत् संवत्सर ऋतवो मासा अर्धमासा अहोरात्राणि उषसः। सहस्रस्थूणे विमिते दृढ उग्रे यत्र देवानाम् अधिदेव आस्ते।— जै.ब्रा.३.३८५

१४६. अग्निष्टोम प्रातः सवन में अंशु आदाभ्य पात्र : आस्मिन् उग्रा अचुच्यवुर्दिवो धारा असश्चत।— बौधायन श्रौत सूत्र १४.१२.१२; आपस्तम्ब श्रौत सूत्र १२.८.३

१४७. अश्वमेध में मुसल से श्वान को मारने के पश्चात् : अध्वर्यु सह शतेन तल्प्यानां राजपुत्राणां पुरस्तात्, ब्रह्मा सह शतेन अराज्ञां उग्राणां दक्षिणतः, होता सह शतेन सूतग्रामणीनां पश्चात्---- (अश्व का प्रोक्षण करते हैं)। — बौ.श्रौ.सू.१५.१, १५.५; आप.श्रौ.सू.२०.४.२, २०.५.१३

१४८. प्रवर्ग्य उपसद में य उग्र इव शर्यहा ऋक् का विनियोग— आश्वलायन श्रौ.सू.४.८.८

१४९. प्रोग्रां पीतिं वृष्ण इयर्मि सत्यां इति (ऋक्) याज्या— आश्वलायन श्रौ.सू.६.४.१०

१५०. उग्रा दिशामभिभूतिर्वयोधाः --- (ऋक्)।— आश्व.श्रौ.सू.४.१२.२

१५१. विश्वेदेवाः सप्तदशेन वर्च इदं क्षत्रं सलिलवातमुग्रम्।--- — आश्व.श्रौ.सू.४.१२.२

**उच्चैःश्रवा** (अनुद्धृत अंश)

१. अग्ने तव श्रवो वयो-ऋग्वेद १०.१४०.१

२. धीभिरर्वद्भिरर्वतो वाजां इन्द्र श्रवाय्यान्। त्वया जेष्म हितं धनम्।।— ऋ.६.४५.१२

३. वाज को गोमन्त कहना — ऋ.३.२०.२व३

४. श्रव के साथ रयि का उल्लेख— ऋ.१.१२८.१,५.८६.६, ७.५.९, ८.१३.१२, ९.६३.१२

५. वाजयु श्रवः— ऋ.८.८०.५

६. श्रव के साथ द्युम्न का उल्लेख— ऋ.१.९.८, ३.३७.१०, ३.५९.६, ५.७.९, ६.५.५, ८.५.३२, ८.७४.९, ९.८०.२

७. ससर्परी वाक् व श्रव— ऋ.३.५३.१५,१६

८. सोम राजा के लिए पवित्र रथ आदि— ऋ.९.८३.५,९.८६.४०

९. पृथु श्रवः— ऋ.१.९.७, ७.५.८, ८.४६.२१, २४

१०. वाज और वाजी, गो, श्रव आदि— ऋ.८.५२.४

११. पवमान द्वारा महि श्रव, गौ व अश्व का रासन करना-९.९.९

१२. अभि वाजं सप्तिरिव श्रवस्य— ऋ.९.९६.१६

१३. श्रव द्वारा अक्षित जनपान का उत्स देना— ऋ.९.११०.५

१४. उषा का श्रव के लिए उदित होना— ऋ.१.९५.३

१५. गोमत व वाजवत श्रव— ऋ.१.९.७

१६. अश्विनौ द्वारा ३ श्रव देना— ऋ.१.३४.५

१७. महि श्रव— ऋ.१.४३.७

१८. ॐ सप्ति की भांति श्रव— ऋ.१.६१.५

१९. अमर्त्यों में श्रव हेतु ऋभवों द्वारा एक पात्र के चार करना— ऋ.१.११०.५

२०. आशु अश्व— ऋ.१.११७.९

२१. पूषा के वाहन अजाश्व से श्रव करने की प्रार्थना— ऋ.१.१३८.४

२२. श्रव के साथ इष— ऋ.१.१६५.१२,४.४०.२, ५.४.२, ६.६५.३

२३. मरुतों का श्रवस्यु रथ— ऋ.५.५६.८

२४. उरुगाय श्रव— ऋ.६.६५.६

२५. जैत्र श्रवस्य— ऋ.८.१५.३

२६. पृतनासु श्रवोजितम्— ऋ.८.३२.१४

२७. वाजासः श्रवस्यवः— ऋ.५.९.२

२८. कौकिल सौत्रामणी : श्रवस इति स्थाने जित्या इति क्षत्रियस्य पुष्ट्या इति वैश्यस्येत्येके। (संश्रवसे विश्रवसे सत्यश्रवसे श्रवस इति चत्वारि निधनानि-द्राह्यायण श्रौ.सू.१३.४.१३

२९. संश्रवसे विश्रवसे सत्यश्रवसे इति सर्वे निधनमुपयन्ति। संजित्यै विजित्यै सत्यजित्यै जित्या इति क्षत्रियस्य। सम्पुष्ट्यै विपुष्ट्यै सत्यपुष्ट्यै पुष्ट्या इति वैश्यस्य। यथाम्नातं वा सर्वेषाम् (श.ब्रा.१२.८.३.६)-कात्यायन श्रौ.सू.१९.५.३

३०. पुत्रकामेष्ट्यामग्निः पुत्री। यस्मै त्वं सुकृते जातवेदो यस्त्वा हृदा कीरिणा मन्यमानः। अग्निस्तुविश्रवस्तममिति द्वे संयाज्ये।-आश्वलायन श्रौ.सू.२.१०.५

३१. उद्धारि खण्डिक तथा दार्भ्य केशी के विवाद में केशी की पराजय। केशी का उच्चैःश्रवस कौवयेय कौरव्य राजा मातुल के पास जाना।----ज्योति अग्निष्टोम, ज्योति उक्थ,ज्योति अतिरात्र से ब्रह्मवर्चस कामी यजन करता है। सप्तदश अग्निष्टोम आदि से प्रजननकामी तथा एकविंश अग्निष्टोम आदि से स्वर्गकामी— जै.ब्रा.२.२७९-२८०

३२. अर्वन्तो न श्रवस्यवः। सोमासो राये अक्रमुः। इति प्रायणीय रूपम् एवैतद् उपगच्छन्ति। प्रायणीयं हि एतद् अहः।— जै.ब्रा.३.१७५

३३. अभीमं महिना दिवं। मित्रो बभूव सप्रथाः। उत श्रवसा पृथिवीम्। मित्रस्य चर्षणीधृतः। श्रवो देवस्य सानसिम्। द्युम्नं चित्रश्रवस्तमम्।।-तैत्तिरीय आरण्यक ४.३.१

३४. उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्या (ऋ.७.२३.१, अथर्व २०.१२.१)-इति विश्वामित्रः-गोपथ ब्रा.२.६.१

३५. उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्या इति ब्राह्मणाच्छंसी। ब्रह्मण्वदेतत् सूक्तं समृद्धम्-गोपथ ब्रा.२.६.२

३६. उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्या इति पर्यासः।-गो.ब्रा.२.४.३

३७. संश्रवसे विश्रवसे सत्यश्रवसे श्रवस इति-गो.ब्रा.२.५.७

३८. यो जातमस्य महतो महि ब्रवात्। सेदुः श्रवोभिर्युज्यंचिदभ्यसत्।— तै.ब्रा.२.४.३.९

३९. पदं देवस्य नमसा वियन्तः। श्रवस्यवः श्रव आपन्नमृक्तम्। नामानि चिद्दधिरे यज्ञियानि। भद्रायां ते रणयन्त संदृष्टौ।।— तै.ब्रा.३.६.१०.२

४०. श्रवण नक्षत्र : त्रेधा विष्णुरुरुगायो विचक्रमे। महीं दिवं पृथिवीमन्तरिक्षम्। तच्छ्रोणैति श्रव इच्छमाना। पुण्यं श्लोकं यजमानाय कृण्वती।। — तै.ब्रा.३.१.२.६

४१. हवि की पुरोनुवाक्याः अस्य श्रवो नद्यः सप्त बिभ्रति। द्यावा क्षामा पृथिवी दर्शतं वपुः।---- तै.ब्रा.२.८.९.२

४२. आदित्य ग्रह की तीन पुरोरुचाओं में द्वितीय : त्वे अग्ने सुमतिं भिक्षमाणाः। दिवि श्रवो दधिरे यज्ञियासः। नक्ता च चक्रुरुषसा विरूपे। कृष्णं च वर्णं अरुणं च संधुः।।— तै.ब्रा.२.७.१२.५

४३. नाराशंसी ऋचा : ये मे पंचाशतं ददुः। अश्वानां सधस्तुतिः। द्युमदग्ने महि श्रवः। बृहत्कृधि मघोनाम्। नृवदमृत नृणाम्।।— तै.ब्रा.२.७.५.२

४४. यास्ते पूषन्नावो अन्तः समुद्रे। हिरण्ययीरन्तरिक्षे चरन्ति। याभिर्यासि दूत्यां सूर्यस्य। कामेन कृतः श्रव इच्छमानः।।— तै.ब्रा.२.५.५१।५

४५. अधि श्रवो माहिनं यज्जरित्र इतीयं वै माहिनं यज्ञश्रवो यजमानो जरिता यजमाना-यैवैतामाशिषमाशास्ते।- ऐ.ब्रा.३.३८

४६. एतैर्वै सामभिर्देवा इन्द्रमिंद्रियाय वीर्याय समश्यन्। तथो एवैतमृत्विजो यजमानमेतैरेव सामभिरिन्द्रियाय वीर्याय संश्यन्ति। संश्रवसे विश्रवसे सत्यश्रवसे श्रवस इति सामानि भवन्ति। एष्वेवैनमेतल्लोकेषु श्रावयन्ति। चतुर्निधनं भवति। चतस्रो वै दिशः।---- श.ब्रा.१२.८.३.२६

४७. दिवि श्रवांस्युत्तमानि धिष्व इति। चन्द्रमा वाऽअस्य दिवि श्रव उत्तमम्। स ह्येनममुष्मिंल्लोके श्रावयति।— श.ब्रा.७.३.१.४६

४८. अग्ने तव श्रवो वयः इति। धूमो वाऽअस्य श्रवो वयः। स ह्येनममुष्मिन् लोके श्रावयति।---- श.ब्रा.७.३.१.२९

## उच्छिष्ट

१. उच्छिष्टं चम्वोर्भर सोमं पवित्र आ सृज। नि धेहि गोरधि त्वचि।।— ऋ.१.२८.९

२. अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसंशिते। गच्छामित्रान् प्र पद्यस्व मामीषां कं चनोच्छिषः।।— ऋ.६.७५१।१६

३. शिष्टानशिष्टान् नि तिरामि वाचा यथा क्रिमीणां नकिरुच्छिषातै।।-अथर्ववेद २.३१.३

४. विसल्पकस्योषधे मोच्छिषः पिशितं चन।।— अ.६.१२७.१

५. अतिथीन् प्रति पश्यति हिङ्कृणोत्यभि वदति प्र स्तौत्युदकं याचत्युद्गायति। उप हरति प्रति हरत्युच्छिष्टं निधनम्।।— अ.९.१०.९/९.५.९

६. वात इव वृक्षान् नि मृणीहि पादय मा गामश्वं पुरुषमुच्छिष एषाम्।— अ.१०.१.१७

७. कृत्याकृतो वलगिनोऽभिनिष्कारिणः प्रजाम्। मृणीहि कृत्ये मोच्छिषोऽमून् कृत्याकृतो जहि।— अ.१०.१.३१

८. यस्य देवा अकल्पन्तोच्छिष्टे षडशीतयः। तं त्वौदनस्य पृच्छामि यो अस्य महिमा महान्।- दे.बार्हस्पत्य ओदनम्— अ.११.३.२१

९. उच्छिष्टे नाम रूपं चोच्छिष्टे लोक आहितः। उच्छिष्ट इन्द्रश्चाग्निश्च विश्वमन्तः समाहितम्।। दे.उच्छिष्ट ब्रह्म— अ.११.९.१/११.७.१

१०. मुह्यन्त्वेषां बाहवश्चित्ताकूतं च यद्धृदि। मैषामुच्छेषि किं चन रदिते अर्बुदे तव।।— अ.११.११.१३/११.९.१३

११. स यत् सायमस्तमिते जुहोति-अस्य रसस्य जीवनस्य देवेभ्यो जुहवानि, यदेषामिदं सदुपजीवाम इति। स यत्ततो रात्र्याऽश्नाति, हुतोच्छिष्टमेव तन्निरवत्तबल्यश्नाति। हुतोच्छिष्टस्य ह्येवाग्निहोत्रं जुह्वदशिता। -शतपथ ब्राह्मण २.३.१.११

१२. अथ यत् प्रातरनुदिते जुहोति-अस्य रसस्य जीवनस्य देवेभ्यो जुहवानि-यदेषामिदं सदुपजीवाम इति। स यत्ततोऽह्नाऽश्नाति, हुतोच्छिष्टमेव तन्निरवत्तबल्यश्नाति। हुतोच्छिष्टस्य ह्येवाग्निहोत्रं जुह्वदशिता।— श.ब्रा.२.३.१.१२

१३. ते होचुः-को न इदं होष्यति-इति। ब्राह्मण एवेति। ब्राह्मण! इदं नो जुहुधि इति, किं मे ततो भविष्यति इति, अग्निहोत्रोच्छिष्टमेव इति। स यत् स्रुचि परिशिनष्टि तद्, अग्निहोत्रोच्छिष्टम्।— श.ब्रा.२.३.१.३९

१४. अथेडामेवावद्यति, न प्राशित्रम्। उपहूय प्राश्नन्ति। यावन्तो गृह्या हविरुच्छिष्टाशाः स्युः-तावन्तः प्राश्नीयुः-अथो अप्यृत्विजः प्राश्नीयुः। अथो अप्यन्ये ब्राह्मणाः प्राश्नीयुः-यदि बहुरोदनः स्यात्।— श.ब्रा.२.५.३.१६

१५. साकमेधपर्वणि पितृयज्ञः : तद्धैके हविरुच्छिष्टमनुसमस्यन्ति। तदु तथा न कुर्यात्। हुतोच्छिष्टं वा एतत्-नेद्धुतोच्छिष्टमग्नौ जुहवामेति। — श.ब्रा.२.६.१.४८

१६. शुक्रामन्थिनौ ग्रहौ : अथ होत्राणां चमसानभ्युन्नयन्ति। हुतोच्छिष्टा वाऽएते संस्रवा भवन्ति-नालमाहुत्यै। तानेवैतत्पुनराप्याययन्ति-तथाऽलमाहुत्यै भवन्ति। — श.ब्रा.४.२.१.३१

१७. दधिग्रहः : यद्वेव दधि गृह्णाति। हुतोच्छिष्टा वाऽएते संस्रवा भवन्ति-नालमाहुत्यै। तानेवैतत्पुनराप्याययति। तथाऽलमाहुत्यै भवन्ति।— श.ब्रा.४.३.५.१४

१८. हारियोजन ग्रहः : ता नाग्नौ प्रकिरेयुः-नेदुच्छिष्टमग्नौ जुहवामेति। उत्तरवेदावेव निवपन्ति। तथा न बहिर्धा यज्ञाद्भवन्ति।— श.ब्रा.४.४.३.१२

१९. यत् स्थाल्यां परिशिष्टं स्यात्। तदस्मा उन्नीयाहरेयुः। तद्धैक उपवल्हन्ते। हुतोच्छिष्टं वा एतत्। यातयाम वा एतत्। नैतस्य होतव्यमिति।---- श.ब्रा.१२.४.२.८

२०. एकाकी हुतोच्छिष्टं भक्षयति। एकधैव श्रियमात्मन् धत्ते। श्रीर्हि पयः। स भक्षयति। इदं हविः प्रजननं मे अस्तु इति। प्रजननं हि। यदि पयो यदि सोमः। दशवीरम्-इति। प्राणा वै दश वीराः— श.ब्रा.१२.८.१.२२

२१. अश्वमेधः :- ब्रह्मौदनं पचति। रेत एव तद्धत्ते। यदाज्यमुच्छिष्यते। तेन रशनामभ्यज्यादत्ते। तेजो वा आज्यम्। प्राजापत्योऽश्वः।— श.ब्रा.१३.१.१.१

२२. अथ यजमानाय घर्मोच्छिष्टं प्रयच्छति। स उपहवमिष्ट्वा भक्षयति-मधु हुतमिन्द्रतमे अग्नौ-इति।---अश्याम ते देव घर्म नमस्ते अस्तु मा मा हिंसीः।— श.ब्रा.१४.२.२.४२

२३. अप्रतिरथसूक्ताभिधानम् : अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसँशिता। गच्छामित्रान्प्र विश मैषां कं चनोच्छिषः।-तैत्तिरीय संहिता ४.६.४.४

२४. हिरण्येष्टकादेरभिधानम् : किं तत उच्छिँषतीति यद्धिरण्येष्टका उपदधात्यमृतं वै हिरण्यममृतेनैव ग्राम्येभ्यः पशुभ्यो भेषजं करोति— तै. सं. ५.५.५.२

२५. वज्रिणीष्टिकोपधानविधिः : यो वै वसोर्धारायै प्रतिष्ठां वेद प्रत्येव तिष्ठति यदाज्यमुच्छिष्येत तस्मिन्ब्रह्मौदनं पचेत्तं ब्राह्मणाश्चत्वार प्राश्नीयुरेष वा अग्निर्वैश्वानरो यद्ब्राह्मण-— तै.सं.५.७.३.४

२६. व्याघारणविधिः : यत्प्रोक्षणीनामुच्छिष्येत तद्दक्षिणत उत्तरवेद्यै नि नयेद्यदेव तत्र क्रूरं तत्तेन शमयति— तै.सं.६.२.७.५

२७. आदित्यग्रहकथनम् : अदितिः पुत्रकामा साध्येभ्यो देवेभ्यो ब्रह्मौदनमपचत्तस्या उच्छेषणमददुस्तत्प्राश्नात्सा रेतोऽधत्त तस्यै चत्वार आदित्या अजायन्त सा द्वितीयमपचत्सा-ऽमन्यतोच्छेषणान्म इमेऽज्ञत यदग्रे प्राशिष्यामीतो मे वसीयाँसो जनिष्यन्त इति साऽग्रे प्राश्नात्सा रेतोऽधत्त तस्यै व्यृद्धमाण्डमजायत-— तै.सं.६.५.६.१

२८. अश्वमेधगतमन्त्रकथनम् : शिष्टाय स्वाहाऽतिशिष्टाय स्वाहा परिशिष्टाय स्वाहा सँशिष्टाय स्वाहोच्छिष्टाय स्वाहा- — तै.सं.७.३.२०.१

२९. अदितिर्वै प्रजाकामौदनमपचत्। तत उच्छिष्टमाश्नात्। सा गर्भमधत्त। तत आदित्या अजायन्त। य एष ओदनः पच्यत,आरम्भणमेवैतत् क्रियत आक्रमणमेव।------ -उच्छेषणभाजा वा आदित्याः। यदुच्छिष्टेन समिधो ऽनक्ति,तेभ्य एव प्रावोचत्। -गोपथ ब्राह्मण १.२.१५

३०. पवमानहविषां विस्तारः, हविरन्तराणां दक्षिणानां चोल्लेखाः : यदेकमेकमेतानि हवींषि निर्वपेत्। यथा त्रीण्यावपनानि पूरयेत्। तादृक्तत्। न प्रजननमुच्छिँषेत्। एकं निरुप्य। उत्तरे समस्येत्। तृतीयमेवास्मै लोकमुच्छिँषति। प्रजननाय।-तैत्तिरीय ब्राह्मण १.१.६.७

३१. ब्रह्मौदनाभिधानम् : अदितिः पुत्रकामा। साध्येभ्यो देवेभ्यो ब्रह्मौदनमपचत्। तस्या उच्छेषणमददुः। तत्प्राऽऽश्नात्। सा रेतोऽधत्त। तस्यै धाता चार्यमा चाजायैताम्। सा द्वितीयमपचत्। तस्या उच्छेषणमददुः। तत्प्राऽऽश्नात्। सा रेतोऽधत्त। तस्यै मित्रश्च वरुणश्चाजायेताम्। सा तृतीयमपचत्। तस्या उच्छेषणमददुः। तत्प्राऽऽश्नात्। सा रेतोऽधत्त। तस्या अँशश्च भगश्चाजायेताम्। सा चतुर्थमपचत्। तस्या उच्छेषणमददुः। तत्प्राऽऽश्नात्। सा रेतोऽधत्त। तस्या इन्द्रश्च विवस्वाँश्चाजायेताम्। ब्रह्मौदनं पचति। रेत एव तद्दधाति। प्राश्नन्ति ब्राह्मणा ओदनम्। यदाज्यमुच्छिष्यते। तेन समिधोऽभ्यज्या-ऽऽदधाति। उच्छेषणाद्वा अदिती रेतोऽधत्त। उच्छेषणादेव तद्रेतो धत्ते। ----- तै.ब्रा.१.१.९.१

३२. महाव्रतनिरूपणम् : एकैकामुच्छिँषन्ति (स्तोत्रीयाम्)। आत्मन्ह्यङ्गानि बद्धानि।— तै.ब्रा.१.२.६.४

३३. चातुर्मास्य विशेष विधिः :- अथ वा अस्य वायुश्चानुवत्सरश्चाप्रीतावुच्छिष्येते। यच्छुनासीरीयेण यजते।— तै.ब्रा.१.४.१०.२

३४. राजसूयानुब्राह्मणम् -अभिषेक विधिः :- उच्छेषणेन जुहोति। उच्छेषणभागो वै रुद्रः। भागधेयेनैव रुद्रं निरवदयते।— तै.ब्रा.१.७.८.५

३५. सौत्रामणि विधिः :- ब्राह्मणं परिक्रीणीयादुच्छेषणस्य पातारम्। ब्राह्मणो ह्याहुत्या उच्छेषणस्य पाता। यदि ब्राह्मणं न विन्देत्। वल्मीकवपायामवनयेत्। — तै.ब्रा.१.८.६.२

३६. द्वादशाहर्भागगत दशरात्रस्य दशमेऽहनि होत्रमन्त्र विधिः :- यद्दिवा वाचं विसृजेत्। अहर्भ्रातृव्यायोच्छिँषेत्। यन्नक्तं विसृजेत्। रात्रिं भ्रातृव्यायोच्छिँषेत्। अधिवृक्षसूर्ये वाचं विसृजति। एतावन्तमेवास्मै लोकमुच्छिँषति। यावदादित्योऽस्तमेति। — तै.ब्रा.२.२.६.४

३७. उपहोममन्त्राः : अग्ने यो नोऽभिदासति। समानो यश्च निष्ट्यः। इध्मस्येव प्रक्षायतः। मा तस्योच्छेषि किंचन।— तै.ब्रा. २.४.१.२

३८. दर्शपूर्णमासः :- यावतः स्तम्बान्परिदिशेत्। यत्तेषामुच्छिँष्यात्। अति तद्यज्ञस्य रेचयेत्।— तै.ब्रा.३.२.१.४

३९. दर्शपूर्णमासेष्टि मन्त्राः :- अग्ने यो नोऽभिदासति। समानो यश्च निष्ट्यः। इध्मस्येव प्रक्षायतः। मा तस्योच्छेषि किंचन।— तै.ब्रा.३.७.६.१७

४०. दर्शपूर्णमासे आदित्योपस्थानमन्त्राः - उपसमिन्धनादूर्ध्वमाहवनीयस्योपस्थाने मन्त्रम् : यो नः सपत्नो यो रणः। मर्तोऽभिदासति देवा। इध्मस्येव प्रक्षायतः। मा तस्योच्छेषि किंचन। - तै.ब्रा.३.७.६.२३

४१. अथाभिचरत उपवेषोद्वासने विकल्पितं मन्त्रम् : अवसृष्टः परापत। शरो ब्रह्मसँशितः। गच्छामित्रान्प्रविश। मैषां कंचनोच्छिषः।— तै.ब्रा.३.७.६.३

४२. ब्रह्मोदनाभिधानम् : यदाज्यमुच्छिष्यते। तस्मिन्रशनां न्युनत्ति। प्रजापतिर्वा ओदनः। रेत आज्यम्। यदाज्ये रशनां न्युनत्ति। प्रजापतिमेव रेतसा समर्धयति। दर्भमयी रशना भवति— तै.ब्रा.३.८.२.३

४३. यो नः सपत्नो यो रणो मर्तो ऽभिदासति देवाः। इध्मस्येव प्रक्षायतो मा तस्योच्छेषि किंचन।-तैत्तिरीय आरण्यक २.५.३

४४. संवत्सरं न माँसमश्नीयात्। न रामामुपेयात्। न मृन्मयेन पिबेत्। नास्य राम उच्छिष्टं पिबेत्। तेज एव तत्सँश्यति।— तै.आ.५.८.१३

४५. यदुच्छिष्टमभोज्यं यद्वा दुश्चरितं मम। सर्वं पुनन्तु मामापोऽसतां च प्रतिग्रहँ स्वाहा।— तै.आ.१०.२३.१

४६. इन्द्रो यतीन् सालावृकेयेभ्यः प्रायच्छत्तेषां त्रय उदशिष्यन्त पृथुरश्मिर्बृहद्रिरीरायोवाजस्तेऽब्रुवन् को न इमान् पुत्रान् भरिष्यतीत्यहमितीन्द्रोऽब्रवीत्----- ताण्ड्य ब्राह्मण ८.१.४,१२.४.१७

४७. अक्षरं त्र्यक्षरमुच्छिष्यते तदेवोत्तरं त्रिरात्रमनुविदधाति।— तां.ब्रा.१०.५.१०

४८. द्वादशाहः :- आप्यन्ते वै स्तोमा आप्यन्ते छन्दांसि तृतीयेऽहन्येतदेव तत उच्छिष्यते वागित्येव तदेतदक्षरं त्र्यक्षरं वागित्येकमक्षरमक्षरमिति त्र्यक्षरम्। स एवैष उत्तरस्त्र्यहो वागेकं गौरेकं द्यौरेकम्। ततो वै वागेव चतुर्थमहर्वहति।-ऐतरेय ब्राह्मण ५.३

४९. बन्धनान्मुक्तस्य शुनःशेपस्योत्तरकालीनं वृत्तान्तम् : यच्चिद्धि त्वं गृहे गृह इत्यथैनं द्रोणकलशमभ्यवनिनायोच्छिष्टं चम्वोभरित्येतयर्चाऽथ हास्मिन्नन्वारब्धे पूर्वाभिश्चतसृभिः स स्वाहाकाराभिर्जुहवांचकार -ऐ.ब्रा.७.१७

५०. तद् उ हैक उपेव लभन्ते। अहुतं तस्य यस्याग्निहोत्रोच्छिष्टेन जुह्वति यातयामं ह्य् एतद् इति वदन्तः। तद् उ तथा न विद्यात्। यदा वा एतद् अयातयामं भवत्य् अथैतस्यापि हविरातञ्चनं कुर्वन्ति।- जैमिनीय ब्राह्मण १.५४

५१. द्वादशाहः :- यदाप्यते यज्ञ, आप्यन्ते छन्दांस्य्, आप्यन्ते देवता, आप्यन्त इमे लोका, अथ केन चतुर्थम् अहस् तायत इत्य् आहुः। वाचैवेति ब्रूयात्। वाग् एव तत उच्छिष्यते ऽक्षरम् एव त्र्यक्षरं परिशिष्यते। तद् एवोत्तरं त्र्यहम् अनुविदधाति।— जै.ब्रा.३.५७

५२. यद् अस्तम् इते विसृजेरन् अहर् भ्रातृव्यलोकम् उच्छिंष्युः। यद् अनस्तम् इते विसृजेरन् रात्रिं भ्रातृव्यलोकम् उच्छिंष्युः। अर्धास्तम् इत आहवनीय परेत्य विसृजन्ते। उभाभ्याम् एव तद् अहोरात्राभ्यां द्विषन्तं भ्रातृव्यम् अन्तर्यन्ति।— जै.ब्रा.३.३०७

५३. प्रवर्ग्यः :- गार्हपत्याहवनीया उत्तरेण खरौ निवपति दक्षिणतोऽनुभित्त्युच्छिष्टखरम्।-कात्यायन श्रौत सूत्र २६.२.१६

५४. प्रवर्ग्यः :- उच्छिष्ट खरे प्रक्षाल्योपयमनीं निदधाति अत्र वोपश्रितप्रहरणं संसाद्यमानायानुवाचयति।— का.श्रौ.सू.२६.६.२१

५५. उपसदन्ते प्रवर्ग्योत्सादनम्। अन्तःपात्ये परिघर्म्यं निधाय निर्हत्योच्छिष्टखरम्। — का.श्रौ.सू.२६.७.१

५६. खरा उत्तरतो दक्षिणतो मार्जालीयदेशं बहिर्वेद्युच्छिष्टखरम्। आसेचनवन्ति पयसः पूरयति घर्मैतत्त इति।— का.श्रौ.सू.२६.७.२२

५७. न सोमेनोच्छिष्टा भवन्तीत्युदाहरन्ति।- आश्वलायन श्रौत सूत्र ५.६.३

५८. मधुपर्कप्रकरणम्: ब्राह्मणायोच्छिष्टदानम्- शांखायन श्रौत सूत्र ४.२१.१६

५९. राजसूय प्रकरणम् : अथ हैनमञ्जःसवं शुनशेपो ददर्श। यच्चिद्धि त्वं गृहेगृह इति तमेताभिश्चतसृभिरभिषुत्य। उच्छिष्टं चम्वोभरिति द्रोणकलशे समवनिनाय। अथास्मिन्नन्वारब्ध एतस्यैव सूक्तस्य पूर्वाभिश्चतसृभिर्जुहवाञ्चकार।- शां.श्रौ.सू. १५.२३.१

६०. यज्ञस्य संततिरसि यज्ञस्य त्वा संततिमनुसंतनोमीत्यग्निहोत्रोच्छेषणमन्ववधायायं पयः सोमं कृत्वा स्वां योनिमपिगच्छतु। -आपस्तम्ब श्रौत सूत्र १.१३.१५

६१. अग्निष्टोम प्रातः सवनम् : आहवनीयाच्चीन्प्रतीचः प्रक्रमानुच्छिष्यात्र रमेथामिति नभ्यस्थे स्थापयित्वा- — आप.श्रौ.सू.११.७.३

६२. उत्तरपूर्वं द्वारं प्रत्युच्छिष्टखरं करोति बाह्यतो निषेचनवन्तम्।— आप.श्रौ.सू.१५.६.२२

६३. हुतं हविर्मधु हविरिति भक्षयित्वोपयमनं प्रतिप्रस्थात्रे प्रयच्छति। तदुच्छिष्टखरे प्रक्षाल्यान्तर्वेद्युपयमनं निधाय तस्मिन्नुक्मावधाय---- आप.श्रौ.सू.१५.११.१६

६४. प्रवर्ग्यमुद्वासयिष्यन्नजामग्नीधे ददाति। पष्ठौहीं ब्रह्मणे। धेनुं होत्रे। रुक्मावध्वर्यवे।अपरं खरं पूर्वस्मिन्खरे न्युप्योच्छिष्टखरं संकृष्योत्तरेणाहवनीयं सम्राडासन्दीं प्रतिष्ठाप्य-- आप.श्रौ.सू.१५.१३.२

६५. दक्षिणत उच्छिष्टखरं परिहरति।— आप.श्रौ.सू.१५.१३.८

६६. अप द्वेषो अप ह्वर इति मार्जालीय देश उच्छिष्टखरम्।— आप.श्रौ.सू.१५.१४.६

६७. सुमित्रा न आप ओषधय इति मार्जालीयदेश उच्छिष्टखरे मार्जयित्वा----- आप.श्रौ.सू.१५.१६.१०

६८. ब्राह्मणं परिक्रीणीयादुच्छेषणस्य पातारम्।— आप.श्रौ.सू.१९.३.३

६९. प्रवर्ग्यः : अथोत्तरे शालाखण्डे स्फ्येनोद्धृत्यावोक्ष्य सिकता निवपति तं चतुरश्रं निष्यन्दनवन्तमुच्छिष्टखरं करोति-बौधायन श्रौत सूत्र ९.५

७०. अथैतमुच्छिष्टखरं परिकर्मी वाग्नीध्रो वा सते समुप्य दक्षिणया द्वारोपनिर्हत्य मार्जालीयदेशे निवपति-बौ.श्रौ.सू.९.१३

७१. सौत्रामणिः : ----ब्राह्मणमाहुत्या उच्छेषणस्य पातारं यदि ब्राह्मणं न विन्दति वल्मीकवपाम्-बौ.श्रौ.सू.१०.३१, १७३५

७२. पिण्डानामनुप्रहरण इति। सूत्रँ शालीकेरत्रो ह स्माह बौधायनो ऽत्रैवेते पिण्डा परिशयीरन्नुच्छिष्टा ह्येते भवन्ति पितृभिर्भक्षंकृता इति। अतिशिष्टस्य प्राशन इति। स्वयं यजमानः प्राश्नीयादिति बौधायनः---- बौ.श्रौ.सू.२०.२१

७३.--- द्विब्रह्मौदनमु हैके ब्रुवत उच्छेषणीयो हेतरः सान्त्वकरण उत्तरो -बौ.श्रौ.सू.२४.१५

७४. हरिद्रौदनभुक्तमुच्छिष्टानुच्छिष्टेना प्रपदात्प्रलिप्य मन्त्रोक्तानधस्तल्पे हरितसूत्रेण सव्यजङ्घासु बद्ध्वावस्नापयति।-कौशिक सूत्र२६.१८

७५. द्वादश्याः प्रातः क्षीरौदनं भोजयित्वोच्छिष्टानुच्छिष्टं बहुमत्स्ये प्रकिरति।-कौ.सू.४७.३७

७६. पितृज्येष्ठयोरन्येषामुच्छिष्टभोजने मधुमत्स्य-मांससूतकप्रेतकान्नाद्यभोज्यभोजने च पुनरुपनयनं करोति। -वैखानसगृह्यसूत्रम् ६.९

**उज्जयिनी** (अनुद्धृत अंश)

१. अग्नेरहमुज्जितिमनूज्जेषं सोमस्याह-मुज्जितिमनूज्जेषं--अग्नीषोमयोरहमुज्जितिमनूज्जेषं · इन्द्राग्नियोरहमुज्जितिमनूज्जेषं इन्द्रस्याहम् उज्जितिमनूज्जेषं महेन्द्रस्य--तैत्तिरीय सं १.६.४.१

२. दर्शपूर्णमासयोः वै देवा उज्जितिमनूदजयन्-- तै.सं.१.७.४.२

३. वाजपेय में आजि धावन में बृहस्पति की उज्जय। बृहस्पति ने वाजपेय का यजन किया। फिर बृहस्पति ने इन्द्र को यजन कराया।-तैत्तिरीय ब्रा. १.३.२.२

४. देवस्याहं सवितुः प्रसवे बृहस्पतिना वाजजिता वाजं जेषं इत्याह। सवितृप्रसूत एव ब्रह्मणा वाजमुज्जयति।---- तै.ब्रा.१.३.६.१

५. इन्द्राय वाचं वदतेन्द्रं वाजं जापयतेन्द्रो वाजमजयिदित्याह। एष वा एतर्हीन्द्रः। यो यजते। यजमान एव वाजमुज्जयति।— तै.ब्रा.१.३.६.३

६. यथा लोकं वा एत उज्जयन्ति। य आजिं धावन्ति।— तै.ब्रा.१.३.६.६

७. देवा वा ओषधीष्वाजिमयुः। ता बृहस्पतिरुदजयत्।---- तै.ब्रा.१.३.६.७

८. यमेव ते वाजं लोकमिन्द्रियं दुन्दुभय उज्जयन्ति।— तै.ब्रा.१.३.६.९

९. देवा वा ओषधीष्वाजिमयुः। ता इन्द्राग्नी उदजयताम्। तावेतमैन्द्राग्नं द्वादशकपालं निरवृणाताम्।---द्वादश मासाः संवत्सरः।— तै.ब्रा.१.६.१.१०

१०. मरुतां प्रसवेऽजेषमित्याह। मरुद्भिरेव प्रसूत उज्जयति।— तै.ब्रा.१.७.९.३

११. इन्द्र व वायु में सोम राजा के प्रथम पान के लिए आजि।------ ऐ.ब्रा.२.२५

१२.------अग्नेरेवाधि गृहपतेरादित्यं काष्ठामकुर्वत।-- -ऐ.ब्रा.४.७

१३. यदि दक्षिणाग्नि लुप्त हो जाए तो क्या भय होगा? क्षिप्रमस्य पत्नी प्रैति यो ऽविद्वान् जुहोति, विद्यया त्वेवाहमभि जुहोमीति।---यदि आहवनीय लुप्त होजाए तो क्या भय हो? क्षिप्रमस्य पुत्रः प्रैति--- गो.ब्रा.१.३.१३

१४. यावन्ति स्वेदायनानि तावन्ति क्षिप्रायणानि। यावन्ति क्षिप्रायणानि तावन्तो रोमकूपाः।---- गो.ब्रा.१.५.५

१५. देवा वा ओषधीषु पक्वास्वाजिमयुः। स इन्द्रो इवेद्-अग्निर्वावेमाः प्रथम उज्जेष्यतीति।---गोपथ ब्रा. २.१.१७

१६. नाकस्योज्जित्यै, वाजिनां संतत्यै।- गो.ब्रा.२.५.८

१७. आत्मानं कुत्स उदजयन् महिमानं लुशः।--- — जै.ब्रा.१.२२८

१८. रथन्तरेण वै दैव्यम् आजिम् उज्जयति, रथेन मानुषम्।— जै.ब्रा.२.१९३

१९. विश्वामित्र का रोहितकूलीय अनड्वाहौ द्वारा उज्जिति करना— जै.ब्रा.३.१८३

२०. तेजो वै यज्ञायज्ञीयम्, आत्मा मध्यंदिनः।--- आजि की उज्जय।— जै.ब्रा.३.२९०

२१. पितृमेधः :- तत् वै न क्षिप्रं कुर्यात्। नेत्रवमघं करवाणीति। चिर एव कुर्यात्। — श.ब्रा.१३.८.१.२

२२. अश्व आमन्त्रण : प्रतूर्तं वाजिन्ना द्रव इति। यद्वै क्षिप्रं तत्तूर्तम्।— श.ब्रा.६.३.२.२

२३. यावन्तो मुहूर्तास्तावन्ति पंचदश कृत्वः क्षिप्राणि। यावन्ति क्षिप्राणि तावन्ति पंचदशकृत्व एतर्हीणि।— श.ब्रा.१२.३.२.५

२४. ऐन्द्रवायव ग्रह : देवों ने वायु से कहा-त्वमिदं विद्धि-यदि हतो वा वृत्रो जीवति वा; त्वं वै न आशिष्ठोऽसि। यदि जीविष्यति-त्वमेव क्षिप्रं पुनरागमिष्यसि।— श.ब्रा.४.१.३.३

२५. सूक्तवाक्-शंयुवाक् कर्मारम्भः :- स वै स्रुचौ व्यूहति-अग्नीषोमयोः उज्जितिमनूज्जेषम्। वाजस्य मा प्रसवेन प्रोहामि इति जुहूं दक्षिणेन पाणिना।---- अग्नीषोमयोः उज्जितिमनूज्जयत्वयं यजमानो, वाजस्यैनं प्रसवेन प्रोहामि----। अथामावास्यायाम्- इन्द्राग्न्योरुज्जितिमनूज्जेषम्---- श.ब्रा.१.८.३.१

२६. अथ येन सत्रेण देवाः क्षिप्रऽएव पाप्मानमपाघ्नत। इमं जितिमजयन्-यैषामियं जितः।--- एकगृहपतिका वै देवा एकपुरोडाशा एकधिष्ण्याः क्षिप्र उ एव पाप्मानमपाघ्नत; क्षिप्रे प्राजायन्त।— श.ब्रा.४.६.८.१८

२७. वाजपेयः :- श.ब्रा.५.१.१.१

२८. सविता वै देवानां प्रसविता। इदं मे प्रसुव, त्वत्प्रसूत इदमुज्जयानीति।----तत्सवितृप्रसूत उदजयत्---- श.ब्रा.५.१.१.४,५.१.१.१५

२९. अथ षोडशिनं गृह्णाति। तद् यदेवैतेनेन्द्र उदजयत्, तदेवैष एतेनोज्जयति— श.ब्रा.५.१.२.३

३०. पांच वाजपेय ग्रहों का ग्रहण : पृथिवी, अन्तरिक्ष व देवलोक की जय का वर्णन— श.ब्रा.५.१.२.४

३१. पंच ऋतवः संवत्सरस्य। तत् प्रजापतिं उज्जयति।— श.ब्रा.५.१.२.९

३२. सप्तदश सोमग्रहान् गृह्णाति।-- -सत्यं श्रियं ज्योतिरुज्जयति।— श.ब्रा.५.१.२.११

३३. सप्तदश सुराग्रहान् गृह्णाति।---अनृतं पाप्मानं तम उज्जयति— श.ब्रा.५.१.२.१२

३४. त्रयस्त्रिंशद् वै देवाः। प्रजापतिश्चतुस्त्रिंश;। तत् प्रजापतिं उज्जयति।— श.ब्रा.५.१.२.१३

३५. अग्निर्वा अग्निष्टोमः। अग्निष्टोम-मेवैतेनोज्जयति। ऐन्द्राग्नमुक्थेभ्य आलभते। ऐन्द्राग्नानि वा ऽउक्थानि उक्थान्येवैतेनोज्जयति। इन्द्रो वै षोडशी। षोडशिनमेवैतेनोज्जयति।— श.ब्रा.५.१.३.१

३६. सारस्वतेन (सप्तदश स्तोत्रम्) रात्रिं उज्जयति।— श.ब्रा.५.१.३.२

३७. अन्नं वा एष उज्जयति-यो वाजपेयेन यजते। श.ब्रा.५.१.३.३

३८. अथ यदेतैः प्रचरति-तेन दैवीं विशमुज्जयति। अथार्द्धानि मानुष्यै विश उपहरति तेनो मानुषीं विशमुज्जयति।— श.ब्रा.५.१.३.५

३९. सोमो वै प्रजापतिः। पशुर्वै प्रत्यक्षं सोमः। तत् प्रत्यक्षं प्रजापतिं उज्जयति।— श.ब्रा.५.१.३.७

४०. तद् वाचमुज्जयति।— श.ब्रा.५.१.३.११

४१. अन्तो. वै प्रजापतिः। तदन्तत एवैतत् प्रजापतिं उज्जयति।— श.ब्रा.५.१.३.१३

४२. माध्यंदिने सवने आजिं धावन्ति।-- -तन्मध्यत एवैतत् प्रजापतिं उज्जयति।— श.ब्रा.५.१.४.१

४३. अन्नं वै वाजः तेनायमन्नमुज्जयतु।— श.ब्रा.५.१.४.३,६

४४. जवो यस्ते वाजिन्प्यन्यत्रापनिहितः तेन न इमं यज्ञं प्रजापतिं उज्जय।— श.ब्रा.५.१.४.१०

४५. अन्नं वा एष उज्जयति यो वाजपेयेन यजते— श.ब्रा.५.१.४.१२, ५.१.५.२५

४६. यदाजिं धावन्ति-इममेवैतेन लोकमुज्जयति। यद् ब्रह्मा रथचक्रे साम गायति-नाभिदघ्न उद्धिते-अन्तरिक्षलोकमेवैतेनोदजयति। अथ यद् यूपं रोहति-देवलोकमेवैतेनोज्जयति।— श.ब्रा.५.१.५.१

४७. एषा वै परमा वाग् या सप्तदशानां दुन्दुभीनां। परमामेवैतद्वाचं परमं प्रजापतिं उज्जयति।— श.ब्रा.५.१.५.६

४८. सवितृ प्रसूत उदजयत्— श.ब्रा.५.१.५.१६

४९. तिस्रो वाऽइमाः पृथिव्यः-इयमहैका। द्वे ऽअस्याः परे। ता एवैतदुज्जयति।— श.ब्रा.५.१.५.२१

५०. तद् यदश्वानवघ्रापयति-इममुज्जयानीति वाऽअग्रेऽवघ्रापयति।— श.ब्रा.५.१.५.२७

५१. सप्तदशभिर्वासोभिर्यूपो वेष्टितो भवति। सप्तदशो वै प्रजापतिः। प्रजापतिं उज्जयति।— श.ब्रा.५.२.१.५

५२. गौधूमं चषालं भवति।----- मनुष्यलोकमेवैतेनोज्जयति।— श.ब्रा.५.२.१.६

५३. गर्तन्वान् यूपोऽतीक्ष्णाग्रो भवति।---- - तत्प्रजापतिं उज्जयति।— श.ब्रा.५.२.१.७

५४. शीर्ष्णा यूपमत्युज्जिहीते-अमृता अभूम इति। देवलोकमेवैतेनोऽजयति।— श.ब्रा.५.२.१.१४

५५. विशो वै मरुतः। अन्नं विशः। तत्प्रजापतिं उज्जयति।— श.ब्रा.५.२.१.१७

५६. अन्नं वा एष उज्जयति यो वाजपेयेन यजते।— श.ब्रा.५.२.२.१

५७. वाजप्रसवीयानि जुहोति---- ताभिः प्रसूत उज्जयति।— श.ब्रा.५.२.२.४

५८. अग्निरेकाक्षरेण प्राणमुदजयत्-तमुज्जेषम् प्रजापतिः सप्तदशाक्षरेण सप्तदशं स्तोममुदजयत्-तमुज्जेषम्।-- — श.ब्रा.५.२.२.१७

## उत्कर

१. संलुप्योत्करेऽध्यस्यत्येषा वा अस्याँ शुक्छुच्येवास्य शुचं दधाति-काठक सं.२१.७

२. सर्प उपवेषो वल्मीक उत्करो यदुपवेषमुत्कर उपहन्ति तस्मात् सर्पाणां वल्मीको गृहाः।-काठक सं. ३१.१२

३. तद् यदादित्यं पुरस्तात् पर्यन्तं न पश्यन्ति, तस्मादज्योतिष्क उत्करो भवति।-गोपथ ब्रा.१.२.१०

४. वेदेर्वा उत्करमुत्किरन्ति यदेवोत्करे तिष्ठन्नाह्वयतीति ब्रूयात्तेनेति। तदाहुरथ कस्मादुत्करे तिष्ठन्सुब्रह्मण्यामाह्वायतीति----ऐ.ब्रा.६.३

५. त्र्यम्बकहविर्यागः :- अथ य एष एको अतिरिक्तो भवति-तमाखूत्कर उपकिरति। एष ते रुद्र भाग आखुस्ते पशुः।-शतपथ ब्रा.२.६.२.१०

६. नात्र मात्रास्ति, यत्रैव स्वयं मनसा मन्येताग्रेणोत्करं तद्यात्वालं परिलिखेत्।— श.ब्रा.३.५.१.२६

७. औदुम्बरी : अथ खनति। प्राञ्चमुत्करमुत्किरति। यजमानेन सम्मायौदुम्बरीं परिवासयति।---— श.ब्रा.३.६.१.६

८. अथ खनति। प्रांचमुत्करमुत्किरति उपरेण सम्मायावटं खनति।---— श.ब्रा.३.७.१.३

९. अनुबन्ध्या प्रायश्चित्तम् : आखूत्कर एवैनमुपकिरेयुः। इयं वास्य सर्वस्य प्रतिष्ठा।— श.ब्रा.४.५.२.१५

१०. लोकम्पृणेष्टकोपधानम् : ता भित्वोत्कर उत्किरेत्। उत्करो वा अतिरिक्तस्य प्रतिष्ठा।— श.ब्रा.८.७.२.१६

११. संवत्सरोग्निः। यावानग्निर्यावत्यस्य मात्रा तावतैवैनमेतद्विकर्षति। तं वंशमुत्कर न्यस्य।---- श.ब्रा.९.१.२.३१

१२. एष वै यज्ञस्य संधिर्यत्रैष उत्करः। तस्मादुत्करे तिष्ठन्त्सुब्रह्मण्यः सुब्रह्मण्यामाह्वयति।---- -षड्विंश ब्रा.१.१.६

१३. अवभृथगमने गन्तृणां नियमम् :- तेनान्तरेण प्रतिपद्यन्ते चात्वालं चोत्करं च। एतद्वै देवानां तीर्थम्।- षड्विंश ब्रा.३.४.१

१४. तेषां कुरुक्षेत्रं वेदिरासीत्।-- -मरव उत्करः।- तैत्तिरीय आ. ५.१.१

१५. स्फ्येन वा एष वज्रेणास्यै पाप्मानं भ्रातृव्यमपहत्य उत्करेऽधि प्रवृश्चति।— तै.ब्रा.३.२.१०.१

१६. अद्भिर्मार्जयित्वा उत्करे न्यस्येत्। यद्वै यज्ञियस्य कर्मणोऽन्यत्राऽऽहुतीभ्यः संतिष्ठते। उत्करो वाव तस्य प्रतिष्ठा।— तै.ब्रा.३.३.२.३

१७. परिवेषो वा एष वनस्पतीनाम्। यदुपवेषः। य एवं वेद। विन्दते परिवेष्टारम्। तमुत्करे।— तै.ब्रा.३.३.११.१

१८.--- -कथं सुब्रह्मण्यो बहिर्वेदि करोतीति। स ब्रूयाद् एष वेद्या आत्मा यद् उत्कर, एतत् प्रत्यक्षं ब्रह्म यत् सुब्रह्मण्या। यद् उत्करम् आस्थाय सुब्रह्मण्याम् आह्वयति तेनास्यान्तर्वेदि कृतं भवतीति।— जै.ब्रा.२.७८

१९. अथ यां क्रीते राजनि सुब्रह्मण्याम् आह्वयति याम् एतां दक्षिणासु नीयमानासूत्करे तिष्ठन् सुब्रह्मण्याम् आह्वयति सैवेयम्।— जै.ब्रा.२.८०

## उत्तम

१. त्वं तमग्ने अमृतत्व उत्तमे मर्तं दधासि श्रवसे दिवेदिवे।-ऋग्वेद १.३१.७

२. उद् वयं तमसस्परि ज्योतिष्पश्यन्त उत्तरम्। देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्।।— ऋ.१.५०.१०

३. आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रवांस्युत्तमानि धिष्व।।— ऋ.१.९१.१८

४. दाधार दक्षमुत्तममहर्विदं व्रजं च विष्णुः सखिवाँ अपोर्णुते।।— ऋ.१.१५६.४

५. अत्रा ते रूपमुत्तममपश्यं जिगीषमाणमिष आ पदे गोः।— ऋ.१.१६३.७

६. त्वमग्ने सुभृत उत्तमं वयस्तव स्पार्हे वर्ण आ संदृशि श्रियः।— ऋ.२.१.१२

७. त्वया वयमुत्तमं धीमहे वयो बृहस्पते पप्रिणा सस्निना युजा।— ऋ.२.२३.१०

८. राजानावनभिद्रुहा ध्रुवे सदस्युत्तमे। सहस्रस्थूण आसाते।।— ऋ.२.४१.५

९. उदस्तम्भीत् समिधा नाकमृष्वो३ ऽग्निर्भवन्नुत्तमो रोचनानाम्।— ऋ.३.५.१०

१०. त्रिरुत्तमा दूणशा रोचनानि त्रयो राजन्त्यसुरस्य वीराः।— ऋ.३.५६.८

११. अस्माकमुत्तमं कृधि श्रवो देवेषु सूर्य। वर्षिष्ठं द्यामिवोपरि।।— ऋ.४.३१.१५

१२. द्युमन्तं वाजं वृषशुष्ममुत्तममा नो रयिमृभवस्तक्षता वयः।।— ऋ.४.३६.८

१३. देवेभ्यो हि प्रथमं यज्ञियेभ्यो ऽमृतत्वं सुवसि भागमुत्तमम्।— ऋ.४.५४.२

१४. अग्निस्तुविश्रवस्तमं तुविब्रह्माण-मुत्तमम्।— ऋ.५.२५.५

१५. अग्ने शर्ध महते सौभगाय तव द्युम्नान्युत्तमानि सन्तु।— ऋ.५.२८.३

१६. गवामिव श्रियसे शृङ्गमुत्तमं सूर्यो न चक्षू रजसो विसर्जने।— ऋ.५.५९.३

१७. युवं राधोभिरकवेभिरिन्द्राऽग्ने अस्मे भवतमुत्तमेभिः।— ऋ.६.६०.३

१८. यस्मा अर्कं सप्तशीर्षाणमानृचुस्त्रि-धातुमुत्तमे पदे।— ऋ.८.५१.४

१९. एते पृष्ठानि रोदसीर्विप्रयन्तो व्यानशुः। उतेदमुत्तमं रजः।।— ऋ.९.२२.५

२०. तन्तुं तन्वानमुत्तममनु प्रवत आशत। उतेदमुत्तमाय्यम्।।— ऋ.९.२२.६

२१. दिवः पीयूषमुत्तमं सोममिन्द्राय वज्रिणे। सुनोता मधुमत्तमम्।।— ऋ.९.५१.२

२२. अस्य ते सख्ये वयं तवेन्दो द्युम्न उत्तमे। सासह्याम पृतन्यतः।।— ऋ.९.६१.२९

२३. अपघ्नन् त्सोम रक्षसो ऽभ्यर्ष कनिक्रदत्। द्युमन्तं शुष्ममुत्तमम्।।— ऋ.९.६३.२९

२४. त्वं सुष्वाणो अद्रिभिरभ्यर्ष कनिक्रदत्। द्युमन्तं शुष्ममुत्तमम्।।— ऋ.९.६७.३

२५. प्र प्यायस्व प्र स्यन्दस्व सोम विश्वेभिरंशुभिः। देवेभ्य उत्तमं हविः।।— ऋ.९.६७.२८

२६. अदब्ध इन्दो पवसे मदिन्तम आत्मेन्द्रस्य भवसि धासिरुत्तमः।— ऋ.९.८५.३

२७. परीतो षिञ्चता सुतं सोमो य उत्तमं हविः।— ऋ.९.१०७.१

२८. जुष्टो मित्राय वरुणाय वायवे दिवो विष्टम्भ उत्तमः।।— ऋ.९.१०८.१६

२९. प्र सु व आपो महिमानमुत्तमं कारुर्वोचाति सदने विवस्वतः।— ऋ.१०.७५.१

३०. या ओषधीः सोमराज्ञीर्बह्वी शतविचक्षणाः। तासां त्वमस्युत्तमारं कामाय शं हृदे।।— ऋ.१०.९७.१८

३१. त्वमुत्तमास्योषधे तव वृक्षा उपस्तयः।— ऋ.१०.९७.२३

३२. उताहमस्मि संजया पत्यौ मे श्लोक उत्तमः।।— ऋ.१०.१५९.३

३३. येनेन्द्रो हविषा कृत्व्यभवद् द्युम्न्युत्तमः।— ऋ.१०.१५९.४

३४. योगक्षेमं व आदायाऽहं भूयासमुत्तम आ वो मूर्धानमक्रमीम्।— ऋ.१०.१६६.५

३५. इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमं विश्वजिद्धनजिदुच्यते बृहत्।— ऋ.१०.१७०.३

३६. येनेन्द्रो हविषा कृत्व्यभवद् द्युम्न्युत्तमः।— ऋ.१०.१७४.४

३७. सपत्ना अस्मदधरे भवन्तूत्तमं नाकमधि रोहयेमम्।।-अथर्ववेद१.९.२

३८. येनेन्द्राय समभरः पयांस्युत्तमेन ब्रह्मणा जातवेदः।— अ.१.९.३

३९. आदङ्गा कुविदङ्गा शतं या भेषजानि ते। तेषामसि त्वमुत्तममनास्रावमरोगणम्।।— अ.२.३.२

४०. मयि क्षत्रं पर्णमणे मयि धारयताद् रयिम्। अहं राष्ट्रस्याभीवर्गे निजो भूयासमुत्तमः।।— अ.३.५.२

४१. तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं स्वरारोहन्तो अभि नाकमुत्तमम्।।— अ.४.१४.६

४२. स उत् तिष्ठेतो अभि नाकमुत्तमं पद्भिश्चतुर्भिः प्रति तिष्ठ दिक्षु।। दे.अज पञ्चौदनम्?। — अ.४.१४.९

४३. यस्त्वा करदेकवृषं जनानामुत राज्ञामुत्तमं मानवानाम्।।— अ.४.२२.५

४४. उदङ् जातो हिमवतः स प्राच्यां नीयसे जनम्। तत्र कुष्ठस्य नामान्युत्तमानि वि भेजिरे।।— अ.५.४.८

४५. उत्तमो नाम कुष्ठास्युत्तमो नाम ते पिता। यक्ष्मं च सर्वं नाशय तक्मानं चारसं कृधि।।— अ.५.४.९

४६. उत्तमो अस्योषधीनां तव वृक्षा उपस्तयः। उपस्तिरस्तु सोऽस्माकं यो अस्माँ अभिदासति।। सबन्धुश्चासबन्धुश्च यो अस्माँ अभिदासति। तेषां सा वृक्षाणामिवाहं भूयासमुत्तमः।। यथा सोम ओषधीनामुत्तमो हविषां कृतः। तलाशा वृक्षाणामिवाहं भूयासमुत्तमः।।— अ.६.१५.१

४७. इमा यास्तिस्रः पृथिवीस्तासां ह भूमिरुत्तमा। तासामधि त्वचो अहं भेषजं समु जग्रभम्।— अ.६.२१.१

४८. यमेन त्वं पितृभिः संविदान उत्तमं नाकमधि रोहयेमम्।।— अ.६.६३.३, ६.८४.४

४९. उद् वयं तमसस्परि रोहन्तो नाकमुत्तमम्। देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्।।— अ. ७.५५. ७/७.५३.७

५०. अग्ने शर्ध महते सौभगाय तव द्युम्नान्युत्तमानि सन्तु।— अ.७.७७.१०/७.७३.१०

५१. उत्तमो अस्योषधीनामनड्वान् जगतामिव व्याघ्रः श्वपदामिव।— अ.८.५.११

५२. अनुपूर्ववत्सां धेनुमनड्वाहमुपबर्हणम्। वासो हिरण्यं दत्त्वा ते यन्ति दिवमुत्तमाम्।। दे. पंचोदन अजः। — अ.९.५.२९

५३. तेभ्यो हविः श्रपयं जातवेद उत्तमं नाकमधि रोहयेमम्।। दे.ब्रह्मौदनम्। — अ.११.१.४

५४. येन रोहात् परमापद्य यद् वय उत्तमं नाकं परमं व्योम।।— अ.११.१.३०

५५. येन देवा ज्योतिषा द्यामुदायन् ब्रह्मौदनं पक्त्वा सुकृतस्य लोकम्। तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं स्वरारोहन्तो अभि नाकमुत्तमम्।।— अ.११.१.३७

५६. प्राणो ह सत्यवादिमुत्तमे लोक आ दधत्।।— अ.११.६.११/११.४.११

५७. यस्ते प्राणेदं वेद यस्मिंश्चासि प्रतिष्ठितः। सर्वे तस्मै वलिं हरानमुष्मिल्लोक उत्तमे।।— अ.११.६.१८/११.४.१८

५८. सा नो भूमिस्त्विषिं बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे।।— अ.१२.१.८

५९. इदं प्रापमुत्तमं काण्डमस्य यस्माल्लोकात् परमेष्ठी समाप।— अ.१२.३.४५

६०. स उत्तमां दिशमनु व्यचलत्। तमृचश्च सामानि च यजूंषि च ब्रह्म चानुव्यचलन्।— अ.१५.६.७

६१. आ रोहत दिवमुत्तमामृषयो मा बिभीतन।— अ.१८.३.६४

६२. उपोत्तमेभ्यः स्वाहा। उत्तमेभ्यः स्वाहा।— अ.१९.२२.१२

६३. उत्तमो अस्योषधीनामनड्वान् जगतामिव व्याघ्रः श्वपदामिव। नद्यायं पुरुषो रिषत्। दे. कुष्ठ।— अ.१९.३९.४

६४. उत्तमां जनिमां जन्यानुत्तमां जनीन्वर्त्मन्यात्।।— अ.२०.१३५.२

६५. सामिधेन्यनुवचनम् : स वै त्रिः प्रथमामन्वाह, त्रिरुत्तमाम्। त्रिवृत्प्रायणा हि यज्ञाः, त्रिवृदुदयनाः।- शतपथ ब्राह्मण १.३.५.६

६६. पञ्च प्रयाज यागाः :- त उद्गातारो नापव्याहरेयुः-आ उत्तमायाः। एषोत्तमा इत्येवोद्गातारो होत्रे यज्ञं सम्प्रयच्छन्ति।— श.ब्रा.१.५.२.१३

६७. --- तदग्निं स्विष्टकृतं समस्थापयन्,-----। तस्मादुत्तमे प्रयाजे स्वाहास्वाहेति यजति।— श.ब्रा.१.५.३.२३

६८. प्रयाज ब्राह्मणम् : अयातयाम ह्याज्यम्। तस्मादुत्तमं प्रयाजमिष्ट्वा — श.ब्रा.१.५.३.२५

६९. प्रयाजानामिष्टौ प्राथम्यम् : तदाहुः यद् उत्तमान् प्रयाजानावाहयन्ति-अथ कस्मादेनान् प्रथमान् यजन्ति इति। उत्तमान् ह्येनान् यज्ञेऽवाकल्पयन्-प्रथमान् वो यजाम-इत्यब्रुवन्-तस्मादुत्तमानावाहयन्ति, प्रथमान् यजन्ति।— श.ब्रा.१.६.१.९

७०. सान्नाय्य सम्पादनम् : अथोत्तमां दोहयित्वा येन दोहयति पात्रेण-तस्मिन्नुदस्तोकमानीय पल्यङ्ग्य, प्रत्यानयति।— श.ब्रा.१.७.१.१८

७१. अवदानक्लृप्तिः :- सो एव समृद्धा याज्या-यस्या उत्तमात् पदाद्देवताया अधिवषट् करोति।— श.ब्रा.१.७.२.२०

७२. अनुयाज कर्म : अथाग्निरुत्तमः। गायत्री वा अग्निः, तउद्गायत्रीमुत्तमामकुर्वन्।— श.ब्रा.१.८.२.१३

७३. अथोत्तममनुयाजमिष्ट्वा समानीय जुहोति।— श.ब्रा.१.८.२.१७

७४. पुनराधानम् : उच्चैरुत्तममनुयाजं यजति। कृतकर्मेव हि स तर्हि भवति।— श.ब्रा.२.२.३.१७

७५. दाक्षायण यज्ञो वसिष्ठ यज्ञः :- प्रथमो यजमानो भक्षयति। प्रथमो रेतः परिगृह्णानीति। अथो अप्युत्तमः। मय्युत्तमे रेतः प्रतितिष्ठादिति। — श.ब्रा.२.४.४.२५

७६. कृष्णाजिन दीक्षा : तस्मादु स्त्री पुमांसं ह्वयत एवोत्तमम्।— श.ब्रा.३.२.१.२१

७७. उपरवविधिः : ----एतं त्वेवोत्तमं परिलिखेत्। य एष पूर्वयोरुत्तरो भवति।— श.ब्रा.३.५.४.७

७८. स य उत्तरोऽग्निष्ठात्स्यात्-तमेवाग्रऽउच्छ्रयेत्। अथ दक्षिणम्। अथोत्तरम्। दक्षिणाद्धर्यमुत्तमम्।— श.ब्रा.३.७.२.५

७९. उत्तमो वाऽएष प्रयाजो भवति। इदं वै हविर्यज्ञ उत्तमे प्रयाजे ध्रुवामेवाग्रेऽभिघारयति।— श.ब्रा. ३.८.२.२५

८०. अथ पशुं विशास्ति। त्रिः प्रच्यावयतात् त्रिः प्रच्युतस्य हृदयमुत्तमं कुरुताद् इति। त्रिवृद्धि यज्ञः।— श.ब्रा.३.८.३.३

८१. निग्राभ्य प्रयोगः :- उत्तमेन पविना (वा.सं.६.३०) इति एष वाऽउत्तमः पविः-यत्सोमः। तस्मादाह उत्तमेन पविनेति।— श.ब्रा.३.९.४.५

८२. शुक्रामन्थिनौ ग्रहौ : स प्रथमायां वा होत्रायामिष्टायामुत्तमायां वाऽनुमन्त्रयते-तृम्पन्तु होत्रा मध्वो याः स्विष्टा याः सुप्रीताः सुहुता यत्स्वाहा (वा.सं.७.१५) इति। अग्नीद्धयत्र यजतामुत्तमः संयजति।— श.ब्रा.४.२.१.३३

८३. उक्थ ग्रहः :- तस्यासावेव ध्रुव आयुरात्मैव।--तद्वाऽअगृहीत एवैतस्मादच्छावाकायोत्तमो ग्रहो भवति।— श.ब्रा.४.२.३.३

८४. अथ राजानमुपावहरति। तृतीयं वसती-वरीणामवनयति। तत् पर्व समैति। प्रथममहोत्तरस्य सवनस्य करोति, उत्तमं पूर्वस्य। स यदुत्तरस्य सवनस्य तत्पूर्वं करोति, यत्पूर्वस्य तदुत्तमम्-तद्व्यतिषजति।— श.ब्रा.४.२.३.४

८५. ऋतुग्रहाः :- सहैव प्रथमौ ग्रहौ गृह्णीतः। सहोत्तमौ। इदमेवैतत्सर्वं संवत्सरेण परिगृह्णीतः।— श.ब्रा.४.३.१.८

८६. दक्षिणादानम्: अथ सुब्रह्मण्यायै प्रतिहर्त्रे उत्तमाय ददाति प्रतिहर्ता वाऽएषः।— श.ब्रा.४.३.४.२२

८७. पात्नीवतग्रहः :- यच्छालाकैर्धिष्ण्या-न्व्याघारयति-तानेतैरेव यजुर्भिर्य-थोपकीर्णं यथापूर्वं व्याघारयति। मार्जालीयऽएवोत्तमम्।— श.ब्रा.४.४.२.७

८८. तद्धैके आग्नीध्रीये पुनराघारयन्ति-उदग्नऽइदं कर्मानुसन्तिष्ठाताऽइति। तदु तथा न कुर्यात्। मार्जालीयऽएवोत्तमम्।— श.ब्रा.४.४.२.८

८९. समिष्टयजुः :- अथ यान्युत्तमानि त्रीणि जुहोति। यज्ञं वाऽएतदजीजनत-यदेनमतत। तं जनयित्वा, यत्रास्य प्रतिष्ठा-तत् प्रतिष्ठापयति।— श.ब्रा.४.४.४.६

९०. गर्ग त्रिरात्रमहीनम् : उत्तमे वैनामहन्नयेत्, पूर्वमहास्यै प्रजातमेति, पश्चादेषान्वेति। सोऽएषा मीमांसैव। उत्तमऽएवैनामहन्नयेत्।— श.ब्रा.४.५.८.४

९१. अपां रसस्य यो रसः, तं वो गृह्णाम्युत्तमम्-उपयामगृहीतोऽसि, इन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णामि, एष ते योनिः, इन्द्राय त्वा जुष्टतमम् इति सादयति।— श.ब्रा.५.१.२.७

९२. अथ ध्रुवम्। अथैतान्त्सोमग्रहान् उत्तमे स्तोत्रऽऋत्विजां चमसेषु व्यवनीय जुह्वति। तान्भक्षयन्ति।— श.ब्रा.५.१.२.१९

९३. तद्धैके वाचऽउत्तममालभन्ते। यदि वै प्रजापतेः परमस्ति-वागेव।— श.ब्रा.५.१.३.११

९४. स ब्रह्मा रथचक्रमधिरोहति-नाभिदघ्नऽउद्धितम्-देवस्याहं सवितुः सवे सत्यसवसो बृहस्पतेरुत्तमं नाकं रुहेयम् इति। यदि ब्राह्मणो यजते। ब्रह्म हि बृहस्पतिः। ब्रह्म हि ब्राह्मणः।।— श.ब्रा.५.१.५.२

९५. यदि राजन्यो यजते-देवस्याहं सवितुः सवे सत्यसवस इन्द्रस्योत्तमं नाकं रुहेयम् इति। क्षत्रं हीन्द्रः। क्षत्रं राजन्यः।— श.ब्रा.५.१.५.३

९६. त्रिः सामाभिगायति। त्रिरभिगीयावरोहति-देवस्याहं सवितुः सवे सत्यप्रसवसो बृहस्पतेरुत्तमं नाकमरुहम् इति।-— श.ब्रा.५.१.५.४

९७. यदि राजन्यो यजते-देवस्याहं सवितुः सवे सत्यप्रसवस इन्द्रस्योत्तमं नाकमरुहम् (वा.सं.९.१०) इति। क्षत्रं हीन्द्रः। क्षत्रं राजन्यः।— श.ब्रा.५.१.५.५

९८. स यानि पुरस्तादभिषेकस्य जुहोति-बृहस्पतिस्तेषामुत्तमो भवति। अथ यान्युपरिष्टादभिषेकस्य जुहोति-इन्द्रस्तेषां प्रथमो भवति। ब्रह्म वै बृहस्पतिः। इन्द्रियं वीर्यम्।— श.ब्रा.५.३.५.७

९९. एषा ह सम्वत्सरस्य प्रथमा रात्रिः-यत्फाल्गुनी पौर्णमासी-योत्तरा। एषोत्तमा-या पूर्वा। मुखत एव तत् संवत्सरमालभते।— श.ब्रा.६.२.२.१८

१००.-----अथ यानि चत्वार्युत्तमानि-दिशस्तानि। इमे च वै लोकाः, दिशश्च प्रजापतिः।— श.ब्रा.६.३.१.११

१०१. तद् यत्तद्वागित्येकमक्षरम्-यैवैषाऽनुष्टुबुत्तमा-सा सा अथ यदक्षरमिति त्र्यक्षरम्-एतानि तानि पूर्वाणि यजूंषि।— श.ब्रा.६.३.१.४३

१०२. स्वो रुहाणा अधि नाकमुत्तमम् (वा.सं.११.२२) इति। स्वर्गो वै लोको नाकः। स्वर्गं लोकं रोहन्तोऽधि नाकमुत्तममित्येतत्।— श. ब्रा. ६.३.३.१४

१०३. अथैषा बृहत्युत्तमा भवति। बृहतीं वाऽएष सञ्चितोऽभिसम्पद्यते।— श.ब्रा.६.४.२.८

१०४. नैर्ऋतीष्टकाचयनम् : उत्तमे नाके-ऽअधिरोहयैनम् (वा.सं.१२.६३) इति। स्वर्गो वै लोको नाकः। स्वर्गे लोके यजमानमधिरोहयेत्येतत्।— श.ब्रा.७.२.१.१०

१०५. लोगेष्टकोपधानम् : दिवि श्रवांस्युत्तमानि धिष्व इति। चन्द्रमा वाऽअस्य दिवि श्रव उत्तमम्। स ह्येनममुष्मिंल्लोके श्रावयति।— श.ब्रा.७.३.१.४६

१०६. कूर्मेष्टकोपधानम् : द्यावापृथिव्ययो-त्तमयोपदधाति। द्यावापृथिव्यो हि कूर्मः।- श. ब्रा ७.५.१.१०

१०७. एषा वै सा बृहती-यां तद्देवा अन्तरिक्षं बृहतीं तृतीयां चितिमपश्यन्। तस्याऽएतस्यै देवा उत्तमाः।— श.ब्रा.८.३.३.८

१०८. अष्टादशस्तोमेष्टकोपधानमः स वै वायुमेव प्रथममुपदधाति, वायुमुत्तमम्। वायुनैव तदेतानि सर्वाणि भूतान्युभयतः परिगृह्णाति।— श.ब्रा.८.४.१.२६

१०९. चत्वारिंशच्छन्दस्येष्टकोपधानम् : अथ योत्तमा दशद्-अयं स लोकः। तस्माद्यथैव प्रथमायै दशतः प्रभृतिः एवमुत्तमायै।— श.ब्रा.८.५.२.१६

११०. ता उ वै तिस्र एव। अयमेव लोकः प्रथमा चितिः, द्यौरुत्तमा, अथ या एतास्तिस्रः-तदन्तरिक्षम्।— श.ब्रा.८.५.४.१२

१११. पञ्चचूडेष्टकोपधानम्---ता हैता अग्नेराशिषः। ता उत्तमायां चिता उपदधाति। अन्त एषोऽग्नेः-यदुत्तमा चितिः।— श.ब्रा.८.६.१.२२

११२. एकत्रिंशच्छन्दस्येष्टकोपधानम् :----- एताः स्तोमभागाः। तस्मिन्नविशन्। तेषां विशतां प्रजापतिरुत्तमोऽविशत्। स यः स प्रजापतिः - एतास्ताश्छन्दस्याः।।— श.ब्रा.८.६.२.५

११३. बहिस्तोमभागम्। हृदयं वै स्तोमभागाः। हृदयमु वाऽउत्तमम्। अथोदरम्, अथ योनिः।— श.ब्रा.८.६.२.१५

११४. अर्को देवानां परमे व्योमन्, अर्कस्य देवाः परमे व्योमन् इति। एतद्वै देवानां विशतां प्रजापतिरुत्तमोऽविशत्। -----अयं वा अग्निरर्कः-तस्यैतदुत्तमायां चितौ सर्वे देवा विष्टाः। तस्मादाह-अर्कस्य देवाः परमे व्योमन्-इति।— श.ब्रा.८.६.२.१९

११५. द्वयोर्ऋतव्येष्टकयोरुपधानम् : स पुरस्तात्स्वयमातृण्णायै च विश्वज्योतिषश्चऽर्तव्येऽ-उपदधाति। द्यौर्वा उत्तमा स्वयमातृण्णा। आदित्य उत्तमा विश्वज्योतिः।— श.ब्रा.८.७.१.९

११६. अथ विश्वज्योतिषमुपदधाति। आदित्यो वा उत्तमा विश्वज्योतिः। आदित्यो ह्येवामुष्मिंल्लोके विश्वं ज्योतिः।— श.ब्रा.८.७.१.१५

११७. स पुरस्तात्स्वयमातृण्णायै विश्वज्योतिषमुपदधाति। द्यौर्वाऽउत्तमा स्वयमातृण्णा। आदित्य उत्तमा विश्वज्योतिः।— श.ब्रा.८.७.१.१७

११८. लोकम्पृणेष्टकोपधानम्: स यद्यत्रैव प्रथमे उपदधाति-तदुत्तमे अनूपदध्यात्। सकृद्धैवासावादित्य इमांल्लोकान्पर्येत्य नातिप्रच्यवेत। अतिहत्य पूर्वे उत्तमे अनूपदधाति। अमुं तदादित्यमिमांल्लोकानतिप्रच्यावयति।-----लोकं पृण च्छिद्रं पृण इति। अथो सीद ध्रुवा त्वम् इति।— श.ब्रा.८.७.२.५

११९. अथात इष्टकामात्राणामेव। पादमात्रीः प्रथमायां चोत्तमायां च चित्योरुपदध्यात्। प्रतिष्ठा वै पादः।— श.ब्रा.८.७.२.१७

१२०. पुरीष निवपनम्: अथ विकर्णीं च स्वयमातृण्णां चोपदधाति। वायुर्वै विकर्णी। द्यौरुत्तमा स्वयमातृण्णा। वायुं च तद्दिवं चोपदधाति। उत्तमे उपदधाति। उत्तमे हि वायुश्च द्यौश्च संस्पृष्टे।— श.ब्रा.८.७.३.९

१२१. आयुर्वै विकर्णी, प्राणः स्वयमातृण्णा। आयुश्च तत्प्राणं चोपदधाति। उत्तमे उपदधाति। उत्तमे ह्यायुश्च प्राणश्च।— श.ब्रा.८.७.३.११

१२२. तद् यैषोत्तमा स्यमातृण्णा-एतदस्य तदात्मनः। तद् यदेतामत्रोपदधाति-यदेवास्यैषाऽऽत्मनः-तदस्मिन्नेतत्प्रतिदधाति।— श.ब्रा.८.७.३.१७

१२३. अथैनं हिरण्यशकलैः प्रोक्षति। अत्रैष सर्वोऽग्निः संस्कृतः। तस्मिन्देवा एतदमृतं रूपमुत्तममदधुः। तथैवास्मिन्नयमेतदमृतं रूपमुत्तमं दधाति।— श.ब्रा.८.७.४.७

१२४. यजमानोऽग्निः। यावानग्निर्यावत्यस्य मात्रा-तावतैवास्मिन्नेतदमृतं रूपमुत्तमं दधाति।— श.ब्रा.८.७.४.९

१२५. अमृतमेव सप्तमी चितिः। तामुत्तमामुपदधाति। अमृतं तदस्य सर्वस्योत्तमं दधाति। तस्मादस्य सर्वस्यामृतमुत्तमम्।— श.ब्रा.८.७.४.१८

१२६. प्राणा एव सप्तमी चितिः। तामुत्तमामुपदधाति-प्राणांस्तदस्य सर्वस्योत्त-मान्दधाति। तस्मादस्य सर्वस्य प्राणा उत्तमाः।— श.ब्रा.८.७.४.२१

१२७. अथातः शतरुद्रियं जुहोति। अत्रैष सर्वोऽग्निः संस्कृतः। स एषोऽत्र रुद्रो देवता। तस्मिन्देवा एतदमृतं रूपमुत्तममदधुः।— श.ब्रा.९.१.१.१

१२८. शान्तदेवत्यं ह वै तच्छतरुद्रियमित्याचक्षते परोऽक्षम्। परोऽक्षकामा हि देवाः। तथैवास्मिन्नयमेतदमृतं रूपमुत्तमं दधाति।— श.ब्रा.९.१.१.२

१२९. प्राणा वै सामानि। अमृतमु वै प्राणाः। अमृतमेवास्मिन्नेतद्रूपमुत्तमं दधाति। सर्वतः परिगायति। सर्वत एवास्मिन्नेतदमृतं रूपमुत्तमं दधाति।— श.ब्रा.९.१.२.३२

१३०. ता हैता अमृतेष्टकाः। ता उत्तमा उपदधाति। अमृतं तदस्य सर्वस्योत्तमं दधाति। तस्मादस्य सर्वस्यामृतमुत्तमम्।— श.ब्रा.९.१.२.४३

१३१. अत्रैष सर्वोऽग्निः संस्कृतः। तस्मिन्देवा एतद्रूपमुत्तममदधुः। तथैवास्मिन्नयमेतद्रूपमुत्तमं दधाति। अन्नं वै रूपम्।-----अपि बाह्येन परिश्रितः। सर्वत एवास्मिन्नेतद्रूपमुत्तमं दधाति। दर्भैः।— श.ब्रा.९.२.१.१२

१३२. वैश्वानर होमः :- अथ यानि चत्वार्युत्मानि-सा चतुष्पदा त्रिष्टुप् याज्या।— श.ब्रा.९.३.१.१७

१३३. वाजप्रसवीय होमः :- अग्नेरुत्तमानि जुहोति। सर्वे हैते सवाः-यदग्निसवः।— श.ब्रा.९.३.४.९

१३४. अभिषेकः :- बृहस्पतिः पूर्वेषामुत्तमो भवति, इन्द्र उत्तरेषां प्रथमः। ब्रह्म वै बृहस्पतिः, क्षत्रमिन्द्रः।— श.ब्रा.९.३.४.१८

१३५. स्वर्ण सूर्यः स्वाहा इति। असौ वाऽआदित्यः सूर्यः। अमुं तदादित्यमस्य सर्वस्योत्तमं , दधाति। तस्मादेषोऽस्य सर्वस्योत्तमः।— श.ब्रा.९.४.२.२३

१३६. सुत्याह कर्माणि : स मध्यमं परिधिमुपस्पृश्यैतद्यजुर्जपति-अग्निं युनज्मि शवसा घृतेन इति।-----दिव्यं सुपर्णं वयसा बृहन्तम् इति।---तेन वयं गमेम ब्रध्नस्य विष्टपं स्वो रुहाणा अधि नाकमुत्तमम्। इति। स्वर्गो वै लोको नाकः। तेन वयं गमेम ब्रध्नस्य विष्टपं स्वर्गं लोकं रोहन्तोऽधि नाकमुत्तममित्येतत्।— श.ब्रा.९.४.४.३

१३७. चित्याग्नेरुपस्थानम् : ये अग्नयः पाञ्चजन्या अस्यां पृथिव्यामधि। तेषामसि त्वमुत्तमः प्र नो जीवातवे सुव इति।— श.ब्रा.९.५.१.५३

१३८. अथ रूपमुत्तमं करोति। अत्रैष सर्वोऽग्निः संस्कृतः। तस्मिन्देवा एतद्रूपमुत्तममदधुः। तथैवास्मिन्नयमेतद्रूपमुत्तमं दधाति।— श.ब्रा.१०.२.१.८

१३९. तद् यानीमानि वयस उत्तरतो वक्राणि लोमानि तानि तत्करोति। सहस्रेण। सर्वं वै सहस्रम्। सर्वेणैवास्मिन्नेतद्रूपमुत्तमं दधाति। त्रिभिः सहस्रैः। त्रिवृदग्निः। यावानग्निर्यावत्यस्य मात्रा-तावतैवास्मिन्नेतद्रूपमुत्तमं दधाति।- श.ब्रा. १०.२.१.११

१४०. याः पञ्चाशत्प्रथमा इष्टकाः। याश्चोत्तमास्ताः शतं विधाः। अथ या एतदन्तरेणेष्टका उपधीयन्ते-सैवैकशततमी विधा।- श.ब्रा. १०.२.६.११

१४१. यजुरेकशतविधः। यानि पञ्चाशत्प्रथमानि यजूंषि, यानि चोत्तमानि-ताः शतं विधाः।— श.ब्रा.१०.२.६.१२

१४२. अथ ह स्माह श्रौमत्यो वा हालिङ्गवो वा-वायुरेवाग्निः। तस्माद्यदैवाध्वर्युरुत्तमं कर्म करोति-अथैतमेवाप्येतीति।— श.ब्रा.१०.४.५.१

१४३. त्रिर्ह वै पुरुषो जायते। एवमेवैनमेतद्यज्ञात् त्रिर्जनयति। तासामेकादशानां त्रिः प्रथमामन्वाह। त्रिरुत्तमाम्।— श.ब्रा.११.२.१.४

१४४. त्रिर्वैवोत्तमामन्वाह। स यत्प्रथममन्वाह। प्रतीचीं तेन दिशं जयति।---- श.ब्रा.११.२.७.८

१४५. यस्तद्दर्शपूर्णमासयोर्विद्यात्।-- -यस्मादासां पुनरुत्तमे वयसि सर्व एव (दन्ताः) प्रभिद्यंते।— श.ब्रा.११.४.१.५

१४६. यस्तद्दर्शपूर्णमासयोर्विद्यात्।----- यस्माच्छीर्षण्येवाग्रे पलितो भवति। अथ पुनरुत्तमे वयसि सर्व एव पलितो भवति।---- -यस्मात् कुमारस्य रेतः सिक्तं न संभवति। यस्मादस्य मध्यमे वयसि संभवति। यस्मादस्य पुनरुत्तमे वयसि न संभवति।— श.ब्रा.११.४.१.६

१४७. अथ यदपुरोऽनुवाक्यकं समिष्टयजुर्भवति, तस्मादासां पुनरुत्तमे वयसि सर्व एव प्रभिद्यंते।— श.ब्रा.११.४.१.१२

१४८. अथ यत्सर्वमेव बर्हिरनुप्रहरति, तस्मात्पुनरुत्तमे वयसि सर्व एव पलितो भवति।---- अथ यदाज्यहविष एवानुयाजा भवंति, तस्मादस्य

पुनरुत्तमे वयसि न संभवति, उदकमिवैव भवति, उदकमिव ह्याज्यम्।— श.ब्रा.११.४.१.१४

१४९. गवामयन ब्राह्मणम् : तेषां वा उन्नेतोत्तमो दीक्षते। प्रथमोऽवभृथादुदायतामुदैति। प्राणो वा उन्नेता।— श.ब्रा.१२.१.१.११

१५०. अभिप्लवः षडहः।-- -यद्ध्येव प्रथममहः। तदुत्तमम्।— श.ब्रा.१२.२.२.१२

१५१. प्रायश्चित्तसत्रम् : अथ यत्संवत्सरं सुत्याभिः। उत्तमार्द्धमेव तेन सहस्रसंवत्सरस्यावरुन्धे।— श.ब्रा.१२.३.३.१२

१५२. सौत्रामणी यागः :- ऐन्द्रः पशूनामुत्तमो भवति। ऐन्द्रः पुरोडाशानां प्रथमः। इन्द्रियं वै वीर्यम् इन्द्रः।— श.ब्रा.१२.७.२.१६

१५३. सौत्रामण्यां सोमसम्पत्तिः :- परीतो षिंचता सुतम्---- -सोमो य उत्तमं हविः इति। उत्तमं वा एतद्धविः। यत्सोमः। उत्तममेवैनं हविष्करोति।— श.ब्रा.१२.८.२.१२

१५४. (तस्मात् ऋतवः) सर्वाः प्रथमा भवन्ति। सर्वा मध्यमाः। सर्वा उत्तमाः। तस्मात् ऋतवः सर्वे प्रथमाः। सर्वे मध्यमाः। सर्व उत्तमाः।— श.ब्रा.१२.८.२.३५

१५५. सौत्रामणी यज्ञात् पुरुषोत्पत्तिः :- सर्वा (याज्यापुरोनुवाक्याः) प्रथमा भवंति। सर्वा मध्यमाः। सर्वा उत्तमाः। तस्मात् प्राणाः सर्वे प्रथमाः। सर्वे मध्यमाः। सर्व उत्तमाः।— श.ब्रा.१२.९.१.१०

१५६. सौत्रामण्यां अवभृथः :- देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् इति। स्वर्गो वै लोकः सूर्यो ज्योतिरुत्तमम्। स्वर्ग एव लोकेऽन्ततः प्रतितिष्ठति।— श.ब्रा.१२.९.२.८

१५७. पूर्णाहुतिमुत्तमां जुहोति। प्रत्युत्तब्ध्यै सयुक्त्वाय।— श.ब्रा.१३.१.७.४

१५८. विश्वो देवस्य नेतुः (वा.सं.२२.२१) इति पूर्णाहुतिमुत्तमां जुहोति। इयं वै पूर्णाहुतिः। अस्यामेवान्ततः प्रतितिष्ठति।— श.ब्रा.१३.१.८.८

१५९. अत्रहोमब्राह्मणम् : व्युष्ट्यै स्वाहा स्वर्गाय स्वाहा (वा.सं.२२.२४) इत्युत्तमे आहुती जुहोति। रात्रिर्वै व्युष्टिः। अहः स्वर्गः।— श.ब्रा.१३.२.१.६

१६०. तदाहुः-नैते सर्वे पशवः। यदजाऽवयश्च आरण्याश्च। एते वै सर्वे पशवः। यद्गव्या इति। गव्यानुत्तमेऽहन्नालभते। एते वै सर्वे पशवः। यद्गव्याः। सर्वानेव पशूनालभते।वैश्वदेवा भवन्ति। वैश्वदेवो वा अश्वः। अश्वस्यैव सर्वत्वाय। बहुरूपा भवन्ति। तस्माद्बहुरूपाः पशवः।—श.ब्रा.१३.३.३.१

१६१. यद्यतुष्टोमः स्तोमो भवति। अश्वस्यैव सर्वत्वाय सर्वस्तोमोऽतिरात्र उत्तममहर्भवति।— श.ब्रा.१३.३.१.४

१६२. द्यावापृथिव्यामुत्तमामाहुतिं जुहोति। द्यावापृथिव्योर्वै सर्वा देवताः प्रतिष्ठिताः।— श.ब्रा.१३.३.४.१

१६३. यदक्रन्दः प्रथमं जायमानः (वा. सं. २९.१२,२२) इति त्रिः प्रथमया, त्रिरुत्तमया,ताः पंचदश संपद्यन्ते। पंचदशो वै वज्रः।— श.ब्रा.१३.५.१.१७

१६४. अश्वस्तोमीयद्विपदाहोम ब्राह्मणम् : पशूनेव मात्रया समर्द्धयति। नान्यामुत्तमामाहुतिं जुहोति। यदन्यामुत्तमामाहुतिं जुहुयात्। प्र प्रतिष्ठायै च्यवेत। द्विपदा उत्तमा जुहोति। प्रतिष्ठा वै द्विपदा। प्रत्येव तिष्ठति। जुंबकाय स्वाहा (वा.सं.२५.९) इत्यवभृथ उत्तमामाहुतिं जुहोति। वरुणो वै जुंबकः।— श.ब्रा.१३.३.६.५

१६५. उत्तरोमहिम ग्रहः :- सर्वस्तोमोऽतिरात्र उत्तममहर्भवति। सर्वं वै सर्वस्तोमोऽतिरात्रः।— श.ब्रा.१३.५.३.९

१६६. अष्टा उत्तमानालभते। अष्टाक्षरा गायत्री। ब्रह्म गायत्री। तत् ब्रह्मैवैतदस्य सर्वस्योत्तमं करोति। तस्मात् ब्रह्मास्य सर्वस्योत्तममित्याहुः।— श.ब्रा.१३.६.२.७

१६७. घर्मोद्वासनम् : देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् (वा.सं.३८.२४)इति। स्वर्गो वै लोकः सूर्यो ज्योतिरुत्तमम्।— श.ब्रा.१४.३.१.२८

१६८. घर्मभेदे प्रायश्चित्तम् : पूर्णाहुतिमुत्तमां जुहोति। सर्वं वै पूर्णम्।— श.ब्रा.१४.३.२.१८

१६९. यद् एतद् देवपात्रं प्रथमं युज्यत उत्तमं विमुच्यते तेनैवात्य् अन्यानि पात्राणि।-जैमिनीय ब्राह्मण १.७३

१७०. त एतद् आवद् उत्तमम् अक्षरम् अपश्यन्। तेनैनम् (आदित्यम्) अर्वाञ्चम् अकुर्वन्।---- -सदैव सर्वाभिस् स्तुयुर् अथोत्तमाम् अग्रे ब्रूयाद् अथावराम् अथावराम्।------यद् एवाद आवद् उत्तमम् अक्षरं भवति तेनास्माल् लोकान् नावच्छिद्यते।— जै.ब्रा.१.८७

१७१. रथन्तरवर्णाम् उत्तमां गायन्ति। इयं वै रथन्तरम्। अस्याम् एवैतत् प्रतितिष्ठति।— जै.ब्रा.१.८८

१७२. एकरूपासु स्तुवन्ति। तस्माद् आरण्याः पशव एकरूपाः। आवद् उत्तमम् अक्षरं भवति। तस्माद् एकैको ऽन्यो ऽचलो ग्रामे ऽधिगम्यते।— जै.ब्रा.१.८९

१७३. ओषम् एवैतद् उत्तमं तृचं गायति। प्रजननो वा एष तृचः।— जै.ब्रा.१.१०४

१७४. एते ह वै रसदिहौ ये एते गायत्र्या उत्तमे अक्षरे। यस् ते उद्गायन्न् आरभते रसदिहाव् उरसि निमृदते। य उ एने निर्हरति गायत्रीं छिद्रां करोति।— जै.ब्रा.१.११४

१७५. यद् यथापूर्वं छन्दांस्य् उपेयुर् अनुष्टुभ उत्तमाः कुर्युः। वाग् वा अनुष्टुप्।— जै.ब्रा.१.१६१

१७६. वाग् अनुष्टुप्। तेनानुष्टुभो न यन्ति। यैतासाम् उत्तमा सा प्रत्यक्षानुष्टुप्। तेनो वावानुष्टुभो न यन्ति।— जै.ब्रा.१.१८८

१७७. यत्रोद्वंशीयं क्रियत उत्तमं पदं पुनर् अभ्यस्यति। षोडश्य् एव तेन रूपेण क्रियते।— जै.ब्रा.१.१९०

१७८.----आत्मानम् एव पंक्त्या प्रत्युपदधाति। अथ यद् एतद् उत्तमं तृचं जन्मैव तत्।— जै.ब्रा.१.२५३

१७९.--- -सामि ह वै दुरुद्गातुर् वर्तन्यां गर्भाः पतन्ति। अथ यद् एतद् उत्तमं तृचं जन्मैव तत्। प्रैव तेन जनयति।— जै.ब्रा.१.२६१

१८०. गायत्रीषु रथन्तरसाम्नः कुर्यात् त्रिष्टुप्सु बृहत्साम्नस् त्रिणिधनं बृहत्याम् उत्तमं करोति।------ -गायत्रीषु रथन्तरसाम्नः कुर्याद् अनुष्टुप्सु बृहत्साम्न ऐळं मध्येनिधनम् अनुष्टुभ्य् उत्तमं करोति। यद् एवात्र यज्ञस्य विधुरं भवति तद् एव तेन शमयति।— जै.ब्रा.१.३१०

१८१. तस्य दशं कृत्वः प्ररोहति। षट् कृत्वः पूर्वयोश् चतुर् उत्तमायै। ते दश प्ररोहास्, संपद्यन्ते।— जै.ब्रा.१.३४०

१८२. अथ शीर्ष्णाग्रे स्तुते ऽथ दक्षिणेन पक्षेणाथोत्तरेणाथ पुच्छेनात्मनोत्तमेन। तत् सलोमाय।— जै.ब्रा.२.४६

१८३. उद् वयं तमसस् परि सुवः पश्यन्तो ज्योतिर् उत्तरम्। देवं देवत्रा सूर्यम् अगन्म ज्योतिर् उत्तमम्। इत्य् एतां जपन्न् उदैति। एतद् वै ज्योतिर् उत्तमं य एष तपति।— जै.ब्रा.२.६८

१८४. यद् यथापूर्वं पृष्ठान्य् उपेयू रेवतीर् उत्तमाः कुर्यू रेवतीनाम् एता रूपम् ऋचस्, तेनैव रेवतीनां रूपान् न यन्ति।— जै.ब्रा.२.१८१

१८५.--- -अथ बृहत्सामाथ वैरूपसामाथ वैराजसामाथ शक्वरीसामाथ रेवतीसामोत्तम स्याद् इति।- --- -अथ बृहत्सामाथ रथन्तरसामाथ बृहत्सामाथ रथन्तरसामाथ बृहत्सामोत्तम स्याद् इति।— जै.ब्रा.२.२१३

१८६.--- -अथ बृहत्सामाथ रथन्तरसामाथ बृहत्सामाथ रथन्तरसामा च बृहत्सामा चोत्तम स्याद् इति।— जै.ब्रा.२.२१५

१८७.--- -तस्माद् आत्मन्न् अङ्गानि प्रतिहितानि। आत्मन्ययोत्तमयोद्गायति। तस्माद् इदम् आत्मन उद् इव शेते।— जै.ब्रा.२.४०८

१८८. द्वादशस्य मास उत्तमे ऽहन् षट्त्रिंशं ह दध्रिरे व्यावृत्। एकं ततो युग्मभिर् व्युञ्जताध्य् अन्य आयन् सुवर् अन्ये परायन्। इति— जै.ब्रा.२.४३८

१८९. राजानाव् अनभिद्रुहा ध्रुवे सदस्य् उत्तमे। सहस्रस्थूण आसाते। इति सहस्ररूपं विराजाम् उपगच्छन्ति।— जै.ब्रा.३.६३

१९०. अथ यान्य् उत्तराणि त्रीणि पदानीमौ द्वौ शिरोग्रीवम्, एकम् अथ यद् उत्तमं पदम् उपश एव सः।

पश्चेव द्वितीय आगच्छत् तस्माद् उत्तमा द्व्युपशैवं प्रियस्य कुर्यात्।— जै.ब्रा.३.११२

१९१. शर्यातो वै मानवः प्राच्यां स्थल्याम् अयजत।---- तद् उभयैर् देवमनुष्यैर् उत्तमं सोमस् संपीतः। तस्मिंश् च्यवनो भार्गवो ऽश्विभ्यां ग्रहम् अगृह्णात्।— जै.ब्रा.३.१५९

१९२. प्रेति पवमानस्य प्रथमेत्य् उत्तमैवम् इव ह्य् एतद् अहः।—.जै.ब्रा.३.१७६

१९३. दिवः पीयूषम् उत्तमम् इत्य् उत्तमो ह्य् एष त्र्यहः क्रियते यच् छन्दोमाः। तासु गायत्रम् उक्तब्राह्मणम्।— जै.ब्रा.३.२०९

१९४. तद् यद् एतानि पञ्चर्च षड्चानि भवन्ति तेनैवर्तुमन्तश् छन्दोमाः क्रियन्ते। स वानुत्तमष् षड्चो भवति।----तस्मात् स वानुत्तमष् षड्चो भवति येन प्रयन्ति। तेनोद्यन्ति।— जै.ब्रा.३.२४२

१९५. परीतो षिंचता सुतम् इति परिवतीर् भवन्त्य् अन्तस्य रूपम्। अन्त्यो ह्य् एतद् अहः। सोमो य उत्तमं हविर् इत्य् उत्तमं ह्य एतद् धविः क्रियते यच् छन्दोमाः।— जै.ब्रा.३.२५२

१९६. अभ्य् अर्ष कनिक्रदत्। द्युमन्तं शुष्मम् उत्तमम्।। इत्य् उत्तमो ह्य् एष त्र्यहः क्रियते यश् छन्दोमाः।— जै.ब्रा.३.२६५

१९७. ऐन्द्राग्नम् उत्तमं पदं निराह छन्दसाम् अप्रणाशाय यज्ञस्यानुख्यात्यै।— जै.ब्रा.३.२८२

१९८. तस्माद् उष्णिह उत्तमान्य् अक्षराणि भूयिष्ठानि।— जै.ब्रा.३.२९५

१९९. अथ यस्माद् दवीयस् सन् ज्यायस्तोमम् उत्तमम् अहस् तस्माद् असाव् आदित्यो दवीयस् सन्न् ओजीयस् तपति।— जै.ब्रा.३.३१८

२००. श्व आधास्यमानो ब्रह्मौदनं पचति। आदित्या वा इत उत्तमाः सुवर्गं लोकमायन्। ते वा इतो यन्तं प्रतिनुदन्ते। एते खलु वावाऽऽदित्याः। यद्ब्राह्मणाः।- तैत्तिरीय ब्राह्मण १.१.९.८

२०१. विषुवद्दिने दिवाकीर्त्यनामानि सामानि : एकविँश एष भवति। एतेन वै देवा एकविँशेन। आदित्यमित उत्तमँ सुवर्गं लोकमारोहयन्। स वा एष इत एकविँशः।— तै.ब्रा.१.२.४.१

२०२. पुनराधेयम् : अग्निं प्रथमं विभक्तीनां यजति। अग्निमुत्तमं पत्नीसंयाजानाम्। तेनाऽऽग्नेयम्।— तै.ब्रा.१.३.१.६

२०३. सारस्वत्योत्तमया प्रचरति। वाग्वै सरस्वती। तस्मात्प्राणानां वागुत्तमा। अथो प्रजापतावेव यज्ञं प्रतिष्ठापयति। प्रजापतिर्हि वाक्।— तै.ब्रा.१.३.४.५

२०४. चात्वाले रथचक्रं निमित्तँ रोहति। अतो वा अङ्गिरस उत्तमाः सुवर्गं लोकमायन्।— तै.ब्रा.१.३.६.१

२०५. अग्निविनाशप्रायश्चित्तं :-- -अत एव पुनर्मन्थेत्। अत्र वाव स निलयते। यत्र खलु वै निलीनमुत्तमं पश्यन्ति। तदेनमिच्छन्ति।— तै.ब्रा.१.४.७.३

२०६. देवनक्षत्राणि वा अन्यानि। यमनक्षत्राण्यन्यानि। कृत्तिका प्रथमम्। विशाखे उत्तमम्। तानि देवनक्षत्राणि। अनूराधा प्रथमम्। अपभरणीरुत्तमम्। तानि यमनक्षत्राणि।— तै.ब्रा.१.५.२.७

२०७. यजमान उत्तमो भक्षयति। पशवो वै वाजिनम्। यजमान एव पशून्प्रतिष्ठापयन्ति।— तै.ब्रा.१.६.३.१०

२०८. यत्पार्थानि जुहोति। राष्ट्रमेव भवति। बार्हस्पत्यं पूर्वेषामुत्तमं भवति। ऐन्द्रमुत्तरेषां प्रथमम्। ब्रह्म चैवास्मै क्षत्रं च समीची दधाति।— तै.ब्रा.१.७.७.४

२०९. ऐन्द्रः पशूनामुत्तमो भवति। ऐन्द्रः पुरोडाशानां प्रथमः।— तै.ब्रा.१.८.६.२

२१०. अनुष्टुप्प्रथमा भवति। अनुष्टुगुत्तमा। वाग्वा अनुष्टुक्। वाचैव प्रयन्ति। वाचोद्यन्ति।----सौर्यनुष्टुगुत्तमा भवति। सुवर्गस्य लोकस्य संतत्यै।---- एकविँशोऽभिषेचनीयस्योत्तमो भवति। एकविँशः केशवपनीयस्य प्रथमः।— तै.ब्रा.१.८.८.२

२११. अग्निरग्रे प्रथमो देवतानाम्। संयातानामुत्तमो विष्णुरासीत्।---अग्निश्च विष्णो तप उत्तमं महः। दीक्षापालेभ्यो वनतँ हि शक्रा।---- — तै.ब्रा.२.४.३.४

२१२. उद्वयं तमसस्परि। पश्यन्तो ज्योतिरुत्तरम्। देवं देवत्रा सूर्यम्। अगन्म ज्योतिरुत्तमम्।— तै.ब्रा.२.४.४.९

२१३. युनज्मि त उत्तरावन्तमिन्द्रम्। येन जयासि न पराजयासै। स त्वाऽकरेकवृषभँ स्वानाम्। अथो राजन्नुत्तमं मानवानाम्।— तै.ब्रा.२.४.७.८

२१४. श्यामाकसक्तूंस्त्रेधा विभज्य तृतीयांशं सुरायामुपरि विकीर्य तदुपरि दुग्धपरिषेचनार्थो मन्त्रः :- परीतो षिञ्चता सुतम्। सोमो य उत्तमँ हविः। दधन्वा यो नर्यो अप्स्वन्तरा। सुषाव सोममद्रिभिः।— तै.ब्रा.२.६.१.१

२१५. होता यक्षत्प्रचेतसा। देवानामुत्तमं यशः। होतारा दैव्या कवी। सयुजेन्द्रं वयोधसम्।— तै.ब्रा.२.६.१७.५

२१६. पञ्च (उक्षाणः) उत्तमेऽहन्नालभ्यन्ते। वर्षिष्ठमिव ह्येतदहः।— तै.ब्रा.२.७.११.१

२१७. अवते हेड उदुत्तमम् इति।— तै.ब्रा.२.७.१६.४

२१८. पशोर्वपापुरोडाशहविःषु प्रत्येकं याज्यापुरोनुवाक्ययोः प्रतीके दर्शयति-उदुत्तमं वरुणास्तभ्नाद्याम्।— तै.ब्रा.२.८.१.६

२१९. पौर्णमासीदेवतायाः पुरोनुवाक्या : पूर्णा पश्चादुत पूर्णा पुरस्तात्। उन्मध्यतः पौर्णमासी जिगाय। तस्यां देवा अधिसंवसन्त। उत्तमे नाक इह मादयन्ताम्।— तै.ब्रा.३.१.११.२

२२०. वपापुरोडाशस्विष्टकृतां मैत्रावरुण-वक्तृकाः पुरोनुवाक्याः :- आ वृत्रहणा वृत्रहभिः शुष्मैः। इन्द्र यातं नमोभिरग्ने अर्वाक्। युवँ राधोभिरकवेभिरिन्द्र। अग्ने अस्मे भवतमुत्तमेभिः।— तै.ब्रा.३.६.८.१

२२१. ऽऽहवनीयेऽन्वाधीयमाने जप्यं मन्त्रत्रयम् : अग्निं गृह्णामि सुरथं यो मयोभूः। य उद्यन्तमारोहति सूर्यमह्ने। आदित्यं ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमम्। श्वो यज्ञाय रमतां देवताभ्यः।— तै.ब्रा.३.७.४.३

२२२. वेदेर्मध्ये तिर्यक्त्वेन साद्यमानयोर्विधृत्याख्ययोर्दर्भयोरनुमन्त्रणे मन्त्रम् : ---- अहँ स्वानामुत्तमोऽसानि देवाः। विशो यन्त्रे नुदमाने अरातिम्।--- तै.ब्रा.३.७.६.७

२२३. पूर्णाहुतिमुत्तमां जुहोति। सर्वं वै पूर्णाहुतिः। सर्वमेवाऽप्नोति। अथो इयं वै पूर्णाहुतिः।— तै.ब्रा.३.८.१०.५

२२४. पूर्णाहुतिमुत्तमां जुहोति। प्रत्यत्तब्ध्यै सयत्वाय।— तै.ब्रा.३.८.११.२

२२५. गव्यान्पशूनुत्तमेऽहन्नालभते। तेनैवोभयान्पशूनवरुन्धे।— तै.ब्रा.३.९.९.२

२२६. जुम्बकाय स्वाहेत्यवभृथ उत्तमामाहुतिं जुहोति। वरुणो वै जुम्बकः। अन्तत एव वरुणमवयजते।— तै.ब्रा.३.९.१५.२

२२७. सावित्र चयनाभिधानम् : अयमहँ सावित्रः। देवानामुत्तमो लोकः। गुह्यं महो बिभ्रदिति।— तै.ब्रा.३.१०.९.१२

२२८. हिरण्येष्टको भवति। यावदुत्तममङ्गुलिकाण्डं यज्ञपरुषा संमितम्। तेजो हिरण्यम्।— तै.ब्रा.३.१२.५.१२

२२९. अग्निर्मुखं प्रथमो देवतानामग्निश्च विष्णो तप उत्तमं मह इत्याग्नावैष्णवस्य हविषो याज्यानुवाक्ये भवतः इति।-ऐतरेय ब्राह्मण १.४

२३०. ऊर्ध्वा दिशा : उत्तमामदितिं यजति - ऐ.ब्रा.१.७

२३१.------इयं ह्यदितिस्तदुत्तमामदितिं यजति यदुत्तमामदितिं यजति यज्ञस्य प्रज्ञात्यै स्वर्गस्य लोकस्यानुख्यात्यै।-ऐ.ब्रा.१.८

२३२. आद्यन्तयोर्ऋचोरावृत्तिः :- तासां त्रिः प्रथमामन्वाह त्रिरुत्तमाम्। ता द्वादश संपद्यन्ते।- ऐ.ब्रा.१.१३

२३३. यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवा इत्युत्तमया परिदधाति।-ऐ.ब्रा.१.१६

२३४. आद्यन्तयोर्ऋचारावृत्ति विधिः :- तासां त्रिः प्रथमामन्वाह :- त्रिरुत्तमां ताः सप्तदश संपद्यन्ते।---- -- त्रिः प्रथमां त्रिरुत्तमामन्वाह यज्ञस्यैव तद्वर्सो नह्यति स्थेम्ने बलायाविस्रंसाय।-ऐ.ब्रा.१.१६

२३५. द्युभिरक्तुभिः परिपातमस्मानित्युत्तमया परिधाति।-ऐ.ब्रा.१.२१

२३६. अभिष्टवस्य समाप्तिः :- सूयवसाद्भगवती हि भूया इत्युत्तमया परिदधाति।-ऐ.ब्रा.१.२२

२३७. त्वं दूतस्त्वमु नः परस्पा इत्युत्तमया परिदधाति।-ऐ.ब्रा.१.२८

२३८. आद्यन्तयोर्ऋचोरावृत्तिः :- तासां त्रिः प्रथमामन्वाह त्रिरुत्तमां ता द्वादश संपद्यन्ते।-ऐ.ब्रा.१.२८

२३९. परि त्वा गिर्वणो गिर इत्युत्तमया परिदधाति।-ऐ.ब्रा.१.२९

२४०. एतद्वै यज्ञस्य समृद्धं यद् रूपसमृद्धं यत्कर्म क्रियमाणमृगभिवदति तासां त्रिः प्रथमामन्वाह त्रिरुत्तमां ता द्वादश संपद्यन्ते------- त्रिः प्रथमां त्रिरुत्तमामन्वाह यज्ञस्यैव तद्वसौ नह्यति स्थेम्ने बलायाविस्रंसाय। -ऐ.ब्रा.१.२९

२४१. दाधार दक्षमुत्तममहर्विदं- ऐ.ब्रा. १.३०

२४२. तासां त्रिः प्रथमामन्वाह त्रिरुत्तमां वा एकविंशतिः संपद्यन्त एकविंशो वै प्रजापतिः------- -उत्तमा प्रतिष्ठा तद्वैवं क्षत्रं सा श्रीस्तदाधिपत्यं तद्ब्रध्नस्य विष्टपं तत्प्रजापतेरायतनं तत्स्वाराज्यम्।-ऐ.ब्रा.१.३०

२४३. युवा सुवासाः परिवीत आगादित्युत्तमया परिदधाति। प्राणो वै युवा सुवासाः सोऽयं शरीरैः परिवृतः।-ऐ.ब्रा.२.२

२४४. तासां त्रिः प्रथमामन्वाह त्रिरुत्तमां ता एकादश संपद्यन्त एकादशाक्षरा वै त्रिष्टुप् त्रिष्टुबिन्द्रस्य वज्र---- -ऐ.ब्रा.२.२

२४५. प्रातरनुवाकस्य समाप्तिमृचं : अभूदुषा रुशत्पशुरित्युत्तमया परिदधाति।-ऐ.ब्रा.२.१८

२४६. सप्तैता अनुष्टुभस्तास्त्रिः प्रथमया त्रिरुत्तमयेकादश भवन्ति----ऐ.ब्रा.२.३७

२४७. नू नो रास्व सहस्रवत्तोकवत्पुष्टिमद्वस्वित्युत्तमया परिदधात्यात्मा वै समस्तः सहस्रवांस्तोकवान्पुष्टिमान्---ऐ.ब्रा.२.४०

२४८. नू नो रास्व सहस्रवत्तोकवत्पुष्टिमद्वस्वित्युत्तमया परिदधाति संवत्सरो वै समस्तः सहस्रवांस्तोकवान्पुष्टिमान्-- -ऐ.ब्रा.२.४१

२४९. वयः सुपर्णा उपसेदुरिन्द्रमित्युत्तमया परिदधाति।-ऐ.ब्रा.३.१९

२५०.--- आहावश्च हिंकारश्च प्रस्तावश्च प्रथमा च ऋगुद्गीथश्च मध्यमा च प्रतिहारश्चोत्तमा च निधनं च वषट्कारश्च।-ऐ.ब्रा.३.२३

२५१. अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमित्युत्तमया परिदधातीयं वा अदितिरियं द्यौरियमन्तरिक्षम्।-ऐ.ब्रा.३.३१

२५२. एवा न इन्द्रो मघवा विरप्शीत्युत्तमया परिदधातीयं वा इन्द्रो मघवा विरप्शी इति। ऐ.ब्रा.३.३८

२५३. तृतीय पर्यायः :- उत्तमेन पर्यायेण स्तुवत उत्तमान्वेव पदानि पुनराददते यदेवैषां वासो हिरण्यं मणिरध्यात्ममासीत्तदेवैषां तेनाऽऽददते।-ऐ.ब्रा.४.६

२५४. चतुस्त्रिंशो वै स्तोमानामुत्तमस्तेषु वा एष एतदध्याहितस्तपति।-ऐ.ब्रा.४.१८

२५५. द्वादशाहे तृतीयस्याह्नो रूपाणि :--- - यदन्तरूपं यदुत्तमे पदे देवता निरुच्यते----एतानि वै तृतीयस्याह्नो रूपाणि।-ऐ.ब्रा.५.१

२५६. षष्ठमस्याह्नो रूपाणि :-- -यदन्तरूपं यदुत्तमे पदे देवता निरुच्यते यदसौ लोकोऽभ्युदितः-ऐ.ब्रा.५.१२

२५७. नवमस्याह्नो रूपाणि : यदन्तरूपं यदुत्तमे पदे देवता निरुच्यते यदसौ लोकोऽभ्युदितः-ऐ.ब्रा.५.२०

२५८. द्वयेवोत्तमे सूक्ते पर्यस्यति स एव तयोर्विहारः।-ऐ.ब्रा.६.२४, ६.२९

२५९. अपत्नीकोऽग्निहोत्रं : कथमग्निहोत्रं जुहोति श्रद्धा पत्नी सत्यं यजमानः श्रद्धा सत्यं तदित्युत्तमं मिथुनं-- -ऐ.ब्रा.७.१०

२६०. तस्य ह स्मर्च्यृच्युक्तायां वि पाशो मुमुचे कनीय ऐक्ष्वाकस्योदरं भवत्युत्तमस्यामेवर्च्युक्तायां वि पाशो मुमुचेऽगद ऐक्ष्वाक आस।-ऐ.ब्रा.७.१७

२६१. दीक्षा : इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरुत्तम्।- ऐ.ब्रा.७.२०

२६२. पात्रेषुरसग्रहणाय पूर्वमुपावहृतस्य सोमस्याभिषवः :- आ ददे ग्रावाऽस्यध्वरकृद्देवेभ्यो गम्भीरमिममध्वरं कृध्युत्तमेन पविनेन्द्राय सोमँ सुषुतं---- -तैत्तिरीय संहिता १.४.१.१

२६३. पशुकामादीनां पशुविधिः :- इन्द्रो वलस्य बिलमपौर्णोत्स य उत्तमः पशुरासीत्तं पृष्ठं प्रति संगृह्योदक्खिदत्तँ सहस्रं पशवोऽनूदायन्त्स उन्नतोऽभवत्-----— तै.सं.२.१.४.१

२६४. आदित्यचर्वादीष्टिविधिः :- यया रज्ज्वोत्तमां गामाजेत्तां भ्रातृव्याय प्र हिणुयान्निर्ऋतिमेवास्मै प्रहिणोति।— तै.सं.२.२.६.५

२६५. भ्रातृव्यवतो विजितिसंज्ञकेष्टिविधिः :- तां वाव देवा विजितिमुत्तमामसुरैर्व्यजयन्त यो भ्रातृव्यवान्त्स्यात्स स्पर्धमान एतयेष्ट्या यजेत— तै.सं.२.४.२.३

२६६. सा वा एषा विजितिर्नामेष्टिर्य एवं विद्वानेतयेष्ट्या यजत उत्तमामेव विजितिं भ्रातृव्येण वि जयते।— तै.सं.२.४.२.४

२६७. हौत्रविवक्षया सामिधेनीव्याख्यानम् : त्रिः प्रथमामन्वाह त्रिरुत्तमां (आ जुहोत दुवस्यत इति)यज्ञस्यैव तद्वर्सम् नह्यत्यप्रस्रंसाय— तै.सं.२.५.७.१

२६८. बार्हतीम् (बृहच्छोचा यविष्ठ्येति) उत्तमामन्वाह बार्हतो वा असौ लोकोऽमुमेव लोकमभि जयति— तै.सं.२.५.७.२

२६९. चित्रायागविधिः :- वाग्वै सिनीवाली पुष्टिः खलु वै वाक्पुष्टिमेव वाचमपैत्यैन्द्र उत्तमो भवति तेनैव तन्मिथुनँ— तै.सं.२.४.५.२

२७०. प्रधानभूताग्नेयपुरोडाशाभिधानम् : अङ्गिरसो वा इत उत्तमाः सुवर्गं लोकमायन्तदृषयो यज्ञवास्त्वभ्यवायन्ते अपश्यन्पुरोडाशं कूर्मं भूतँ सर्पन्तं---— तै.सं.२.६.३.२

२७१. दर्शपूर्णमासेष्ट्यङ्गभूतान्वारम्भणीयेष्टि-विधिः :- पूर्णा पश्चादुत पूर्णा पुरस्तादुन्मध्यतः पौर्णमासी जिगाय। तस्यां देवा अधि संवसन्त उत्तमे नाक इह मादयन्ताम्।— तै.सं.३.५.१.१

२७२. देविकाख्यपञ्चविधहविरुत्कर्षकरण-पूर्वक-बहुविधकाम्यप्रयोगाभिधानम् : यातयामानीव खलु वा एतस्य छन्दाँसि य ईजान उत्तमं धातारं करोति।— तै.सं.३.४.९.४

२७३. अतिमोक्षमन्त्राः :- येनेन्द्राय समभरः पयाँस्युत्तमेन हविषा जातवेदः। तेनाग्ने त्वमुत वर्धयेमँ सजातानाँ श्रैष्ठ्य आ धेह्येनम्।— तै.सं.३.५.४.२

२७४. मृदाक्रान्त्यभिधानम् : उदक्रमीद् द्रविणोदा वाज्यर्वाऽकः स लोकँ सुकृतं पृथिव्याः। ततः खनेम सुप्रतीकमग्निँ सुवी रुहाणा अधि नाक उत्तमे।— तै.सं.४.१.२.४

२७५. पञ्चपश्वङ्गभूताग्निकसाभिधानम् : उद्वयं तमसस्परि पश्यन्तो ज्योतिरुत्तमम्। देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्।— तै.सं.४.१.७.४

२७६. आहवनीयचयनार्थं भूकर्षणाभिधानम् : अयस्मयं वि चृता बन्धमेतम्। यमेन त्वं यम्या संविदानोत्तमं नाकमधि रोहयेमम्।— तै.सं.४.२.५.३

२७७. आहवनीयचयनार्थौषधिवापाभिधानम् : याः ओषधयः सोमराज्ञीः प्रविष्टाः पृथिवीमनु। तासां त्वमस्युत्तमा प्र णो जीवातवे सुव।— तै.सं.४.२.६.५

२७८. आहवनीयचयनार्थलोष्टक्षेपाद्याभिधानम् : सं त पयाँसि समु यन्तु वाजाः सं वृष्णियान्यभिमातिषाहः। आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रवाँस्युत्तमानि धिष्व।— तै.सं.४.२.७.४

२७९. याज्यानुवाक्याभिधानम् : अव ते हेड (पुरोनुवाक्या) उदुत्तमम् (याज्या)।— तै.सं.४.२.११.२

२८०. होमाभिधानम् : अत्रा ते (अश्वस्य) रूपमुत्तममपश्यं जिगीषमाणमिष आ पदे गोः।— तै.सं.४.६.७.३

२८१. अग्नियोगाभिधानम् : येना सहस्रं वहसि येनाग्ने सर्ववेदसम्। तेनेमं यज्ञं नो वह देवयानो यः उत्तमः।— तै.सं.४.७.१३.४

२८२. उख्यस्य जननम् : विश्वे देवस्य नेतुरित्यनुष्टुभोत्तमया जुहोति वाग्वा अनुष्टुप्तस्मात्प्राणानां वागुत्तमा— तै.सं.५.१.८.१

२८३. वह्निपशवः :- अगन्म ज्योतिरुत्तमित्याहासौ वा आदित्यो ज्योतिरुत्तममादित्यस्यैव सायुज्यं गच्छति-----ज्योतिष्मतीमुत्तमामन्वाह ज्योतिरेवास्मा उपरिष्टाद्दधाति सुवर्गस्य लोकस्यानुख्यात्यै।— तै.सं.५.१.८.६

२८४. उख्याग्निनयनम् : चत्वारि छन्दाँसि छन्दोभिरेवातिच्छन्दसोत्तमया वर्ष्म वा एषा छन्दसां यदतिच्छन्दा— तै.सं.५.२.१.५, ५.२.२.२

२८५. स्वयमातृण्णाद्यभिधानम् : ज्योतिष्मतीमुत्तमामुपदधाति तस्मात्प्राणानां वाग्ज्योतिरुत्तमा — तै.सं.५.३.२.३

२८६. असपत्नविराडाख्येष्टकाभिधानम् : पशुर्वा एष यदग्निर्विराज उत्तमायां चित्यामुप दधाति विराजमेवोत्तमां पशुषु दधाति तस्मात्पशुमानुत्तमां वाचं वदति— तै.सं.५.३.५.३

२८७. नाकसदादिपञ्चविधेष्टकाभिधानम् : पश्चात्प्राचीमुत्तमामुप दधाति तस्मात्पश्चात्प्राची-पत्न्यन्वास्ते स्वयमातृण्णां च विकर्णीं चोत्तमे उप दधाति प्राणो वै स्वयमातृण्णा ऽऽयुर्विकर्णी प्राणं चैवाऽऽयुश्च प्राणानामुत्तमौ धत्ते तस्मात्प्राणश्चाऽऽयुश्च प्राणानामुत्तमौ— तै.सं.५.३.७.३

२८८. परिषेचनाद्यभिधानम् : एता वै देवताः सुवर्ग्या या उत्तमास्ता यजमानं वाचयति ताभिरेवैनँ सुवर्गं लोकं गमयति — तै.सं.५.४.३.५

२८९. अश्वमेधीयस्तोत्रसंबन्ध्यृगाद्यभिधानम् : सर्वस्तोमोऽतिरात्र उत्तममहर्भवति सर्वस्याऽऽप्त्यै सर्वस्य जित्यै— तै.सं.५.४.१२.३

२९०. रेतःसिगाद्यभिधानम् : यः सिक्तरेताः स्यात्प्रथमायां तस्य चित्यामन्यामुप दध्यादुत्तमायामन्याँ रेतं एवास्य सिक्तमाभ्यामुभयतः परिगृह्णाति— तै.सं.५.५.४.२

२९१. यूपैकत्वादीनामभिधानम् : येऽग्नयः पुरीष्याः प्रविष्टाः पृथिवीमनु। तेषां त्वमस्युत्तमः प्र णो जीवातवे सुव।— तै.सं.५.५.७.५

२९२. होमविशेषाणां राष्ट्रभृदिष्टकानां चाभिधानम् : अयं मूर्धा परमेष्ठी सुवर्चाः समानानामुत्तमश्लोको अस्तु।— तै.सं.५.७.४.३

२९३. अवदानाभिधानम् :-----मध्यतो गुदस्यावद्यति मध्यतो हि प्राण उत्तमस्यावद्यति उत्तमो हि प्राणो यदीतरं यदीतरमुभयमेवाजामि----- तै.सं.६.३.१०.४

२९४. ध्रुवग्रहकथनम् : आयुर्वा एतद्यज्ञस्य यद्ध्रुव उत्तमो ग्रहाणां गृह्यते तस्मादायुः प्राणानामुत्तमं— तै.सं.६.५.२.१

२९५. ---मध्यतोऽवनीय इत्याहुर्मध्यमेन ह्यायुषो भुङ्क्ते उत्तरार्धेऽवनीय इत्याहुरुत्तमेन ह्यायुषो भुङ्क्ते वैश्वदेव्यामृचि शस्यमानायामव नयति वैश्वदेव्यो वै प्रजाः प्रजास्वेवाऽऽयुर्दधाति।— तै.सं.६.५.३.३

२९६. पात्नीवतग्रहकथनम् : प्राणो वा एष यदुपाँशुर्यदुपाँशुपात्रेण प्रथमश्चोत्तमश्च ग्रहौ गृह्येते प्राणमेवानु प्रयन्ति प्राणमनूद्यन्ति— तै.सं.६.५.८.१

२९७. षोडशिग्रहकथनम् : अनुष्टुभमभि सं पादयन्ति वाग्वा अनुष्टुप्तस्मात्प्राणानां वागुत्तमा— तै.सं.६.६.११.६

२९८. सहस्रतमीदानविधिः :- क्षिप्रे सहस्रं प्र जायत उत्तमा नीयते प्रथमा देवान्गच्छति— तै.सं.७.१.७.४

२९९. पृष्ठ्यषडहविषयविकल्पाभिधानम् : प्रथमे मासि पृष्ठान्युप यन्ति मध्यम उपयन्त्युत्तम उप यन्ति तदाहुर्यां वै त्रिरेकस्याह्न उपसीदन्ति दह्रं वै सा-- — तै.सं.७.५.३.१

३००. सामविषेशकथनम् : अथो यथा सुपर्ण उत्पतिष्यञ्छिर उत्तमं कुरुत एवमेव तद्यजमानाः प्रजानामुत्तमा भवन्ति— तै.सं.७.५.८.५

३०१. वैराजो वै पुरुषः सप्त ग्राम्याः पशवो यद्दशपुर्व्वा भवन्ति सप्तोत्तमा यजमानमेव तत् पशुषु प्रतिष्ठापयति।-ताण्ड्य ब्रा.२.७.८

३०२. यत्सप्तैव मध्ये समपद्यन्ते ते नो सा सप्त भजते य उत्तमो हिङ्कारः स उत्तमाया यत्तां सप्तभ्यो हिङ्करोति तेन सा सप्त भजते-— तां.ब्रा.२.९.३

३०३. सैषा त्रिवृत्प्रायणा त्रिवृदुदयना यत्त्रिवृद्वहिष्पवमानं भवति नवैता एकविंशस्योत्तमा भवन्ति प्राणा वै त्रिवृत्-- — तां.ब्रा.२.१५.३

३०४. य एव स्तोमा यज्ञं वहन्ति तानुत्तमे स्तोत्रे सन्तर्पयति यथानडुहो वाश्वान्वाश्वतरान्वोहुषः सन्तर्पयेदेवमेतदुत्तमे स्तोत्रे स्तोमान् सन्तर्पयति-- — तां.ब्रा.२.१६.३

३०५.----यदेताः सप्त त्रयस्त्रिंशस्योत्तमा भवन्ति-- — तां.ब्रा.३.७.२

३०६. यद्बहुदेवत्यमुत्तमं पदं तेन वैश्वदेवं सर्वेष्वेव रूपेषु प्रतितिष्ठति— तां.ब्रा.७.८.७

३०७.--- -तस्मादुष्णिहउत्तमं पदं भूयिष्ठाक्षरं पुरो गुरुरिव हि वज्रः।— तां.ब्रा.८.५.२

३०८. अनुष्टुभमुत्तमां सम्पादयतीयं वा अनुष्टुबस्यामेव प्रतितिष्ठति।— तां.ब्रा.८.७.२

३०९. स वानुत्तमः षड्ृचो भवत्युभयस्य परोक्षप्रत्यक्षस्यावरुध्यै। तृच उत्तमो भवति येनैव प्राणेन प्रयन्ति तमभ्युद्यन्ति।— तां.ब्रा.१५.१.१२

## उत्तम-मध्यम-अधम

१. उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय। अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम।— ऋ.१.२४.१५

२. उदुत्तमं मुमुग्धि नो वि पाशं मध्यमं चृत। अवाधमानि जीवसे।— ऋ.१.२ ५.२१

३. यदुत्तमे मरुतो मध्यमे वा यद् वावमे सुभगासो दिवि ष्ठ। अतो नो रुद्रा उत वा न्वस्याऽग्ने वित्ताद्धविषो यद् यजाम।।— ऋ.५.६०.६

४. उदगातां भगवती विचृतौ नाम तारके। वि क्षेत्रियस्य मुञ्चतामधमं पाशमुत्तमम्।-अथर्ववेद२.८.१

५. अभू ये दिवि सुभगे विचृतौ नाम तारके। वि क्षेत्रियस्य मुञ्चतामधमं पाशमुत्तमम्।।-अथर्व ३.७.४

६. यत् ते अपोदकं विषं तत् त एतास्वग्रभम्। गृह्णामि ते मध्यममुत्तमं रसमुतावमं भियसा नेशदादु ते।।-अथर्व ५.१३.२

७. विषाणा पाशान् वि ष्याध्यस्मद् य उत्तमा अधमा वारुणा ये।-अथर्व६.१२१.१

८. उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय। अधा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम।। प्रास्मत् पाशान् वरुण मुञ्च सर्वान् य उत्तमा अधमा वारुणा ये। दुष्वप्न्यं दुरितं नि ष्वास्मदथ गच्छेम सुकृतस्य लोकम्।-अथर्व ७.८८.३/७.८३.३

९. उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय।- अथर्व १८.४.६९

१०. ये (असुराः) प्रथमरात्रेण छन्ना आसंस् तान् प्रथमेन पर्यायेणाघ्नन्।---- ये मध्यरात्रेण छन्ना आसंस् तान् मध्यमेन पर्यायेणाघ्नन्।---- -ये ऽपररात्रेण छन्ना आसंस् तान् उत्तमेन पर्यायेणाघ्नन्।------।-जैमिनीय ब्रा.१.२०८

११. प्रेति पवमानस्य प्रथमेत्य् उत्तमैवम् इव ह्य् एतद् अहः। तस्माद् वयस् सम्यक् पक्षाभ्याम् एवैते।— जै.ब्रा.३.१७६

१२. द्वादशाहः :- ऊर्ध्वो वै प्रथमास्त्र्यहस्तिर्यङ्मध्यमोऽहर्ऽउत्तमः स यदूर्ध्वः प्रथमस्त्र्यहस्तस्मादयमग्निरूर्ध्व उद्दीप्यत ऊर्ध्वा ह्येतस्य दिग्यत्तिर्यङ्मध्यमस्तस्मादयं वायुस्तिर्यङ्पवति------ ऐ.ब्रा.४.२५

१३. तान् (असुरान्) वै प्रथमैरेव पर्यायैः पूर्वरात्रादनुदन्त, मध्यमैर्मध्यरात्राद, उत्तमैरपररात्रात्।-गोपथ ब्रा.२.५.१

१४. प्रथमेषु पर्यायेषु स्तुवते, प्रथमान्येव पदानि पुनराददते। यदेवैषां मनोरथा आसन्, तदेवैषां तेनाददते।

मध्यमेषु पर्यायेषु स्तुवते, मध्यमान्येव पदानि पुनराददते। यदेवैषामश्वा गाव आसन्, तदेवैषां तेनाददत। उत्तमेषु पर्यायेषु स्तुवते, उत्तमान्येव पदानि पुनराददते। यदेवैषां वासो हिरण्यं मणिरध्यात्ममासीत्, तदेवैषां तेनाददते।- गो.ब्रा.२.५.२

१५. यज्ञो वै विष्णुः।----इदमेव प्रथमेन पदेन पस्पार, अथेदमन्तरिक्षं द्वितीयेन, दिवमुत्तमेन।-शतपथ ब्राह्मण १.१.२.१३

१६. याजमानो विष्णुक्रमः :- इदमेव प्रथमेन पदेन पस्पार स अथेदमन्तरिक्षं द्वितीयेन, दिवमुत्तमेन, एताम्वेवैष एतस्मै विष्णुर्यज्ञो विक्रान्तिं विक्रमते।— श.ब्रा.१.९.३.९

१७. इदमेव प्रथमेन पदेन पस्पार, अथेदमन्तरिक्षं द्वितीयेन दिवमुत्तमेन।— श.ब्रा.३.६.३.३

१८. उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय इति।— श.ब्रा.६.७.३.८

१९. कुलायिनी विष्टुतिः :- तिसृभ्यो हिङ्करोति स पराचीभिस्तिसृभ्यो हिङ्करोति या मध्यमा सा प्रथमा योत्तमा सा मध्यमा तिसृभ्यो हिङ्करोति योत्तमा सा प्रथमा या प्रथमा सा मध्यमा या मध्यमा सोत्तमा कुलायिनी त्रिवृतो विष्टुतिः।-ताण्ड्य ब्रा.२.३.१

२०. कुलायिनी विष्टुतिः :- एतामेव बहुभ्यो यजमानेभ्यः कुर्य्यात् यत्सर्व्वा अग्रिया भवन्ति सर्व्वा मध्ये सर्व्वा उत्तमाः सर्व्वानिवैनान् समावद्राजः करोति-- --- तां.ब्रा.२.३.४

२१. (स्तोत्रीय तृचस्य) ब्रह्मणो वा आयतनं प्रथमा क्षत्रस्य मध्यमा विश उत्तमा, यत् प्रथमा भूयिष्ठा भाजयति ब्रह्मण्येव तदोजोवीर्य्यन्दधाति ब्रह्मण एव तत् क्षत्रञ्च विशञ्चानुगे करोति क्षत्रस्येवास्य प्रकाशो भवति य एतया स्तुते।— तां.ब्रा.२.८.२

२२. यत् सप्त प्रथमास्सप्तोत्तमास्तिस्रो मध्ये त्र्यक्षरः पुरुषो लोकमेवास्मै तन्मध्यतः करोति तस्मिंल्लोके प्रतितिष्ठति।— तां.ब्रा.२.१०.२

२३. चतुश्चत्वारिंशस्य तिस्रो विष्टुतयः :- ब्रह्मणो वा आयतनं प्रथमा क्षत्रस्य मध्यमा विश उत्तमा यत् पञ्चदशिन्यौ पूर्वे भवतश्चतुर्दशोत्तमा ब्रह्मणि चैव तत् क्षत्रे चौजो वीर्य्यं दधाति ब्रह्मणे चैव तत् क्षत्राय च विशमनुगां करोति क्षत्रस्येवास्य प्रकाशो भवति य एतया स्तुते।— तां.ब्रा.३.९.२

२४. इमे वै लोका एते स्तोमा अयमेव ज्योतिरयम्मध्यमो गौरसावुत्तम आयुः।— तां.ब्रा.४.१.७

२५. इमे वै लोका एतानि छन्दांस्ययमेव गायत्ययं मध्यमो बृहत्यसावुत्तमस्त्रिष्टुब् यदेतैश्छन्दोभिः संहितैः स्तुवन्त्येषां लोकानामविच्छेदाय।— तां.ब्रा.७.३.९

२६. त्रीन् प्रथमायां रोहति भूतं भवद्भविष्यत्तानेवावरुन्धे त्रीन् मध्यमायां रोहत्यात्मानं प्रजां पशूंस्तानेवावरुन्धे त्रीनुत्तमायां रोहति त्रय इमे लोका एष्वेव लोकेषु प्रतितिष्ठति।— तां.ब्रा.७.७.७

२७.-----मध्यमानि पदानि पुनरादीनि भवन्ति मध्यमस्य पर्य्यायस्य मध्यमैर्हि पदैः पुनरादायम्मध्यमरात्रात्प्राणुरुदन्त। त उत्तमं पर्य्यायमश्रयन्त तेषां घृतश्च्युन्निधनेन पशूनवृञ्जत पशवो वै घृतश्च्युतः।---- -उत्तमानि पदानि पुनरादीनि भवन्त्युत्तमस्य पर्य्यायस्योत्तमैर्हि पदैः पुनरादायमुत्तमरात्रात्प्राणुदन्त।— तां.ब्रा.९.१.१९

२८. तृच उत्तमो भंवति येनैव प्राणेन प्रयन्ति तमभ्युद्यन्ति।— तां.ब्रा.१२.१.१०

२९. आर्भव पवमानस्याद्यस्तोत्रीयं तृचं : द्रवन्तीमिडामुत्तमामुपयन्ति चतुर्थस्याह्नः सन्तत्यै स्तोमः।— तां.ब्रा.१२.५.२५

३०. तृच उत्तमो भवति येनैव प्राणेन प्रयन्ति तमभ्युद्यन्त्येकविंश एव स्तोमो भवति प्रतिष्ठायै प्रतितिष्ठति।— तां.ब्रा.१२.७.१०, १३.१.१२

## उत्तरायण

१. मनोजवा अयमान आयसीमतरत् पुरम्।— ऋ.८.१००.८

२. नीचायमानं जसुरिं न श्येनं श्रवश्चाच्छा पशुमद्य यूथम्।— ऋ.४.३८.५

३. कृत्या : यस्ते परूंषि संदधौ रथस्येवर्भुर्धिया। तं गच्छ तत्र ते ऽयनमज्ञातस्तेऽयं जनः।।- अथर्ववेद१०.१.८७

४. ईर्माभ्यामयनं जातं सक्थिभ्यां च वशे तव।— अ.१०.१०.२१

५. अङ्गिरसामयनं पूर्वो अग्निरादित्यानामयनं गार्हपत्यो दक्षिणानामयनं दक्षिणाग्निः।—अ.१८.४.८

६. पूर्वो अग्निष्ट्वा तपतु शं पुरस्ताच्छं पश्चात् तपतु गार्हपत्यः। दक्षिणाग्निष्टे तपतु शर्मवर्मोत्तरतो मध्यतो अन्तरिक्षाद्, दिशोदिशो अग्ने परि पाहि घोरात्।।— अ.१८.४.९

७. अग्निर्होताध्वर्युष्टे बृहस्पतिरिन्द्रो ब्रह्मा दक्षिणतस्ते अस्तु। हुतोऽयं संस्थितो यज्ञ एति यत्र पूर्वमयमनं हुतानाम्।।— अ.१८.४.१५

८. पुनर्वसू सूनृता चारु पुष्यो भानुराश्लेषा अयनं मघा मे।— अ.१९.७.२

९. तस्माद्धेनुर्दक्षिणा। एतन्वेकमयनम्।-शतपथ ब्राह्मण २.२.१.२१

१०. पिण्डपितृयज्ञः :- तस्माद्यो मनुष्याणां मेद्यति-अशुभे मेद्यति विहूर्च्छति हि न हि अयनाय चन भवति।— श.ब्रा.२.४.२.६

११. साकमेध पर्व : अथेडामेवावद्यति, न प्राशित्रम्। उपहूय, मार्जयन्ते। एतन्वेकमयनम्। अथेदं द्वितीयम्।-- — श.ब्रा.२.५.३.१०

१२. अवभृथ स्नानम् : ता वा एता षडाहुतयो भवन्ति। षड्वा ऋतवः संवत्सरस्य।---- एतदादित्यानामयनम्।--एतानेव चतुरः प्रयाजानपबर्हिषो यजेत्---एतदङ्गिसामयनम् (पुरोडाशाहुति)। अतोन्यतरत्कृत्वा--- श.ब्रा.४.४.५.१९

१३. या ह दीक्षा-सा निषत्, तत्सत्रम्, तदयनम्, तत्सत्रायणम्।— श.ब्रा.४.६.८.२

१४. राजानं प्रणयति। उद्यत एवैष आग्नीध्रीयोऽग्निर्भवति। तऽएकैकमेवोल्मुकमादाय यथाधिष्ण्यं विपरायन्ति। तैरेव तेषामुल्मुकैः प्रघ्नन्तीति ह स्माह----एतन्वेकमयनम्। अथेदं द्वितीयम्। अरणिष्वेवाग्नीन्त्समारोह्योपसमायन्ति-यत्र प्राजापत्येन पशुना यक्ष्यमाणा भवन्ति।-- -अथेदं तृतीयम्- गृहपतेरेवारण्यो सम्वदन्ते-य इतोग्निर्जनिष्यते-स नः सह,-- — श.ब्रा.४.६.८. ७

१५. रात्रि में भोजन करने का प्रश्न : तदाहुः किमयनमिति। स्वयं हैवैते रात्री अग्निहोत्रं जुहुयात्। स यद्धुत्वा प्राश्नाति, तेनापितृदेवत्यो भवति।— श.ब्रा.११.१.७.३

१६. समेन ह वा अस्या व्यृद्धेनान्यूनेना-नतिरिक्तेनायनेनेतं भवति।— श.ब्रा.१२.३.५.१३

१७. श्रीमन्थकर्मब्राह्मणम् : स यः कामयेत। महत्प्राप्नुयामिति। उदगयन आपूर्यमाणपक्षे पुण्याहे द्वादशाहमुपसद्व्रती भूत्वा, औदुम्बरे कंसे चमसे वा सर्वौषधं फलानीति संभृत्य, परिसमुह्य----- श.ब्रा.१४.९.३.११

१८. विराट पुरुष : धाता पुरस्ताद्यमुदाजहार।-- - प्रविद्वान्प्रदिशश्चतस्रः। तमेवं विद्वानमृत इह भवति। नान्यः पन्था अयनाय विद्यते।-तैत्तिरीय आरण्यक ३.१२.७

१९. वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम्। आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्। तमेवं विद्वानमृत इह भवति। नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय— तै.आ.३.१३.१

२०. हरिं हरन्तमनुयन्ति देवाः। विश्वस्येशानं वृषभं मतीनाम्। ब्रह्म सरूपमनु मेदमागात्। अयनं मा विवधीर्विक्रमस्व।— तै.आ.३.१५.१, ४९.१

२१. एतद्वै जरामर्यमग्निहोत्रं सत्रं य एवं विद्वानुदगयने प्रमीयते देवानामेव महिमानं गत्वाऽऽदित्यस्य सायुज्यं गच्छत्यथ यो दक्षिणे प्रमीयते पितृणामेव महिमानं गत्वा चन्द्रमसः सायुज्यं गच्छत्येतौ वै सूर्याचन्द्रमसोर्महिमानौ ब्राह्मणो विद्वानभिजयति---। तै.आ.१०.६४.१

२२. अयं पुरो भूस्तस्य प्राणो भौवायनो वसन्तः प्राणायनो गायत्री वासन्ती गायत्र्या गायत्रं-काठक सं.१६.१८

२३. गायों द्वारा संवत्सर सत्र के अनुष्ठान से शृंग व ऊर्ज आदि प्राप्त करना : दशसु मास्सूत्तिष्ठन्त ऋध्नुवन्ति द्वादशसु य एवं विदुस्तदेतदृद्धमयनं तस्मादेतेन यन्ति।---काठक सं.३३.१

२४. अथ हाप श्रेयसीर् मेनिरे। ताः प्रति त्वा वयम् आतपाम इति यात्रां च प्रयां च प्रायच्छन्। अद्भिर् ह वा एष आदित्यः एतद् एत्य् अपाम् एवायनेन।— जै.ब्रा.२.२६

२५. तद् आहुः किं संवत् किं सरं किम् अयनम् इति।---वाग् एव सरः। वाचा हि पुरुषस् सरति। प्राण एवायनम्। स ह्य् अस्मिन् सर्वस्मिन् एति।---- जै.ब्रा.२.२९

२६. संवत्सर दीक्षा : ततो यांश् चतुरो मासो यन्त्य् अग्नेर् एव तान् अयनेन यन्ति।---अथ यान् अपरांश् चतुरो मासो यन्ति वायोर् एव तान् अयनेन यन्ति।---- यान् अपरांश् चतुरो मासो यन्त्य् आदित्यस्यैव तान् अयनेन यन्ति।— जै.ब्रा.२.४३

२७. पौर्णमासेन हविषेष्ट्वा आदित्याय चरुं निर्वपति।-- -तस्यां अमावास्यायां दीक्षोपरिष्टात् सुत्या। तद् वा एतत् सूर्याचन्द्रमसोर् एवायनम्।— जै.ब्रा.२.९८

२८. स एष समानप्रायणस् समान संबन्धनस् संवत्सरः। तस्य मन एव प्रायणं, वाक् संबन्धनम्।-- - स एष संवत्सरोऽग्निष्टोमान् एवाभिसंपद्यते।— जै.ब्रा.२.५०

२९. इन्द्र द्वारा बल असुर का निग्रह करके गायों की रक्षा का वर्णन : ता हान्तर एव तस्थुर् अयनम् अविन्दमानाः। ता होत्सेधेनैवोत्सिषिधुः।— जै.ब्रा.२.९०

३०. पृथिवी वायुराकाश आपो ज्योतींषीत्येष वा आत्मोक्थं पंचविधमेतस्माद्धीदं सर्वमुत्तिष्ठत्येतमेवाप्येति। अयनं वै समानानां भवति य एवं वेद-ऐतरेय आरण्यक २.३.१

३१. गवामयनेन यन्ति गावो वा आदित्या आदित्यानामेव तदयनेन यन्ति।---- यथा वा प्रायणीयोतिरात्रश्चतुर्विंश उक्थ्यः सर्वेऽभिप्लवाः षडहा आक्ष्यन्त्यन्यान्यहानि तदादित्यानामयनम्। प्रायणीयोऽतिरात्रश्चतुर्विंश उक्थः सर्वे पृष्ठ्याः षडहा अक्ष्यत्यन्याहानि तदङ्गिरसामयनम्।-ऐतरेय ब्राह्मण ४.१७

३२. षट्त्रिंशदहो वा एष यद् द्वादशाहः षट्त्रिंशदक्षरा वै बृहती बृहत्या वा एतदयनं यद् द्वादशाहो----ऐ.ब्रा.४.२४

३३. षट्पदान्यनुनिष्क्रामति षडहं वाङ्नाति वदत्युत संवत्सरस्यायने यावत्येव वाक्तामव रुन्धे-तैत्तिरीय सं.६.१.८.१

३४. गर्ग त्रिरात्रः :- अथाहुर्या द्विरूपोभयत एनी सा देयेति सहस्रस्य परिगृहीत्यै तद्वा एतत्सहस्रस्यायनं सहस्रं स्तोत्रीयाः ---- — तै.सं.७.१.५.७

३५. उदगयनस्याद्यन्तयोरैन्द्राग्नेन पशुना यजेत संवत्सरे संवत्सरे वा।-वाराह श्रौ.सू.१.६.१

३६. अथातो मुन्ययनमित्याचक्षते श्रमणः खारीविवधी-- -बौ.श्रौ.सू.१६.३०

३७. महाव्रतवान्विश्वजित्सर्वपृष्ठोऽतिरात्रः सारस्वतेनायनेनैष्यन्तो द्वयीर्गा उपकल्पयन्त---- बौ.श्रौ.सू.१६.२९

३८. ततो ह जज्ञे भुवनस्य गोपा इत्यग्निष्टोमैर्वाव ते तदीयुस्तदेतदृद्धमयनं प्रजननं यदग्निष्टोमाः।- बौ.श्रौ.सू.१७.१९

३९. कुण्डपायिनामयनेनैष्यन्तो दीक्षन्ते पञ्च सर्वतो धुराः----बौ.श्रौ.सू.१७.२०

४०. अग्निश्चतुर्होता वायुः पञ्चहोता चन्द्रमा षड्होता प्रजापतिः सप्तहोतासावादित्यो नवहोतैता वै देवता एतेनायनेनायंस्ततो वै ता आर्ध्नुवन्सुवर्गं लोकमायन्य एवं विद्वांस एतेनायनेन यन्त्यृध्नुवन्त्येव सुवर्गं लोकं यन्ति।- बौ.श्रौ.सू.१७.२१

४१. उत्सर्गिणामयनेनैष्यन्तो दीक्षन्ते।- बौ.श्रौ.सू. १७.२२

४२. तपश्चितामयनेनैष्यन्तो दीक्षन्ते तेषामियमेव प्रज्ञाता-- -बौ.श्रौ.सू.१७.२३

४३. अयुजां चैव युग्मानां चैव सायुज्यं सलोकतामाप्नुवन्ति य एतेनायनेन यन्ति--- बौ.श्रौ.सू.१८.५१

४४. यथैतदग्निष्टोमायनं सारस्वतमयनं विश्वसृजा-मयनमिति कथमु खल्वेषां संनिवापः स्यादिति--- बौ.श्रौ.सू.२६.१२

४५. अथेदं संसदामयनमच्छन्दोमं भवतीति विज्ञायत---बौ.श्रौ.सू.२६.२१

४६. अथेदं सर्पाणामयनं स्तोमतो विकृतं भवत्यथेदं विश्वसृजामयनं कथमिदानीन्तनेषु स्याद्-बौ.श्रौ.सू.२६.२४

४७. अथेदं कुण्डपायिनामयनमग्निहोत्रपूर्वमेके ब्रुवते सोमपूर्वमुपयन्ति-बौ.श्रौ.सू.२६.२५

४८. व्रीह्याग्रयणस्य कालाच्छ्यामाकाग्रयणस्य कालो नातीयादा यवाग्रयणयस्य कालाद् व्रीह्याग्रयणस्य--- दक्षिणायन पशोः काला-दुत्तरायणपशोः कालो नातीयादोत्तरायण-पशोर्दक्षिणायनपशोः-बौ.श्रौ.सू२८.१२

४९. त्रिषंवत्सरं गवामयनमादित्या-नामङ्गिरसाम्।— आप.श्रौ.सू.२३.१४.१०

५०. उदगयनस्याद्यन्तयोरैन्द्राग्नो निरूढपशु-बन्धः।- शां.श्रौ.सू.६.१.१८

५१. खर्गला इव पत्वरीरपामुग्रमिवायनम्।- कौ.सू.१०७

५२. त्रिरयनमह्नामुपतिष्ठन्ते हविषा च यजन्ते- कौ.सू.१४०

५३. उत्तरे पक्षस्ययनविकल्पाः :- अभिप्लवपृष्ठ्यान् प्रतिलोमानुपयन्त्यहरा-वृत्तकारिणः।— द्रा.श्रौ.सू.८.३.२३

५४. समौ पक्षौ चिकीर्षन् पञ्चायनमासान् कृत्वा दशरात्रमिश्रं मासमुद्धरेत्।— द्रा.श्रौ.सू.८.३.३१

५५. तदेतदृद्धमयनं भूतोपसृष्टानां राष्ट्रभृतः-- --। तदेतदृद्धमयनं हुतप्रहुतानुकृतयोऽन्ये होमाः---- बौधा.गृह्य.सू.३.७.२७

५६. प्रायश्चित्तानि : अथ यत्रैतत् कालातीतासु क्रियास्वतीत उत्तरायणे आज्यभागान्ते----- अथर्ववेद परिशिष्ट ३७.१२.१

५७. शक्रः प्रविद्वान्प्रदिशश्चतस्रः तमेवं विद्वानमृत इह भवति नान्यः पन्था अयनाय विद्यते।-महावाक्योपनिषत्

५८. अयने दक्षिणे प्राप्ते प्रपञ्चाभिमुखं गतः। अहंकाराभिमानेन जीवः स्याद्धि सदाशिवः।---- ततः कालवशादेव ह्यात्मज्ञानविवेकतः। उत्तराभिमुखो भूत्वा स्थानात्स्थानान्तरं क्रमात्।---- त्रिशिखब्राह्मणोपनिषत् १६

५९. स्वयमेव तु संपश्येद् देहे बिन्दुं च निष्कलम्। अयने द्वे च विषुवे सदा पश्यति मार्गवित्।- ब्रह्मविद्योपनिषत् ५४

६०. ग्रहणे विषुवे चैवमयने संक्रमेपि च। दर्शेषु पूर्णमासे च पूर्णेषु दिवसेषु च।-रुद्राक्षजाबालोपनिषत् १८

६१. हंसस्य परमहंसस्य च न क्षौरम्। अस्ति चेदयनक्षौरम्-- -नारदपरिव्राजकोपनिषत् ७.३

६२. पादत्रयात्मकं ब्रह्म कैवल्यं शाश्वतं परमिति। वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम्। आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्। तमेवंविद्वानमृत इह भवति। नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय-त्रिपाद्विभूतिमहानारायणो-पनिषत् ४

६३. पक्षद्वयं मासो भवति मासद्वयमृतुर्भवति। ऋतुत्रयमयनं भवति। अयनद्वयं वत्सरो भवति।-- - त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत् ३.४

६४. अन्योऽसावन्योहमस्मीति ये विदुस्ते पशवो न स्वभावपशवस्तमेवं ज्ञात्वा विद्वान्मृत्युमुखात्प्रमुच्यते नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।-नारदपरिव्राजकोपनिषत् ९.१

६५. वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्। तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।---श्वेताश्वतरोपनिषत् ३.८

६६. एको हंसो भुवनस्यास्य मध्ये स एवाग्निः सलिले संनिविष्टः। तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय-श्वेताश्वतरोपनिषत् ६.१५

६७. शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषामयनं न्यायो----सुबालोपनिषत् २

६८. सा गायत्री किं गोत्रा कत्यक्षरा कतिपादा। कति कुक्षयः। कानि शीर्षाणि। सांख्यायनगोत्रा सा चतुर्विंशत्यक्षरा---गायत्रीरहस्योपनिषत्

६९. कला काष्ठा मुहूर्ताश्च ऋतवोऽयनमेव च---- कफोणिर्मणिबन्धश्च तदूरुकटिबन्धनाः।-गुह्यकाल्युपनिषत् २०

## उत्तानपाद

१. सनेमि चक्रमजरं वि वावृत उत्तानायां दश युक्ता वहन्ति। सूर्यस्य चक्षू रजसैत्यावृतं तस्मिन्नार्पिता भुवनानि विश्वा।।-ऋग्वेद १.१६४.१४

२. द्यौर्मे पिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्म माता पृथिवी महीयम्। उत्तानयोश्चम्वो३र्योनिरन्तरत्रा पिता दुहितुर्गर्भमाधात्।।— ऋ.१.१६४.३३

३. उत्तानायामजनयन् त्सुषूतं भुवदग्निः पुरुपेशांसु गर्भः।— ऋ.२.१०.३

४. वयं ते अद्य ररिमा हि काममुत्तानहस्ता नमसोपसद्य। (अग्निः)— ऋ.३.१४.५

५. उत्तानायामव भरा चिकित्वान् त्सद्यः प्रवीता वृषणं जजान। अरुषस्तूपो रुशदस्य पाज इळायास्पुत्रो वयुनेऽजनिष्ट।।— ऋ.३.२९.३

६. अनायतो अनिबद्धः कथायं न्यङ्ङुत्तानोऽव पद्यते न। कया याति स्वधया को ददर्श दिवः स्कम्भः समृतः पाति नाकम्।।— ऋ.४.१३.५, ४.१४.५

७. यदीं गणस्य रशनामजीगः शुचिरङ्क्ते शुचिभिर्गोभिरग्निः। आद् दक्षिणा युज्यते वाजयन्त्युत्तानामूर्ध्वो अधयज्जुहूभिः।।— ऋ.५.१.३

८. वीती यो देवं मर्तो दुवस्येदग्निमीळीताध्वरे हविष्मान्। होतारं सत्यमजं रोदस्योरुत्तानहस्तो नमसा विवासेत्।।— ऋ.६.१६.४६

९. पत्तो जगार प्रत्यञ्चमत्ति शीर्ष्णा शिरः प्रति दधौ वरूथम्। आसीन ऊर्ध्वामुपसि क्षिणाति न्यङ्ङुत्तानामन्वेति भूमिम्।।— ऋ.१०.२७.१३

१०. देवानां युगे प्रथमे ऽसतः सदजायत। तदाशा अन्वजायन्त तदुत्तानपदस्परि।। भूर्जज्ञ उत्तानपदो भुव आशा अजायन्त। अदितेर्दक्षो अजायत दक्षाद्वदितिः परि।।— ऋ.१०.७२.४

११. गुहा शिरो निहितमृधगक्षी असिन्वन्नत्ति जिह्वया वनानि। अत्राण्यस्मै पड्भिः सं भरन्त्युत्तानहस्ता नमसाधि विक्षु।।— ऋ.१०.७९.२

१२. प्रत्यस्य श्रेणयो ददृश्र एकं नियानं बहवो रथासः। बाहू यदग्ने अनुमर्मृजानो न्यङ्ङुत्तानामन्वेषि भूमिम्।।— ऋ.१०.१४२.५

१३. उत्तानपर्ण सुभगे देवजूते सहस्वति। सपत्नीं मे परा धम पतिं मे केवलं कुरु।।— ऋ.१०.१४५.२, अथर्व३.१८.२

१४. ये पर्वताः सोमपृष्ठा आप उत्तानशीवरीः। वातः पर्जन्य आदग्निस्ते क्रव्यादमशीशमन्।।— अ.३.२१.११०

१५. उत्तानायै शयानायै तिष्ठन्ती वाव गूहसि। न वै कुमारि तत्तथा यथा कुमारि मन्यसे।।— अ.२०.१३३.४

१६. तस्य वा उत्तानस्याऽऽङ्गीरसस्या-प्राणत्प्रतिजग्रहुषः। अष्टममिन्द्रियस्यापाक्रामत्। तदेतेनैव प्रत्यगृह्णात्।---तैत्तिरीय ब्राह्मण २.३.४.५

१७. अथोत्तानं पशुं पर्यस्यन्ति। स तृणमन्तर्दधाति। ओषधे त्रायस्व---शतपथ ब्रा.३.८.२.१२

१८. अथोत्तानेन पाणिना मध्यमे परिधौ प्रागुपमार्ष्टि, पराञ्चमेवास्मिन्नेतत्प्राणं दधाति। देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्यः इति।— श.ब्रा.४.१.१.२४

१९. अथात्र नीचा पाणिना मध्यमे परिधौ प्रत्यगुपमार्ष्टि। इदं वाऽउपांशुं हुत्वोत्तानेन पाणिना मध्यमे परिधौ प्रागुपमार्ष्टि।---- श.ब्रा.४.१.२.२३

२०. मृदासम्भरण हेतु अवट खनन : सन्ते वायुर्मातरिश्वा दधातु इति। अयं वै वायुर्मातरिश्वा-योऽयं पवते। उत्तानाया हृदयं यद्विकस्तम् इति। उत्तानाया ह्यस्या एतद् हृदयं विकस्तम्।-- — श.ब्रा.६.४.३.४

२१. घर्म सन्दीपनं ब्राह्मणम् : अथ दक्षिणत उत्तानेन पाणिना निह्नुते-विश्वाभ्यो मा नाष्ट्राभ्यस्पाहि इति।— श.ब्रा.१४.१.३.२४

२२. अन्नादनशक्तिकामस्येष्टि विधिः :- --- अन्नाद्यं दुह उत्तानेषु कपालेष्वधि श्रयत्ययातयामत्वाय त्रयः पुरोडाशा भवन्ति त्रय इमे लोका एषां लोकानामाप्त्या---- तैत्तिरीय सं.२.३.६.२

२३. उत्तानेषु कपालेष्वधि श्रयत्ययातयामत्वाय द्वादशकपालः पुरोडाशः भवति वैश्वदेवत्वाय---- तै.सं.२.३.७.३

२४. राष्ट्रभृन्मन्त्राणां काम्यप्रयोगाभिधानम् : यस्य कामयेतान्नाद्यम् आ ददीयेति तस्य समायामुत्तानो निपद्य भुवनस्य पत इति तृणानि संगृह्णीयात् प्रजापतिर्वै भुवनस्य पतिः प्रजापतिनैवास्यान्नाद्यमा दत्त---- तै.सं.३.४.८.६

२५. मृदा हरणाभिधानम् : सं ते वायुर्मातरिश्वा दधातूत्तानायै हृदयं यद्विलिष्टम्। देवानां यश्चरति प्राणथेन तस्मै च देवि वषडस्तु तुभ्यम्।— तै.सं.४.१.४.१

२६. अन्तर्यामग्रहकथनम् : यदि कामयेतावर्षुकः स्यादित्युत्तानेन नि मृज्याद् वृष्टिमेवोद्यच्छति— तै.सं.६.४.५.६

२७. असौ वै स्वराडियं विराडुत्तानायां स्त्रियां पुमान् रेतस्सिञ्चत्या अस्यां रेतस्सिञ्चतीयं प्रजनयति---काठक सं. २०.६

२८. नोत्तानो दीक्षितश्शयीत यदुत्तानश्शयीत देवलोकमुपावर्तेत न न्यङ् शयीत यन्न्यङ् शयीत पितृलोकमुपावर्तेत।-काठक सं. २३.५

२९. ता उत्तानशय्याम् अपश्यत्। स शीर्ष्णैवमौ प्राञ्चाव् अगृह्णाद्, बाहुभ्याम् इमान् नाना,---- जै.ब्रा.३.३६७

३०. जाघन्या पत्नीसंयाजनम्। उत्तानायाः देवानां पत्नीभ्योऽवद्यति। इडां च।-कात्यायन श्रौ.सू.६.९.१५

३१. आतिथ्येष्टिः :- प्रस्तरे निह्नुवत उत्तानहस्ता दक्षिणोत्ताना वेष्टा राय इति।-कात्यायन श्रौ.सू.८.२.७

३२. दीक्षा संस्कारः :- कृष्णविषाणां त्रिवलिं पञ्चवलिं वोत्तानां दशायां बध्नीते। तया कण्डूयनम्। उपस्पृशत्यनया दक्षिणस्या ध्रुव उपरीन्द्रस्य योनिरिति।- कात्यायन श्रौ.सू. ७.३.२५

३३. अनुयाजेष्विष्टेषु व्यूहति----वाजस्य मा प्रसवेन प्रोहामीत्युत्तानेन दक्षिणेन जुहूं प्राचीमग्निरग्नीषोमौ तमपनुदन्तु योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मो---शांखायन श्रौ.सू.४.९.५

३४. अथास्या उत्तानमञ्जलिमधस्ताद्योक्त्रस्य निधायात्मनश्च सव्यं पूर्णपात्रं निनयन्वाचयेत्--- आश्वलायन श्रौ.सू.१.११.८

३५. तेषां दक्षिणत उत्ताना अङ्गुलीः करोति प्राचीनावीती तूष्णीम् स्वधा पितृभ्य इति वा।-आश्वलायन श्रौ.सू.२.३.२१

३६. स्पृष्ट्वोदकं निह्नवन्ते प्रस्तरे पाणीन्निधायोत्तानान्दक्षिणान्त्सव्यान्नीच एष्टा राय एष्टा वामानि प्रेषे भगाय।-आश्वलायन श्रौ. सू.४.५.८

३७. आपो देवीरग्रेपुव इत्यभिमन्त्र्योत्तानानि पात्राणि पर्यावर्त्य शुन्धध्वं दैव्याय कर्मण इति त्रिः प्रोक्ष्य प्रज्ञाते पवित्रे निदधाति।-आपस्तम्ब श्रौ.सू. १.११.१०

३८. उत्तानानि पात्राणि पर्यावर्त्य शुन्धध्वं दैव्याय कर्मण इति त्रिः प्रोक्ष्य---- आप.श्रौ.सू.१.१९.३

३९. दक्षिणेनाहवनीयं प्राङ् शेते न न्यङ् नोत्तानो नाग्नेरपपर्यावर्तत।— आप.श्रौ.सू.१०.१५.९

४०. यदिन्द्राय राथंतरायेति यथासमाम्नातं द्वादशसूत्तानेषु कपालेष्वधिश्रयति।— आप. श्रौ. सू. १९.२२.८

## उत्थान

१. कृष्णादुदस्थादर्या विहायाश्चिकित्सन्ती मानुषाय क्षयाय।। (उषा)-ऋग्वेद १.१२३.१

२. उदु ष्य देवः सविता सवाय शश्वत्तमं तदपा वह्निरस्थात्।— ऋ.२.३८.१

३. उत संहायास्थाद् व्यृतूंरदर्धररमतिः सविता देव आगात्।।— ऋ.२.३८.४

४. ऊर्ध्व ऊ षु णो अध्वरस्य होतरग्ने तिष्ठ देवताता यजीयान्।— ऋ.४.६.१

५. स्तीर्णे बर्हिषि समिधाने अग्ना ऊर्ध्वो अध्वर्युर्जुजुषाणो अस्थात्।— ऋ.४.६.४

६. आ भात्यग्निरुषसामनीकमुद् विप्राणां देवया वाचो अस्थुः।। (अश्विनौ)— ऋ.५.७६.१

७. उदु श्रिय उषसो रोचमाना अस्थुरपां नोर्मयो रुशन्तः। — ऋ.६.६४.१

८. उदु ष्य देवः सविता दमूना हिरण्यपाणिः प्रतिदोषमस्थात्।— ऋ.६.७१.४

९. उदस्य शोचिरस्थादाजुह्वानस्य मीळ्हुषः। उद् धूमासो अरुषासो दिविस्पृश समग्निमिन्धते नरः।।— ऋ.७.१६.३

१०. उद् वां पृक्षासो मधुमन्तो अस्थुरा सूर्यो अरुहच्छुक्रमर्णः।— ऋ.७.६०.४

११. विश्वं प्रतीची सप्रथा उदस्थाद् रुशद् वासो बिभ्रती शुक्रमश्वैत्। (उषसः)— ऋ.७.७७.२

१२. उदु ष्य वः सविता सुप्रणीतयो ऽस्थादूर्ध्वो वरेण्यः।— ऋ.८.२७.१२

१३. उत् ते शुष्मासो अस्थू रक्षो भिन्दन्तो अद्रिवः। नुदस्व याः परिस्पृधः।। (पवमान सोम)— ऋ.९.५३.१

१४. इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुतां शर्ध उग्रम्। महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात्।।— ऋ.१०.१०३.९

१५. अतो भूरत आ उत्थितं रजो ऽतो द्यावापृथिवी अप्रथेताम्।।— ऋ.१०.१४९.२

१६. ये ऽमावास्यां रात्रिमुदस्थुर्व्राजमत्रिणः। अग्निस्तुरीयो यातुहा सो अस्मभ्यमधि ब्रवत्।।-अथर्ववेद १.१६.१

१७. इदं हव्यं संविदानौ जुषेथां शुनं नो अस्तु चरितमुत्थितं च।।— अ.३.१५.४

१८. आ पर्जन्यस्य वृष्टयोदस्थामामृता वयम्। व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा।।— अ.३.३१.११

१९. दर्भः पृथिव्या उत्थितो मन्युशमन उच्यते।— अ.६.४३.२

२०. विषाणका नाम वा असि पितृणां मूलादुत्थिता वातीकृतनाशनी— अ.६.४४.३

२१. मा घोषा उत् स्थुर्बहुले विनिर्हते मेषुः पप्तदिन्द्रस्याहन्यागते।— अ.७.५२.२/७.५४.२

२२. गुदा आसन्त्सिनीवाल्याः सूर्यायास्त्वचमब्रुवन्। उत्थातुरब्रुवन् पद ऋषभं यदकल्पयन्।। अ.९.४.१४

२३. अग्निरासीन उत्थितोऽश्विना। इन्द्रः प्राङ् तिष्ठन् दक्षिणा तिष्ठन् यमः। (गौ)— अ.९.७.१९

२४. अनागोहत्या वै भीमा कृत्ये मा नो गामश्वं पुरुषं वधीः। यत्रयत्रासि निहिता ततस्त्वोत्थापयामसि पर्णाल्लघीयसी भव।— अ. १०.१.२९

२५. उत्थापय सीदतो बुध्न एनानद्भिरात्मानमभि सं स्पृशन्ताम्। अमासि पात्रैरुदकं यदेतन्मितास्तण्डुलाः प्रदिशोयदीमाः।। (स्वर्गौदनः)— अ.१२.३.३०

२६. अवः परेण पर एनावरेण पदा वत्सं बिभ्रती गौरुदस्थात्।।— अ.१३.१.१४

२७. महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात्।— अ.१९.१३.१०

२८. ग्रामणीरसि ग्रामणीरुत्थायाभिषिक्तो ऽभि मा सिञ्च वर्चसा। (औदुम्बर मणिः)— अ.१९.३१.१२

२९. महामत्स्य द्वारा प्रलय में मनु की सहायता : अथ इतिथीं समां तदौघ आगन्ता, तन्मा

नावमुपकल्प्योपासासै, स औघ उत्थिते नावमापद्यासै, ततस्त्वा पारयितास्मि।---- स औघ उत्थिते नावमापेदे।-शतपथ ब्रा.१.८.१.४

३०. इतो वाऽअयमूर्ध्वो मेध उत्थितः, यमस्या इमं रसं प्रजा उपजीवन्ति, अर्वाचीनं दिवः। रसो वै वसाहोमः। रसो मेधः। रसेनैवैदद्रसं तीव्रीकरोति।— श.ब्रा.३.८.३.३०

३१. सत्रोत्थानम्:--- -या ह दीक्षा-सा निषत्, तत्सत्रम्, तदयनम्, तत्सत्रायणम्। अथ यत्ततो यज्ञस्योदृचं गत्वोत्तिष्ठन्ति-तदुत्थानम्। तस्मादेनानुदस्थुरित्याहुः-इति नु पुरस्ताद्वदनम्।— श.ब्रा.४.६.८.२

३२. अथैनमादायोत्तिष्ठति। असौ वाऽआदित्यः एषोऽग्निः। अमुं तदादित्यमुत्थापयति। उदु तिष्ठ स्वध्वर। अध्वरो वै यज्ञः। उदु तिष्ठ सुयज्ञियेत्येतत्।— श.ब्रा.६.४.३.९

३३. अथैनां (उखां) उद्यच्छति-उत्थाय बृहती भव इति। उत्थाय हीमे लोका बृहन्तः। उदु तिष्ठ ध्रुवा त्वम् इति। उदु तिष्ठ स्थिरा त्वं प्रतिष्ठितेत्येतत्।— श.ब्रा.६.५.४.१३

३४. मण्डलपुरुषोपासनं ब्राह्मणम् : तमेतमग्निरित्यध्वर्यव उपासते यजुः-इति एष हीदं सर्वं युनक्ति। साम-इति छन्दोगाः---। उक्थमिति बह्वृचाः, एष हीदं सर्वमुत्थापयति।---- श.ब्रा.१०.५.२.२०

३५. द्वादश ब्रह्मौदनानुत्थाय निर्वपति। द्वादशभिर्वेष्टिभिर्यजते।---- प्रजापतिर्वा ओदनः। प्रजापतिः संवत्सरः।---- श.ब्रा.१३.३.६.६

३६. एतस्यां उक्तायां उत्थाय सदसो अधि प्राञ्चो यजमानमभ्यायेति।---- श.ब्रा.१३.५.२.१६

३७. अग्निहोत्र : अथ यद् एते प्रातराहुती जुहोत्य् उत्थापयत्य् एवैनं ताभ्याम्। स यथा हस्ती हरत्यासनम् उपर्य् आसीनम् आदायोत्तिष्ठेद् एवम् एवैषा देवतैतद् विद्वांसं जुह्वतम् आदायोदेति।— जै.ब्रा.१.११

३८. ते होत्थाय प्रवव्रजुर् नमो ऽस्मै ब्राह्मणायास्तु विदां वा अयम् इदं चकारेति— जै.ब्रा.१.७५

३९. अथ मैधातिथम्। काण्वायनास् सत्राद् उत्थायायन्त आयुञ्जानाः।---— जै.ब्रा.१.२२६

४०.--- स यद् ऊर्ध्वं प्रतिहाराद् उद्गृह्णाति तद् उत्थापयतीति।---- जै.ब्रा.१.३२२, १.३३६

४१. अग्निं देवतानां दीक्षमाणा अनुनिषीदन्त्य् आदित्यम् अनूत्तिष्ठन्तीति।---- — जै.ब्रा.२.२३

४२. तान् उक्थैर् उत्थापयति। तद् उक्थानां उक्थत्वम्— जै.ब्रा.२.२४

४३. स यद् एवास्मिन् दीक्षिते यशो भवति, तद् अस्मिन् उत्थिते यशो भवति।— जै.ब्रा.२.६८

४४. अथैष पुनस्तोमः। स हायम् ऋषिर् आगत्य न शशाकोत्थातुम् असुराशनेन। गरो हैनम् आविवेश,----— जै.ब्रा.२.८३

४५. पोषयिष्णुर् वैश्यो रयिमान्, उत्थाता शूद्रो दक्षः कर्मकर्ता---- जै.ब्रा.२.२६६

४६. तस्यै हायःकूटहस्तं गन्धर्वम् ईर्ष्युम् उत्थापयांचकार।— जै.ब्रा.२.२७०

४७. तद् आहुर् न दीक्षितेनासन्द्य् अधिरुह्येति। उत्थिता ह खलु वा एतद् अहर् आगच्छन्ति। यद् वावादो दशमम् अहस् तद् एवोक्थानि। ---- — जै.ब्रा.२.४१८

४८. ते य एवं विद्वांसो ऽभिप्लवम् उपयन्ति सहस्रसनयो हैवोत्थिता भवन्ति।— जै.ब्रा.२.४४२

४९. उद्या ते जातम् अन्धसेत्य् उद्वतीर् उत्थानीये ऽहन् भवन्त्य् अथो स्वर्गस्यैव लोकस्याभ्युत्क्रान्त्यै। स्वर्गो ह्य् एष लोको यद् दशमम् अहः।— जै.ब्रा.३.२८३

५०. अथैता भवन्ति आ जागृविर् विप्र ऋतं मतीनां इत्य् आवतीर् उत्थानीये ऽहन्। यत् प्रवतोः कुर्युः पराञ्चो अतिपद्येरन्। -----तद् आहुर् अपेव वा एते भ्रंशन्ते य आवतीर् उत्थानीये ऽहन् कुर्वन्तीति।--- जै.ब्रा.३.२९१

५१. उद् उ त्ये मधुमत्तमा इत्य् उद्वतीर् उत्थानीये ऽहन् भवन्त्य्, अथो स्वर्गस्यैव लोकस्याभ्युत्क्रान्त्यै। स्वर्गो ह्य् एष लोको यद् दशमम् अहः।— जै.ब्रा.३.२९३

५२. अथ यद् धा इत्य् एष हीदं सर्वं हरति। स एष एवोक्थम्। एष हीदं सर्वम् उत्थापयतीव।— जै.ब्रा.३.३७९

५३. ते होचुः-देवा म्लानो ऽयं पिता मयोऽभूः। पुनरिमं समीर्योत्थापयामेति-गोपथ ब्रा.२.४.१२

५४. छन्दोभिधेष्टकाभिधानम् : उदस्य शोचिरस्थादाजुह्वान मीळुषः।-तैत्तिरीय संहिता ४.४.४.५

५५. अप्रतिरथ सूक्ताभिधानम् : महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात्।— तै.सं.४.६.४.३

५६. अश्वमेध मन्त्रः :- उत्थास्यते स्वाहोत्तिष्ठते स्वाहोत्थिताय स्वाहा-- तै.सं.७.१.१९.३

५७. षड्रात्रकथनम् : यदा दश शतं कुर्वन्त्यथैकमुत्थानं शतायुः पुरुषः शतेन्द्रिय आयुष्येवेन्द्रिये प्रतितिष्ठन्ति यदा शतं सहस्रं कुर्वन्त्यथैकमुत्थानं सहस्रसंमितो वा असौ लोको ऽमुमेव लोकमभि जयन्ति यदैषां प्रमीयेत यदा वा जीयेरन्नथैकमुत्थानं तद्धि तीर्थम्।— तै.सं.७.२.१.४

५८. द्वादशरात्रः :- सर्वासां वा एते प्रजानां प्राणेरासते ये सत्रमासते तस्मात्पृच्छन्ति किमेते सत्रिण इति प्रियः प्रजानां उत्थितो भवति य एवं वेद।— तै.सं.७.२.९.३

५९. यो वै नः श्रेष्ठोऽभूत्। तमवधिष्म।---- उक्थैरुदस्थापयन्। तदुक्थानामुक्थत्वम्।---- तैत्तिरीय ब्राह्मण २.२.८.७

६०.--- अपूतायै वाचो वदितारो यच्छ्यापर्णा इमानुत्थापयतेमे मेऽन्तर्वेदि माऽऽसिषतेति तथेति तानुत्थापयांचक्रुः। ते होत्थाप्यमाना रुरुविरे ये तेभ्यो भूतवीरेभ्योऽसित मृगाः--। रामो हाऽऽस मार्गवेयो ऽनूचानः श्यापर्णीयस्तेषां होत्तिष्ठतामुवाचापि नु राजन्नित्थं विदं वेदेरुथापयन्तीति यस्त्वं कथं वेत्थ ब्रह्मबन्धविति।- ऐतरेय ब्राह्मण ७.२७

६१.---यः क्षत्रस्य सोमपीथेन व्यृद्धस्य येन क्षत्रं समृध्यते कथं तं वेदेरुत्थापयन्तीति।-ऐ.ब्रा.७.२८

६२. उक्थं प्राणो वा उक्थं प्राणो हीदं सर्वमुत्थापयति---बृहदारण्यक उपनिषद ५.१३.१

६३. बलं वाव विज्ञानाद्भूयोऽपि ह शतं विज्ञानवतामेको बलवानाकम्पयते स यदा बली भवति अथोत्थाता भवति- छान्दोग्योपनिषद ७.८.१

६४. यथा फेनतरंगादि समुद्रादुत्थितं पुनः। समुद्रे लीयते तद्वज्जगन्मय्यनुलीयते।-जाबालदर्शनोपनिषद१०.६

६५. अपानमूर्ध्वमुत्थाप्य प्रणवेन शनैः शनैः।- जाबालदर्शनोपनिषद६.३३

६६. कम्पनं मध्यमं विद्यादुत्थानं चोत्तमं विदुः- जाबलदर्शनोपनिषद६.१४

६७. सर्वभावपदातीतं ज्ञानरूपं निरञ्जनम्। वारिवत्स्फुरितं तस्मिंस्तत्राहंकृति उत्थिता।- योगतत्त्वोपनिषद१०

६८. अथ खलु प्राण एव प्रज्ञात्मेदं शरीरं परिगृह्योत्थापयति।-कौशीतकिब्राह्मणारण्यकोपनिषद ३.३

६९. चतुरो मासान्ध्रुवशीलतः स्यात्स यावत्सुप्तोऽन्तरात्मा पुरुषो विश्वरूपः। अन्यानथाष्टौ पुनरुत्थिते ऽस्मिन्स्वकर्मलिप्सुर्विहरेद्वा वसेद्वा।- शाट्यायनीयोपनिषद२०

७०. सुप्तेरुत्थाय सुप्त्यन्तं ब्रह्मैकं प्रविचिन्त्यताम्।- वराहोपनिषद् २.६४

७१. मुक्तयोः संभवत्येव तुर्यातीतपदाभिधा। व्युत्थितस्य भवत्येषा समाधिस्थस्य चानघ।- अन्नपूर्णोपनिषद१.२५

७२. प्रणम्य दण्डवद्भूमावुत्थाय सपुनर्मुनिः। आत्मतत्त्वमनुब्रूहीत्येवं पप्रच्छ सादरम्।- अन्नपूर्णोपनिषद१.१

७३. मोक्षो मेऽस्त्विति चिन्ताऽन्तर्जाता चेदुत्थितं मनः। मननोत्थे मनस्येष बन्धः सांसारिको दृढः।।- अन्नपूर्णोपनिषद२.२४

७४. अकर्तृकमरङ्गं च गगने चित्रमुत्थितम्। अद्रष्टृकं स्वानुभवमनिद्र स्वप्नदर्शनम्।-महोपनिषद५.५४

७५. उत्थितानुत्थितानेतानिन्द्रचारीन्पुनः पुनः। हन्याद्विवेक दण्डेन वज्रेणेव हरिर्गिरीन्।- महोपनिषद ६.२१

७६. सर्वात्मा समरूपात्मा शुद्धात्मा त्वहमुत्थितः।- तेजोबिन्दूपनिषद ४.३४

७७. उत्थाय प्रणिपत्येशं त्यक्त्वाशेष परिग्रहः। परब्रह्मपयोराशौ प्लवन्निव ययौ तदा।— शुकरहस्योपनिषद १९

७८. उत्थाप्य गां प्रयत्नेन गायत्र्या मूत्रमाहरेत्।- बृहज्जाबालोपनिषद३.६

७९. अपानमूर्ध्वमुत्थाप्य योनिबन्धोऽयमुच्यते। योगतत्त्वोपनिषद १२१

८०. गुदमवष्टभ्याधाराद्वायुमुत्थाप्य स्वाधिष्ठानं त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य----हंसोपनिषद १

८१. आचारमाचरन्त्येव सुप्तबुद्धवदुत्थिताः।- महोपनिषद ५.३८

८२. उदुम्बराः प्रातरुत्थाय यां दिशमभि प्रेक्षन्ते तदाहृतोदुम्बर बदर नीवारश्यामाकैरग्निपरिचरणं कृत्वा---आश्रमोपनिषद ३

८३. नोत्थापयेत् सुखासीनं शयानं न प्रबोधयेत्। आसीनो गुरुमासीनमभिगच्छेत् प्रतिष्ठितम्।।-शिवोपनिषद ७.३१

८४. यदुत्थितं भवति तत्सर्वं शमय शमय स्वाहा।- वनदुर्गोपनिषद

## उत्पल

१. युवमेतं चक्रथुःसिन्धुषु प्लवमात्मन्वन्तं पक्षिणंतौग्र्यायकम्। — ऋ. १.१८२.५

२. अदो यद्दारु प्लवते सिन्धोः पारे अपूरुषम्। तदा रभस्वदुर्हणोतेन गच्छ परस्तरम्।।— ऋ.१०.१५५.३

३. उपप्रवद मण्डूकि वर्षमा वद तादुरि। मध्ये ह्रदस्य प्लवस्व विगृह्य चतुरःपदः ।।- अथर्ववेद ४.१५.१४

४. अनड्वाहं प्लवमन्वारभध्वं स वो निर्वक्षद्दुरितादवद्यात्।- अथर्व १२.२.४८

५. प्लवो वा एषोऽग्नेर्यत्संयानीर्यत्संयानीरुपदधातिप्लवमेवैतमग्नय उप दधाति — तै.सं. ५.३.१०.२

६. अलज आन्तरिक्ष उद्रो मउद्गुःप्लवस्तेऽपाम्— तै.सं ५.५.२०.१

७. समुद्रं वै एतेऽनवारमपारं प्र प्लवन्ते ये संवत्सरमुपयन्तियद्बृहद्रथंतरे अन्वर्जेयुर्यथा मध्ये समुद्रस्य प्लवमन्व र्जेयुस्तादृक्तद्--- — तै.सं ७.५.३.२

८. बृहद्रथन्तरे वै देवानां प्लवस्तद्देवानां प्लवेन समुद्रमर्णवं तरन्ति यथा मध्ये समुद्रस्य प्लवमन्वर्जेयुरेवं तद्----- -काठक सं ३३.५

९. बृहत् पृष्ठम्। प्लवं ब्रह्मसाम। बृहद्रथन्तराभ्यामेवैनमेभ्यो लोकेभ्य उद्धृत्य प्लवेन प्रप्लावयति। परां परावतमेति। न प्रतितिष्ठति।-षड् विंश ब्रा.४.२.१४

१०. यूपम् आप्लावयन्त्यलं कुर्वन्त्यहतेन वसनेनाच्छादयन्ति च।- षड्विंश ब्रा. ५.४.१४

११. अग्निदेवत्यान्यद्भुतानि प्रायश्चित्तानि :- अथ यदास्य पृथिवी तटति,स्फुटति,---- -- -प्लवन्न मज्जति, न निमग्नमुत्प्लवति,--- -षड्विंश ब्रा.६.७.२

१२. सूर्यदेवत्यान्यद्भुतानि प्रायश्चित्तानि : अथ यदास्य मानुषाणामतिधृतिमतिदुःखं वा पर्वता स्फुटन्ति, ----अश्मानःप्लवन्ति,----षड्विंश ब्रा.६.१२.२

१३. एतद्वै फेनस्तप्यते-यदप्स्वावेष्टमानः प्लवते।- श.ब्रा.६.१.३.३

१४. राष्ट्रभृद्भोमः :- आयुवो नाम (वा.सं.१८.३९)।। आयुवाना इव हि मरीचय प्लवन्ते। — श.ब्रा. ९.४.१.८

१५. शतातिरात्र संज्ञक सत्रम् : दुर्विज्ञानं काव्यं देवतानां सोमासोमैर्व्यतिषक्ता प्लवन्ते।।— श.ब्रा.११.५.५.१३

१६. गवामयनीय संवत्सरस्य पुरुषविधोपासनम् : प्लवन्त इव वा अभिप्लवाः। तिष्ठतीव पृष्ठ्य इति। प्लवतइव ह्ययमंगैः। तिष्ठतीवात्मनेति।।— श.ब्रा.१२.२.४.८

१७. कतिमात्र इति-आदेस्तिस्रो मात्रा :, अभ्यादाने हि प्लवते,मकारश्चतुर्थी।-— गोपथ ब्रा.१.१.२७

१८. स इतःस इतो ऽभिप्लवःस इत आत्मा पृष्ठ्यः। प्लवतीवाभिप्लवः। तिष्ठतीव पृष्ठ्यः। प्लवत इव ह्येवमङ्गैः। तिष्ठतीवात्मना।— गोपथ ब्रा.१.५.४

१९. स (गोश्ल) होवाच-होतः कथा ते शस्त्रं विचक्रं प्लवत इति।— गोपथ ब्रा २.६.९

२०. बृहद्रथंतरे सामनी भवत एते वै यज्ञस्य नावौ संपारिण्यौ यद्बृहद्रथंतरेताभ्यामेव तत्संवत्सरं तरति। पादौ वै बृहद्रथंतरे शिर एतदहःपादाभ्यामेव तच्छ्रियं शिरोऽभ्यायन्ति।----- ते उभे न समवसृज्ये य उभे समवसृज्येयुर्यथैव च्छिन्नानौर्बन्धनात्तीरं तीरमृच्छन्ती प्लवेतैवमेव सत्रिणस्तीरं तीरमृच्छन्तःप्लवेरन्य उभेसमवसृज्येयुः। -ऐ.ब्रा. ४.१३

२१. तद्ध तथा शस्यमाने गौश्ल आजगाम स होवाच होतःकथा ते शस्त्रं विचक्रं प्लवत इति- -- -।-ऐब्रा ६.३०

२२. नळं प्लवमारोहैतं नळेन पथोऽन्विहि। स त्वं नळप्लवो भूत्वा संतर प्रतरोत्तर। तै.आ.६.७.२

२३. एकत,द्वित व त्रित का आख्यान : स सम् इन्दुभिः इत्य् एव निधनम् उपैत्। तं पर्जन्योवृष्टयोर्ध्वम् उदप्लावयत्। अभि हि· तद् रथचक्रम् उत्प्लावयांचकार येनापिहित आस।— जै.ब्रा.१.१८४

२४. अग्निर् एष यद् रथन्तरम्।----अथ यो ऽक्षरेषु स्तोब्धि यथा नावा वा प्लवेन वा द्वीपाद् द्वीपं संक्रामेद् एवम् एवैतं समुद्रम् अतितरति।— जै.ब्रा. १.३३२

२५. तद् आहु प्लवम् इव वा एतच् छन्दो यज् जगती, न प्रायणाय।-----— जै.ब्रा.२.३७९

२६. अतिरिक्ता एव तद् अतिरिक्तं ब्रह्मणो रसं दधतो यन्ति। अन्वहं प्लवो भवति, स्वर्गस्यैव लोकस्य समष्ट्यै। ए इत्य् एवान्तरिक्षम् अतिप्लवन्ते।— जै.ब्रा. २.३८५

२७. अथ यद् वो ऽवोचं संवत्सरस्य स्म व्याप्तम् अतिप्लवध्वम् इत्य् अभीवर्तं वा स्म पवमाने कुरुध्वं प्लवं वेत्य् एव वस् तद् अवोचम् इति।-- --अहोरात्रे वाव संवत्सरस्य व्याप्तम् इति। तत् प्लवःकार्यः। अव वै गौःप्लवते, ऽव हस्त्य्, अव पुरुषः, प्लवो नावप्लवते। तद् एतेन प्लवेनानवप्लाविनैतत् संवत्सरस्य व्याप्तम् अतिप्लवामहा इति।---- -— जै.ब्रा. २.४२२

२८. सरमा देवशुनी द्वारा गौ के अन्वेषण हेतु समुद्र के प्लवन का उद्योग : तां होवाच प्लोष्ये त्वागाधा मे भविष्यसीति। प्लवस्व मेति होवाच न ते गाधा भविष्यामीति। सा हावाच्य कर्णौ प्लोष्यमाणा ससार सा हेक्षांचक्रे कथं नु मा शुनी प्लवेत हन्तास्यै गाधासानीति।-----— जै.ब्रा.२.४४१

२९. सो(शर्करस् शिंशुमारः)ऽब्रवीन्-नाहं त्वां स्तोष्यामि। समुद्रे वा ऽहम् अप्स्व् अन्तश्चराम्यउपनिमज्जन्न्, एतावतो ऽहं त्वां स्तुयाम् इति। तं पर्जन्यो वृष्टयोर्ध्वम् उदप्लावयद् धन्वाभि।---- --- — जै.ब्रा.३.१९३

३०. तासु प्लवम्। यो वै समुद्रम् अप्लवःप्रस्नाति नैनं स व्यशनुते, ऽथ यःप्लवी प्रस्नाति स व्यशनुते। समुद्रो वै छन्दोमाः। तद् यत् प्लवं प्लविन एवैतेन। --- - -ते ऽब्रुवन् स्वर्गं लोकं गत्वा- प्लवं वाव नो भूत्वेदं साम स्वर्गं लोकम् अवाक्षीद् इति। तद् एव प्लवस्य प्लवत्वम्।-----— जै.ब्रा.३.१९५

३१. नासद् आसीन् नो सद् आसीत् तदानीं ----। तस्मिन्न् असति सति न कस्मिंश् चन सत्य् ऋतं ज्योतिष्मद् उदप्लवत, सत्यं ज्योतिष्मज् उदप्लवत, तपो ज्योतिष्मद् उदप्लवत। तद् यद् ऋतम् इति वाक् सा, यत् सत्यम् इति प्राणस् सो, यत् तप इति मनस् तत्। — जै.ब्रा.३.३६०

३२. ततो (ऋजीषात्) यो भिन्दुरुत्प्लवते तमुपस्पृशेद्भक्षयेद्वाप्सु धौतस्य सोम देव त इति।– आप.श्रौ.सू.१३.२०.११

३३. उत्प्लुतमृजीषमप्सु धौतस्य ते देव सोमेत्यवघ्रेण भक्षयन्ति।–मानव श्रौ. सू.२.५.४.३१

३४. यस्माद्भीत उदप्रोष्टेत्युत्प्लवमाने जुहुयात्। – मानव श्रौ.सू.३.५.१०

३५.-----स्रुचमृजीषेण पूरयित्वा समुद्रे ते हृदयमप्स्वन्तरित्यप्सूपमारयति देवीराप इत्युपतिष्ठते यो बिन्दुरुत्प्लुतस्तमप्सु धौतस्येत्युपस्पृशे–दवजिघ्रेद्वा----- –वैखानस श्रौत सूत्र १६.२६

३६. शयनपादमुत्पले च। –कौशिक सूत्र ३६.७

३७. प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म। –मुण्डकोपनिषद १.२.७

३८. वक्त्रेणोत्पलनालेन वायुं कृत्वा निराश्रयम्। एवं वायुर्ग्रहीतव्य कुम्भकस्येति लक्षणम्।–अमृतनादोपनिषत् १४

३९. योगयुक्त्या तु तद्भस्म प्लाव्यमानं समंततः। शाक्तेनामृतवर्षेण ह्यधिकारान्निवर्तते। अतो मृत्युंजयायेत्थममृतप्लावनं सताम्।--- –शिवाग्निना तनुं दग्ध्वा शक्तिसोमामृतेन यः। प्लावयेद्योगमार्गेण सोऽमृतत्वाय कल्पते---।–बृहज्जाबालोपनिषत् २.१३

४०. छिद्यमानोऽपि न कुप्येत न कम्पेतोत्पलमिव तिष्ठासेत्–।– सुबालोपनिषत् १३

४१. परब्रह्मपयोराशौ प्लवन्निव ययौ तदा। – शुकरहस्योपनिषत् ३.२०

४२. यथैवोत्पलनालेन तोयमाकर्षयेन्नरः। तथैवोत्कर्षयेद्वायुं योगी योगपथे स्थितः।–ध्यानबिन्दु उपनिषत् ३८

४३. यथा च दर्दुरो भाव उत्प्लुत्योत्प्लुत्य गच्छति।। पद्मासनस्थितो योगी तथा गच्छति भूतले। – योगतत्त्वोपनिषत् ५३

४४. मोक्षःपरं ब्रह्म। प्लववदाचरणम्।– निर्वाणोपनिषत्

४५. यत्र निशितासिशतपातन–मुत्पलताडनवत्सोढ–व्यमग्निना दाहो हिमसेचनमिव---महोपनिषत् ४.२६

४६. कर्णधारं गुरुं प्राप्य तद्वाक्यं प्लववद्दृढम्। अभ्यासवासना शक्त्या तरन्ति भवसागरम्।– योगशिखोपनिषत् ६.७९

४७. य एतदभिपद्येव गृहीयादथो विस्फुरन्तीव धावन्तीवोत्प्लवंतीवोपश्लिष्यन्तीव न हैवाभिपद्यन्ते।– आर्षेयोपनिषत्

४८. यथैवोपसृत्वरो वार्धिस्तिर्यगुल्ललन्तीभिरिव वीचिभिःशफाभिरेवोप स्कन्दन्नुत्प्लवेदेवं हैवैषोभि–सृत्त्वराणामेव धुर्याणां चंक्रमतामरीणामुत्प्लवतीति।– छागलेयोपनिषत्

४९. दशमेन तु पिण्डेन भावनं प्लावनं तथा।– पिण्डोपनिषत्

**उदक** (अनुद्धृत अंश)

१. अश्विनौ द्वारा समुद्र में भुज्यु की रक्षा : तमूहथुर्नौभिरात्मन्वतीभिरन्तरिक्षप्रुद्भिरपोदकाभिः।।– ऋग्वेद १.११६.३

२. इदमुदकं पिबतेत्यब्रवीतनेदं वा घा पिबता मुञ्जनेजनम्।– ऋ.१.१६१.८

३. श्रोणामेक उदकं गामवाजति।– ऋ.१.१६१.१०

४. अद्भि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती।– ऋ.१.१६४.४०

५. समानमेतदुकमुच्चैत्यव चाहभिः। भूमिं पर्जन्या जिन्वन्ति दिवं जिन्वन्त्यग्नयः।।– ऋ. १.१६४.५१

६. उदप्रुतो मन्दिनो मन्दिनिस्पृशो मध्वो न मक्षः सवनानि गच्छथः। दे. अश्विनौ।– ऋ. ४.४५.४

७. पौरं चिद्धयुदप्रुतं पौर पौराय जिन्वथ। दे. अश्विनौ।– ऋ. ५.७४.४

८. अहन् दासा वृषभो वस्नयन्तोदव्रजे वर्चिनं शम्बरं च।।– ऋ ६.४७.२१

९. प्र धेनव उदप्रुतो नवन्त युज्यातामद्री अध्वरस्य पेशः।– ऋ.७.४२.१

१०. तव द्रप्सा उदप्रुत इन्द्रं मदाय वावृधुः। त्वां देवासो अमृताय कं पपुः।। ऋ.९.१०६.८

११. आ सोता परि षिंचताऽश्वं न स्तोममप्तुरं। वनक्रक्षमुदप्रुतम्।।— ऋ.९.१०८.७

१२. उदप्रुतो न वयो रक्षमाणा वावदतो अभ्रियस्येव घोषाः। दे. बृहस्पतिः।— ऋ.१०.६८.१

१३. अधस्पदान्म उद्वदत मण्डूका इवोदकान्मण्डूका उदकादिव।।— ऋ.१०.१६६.५

१४. ये सर्पिषः संस्रवन्ति क्षीरस्य चोदकस्य च।— अथर्ववेद १.१५.४

१५. एको वो देवोऽप्यतिष्ठत् स्यन्दमाना यथावशम्। उदानिषुर्महीरिति तस्मादुदकमुच्यते।।— अ.३.१३.४

१६. चतुरः कुम्भांश्चतुर्धा ददामि क्षीरेण पूर्णां उदकेन दध्ना।— अ.४.३४.६

१७. अग्निरिवैतु प्रतिकूलमनुकूलमिवोदकम्। सुखो रथ इव वर्ततां कृत्या कृत्याकृतं पुनः।।— अ.५.१४.१३

१८. तद् वै राष्ट्रमा स्रवति नावं भिन्नामिवोदकम्। ब्रह्माणं यत्र हिंसन्ति तद् राष्ट्रं हन्ति दुच्छुना।— अ.५.१९.८

१९. उदप्रुतो मरुतस्तां इयर्त वृष्टिर्या विश्वा निवतस्पृणाति।— अ.६.२२.३

२०. श्मश्रु वपनम् : आयमगन्त्सविता क्षुरेणोष्णेन वाय उदकेनेहि। आदित्या रुद्रा वसव उन्दन्तु सचेतसः सोमस्य राज्ञो वपत प्रचेतसः।— अ.६.६८.१

२१. यद् वो देवा उपजीका आसिंचन् धन्वन्युदकम्। तेन देव प्रसूतेनेदं दूषयता विषम्।। ऋ. गरुत्मान, दे. वनस्पतिः।— अ.६.१००.२

२२. यथोदकमपपुषोऽपशुष्यत्यास्यम्। एवा नि शुष्य मां कामेनाथो शुष्कास्या चर।।— अ.६.१३९.४।

२३. अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती।।— अ.७.७७.११

२४. अवकोल्बा उदकात्मान ओषधयः। व्यृषन्तु दुरितं तीक्ष्णशृङ्गयः।। अ.८.७.९

२५. अग्निर्होत्रेण प्र णुदे सपत्नांछम्बीव नावमुदकेषु धीरः।। दे.कामः।— अ.९.२.६

२६. ऋचा कुम्भीमध्यग्नौ श्रयाम्या सिंचोदकमव धेह्येनम्। दे.पञ्चोदनो अजः। अ.९.५.५

२७. अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती।— अ.९.१५.२०

२८. प्रजानां प्रजननाय गच्छति प्रतिष्ठां प्रियः प्रजानां भवति य एवं विद्वानुदकमुपसिच्योपहरति।।— अ. ९.९.१०

२९. अव श्वेत पदा जहि पूर्वेण चापरेण च। उदप्लुतमिव दार्वहीनामरसं विषं वारुग्रम्।। ऋ. गरुत्मान, दे.तक्षक।— अ.१०.४.४

३०. उत्थापय सीदतो बुध्न एनानद्भिरात्मानमभि संस्पृशन्ताम्। अमासि पात्रैरुदकं यदेतन्मितास्तण्डुलाः प्रदिशो यदीमाः।। दे. ओदनः।— अ.१२.३.३०

३१. यदेनमाह व्रात्योदकमित्यप एव तेनाव रुन्द्धे।।— अ.१५.११.४

३२. अस्यै देवतायै उदकं याचामीमां देवतां वासय --।— अ.१५.१३.१३

३३. उत् त्वा वहन्तु मरुत उदवाहा उदप्रुतः। अजेन कृण्वन्तः शीतं वर्षेणोक्षन्तु बालिति।।— अ.१८.२.२२

३४. उदप्रुतो न वयो रक्षमाणा----।— अ.२०.१६.१

३५. ऋषियों द्वारा कवष ऐलूष के लिए सरस्वती का उदक पान करने से प्रतिषेध करना, कवष द्वारा अपो नप्त्रीय सूक्त से सरस्वती का आवाहन।-ऐतरेय ब्राह्मण २.१९

३६. गार्हपत्य और आहवनीय के बीच रथ व श्वान के आ जाने पर प्रायश्चित्त कथन : गार्हपत्यादविच्छन्नामुदक धारां हरेत्तन्तुं तन्वन्नजसो भानुमन्विहीत्याहवनीयात्।- ऐतरेय ब्राह्मण ७.१२

३७. प्रह्लादो ह वै कायाधवः। विरोचनं स्वं पुत्रमुदास्यत्। स प्रदरोऽभवत्। तस्मात्प्रदरादुदकं नाऽऽचामेत्।- तैत्तिरीय ब्राह्मण १.५.१०.७

३८. आ वो यन्तूदवाहासो अद्य। वृष्टिं ये विश्वे मरुतो जुनन्ति।— तै.ब्रा.२.५.५.३

३९. स्तोकानामिन्दुं प्रति शूर इन्द्रः। वृषायमाणो वृषभस्तुराषाट्। घृतप्रुषा मधुना हव्यमुन्दन्। मूर्धन्यज्ञस्य जुषतां स्वाहा।।— तै.ब्रा.२.६.८.४

४०. यन्मृन्मयेनापिदध्यात्। पितृदेवत्यं स्यात्। अयस्पात्रेण वा दारुपात्रेण वाऽपिदधाति। तद्धि सदेवम्। उदन्वद्भवति।— तै.ब्रा.३.२.३.१२

४१. एतां ह वै मुण्डिभा औदन्यवः। भ्रूणहत्यायै प्रायश्चित्तिं विदांचकार।— तै.ब्रा.३.९.१५.२

४२. भृगु द्वारा षष्ठम् लोक का दर्शन : पंच नदीः पुष्करिणीः पुण्डरीकिणीर् मधूदकास् स्यन्दमानाः।— जै.ब्रा.१.४२,१.४४

४३. उदपात्रं वैवोदकमण्डलुं वादाय गार्हपत्याद् आहवनीयान् निनयन्न इयात् इदं विष्णुर् विचक्रमे इत्य् एतयैवर्चा।----। जै.ब्रा.१.५२

४४. अथो यत्रैतद् विभिन्नं तद् उदपात्रं वैवोदकमण्डलुं वोपनिनयेत् भूर् भुवस् स्वः इत्य् एताभिर् व्याहृतिभिः।— जै.ब्रा.१.५३

४५. उपावहायोदकम् आचामेद्, उपावहाय तृणान्य् आछिन्द्यात्।---अनडुहो ह लोकं जयति।— जै.ब्रा.२.११३

४६. तेन हैतेन मौण्डिभ उदन्युर् ईज उदन्यूनां राजा।---- अथ ह मौण्डिभ उदन्युस् त्रय्यै विद्यायै कस्सवित आस।— जै.ब्रा.२.२६९

४७. तस्माद् अश्व एकैकं पादम् उदंकन/उदकन् तिष्ठति।— जै.ब्रा.२.२७२

४८. यस्मिन्न एव मे संवत्सरे समाना दास्य् उदकं चौदनं चाहरत् तस्मिन् एव मे संवत्सरे----। जै.ब्रा.२.३५२

४९. सुप्त्वोदकम् आचामेत्। पाप्मानम् एव तद् धते।— जै.ब्रा.२.३७०

५०. स यथा प्र स्पष्टं तृणोदकम् अन्ववस्येत् तादृक् तत्।— जै.ब्रा.३.१७

५१. तम् अब्रवीद् आद्रवन्तं दृष्ट्वा-इमां मे भस्त्राम् उदके प्रास्यत, इमम् अहं तं पश्यामि यो मां प्रत्युच्याति-प्रक्ष्यतीति।— जै.ब्रा.३.१०१

५२. एतेनैव साम्ना च्यवनो भार्गवो यद् यद् अशनं चकमे तत् तद् ध स्म सरस्वत्यै शैशवाद् उदचति।— जै.ब्रा.३.१२८

५३. तम् उ ह स्वयम् एवोपोत्थाय संवृश्योदके प्रचकार।— जै.ब्रा.३.२०१

५४. कुत्सो ह वै म औरवः पुत्रं संवृश्योदके प्राकारीद् इति।— जै.ब्रा.३.२०२

५५. ममता के गर्भ में दीर्घतमा का कथन :---- कथोदन्वः पणायसि।— जै.ब्रा.३.२३९

५६. तव द्रप्सा उदप्रुत इन्द्रं मदाय वावृधुर् इति वृद्धं ह्य् एतद् अहः।— जै.ब्रा.३.२६६

५७. अथ होवाचामलक-उदस्तोकम् अहं मन्य।-- ---उदकाध्य् एवेदं सर्वं जायते।--।— जै.ब्रा. ३.३५०

५८. ततो य उदस्तोक इमां स प्रविशत्य्, ओषधीर् घृतस्तोको, वनस्पतीन् मधुस्तोकः।— जै.ब्रा.३.३५०

५९.----ताभ्यो अवर्षत्। तत ओदनो ऽजायत। तम् अशित्वोदानन्। स उदनो ऽभवत्। तद् उदनस्योदनत्वम्।--- जै.ब्रा.३.३४६

६०. उपोदको नाम लोको अत्रे विष्टो, मनुष्या गोप्तारो, अग्निर् अधिपतिर्, यद् अर्चिषो रूपं तद् रूपं, अप्सु प्रतिष्ठितः।---- -।— जै.ब्रा.३.३४८

६१. अथो दक्षिणासंस्थो वै पितृयज्ञः तमेवैतदुदक्संस्थं कुर्वन्ति। (दो बार)-गोपथ ब्राह्मण २.१.२५

६२. यदप्रक्षालितयोदकं स्रुचा न्यनैषं सर्पेतरजनांस्तेनाप्रैषं, यत् प्रक्षालितया सर्पपुण्यजनांस्तेन।

यदपरेणाहवनीयमुदकं स्रुचा न्यनैषं गन्धर्वाप्सरसस्तेनाप्रैषम्।— गो.ब्रा.१.३.१२

६३. अथ तमश्मानं उदहरणे अवधाय एतां दिशं हरन्ति। एषा वै नैर्ऋती दिक्।— शतपथ ब्राह्मण ९.१.२.९

६४. सान्नाय्य संपादनम् : अथोत्तमां दोहयित्वा येन दोहयति पात्रेण-तस्मिन्नुदस्तोकमानीय पल्यङ्ग्य, प्रत्यानयति।— श.ब्रा.१.७.१.१८

६५. अथोदकवतोत्तानेन पात्रेणापिदधाति। नेदेनदुपरिष्टान्नाष्ट्रा रक्षांस्यवमृशानिति।— श.ब्रा.१.७.१.२०

६६. मत्स्य द्वारा मनु को निर्देश : तं तु त्वा मा गिरौ सन्तमुदकमन्तश्छैत्सीत्, यावद् यावदुदकं समवायात् तावत् तावदन्ववसर्पासि।— श.ब्रा.१.८.१.६

६७. मनु द्वारा अवनेजन व मत्स्य को पाना : स होवाच-अपीपरं वै त्वा, वृक्षे नावं प्रतिबध्नीष्व, तं तु त्वा मा गिरौ सन्तमुदकमन्तश्छैत्सीत्, यावद् यावदुदकं समावायात् तावत् तावदन्ववसर्पासि।— श.ब्रा.१.८.१.६

६८. तस्माद् यद्येनं क्षीरं केवलं पानेऽभ्याभवेत्-उदस्तोकमाश्रोतयितवै ब्रूयात्-शान्त्यै न्वेव रसस्यो चैव सर्वत्वाय।— श.ब्रा.२.३.१.१६

६९. तद्दुग्ध्वाऽधिश्रयति। श्रृतमसदिति। तदाहु : यर्ह्युदन्तं तर्हि श्रृतं तर्हि जुहुयादिति। तद्वै नोदन्तं कुर्यात्, उप ह दहेद् यदुदन्तं कुर्यात्-अप्रजज्ञि वै रेत उपदग्धम्-तस्मान्नोदन्तं कुर्यात्।— श.ब्रा.२.३.१.१४

७०. पितरों के हाथ धुलाना : अथोदपात्रमादायावनेजयति-असाववनेनिक्ष्य इत्येव यजमानस्य पितरम्। असाववनेनिक्ष्वेति पितामहम्। असावनेनिक्ष्वेति प्रपितामहम्। तद् यथा ऽशिष्यते अभिषिञ्चेदेवं तत्।— श.ब्रा.२.४.२.१६, २.४.२.२३

७१. स उदपात्रमादाय अपसलवि त्रिः परिषिञ्चन्पर्येति। स यजमानस्य पितरमवनेजयति-असाववनेनिक्ष्व इति। असाववनेनिक्ष्व इति पितामहम्। असाववनेनिक्ष्व इति प्रपितामहम्।— श.ब्रा.२.६.१.३४

७२. पितृयज्ञः :- अथोदपात्रमादाय पुनः प्रसलवि (प्रदक्षिणा पूर्वक) त्रिः परिषिञ्चन् पर्येति। स यजमानस्य पितरमवनेजयति-असाववनेनिक्ष्व इति। असाववनेनिक्ष्व इति पितामहम्। असाववनेनिक्ष्व इति प्रपितामहम्।--।— श.ब्रा.२.६.१.४१

७३. दीक्षासंस्काराः - अथोत्तरेण शालां परिश्रयन्ति। तदुदकुम्भमुपनिदधाति। तन्नापित उपतिष्ठते। तत्केशश्मश्रु च वपते, नखानि च निकृन्तते।— श.ब्रा.३.१.२.२

७४. (दर्भाणि) प्रच्छिद्योदपात्रे प्रास्यति। तूष्णीमेवोत्तरं गोदानमभ्युनत्ति।---तूष्णीं क्षुरेणाभिनिधाय प्रच्छिद्योदपात्रे प्रास्यति।— श.ब्रा.३.१.२.८

७५. अथाग्रेण राजानं विचिन्वन्ति। तदुदकुम्भ उपनिहितो भवति। तद् ब्राह्मण उपास्ते।— श.ब्रा.३.३.२.५

७६. सोमानयनम् : अथ हैके उदपात्रमुपनिनयन्ति। यथा राज्ञऽआगतायोदकमाहरे-देवमेतदिति वदन्तः। तदु तथा न कुर्यात्। मानुषं ह ते यज्ञे कुर्वन्ति।— श.ब्रा.३.३.४.३१

७७. सोम राजा हेतु आतिथ्येष्टिः - यथा वै देवानां चरणम्। तद्वाऽनुमनुष्याणाम्। तस्मान्मानुषे यावन्न विमुञ्चते (यान आदि को त्यागता है) -नैवास्मै तावदुदकं हरन्ति नापचितिं कुर्वन्ति। अनागतो हि स तावद्भवति। अथ यदैव विमुञ्चते-अथास्माऽउदकं हरन्ति, अथापचितिं कुर्वन्ति। तर्हि हि स आगतो भवति। तस्माद्विमुच्यैव प्रपाद्य (शाला में प्रवेश के पश्चात्) गृह्णीयात्।— श.ब्रा.३.४.१.५

७८. पशु के हृदय शूल का उपगूहनः अथ एवाभ्यवेत्य यत्र शुष्कस्य चार्द्रस्य च सन्धिः स्यात् - तदुपगूहेत्। यद्यु ऽअभ्यवायनाय ग्लायेद्-अग्रेण यूपमुदपात्रं निनीय यत्र शुष्कस्य चार्द्रस्य च सन्धिर्भवति-तदुपगूहति।— श.ब्रा. ३.८.५.१०

७९. नैर्ऋतीष्टका चयनम् : अथान्तरेणोदचमसं (स्वयं व इष्टकाओं के बीच) निनयति। वज्रो वा आपः। वज्रेणैव तत् पाप्मानं निर्ऋतिमन्तर्धत्ते।— श.ब्रा. ७.२.१.१७

८०. अपां निनयनं: अथोदचमसान्निनयति। एतद्वै देवा अब्रुवन्-चेतयध्वमिति।----।- श.ब्रा.७.२.४.१

८१. कृष्ट और अकृष्ट के निषेचन का वर्णन: त्रीन्कृष्टे चाकृष्टे च निनयति----यद्वेवोदचमसान्निनयति। एतद्वाऽअस्मिन्देवा: संस्करिष्यन्त: पुरस्तादपोऽदधु:।---त्रीनुदचमसान्निनयति। त्रिवृदग्नि:।----। श.ब्रा.७.२.४.७

८२. द्वादशोदचमसान्कृष्टे निनयति। द्वादश मासा: संवत्सर:। संवत्सरोऽग्नि:।----स व कृष्टे निनयति। प्राणेषु तदपो दधाति। स यत् कृष्टे ऽएव निनयेत्-नाकृष्टे प्राणेष्वेवाप: स्यु:-नेतरस्मिन्नात्मन्। अथ यदकृष्टऽएव निनयेत्-न कृष्टे, आत्मन्नेवाप: स्यु:-न प्राणेषु। कृष्टे चाकृष्टे च निनयति।---- -पञ्चदशोदचमसान्निनयति। पंचदशो वै वज्र:।— श.ब्रा.७.२.४.९

८३. पञ्चदशोदचमसान्निनयति, पञ्चदशभिर्ऋग्भिर्वपति-तत्त्रिंशत्। त्रिंशदक्षरा विराट्। विराडु कृत्स्नमन्नम्।— श.ब्रा.७.२.४.२५

८४. अथातो निरुक्तानिरुक्तानामेव।----तूष्णीमुदचमसान्निनयति, यजुषा वपति।— श.ब्रा. ७.२.४.२९

८५. निधायोदहरणं त्रिर्विपल्ययते (प्रदक्षिणा करता है)।---— श.ब्रा.९.१.२.६

८६. आठ धिष्ण्याओं का चयन :----क्षत्रं हैता अपां-या: खातेन यन्ति। अथ हैता विशो-यानीमानि वृथोदकानि। स यदमुं खातेन परिश्रयति-क्षत्रे तत् क्षत्रं दधाति।— श.ब्रा. ९.४.३.९

८७. यथा शुष्कं स्थाणुमुदकेनाभिषिञ्चेत्-तादृक्तत्। — श.ब्रा.९.५.२.१४

८८. दर्शपूर्णमास: :- अथ यदाज्यहविष: प्रयाजा भवन्ति, तस्मात्कुमारस्य रेत: सिक्तं न संभवति, उदकमिव भवति; उदकमिव ह्याज्यम्। अथ यन्मध्ये यज्ञस्य दध्ना पुरोडाशेनेति चरन्ति, तस्मादस्य मध्यमे वयसि सम्भवति, द्रप्सीवैव भवति, द्रप्सीव हि रेत:। अथ यदाज्यहविष एवानुयाजा भवन्ति, तस्मादस्य पुनरुत्तमे वयसि न सम्भवति, उदकमिव भवति, उदकमिव ह्याज्यम्।— श.ब्रा.११.४.१.१५

८९. पञ्च महायज्ञ ब्राह्मणम् : अहरहर्भूतेभ्यो बलिं हरेत्।---- अहरहर्दद्यादोदपात्रात्। तथैतं मनुष्य यज्ञं समाप्नोति। अहरह: स्वधा कुर्यादोदपात्रात्। तथैतं पितृयज्ञं समाप्नोति।— श.ब्रा.११.५.६.२

९०. अथ यत्रावभिन्नं स्यात्। तदुदस्थालीं वै वा उदकमण्डलुं वा निनयेत्। यद्वै यज्ञस्य रिष्टम्। यदशान्तम्। आपो वै तस्य सर्वस्य शान्ति:।— श.ब्रा.१२.४.१.८

९१. उदस्थालीं वैवोदकमण्डलुं वाऽऽदाय। गार्हपत्यादंग्र आहवनीयान्निनयन्नियात्। इदं विष्णुर्विचक्रमे इत्येतयैवर्चा।— श.ब्रा.१२.४.१.५

९२. एतां ह वै मुण्डिभ औदन्यो ब्रह्महत्यायै प्रायश्चित्तिं विदाञ्चकार।-— श.ब्रा.१३.३.५.४

९३. अश्वमेधीय प्रायश्चित्तम् : अथ यद्युदके म्रियेत। वारुणं यवमयं चरुमनुनिर्वपेत्। वरुणो वा एतं गृह्णाति। यो ऽप्सु म्रियते।— श.ब्रा.१३.३.८.५

९४. अथाष्टमऽहन्नेवमेव।----मत्स्य: साम्मदो राजेत्याह। तस्योदकेचरा विश:। त इम आसत इति। मत्स्याश्च मत्स्यहनश्चोपसमेता भवन्ति। तानुपदिशति। इतिहासो वेद: सोऽयमिति।— श.ब्रा.१३.४.३.१२

९५. प्रजापतौ त्वा देवतायामुपोदके लोके निदधामि, असौ इति नाम गृह्णाति। अयं वै लोक उपोदक:।---श.ब्रा.१३.८.३.३

९६. यत्रोदकं भवति। तत् स्नान्ति। सुमित्रिया न आप ओषधय: सन्तु, इत्यञ्जलिना ऽपउपाचति----श.ब्रा.१३.८.४.५

९७. अथ यन्मनुष्यान् वासयते। यदेभ्योऽशनं ददाति। तेन मनुष्याणाम्। अथ यत्पशुभ्यस्तृणोदकं विन्दति। तेन पशूनाम्।- — श.ब्रा.१४.४.२.२९

९८. स यथा सैन्धवखिल्य उदके प्रास्त उदकमेवानुविलीयेत। न हास्य उद्ग्रहणायेव स्यात्।----(इसी प्रकार विज्ञान घन है)।— श.ब्रा.१४.५.४.१२

९९. पुत्रमन्थकर्मब्राह्मणम् : अथ यदि उदक आत्मानं पश्येत्। तदभिमन्त्रयेत्-मयि तेज इन्द्रियं यशो द्रविणं सुकृतं।— श.ब्रा.१४.९.४.६

१००. अथ य इच्छेत। पुत्रो मे श्यामो लोहिताक्षो जायेत।---उदौदनं पाचयित्वा। सर्पिष्मन्तमश्नीयात्।--- अथ य इच्छेत। दुहिता मे पण्डिता जायेत।---- तिलौदनं पाचयित्वा। सर्पिष्मन्तमश्नीयाताम्---- श.ब्रा.१४.९.४.१५

१०१. अथैनमुप्तकेशश्मश्रुं निकृत्तनखमुद-कुम्भेनाभ्यवनयन्वाचयतीमा म आपः शिवाः सन्तु दुष्कृतं प्रवहन्तु मे।---बौधायन श्रौत सूत्र २.८

१०२.--- -अस्मिन्नेव चर्मण्युलूखलमुसले निधायावहन्त्यथैतेनैव पात्रेण चतुर उदपात्रानानयदि यदि वीडिता स्थाली भवति यद्यु वा अवीडिता पञ्च वा भूयसो वा स समोदकः संपद्यते।-बौ.श्रौ.सू.२.१३

१०३. अथ प्रतिप्रस्थाता पत्नीमुदानयत्युदक-मण्डलुमुत्थाप्य अथैनमादित्यमुदीक्षयति-— बौ.श्रौ.सू.४.६

१०४. मण्डलेष्टकामुपदधाति पृथिव्युदपुरमन्त्रेन विष्टेति---— बौ.श्रौ.सू.१०.३१

१०५. अथ प्रतिप्रस्थाता पत्नीमुदानयत्युदक-मण्डलुमुत्थाप्य सानुपूर्वं पशूनां प्राणानाप्याययति--- बौ.श्रौ.सू.११.५

१०६. यूपस्य प्रोक्षण इति।----हिरण्यमुदपात्र-मित्येतत्संनिधाय यूपं प्रोक्षेत्-बौ.श्रौ.सू.२०.२६

१०७. संसव इति। यत्र क्वच नाव्या वा नदी स्यादन्तरेणोदयक्ष्मवती वासंसवस्तत्रेति बौधायनो---- बौ.श्रौ.सू.२३.५

१०८. आख्यातमुदकान्तस्य प्रत्यसनम्।-बौ.श्रौ.सू. २३.१६

१०९. उदपात्रेणावनेजयत्यपसव्यं सव्येन वोद्धरणसामर्थ्यात्। असाववनेनिक्ष्वेति यजमानस्य पितृप्रभृत्रीन्।-- -कात्यायन श्रौत्र सूत्र ४.१.९

११०. आहवनीयं पर्युक्ष्योदधारां निनयत्या-गार्हपत्यात्।— का.श्रौ.सू.४.१३.१६

१११. मांसस्त्र्यनृतानि वर्जयेदुदकाश्यवायञ्च (उदकप्रवेशञ्च) प्रागवभृथात्।—का.श्रौ.सू.५.२.२२

११२. आ मुष्टिविसर्गादुदकार्यस्ततः।— का.श्रौ.सू. ८.१.९

११३. प्रत्यगेकनानयुग्मानुदहरणांस्त्रिप्रभृत्या-पञ्चदशभ्यः— का.श्रौ.सू.९.२.२३

११४.------चतुर्थे अरणिभ्यां मन्थनं चोद्गातुरूरौ होमश्च। पञ्चमे सावकयोदपात्र्या।— कात्यायन श्रौ.सू. १२.३.११

११५. कृषि कर्म : या ओषधीरिति तृचैर्वपत्युदपात्रवत्।— का.श्रौ.सू. १७.३.७

११६. आशूलाभिमन्त्रणात्कृत्वोदकाधिष्ठान-प्रभृत्यावभृथेष्टेः।— का.श्रौ.सू. १९.५.१२

११७. वडवाभ्यो वारणम्। प्रस्नेयाद्योदकात्।— का.श्रौ.सू. २०.२.१३

११८. दक्षिणतः कुटिले कर्षू खात्वा क्षीरोदकाभ्यां पूरयन्ति सप्तोत्तरतः प्राचीरुदकस्य।— का.श्रौ.सू. २१.४.२१

११९. नावभृथं सरस्वत्याम्। परिपार्श्वेषूदकेषु।— का.श्रौ.सू. २४.६.२३

१२०. त्रिरुद्धृतश्चेदाहवनीयो ऽनुगच्छेदुदक् स्थानान्युपलिप्य निर्मथ्य सकृदुद्धृते तस्मिन्त्सायम्प्रातर्होममेके।— का.श्रौ.सू. २५.३.३

१२१. स्पृष्ट्वोदकं होतृषदनमभिमन्त्रये ताहे दैधिषव्योदतस्तिष्ठान्यस्य सदने सीद योऽस्मत्पाकतरः इति।— आश्वलायन श्रौत सू. १.३.३०

१२२. पिता वा एषो ऽग्नीनां यद्दक्षिणः पुत्रो गार्हपत्यः पौत्र आहवनीयः तस्मादेवं पर्युक्षेत्।— आ.श्रौ.सू. २.२.१३

१२३. मेक्षणमनुप्रहृत्य प्राचीनावीती लेखां त्रिरुदकेनोपनयेच्छुन्धन्तां पितरः शुन्धन्तां पितामहाः शुन्धन्तां प्रपितामहा इति।— आ.श्रौ.सू. २.६.१४

१२४. अथास्या ऊधसि च मुखे चोदपात्रमुपोद्गृह्य दुग्ध्वा ब्राह्मणं पाययेत्---।— आ.श्रौ.सू. ३.११.३

१२५. संस्थितायां पादानुदकान्ते ऽवदध्युर्नमो वरुणायाभिष्ठितो वरुणस्य पाश इति।— आ.श्रौ.सू. ६.१३.८

१२६. अनुवक्ष्यमाणेऽपराजितायां दिश्यग्निं प्रतिष्ठाप्यासिमुदकमण्डलुमश्मानम् इत्युत्तरतोऽग्नेः कृत्वा वत्सतरीं प्रत्यगुदगसंश्रवणे बद्ध्वा।— आ.श्रौ.सू. ८.१४.१२

१२७. अष्टमे अहनि मत्स्यः साम्मदस्तस्योदकचरा विशस्त इम आसत।— आ.श्रौ.सू १०.७.८

१२८. तल्पे वोदके वा विवाहे वा मीमांस्यमाना द्वितीयम् — आ.श्रौ.सू. ११.२.६

१२९. ऋत सत्याभ्यां त्वा पर्युक्षामीति जपित्वा पर्युक्षेत्त्रिस्त्रिरेकैकं पुनः पुनरुदकमादाय— आ.श्रौ.सू. २.२.११

१३०. यज्ञस्य सन्ततिरसि यज्ञस्य त्वा सन्तत्यै नयानीति गार्हपत्यात्सन्ततामुदधारामाहवनीयात्।— शांखायन श्रौतसूत्र २.६.१२

१३१. ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम्। स्वधा स्थ तर्पयत न पितृनित्युदशेषं निनीय।— शां.श्रौ.सू. ४.५.३

१३२. आपो हि ष्ठा सना च सोमेत्युदकं स्पृशन्ति-----।— शां.श्रौ.सू.४.१५.३

१३३. असावेतत्त इत्येकमुदकांजलिं प्रदाय।— शां.श्रौ.सू. ४.१५.४

१३४. मदन्तीभिरुदकार्थोऽत ऊर्ध्वमाग्नीषोम-प्रणयनात्।— शां.श्रौ.सू. ५.६.९

१३५. उदप्रुत इति शस्त्वा।—शां.श्रौ.सू. ९.३.४

१३६. उदप्रुत इति चतुर्थे अहनि।— शां.श्रौ.सू. १२.१२.९

१३७. अवभृथ : कृष्णाजिनस्य दक्षिणं पूर्वपादमुदकेऽवधाय प्रत्याहरन्ति वसनस्य वा दशाम्।— शां.श्रौ.सू. १५.१३.१५

१३८. अथैनमुदकेऽभिप्रगाह्य यदास्योदकं मुखमास्यन्देताथास्मा अध्वर्युर्मूर्धन्यश्वतेदनिं जुहोति भ्रूणहत्यायै स्वाहेति।— शां.श्रौ.सू. १६.१८.१९

१३९. दुर्भिक्षं देवलोकेषु। मनूनामुदकं गृहे। एता वाचः प्रवदन्तीः। वैद्युतो यान्ति शैशिरीः।— तैत्तिरीय आरण्यक १.४.३

१४०. समानमेतदुदकम्। उच्चैत्यव चाहभिः। भूमिं पर्जन्या जिन्वन्ति। दिवं जिन्वन्त्यग्नयः।।— तै.आ. १.९.५

१४१. त्युग्रो ह भुज्युं-------अन्तरिक्ष-प्रुद्भिरपोदकाभिः।— तै.आ. १.१०.२

१४२. बृहस्पतिश्च सविता च। विश्वरूपैरिहाऽगताम्। रथेनोदकवर्त्मना। अप्सुषा इति तद्वयोः।।— तै.आ. १.१२.५

१४३. न कूर्मस्याश्नीयात्। नोदकस्याघातुकान्येन-मोदकानि भवन्ति। अघातुका आपः।----।— तै.आ. १.२६.७

१४४. त्रिषवणमुदकोपस्पर्शी। चतुर्थकालपान-भक्तः स्यात्— तै.आ. १.३२.१

१४५. (हे प्रेत शरीर!) यं ते अग्निममन्थाम वृषभायेव पक्तवे। इमं तं शमयामसि क्षीरेण चोदकेन च।— तै.आ.६.४.१

१४६. उद्वनावुदकानीवापास्मत्स्यन्दतामघम्। अप नः शोशुचदघम्।— तै.आ. ६.११.२

१४७. (गौ के लिए) पिबतूदकं तृणान्यत्तु। ओमुत्सृजत।— तै.आ. ६.१२.१

१४८. तद् यत्रैव विरिष्टिं स्यात् तत्राग्नीनुपसमाधाय शान्त्युदकं कृत्वा पृथिव्यै श्रोत्राय इति त्रिरेवाग्नीन् संप्रोक्षति-— गोपथ ब्राह्मण १.१.१४

१४९. निरंगुष्ठे पाणावमृतमस्यमृतोपस्तरण-स्यमृताय त्वोपस्तृणामीति पाणावुदकमानीय जीवा स्थ इति सूक्तेन त्रिराचामति।— गो.ब्रा.१.१.३९

१५०. न श्मशानमातिष्ठेत्। चेदभितिष्ठेदुदकं हस्ते कृत्वा यदीदमृतुकाम्येत्यभिमन्त्र्य जपन् संप्रोक्ष्य परिक्रामेत्, समयायोपरिव्रजेत्।— गो.ब्रा.१.२.७

१५१. स (शंयुः आथर्वणः)खलु शान्त्युदकं चकार (अश्वस्य) आथर्वणीभिश्चाङ्गिरसीभिश्च चातनैर्मातृनामभिर्वास्तोष्पत्यैरिति शमयति।-- गो.ब्रा.१.२.१८

१५२. यथा भिन्ना नौरगाधे महत्युदके संप्लवेद्-----एवं खल्वपि यज्ञश्छिन्नभिन्नो ऽपध्वस्त-----— गो.ब्रा.२.२.५

१५३. उदप्रुतो न वयो रक्षमाणाः इति बार्हस्पत्यं सांशंसिकम्।— गो.ब्रा.२.४.१६

१५४. दक्षिणतः कशिपूपबर्हणमाञ्जनमभ्यञ्जनमुदकुम्भमित्येकैकश आसादयति।— आप. श्रौ. सू. १.८.२

१५५. मार्जयन्तां मम पितरो मार्जयन्तां मम पितामहा मार्जयन्तां मम प्रपितामहा इत्येकस्म्यायां त्रीनुदकाञ्जलीन्निनयति।— आप.श्रौ.सू.१.८.१०

१५६. आज्यलेपान्प्रक्षाल्य सस्रुवे जुहूपभृतावध्वर्युरादत्ते वेदं होता स्म्यमाज्यस्थालीं उदकमण्डलुं चाग्नीध्रः।— आप.श्रौ.सू. ३.८.५

१५७. चतुर्षूदपात्रेषु (ब्रह्मोदनं) पचति। न प्रक्षालयति न प्रस्रावयति। क्षीरे भवतीत्येके। जीवतण्डुलमिव श्रपयतीति विज्ञायते।— आप.श्रौ.सू.५.५.४

१५८. उदकुम्भः प्रोक्षणीभाजनं भवति (कुम्भे एव प्रोक्षण्यः संस्क्रियन्ते स्थाप्यन्ते च)। — आप.श्रौ.सू. ८.१३.१७

१५९. दक्षिणतः कशिपूपबर्हणमाञ्जनमभ्यञ्जनमुदकुम्भमित्येकैकश आसाद्य वेदं निधाय सामिधेनीभ्यः प्रतिपद्यते।— आप.श्रौ.सू.८.१४.१६

१६०. उदकुम्भमादाय यजमानः शुन्धन्तां पितर इति त्रिः प्रसव्यं वेदिं परिषिंचन्पर्येति।— आप.श्रौ.सू.८:१६.४

१६१. जघनेन वेदिकमन्तर्वेदि वोदकशुल्बं संनहनं स्तृणीयात्।— आप.श्रौ.सू.९.२.२

१६२. उदकुम्भं राजानं सोमविक्रयिणमिति सर्वतः परिश्रित्योत्तरेण द्वारं कृत्वा विचित्यः सोमा३ इत्युक्तम्।— आप.श्रौ.सू.१०.२०.१४

१६३.---दक्षिणतो दर्भेषु निषाद्योत्तरत उदपात्रमुपनिधाय तस्मिन्नेकविंशतिं यवान्दर्भ-पुञ्जीलांश्चावधाय जीवा नाम स्थ— आप.श्रौ.सू. १४.२०.८

१६४. यत्किंच प्रवर्ग्य उदककृत्यं मदन्तीभिरेक तत्क्रियते। नैनं स्त्री प्रेक्षते न शूद्रः। आप.श्रौ.सू. १५.२.९

१६५. उदकुम्भमादायाध्वर्युर्वल्गुरसि शंयुधाया इति त्रिः प्रदक्षिणमुत्तरवेदिं परिषिंचन्पर्येति।— आप.श्रौ.सू. १५.१४.४

१६६. अवान्तरदीक्षा :- पर्वण्युदगयन आपूर्यमाणपक्षस्य वा पुण्ये नक्षत्रे केशश्मश्रु वापयित्वा----— आप.श्रौ.सू.१५.२०.२

१६७. अग्निचयनम् : पञ्चदशोदपात्रान्निनयति। द्वादश कृष्टे त्रीनकृष्टे।-----— आप.श्रौ.सू. १६.१९.१०

१६८. अग्निचयनम् : उदकुम्भमादायाध्वर्युरश्मन्नूर्जमिति त्रिः प्रदक्षिणमग्निं परिषिंचन्पर्येति।— आप.श्रौ.सू.१७.१२.४

१६९. प्रतियुतो वरुणस्य पाश इत्युदकान्तं प्रत्यस्यति।— आप.श्रौ.सू.१९.१०.५

१७०. मार्जालीयन्यन्ते अष्टौ दासकुमार्य उदकुम्भैर्निकल्पन्ते।— आप.श्रौ.सू. २१.१८.७

१७१. अत्रैता दासकुमार्य उदकुम्भानधि निधाय त्रिः प्रदक्षिणं मार्जालीयं परिनृत्यन्ति।--- — आप.श्रौ.सू.२१.१९.१८

१७२. अत्रैता दासकुमार्य उदकुम्भानुपनिनीय यथार्थं गच्छन्ति।— आप.श्रौ.सू.२१.२०.५

१७३. आज्यमन्थं ब्राह्मणः पयोमन्थं राजन्यो दधिमन्थं वैश्य उदमन्थं शूद्रः।— आप.श्रौ.सू.२२.२६.१

१७४. द्वितीयं यांस्तल्प उदके विवाहे वा मीमांसेरन्।— आप.श्रौ.सू.२३.१.१ ५

१७५. अथ सपिण्डीकरणम्।---- - चत्वार्युदपात्राणि सतिलगन्धोदकानि कृत्वा। त्रीणि पितृणामेकं प्रेतस्य।----शाङ्खायन गृह्यसूत्र ४.३.१

१७६. सीमन्तोन्नयनम्: उदपात्रे ऽक्षतानवनिनीय विष्णुर्योनिं कल्पयतु, राकामहमिति। षड्ऋचेन पाययेत्।-शाङ्खायन गृह्यसूत्र १.२२.१२

## उदय

१. एषायुक्त परावतः सूर्यस्योदयनादधि। शतं रथभिः सुभगोषा इयं व यात्यभि मानुषान्।।— ऋ.१.४८.७

२. यदिन्द्राग्नी उदिता सूर्यस्य मध्ये दिवः स्वधया मादयेथे। अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य।।— ऋ.१.१०८.१२

३. प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषान्। प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे।।— ऋ.१.५०.५

४. अद्या देवा उदिता सूर्यस्य निरंहसः पिपृता निरवद्यात्।— ऋ.१.११५.६

५. उषा उच्छन्ती समिधाने अग्ना उद्यन्त्सूर्य उर्विया ज्योतिरश्रेत्। देवो नो अत्र सविता न्वर्थं प्रासावीद् द्विपत् प्र चतुष्पदित्यै।।— ऋ.१.१२४.१

६. अबोध्यग्निर्ज्म उदेति सूर्यो व्युषाश्चन्द्रा मह्यावो अर्चिषा।— ऋ.१.१५७.१

७. यदक्रन्दः प्रथमं जायमान उद्यन् त्समुद्रादुत वा पुरीषात्। (अश्व)— ऋ.१.१६३.१

८. समानमेतदुकमुच्चैत्यव चाहभिः। भूमिं पर्जन्या जिन्वन्ति दिवं जिन्वन्त्यग्नयः।।— ऋ.१.१६४.५१

९. उत् पुरस्तात् सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा। अदृष्टान् त्सर्वाञ्जम्भयन् त्सर्वाश्च यातुधान्यः।।— ऋ.१.१९१.८

१०. ते विद्वांसः प्रतिचक्ष्यानृता पुनर्यत उ आयन् तदुदीयुराविशम्।।— ऋ.२.२४.६

११. त्वं नो अस्या उषसो व्युष्टौ त्वं सूर उदिते बोधि गोपाः।— ऋ.३.१५.२

१२. तं जानतीः प्रत्युदायन्नुषासः पतिर्गवामभवदेक इन्द्रः।।— ऋ.३.३१.४

१३. यातमश्विना सुकृतो दुरोणमुत् सूर्यो ज्योतिषा देव एति।।— ऋ.४.१३.१

१४. यन्मरुतः सभरसः स्वर्णरः सूर्य उदिते मदथा दिवो नरः।— ऋ.५.५४.१०

१५. हिरण्यरूपमुषसो व्युष्टावयःस्थूणमुदिता सूर्यस्य।— ऋ.५.६२.८

१६. प्रातर्देवीमदितिं जोहवीमि मध्यंदिन उदिता सूर्यस्य।— ऋ.५.६९.३

१७. उता यातं संगवे प्रातरह्नो मध्यंदिन उदिता सूर्यस्य। (अश्विनौ)— ऋ.५.७६.३

१८. यज्ञस्य वा निशितिं वोदितिं वा तमित् पृणक्षि शवसोत राया।। (अग्नि)— ऋ.६.१५.११

१९. उदु त्यच्चक्षुर्महि मित्रयोराँ एति प्रियं वरुणयोरदब्धम्।— ऋ.६.५१.१

२०. आ देवो ददे बुध्न्या वसूनि वैश्वानर उदिता सूर्यस्य।— ऋ.७.६.७

२१. सत्रे ह जाताविषिता नमोभिः कुम्भे रेतः सिषिचतुः समानम्। ततो ह मान उदियाय मध्यात् ततो जातमृषिमाहुर्वसिष्ठम्।।— ऋ.७.३३.१३

२२. शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नश्चतस्रः प्रदिशो भवन्तु।— ऋ.७.३५.८

२३. उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम्। उतोदिता मघवन् त्सूर्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम।।— ऋ.७.४१.४

२४. यदद्य सूर्य ब्रवोऽनागा उद्यन् मित्राय वरुणाय सत्यम्। वयं देवत्रादिते स्याम तव प्रियासो अर्यमन् गृणन्तः।।— ऋ.७.६०.१

२५. एष स्य मित्रावरुणा नृचक्षा उभे उदेति सूर्यो अभि ज्मन्। विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च गोपा ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन्।।— ऋ.७.६०.२

२६. उद् वां चक्षुर्वरुण सुप्रतीकं देवयोरेति सूर्यस्ततन्वान्। अभि यो विश्वा भुवनानि चष्टे स मन्युं मर्त्येष्वा चिकेत।।— ऋ.७.६१.१

२७. उद्वेति सुभगो विश्वचक्षाः साधारणः सूर्यो मानुषाणाम्। चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्य देवश्चर्मेव यः समविव्यक् तमांसि।।— ऋ.७.६३.१

२८. उद्वेति प्रसवीता जनानां महान् केतुरर्णवः सूर्यस्य।— ऋ.७.६३.२

२९. विभ्राजमानः उषसामुपस्थाद् रेभैरुदेत्यनुमद्यमानः।— ऋ.७.६३.३

३०. दिवो रुक्म उरुचक्षा उदेति दूरेअर्थस्तरणिर्भ्राजमानः।— ऋ.७.६३.४

३१. प्रति वां सूर उदिते विधेम नमोभिर्मित्रावरुणोत हव्यैः।।— ऋ.७.६३.५

३२. प्रति वां सूर उदिते सूक्तैर्मित्रं हुवे वरुणं पूतदक्षम्।— ऋ.७.६५.१

३३. यदद्य सूर उदिते ऽनागा मित्रो अर्यमा। सुवाति सविता भगः।।— ऋ.७.६६.४

३४. प्रति वां सूर उदिते मित्रं गृणीषे वरुणम्। अर्यमणं रिशादसम्।।— ऋ.७.६६.७

३५. तद् वो अद्य मनामहे सूक्तैः सूर उदिते।— ऋ.७.६६.१२

३६. उदु त्यद् दर्शतं वपुर्दिव एति प्रतिह्वरे। यदीमाशुर्वहति देव एतशो विश्वस्मै चक्षसे अरम्।।— ऋ.७.६६.१४

३७. तानीदहानि बहुलान्यासन् या प्राचीनमुदिता सूर्यस्य।— ऋ.७.७६.३

३८. उदुस्रियाः सृजते सूर्यः सचाँ उद्यन्नक्षत्रमर्चिवत्। तवेदुषो व्युषि सूर्यस्य च सं भक्तेन गमेमहि।।— ऋ.७.८८.२

३९. इन्द्रासोमा दुष्कृतो वव्रे अन्तरनारम्भणे तमसि प्र विध्यतम्। यथा नातः पुनरेकश्चनोदयत् तद् वामस्तु सहसे मन्युमच्छवः।।— ऋ.७.१०४.३

४०. मम त्वा सूर उदिते मम मध्यंदिने दिवः। मम प्रपित्वे अपिशर्वरे वसवा स्तोमासो अवृत्सत।।— ऋ. ८.१.२९

४१. हवे त्वा सूर उदिते हवे मध्यंदिने दिवः। जुषाण इन्द्र सप्तिभिर्न आ गहि।।— ऋ.८.१३.१३

४२. यदद्य सूर्य उद्यति प्रियक्षत्रा ऋतं दध। यन्निम्रुचि प्रबुधि विश्ववेदसो यद् वा मध्यंदिने दिवः।।— ऋ.८.२७.१९

४३. यदद्य सूर उदिते यन्मध्यंदिन आतुचि। वामं धत्थ मनवे विश्ववेदसो जुह्वानाय प्रचेतसे।।— ऋ. ८.२७.२१

४४. नाभाकस्य प्रशस्तिभिर्यः सिन्धूनामुपोदये सप्तस्वसा स मध्यमो नभन्तामन्यके समे।।— ऋ. ८.४१.२

४५. सोमस्य मित्रावरुणादिता सूर आ ददे। तदातुरस्य भेषजम्।।— ऋ.८.७२.१७

४६. उद्धेदभि श्रुतामघं वृषभं नर्यापसम्। अस्तारमेषि सूर्य।।— ऋ.८.९३.१

४७. उदिता यो निदिता वेदिता वस्वा यज्ञियो ववर्तति।— ऋ.८.१०३.११

४८. सप्त वीरासो अधरादुदायन्नष्टोत्तरात्तात् समजग्मिरन्ते। नव पश्चातात् स्थिविमन्त आयन् दश प्राक् सानु वि तिरन्त्यश्नः।।— ऋ.१०.२७.१५

४९. देवानां माने प्रथमा अतिष्ठन् कृन्तत्रादेषामुपरा उदायन्।— ऋ.१०.२७.२३

५०. विश्वा इदुस्राः स्पळुदेति सूर्यः स्वस्त्यग्निं समिधानमीमहे।।— ऋ.१०.३५.८

५१. विश्वमन्यन्नि विशते यदेजति विश्वाहापो विश्वाहोदेति सूर्यः।।— ऋ.१०.३७.२

५२. मूर्धा भुवो भवति नक्तमग्निस्ततः सूर्यो जायते प्रातरुद्यन्। मायामू तु यज्ञियानामेतामपो यत् तूर्णिश्चरति प्रजानन्।।— ऋ.१०.८८.६

५३. त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः। ततो विष्वङ् व्यक्रामत् साशनानशने अभि।— ऋ.१०.९०.४

५४. उद्वृत्रहन् वाजिनां वाजिनान्युद्रथानां जयतां यन्तु घोषाः।।— ऋ.१०.१०३.१०

५५. दूरमित पणयो वरीय उद्गावो यन्तु मिनतीर्ऋतेन।— ऋ.१०.१०८.११

५६. यत्राधि सूर उदितो विभाति कस्मै देवाय हविषा विधेम।।— ऋ.१०.१२१.६

५७. अनु सूर्यमुदयतां हृद्द्योतो हरिमा च ते। गो रोहितस्य वर्णेन तेन त्वा परि दध्मसि।।-अथर्व १.२२.१

५८. उद्यन्नादित्यः क्रिमीन् हन्तु निम्रोचन् हन्तु रश्मिभिः। ये अन्तः क्रिमयो गवि।।— अ.२.३२.१

५९. आ त्वा गन् राष्ट्रं सह वर्चसोदिहि प्राङ् विशां पतिरेकराट् त्वं वि राज।— अ.३.४.१

६०. उतोदितौ मघवन्त्सूर्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम।।— अ.३.१६.४

६१. उद्धर्षन्तां मघवन् वाजिनान्युद् वीराणां जयतामेतु घोषः।— अ.३.१९.६

६२. तव व्रते नि विशन्ते जनासस्त्वय्युदिते प्रेरते चित्रभानो।— अ.४.२५.३

६३. अहं तमस्य नृभिरग्रभं रसं तमस इव ज्योतिरुदेतु सूर्यः।।— अ.५.१३.३

६४. उत् पुरस्तात् सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा।— अ.५.२३.६

६५. उत् सूर्यो दिव एति पुरो रक्षांसि निजूर्वन्। आदित्यः पर्वतेभ्यो विश्वदृष्टो अदृष्टहा।।— अ.६.५२.१

६६. संप्रेद्धो अग्निर्जिह्वाभिरुदेतु हृदयादधि।।— अ.६.७६.१

६७. यद् देवा देवान् हविषायजन्तामर्त्यान् मनसामर्त्येन। मदेम तत्र परमे व्योमन् पश्येम तदुदितौ सूर्यस्य।।— अ.७.५.३

६८. यथा सूर्यो नक्षत्राणामुद्यंस्तेजांस्याददे। एवा स्त्रीणां च पुंसां च द्विषतां वर्च आ ददे।। यावन्तो मा सपत्नानामायन्तं प्रतिपश्यथ। उद्यन्त्सूर्य इव सुप्तानां द्विषतां वर्च आ ददे।।— अ.७.१४.१

६९. अस्मै मृत्यो अधि ब्रूहीमं दयस्वोदितोयमेतु।— अ.८.२.८

७०. इन्द्रासोमा दुष्कृतो वव्रे अन्तरनारम्भणे तमसि प्र विध्यतम्। यतो नैषां पुनरेकश्चनोदयत् तद् वामस्तु सहसे मन्युमच्छवः।।— अ.८.४.३

७१. वत्सौ विराजः सलिलादुदैतां तौ त्वा पृच्छामि कतरेण दुग्धा।।— अ.८.९.१

७२. ततः षष्ठादामुतो यन्ति स्तोमा उदितो यन्त्यभि षष्ठमह्नः।।— अ.८.९.६

७३. उद्यन्नादित्यो द्रविणेन तेजसा नीचैः सपत्नान् नुदतां मे सहस्वान्।।— अ.९.२.१५

७४. यो वा उद्यन्तं नामर्तुं वेद। उद्यतीमुद्यतीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते। एष वा उद्यन्नामर्तुर्यदजः पञ्चौदनः।।— अ.९.५.३५

७५. तस्मा उद्यन्त्सूर्यो हिङ्कृणोति संगवः प्र स्तौति। मध्यंदिन उद्गायत्यपराह्णः प्रति हरत्यस्तंयन् निधनम्।— अ.९.१०.४

७६. उद्यन्नादित्य रश्मिभिः शीर्ष्णो रोगमनीनशोऽङ्गभेदमशीशमः।।— अ.९.१३.२२

७७. यस्त्वोवाच परेहीति प्रतिकूलमुदाय्यम्। तं कृत्येऽभिनिवर्तस्व मास्मानिच्छो अनागसः।।— अ. १०.१.७

७८. राद्धिः समृद्धिर्व्यृद्धिर्मतिरुदितयः कुतः।।— अ.१०.२.१०

७९. यतः सूर्य उदेत्यस्तं यत्र च गच्छति। तदेव मन्येऽहं ज्येष्ठं तदु नात्येति किं चन।।— अ.१०.८.१६

८०. येन देवा ज्योतिषा द्यामुदायन् ब्रह्मौदनं पक्त्वा सुकृतस्य लोकम्। तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं स्वरारोहन्तो अभि नाकमुत्तमम्।।— अ.११.१.३७

८१. तवेमे पृथिवि पञ्च मानवा येभ्यो ज्योतिरमृतं मर्त्येभ्य उद्यन्त्सूर्यो रश्मिभिरातनोति।।— अ.१२.१.१५

८२. उद्यंस्त्वं देव सूर्य सपत्नानव मे जहि। अवैनानश्मना जहि ते यन्त्वधमं तमः।।— अ.१३.१.३२

८३. प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषीः। प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे।।— अ.१२.२.२०

८४. केतुमानुद्यन्त्सहमानो रजांसि विश्वा आदित्य प्रवतो वि भासि।।— अ.१३.२.२८

८५. चित्रं देवानां केतुरनीकं ज्योतिष्मान् प्रदिशः सूर्य उद्यन्।— अ.१३.२.३४

८६. स वरुणः सायमग्निर्भवति स मित्रो भवति प्रातरुद्यन्।— अ.१३.३.१३

८७. पश्चात् प्राञ्च आ तन्वन्ति यदुदेति वि भासति। रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः।।— अ.१३.४.७

८८. उदिह्युदिहि सूर्य वर्चसा माभ्युदिहि। द्विषंश्च मह्यं रध्यतु मा चाहं द्विषते रधं तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि।— अ.१७.१.६

८९. उदिह्युदिहि सूर्य वर्चसा माभ्युदिहि। यांश्च पश्यामि यांश्च न तेषु मा सुमतिं कृधि तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि।— अ.१७.१.७

९०. उद्यते नम उदायते नम उदिताय नमः। विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः।।— अ.१७.१.२२

९१. अग्निर्मा गोप्ता परि पातु विश्वत उद्यन्त्सूर्यो नुदतां मृत्युपाशान्। व्युच्छन्तीरुषसः पर्वता ध्रुवाः सहस्रं प्राणा मय्या यतन्ताम्।।— अ.१७.१.३०

९१. ये अग्रवः शशमानाः परेयुर्हित्वा द्वेषांस्यनपत्यवन्तः। ते द्यामुदित्याविदन्त लोकं नाकस्य पृष्ठे अधि दीध्यानाः।।— अ.१८.२.४७

९२. शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नो भवन्तु प्रदिशश्चतस्रः।— अ.१९.१०.८

९३. भिन्द्धि दर्भ सपत्नानां हृदयं द्विषतां मणे। उद्यन्त्वचमिव भूम्याः शिर एषां वि पातय।।— अ.१९.२८.४

९४. कालेनोदेति सूर्यः काले नि विशते पुनः।।— अ.१९.५४.१

९५. उद् घेदभि श्रुतमघं वृषभं नर्यापसम्। अस्तारमेषि सूर्य।— अ.२०.७.१

९६. प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषीः।— अ.२०.४७.१७

९७. चित्रं देवानां केतुरनीकं ज्योतिष्मान् प्रदिशः सूर्य उद्यन्।— अ.२०.१०७.१३

९८. पूर्णिमा : तद्धैके दृष्ट्वोपवसन्ति। श्वो नोदेतेति। अदो हैव देवानामविक्षीणमन्नं भवति,----- शतपथ१.६.४.१४

९९. तद्वा एष एवेन्द्रो य एष तपति। अथैष एव वृत्रो यच्चन्द्रमाः। ---तस्माद् यद्यपि पुरा विदूरमिवोदितः, अथैनमेतां रात्रिमुपैव न्याप्लवते।— श.१.६.४.१८

१००. दर्शोपचारः :- तं (चन्द्रमसं) ग्रसित्वोदेति। स न पुरस्तान्न पश्चाद् ददृशे।---- — श.१.६.४.१९

१०१. हवनक्लृप्तिः :- तद्वा एष एव वषट्कारः-य एष तपति। स उद्यन्नेवामूमधिद्रवति, अस्तं यन्निमामधिद्रवति।— श.१.७.२.११

१०२. नक्षत्रब्राह्मणम् : अमी ह्युत्तराहि सप्तर्षय उद्यन्ति, पुर एताः (कृत्तिकाः)।— श.२.१.२.४

१०३. नाना ह वा एतान्यग्रे क्षत्राण्यासुः-यथैवासौ सूर्य, एवम्। तेषामेष उद्यन्नेव वीर्य्यं क्षत्रमादत्त। तस्मादादित्यो नाम-यदेषां वीर्य्यं क्षत्रमादत्त।— श.२.१.२.१८

१०४. ऋतुब्राह्मणम् : सूर्य एवैषां पाप्मनोऽपहन्ता। उद्यन्नेवैषामुभयेषां पाप्मानमपहन्ति।— श.२.१.३.९

१०५. अग्निमन्थनब्राह्मणम् : तद्धैकेऽनुदिते मथित्वा, तमुदिते प्राञ्चमुद्धरन्ति।------तदु तथा न कुर्यात्-उभौ हैवास्य तथाऽनुदित आहितौ भवतः। अनुदिते हि मथित्वा तमुदिते प्राञ्चमुद्धरन्ति। स य उदित आहवनीयं मन्थेत्-स ह तत्पर्याप्नुयात्।— श.२.१.४.८

१०६. पुरा हायुषो म्रियते-योऽनुदिते मन्थति।---- यशो ह भवति, य एवं विद्वानुदिते मन्थति।— श.२.१.४.९

१०७. स स्वाहेत्येवाजुहोत्-तस्मादु स्वाहेत्येव हूयते। तत एष उदियाय-य एष तपति।— श.२.२.४.६

१०८. सूर्यो ह वा अग्निहोत्रम्। तद्यदेतस्या अग्रे आहुतेरुदैत्, तस्मात्सूर्योऽग्निहोत्रम्।— श.२.३.१.१

१०९. अथ यत् प्रातरनुदिते जुहोति-प्रजनयत्येवैनमेतत्सोऽयं तेजो भूत्वा विभ्राजमान उदेति। शश्वद्ध वै नोदियाद्-यदस्मिन्नेतामाहुतिं न जुहुयात्।— श.२.३.१.५

११०. अथ यत्प्रातरनुदिते जुहोति-अप्रेतेभ्य एवैभ्य एतज्जुहोति। तस्मादुदितहोमिनां विच्छिन्नमग्निहोत्रं मन्यामह-इति ह स्माहासुरिः।— श.२.३.१.९

१११. यदा ह्येव सूर्योऽस्तमेति-अथाग्निर्ज्योतिः। यदा सूर्य उदेति-अथ सूर्यो ज्योतिः। — श.२.३.१.३०

११२. अग्नावेवैतत्सायं सूर्यं जुहोति, सूर्ये प्रातरग्निमिति। तद्वै तदुदितहोमिनामेव। यदा ह्येव सूर्योऽस्तमेति-अथाग्निर्ज्योतिः। यदा सूर्य उदेति-अथ सूर्यो ज्योतिः।— श.२.३.१.३६

११३. स यस्य कामयते-तस्य प्राणमादायोदेति-स म्रियते। — श.२.३.३.८

११४. अथ यत् प्रातरनुदिते द्वे आहुती जुहोति-तदेताभ्यामपराभ्यां पद्भ्यामेतस्मिन् मृत्यौ प्रतितिष्ठति। स एनमेष उद्यन्नेवादायोदेति। तदेतं मृत्युमतिमुच्यते। — श.२.३.३.९

११५. अथ प्राङिवोदङ्ङुत्क्रामति-उदिदाभ्यः शुचिरापूत एमि इति।— श.३.१.२.१२

११६. पुरास्तमयादाह-दीक्षित वाचं यच्छति।---- पुरोदयादाह-दीक्षितं वाचं यच्छति। तामुदिते वाचं विसृजते-सन्तत्या एव।— श.३.२.२.२६

११७. ----अमृतमायुर्हिरण्यम्। तद् अमृतऽआयुषि प्रतितिष्ठति। तथा त उदेति। तथा सञ्जीवति।— श. ३.८.२.२७, ३.८.३.२६

११८. घ्नन्ति वाऽएनमेतद्, यदभिषुण्वन्ति। तमेतेन घ्नन्ति। तथा त उदेति, तथा सञ्जीवति। तस्मादश्ममया ग्रावाणो भवन्ति।— श.३.९.४.२, ३.९.४.८, ३.९.४.१७

११९. अन्तर्यामग्रहः :- प्राणोदानौ ह वाऽअस्यैतौ ग्रहौ। तयोरुदितेऽन्यतरं जुहोति-अनुदितेऽन्यतरम्। — श.४.१.२.११

१२०. अहोरात्रे ह वाऽअस्यैतौ ग्रहौ। तयोरुदितेऽन्यतरं जुहोति, अनुदितेऽन्यतरम्। अहोरात्रयोर्व्याकृत्यै। — श.४.१.२.१२

१२१. रात्रिं सन्तमन्तर्यामं, तमुदिते जुहोति। रात्रिमेवैतदहन्दधाति। तेनो हासावादित्य उद्यन्नेवेमाः प्रजा न प्रदहति।— श.४.१.२.१४

१२२. शुक्रामन्थिनौ ग्रहौ : एतौ ह वाऽआसां प्रजानां चक्षुषी। स यद्धैतौ नोदियाताम्-न हैवेह स्वौ चन पाणी निर्जानीयुः।— श.४.२.१.२

१२३. ग्रहोपासनाब्राह्मणम् : स य एष सोमग्रहः।---- स उद्यन्तं वाऽऽदित्यमुपतिष्ठते, अस्तं यन्तं वा ---- ---।— श.४.६.५.५

१२४. इदं वाऽअसावादित्य उद्यन्नेव-यथाऽयमग्निर्निर्दहेद् एवमोषधीरन्नाद्यं निर्दहति। तदेता आपोऽभ्यवयत्यः शमयन्ति।— श.५.३.४.१६

१२५. अथ बाहूऽउद्गृह्णाति-हिरण्यरूपाऽउषसो विरोकऽउभाविन्द्राऽउदिथः सूर्यश्च। आरोहतं वरुण मित्र गर्तम्, ततश्चाक्षाथाम्-अदितिम्, दितिं च इति।— श.५.४.१.१५

१२६. यथाग्निर्धूम उदयते-एवमेषामूष्मोदयते (पशूनाम्)।— श.६.२.१.५

१२७. अथोऽएषैव हव्यम्। अरिष्टा त्वमुदिहि यज्ञेऽअस्मिन् इति। यथैवारिष्टाऽनार्तैतस्मिन्यज्ञ-ऽउदियादेवमेतदाह।— श. ६.६.२.६

१२८. अथ प्रातरुदितऽआदित्ये भस्मैव प्रथममुद्वपति। एतद्वाऽएनमेतेनान्नेन प्रीणाति-एतया समिधा, यच्च रात्र्योपसमादधाति। तस्यान्नस्य जग्धस्यैष पाप्मा सीदति-भस्म। श.६.६.४.२

१२९. प्रासावीद्भद्रं द्विपदे चतुष्पदे इति। उद्यन्वाऽएष द्विपदे चतुष्पदे च भद्रं प्रसौति। वि नाकमख्यत् सविता वरेण्य इति। स्वर्गो वै लोको नाकः। तमेष उद्यन्नेवानुविपश्यति।— श.६.७.२.४

१३०. स यदहः सन्निवप्स्यन्त्स्यात्-तदहः प्रातरुदित ऽआदित्ये भस्मैव प्रथममुद्वपति।— श.६.७.४.१४

१३१. दर्भस्तम्बोपधानम् : या वै वृत्राद्बीभत्समाना आपो धन्व दृभन्त्य उदायन्-ते दर्भा अभवन्। यद्दृभन्त्य उदायन्-तस्माद्दर्भाः।— श.७.२.३.२

१३२. ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद् इति।----वि सीमतः सुरुचो वेन आवः इति।----तानेष सीमतो मध्यतो विवृण्वन्नुदेति।— श.७.४.१.१४

१३३. असौ वाऽआदित्यो विश्वव्यचाः। यदा ह्येवैष उदेति-अथेदं सर्वं व्यचो भवति।— श.८.१.२.१

१३४. उपवसथीयेऽहन्प्रातरुदित ऽआदित्ये वाचं विसृजते।— श.९.२.१.१

१३५. आपप्रिवान्रोदसी अन्तरिक्षम् इति। उद्यन्वा एष इमांल्लोकानापूरयति।— श.९.२.३.१७

१३६. अग्निरेव पुरः।----आदित्य एव चरणम्। यदा ह्येवैष उदेति-अथेदं सर्वं चरति। तदेतद्यजुः सपुरश्चरणमधिदेवतम्।— श.१०.३.५.३

१३७. अश्वावयवेषु विराडवयवोपासनं ब्राह्मणम् : उषा वा अश्वस्य मेध्यस्य शिरः,-.--- -उद्यन्पूर्वार्धः, निम्लोचञ्जघनार्धः, यद्विजृम्भते-तद् विद्योतते।— श.१०.६.४.१

१३८. नैमित्तिकी त्रिहविष्का अभ्युदयेष्टिः :- तद्धैके दृष्ट्वोपवसंति। श्वोनोदेतेति। अभ्रस्य वा हेतोः।--। श. ११.१.४.१

१३९. नैमित्तिकी दर्शयागे पुरस्ताच्चन्द्रदर्शने त्रिहविष्का अभ्युदयेष्टिसंज्ञिका प्रायश्चित्तेष्टिः :- अथ यदैव नोदियात्। अथोपवसेत्।- श.११.१.४.४

१४०. दर्शयागे पश्चाच्चंद्रदर्शने त्रिहविष्का अभ्युदितेष्टिः :--न ह्यन्यदपक्रमणं भवति। श्वःश्वऽएवैष ज्यायानुदेति।— श.११.१.५.४

१४१. अश्वमेधीयप्रायश्चित्तानि : सूर्यो वै प्रजानां चक्षुः। यदा ह्येवैष उदेति। अथैतं सर्वं चरति। चक्षुषैवास्मिंस्तच्चक्षुर्दधाति।— श.१३.३.८.४

१४२. अत्रहोमब्राह्मणम् :व्युष्ट्यै स्वाहेत्यनुदित आदित्ये जुहाति। स्वर्गाय स्वाहेत्युदिते। अहोरात्रयोरव्यतिमोहाय। श.१३.२.१.७

१४३. अथ ह एनं निवपति। इयं वै पृथिवी प्रतिष्ठा। अस्यामेवैनमेतत् प्रतिष्ठायां प्रतिष्ठापयति। पुराऽऽदित्यस्योदयात्।— श.१३.८.३.२

१४४. त्र्यन्नब्राह्मणं वा अविद्या विषयसंसारतत्त्वप्रदर्शकं ब्राह्मणं : अथैष श्लोको भवति-यतश्चोदेति सूर्यः। अस्तं यत्र च गच्छति-इति। प्राणाद्वा एष उदेति। प्राणे अस्तमेति।— श.१४.४.३.३४

१४५. तम् (यूपं) अवाचीनाग्रं निमित्योर्ध्वा उदायंस्ततो वै मनुषाश्च ऋषयश्च देवानां यज्ञवास्तभ्यायन्-----।— ऐतरेय ब्रा. २.१

१४६. तम् (कवषं ऐलूषं) आपोऽनूदायंस्तं सरस्वती समन्तं पर्यधावत्। ऐ.२.१९

१४७. अग्निष्टोमः :- तस्य संस्तुतस्य नवतिशतं स्तोत्रियाः सा या नवतिस्ते दश त्रिवृतोऽथ या नवतिस्ते दशाथ या दश तासामेका स्तोत्रियोदेति त्रिवृत्परिशिष्यते-------मध्य एष एकविंश उभयतोऽध्याहितस्तपति तद्याऽसौ स्तोत्रियोदेति सैतस्मिन्नध्यूह्ळा स यजमानस्तद्दैवं क्षत्रं सहो बलम्।— ऐ.३.४१

१४८. स एतमेव शस्त्रेणानु पर्यावर्तेत यदा वा एष प्रातरुदेत्यथ मन्द्रं तपति तस्मान्मन्द्रया वाचा प्रातःसवने शंसेत्---।— ऐ.३.४४

१४९. अथ यदेनं प्रातरुदेतीति मन्यन्ते रात्रेरेव तदन्तमित्वाऽथाऽऽत्मानं विपर्यस्यते-ऽहरेवावस्तात्कुरुते रात्रिं परस्तात्।— ऐ.३.४४

१५०. चित्रं देवानामुदगादनीकमिति त्रैष्टुभमसौ वाव चित्रं देवानामुदेति तस्मादेतच्छंसति।— ऐ.४.९

१५१. उदित आदित्ये प्रातरनुवाकमनुब्रूयात्सर्वं ह्येवैतदहर्दिवाकीर्त्यं भवति।— ऐ.४.१९

१५२. अब्जा इत्येष व अब्जा अद्भ्यो वा एष प्रातरुदेत्यपः सायं प्रविशति।— ऐ.४.२०

१५३. प्रति वां सूर उदिते सूक्तैः- प्रउगं प्रतिवदन् अष्टमेऽहन्यष्टमस्याह्नो रूपम्।— ऐ.५.१८

१५४. एतद्वा अग्निहोत्रमन्येद्युर्हूयते यदस्तमिते सायं जुहोत्यनुदिते प्रातरथैतदग्निहोत्रमुभयेद्युर्हूयते यदस्तमिते सायं जुहोत्युदिते प्रातः। तस्मादुदिते होतव्यम्। चतुर्विंशे ह वै संवत्सरेऽनुदितहोमी गायत्रीलोकमाप्नोति द्वादश उदितहोमी स यदा द्वौ संवत्सरावनुदिते जुहोत्यथ हास्यैको हुतो भवत्यथ य उदिते जुहोति संवत्सरेणैव संवत्सरमाप्नोति य एवं विद्वानुदिते जुहोति तस्मादुदिते होतव्यम्। एष ह वा अहोरात्रयोस्तेजसि जुहोति योऽस्तमिते सायं जुहोत्युदिते प्रातरग्निना वै तेजसा रात्रिस्तेजस्वत्यादित्येन तेजसाऽहस्तेजस्वत्। अहोरात्रयोर्हास्य तेजसि हुतं भवति य एवं विद्वानुदिते जुहोति। तस्मादुदिते होतव्यम्।— ऐ.५.३०

१५५. एते ह वा एनं देवते ब्रध्नस्य विष्टपं स्वर्गं लोकं गमयतो य एवं विद्वानुदिते जुहोति तस्मादुदिते होतव्यम्।- एवं यन्ति ते बहवो जनासः पुरोदयाज्जुह्वति येऽग्निहोत्रमिति।— ऐ.५.३०

१५६. एतद्ध स्म वै तद्विद्वान्नगरी जानश्रुतेय उदितहोमिनमैकादशाक्षं मानुतन्तव्यमुवाच---- तस्यो हैकादशाक्षे राष्ट्रमिव प्रजा बभूव राष्ट्रमिव ह वा अस्य प्रजा भवति य एवं विद्वानुदिते जुहोति तस्मादुदिते होतव्यम्।— ऐ.५.३०

१५६. उद्यन्नु खलु वा आदित्य आहवनीयेन रश्मीन्संदधाति स योऽनुदिते जुहोति यथा कुमाराय वा वत्साय वाऽजाताय स्तनं प्रतिदध्यात्तादृक्तदथ य उदिते जुहोति यथा कुमाराय वा वत्साय वा जाताय स्तनं प्रतिदध्यात्तादृक्तत्त---- ----स योऽनुदिते जुहोति यथा पुरुषाय वा हस्तिने वाऽप्रयते हस्त आदध्यात्तादृक्तदथ य उदिते जुहोति यथा पुरुषाय वा हस्तिने वा प्रयते हस्त आदध्यात्तादृक्तत्तमेष एतेनैव हस्तेनोर्ध्वं हत्वा स्वर्गे लोक आदधाति य एवं विद्वानुदिते जुहोति तस्मादुदिते होतव्यम्। उद्यन्नु खलु वा आदित्यः सर्वाणि भूतानि प्रणयति तस्मादेनं प्राण इत्याचक्षते प्राणे हास्य संप्रति हुतं भवति य एवं विद्वानुदिते जुहोति तस्मादुदिते होतव्यम्। एष ह वै सत्यं वदन्सत्ये जुहोति योऽस्तमिते सायं जुहोत्युदिते प्रातर्भूर्भुव स्वरोम---- ऐ.ब्रा. ५.३१

१५७. तदाहुर्यस्याग्निहोत्रमधिश्रितममेध्यमा-पद्येत का तत्र प्रायश्चित्तिरिति सर्वमेवैनत्स्रुच्यभिपर्यासिच्य प्राङुदेत्याऽऽहवनीये हैतां समिधमभ्यादधाति---।— ऐ. ७.५

१५८. प्राजापत्योऽश्वः। यदश्वं पुरस्तान्नयति। स्वमेव चक्षुः पश्यन्प्रजापतिरनूदेति।— तैत्तिरीय ब्राह्मणम् १.१.५.५

१५९. नि वा एतस्याऽऽहवनीयो गार्हपत्यं कामयते। नि गार्हपत्य आहवनीयम्। यस्याग्निमनुद्धृतँ सूर्योऽभ्युदेति। — तै.ब्रा.१.४.४.३

१६०. पराची वा एतस्मै व्युच्छन्ती व्युच्छति। यस्याग्निमनुद्धृतँ सूर्योऽभ्युदेति।— तै.ब्रा.१.४.४.५

१६१. अन्तमेष यज्ञस्य गच्छति। यस्याग्निमनुद्धृतँ सूर्योऽभ्युदेति।।— तै.ब्रा.१.४.४.६

१६२. यस्याग्निमनुद्धृतँ सूर्योऽभ्युदेति। मैत्रं चरुं निर्वपेत् तेनैव यज्ञं निष्क्रीणीते।— तै.ब्रा.१.४.४.६

१६३. यदा वै सूर्य उदेति। अथ नक्षत्रं नैति।— तै.ब्रा.१.५.२.१

१६४. यावद्वा अग्नेर्दहतो धूम उदेत्यानुव्येति। तावती त्रिवृतो मात्रा।— तै.ब्रा.१.५.१०.४

१६५. स यदादित्य उदेति। एतामेव तत्सुवर्णां कुशीमनुसमेति। अथ यदस्तमेति। एतामेव तद्रजतां कुशीमनुसंविशति।— तै.ब्रा.१.५.१०.७

१६६. यन्मरुद्भ्यः क्रीडिभ्यः प्रथमँ हविर्निरुप्यते विजित्यै। साकँ सूर्येणोद्यता निर्वपति।— तै.ब्रा.१.६.७.५

१६७. यदनुदिते सूर्ये प्रातर्जुहुयात्। उभयमेवाऽऽग्नेयँ स्यात्। उदिते सूर्ये प्रातर्जुहोति। तथाऽग्नये सायँ हूयते। सूर्याय प्रातः।— तै.ब्रा.२.१.२.७

१६८. उदिते सूर्ये प्रातर्जुहोति। प्रत्येव तेन तिष्ठति। प्रजापतिरकामयत प्रजायेयेति। स एतदग्निहोत्रं मिथुनमपश्यत्। तदुदिते सूर्येऽजुहोत्। यजुषाऽन्यत्। तूष्णीमन्यत्। ततो वै स प्राजायत। यस्यैवंविदुष उदिते सूर्येऽग्निहोत्रं जुह्वति प्रैव जायते।— तै.ब्रा.२.१.२.८

१६९. उद्यन्तं वावाऽऽदित्यमग्निरनुसमारोहति। तस्माद्धूम एवाग्नेर्दिवा ददृशे।— तै.ब्रा.२.१.२.१०

१७०. यदुदिते सूर्ये प्रातर्जुहुयात्। यथाऽतिथये प्रदुताय शून्यायाऽऽवसथायाऽऽहार्यँ हरन्ति। तादृगेव तत्।— तै.ब्रा.२.१.२.१२

१७१. रेतो वा एतस्य हितं न प्रजायते। यस्याग्निहोत्रमहुतँ सूर्योऽभ्युदेति।— तै.ब्रा.२.१.९.२

१७२. अङ्गारा भवन्ति। तेभ्योऽङ्गारेभ्योऽर्चिरुदेति। प्रजापतिस्तर्ह्यग्निः।— तै.ब्रा.२.१.१०.३

१७३. स (इन्द्रः) प्रजापतिरेव भूत्वा प्रजा आवयत्।----मुखं पश्चात्। मुखमुत्तरतः। ऊर्ध्वा उदायन्।— तै.ब्रा.२.२.१०.७

१७४. उद्यता सूर्येण कार्यः। उद्यन्तं वा एतँ सर्वाः प्रजाः प्रतिनन्दन्ति।— तै.ब्रा.२.७.९.४

१७५. उदसावेतु सूर्यः। उदिदं मामकं वचः। उदिहि देव सूर्य। सह वग्नुना मम।— तै.ब्रा.२.७.१६.४

१७६. हविषो याज्या : दिवो रुक्म उरुचक्षा उदेति। दूरे अर्थस्तरणिर्भ्राजमानः। नूनं जनाः सूर्येण प्रसूताः। आयन्नर्थानि कृणवन्नपाँसि।— तै.ब्रा.२.८.७.३

१७७. पुरोडाशस्य याज्या :---उतोदिता मघवन्सूर्यस्य। वयं देवानाँ सुमतौ स्याम।— तै.ब्रा.२.८.९.८

१७८. उषोदेवताके यागे याज्या : तमो ज्योतिष्कृणोति सूनरी। उदुस्रियाः सचते सूर्यः सचा। उद्यन्नक्षत्रमर्चिमत्। तवेदुषो व्युषि सूर्यस्य च— तै.ब्रा.३.१.३.२

१७९. नक्षत्रदेवताया इष्टिः :- नक्षत्राय स्वाहोदेष्यते स्वाहा। उद्यते स्वाहोदिताय स्वाहा।— तै.ब्रा.३.१.६.४

१८०. आहवनीयेऽन्वाधीयमाने जप्यं मन्त्रत्रयम् : अग्निं गृह्णामि सुरथं यो मयोभूः। य उद्यन्तमारोहति सूर्यमह्ने।------।— तै.ब्रा.३.७.४.३

१८१. उद्यन्नद्य मित्रमहः। सपत्नान्मे अनीनशः। दिवैनान्विद्युता जहि। निम्रोचन्नधरान्कृधि। उद्यन्नद्य वि नो भज। पिता पुत्रेभ्यो यथा। दीर्घायुत्वस्य हेशिषे। तस्य नो देहि सूर्य। उद्यन्नद्य मित्रमहः। आरोहन्नुत्तरां दिवम्। हृद्रोगं मम सूर्य। हरिमाणं च नाशय।— तै.ब्रा.३.७.६.२१

१८२. उषसे स्वाहा व्युष्ट्यै स्वाहोदेष्यते स्वाहोद्यते स्वाहेत्यनुदिते जुहोति। उदिताय स्वाहा सुवर्गाय स्वाहा लोकाय स्वाहेत्युदिते जुहोति अहोरात्रयोरव्यतिमोहाय।— तै.ब्रा.३.८.१६.४

१८३. निष्पन्नायाश्चितेरध्वर्योरुपस्थानम् : सर्वेषां ज्योतिषां ज्योतिर्यददावुदेति।— तै.ब्रा.३.१०.३.१

१८४. सा (आग्ला) पृथिवीमुदैत्। सा पृथिवीं व्यदहत्।— गोपथ ब्रा.१.२.२१

१८५. एषा ह वै सुमना नामेष्टिः। यमद्येजानं पश्चाच्चन्द्रमा अभ्युदियाद्, अस्मा अस्मिँल्लोक आर्धुकं भवति।— गो.ब्रा.२.१.११

१८६. तेषामेतदायतनं चोदयनं च यदाग्नीध्रं च सदश्च। तद् योऽविद्वान् संचरति, आर्तिमार्छति।— गो.ब्रा.२.२.१७

१८७. यद् वेव मैत्रावरुणानि शंसति-प्रति वां सूर उदिते विधेम नमोभिर्मित्रावरुणोत हव्यैः।— गो.ब्रा.२.३.१३

१८८. ते ये नक्तं जुह्वति रात्रिम् एव ते समुद्रं प्रविशन्ति। अथ य उदिते जुह्वत्य् अहर् एव ते समुद्रं प्रविशन्ति।— जै.ब्रा.१.५

१८९. ते ये नक्तं जुह्वति रात्रिम् एव ते श्यामं प्रविशन्ति। अथ य उदिते जुह्वत्य् अहर् एव ते शबलं प्रविशन्ति। तयोर् एतद् एवात्ययनम्-अस्तम् इते पुरा तमिस्रायै सुव्युष्टायां पुरोदयात्।— जै.ब्रा.१.६

१९०. स यथा हस्ती हरत्यासनम् उपर्य् आसीनम् आदायोत्तिष्ठेद् एवम् एवैषा देवतैतद् विद्वांसं जुह्वतम् आदायोदेति।— जै.ब्रा.१.११

१९१. अथो खल्व् आहुर् यद् आहवनीयम् अनुद्धृतम् अभ्युदियात् किं तत्र कर्म का प्रायश्चित्तिर् इति। एतस्माद् ध वै विश्वे देवा अपक्रामन्त यस्याहवनीयम् अनुद्धृतम् अभ्युदेति।---- -स यो वा त्वै गतश्रीस् स्याद् यो वास्माल् लोकात् क्षिप्रे प्रजिगांसेत् स उदितहोमी स्यात्।— जै.ब्रा.१.६३

१९२. प्रतिकूलम् इव वा इतस् स्वर्गो लोकः। तद् यथा वा अदः प्रतिकूलम् उद्यन् प्रावभ्र इव भवत्य् एवम् एवैतत्।— जै.ब्रा.१.८५

१९३. तन् नासृजत। तद् ऊर्ध्वम् उदैषद् यथा पृष्ठं यथा ककुद् एवम्। तद् देवास् संगृह्योर्ध्वा उदायन्।— जै.ब्रा.१.१४४

१९४. ताव् अकामयेताम् उद् इत इयाव गातुं नाथं विन्देवहि सम् अयं कुमारो जीवद् इति।— जै.ब्रा.१.१५१

१९५. गायत्री वा एषा वयो भूत्वोदेति।— जै.ब्रा.१.१६९

१९६. सो ऽकामयतोद् इत इयां गातुं नाथं विन्देय न मायम् अग्निर् दहेद् इति। स एतत् सामापश्यत्।— जै.ब्रा.१.१७१, १.१८४

१९७. आ सूर्यस्योदेतोर् आश्विनम् अनुशस्यते ऽहोरात्रयोर् एव संतत्या अहोरात्रयोस् समारम्भाय।— जै.ब्रा.१.२०९

१९८. तस्माद् आहुर् नोदिते सूर्य आश्विनम् अनुशस्यम् इति।— जै.ब्रा.१.२१२

१९९. अनुदिते सूर्ये परिदध्याद् यं कामयेत पापीयान् स्याद् इति। पापीयान् एव भवति।--- उदिते परिदध्याद् यं कामयेत श्रेयान् स्याद् रुचम् अश्नुवीतेति।— जै.ब्रा.१.२१३

२००. तेभ्यस् संतप्तेभ्यस् त्रीणि शुक्राण्य् उदायन् अग्निः पृथिव्या वायुर् अन्तरिक्षाद् आदित्यो दिवः।---- तेभ्यस् संतप्तेभ्यस् त्रीण्य् एव शुक्राण्य् उदायन् ऋग्वेद एवाग्नेर् यजुर्वेद वायोस् सामवेद आदित्यात्।---तेभ्यस् संतप्तेभ्यस् त्रीण्य् एव शुक्राण्य् उदायन् भूः इत्य् एवर्ग्वेदात् भुवः इति यजुर्वेदात् स्वः इति सामवेदात्।— जै.ब्रा. १.३५७

२०१. राजसूयः :- सेयं प्राची दिक् प्रायच्छन् मद् उदयेत्य् अहश् च सत्यं च। माम् अभ्य् उदयेत्य् ऊर्ध्वा दिक् प्रायच्छत् क्षत्रं च राष्ट्रं च।— जै.ब्रा.२.२५

२०२. अस्यै प्राच्यै दिश उदेति। अभ्य् उदेतीमाम् ऊर्ध्वां दिशम्।-— जै.ब्रा.२.२६

२०३. तस्यैष श्लोकः-- मद् एवोदेति सूर्यो ऽस्तं मद् उ च गच्छति। मां सर्वे देवा अन्वायत्ता माम् उ नात्येति किं चन।। इति। मद् एवोदेति सूर्य इत्य् एवंविदो ह वाव सूर्य उदेति।— जै.ब्रा.२.२८

२०४. जागतो ऽसाव् आदित्यः। यदा ह्य् एष उदेत्य् अथ जगद् एतस्यैव प्रयाणम् अनु प्रैति।— जै.ब्रा.२.३६

२०५. तद् धैतद् एक उदित एवाज्यग्रहान् गृह्णन्ति। उदिते प्रातरनुवाकम् उपाकुर्वन्ति।— जै.ब्रा.२.३७

२०६. प्राणापानाव् उपाश्वन्तर्यामौ। उदिते ऽन्यं जुह्वत्य् अनुदिते ऽन्यम्।---- तद् यद् उदिते ऽन्यं जुह्वत्य् अनुदिते ऽन्यं, बहिस् सन्तं प्राणम् उपजीवामान्तस् सन्तम् अपानम् इति। अथ य एताव् उदिते जुह्वति, प्राणापानाव् उत्खिदन्ति।— जै.ब्रा.२.३७

२०७. यद् उपाश्वन्तर्यामाव् उदिते ऽन्यं जुह्वत्य् अनुदिते ऽन्यं, तेन सुत्यायाम्।— जै.ब्रा. २.३८

षड् वा एतयोर् इति ऊर्ध्वा स्तोमा उद्यन्ति।— जै.ब्रा.२.१०६

२०८. उदेयायेन्द्रः। स हविर्धानयोर् एव द्रोणकलशे सोमं राजानं संपवितुम् उपेयाय।------सहस्रेषु मात्रमूर्ध्वमुददिति।- — जै.ब्रा.२.१५५

२०९. क्रतवः पुनर् ऊर्ध्वा उद्यन्ति यथा निह्नवानं ब्रूयाद् व्यहि मापक्रमीर् इति तादृक् तत्।— जै.ब्रा.२.२०४

२१०. ताम् अब्रुवन् -- सोमायोदेहि तृतीयेन चात्मनस् तृतीयेन च सहस्रस्येति। सा बभ्रुः पिंगाक्ष्य् उदैत्, तृतीयेन चात्मनस् तृतीयेन च सहस्रस्य। सैषा सोमक्रयणी।---- -ताम् अब्रुवन् -- इन्द्रायोदेहि तृतीयेन चात्मनस् तृतीयेन च सहस्रस्येति। सा शबली

पष्ठौह्य् उदैत् तृतीयेन चात्मनस् तृतीयेन च सहस्रस्य।-- -- -ताम् अब्रुवन् -- यमायोदहि तृतीयेन चात्मनस् तृतीयेन च सहस्रस्येति। सा धूम्रा दित्यौह्य् उदैद्--- जै.ब्रा.२.२५०

२११. यद् एव ते किं च पितु स्वं, तस्य सर्वस्य पुरा सूर्यस्योदेतोश् शिरश् छिन्द्धि।------ -घ्नन्तम् एवैनं सूर्यो ऽभ्युदियाय। तस्योदिते स एव गन्धर्वः प्रजघानेत्य् एके।— जै.ब्रा.२.२७१

२१२. तस्माद् असाव् आदित्य आ च परा च संचरति। यत एवाद्योदगात् तत श्च उदेता।— जै.ब्रा.३.७१

२१३. सो ऽकामयतोद् इत इयां, गातुं नाथं विन्देय।— जै.ब्रा.३.९५

२१४. सोऽकामयतोद् इत इयां गातुं प्रतिष्ठां विन्देयेति।— जै.ब्रा.३.९९

२१५. सोऽकामयतोद् इत इयां, गातुं प्रतिवचनं विन्देयेति।— जै.ब्रा.३.१०१

२१६. तद् या ह वै प्राचीर् आपो धावन्त्य् एतम् एव ता उद्यन्तम् अभीप्सतीर् धावन्ति।-- जै.ब्रा.३.११४

२१७. च्यवन-सुकन्या-अश्विनौ आख्यानम् : स (च्यवनः) होवाच -- कुमारि, सर्वे वै सदृशा उदेष्यामो, ऽनेन मा लक्ष्मकेण जानीताद् इति। ते ह सर्व एव सदृशा उदेयुर् यत् कल्याणतमं रूपाणां तेन रूपेण।— जै.ब्रा.३.१२५

२१८. तिसृभ्योहिङ्करोति सप्रथमया, तिसृभ्योहिङ्करोति समध्यमया, तिसृभ्योहिङ्करोति स उत्तमयोद्यती त्रिवृतो विष्टुतिः।— ताण्ड्य ब्राह्मण २.१.१

२१९.-------नवभ्यो हिङ्करोति स तिसृभिस्स तिसृभिस्स तिसृभिरुद्यती सप्तदशस्य विष्टुतिः।— तां.ब्रा.२.१२.१

२२०.--- -स पञ्चभिरेकादशभ्यो हिङ्करोति स पञ्चभिः स तिसृभिः स तिसृभिरुद्यती त्रिणवस्य विष्टुतिः।— तां.ब्रा.३.२.१

२२१.----- -स सप्तभिस्त्रयोदशभ्यो हिङ्करोति स सप्तभिस्स तिसृभिस्स तिसृभिरुद्यती त्रयस्त्रिंशस्य विष्टुतिः।— तां.ब्रा.३.५.१

२२२. समुद्रं वा एते प्रस्नान्ति ये संवत्सरमुपयन्ति यो वा अप्लवः समुद्रं प्रस्नाति न स तत उदेति यत् प्लवो भवति स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै।— तां.ब्रा.५.८.५

२२३. गायत्र्यास्त्रिरात्रत्रयव्याप्तिः :- तेजसा वा एते प्रयन्ति तेजो मध्ये दधति तेजोऽभ्युद्यन्ति, ज्योतिषा वा एते प्रयन्ति ज्योतिर्म्मध्ये दधति ज्योतिरभ्युद्यन्ति, चक्षुषा वा एते प्रयन्ति चक्षुर्मध्ये दधति चक्षुरभ्युद्यन्ति, प्राणेन वा एते प्रयन्ति प्राणम्मध्ये दधति प्राणमभ्युद्यन्ति, ये गायत्र्या प्रयन्ति गायत्रीम्मध्ये दधति गायत्रीमभ्युद्यन्ति।— तां.ब्रा.१०.५.५

२२४. आर्भव पवमानः :- समुद्रं वा एते प्रस्नान्तीत्याहुर्य्ये द्वादशाहमुपयन्तीति यो वा अप्लवः समुद्रं प्रस्नाति न स तत उदेति यत् प्लवो भवति स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै।— तां.ब्रा.१४.५.१७

२२५. यदद्य सूर उदित इति सूरवन्मैत्रावरुणमन्तो वै सूरोऽन्त एतद्दशममह्नाम् — तां.ब्रा.१५.८.३

२२६. वारवन्तीयमग्निष्टोमसाम : तस्य यदपूतं तदग्निः क्षापयत्यथेतरः शुचिः पूत उदेति।— तां.ब्रा.१७.५.७

२२७. एष वा उदेति न वा एनमन्यत् ज्योतिषां ज्योतिः प्रत्युदेति। नैनमन्यः स्वेषु प्रत्युदेति य एवं वेद।— तां.ब्रा.२०.५.४

२२८. यदेवासावुदेति तन्मुखं ये अभितोऽहनी तौ पक्षौ यन्मध्यममहः स आत्माग्निः पुच्छं। यदेवासावुदेति तन्मुखं ये अभितोहनी तौ पक्षौ यन्मध्यममहः स आत्मा यदस्तमेति तत्पुच्छं।— तां.ब्रा.२०.१६.३

२२९.----तेऽब्रुवन्नंशानाहरामहै यस्मै न इयं प्रथमायोदेष्यति इति ते अंशानाहरन्त सोमस्य प्रथम ऐदथेन्द्रस्याथ यमस्य।— तां.ब्रा.२१.१.२

२३०. तेऽब्रुवन् सोमाय राज्ञ उदेहि तृतीयेन चात्मनस्तृतीयेन च सहस्रस्य पयस इति सा बभ्रुः

पिङ्गाक्ष्येकवर्षोदैत्तृतीयेन चात्मनस्तृतीयेन च सहस्रस्य पयस सा या सोमक्रयणी सैव सा।-------- तेऽब्रुवन्निन्द्रायोदेहि तृतीयेन चात्मनस्तृतीयेन च सहस्रस्य पयस इति सा शबलीपष्ठौह्युदैत् तृतीयेन चात्मनस्तृतीयेन च सहस्रस्य पयसः सा येन्द्रियैष्पा सैव सा।— तां.ब्रा.२१.१.५

२३१. ऋतुमण्डल इष्टकाः हेतोः द्वितीयम्मन्त्रम्: अन्योन्यं तु न हिँस्रातः। सतस्तद्देवलक्षणम्। लोहितोऽक्षिण शार शीर्ष्णिः। सूर्यस्योद्यनं प्रति।-तैत्तिरीय आरण्यकम् १.६.१

२३२. निरयवतीः हेतोः द्वितीयम्मन्त्रम् : कश्यपादुदिताः सूर्याः। पापान्निर्घ्नन्ति सर्वदा। रोदस्योरन्तर्देशेषु। तत्र न्यस्यन्ते वासवैः।— तै.आ.१.८.६

२३३. निगदव्याख्याता : समानमेतदुदकम्। उद्यैत्यव चाहभिः। भूमिं पर्जन्या जिन्वन्ति। दिवं जिन्वन्त्यग्नयः।।— तै.आ.१.९.५

२३४. प्रजयिष्णुः प्रजया च पशुभिश्च भवति। य एवं वेद। एतमुद्यन्तमपियन्तं चेति। आदित्यः पुण्यस्य वत्सः।— तै.आ.१.११.७

२३५. योऽसौ तपन्नुदेति स सर्वेषां भूतानां प्राणानादायोदेति। मा मे प्रजाया मा पशूनाम्। मा मम प्राणानादायोदगाः।— तै.आ.१.१४.१

२३६. ब्रह्मयज्ञेन यक्ष्यमाणः प्राच्यां दिशि ग्रामादछदिर्दर्श उदीच्यां प्रागुदीच्यां वोदित आदित्ये दक्षिणत उपवीयोपविश्य हस्तावनिज्य त्रिराचामेत्।- तै.आ.२.११.१

२३७. य एवं विद्वान्महारात्र उषस्युदिते व्रजँस्तिष्ठन्नासीनः शयानोऽरण्ये ग्रामे वा।— तै.आ.२.१५.१

ॐत्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः। पादोऽस्येहा-ऽऽभवत्पुनः। ततो विष्वङ्व्यक्रामत्। साशनानशने अभि।— तै.आ.३.१२.२

२३८.-----यावदितः पुरस्तादुदयाति सूर्यः। तावदितोऽमुं नाशय। योऽस्मान्द्वेष्टि। यं च वयं द्विष्मः।— तै.आ.४.३९.१

२३९. शमुषा नो व्युच्छतु शमादित्य उदेतु नः। शिवा नः शंतमा भव सुमृडीका सरस्वति।— तै.आ.४.४२.१

२४०. शिरो वो एतद्यज्ञस्य। यत्प्रवर्ग्यः। असौ खलु वा आदित्यः प्रवर्ग्यः।---प्राञ्चमुद्वासयति। तस्मादसा-वादित्यः पुरस्तादुतेति।— तै.आ.५.९.२

२४१. पुरो वा पश्चाद्वोद्वासयेत्। पुरस्ताद्वा एतज्ज्योतिरुदेति। तत्पश्चान्निम्रोचति।— तै.आ.५.१०.६

२४२. भीषाऽस्माद्वातः पवते। भीषोदेति सूर्यः। भीषाऽस्मादग्निश्चेन्द्रश्च। मृत्युर्धावति पञ्चमः।— तै.आ. ८.८.१

२४३. यतश्चोदेति सूर्योऽस्तं यत्र च गच्छति। तं देवाः सर्वेऽर्पितास्तदु नात्येति कश्चन, एतद्वै तत्।— कठोपनिषद २.१.९

२४४. इन्द्रियाणां पृथग्भावमुदयास्तमयौ च यत्। पृथगुत्पद्यमानानां मत्वा धीरो न शोचति।— कठोपनिषद २.३.७

२४५. अथादित्य उदयन्यत्प्राचीं दिशं प्रविशति तेन प्राच्यान्प्राणान्रश्मिषु संनिधत्ते यद्दक्षिणां यत्प्रतीचीं----- -----। स एष वैश्वानरो विश्वरूपः प्राणोऽग्निरुदयते। तदेतदृचाभ्युक्तम्। विश्वरूपं हरिणं जातवेदसं परायणं ज्योतिरेकं तपन्तम्। सहस्ररश्मिः शतधा वर्तमानः प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः।- प्रश्नोपनिषद १.६

२४६. आदित्यो ह वै बाह्यः प्राणं उदयत्येष ह्येनं चाक्षुषं प्राणमनुगृह्णानः।— प्रश्नोपनिषद ३.८

२४७. यथा गार्ग्य मरीचयोऽर्कस्यास्तं गच्छतः सर्वा एतस्मिंस्तेजोमण्डल एकीभवन्ति ताः पुनः पुनरुदयतः प्रचरन्त्येवं ह वै तत्सर्वं परे देवे मनस्येकीभवति।— प्रश्नोपनिषद ४.२

२४८. भीषाऽस्माद्वातः पवते। भीषोदेति सूर्यः।--- — तैत्तिरीयोपनिषद २.८.१

२४९. अथाधिदैवतं य एवासौ तपति तमुद्गीथमुपासीतोद्यन्वा एष प्रजाभ्य उद्गायति उद्यँस्तमोभयमपहन्त्यपहन्ता ह वै भयस्य तमसो भवति य एवं वेद।— छान्दोग्योपनिषद१.३.१

२५०. तस्य यथा कप्यासं पुण्डरीकमेवमक्षिणी तस्योदिति नाम स एष सर्वेभ्यः पाप्मभ्य उदित उदेति ह वै सर्वेभ्यः पाप्मभ्यो य एवं वेद।— छा.उ.१.६.७

२५१. तस्मिन्निमानि सर्वाणि भूतान्यन्वायत्तानीति विद्यात्तस्य यत्पुरोदयात्ः हिंकारस्तदस्य पशवोऽन्वायत्तास्तस्मात्ते हिंकुर्वन्ति हिंकारभाजिनो ह्येतस्य साम्नः। अथ यत्प्रथमोदिते स प्रस्तावस्तदस्य मनुष्या अन्वायत्ताः— छां.उ.२.९.२

२५२. उद्यन्हिंकार उदितः प्रस्तावो मध्यन्दिन उद्गीथोऽपराह्णः प्रतिहारोऽस्तं यन्निधनमेतद्बृहदादित्ये प्रोतम्।— छां.उ.२.१४.१

२५३. त (वसवः) एतदेव रूपमभिसंविशन्त्येत-स्मादूपादुद्यन्ति।----स यावदादित्यः पुरस्तादुदेता पश्चादस्तमेता वसूनामेव तावदाधिपत्यँ स्वाराज्यं पर्येता।— छां.उ.३.६.२

२५४. त (रुद्राः) एतदेव रूपमभिसंविशन्त्येत-स्मादूपादुद्यन्ति।--- स यावदादित्यः पुरस्तादुदेता पश्चादस्तमेता द्विस्तावद्दक्षिणत उदेतोत्तरतोऽस्तमेता रुद्राणामेव तावदाधिपत्यँ स्वाराज्यं पर्येता।— छां.उ.३.७.३

२५५. त (आदित्याः) एतदेव रूपमभिसं-विशन्त्येतस्मादूपादुद्यन्ति। स यावदादित्यो दक्षिणत उदेतोत्तरतोऽस्तमेता द्विस्तावत्पश्चादुदेता पुरस्तादस्तमेता-ऽऽदित्यानामेव तावदाधिपत्यँ स्वाराज्यं पर्येता।— छां.उ.३.८.२

२५६. त (मरुतः) एतदेव रूपमभिसंविशन्त्येत-स्मादूपादुद्यन्ति।---स यावदादित्यः पश्चादुदेता पुरस्तादस्तमेता द्विस्तावदुत्तरत उदेता दक्षिणतोऽस्तमेता मरुतामेव तावदाधिपत्यँ स्वाराज्यं पर्येता।— छां.उ.३.९.३

२५७. त (साध्याः) एतदेव रूपमभिसंविशन्त्येतस्मादूपादुद्यन्ति।---स यावदादित्य उत्तरत उदेता दक्षिणतोऽस्तमेता द्विस्तावदूर्ध्व उदेताऽर्वाङस्तमेता साध्यानामेव तावदाधिपत्यँ स्वाराज्यं पर्येता।— छां.उ.३.१०.२

२५८. अथ तत ऊर्ध्व उदेत्य नैवोदेता नास्तमेतैकल एव मध्ये स्थाता तदेष श्लोकः।-----न ह वा अस्मा उदेति न निम्लोचति सकृद्दिव हैवास्मै भवति य एतामेवं ब्रह्मोपनिषदं वेद।— छां.उ.३.११.१

२५९. प्रातसवनं :----माऽहं प्राणानां वसूनां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो ह भवति।----। माध्यंदिनं सवनः--- माऽहं प्राणानाँ रुद्राणां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो ह भवति----। तृतीयसवनं : माहं प्राणानामादित्यानां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो हैव भवति।— छा.उ.३.१६.२

२६०. अथ यत्तदजायत सोऽसावादित्यः------ तस्मात्तस्योदयं प्रति प्रत्यायनं प्रति घोषा उलूलवोऽनूत्तिष्ठन्ति सर्वाणि च भूतानि सर्वे चैव कामाः।— छां.उ.३.१९.३

२६१. उषा वा अश्वस्य मेध्यस्य शिरः।-------- उद्यन् पूर्वार्धो निम्लोचञ्जघनार्धो यद्विजृम्भते तद्विद्योतते--— बृहदारण्यकोपनिषद १.१.१

२६२. सैषाऽनस्तमिता देवता यद्वायुः। अथैष श्लोको भवति यतश्चोदेति सूर्योऽस्तं यत्र च गच्छतीति प्राणाद्वा एष उदेति प्राणेऽस्तमेति-— बृह.उ.१.५.२३

२६३. अतः खानीमानि भित्त्वोदितः पञ्चभी रश्मिभिर्विषयानत्तीति बुद्धीन्द्रियाणि यानीमान्येता-न्यस्य रश्मयः कर्मेन्द्रियाण्यस्य हया--- मैत्रायण्युपनिषद २.६

२६४. सहस्ररश्मिः शतधा वर्तमानः प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः।— मैत्रा.उ.६.८

२६५. अग्निर्गायत्रं त्रिवृद्रथंतरं वसन्तः प्राणो नक्षत्राणि वसवः पुरस्तादुद्यन्ति तपन्ति वर्षन्ति स्तुवन्ति--इन्द्रस्त्रिष्टुप्पञ्चदशो बृहद्ग्रीष्मो व्यानः सोमो रुद्रा दक्षिणत उद्यन्ति तपन्ति वर्षन्ति स्तुवन्ति---विश्वे देवा अनुष्टुबेकविंशो वैराजः शरत्समानो वरुणः साध्या उत्तरत उद्यन्ति तपन्ति वर्षन्ति स्तुवन्ति----- शनिराहुकेतू-रगरक्षोयक्षनर-विहगशरभेभादयोऽधस्तादुद्यन्ति तपन्ति वर्षन्ति स्तुवन्ति--- मैत्रा.उ.७.१

२६६. अनेनैव तदुद्बुध्यत्युदयत्युच्छ्वसित्यजस्रं ब्रह्मधीयालग्बं वात्रैव।— मैत्रा.उ.७.११

२६७. यो वेद गहनं गुह्यं पावनं च तथोदितम्। अग्नीषोमपुटं कृत्वा न स भूयोऽभिजायते।— बृहज्जाबालोपनिषद २.१५

२६८. वाग्वा अनुष्टुब्वाचैव प्रयन्ति वाचैवोद्यन्ति-— नृसिंहपूर्वतापनीयोपनिषद १

२६९. हृदाकाशे चिदादित्यः सदा भासति भासति। नास्तमेति न चोदेति कथं संध्यामुपास्महे।— मैत्रेय्युपनिषत् २.१४

२७०. अथ शुद्धं भवेद्वस्तु यद्वै वाचामगोचरम्। उदेति शुद्धचित्तानां वृत्तिज्ञानं तत परम्।— तेजोबन्दूपनिषद १.४९

२७१. ततः परतरं शुद्धं व्यापकं निर्मलं शिवम्। सदोदितं परं ब्रह्म ज्योतिषामुदयो यतः।-— नादबिन्दूपनिषत् १७

२७२. तत्त्वज्ञानोदयादूर्ध्वं प्रारब्धं नैव विद्यते।— नादबिन्दूपनिषतद् २२

२७३. संख्यारूपेण संकल्प्य वैखानसऋषेः पुरा। उदितो यादृशः पूर्वं तादृशं शृणु मेऽखिलम्।— सीतोपनिषत् ५

२७४. अनवरतसहाश्रयिण्युदितानुदिताकारा---- (क्रियाशक्तिः)— सीतोपनिषत् ६

२७५. रवेरुदयास्तमययोः किल कर्म कर्तव्यम्। एवंविधश्चिदादित्यस्योदयास्तमया-
भावात्सर्वकर्माभावः।— मण्डलब्राह्मणोपनिषत् २.२

२७६. प्रबोधपूर्णपात्रे तु ज्ञप्तिदीपं विलोकयेत्। मोहान्धकारे निःसारे उदेति स्वयमेव हि।— दक्षिणामूर्त्युपनिषत् १६

२७७.---आदिनारायणस्योन्मेषनिमेषाभ्यां मूला-विद्योदयस्थितिलया जायन्ते।-त्रिपाद्विभूति-महानारायणो-पनिषत् २.१५

२७८. स चानन्तकोटिब्रह्माण्डानामुदय-स्थिति-लयाद्यखिलकार्यकारणजालपरमकारणकारणभूतो महा-मायातीतस्तुरीयः परमेश्वरो जयति।— त्रिपाद्विभूति-महानारायणोपनिषत् २.१५

२७९. त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः। पादोऽस्येहा-भवत्पुनः।— त्रिपाद्विभूतिमहानारायणो- पनिषत् ४.९

२८०. यथा उन्मेषो जायते तथा चिरंतनातिसूक्ष्मवासनाबलात्पुनरविद्याया उदयो भवति।— त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत् ४.१२

२८१. भगवन् सर्वात्मना नष्टाया अविद्यायाः पुनरुदयः कथम्।------प्रावृट्कालप्रारम्भे यथा मण्डूकादीनां प्रादुर्भावस्तद्वत्सर्वात्मना नष्टाया अविद्याया उन्मेषकाले पुनरुदयो भवति।— त्रिपाद्विभूति-महानारायणोपनिषत् ५.१

२८२. ततो दृढतरा वैष्णवी भक्तिर्जायते। ततो वैराग्यमुदेति।—त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत् ५.९

२८३. कुक्कुटाण्डाकारं महदादिसमष्ट्या-कारमण्डं तपनीयमयं तप्तजाम्बूनदप्रभमुद्यत्कोटि-दिवाकराभं— त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत् ६.३

२८४. कारणेन विना कार्यं नोदेति। भक्त्या विना ब्रह्मज्ञानं कदापि न जायते।— त्रिपाद्विभूतिमहानारायणो-पनिषत् ८.१२

२८५. उद्वेगानन्दरहितः समया स्वच्छया धिया। न शोचति न चोदेति स जीवन्मुक्त उच्यते।— महोपनिषत् २.५७

२८६. रमते धीर्यथाप्राप्ते साध्वीवाऽन्तः-पुराजिरे। सा जीवन्मुक्ततोदेति स्वरूपानन्ददायिनी।— महोपनिषद ४.३८

२८७. सर्वात्मवेदनं शुद्धं यदोदेति तवात्मकम्। भाति प्रसृतिदिक्कालबाह्यं चिद्रूपदेहकम्।— महोपनिषत् ४.४२

२८८. उदितौदार्यसौन्दर्यवैराग्यरसगर्भिणी। आनन्द-स्यन्दिनी यैषा समाधिरभिधीयते।— महोपनिषत् ४.६१

२८९. या योदेति मनोनाम्नी वासना वासितान्तरा। तां तां परिहरेत्प्राज्ञस्ततोऽविद्या क्षयो भवेत्।— महोपनिषत् ४.१०८

२९०. अयं सोऽहमिदं तन्म इति जन्मान्तरोदितः। पीवरः प्रत्ययः प्रोक्तो महाजाग्रदिति स्फुटम्।— महोपनिषत् ५.१३

२९१. अल्पकालं मया दृष्टमेतन्नोदेति यत्र हि। परामर्शः प्रबुद्धस्य स स्वप्न इति कथ्यते। चिरं संदर्शनाभावादप्रफुल्लं बृहद्वचः। चिरकालानुवृत्तिस्तु स्वप्नो जाग्रदिवोदितः।— महोपनिषत् ५.१६

२९१.--सकलामलसंसारस्वरूपैकात्मदर्शिनी। नास्तमेति न चोदेति नोत्तिष्ठति न तिष्ठति। न च याति न चायाति न च नेह न चेह चित्।— महोपनिषत् ५.१०२

२९२. ग्राह्यग्राहकसंबन्धे क्षीणे शान्तिरुदेत्यलम्।— संन्यासोपनिषत् २.४२

२९३. आनन्दितोपशमता सदा प्रमुदितोदिता। पूर्णतोदारता सत्या कान्तिसत्ता सदैकता। इत्येवं चिन्तयन्भिक्षुः स्वरूपस्थितिमञ्जसा।— संन्यासो-पनिषत् २.५७

२९४. भीषणमित्याह भीषा वा अस्मादादित्य उदेति भीतश्चन्द्रमा भीतो वायुर्वाति----अव्यक्तोपनिषत् २

२९५. धीरधीरुदितानन्दः पेशलः पुण्यकीर्तनः। प्राज्ञः प्रसन्नमधुरो दैन्यादपगताशयः।— अन्नपूर्णोपनिषत् २.३१

२९६. ज्वालाजालपरिस्पन्दो दग्धेन्धन इवानलः। उदितोऽस्तं गत इव ह्यस्तंगत इवोदितः।— अन्नपूर्णोपनिषत् ३.११

२९७. न चोदयो नास्तमयो न हर्षामर्षसंविदः। न तेजो न तमः किंचिन्न संध्यादिनरात्रयः।— अन्नपूर्णोपनिषत् ४.२२

२९८. अवासनत्वात्सततं यदा न मनुते मनः। अमनस्ता तदोदेति परमोपशमप्रदा।— अन्नपूर्णोपनिषत् ४.४८

२९९. यत्र नाभ्युदितं चित्तं तद्वै सुखमकृत्रिमम्। क्षयातिशयनिर्मुक्तं नोदेति न च शाम्यति।— अन्नपूर्णोपनिषत् ५.४५

३००. सहस्ररश्मिः शतधा वर्तमानः पुरुषः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः।— अक्ष्युपनिषत् १

३०१. संतोषामोदमधुरा प्रथमोदेति भूमिका। भूमिप्रोदितमात्रोऽन्तरमृताङ्कुरिकेव सा।— अक्ष्युपनिषत् २८

३०२. सत्त्वावशेष एवास्ते पञ्चमीं भूमिकां गतः। जगद्विकल्पो नोदेति चित्तस्यात्र विलापनात्।— अक्ष्युपनिषत् ३५

३०३. मध्यमायां मुकुलिता वैखर्यां विकसीकृता। पूर्वं यथोदिता या वाग्विलोमेनास्तगा भवेत्।— योगकुण्डल्युपनिषत् ३.१९

३०४.---प्रमथान्सुरानपि सोऽन्वीक्ष्य पूतं प्रातरुदयाद्गोमयं ब्रह्मपर्णे निधाय त्र्यम्बकमिति मन्त्रेण शोषयेत्।— भस्मजाबालोपनिषत् १

३०५. प्रागुदयान्निर्वर्त्य शौचादिकं ततः स्नायात्।---उद्यन्तमादित्यमभिध्यायन्नुद्धूलिताङ्गं कृत्वा यथास्थानं भस्मना त्रिपुण्ड्रं श्वेतेनैव रुद्राक्षाञ्छ्वेतान्बिभृयात्।— भस्मजाबालोपनिषत् २

३०६. नोदेति नास्तमायाति सुखे दुःखे मनःप्रभा। यथाप्राप्तस्थितिर्यस्य स जीवन्मुक्त उच्यते।— वराहोपनिषत् ४.२२

३०७. द्रागभ्यासवशाद्याति यदा ते वासनोदयम्। तदाभ्यासस्य साफल्यं विद्धि त्वमरिमर्दन।— मुक्तिकोपनिषत् २.८

३०८. अवासनत्वात्सततं यदा न मनुते मनः। अमनस्ता तदोदेति परमोपशमप्रदा।— मुक्तिकोपनिषत् २.२९

३०९. यदिदमितश्चेतश्चाण्डकोशा उदयन्ति नापद्यन्त इव न विस्रंसन्त इव न स्खलंतीव न पर्यावर्तन्त इव।— आर्षेयोपनिषत्

३१०. न ह वा एष परमतीवोदेति। यस्त्वेनं परमतीवोद्यन्तं पश्यन्नुपास्ते पापीयान् भवति वीवपद्यत आर्तिमृच्छति। यस्त्वेनं परमनूद्यन्तं वेदाथ तथोपास्ते परं ज्योतिरुपसंपद्यते सर्वमायुरेति वसीयान् भवति।— आर्षेयोपनिषत्

३११. विश्वस्य योनिं प्रतपन्तमुग्रं पुरः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः।— चाक्षुषोपनिषत्

३१२. ततो हासुरा पुनरेवोदयन्ति। ते ह माध्यंदिनस्यैव सवनस्य पवमानेषु यज्ञवास्त्वभ्यायन्।— शौनकोपनिषत्

३१३. कश्यपः पश्यको भवति। यत्सर्वं परिपश्यतीति सौक्ष्म्यात्। कश्यपादुदिताः सूर्याः पापान्निर्घ्नन्ति सर्वदा।— सूर्यतापिन्युपनिषत् १.८

३१४. योऽसौ तपन्नुदेति। असौ योऽस्तमेति।— सूर्यतापिन्युपनिषत् १.९

३१५.----उदयाद्रिसमारूढमुदयन्तं पद्मकरं पद्मासनं-— सूर्यतापिन्युपनिषत् १.२६

३१६. उद्यन्नद्यमित्र महः। आरोहन्नुत्तरां दिवम्। हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय।— उद्यन्नद्येत्ययं तृचो रोगघ्नः— सूर्यतापिन्युपनिषत् २.६

३१७. उद्यन्नद्य मित्रमहः। सपत्नान्मे अनीनशः। दिवैनान्विद्युता जहि।— सूर्यतापिन्युपनिषत् ३

३१८. पुण्यां च पुण्यः पुरुषे पुरग्रे तां राजिमन्तां निशि चोदितानां निदधाति पुष्ट्यै हरन् पराय स्वाहा।— पारमात्मिकोपनिषत् ९.८

३१९. अञ्जनागर्भसंभूत उदयभास्कर-बिम्बानलग्रासक देवदानव ऋषिमुनिवन्द्य---- लाङ्गूलोपनिषत्

३२०.- पीतचन्द्रार्धमनुबिभ्रतीमुद्यद्दिवाकरोद्योतां स्वर्णसिंहासनमध्यकमलसंस्थां- पीताम्बरोपनिषत्

३२१. उद्यद्भास्वत्समाभां विधृतनवजपा-मिन्दुखण्डावबद्धां— वनदुर्गोपनिषत् ४

३२२. यावदितः पुरस्तादुदयाति सूर्यः। तावदितोऽमुं नाशय। योऽस्मान् द्वेष्टि। यं च वयं द्विष्मः।— वनदुर्गोपनिषत्

३२३. दर्शपूर्णमासः :- अग्निं गृहामि सुरथं यो मयोभूर्य उद्यन्तमारोहति सूर्यमह्ने। आदित्यं ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमं श्वोयज्ञाय रमतां देवताभ्यः।।— आपस्तम्ब श्रौत सूत्र ४.१.८

३२४. उद्यन्नद्य मित्रमहः सपत्नान्मे अनीनशः। दिवैनान्विद्युता जहि निम्रोचन्नधरान्कृधि। उद्यन्नद्य वि नो भज पिता पुत्रेभ्यो यथा। दीर्घायुत्वस्य हेशिषे तस्य नो देहि सूर्य। उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम्। हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय।— आप.श्रौ.सू.४.१ ५.१

३२५. उद्यत्सु रश्मिषु दशहोत्रारणी समवदधाति।— आप.श्रौ.सू.५.१०.८

३२६.- ----हरस्ते मा विगादुद्यन्सुवर्गो लोकस्त्रिषु लोकेषु रोचयेति।— आप.श्रौ.सू.६.६.८

३२७. अङ्गारा भवन्ति तेभ्यो ऽङ्गारेभ्यो ऽर्चिरुदेति प्रजापतावेव। शरो ऽङ्गारा अध्यूहन्ते ततो नीलोपकाशो ऽर्चिरुदेति ब्रह्मणि हुतं भवति।— आप.श्रौ.सू.६.९.१

३२८. अग्नये ऽनीकवते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपति साकं सूर्येणोद्यता। साकं वा रश्मिभिः प्रचरन्ति।— आप.श्रौ.सू.८.९.२

३२९. मरुद्भ्यः क्रीडिभ्यः स्वतवद्भ्यो वा पुरोडाशं सप्तकपालं निर्वपति। साकं सूर्येणोद्यता साकं वा रश्मिभिः प्रचरन्ति।— आप.श्रौ.सू.८.११.२२

३३०. अग्निष्टोम प्रातःसवनम् : उदाभ्यः शुचिरापूत एमीत्युद्गाहमानो जपति। अपो ऽश्नाति।— आप.श्रौ.सू.१०.६.२

३३१. उदितेषु नक्षत्रेषु पूर्ववद्वाचो विसर्गः। एवमुपोदयं यमयति। उदित आदित्ये विसृजते।— आप.श्रौ.सू.१०.१७.१

३३२. उदेत प्रजामायुर्वर्चो दधाना अध स्यामसुरुभयोर्गृहेषु।-------अहते वसानावुदितः — आप.श्रौ.सू. १३.२२.१

३३३. यदा पुरस्तादरुणा स्यादथ प्रवृज्यः। उपकाश उपव्युषं समयाविषित उदितानुदित उदिते वा।— आप.श्रौ.सू. १५.१८.१३

३३४. आग्निचयनम् : येन देवा ज्योतिषोर्ध्वा उदायन्निति प्रादेशमात्रैः काष्ठैरुख्यमुपसमिन्द्धे।— आप.श्रौ.सू. १६.११.१

३३५. अग्निचयनम् : दिवो रुक्म उरुचक्षा उदेति दूरे अर्थस्तरणिर्भ्राजमानः।— आप. श्रौ. सू. १६.१२.१

३३६. एकविधः प्रथमो ऽग्निः। द्विविधो द्वितीयः। त्रिविधस्तृतीयः। त एवमेवोद्यन्त्यैकशत-विधात्।— आप.श्रौ.सू.१६.१७.१५

३३७. उद्वदस्युदितिरस्युद्यत्यस्याक्रममाणास्या-क्रामन्त्यस्याक्रान्तिरसि- — आप.श्रौ.सू. १६.३०.१

३३८. उदेष्यते स्वाहेत्युपोदयम्। उद्यते स्वाहेत्युद्यति। उदिताय स्वाहा सुवर्गाय स्वाहा लोकाय स्वाहेत्युदिते हुत्वा प्रज्ञातानन्नपरिशेषान्नि दधाति।— आप.श्रौ.सू. २०.१२.१०

३३९. तेभ्यो यन्नवनीतमुदियात्तदाज्ये ऽवनयेत्।— आप.श्रौ.सू.२२.२.१ ९

३४०. परि मा सेन्या इति द्वे वाचयित्वोत्तराभिस्तिसृभिरभिमन्त्र्योदसावेत्वित्यादित्यमुदीक्षयति।— आप.श्रौ.सू.२२.२८.२३

३४१. अग्निष्टोम प्रातसवनम् : तेन तथा कृतेनादित्यस्योदयमाकाङ्क्षन्त उदित आदित्ये ऽन्तर्यामं गृह्णाति--- बौधायन श्रौत सूत्र ७.६

३४२. अग्निचयनम्: अथोख्यमुपसमिन्द्धे येन देवा ज्योतिषोर्ध्वा उदायन्निति----- -अथ प्रातरुदित आदित्ये विसृष्टायां वाचि वात्सप्रेणोपतिष्ठते दिवस्परि प्रथमं जज्ञे अग्निरिति— बौ.श्रौ.सू.१०.१६

३४३. राजसूयः :- चार्मपक्ष्यावुपानहौ प्रप्लाव्य वाराही चार्मपक्षीभ्यामुदेति सो ऽपामन्ते जुहोति--- बौ.श्रौ.सू.१२.१६

३४४. अश्वमेधः :- इन्द्राणसमधिद्रुत्य चतस्रः स्रुवाहुतीर्जुहोत्युषसे स्वाहा व्युष्ट्यै स्वाहोदेष्यते स्वाहोद्यते स्वाहेति प्रसिद्धो ऽभिषवः— बौ.श्रौ.सू. १५.२२

३४५. गवामयनम् : तद्धैतदेके दिवैवैतेनाह्ना प्रतिपद्यन्त उदित आदित्ये दिवाकीर्त्यमहरिति वदन्तो— बौ.श्रौ.सू. १६.१३

३४६. अग्निष्टोमा एवैते चतुर्विंशाः पवमाना उद्यत्स्तोमाः स्युरित्येतदेकम्— बौ.श्रौ.सू.१६.२८

३४७. अथादित्यमुद्यन्तमुपतिष्ठत उदसावेतु सूर्य उदिदं मामकं वचः।— बौ.श्रौ.सू.१८.१८

३४८. आनीकवतस्य निर्वपण इति। पाणिसंमर्शनेनादित्यस्योदयमाकाङ्क्षेतेत्याचार्योर्मुष्टिमेव ग्रहीष्यन्नित्यौपमन्यव साकँ रश्मिभि प्रचरेदित्यौपमन्यवीपुत्रः।— बौ.श्रौ.सू.२१.३

३४९. उद्यत्स्तोमेष्विति। पूर्वः कल्पो बौधायनस्योत्तरः शालीकेः।— बौ.श्रौ.सू.२३.१२

३५०. ऽथोद्यत्स्तोमेषु त्रिवृत्प्रथममहः स्यात्पञ्चदशं द्वितीयँ सप्तदशं तृतीयमेकविँशं चतुर्थमिति ------ बौ.श्रौ.सू.२६.२०

३५१. उदयास्तमयावभ्याश्रावणं च बहिर्वेदि प्रसृते वर्जयेयुः।— द्राह्यायण श्रौत सूत्र ७.३.२८

३५२. अत ऊर्ध्वमाहिताग्निर्व्रतचार्याऽऽहोमात्। अनुदितहोमी चोदयात्। अस्तमिते होमः।— आश्वलायन श्रौ.सू.२.२.८

३५३. उपोदयं व्युषित उदिते वा।— आ.श्रौ.सू. २.४.२४

३५४. प्रातरनुवाकन्यायेन तस्यैव समाम्नायस्य सहस्रावममोदेतोः शंसेत्— आ.श्रौ.सू.६.५.८

३५५. यां पर्यस्तमयं पूर्ण उदियाद्यां चास्तमिते ते पौर्णमास्यौ।— शांखायन श्रौत सूत्र१.३.५

३५६. ज्योतिष्टोमे आश्विनशस्त्रप्रकरणम् : उत्तमेन पाङ्क्तेन पादेनोदयं काङ्क्षेत्। उदिते सौर्याणि।--- शां.श्रौ.सू.९.२०.१९

३५७. होत्रशस्त्रप्रकरणम् : उद्वेदभीति ब्राह्मणाच्छंसिनः— शां.श्रौ.सू.१२.२.७

## उदयन

१. अनुहूतः पुनरेहि विद्वानुदयनं पथः। आरोहणमाक्रमणं जीवतोजीवतोऽयनम्।।— अथर्ववेद ५.३०.७

२. तथेति देवा अब्रुवन्। तवैव प्रायणीयस्तवोदयनीय इति। तस्मादेष आदित्य एव प्रायणीयो भवति -- आदित्य उदयनीयः। इयं ह्येवादितिः।— शतपथ ब्राह्मण ३.२.३.६

३. स यदादित्यं चरुं प्रायणीयं निर्वपति। यज्ञस्यैव दृष्ट्यै।--- अथैभ्यः पथ्या स्वस्तिः प्रारोचत। तामयजन्। वाग् वै पथ्या स्वस्तिः। ------अथैभ्योऽग्निः प्रारोचत। तमयजन्।---यद्वै शुष्कं यज्ञस्य तदाग्नेयम्।-- -- --अथैभ्यः सोम प्रारोचत। तमयजन्।- -- -- अथैभ्यः सविता प्रारोचत। तमयजन्। पशवो वै सविता।- -- -(विभिन्न दिशाओं में पांच देवताओं के यजन का वर्णन)।— श.ब्रा.३.२.३.७

४. शिरो वै यज्ञस्यातिथ्यम्। बाहू प्रायणीयोदयनीयौ। अभितो वै शिरो बाहू भवतः। तस्मादभित आतिथ्यमेते हविषी भवतः प्रायणीयश्चोदयनीयश्च। तदाहुः-यदेव प्रायणीये क्रियेत-तद् उदयनीये क्रियेत। यदेव प्रायणीयस्य बर्हिर्भवति-तदुदयनीयस्य बर्हिर्भवतीति।— श.ब्रा.३.२.३.२०

५. य एव प्रायणीयस्यर्त्विजो भवन्ति-त उदयनीयस्यर्त्विजो भवन्ति।---- स वै पञ्च प्रायणीये देवता यजति, पञ्चोदयनीये। तस्मात् पञ्चेत्थादङ्गुलयः, पञ्चेत्थात्।— श.ब्रा.३.२.३.२२

६. आतिथ्येष्टिः :- शिरो वै यज्ञस्यातिथ्यम्-बाहू प्रायणीयोदयनीयौ। अभितो वै शिरो बाहू भवतः। तस्मादभितः आतिथ्यमेते हविषी भवतः- प्रायणीयश्चोदयनीयश्च।— श.ब्रा.३.४.१.१

७. उदयनीयेष्टिः :- आदित्येन चरुणोदयनीयेन प्रचरति। तद् यदादित्यश्चरुर्भवति-यदेवैनामदो देवा अब्रुवन्-तवैव प्रायणीयः, तवोदयनीय इति।---स यदमुत्र राजानं क्रेष्यन्नुपप्रैष्यन्यजते-तस्मात्प्रायणीयं नाम। अथ यदत्रावभृथादुदेत्य यजते-तस्मादेतदुदयनीयं नाम। तद्वाऽएतत् समानमेव हविः-अदित्याऽएव प्रायणीयम्- अदित्या-ऽउदयनीयम्। इयं ह्येवादितिः। स वै पथ्यामेवाग्रे स्वस्तिं यजति।---- -सोऽग्निमेव प्रथमं यजति, अथ सोमम्, अथ सवितारम्, अथ पथ्यां स्वस्तिम्, अथादितिम्।— श.ब्रा.४.५.१.१

८. चित्रं देवानामुदगादनीकम्-इति। असौ वा आदित्य एष पुरुषः। तदेतच्चित्रं देवानामुदेत्यनीकम्। चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः-इति।--- श.ब्रा.७.५.२.२७

९. सुत्याह कर्म : तं हैके-प्रायणीय एवातिरात्रे युञ्जन्ति, उदयनीये विमुञ्चन्ति। संस्थारूपं वा एतत्- यद्विमोचनम्।— श.ब्रा.९.४.४.१५

१०. अथो यथा प्रायणीयेऽतिरात्रे सामिधेनीरनूच्य ब्रूयात्-उदयनीयऽएवातोऽनुवक्ता-ऽस्मीति-तादृक् तत्।— श.ब्रा.९.४.४.१६

११. देविकाहवींषि : समिष्टयजूंषि हुत्वा, अवभृथं यन्ति। अवभृथादुदेत्य, उदयनीयेन चरित्वा, अनूबन्ध्यस्य पशुपुरोडाशमनु देविकानां हवींषि निर्वपति।— श.ब्रा.९.५.१.३४

१२. वैश्वकर्मणहोमः - यद्वेव वैश्वकर्मणानि जुहोति। प्रायणं च ह्यग्नेरुदयनं च। सावित्राणि प्रायणम्, वैश्वकर्मणान्युदयनम्। स यत्सावित्राण्येव जुहुयात्, न वैश्वकर्मणानि, यथा प्रायणमेव कुर्यान्नोदयनं-तादृक् तत्। अथ यद्वैश्वकर्मणान्येव जुहुयात्, न सावित्राणि, यथोदयनमेव कुर्यात्, न प्रायणम्-तादृक् तत्। उभयानि जुहोति-प्रायणं च तदुदयनं च करोति। अष्टावमूनि भवन्ति। एवमिमानि। तद्यथा प्रायणं तथोदयनं करोति। स्वाहाकारोऽमीषां नवमो भवति। एवमेषाम्। तद् यथा प्रायणं तथोदयनं करोति। आहुतिरमीषां दशमी भवति। एवमेषाम्। तद् यथा प्रायणं तथोदयनं करोति— श.ब्रा.९.५.१.४४

१३. दीर्घसत्रं वा एष उपैति। यो ब्रह्मचर्यमुपैति। स यामुपयन् समिधमादधाति,सा प्रायणीया। यां स्नास्यन्,

सोदयनीया। अथ या अंतरेण सत्र्या एवास्य ताः।— श.ब्रा. ११.३.३.२

१४. अथ ब्रह्मयज्ञः।-- -मेधा स्रुवः। सत्यमवभृथः। स्वर्गो लोक उदयनम्।— श.ब्रा.११.५.६.३

१५. तेषां वा उन्नेतोत्तमो दीक्षते। प्रथमोऽवभृथादुदायतामुदैति। प्राणो वा उन्नेता। प्राणमेवैष्वेतदुभयतो दधाति।— श.ब्रा.१२.१.१.११

१६. श्रद्धाया वै देवा दीक्षां निरमिमत। अदित्यै प्रायणीयम्।---- संवत्सराद्दशममहः। प्रजापतेर्महाव्रतम्। स्वर्गाल्लोकादुदयनीयमतिरात्रम्। तदेतत्संवत्सरस्य जन्म।— श.ब्रा.१२.१.२.१

१७. अथ यदुदयनीयमतिरात्रमुपयन्ति। संवत्सरमेव तदाप्त्वा स्वर्गे लोके प्रतितिष्ठन्ति।— श.ब्रा.१२.१.३.२२

१८. अध्यात्मविद्ब्राह्मणम्: पुरुषो वै संवत्सरः। तस्य पादावेव प्रायणीयोऽतिरात्रः।------अङ्गानि दशरात्रः। मुखं महाव्रतम्। हस्तावेवोदयनीयो-ऽतिरात्रः। हस्ताभ्यां ह्युद्यन्ति।— श.ब्रा.१२.१.४.३

१९. सम्वत्सरे समुद्रप्रतरणोपासनम् : तस्य तीर्थमेव प्रायणीयोऽतिरात्रः। तीर्थेन हि प्रस्नांति।---- - तीर्थमेवोदयनीयोऽतिरात्रः। तीर्थेन ह्युत्स्नान्ति। तद्यदुदयनीयमतिरात्रमुपयन्ति। यथा तीर्थेन समुद्रं प्रस्नाय तीर्थेनोत्स्नायुः। तादृक्तत्।— श. ब्रा. १२.२.१.५

२०. अथ वा अतोऽह्नामभ्यारोहः। प्रायणीयेनातिरात्रेणोदयनीयमतिरात्रमभ्यारोहन्ति।— श. ब्रा. १२.२.३.१०

२१. अथ वा अतोऽह्नां निवाहः। प्रायणीयोऽतिरात्रश्चतुर्विंशायाह्ने निवहति।----दशरात्रो महाव्रताय। महाव्रतमुदयनीयायातिरात्राय। उदय-नीयोऽतिरात्रः स्वर्गाय लोकाय प्रतिष्ठायाऽ अन्नाद्याय।— श.ब्रा.१२.२.३.११

२२. गवामयनीय संवत्सरस्य पुरुषविधोपासनम् : मुखं महाव्रतम्। उदान एवोदयनीयोऽतिरात्रः। उदानेन ह्युद्यंति। स एष संवत्सरोऽध्यात्मं प्रतिष्ठितः।— श.ब्रा.१२.२.४.१६

२३. उदयनीयायां संस्थितायाम्, एकविंशतिं वशा अनूबन्ध्या आलभते।-— श.ब्रा.१३.५.४.२५

२४. पुरुषमेधः :- उदयनीयायां संस्थितायाम्, एकादश वशा अनूबंध्या आलभते-मैत्रावरुणीः, वैश्वदेवीः, बार्हस्पत्याः।— श.ब्रा.१३.६.२.१६

२५. एषा उ ह जीवानां दिगंतरेण। सप्तर्षीणां चोदयनम्। आदित्यस्य चास्तमयनम्। अमृतमेव तज्जीवेषु दधाति।— श.ब्रा.१३.८.१.९

२६. स्वर्गं वा एतेन लोकमुपप्रयन्ति यत्प्रायणीयस्तत्प्रायणीयस्य प्रायणीयत्वम्। प्राणो वै प्रायणीय उदान उदयनीयः समानो होता भवति समानौ हि प्राणोदानौ प्राणानां क्लृप्त्यै प्राणानां प्रतिप्रज्ञात्यै।— ऐतरेय ब्राह्मण १.७

२७. ते (देवाः) ऽब्रुवन्नदितिं त्वयेमं यज्ञं प्रजानामेति सा तथेत्यब्रवीत्सा वै वो वरं वृणा इति वृणीष्वेति सैतमेव वरमवृणीत मत्प्रायणा यज्ञाः सन्तु मदुदयना इति तथेति तस्मादादित्यश्चरुः प्रायणीयो भवत्यादित्य उदयनीयो वरवृतो ह्यस्याः। अथो एतं वरमवृणीत मयैव प्राची दिशं प्रजानाथाग्निना दक्षिणां सोमेन प्रतीचीं सवित्रोदीचीमिति। (पथ्यास्वस्ति आदि देवताओं का वर्णन)— ऐ. ब्रा. १.७

२८. प्रायणीयस्य निष्कासं निदध्यात्तमुदयनी-येनाभिनिर्वपेद्यज्ञस्य संतत्यै यज्ञस्याव्यवच्छेदाय। अथो खलु यस्यामेव स्थाल्यां प्रायणीयं निर्वपेत्तस्यामुदयनीयं निर्वपेत्तावतैव यज्ञः संततोऽव्यवच्छिन्नो भवति।------ --याः प्रायणीयस्य पुरोनुवाक्यास्ता उदयनीयस्य याज्याः कुर्याद्या उदयनीयस्य पुरोनुवाक्यास्ताः प्रायणीयस्य याज्याः कुर्यात्तद्व्यतिषजत्युभयोर्लोकयोर्ऋद्ध्या------ आदित्यश्चरुः प्रायणीयो भवत्यादित्य उदयनीयो यज्ञस्य धृत्यै यज्ञस्य बर्सनद्ध्यै यज्ञस्याप्रस्रंसाय---- एवमेवैतद्यज्ञस्योभयतोऽन्ततोरप्रस्रंसाय बर्सौ नह्यति यदादित्यश्चरुः प्रायणीयो भवत्यादित्य उदयनीयः। पथ्ययैवेतः स्वस्त्या प्रयन्ति पथ्यां स्वस्तिमभ्युद्यन्ति

स्वस्त्येवेतः प्रयन्ति स्वस्त्युद्यन्ति स्वस्त्युद्यन्ति।— ऐ.ब्रा.१.११

२९. स वा एषोऽपूर्वोऽनपरो यज्ञक्रतुर्यथा रथचक्रमनन्तमेवं यदग्निष्टोमस्तस्य यथैव प्रायणं तथोदयनम्।--- ऐ.ब्रा.३.४३

३०. यथा ह्येवास्य प्रायणमेवमुदयनमसदिति। तदाहुर्यत्त्रिवृत्प्रायणमेकविंशमुदयनं केन ते समे इति।— ऐ.ब्रा.३.४३

३१. यो वै संवत्सरस्यावारं च पारं च वेद स वै स्वस्ति संवत्सरस्य पारमश्नुतेऽतिरात्रो वा अस्य प्रायणीयोऽवारमुदयनीयः— ऐ.ब्रा.४.१४

३२. यो वै संवत्सरस्यावरोधनं चोद्रोधनं च वेद स वै स्वस्ति संवत्सरस्य पारमश्नुतेऽतिरात्रो वा अस्य प्रायणीयोऽवरोधनमुदयनीय उद्रोधनम्।— ऐ. ब्रा. ४.१४

३३. यो वै संवत्सरस्य प्राणोदानौ वेद स वै स्वस्ति संवत्सरस्य पारमश्नुतेऽतिरात्रो वा अस्य प्रायणीयः प्राण उदान उदयनीयः— ऐ.ब्रा.४.१४

३४. तद्यद्यतुर्विंशेऽहन्युज्यन्ते सा युक्तिरथ यत्पुरस्तादुदयनीयस्यातिरात्रस्य विमुच्यन्ते सा विमुक्तिः।— ऐ.ब्रा.६.२३

३५. सूयते ह वा अस्य क्षत्त्रं यो दीक्षते क्षत्त्रियः सन्स यदाऽवभृथादुदेत्यानूबन्ध्ययेष्ट्वोद-वस्यत्यथैनमुद-वसानीयायां संस्थितायां पुनरभिषिञ्चन्ति।— ऐ.ब्रा.८.५

३६.-आदित्येभ्यस्तृतीयसवनं, वरुणादवभृथम्, अदितेरुदयनीयां, मित्रावरुणाभ्यामनूबन्ध्यां,- — गोपथ ब्राह्मण१.४.७

३७. अथ यदुदयनीयया यजन्ते, अदितिमेव तद् देवीं देवता यजन्ते।— गो.ब्रा.१.४.८

३८. अहोरात्राभ्यां वै देवा प्रायणीयमतिरात्रं निरमिमत,---- -प्रजापतेर्महाव्रतं, स्वर्गाल्लोकादु-दयनीयमतिरात्रम्। तद् वा एतत् संवत्सरस्य जन्म।— गो.ब्रा.१.४.९

३९. अथ यत् प्रायणीयमतिरात्रमुपयन्ति, अहोरात्रावेव तद् देवौ देवते यजन्ते।------अथ यदुदयनीयमतिरात्रमुपयन्ति, स्वर्गमेव तल्लोकं देवं देवतां यजन्ते।— गो.ब्रा.१.४.१०

४०.--- -महाव्रतादुदयनीयो ऽतिरात्रः। उदयनीयो ऽतिरात्रः स्वर्गाय लोकायान्नाद्याय प्रतिष्ठित्यै।— गो.ब्रा.१.४.१४, १.४.२२

४१. समुद्रं वा एते प्रतरन्ति ये संवत्सराय दीक्षन्ते। तेषां तीर्थमेव प्रायणीयोऽतिरात्रः। तीर्थेन हि प्रतरन्ति।-- तेषां तीर्थमेवोदयनीयोऽतिरात्रः। तीर्थेन ह्युद्यन्ति। तद् यथा समुद्रं तीर्थेनोदेयुस्तादृक् तत्।— गो.ब्रा.१.५.२

४२. पुरुषो वाव संवत्सरः। तस्य पादावेव प्रायणीयो ऽतिरात्रः।-----तस्य हस्तावेवोदयनीयो ऽतिरात्रः। हस्ताभ्यां ह्युद्यन्ति।— गो.ब्रा.१.५.३

४३. पुरुषो वाव संवत्सरः। तस्य प्राण एव प्रायणीयो ऽतिरात्रः। प्राणेन हि प्रयन्ति।-----मुखं महाव्रतम्। तस्योदान एवोदयनीयोऽतिरात्रः। उदानेन ह्युद्यन्ति।— गो.ब्रा.१.५.४

४४. सकृद् ध्य् एव परस्तात् त्रिवृते हिंकुवन्ति यत् प्रायणं तद् उदयनम् असद् इति।— जैमिनीय ब्रा. १.२३१

४५. यदि द्वयह उभयोर् अह्नोर् अहिंकृतां गायेत्। प्रायणं हि तयोर् अन्यतरद् उदयनम् अन्यतरत्।------ -- -अथो अन्नं वै हिंकारः -- अन्नेन वै गर्भो ऽभिवर्धते -- अभिवृद्ध्या एवेति। ताम् उदयने गायेद् यत् प्रायणं तद् उदयनम् असद् इति।— जै.ब्रा.१.३१५

४६. अस्मिन्न् एव लोके प्रायणीयेनातिरात्रेण प्रतिष्ठाय प्रयन्ति। अमुष्मिन् लोक उदयनीयेनातिरात्रेण प्रतिष्ठायोद्यन्ति।— जै.ब्रा.२.४४

४७. इम एव दश प्राणा दशरात्रः। मन एव महाव्रतीयम् अहः। उदान एवोदयनीयो ऽतिरात्रः।— जै.ब्रा.२.५८

४८. अथ यां क्रीते राजनि सुब्रह्मण्याम् आह्वयति -- ------ -। अथो यत् प्रायणं तद् उदयनम् असद् इति।— जै.ब्रा.२.८०

४९. अवभृथाद् उदेत्य श्मश्रूण्य् एव वपते न केशान्।— जै.ब्रा.२.२०४

५०. वैश्वानरः प्रायणीयोऽतिरात्रो भवति। वैश्वानरप्रायणा ह्य् अहीनास् सोमाः।-----अथैष पृष्ठ्यष् षडहो भवति।------तत् त्व् एतस्य परिचक्षते यद् आरभमाणा एवं पृष्ठ्यं षडहम् आरभन्ते वैश्वानर उदयनीयो ऽतिरात्रो भवति। वैश्वानरोदयना ह्य् अहीनास् सोमाः।— जै.ब्रा.२.३३६, ३३७

५१. त्रिर् एवाश्विनं शस्तव्यम् इति, प्रायणतो, मध्यत उदयनतः। एतद् ध वै समृद्धम् आश्विनं यद् रथन्तरेण संपद्यते। यद्य् एकेन संपद्येत रथन्तरम् एव प्रायणतो मध्यत उदयनतो, यदि द्वाभ्यां रथन्तरम् एव प्रायणतो मध्यत उदयनतो, यदि त्रिभी रथन्तरम् एव प्रायणतो मध्यत उदयनतो, न चतुर्भिस् संपद्यते, नो एव पञ्चभिः।— जै.ब्रा.२.३६८

५२. पुरुषं वावैतद् आसते यत् संवत्सरम्।---- -इमे त्रय स्वरसामान इमे त्रयो ऽयं विषुवान् इदं महाव्रतीयम् अहर् अयम् उदयनीयो ऽतिरात्रः।— जै.ब्रा.२.४२७

५३. अयम् एव लोकः प्रायणीयो ऽतिरात्रः।-----प्रजापतिर् एव महाव्रतीयम् अहर्, असाव् एव लोक उदयनीयो ऽतिरात्रः।— जै.ब्रा.२.४२९

५४. ते यां प्रायणीयम् अतिरात्रम् उपेत्य वसन्त्य् अस्मिन् एव तां लोके वसन्ति। तद् यद् अस्मिन् लोके ऽन्नाद्यं तद् एव तेनावरुन्धते।---- -अथ याम् उदयनीयम् अतिरात्रम् उपेत्य वसन्त्य् अमुष्मिन् एव ता लोके वसन्ति। तद् यद् अमुष्मिन् लोक ऽन्नाद्यं तद् एव तेनावरुन्धते।— जै.ब्रा.२.४३०

५५. इयम् एव दिक् प्रायणम्, इयम् उदयनम्। तस्माद् असाव् आदित्य इतो ऽस्तम् एतीत उदेति। एतद् एव प्रायणं चोदयनं चानुसंचरति।— जै.ब्रा.३.३०८

५६. इदम् एव प्रायणम्, इदम् उदयनम्। तस्माद् इत एव प्रयन्त्य् अत उद्यन्ति। अग्निर् एव प्रायणम्, आदित्य उदयनम्।— जै.ब्रा.३.३०९

५७. --- -नाक एव दशमम् अहः। इदम् एव प्रायणम् अद उदयनम्। ते हैते लोका एवैतानि द्वादशाहस्याहानि।— जै.ब्रा.३.३४७

५८. प्रायणीयेनातिरात्रेण त्रयोदशं मासम् उपाप्नुवन्त्य्, उदयनीयेन संवत्सरं चतुर्दशम्।------- -माघो द्वादशं, प्रायणीय एवातिरात्रस् त्रयोदशो मास, उदयनीयस् संवत्सरश् चतुर्दशः।— जै.ब्रा.३.३८६

५९. असौ वा आदित्योऽग्निरनीकवान्। तस्य रश्मयोऽनीकानि। साकँ सूर्येणोद्यता निर्वपति। साक्षादेवास्मा अनीकानि जनयति।— तै. ब्रा. १.६.६.२

६०. हविषः याज्या : चित्रं देवानामुदगादनीकम्। चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षम्। सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।— तै.ब्रा.२.८.७.३

६१. तयोरेतौ वत्सौ। अग्निश्चाऽऽदित्यश्च। रात्रेर्वत्सः। श्वेत आदित्यः। अह्नोऽग्निः। ताम्रो अरुणः। ता अविसृष्टौ। दंपती एव भवतः।---- -प्रजयिष्णुः प्रजया च पशुभिश्चत भवति। य एवं वेद। एतमुद्यन्तमपियन्तं चेति। आदित्यः पुण्यस्य वत्सः।— तैत्तिरीय आरण्यक १.१०.५

६२. पृष्ठ्यषडहस्य प्रथमे-षष्ठे अहनि : त्रिवृता प्रैति त्रिवृतोदेति प्राणो वै त्रिवृत् प्राणेनैव प्रैति प्राणमभ्युदेति सर्वमायुरेति न पुरायुषः प्रमीयते य एतया स्तुते।-ताण्ड्य ब्रा.३.६.३

६३. षडहे विभक्तेर्नानात्वं : येनैव रूपेण प्रयन्ति तदभ्युद्यन्ति यस्मादेषा समाना सतीन्द्रविभक्तिर्नानारूपा तस्माद्यथर्त्वोषधयः पच्यन्ते।— तां.ब्रा.१०.८.१

६४. पवमानस्य ते वयमिति बहिष्पवमानस्यान्त्यं तृचं : तृच उत्तमो भवति। येनैव प्राणेन प्रयन्ति तमभ्युद्यन्ति।— तां.ब्रा.११.६.९

६५. तृतीयेऽहनि बहिष्पवमाने : तृच उत्तमो भवति येनैव प्राणेन प्रयन्ति तमभ्युद्यन्ति।— तां.ब्रा. १२.१.१०

६६. तृच उत्तमो भवति येनैव प्राणेन प्रयन्ति तमभ्युद्यन्त्येकविंश एव स्तोमो भवति प्रतिष्ठायै प्रतितिष्ठति।— तां.ब्रा.१२.७.१०

६७. माध्यन्दिन पवमानः :- (पुनानो अक्रमीदिति) गायत्रीषु स्तुवन्ति प्रतिष्ठायै ब्रह्मवर्चसाय येनैव प्राणेन प्रयन्ति तमभ्युद्यन्ति।— तां.ब्रा.१२.९.२३

६८. बहिष्पवमानस्य स्तोत्रम् (यास्ते धाना मधुश्चुत इति) :- तृच उत्तमो भवति येनैव प्राणेन प्रयन्ति तमभ्युद्यन्ति त्रिणव एव स्तोमो भवति प्रतिष्ठायै पुष्ट्यै त्रिवृद्वा एष पुष्टः।— तां.ब्रा.१३.१.१२

६९. माध्यन्दिनस्य पवमानस्य स्तोत्रीयास्तृचः :- गायत्रीषु स्तुवन्ति प्रतिष्ठायै ब्रह्मवर्चसाय येनैव प्राणेन प्रयन्ति तमभ्युद्यन्ति।— तां.ब्रा.१३.३.२५

७०. बहिष्पवमानस्यान्त्यं तृचं : तृच उत्तमो भवति येनैव प्राणेन प्रयन्ति तमभ्युद्यन्ति।— तां.ब्रा.१३.७.१५

७१. माध्यन्दिन पवमानः :- इहवद्वामदेव्यं भवति---- गायत्रीषु स्तुवन्ति प्रतिष्ठायै ब्रह्मवर्चसाय येनैव प्राणेन प्रयन्ति तमभ्युद्यन्ति।— तां.ब्रा.१३.९.२८

७२. सप्तमम् अहःसु उक्थस्तोत्रेषु : ब्रह्मवादिनो वदन्ति प्रायणतो द्विपदाः कार्य्या उदयनता इति। उदयनत एव कार्य्याः पुरुषो वै द्विपदाः प्रतिष्ठायै।— तां.ब्रा.१३.१.२२

७३. सप्तमे अहनि माध्यन्दिन पवमाने : प्रवद्भार्गवं भवति। प्रवता वै देवाः स्वर्गं लोकं प्रायन्नुद्वतोदायन्।— तां.ब्रा.१४.३.२४

७४. माध्यन्दिनस्य पवमानस्य स्तोम क्लृप्तिः :- उद्वद्भार्गवं भवति। प्रवता वै देवा स्वर्गं लोकं प्रायन्नुद्वतोदायन्।— तां.ब्रा.१४.९.३९

७५. माध्यन्दिन पवमानः :- तदु संवदित्याहुः संवता वै देवाः स्वर्गं लोकं प्रायन्नुद्वतोदायन्।— तां.ब्रा.१५.३.३६

७६. दशमे अहनि तृतीयस्य पृष्ठस्तोत्रीयं तृचं : उदुत्ये मधुमत्तमा इत्युद्वत्य उदयनीयेऽहन्येतदाशिषोह्येवैतर्हि।— तां.ब्रा. १५.१०.३

७७. सप्तदशस्तोमकमग्निष्टोमसंस्थमेकाहम् : चतुःषष्टिमष्टाविंशतिशतमानान्युदयनीयायामिष्टौ-— तां.ब्रा. १८.३.२

७८. पक्षाख्यः क्रतुः (आद्यन्तौ स्तोमौ) :- त्रिवृता प्रैति त्रिवृतोदेति प्राणो वै त्रिवृत्प्राणेनैव प्रैति प्राणमभ्युदेति।— तां.ब्रा.१९.१०.१४

७९. बहिष्पवमानस्य सन्धिस्तोत्रगतौ स्तोमौ : त्रिवृता प्रैति त्रिवृतोदेति प्राणो वै त्रिवृत्प्राणेनैव प्रैति प्राणमभ्युदेति।— तां.ब्रा.२०.१.६

८०. अवभृथ प्रकरणम् : प्रागुदयनीयादतिरात्रादप्सुषोमान्तमहः सत्रेषु— द्राह्यायण श्रौत सूत्र ६.४.१३

८१. दीक्षणीया इष्टिः :- नेदमादिषु मार्जनमर्वागुदयनीयायाः।— आश्वलायन श्रौ.सू. ४.२.६

८२. अयमेवैकाहोऽतिरात्र आदौ प्रायणीयः। एषोऽन्त्य उदयनीयः। अव्यक्तो मध्ये।— आश्व.श्रौ.सू. ११.१.२

८३. दृतिवातवतोरयनम् (सत्रम्) :- प्रायणीयोऽतिरात्रः।- उदयनीयोऽतिरात्रः।— आश्व.श्रौ.सू. १२.३.६

८४. प्रायणीयोदयनीययोरतिरात्रयोः समस्तानालभेरन्नैन्द्राग्नमन्तर्धौ वा।-------वैश्वकर्मणमृषभं महाव्रते आग्नेयमुदयनीयातिरात्रे।— आश्व.श्रौ.सू.१२.७.७

८५. ज्योतिष्टोमेऽवभृथकर्मप्रकरणम् :- प्रायणीययोदयनीया व्याख्याता। विपर्यासो याज्यापुरोनुवाक्यानां स्विष्टकृतः परिहाप्य। पथ्यां स्वस्तिं चतुर्थीं यजति। तृतीयं सवितारम्।-— शांखायन श्रौत सूत्र ८.१२.१

८६. पुरस्तादेव कतिपयाहेन होता प्रेयफलकमुत्पाटयति। तिष्ठत एवोदुम्बरस्य। पुरस्तादादित्यस्योदयनत।-शांखायन श्रौत सूत्र १७.१.४

८७. महाव्रत प्रकरणे अवभृथ कर्म : अथ प्रातरुदयनीयमतिरात्रमुपयन्ति। य एवासौ प्रायणीयः स उदयनीयः। तत्र सर्वान्करस्नान्संबाध्य प्रेष्यति मैत्रावरुणः।-— शां.श्रौ.सू.१८.२४.२

८८. आज्यग्रहणकाले ऽननूयाजे प्रायणीये चतुर्जुह्वां गृह्णाति चतुरुपभृति समानयनार्थम्। अप्रयाज उदयनीये न

जुह्वां गृह्णाति। चतुरुपभृत्यनूयाजार्थम्।-------- पत्नीस्तु न संयाजयेत्। ता उदयनीये संयाजयेत्। समे वा कार्ये। धारयति ध्रौवमाज्यम्। प्राग्वंशे बर्हिः स्थालीमनिष्कसितां मेक्षणमित्युदयनीयार्थं निदधाति। — आप.श्रौ.सू.१०.२१.८

८९. उदेत प्रजामायुर्वर्चो दधाना अध स्यामसुरुभयोर्गृहेषु- अहते वसानावुदितः।— आप.श्रौ.सू. १३.२२.१

९०. प्रायणीयवदुदयनीया।— आप. श्रौ. सू. १३.२३.१

९१. वीणागणकिनो देवैरिमं यजमानं संगायतेति। एवं सदौपवसथात्। प्रजापतिना सुत्यास्व-वभृथोदयनीयानूबन्ध्योदवसानीयास्विति। देवैरन्ततः।— आप.श्रौ.सू.२०.८.१६

९२. प्रायणीयवदुदयनीयमुपयन्ति। नात्राहीनसंततयो भवन्ति। यत्पूर्वस्मिन्नहन्युत्तरस्मा अह्ने क्रियते ता अहीनसंततयः।----- अथ ग्रहक्लृप्तिः। प्रायणी-योदयनीययोर्दशमे ऽहन्निति पृश्निप्राणग्रहान्गृह्णाति। — आप.श्रौ.सू.२१.१३.१

९३. त्र्यनीकां व्याख्यास्यामः। ऐन्द्रवायवाग्रौ प्रायणीयोदयनीयौ दशमं चाहः।---व्यूढे त्वैन्द्रवायवाग्रौ प्रायणीयोदयनीयौ।----आग्नेयमुदयनीये। ऐन्द्राग्नं वा।--अग्निष्ठ उदयनीये पशुमुपाकरोति।— आप.श्रौ.सू. २१.१४.१

९४. व्याख्यात उदयनीय : पृष्ठ्यशमनीयश्च। अथ ग्रहक्लृप्तिः।— आप.श्रौ.सू.२१.२१.१

९५. उपालम्भनम् : प्राजापत्यमृषभं तूपरं महाव्रते। आग्नेयमुदयनीये। इति पालिङ्गायनिकाः। अथ काठकाः। ऐकादशिनान्प्रतिविभज्याप्रतिविभज्य वा प्रायणीयोदयनीययोरालभन्ते।— आप. श्रौ. सू. २१.२३.४

९६. हिरण्यस्रजमुद्गात्रे षट्पुष्करां द्वादशपुष्करां वा यज्ञायज्ञीयस्य स्तोत्रेऽवभृथेष्ट्यामुदयनीयायामनू-बन्ध्यायामुदवसानीयायां च।— आप. श्रौ. सू. २२.१०.१

९७. अमावास्यायां प्रायणीयो ऽष्टम्यां महाव्रतं पौर्णमास्यामुदयनीयः। एतद्वा विपरीतम्।— आप. श्रौ. सू. २३.२.३

९८. आदित्यानामयनम् : महाव्रतोदयनीयाभ्यामिति द्व्यूनो मासः पूर्यते। एतेनाङ्गिरसामयनं व्याख्यातम्। ---------महाव्रतोदयनीयाभ्यामिति द्व्यूनो मासः पूर्यते।— आप.श्रौ.सू.२३.९.९

९९. अग्निष्टोम प्रातसवनम् : अथ परिकर्मिणः सँशास्त्यनुच्छिष्टीकुर्वन्त एतं चरुं व्युद्धृत्य प्राश्नीताथैतां चरुस्थालीं सक्षामकाषामेतन्मेक्षणमेतं वेदमेतद्बर्हिश्चतुष्टय-मुदयनीयाय निधत्तादिति--- -बौधायन श्रौत सूत्र ६.१२

१००. अग्निचयने अवभृथं कर्म : समुद्राय वयुनाय सिन्धूनां पतये नम इति प्रसिद्धो ऽवभृथ उदयनीयेष्ट्येष्ट्वा मैत्रावरुणीं वशामुपाकरोति------बौ.श्रौ.सू.१०.५९

१०१. राजसूयः :- ----प्रसिद्धो ऽवभृथ उदयनीयेष्ट्येष्ट्वा मैत्रावरुणीं वशामुपाकरोति।-बौ.श्रौ.सू. १२.१६

१०२. राजसूयः :- शालामध्यवसाय मथित्वाग्नीन्विहृत्योदयनीयायाग्निष्टोमाय दीक्षते तस्य तिस्रो दीक्षास्तिस्र उपसदः सप्तम्यां प्रसुतः संतिष्ठत एष उदयनीयो ऽग्निष्टोमश्चतुष्टोमः सहस्रदक्षिण उदवसानीयान्तो— बौ.श्रौ.सू.१२.२०

१०३. औपानुवाक्यम् : उक्तमादित्य-ग्रहस्योद्धूननमुक्ता प्रायणीयस्य स्रुवाहुतिरुक्तो-दयनीयस्योक्तं यूपस्योपस्थानम्।-बौ. श्रौ. सू. १४.२१

१०४. गवामयनम् : प्रायणीयोदयनीयावभितो मध्ये ऽग्निष्टोमास्तद्द्वितीयं प्रजापतेरयनँ— बौ. श्रौ. सू. १६.१६

१०५. गवामयनम् : तद्धैतदेके सारस्वतवैष्णवौ ग्रहौ गृहन्ति प्रायणीयादेवाग्रे ऽतिरात्रादोदयनीयाद्वाग्वै सरस्वती यज्ञो विष्णुः-— बौ.श्रौ.सू.१६.१६

१०६. आ समुदितादिहावभृथेन प्रचरत्यथा-मुत्रेहोदयनीयामिष्टिं निर्वपति-बौ. श्रौ. सू. १८.५०

१०७. प्रायश्चित्तानि : उदयनीयस्य बर्हिषः सँस्कार इति। असिदादानप्रभृतीन्मन्त्रान्साधयेदिति बौधायनः शुल्बप्रभृतीनिति शालीकिः संभरणप्रभृतीनित्यौपमन्यवः। उदयनीयस्य निर्वपण इति। स्रुचि वावधाय क्षामकाषँ स्थाल्यां वा सक्षामकाषायां निर्वपेदिति। पूर्वः कल्पो बौधायनस्योत्तरः शालीकेः। उदयनीयस्य श्रपण इति। पयसि श्रपयेदिति बौधायनो ऽप्स्विति शालीकिः।---- उदयनीयस्यासादन इति। षड्डौत्रासादयेदिति बौधायनस्तूष्णीमिति शालीकिः। उदयनीयस्य चर्याया इति। सूत्रं बौधायनस्याहवनीय एवोदयनीयेन चरेदिति शालीकिः।-बौ. श्रौ. सू. २१.२५

१०८.---तस्यै सह सवनीयैर्वत्सापाकरणँ सह सायंदोहमुदयनीयेन चरित्वा पाणी संमृशीत----बौ. श्रौ. सू. २५.२६

१०९. अथ मथित्वाग्नीन्विहृत्योदयनीया-याग्निष्टोमाय दीक्षते तस्य तिस्रो दीक्षास्तिस्र उपसदः सप्तम्यां प्रसुतः संतिष्ठत एष उदयनीयो अग्निष्टोमः सहस्रदक्षिणो--- बौ. श्रौ. सू. २६.२

## उदर

१. उत यो मानुषेष्वा यशस्चक्रे असाम्या। अस्माकमुदरेष्वा।। (ऋ.शुनःशेप; दे.वरुण)— ऋ १.२५.१५

२. शग्धि पूर्धि प्र यंसि च शिशीहि प्रास्युदरम्। पूषन्निह क्रतुं विदः।।— ऋ.१.४२.९

३. यदूवध्यमुदररस्यापवाति य आमस्य क्रविषो गन्धो अस्ति। सुकृता तच्छमितारः कृण्वन्तूत मेधं शृतपाकः पचन्तु।।— ऋ.१.१६२.१०

४. एन्द्र याहि मत्स्व चित्रेण देव राधसा। सरो न प्रास्युदरं सपीतिभि रा सोमेभिरुरु स्फिरम्।। — ऋ.८.१.२३

५. इदं वसो सुतमन्धः पिबा सुपूर्णमुदरम्। अनाभयिन् ररिमा ते।।— ऋ.८.२.१

६. क्रत्व इत् पूर्णमुदरं तुरस्यास्ति विधतः। वृत्रघ्नः सोमपाव्नः।।— ऋ.८.७८.७

७. इमानि त्रीणि विष्टपा तानीन्द्र वि रोहय। शिरस्ततस्योर्वरामादिदं म उपोदरे।।— ऋ.८.९१.५

८. पर्शुर्ह नाम मानवी साकं ससूव विंशतिम्। भद्रं भल त्यस्या अभूद् यस्या उदरमामयद् विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।।— ऋ.१०.८६.२३

९. आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्ठोरुदरादधि। यक्ष्मं कुक्षिभ्यां प्लाशेर्नाभ्या वि वृहामि ते।।-अथर्ववेद २.३३.४

१०. शतेन पाशैरभि धेहि वरुणैनं मा ते मोच्यनृतवाङ् नृचक्षः। आस्तां जाल्म उदरं श्रंसयित्वा कोश इवाबन्धः परिकृत्यमानः।— अ.४.१६.७

११. ब्रह्मास्य शीर्षं बृहदस्य पृष्ठं वामदेव्यमुदरमोदनस्य। छन्दांसि पक्षौ मुखमस्य सत्यं विष्टारी जातस्तपसोऽधि यज्ञः।।— अ.४.३४.१

१२. यदन्तरिक्षं रजसो विमानं तत् कृण्वेऽहमुदरं शेवधिभ्यः। तेन शालां प्रति गृह्णामि तस्मै।।— अ.९.३.१५

१३. देवजना गुदा मनुष्या आन्त्राण्यत्रा उदरम्।— अ.९.१२.१६

१४. हरिमाणं ते अङ्गेभ्योऽप्वामन्तरोदरात्। यक्ष्मोधामन्तरात्मनो बहिर्निर्मन्त्रयामहे।।— अ.९.१३.९

१५. बहिर्बिलं निर्द्रवतु काहाबाहं तवोदरात्। यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत्।।— अ.९.१३.११

१६. उदरात् ते क्लोम्नो नाभ्या हृदयादधि। यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत्।।— अ.९.१३.१२

१७. यस्य भूमिः प्रमान्तरिक्षमुतोदरम्। दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः।।— अ.१०.७.३२

१८. ईर्माभ्यामयनं जातं सक्थिभ्यां च वशे तव। आन्त्रेभ्यो जज्ञिरे अत्रा उदरादधि वीरुधः।।— अ.१०.१०.२१

१९. यदुदरं वरुणस्यानुप्राविशथा वशे। ततस्त्वा ब्रह्मोदह्वयत् स हि नेत्रमवेत् तव।।— अ.१०.१०.२२

२०. अङ्गेभ्यस्त उदराय जिह्वाया आस्याय ते। दद्भ्यो गन्धाय ते नमः।।— अ.११.२.६

२१. ततश्चैनमन्येनोदरेण प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। उदरदारस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह।। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। सत्येनोदरेण। तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम्।।— अ.११.४.११

२२. आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः। तं रात्रीस्तिस्र उदरे बिभर्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः।— अ.११.५.३

२३. चक्षुः श्रोत्रं यशो अस्मासु धेह्यन्नं रेतो लोहितमुदरम्।।— अ.११.७.२५

२४. स एकव्रात्योऽभवत् स धनुरादत्त तदेवेन्द्रधनुः। नीलमस्योदरं लोहितं पृष्ठम्। नीलेनैवाप्रियं भ्रातृव्यं प्रोर्णोति लोहितेन द्विषन्तं विध्यतीति ब्रह्मवादिनो वदन्ति।— अ.१५.१.७

२५. आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्ठोरुदरादधि। यक्ष्मं कुक्षिभ्यां प्लाशेर्नाभ्या वि वृहामि ते।।— अ.२०.९६.२०

२६. पर्शुर्ह नाम मानवी साकं ससूव विंशतिम्। भद्रं भल त्यस्या अभूद् यस्या उदरमामयद् विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।।— अ.२०.१२६.२३

२७. अथ हैक्ष्वाकं वरुणो जग्राह तस्य होदरं जज्ञे तदु ह रोहितः शुश्राव सोऽरण्याद् ग्राममेयाय तमिन्द्र पुरुषरूपेण पर्येत्योवाच— ऐ.ब्रा.७.१५

२८. तस्य ह स्मर्च्यृच्युक्तायां वि पाशो मुमुचे कनीय ऐक्ष्वाकस्योदरं भवत्युत्तमस्यामेवर्च्युक्तायां वि पाशो मुमुचेऽगद ऐक्ष्वाक आस।— ऐ.ब्रा.७.१६

२९. वशं शंसति वशे म इदं सर्वमसदिति। ता एकविंशतिर्भवन्त्येकविंशतिर्हि ता अन्तरुदरे विकृतयः। अथो एकविंशो वै हीमानां प्रतिष्ठोदरमन्नाद्यानाम्।— ऐ.आ.१.५.१

३०. उरू गृणीहीत्यब्रवीत्तदुदरमभवत्। उर्वेव मे कुर्वित्यब्रवीत्तदुरोऽभवत्। उदरं ब्रह्मेति शार्कराक्ष्या उपासते हृदयं ब्रह्मेत्यारुणयो— ऐ.आ.२.१.४

३१. आन्त्राणि स्थाली मधु पिन्वमाना। गुदा पात्राणि सुदुघा न धेनुः। श्येनस्य पत्रं न प्लीहा शचीभिः। आसन्दी नाभिरुदरं न माता।— तै.ब्रा. २.६.४.३

३२. पृष्टीर्म राष्ट्रमुदरमंसौ।— तै.ब्रा.२.६.५.५

३३. ये द्विपादश्चतुष्पादः। अपाद उदरसर्पिणः। सर्वास्ताः।— तै.ब्रा.३.१ २.६.४

३४. अग्निश्च मा मन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः। पापेभ्यो रक्षन्ताम्। यदह्ना पापमकार्षम्। मनसा वाचा हस्ताभ्याम्। पद्भ्यामुदरेण शिश्ना। अहस्तदवलुम्पतु।— तै.आ.१०.२४

३५. सूर्यश्च मा मन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः। पापेभ्यो रक्षन्ताम्। यद्रात्रिया पापमकार्षम्। मनसा वाचा हस्ताभ्याम्। पद्भ्यामुदरेण शिश्ना। रात्रिस्तदवलुम्पतु।— तै.आ.१०.२५.१

३६. यदा ह्येवैष एतस्मिन्नुदरमन्तरं कुरुते। अथ तस्य भयं भवति।— तै.आ.८.७.१

३७. तदाहुरुदरं वा एष स्तोमानां यत् सप्तदशो यत् सप्तदशम्मध्यतो निर्हरियुरशनायवः प्रजाः स्युरशनायवः सत्रिणः।— तां.ब्रा.४.५.१५

३८. प्रजापतेर्वा एतदुदरं यत्सद ऊर्गुदुम्बरो यदौदुम्बरी मध्ये सदसो मीयते। मध्यत एव तत्प्रजाभ्योऽन्नमूर्जन्दधाति— तां.ब्रा.६.४.११

३९. अथैतां चितां चिन्वन्ति।----कर्णयोः प्राशित्रहरणे उदरे पात्रीं संवर्तधानीम् आण्डयोर् दृषदउपले— जै.ब्रा.१.४८

४०. स उदराद् एव मध्यतस् सप्तदशं स्तोमम् असृजत् जगतीं छन्दो वामदेव्यं साम विश्वान् देवान् देवतां वैश्यं मनुष्यं गां पशुम्।— जै.ब्रा.१.६९

४१. प्रजापतेर वा एतद् उदरं यत् सदः। ऊर्ग् उदुम्बरः। यन् मध्यतस् सदस औदुम्बरीम् ईयते मध्यत एवैतत् प्रजानाम् अन्नम् ऊर्जं दधाति— जै.ब्रा.१.७१

४२. सा (अपाला) अब्रवीत् : इमानि त्रीणि विष्टपा तानीन्द्र विरोहय। शिरस् ततस्योर्वराम् आद् इदं म उपोदरे। सर्वा ता रोमशा कृधि।।— जै.ब्रा.१.२२१

४३. त्रीणि ह वै यज्ञस्योदराणि गायत्री बृहत्य् अनुष्टुप्। अत्र ह्य एवावपन्त्य अत उद्धरन्ति। तद उ यथायं मध्येन पुरुषस् सुहितो वा स्याद् अशनायेद् वा तथा तत्। अथ यथेतराण्य-- — जै.ब्रा.१.३११

४४. इदम् एवोदरम् एकविंशम् अहः। सर्वे वै स्तोमा एकविंशम् अभिसंपन्नाः। सर्वम् अन्नाद्यम् उदरे प्रतिष्ठितम्।— जै.ब्रा.२.५७

४५. अथ उदरेण पापं कृत्वा मन्येत, सप्तदशेनाग्निष्टुता यजेत। एष ह वा उदरेण पापं करोति। यो ऽनाश्यान्नस्यान्नम् अत्ति। उदरं वै सप्तदश स्तोमानाम्। उदराद् एव तेन पाप्मानम् अपघ्नते। जै.ब्रा.२.१३५

४६. तस्य वा एतस्य ललाटाद् एव सिंहो ऽजायतोरसो ऽधि शार्दूल, उदराद् द्वीपी— जै.ब्रा.२.२६७

४७ .स खलु पादाभ्यामेव पृथिवीं निरमिमीत, उदरादन्तरिक्षं मूर्ध्नो दिवम्।— गोपथ ब्रा.१.१.६

४८. उदरमेकविंशः। विंशतिर्ह्येवैतस्यान्तर उदरे कुन्तापानि भवन्त्युदरमेकविंशम्। तस्मादुदर-मेकविंशः।— गोपथ ब्रा.१.५.३

४९. इन्द्रस्य त्वा जठरे सादयामि इत्यब्रवीत्।--- वरुणस्योदर इति। न हि वरुणस्योदरं किं चन हिनस्तीति। २। अथो आहुः ब्राह्मणस्योदर इति।— गोपथ ब्रा.२.१.२

५०. पुरुषो वै यज्ञः। तस्य शिर एव हविर्धानम्, मुखमाहवनीयः, उदरं सदः, अन्नमुक्थानि,----।— गोपथ ब्रा.२.५.४

५१. तं (वृत्रं) द्वेधाऽन्वभिनत्, तस्य यत् सौम्यं न्यक्तमास तं चन्द्रमसं चकार। अथ यदस्यासुर्मास तेनेमाः प्रजा उदरेणाविध्यत्। अथ यदिमाः प्रजा अशनमिच्छन्ते अस्मा एवैतद् वृत्रायोदराय बलिं हरन्ति।— शत. ब्रा.१.६.३.१७

५२. स वै पौर्णमासेनोपवत्स्यन्न सत्रा सुहित इव स्यात् तेनेदमुदरमसुर्यं व्लिनात्याहुतिभिः प्रातर्दैवम्। एष उ पौर्णमासस्योपचारः।— श.ब्रा.१.६.३.३१

५३. अथ व्रतं व्रतयित्वा नाभिमुपस्पृशति - श्वात्राः पीता भवत यूयमापोअस्माकमन्तरुदरे सुशेवाः।— श.ब्रा.३.२.२.१९

५४. अंहस इव ह्येता मुञ्चन्ति यदुदरे गुष्ठितं भवति।-- — श.ब्रा.३.२.२.२०

५५. हविर्धान कर्म : उदरमेवास्य सदः। तस्माद् सदसि भक्षयन्ति। यद्धीदं किञ्चाश्नन्ति उदरऽएवेदं सर्वं प्रतितिष्ठति। अथ यदस्मिन् विश्वेदेवाऽअसीदन् तस्मात्सदो नाम।— श.ब्रा.३.५.३.६

५६. औदुम्बरी : उदरमेवास्य सदः। तस्मात् सदसि भक्षयन्ति। यद्धीदं किञ्चाश्नन्ति उदर एवेदं सर्वं प्रतितिष्ठति। अथ यदस्मिन् विश्वे देवा असीदन् तस्मात् सदो नाम।— श.ब्रा.३.६.१.१

५७. स आह अध्वर्युर्निरूहैतं गर्भम् इति। तं नोदरतो निरूहेद्। आर्ताया वै मृताया उदरतो निरूहन्ति। यदा वै गर्भः समृद्धो भवति प्रजननेन वै स तर्हि प्रत्यङ्डैति।— श.ब्रा.४.५.२.३

५८. गार्हपत्याग्निचयनम्: अपेत वीत वि च सर्पतात इति। अप चैवेत, वि चेत, व्यु च सर्पतात इत्येतत्। य उदरसर्पिणस्तानेतदाह।— श. ब्रा. ७.१.१.२

५९. उखोपरि होमः :- उदरमुखा। योनिरुलूखलम्। उत्तरोखा भवति अधरमुलूखलम्। उत्तरं ह्युदरम् अधरा योनिः। शिश्नं मुसलम्।--— श.ब्रा.७.५.१.३८

६०. पञ्चपशुशीर्षेष्टकोपधानम्: उदरं वाऽउखा। उदरे तदन्नं दधाति।— श.ब्रा.७.५.२.७

६१. एकत्रिंशत्छन्दस्येष्टकोपधानम् : उदरमतिच्छन्दाः। पशवो वै च्छन्दांसि। अन्नं पशवः। उदरं वाऽन्नमत्ति। उदरं हि वाऽअन्नमत्ति। तस्माद्यदोदरमन्नं प्राप्नोति अथ तज्जग्धं यातयामरूपं भवति।— श.ब्रा.८.६.२.१३

६२. प्राङ् ह्येषोऽग्निश्चीयते। अथो प्राग्वै प्राचऽउदरम्, प्राची योनिः। बहिस्तोमभागम्। हृदयं वै स्तोमभागाः। हृदयमु वाऽउत्तमम्। अथोदरम्, अथ योनिः।— श.ब्रा.८.६.२.१५

६३. अथ प्रथमायां चिता उत्तरतः स्वयमातृण्णाया उदरं च योनिं चोपदधाति। यो वाऽअयं मध्ये प्राणः तदेषा स्वयमातृण्णा। एतस्य तत्प्राणस्योभयत उदरं च योनिं च दधाति। तस्मादेतस्य प्राणस्योभयत उदरं च योनिश्च।— श.ब्रा.८.६.२.१६

६४. लोकम्पृणेष्टकोपधानम् : अथो अन्नं वै यजुष्मत्य इष्टकाः, उदरं मध्यमा चितिः। उदरे तदन्नं दधाति।— श.ब्रा.८.७.२.१८

६५. अश्वस्य मेध्यस्य द्यौष्पृष्ठम्, अन्तरिक्षमुदरम्, पृथिवी पाजस्यम्।-— श. ब्रा. १०.६.४.१

६६. दक्षिणा चोदीची च पार्श्वे। द्यौष्पृष्ठम्। अन्तरिक्षमुदरम्। इयमुरः।— श.ब्रा.१०.६.५.३

६७. उदरमेवास्येडा। तद्यथैवाद इडायां समवद्यंति। एवमेवेदं विश्वरूपमन्नमुदरे समवधीयते।— श.ब्रा.११.२.६.८

६८. उदरं गृहमेधीया। प्रतिष्ठा वा उदरम्। प्रतिष्ठित्या एव।— श.ब्रा.११.५.२.४

६९. अथ यदिदमन्तरुदरे। तत्पितृयज्ञः। तद्वा अनिरुक्तं भवति। तस्मात्तदनिरुक्तम्।— श. ब्रा. ११.५.२.५

७०. गवामयनीय संवत्सरस्य पुरुषविधोपासनम् : उदरमेकविंशः। विंशतिर्वा अन्तरुदरे कुन्तापानि। उदरमेकविंशम्। तस्मादुदरमेकविंशः।— श.ब्रा. १२.२.४.१२

७१. एकविंशमुदरं कल्पयन्ति पार्श्वे पर्शूस्त्रिणवेनाभिक्लृप्ते।— श.ब्रा.१२.३.१.६

७२. उदरे पात्रीं समवत्तधानीं पृषदाज्यवतीम्। शिश्नस्यांते शम्याम्।— श.ब्रा.१२.५.२.७

७३. अन्तरिक्षं वै मध्यममहः।--उदरं मध्यममहः। उदरे तदन्नं दधाति।— श. ब्रा. १३.६.१.२

७४. वाजपेयोऽवसेचनं ब्राह्मणम् : अन्तरिक्षं वा उपयमनी। अथो उदरं वा उपयमनी। उदरेण हीदं सर्वमन्नाद्यमुपयतम्।— श.ब्रा.१४.२.१.१७

७५. घर्मोद्वासनं : अथैतद्रज्जुसंदानम्। उपयमन्यामाधाय पश्चात्प्राचीमासादयति। उदरमेवास्मिन्नेतद्दधाति।— श.ब्रा.१४.३.१.२२

७६. उदरं वै वृत्रः क्षुत्खलु वै मनुष्यस्य भ्रातृव्यो य एवं वेद हन्ति क्षुधं भ्रातृव्यं---- तै.सं.२.४.१२.६

७७. इडाप्राशित्रभक्षयोरभिधानम् : सोऽबिभेत् प्राशितं मा हिंसिष्यतीति ब्राह्मणस्योदरेणेत्यब्रवीन्न हि ब्राह्मणस्योदरं किंचन हिनस्ति--— तै.सं.२.६.८.७

७८. अश्वस्तोमीय मन्त्राः :- यदूवध्यमुदरस्यापवाति य आमस्य क्रविषो गन्धो अस्ति।— तै.सं.४.६.८.४

७९.----नभ उदर्येणेन्द्राणीं प्लीहना वल्मीकान्क्लोम्ना गिरीन्प्लाशिभिः समुद्रमुदरेण वैश्वानरं भस्मना।— तै.सं.५.७.१६.१

८०. सदोभिधानम् : उदरं वै सद ऊर्गुदुम्बरो मध्यत औदुम्बरीं मिनोति----। तै.सं.६.२.१०.६

८१. उपरवाभिधानम् : उदरं सदो यदा खलु वै जिह्वया दत्स्वधि खादत्यथ मुखं गच्छति यदा मुखं गच्छत्यथोदरं गच्छति तस्माद्धविर्धाने--— तै.सं.६.२.११.४

८२. अश्वमेधांग मन्त्रः :- समुद्र उदरमन्तरिक्षं--- — तै.सं.७.५.२५.२

८३. अग्नेस्त्वास्येन प्राश्नामि ब्राह्मणस्योदरेण बृहस्पतेर्ब्रह्मणेन्द्रस्य त्वा जठरे सादयामि--— आप.श्रौ.सू.३.१९.७

८४. प्रवर्ग्यः :- मध्य उपयमनमुदरस्य रूपम्। तस्मिन् सर्वं रज्जुमयं समवदधात्यान्त्राणां रूपम्।— आप.श्रौ.सू.१५.१५.१

८५. इह धृतिरिह स्वधृतिरिह रन्तिरिह रमतिरित्यौदुम्बरीं परिष्वज्योदरैरुपस्पृशन्तो वाग्यतास्तिष्ठन्ति।— आप.श्रौ.सू.२१.१२.७

८६. उदरे समवत्तधानीम्।— शां. श्रौ. सू. ४.१४.२७

८७. स एतमुशनस्तोमं यज्ञक्रतुमपश्यत्। तेनेष्ट्वा पाप्मानमपाहत तेन पाप्मानमजिघांसमानो यजेत। उदरव्याधितश्च।— शां.श्रौ.सू.१४.२७.१

८८. अथ हैक्ष्वाकं राजानं वरुणो जग्राह। तस्य होदरं जज्ञे।— शां.श्रौ.सू.१५.१८.१

८९. तस्य शुनःशेपस्य ह स्मर्च्यृच्युक्तायां नितरां पाशो मुमुचे। कनीय ऐक्ष्वाकस्योदरं बभूव।— शां.श्रौ.सू.१५.२२.१

९०. उदरमेदोऽवशिष्टं गुदे प्रास्यति कृशश्चेत्।— का.श्रौ.सू.६.७.१२

९१. ग्रीवा वक्षो हृदयं स्तनस्तृतीयान्युदरप्रभृतीनि चतुर्थानि--। ----— वैखानस श्रौ.सू.१.१

९२. यद्ग्रीवायां वेपनो ऽयं निर्मन्थेद्यदुदरे ऽनारब्धो ऽस्य यज्ञो भवति।— वैखानस.श्रौ.सू.१.१

९३.--- --- मध्य उपयमनमुदरो ऽभितो ऽभ्रः श्रोणी----तस्मिन्सर्वं रज्जुमयं दधाति तान्यन्त्राणि।— वैखानस श्रौ.सू.१३.१७

## उदान

१. अथ पिनष्टि-प्राणाय त्वोदानाय त्वा व्यानाय त्वा दीर्घामनुप्रसितिमायुषे धाम्-इति।---शतपथ ब्राह्मण १.२.१.१९

२. स यदाह-प्राणाय त्वोदानाय त्वेति, तत्प्राणोदानौ दधाति।---- श.ब्रा.१.२.१.२१

३. द्रव्य संस्कारः। स्रुचां वेदेन सम्मार्जनं : स वा इत्यग्रैरन्तरतः सम्मार्ष्टि, इति मूलैर्बाह्यतः। इतीव वा अयं प्राणः, इतीवोदानः। प्राणोदानावेवैतद्दधाति। तस्मादितीवेमानि लोमानि, इतीवेमानि।— श.ब्रा.१.३.१.७

४. यद्वेवेति च प्रेति चान्वाह। प्रेति वै प्राणः, एत्युदानः; प्राणोदानावेवैतद्दधाति।----प्रेति वै रेतः सिच्यते, एति प्रजायते। ---— श.ब्रा.१.४.१.५

५. शान्ति कर्म : प्राणो वै प्रवान्,----- -अपानो वा एतवान्,----। बृहच्छोचा यविष्ठ्य इति। उदानो वै बृहच्छोचाः, उदानमेवैतया समिन्धे।— श.ब्रा.१.४.३.३

६. यदि तृतीयस्यामनुव्याहरेत्, तं (शत्रुं)प्रति ब्रूयात्-उदानं वा एतदात्मनोऽग्नावाधाः, उदानेनात्मन आर्तिमारिष्यसि इति।— श. ब्रा. १.४.३.१३

७. स होतुरिह निलिम्पति। तद्धोतौष्ठयोर्निलिम्पते-मनसस्पतिना ते हुतस्याश्नामीषे प्राणायेति। अथ होतुरिह निलिम्पति। तद्धोतौष्ठयोर्निलिम्पते-वाचस्पतिना ते हुतस्याश्नामि-ऊर्जे उदानाय इति।— श.ब्रा.१.८.१.१५

८. सोऽयं पुरुषेऽन्तः प्रविष्टस्त्रेधा विहितः-प्राण उदानो व्यान इति।— श.ब्रा.३.१.३.२०

९. ऐन्द्रः प्राणोऽअङ्गेऽअङ्गे निदीध्यद्। ऐन्द्र उदानोऽअङ्गेऽअङ्गे निधीतः इति। यदङ्गशो विकृत्तो भवति-तत् प्राणोदानाभ्यां सन्दधाति।— श.ब्रा. ३.८.३.३७

१०. दश पाण्या अंगुलयः, दश पाद्याः, दश प्राणाः, प्राण उदानो व्यानः-इत्येतावान्वै पुरुषो-यः पराद्धर्यः पशूनाम्-सर्वेऽनु पशवः।— श.ब्रा.३.८.४.१

११. अथ ग्रहयागाः :- ----तत्रायमुपांशुग्रहः। प्राणो ह वाऽअस्योपांशुः, व्यान उपांशुसवनः, उदान एवान्तर्यामः।— श. ब्रा. ४.१.१.१

१२. अन्तर्यामग्रहः :- प्राणो ह वाऽअस्योपांशुः, व्यान उपांशुसवनः, उदान एवान्तर्यामः। अथ यस्मादन्तर्यामो नाम। यो वै प्राणः स उदानः स व्यानः। तमेवास्मिन्नेतत्पराञ्चं प्राणं दधाति; यदुपांशुं गृह्णाति-तमेवास्मिन्ने-तत्प्रत्यञ्चमुदानं दधाति यदन्तर्यामं गृह्णाति। सोऽ-स्यायमुदानोऽन्तरात्मन्-यतस्तद्यदस्यैषोऽन्तरात्मन्-यतः। यद्वाएनेनेमाः प्रजा यताः। तस्मादन्तर्यामो नाम। तमन्तः पवित्राद् गृह्णाति। प्रत्यञ्चमेवास्मिन्नेतदुदानं दधाति सोस्यायमुदानो-ऽन्तरात्मन् हितः। एतेनो हास्याप्युपांशुरन्तः पवित्राद्गृहीतो भवति। समानं ह्येतद्-यदुपाश्वन्तर्यामौ-प्राणोदानौ हि।— श. ब्रा. ४.१.२.१

१३. प्राणोदानौ ह वाऽअस्यैतौ ग्रहौ। तयोरुदितेऽन्यतरं जुहोति-अनुदितेऽन्यतरम्। प्राणोदानयोर्व्याकृत्यै। प्राणोदानावेवैतद् व्याकरोति। तस्मादेतौ समानावेव सन्तौ नानेवाचक्षते-प्राण इति चोदान इति च।— श.ब्रा.४.१.२.११

१४. तद् यदेनेनेमाः प्रजाः प्राणत्यश्चोदनत्यश्चान्तरिक्षमनुचरन्ति-तेन वैश्वदेवः।— श.ब्रा.४.१.२.१६

१५. तं गृहीत्वा परिमार्ष्टि। नेद्व्यवश्चोतदिति। तं न सादयति। उदानो ह्यस्यैषः। तस्मादयमसन्न उदानः संचरति। यदीत्त्वभिचरेद्-अथैनं सादयेद्। अमुष्य त्वोदानं सादयामीति।— श.ब्रा.४.१.२.१७

१६. समानं ह्येतद्-यदुपांश्वन्तर्यामौ-प्राणोदानौ हि।— श.ब्रा.४.१.२.१८

१७. ताऽउ ह चरकाः-नानैव मन्त्राभ्यां जुह्वति। प्राणोदानौ वा अस्यैतौ नानावीर्यौ। प्राणोदानौ कुर्म इति वदन्तः। तदु तथा न कुर्यात्। मोहयन्ति ह ते यजमानस्य प्राणोदानौ।— श.ब्रा.४.१.२.१९

१८. किमु तत्तूष्णीं जुहुयात्। समानं ह्येतद्-यदुपांश्वन्तर्यामौ-प्राणोदानौ हि।— श.ब्रा.४.१.२.२०

१९. अथात्र नीचा पाणिना मध्यमे परिधौ प्रत्यगुपमार्ष्टि। प्रत्यञ्चमेवास्मिन्नेतदुदानं दधाति।— श.ब्रा.४.१.२.२३

२०. तं प्रत्याक्रम्य सादयति। उदानाय त्वा इति। उदानो ह्यस्यैषः। तानि वै संस्पृष्टानि सादयति। प्राणोदानानेवैतत्संस्पर्शयति। प्राणोदानान्त्सन्दधाति।— श.ब्रा.४.१.२.२४

२१. इयं ह वाऽउपांशुः। प्राणो ह्युपांशुः। इमां ह्येव प्राणन्नभिप्राणिति। असावेवान्तर्यामः। उदानो ह्यन्तर्यामः। अमुं ह्येव लोकमुदनन्नभ्युदनिति।— श.ब्रा.४.१.२.२७

२२. यदि सावित्रमन्तर्यामपात्रेण गृह्णीयाद्-उपांशुपात्रेणैतम्। समानं ह्येतत्-यदुपांश्वन्तर्यामौ। प्राणो हि। यो वै प्राणः स उदानः। वृषा वै प्राणः, योषा पत्नी। मिथुनमेवैतत्प्रजननं क्रियते।— श.ब्रा.४.४.२.१०

२३. पात्रावकाशमन्त्राः :- अथान्तर्यामम्-उदानाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व इति।— श.ब्रा.४.५.६.२

२४. प्राणो वै वायुः। नियुत्वते भवति। उदानो वै नियुतः। प्राणोदानावेवास्मिन्नेतद्दधाति।— श. ब्रा. ६.२.२.६,७

२५. त्रयो वै प्राणाः-प्राण उदानो व्यानः। तानेवास्मिन्नेतद्दधाति।— श.ब्रा.६.४.२.५

२६. सैषा त्रेधा विहिता वागनुष्टुप्। तामेषोऽग्निः प्राणो भूत्वाऽनुसञ्चरति। य आहवनीयेऽग्निः-स प्राणः, सोऽसावादित्यः।----अथ यो गार्हपत्येऽग्निः-स उदानः।— श. ब्रा. ७.१.२.२१

२७. स्वयमातृण्णेष्टकोपधानम् : विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय इति। प्राणो वै स्वयमातृण्णा सर्वस्माऽउ वाऽएतस्मै प्राणः।— श.ब्रा.७.४.२.८

२८. तद्याः पुस्तादुपदधाति-ताः प्राणभृतः।---- अथ याः उत्तरतः-ताः श्रोत्रभृतः, ता उदानभृतः। श.ब्रा.८.१.३.६

२९. तदु ह चरकाध्यर्यवः-अन्या एवापानभृतो व्यानभृत उदानभृतः समानभृतः, चक्षुर्भृतो मनोभृतः श्रोत्रभृतो वाग्भृत-इत्युपदधाति। न तथा कुर्यात्। — श.ब्रा. ८.१.३.७

३०. अथ दक्षिणत उपधायोत्तरत उपदधाति। व्यानो होदानो भूत्वाऽऽङ्गुल्यग्रेभ्य इति संचरति। उदान उ ह व्यानो भूत्वाऽऽङ्गुल्यग्रेभ्य इति सञ्चरति।— श.ब्रा.८.१.३.९

३१. स्वयमातृण्णेष्टकोपधानम् : विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय इति। प्राणो वै स्वयमातृण्णा।— श.ब्रा.८.३.१.१०

३२. तिसृभिरस्तुवत-इति। त्रयो वै प्राणाः-प्राणः, उदानः, व्यानः।— श.ब्रा.८.४.३.४

३३. चत्वारिंशच्छन्दस्येष्टकोपधानम् : ककुप्छन्दः-इति। प्राणो वै ककुप्छन्दः। त्रिककुप्छन्द इति। उदानो वै त्रिककुप्छन्दः।— श.ब्रा.८.५.२.४

३४. तद्याः पुरस्तादुपदधाति-प्राणस्तासां प्रथमा, व्यानो द्वितीया, उदानस्तृतीया। उदानश्चतुर्थी, व्यानः पञ्चमी, प्राणः षष्ठी। प्राणः सप्तमी, व्यानोऽष्टमी, उदानो नवमी। यजमान एवात्र दशमी।— श.ब्रा.८.५.२.७

३५. पुरीष निवपनम्:विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय इति। प्राणो वै स्वयमातृण्णा।— श.ब्रा.८.७.३.१९

३६. वातहोमः :- त्रयो वै प्राणाः-प्राण उदानो व्यानः। तैरेवैनमेतद्युनक्ति।— श.ब्रा.९.४.२.१०

३७. चतुर्थीं चितिं चिनोति-सा हास्यैषोदान एव। तद्वै तदमृतम्। अमृतं ह्युदानः।— श. ब्रा. १०.१.४.५

३८. अथाध्यात्मम्। उदान एव पूर्णमाः। उदानेन ह्ययं पुरुषः पूर्यत इव। प्राण एव दर्शः। ददृश इव ह्यं प्राणः। तदेतावन्नादश्चान्नप्रदश्च दर्शपूर्णमासौ। प्राण एवान्नादः। प्राणेन हीदमन्नमद्यते। उदान एवान्नप्रदः। उदानेन हीदमन्नं प्रदीयते।— श. ब्रा. १०.२.४.६

३९. प्राण उदानमप्यगात्-इति गार्हपत्य आहुतिं जुहुयाम्। सैव प्रायश्चित्तिः।— श.ब्रा.११.५.३.८

४०. उदानः प्राणमप्यगात्-इत्याहवनीय आहुतिं जुहुयाम्। सैव प्रायश्चित्तिः।— श.ब्रा.११.५.३.९

४१. उपनयनधर्माभिधायकं ब्राह्मणम् : त्रयो वै प्राणाः। प्राण उदानो व्यानः। तानेवास्मिंस्तद्दधाति। अथार्द्धर्चशः। द्वौ वा इमौ प्राणौ। प्राणोदानावेव। प्राणोदानावेवास्मिंस्तद्दधाति। अथ कृत्स्नाम्। एको वा अयं प्राणः कृत्स्न एव।— श.ब्रा.११.५.४.१५

४२. सर्वप्राश्चित्तविधायकं ब्राह्मणं : अथ मनो ह वा अंशुः, वागदाभ्यः। प्राण एवांशुः, उदानोऽदाभ्यः।— श.ब्रा.११.५.९.२

४३. पशुदेवताविकल्पाभिधायकं ब्राह्मणम् : तं प्राची दिक् प्राणेत्यनुप्राणत्,----- -तमुदीची दिगुदानेत्यनुप्राणत् उदानमेवास्मिंस्तददधात्।— श. ब्रा. ११.८.३.६

४४. गवामयनीय संवत्सरस्य पुरुषविधोपासनम् : उदान एवोदयनीयोऽतिरात्रः। उदानेन ह्युद्यंति। स एष संवत्सरोऽध्यात्मं प्रतिष्ठितः।— श.ब्रा.१२.२.४.१६

४५. तिसृभिस्तिसृभिः पावयन्ति। त्रयो वै प्राणाः। प्राण उदानो व्यानः।— श.ब्रा.१२.८.१.११

४६. सौत्रामण्यां सोमसम्पत्तिः :- त्रेधाविहितो वा अयं प्राणः। प्राण उदानो व्यान इति। यथारूपमेवास्मिन् प्राणं दधाति।— श. ब्रा. १२.८.२.२७

४७. घर्मसन्दीपनं ब्राह्मणम् : प्राणो वै मधु। प्राणमेवास्मिन्नेतद्दधाति। त्रीणि भवंति। त्रयो वै प्राणाः। प्राण उदानो व्यानः। तानेवास्मिन्नेतद्दधाति।— श.ब्रा. १४.१.३.३०

४८. प्रवर्ग्येऽवकाशोपस्थानं ब्राह्मणम्: ते वा एते त्रयोऽवकाशा भवंति। त्रयो वै प्राणाः-प्राण उदानो व्यानः।— श.ब्रा.१४.१.४.७

४९. घर्मोद्वासनं : प्राणा वै धवित्राणि-- -त्रयो वै प्राणाः। प्राण उदानो व्यानः।— श.ब्रा.१४.३.१.२१

५०. सप्तान्नब्राह्मणं वा संवर्गविद्याब्राह्मणम्: यः कश्च शब्दः। वागेव सा। एषा हि अंतमायत्ता। एषा हि न प्राणोऽपानो व्यान उदानः समानः। अन इति एतत्सर्वं प्राण एव।— श.ब्रा.१४.४.३.१०

५१. उषस्तब्राह्मणं वा निर्गुणात्मविद्याब्राह्मण् :--- ---- -स त आत्मा सर्वांतरः। य उदानेनोदनिति, स त आत्मा सर्वांतरः। यः समानेन समानिति-- -। श.ब्रा. १४.६.५.१

५२. शाकल्यब्राह्मणग्रन्थो वा शाकल्यब्राह्मणम् : कस्मिन्नु व्यानः प्रतिष्ठित इति। उदान इति। कस्मिन्नूदानः प्रतिष्ठित इति। समान इति।— श.ब्रा.१४.६.९.२७

५३. अथ यद् द्वितीयं प्राश्नाति तेनोदानापानौ तृप्यतः। तम् उदानापानाव् आहतुश् श्रद्धा ते मा विगात् सर्वैः कामैस् तृप्य स्वर्गं लोकम् आप्नुहीति।— जैमिनीय ब्राह्मण १.४१

५४. तस्माद् एतेनैकम् एव प्राणेन करोति यद् एव प्राणान् उदन्तो ऽनूदनिति।— जै.ब्रा.१.१२७

५५. स यथाक्रमणाद् आक्रमणम् आक्रम्योदन्यात् तादृक् तत्।— जै.ब्रा.१.१३९

५६. प्राणव्यानोदाना ह खलु वा एतानि सामानि। प्राण एव रथन्तरं व्यानो वामदेव्यम् उदानो बृहत्। तस्माद् एवम् एव कार्यं प्राणव्यानोदानानां संतत्या अव्यवच्छेदायेति।— जै.ब्रा.१.२२९

५७. तस्माद् एतेनैकम् एव प्राणेन करोति यद् एव प्राणान् उदनतो ऽनूदनिति।— जै.ब्रा.१.२५४

५८. मन एव महाव्रतीयम् अहः। उदान एवोदयनीयो ऽतिरात्रः।— जै.ब्रा.२.५८

५९. अथ यद् ऊर्ध्वं श्रोत्राभ्यां तद् उत्तरो ऽतिरात्रः। प्राण एव पूर्वो ऽतिरात्र, उदान उत्तरः। तौ प्रायणीयोदयनीयाव् इति परोक्षम् आचक्षते।— जै.ब्रा.३.३१९

६०.-----ताभ्यो ऽवर्षत्। तत ओदनो ऽजायत। तम् अशित्वोदानन्। स उदनो ऽभवत्। तद् उदनस्योदनत्वम्। उदनो ह वै नामैष। तम् ओदन इति परोक्षम् आचक्षते।— जै.ब्रा.३.३४६

६१. प्राणो वै संवत्सर उदाना मासा यदुत्सृजन्ति प्राण एवोदानान्दधति यो दीक्षितः प्रमीयते या संवत्सरस्यानुत्सृष्टस्य शुक्सा तमृच्छति।— ताण्ड्य ब्राह्मण ५.१०.३

६२. प्राणो वै प्रायणीय उदान उदयनीयः समानो होता भवति समानौ हि प्राणोदानौ प्राणानां क्लृप्त्यै प्राणानां प्रतिप्रज्ञात्यै।— ऐतरेय ब्राह्मण १.७

६३. यो वै संवत्सरस्य प्राणोदानौ वेद स वै स्वस्ति संवत्सरस्य पारमश्नुतेऽतिरात्रो वा अस्य प्रायणीयः प्राण उदान उदयनीयः।— ऐ.ब्रा.४.१४

६४. मुखं महाव्रतम्। तस्योदान एवोदयनीयोऽतिरात्रः। उदानेन ह्युद्यन्ति।— गोपथ ब्राह्मण १.५.४

६५. यावन्तः समाना पञ्चदशकृत्वस्तावन्त उदानाः। यावन्त उदानाः पञ्चदशकृत्वस्तावन्त्येतादीनि।--- गो.ब्रा.१.५.५

६६. ओदन प्रकरणम् :------ प्राणापानौ मे पाहि, समानव्यानौ मे पाह्युदानरूपे मे पाहि।— गो.ब्रा.२.१.७

६७. छन्दसामु ह षष्ठेनाह्नाक्तानां रसो ऽत्यनेदत्। तं प्रजापतिरुदानाद् नाराशंस्या गायत्र्या रैभ्या त्रिष्टुभा परिक्षित्या जगत्या गाथयानुष्टुभा।— गो.ब्रा.२.६.११

६८. वाचे पुरुषमालभते। प्राणमपानं व्यानमुदानँ समानं तान्वायवे।— तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.४.१८.१

६९. अथाध्यात्मम्। प्राणो व्यानोऽपान उदानः समानः। चक्षुः श्रोत्रं मनो वाक्त्वक्। चर्म माँसँ स्नावास्थि मज्जा-— तैत्तिरीय आरण्यक ७.७.१

प्राणाहुति मन्त्राः :- ---उदाने निविष्टोऽमृतं जुहोमि। उदानाय स्वाहा।- — तै.आ.१०.३३.१

७०. प्राणाहुतिषु विकल्पितानि मन्त्रान्तराणि : उदाने निविष्टोऽमृतं जुहोमि। शिवो मा विशाप्रदाहाय। उदानाय स्वाहा।— तै.आ.१०.३४.१

७१. भुक्तस्यानुमन्त्रणे मन्त्रम् :-- -उदाने निविश्यामृतँ हुतम्। उदानमन्नेनाऽऽप्यायस्व। — तै. आ. १०.३६.१

७२. प्राणाहुति मन्त्राः :- श्रद्धायामुदाने निविष्टोऽमृतं जुहोमि।— तै.आ.१०.६९.१

७३. स एष वायुः पञ्चविधः प्राणोऽपानो व्यान उदानः समानः।-ऐ.आ.२.३.३

७४. अन्वाहार्य पचनम् :- ---प्राणापानौ मे पाहि समानव्यानौ मे पाह्युदानव्यानौ मे पाह्यक्षितोऽसि---। तैत्तिरीय संहिता १.६.३.३

७५. स्वयमातृण्णादीष्टकोपधानम् :--पृथिवीं मा हिँसीर्विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय---तै. सं. ४.२.९.१

७६. तृतीय चितौ स्वयमातृण्णादीष्टकाभिधानम् : अन्तरिक्षं मा हिँसीर्विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय-।— तै. सं. ४.३.६.१

७७. चोडाख्येष्टकाभिधानम् :----दिवं मा हिँसीर्विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय---।— तै.सं.४.४.३.३

७८. गवामयनस्य गुणविकाररूप उत्सर्गः :- यत्पौर्णमास्या मासान्त्संपाद्याहरुत्सृजन्ति संवत्सरायैव तदुदानं दधति— तै.सं.७.५.६.२

७९. अथैकयोर्ध्व उदानः पुण्येन पुण्यं लोकं नयति पापेन पापमुभाभ्यामेव मनुष्यलोकम्।-----तेजो ह वा उदानस्तस्मादुपशान्ततेजाः।— प्रश्नोपनिषद ३.७

८०. मनो ह वाव यजमान इष्टफलमेवोदानः स एनं यजमानमहरह गमयति।— प्रश्नोपनिषद ४.४

८१. अथाध्यात्मम्। प्राणो व्यानोऽपान उदानः समानः। चक्षुः श्रोत्रं मनो वाक् त्वक्। चर्म माँसँ स्नावास्थि मज्जा।— तैत्तिरीयोपनिषद ९.७.१

८२. अथ योऽस्योर्ध्वः सुषिः स उदानः स वायुः स आकाशस्तदेतदोजश्च महश्चेत्युपासीतौजस्वी महस्वान्भवति य एवं वेद।-छान्दोग्योपनिषद ३.१३.४

८३. अथ यां पञ्चमीं जुहुयात्तां जुहुयादुदानाय स्वाहेत्युदानस्तृप्यति। उदाने तृप्यति त्वक् तृप्यति त्वचि तृप्यन्त्यां वायुस्तृप्यति-— छान्दोग्योपनिषद ५.२३.१

८४. यः कश्च शब्दो वागेव सैषा ह्यन्तमायत्तैषा हि न प्राणोऽपानो व्यान उदानः समानोऽन इत्येतत्सर्वं प्राण एव।— बृहदारण्यकोपनिषद१.५.३

८५. -- -स त आत्मा सर्वान्तरो य उदानेनोदानिति स त आत्मा सर्वान्तर एष त आत्मा सर्वान्तरः।— बृहदारयक उपनिषद ३.४.१

८६.--- -कस्मिन्नु व्यानः प्रतिष्ठित इत्युदान इति कस्मिन्नूदानः प्रतिष्ठित इति समान इति स एष नेति नेति- ---।— बृहदारण्यक उपनिषद ३.९.२६

८७. प्राण आद्यो हृदि स्थाने अपानस्तु पुनर्गुदे। समानो नाभिदेशे तु उदानः कण्ठमाश्रितः।------ अपाण्डुर उदानश्च व्यानो ह्यर्चिःसमप्रभः।— अमृतनादोपनिषद ३५

८८. स एको नाशकत्स पञ्चधात्मानं विभज्योच्यते यः प्राणोऽपानः समान उदानो व्यान इति।---- -उत्तरं व्यानस्य रूपं चैतेषामन्तरा प्रसूतिरेवोदानस्याथ योऽयं पीताशितमुद्गिरति निगिरतीति वैष वाव स उदानः।— मैत्रायण्युपनिषद २.६

८९. प्राणाय स्वाहाऽपानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा समानाय स्वाहोदानाय स्वाहेति पञ्चभिरभिजुहोति।— मैत्रायण्युपनिषद ६.९

९०. प्राणोऽग्निस्तस्येमा इष्टका यः प्राणो व्यानोऽपानः समान उदान स शिरः पक्षसीपृष्ठपुच्छवानेषोऽग्निः पुरुषविदः।— मैत्रायण्युपनिषद ६.३३

९१. मित्रावरुणौ पंक्तिस्त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ शाक्वररैवते हेमन्तशिशिरा उदानोऽङ्गिरसश्चन्द्रमा ऊर्ध्वा उद्यन्ति तृपन्ति वर्षन्ति— मैत्रायण्युपनिषद ७.५

९२.---यो वरुणमेवास्तमेति सौम्यामेवाप्येति यः सौम्यामेवास्तमेत्युदानमेवाप्येति य उदानमेवस्तमेति विज्ञानमेवाप्येति तदमृत ० होवाच।— सुबालोपनिषद ९

९३. योऽयं विज्ञानघन उत्क्रामन्प्राणं दहत्यपानं व्यानमुदानं समानं वैरम्भं मुख्यमन्तर्यामं--- सुबालोपनिषद १५

९४. सुषुम्ना मध्यदेशे तु प्राणमार्गास्त्रयः स्मृताः। प्राणोऽपान समानश्चोदानो व्यानस्तथैव च।--।— ध्यानबिन्दूपनिषद ५६

९५. वकारं जीवबीजं च उदानं शङ्खवर्णकम्।— ध्यानबिन्दूपनिषद ९६

९६. प्राणोऽपान समानश्चोदानव्यानौ च वायवः। पञ्चकर्मेन्द्रियैर्युक्ताः क्रिया-शक्तिबलोद्यताः।— ब्रह्मविद्योपनिषद ६७

९७. प्राणापानौ समानश्च उदानो व्यान एव च। नागः कूर्मश्च कृकरो देवदत्तो धनंजयः। चरन्ति दशनाडीषु दश प्राणादिवायवः।— त्रिशिखब्राह्मणोपनिषद २.७६

९८. समानः सर्वगात्रेषु सर्वव्यापी व्यवस्थितः। उदानः सर्वसन्धिस्थः पादयोर्हस्तयोरपि। व्यान— त्रिशिखब्राह्मणोपनिषद २.८०

९९. प्राणापानादिचेष्टादि क्रियते व्यानवायुना। उज्जीर्यते शरीरस्थमुदानेन नभस्वता।— त्रिशिखब्राह्मणोपनिषद २.८४

१००. समानो नाभिदेशे तु उदानः कण्ठमध्यगः। व्यानः सर्वशरीरे तु प्रधानाः पञ्च वायवः।— योगचूडामण्युपनिषद२४

१०१. आदित्यो वै व्यानः समानोदानोऽपानः प्राणः।— सूर्योपनिषद

१०२. प्राणोऽपानस्तथा व्यानः समानोदान एव च। नागः कूर्मश्च कृकरो देवदत्तो धनंजयः। एते नाडीषु सर्वासु चरन्ति दश वायवः।— जाबालदर्शनोपनिषद ४.२३

१०३.---- उदानसंज्ञो विज्ञेयः पादयोर्हस्तयोरपि। समानः सर्वदेहेषु व्याप्य तिष्ठत्यसंशयः।— जाबालदर्शनोपनिषद ४.२९

१०४. समान सर्वसामीप्यं करोति मुनिपुङ्गव। उदान ऊर्ध्वगमनं करोत्येव न संशयः। व्यानो विवादकृत्प्रोक्तो मुने वेदान्तवेदिभिः।— जाबालदर्शनोपनिषद ४.३२

१०५. प्राणाय स्वाहा। अपानाय स्वाहा। व्यानाय स्वाहा। समानाय स्वाहा। उदानाय स्वाहा इति कनिष्ठिकाङ्गुल्याङ्गुष्ठेन च प्राणे जुहोमि। अनामिकयाऽपाने। मध्यमया व्याने। सर्वाभिरुदाने।— प्राणाग्निहोत्रोपनिषद १.१

१०६. अस्य शारीरयज्ञस्य---- -समानो मैत्रावरुणः। उदान उद्गाता। शरीरं वेदिः।---- - प्राणाग्निहोत्रोपनिषद ४.१

१०७. उदानमूर्ध्वगं कृत्वा प्राणेन सह वेगतः। बन्धोऽयं सर्वनाडीनामूर्ध्वं याति निरोधकः।— वराहोपनिषद ५.४४

१०८. प्रायश्चित्तम् : अथापरं प्रजापतेर्भागोऽस्यूर्जस्वान् पयस्वान्। अक्षितोऽस्यक्षित्यै त्वा। प्राणापानौ मे पाहि समानव्यानौ मे पाह्युदानरूपे मे पाहि।— द्राह्यायण श्रौत सूत्र १२.३.२२

१०९. प्रातः-सायं कर्म : होम्यमुपसाद्य। प्राणापानाभ्यां स्वाहा समानव्यानाभ्यां स्वाहोदानरूपाभ्यां स्वाहेत्यात्मन्येव जुहुयात्।— कौशिक सूत्र ७२.४२

११०. इळोपह्वानम् : वाचस्पतिना ते हुतस्य प्राश्नामीषे प्राणायेति पूर्वमञ्जनमधरौष्ठे निलिम्पति। मनसस्पतिना ते हुतस्य प्राश्नाम्यूर्ज उदानायेत्युत्तरौष्ठ उत्तरम्।— शांखायन श्रौत सूत्र१.१०.२

१११. यदि होमकाले प्राण उदानमप्यगादिति गार्हपत्ये जुहुयात्। यदि गार्हपत्य उदानः प्राणमप्यगादित्याहवनीये। यदि दक्षिणाग्निर्व्यान उदानमप्यगादित गार्हपत्ये।— आपस्तम्ब श्रौत सूत्र ९.१०.४

११२. दर्शपूर्ण मासः- अन्वाहार्य-मभिघार्योद्वास्यान्तरा प्रजापतेर्भागोऽस्यूर्जवान् पयस्वान् प्राणापानौ मे पाहि समानव्यानौ मे पाह्युदानव्यानौ मे पाह्यूर्गस्यूर्जं मयि धेहि-— कात्यायन श्रौत सूत्र ३.४.२७

११३. सत्राणि : अग्निहोत्र आसन्नेषु चेत्पात्रेष्वाहवनीयोऽनुगच्छेद्गार्हपत्ये जुहुयात्प्राण उदानमप्यगादिति। गार्हपत्यश्चेदाहवनीय उदानः प्राणमप्यगादिति। दक्षिणाग्निश्चेद्गार्हपत्ये व्यान उदानमप्यगादिति।— कात्यायन श्रौत सूत्र २५.१०.१७

११४. सोमयागः - अभिचरन्त्सादयेद-विसृजन्नमुष्य त्वा प्राणं सादयामीति। उदानमित्यन्तर्याम्। पाणिना चापिदधात्यमुष्य त्वा प्राणमपिदधामीति उदानमित्यन्तर्यामम्।— कात्यायन श्रौत सूत्र ९.४.२७

## उद्गाता

१. उद्गातेव शकुने साम गायसि ब्रह्मपुत्र इव सवनेषु शंससि। वृषेव वाजी शिशुमतीरपीत्या सर्वतो नः शकुने भद्रमा वद विश्वतो नः शकुने पुण्यमा वद।।— ऋ. २.४३.२

२. बृहस्पतिरभिकनिक्रदद्गा उत प्रास्तौदुच्च विद्वाँ अगायत्।— ऋ. १०.६७.३

३. तस्मा उषा हिङ्कृणोति सविता प्र स्तौति बृहस्पतिरूर्जयोद्गायति त्वष्टा पुष्ट्या प्रति हरति विश्वे देवा निधनम्।-------तस्मा उद्यन्त्सूर्यो हिङ्कृणोति संगवः प्र स्तौति मध्यंदिन उद्गायत्यपराह्णः प्रति हरत्यस्तंयन् निधनम्।-- -तस्मा अभ्रो भवन् हिङ्कृणोति स्तनयन् प्र स्तौति विद्योतमानःप्रति हरति वर्षन्नुद्गायत्युउद्गृह्णन् निधनम्।-----अतिथीन् प्रति पश्यति हिङ्कृत्यभि वदति प्र स्तौत्युदकं याचत्युद्गायति। उप हरति प्रति हरत्युच्छिष्टं निधनम्।— अथर्ववेद ९.१०.१

४. महाव्रत स्तोत्र : आसन्दीमारुह्योद्गायति देवसाक्ष्य एव तदुपरिषद्यं जयति।---सर्वेणात्मना समुद्धृत्योद्देयमेषु लोकेषु नेद्वयाहितोऽसानीति।-— ताण्ड्य ब्रा.५.५.१

५. अध्वर्य्युः शिरसोद्गायेन्मैत्रावरुणो दक्षिणेन पक्षेण ब्राह्मणाछंस्युत्तरेण गृहपति पुछेनोद्गातात्मना।— तां. ब्रा. ५.६.२

६. तिसृभिरुद्गातात्मनउद्गीयाथ या शिरसः स्तोत्रीया तां दध्यादपराभिस्तिसृभिरुद्गीयाथ या दक्षिणस्य पक्षस्य स्तोत्रीया तान्दध्यादपराभिस्ति-सृभिरुद्गीयाथ योत्तरस्य पक्षस्य स्तोत्रीया तान्दध्यात्तिसृभिर्वैकया वा स्तुतं स्यादथ या पुच्छस्य स्तोत्रीया तान्दध्यात्। आत्मन्येव तदङ्गानि प्रतिदधति स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै।— तां. ब्रा. ५.६.४

७.----तेन पुनः प्रसृप्य यथायतनमुपविश्या-सन्दीमारुह्योद्गातात्मनोद्गायति।— तां.ब्रा. ५.१.६७

८. अथो खल्वाहुः कथमध्वर्य्यु र्बह्वृचः साम गायदित्युद्गातैव सर्वेणोद्गायेत्तदेव समृद्धं समृद्धावेव प्रतितिष्ठन्ति।--— तां. ब्रा. ५.६.७

९. प्राजापत्यो वा उदुम्बरः प्राजापत्य उद्गाता यदुद्गातौदुम्बरीं प्रथमेन कर्म्मणान्वारभते स्वयैव तद्देवतयात्मानमार्त्विज्याय वृणीते।-------उद्गाता द्वारा औदुम्बरी स्थापना का वर्णन-— तां.ब्रा.६.४.१

१०. उदङ्ङासीन उद्गायत्युदीचीन्तद्दिशमूर्ज्जा भाजयति प्रत्यङ्ङासीनः प्रस्तौति प्रतीचीन्तद्दिशमूर्ज्जा भाजयति दक्षिणासीनः प्रतिहरति दक्षिणान्तद्दिशमूर्ज्जा भाजयति प्राञ्चोऽन्य ऋत्विज आर्त्विज्यं कुर्व्वन्ति----- तां.ब्रा. ६.४.१४

११. द्रोणकलशस्य प्रोहणं : यदाह बार्हस्पत्य द्रोणकलश इति बृहस्पतिर्वै देवानामुद्गाता तमेव तद्युनक्ति।— तां.ब्रा. ६.५.५

१२. यत् द्रोणकलशमुपसीदन्ति तेनोद्गातारो वृताः। प्राजापत्या वा उद्गातारः प्राजापत्यो द्रोणकलशो द्रोणकलश एवैनानार्त्विज्याय वृणीते। तां.ब्रा ६.५.१७

१३. अनभिजिता वा एषोद्गातृणां दिग्यत्प्राची यत् द्रोणकलशं प्राञ्चं प्रोहन्ति दिशोऽभिजित्यै। — तां.ब्रा. ६.५.२०

१४. यन्नवित्याहुरन्तराश्वः प्रासेवौ युज्यतेऽन्तरा शम्य अनड्वान्क उद्गातृणां योग इति यत् द्रोणकलशमुपसीदन्ति स एषां योगः— तां.ब्रा. ६.५.२१

१५. यजमान के पापों अथवा भद्र आदि की कामना के अनुसार उद्गाता द्वारा ग्रावों पर द्रोणकलश स्थापित करने की विधि का वर्णन— तां.ब्रा.६.६.१

१६. एतद्वा उद्गातृणां हस्तकार्य्यं यत्पवित्रस्य विग्रहणं।------— तां.ब्रा. ६.६.१२

१७. प्र शुक्रैतु देवी मनीषास्मद्रथः सुतष्टो न वाजीत्युद्गाता धारामनुमन्त्रयते।-— तां.ब्रा. ६.६.१६

१८. बृहस्पतिर्वै देवानामुदगायत्तं रक्षांस्यजिघांसन् स य एषां लोकानामधिपतयस्तान् भागधेयेनोपाधावत्।------— तां.ब्रा. ६.७.१

१९. वाग्वै देवेभ्योऽपाक्रामत्तां देवा अन्वमन्त्रयन्त सा ऽब्रवीदभागास्मि भागधेयम्मेऽस्त्विति कस्ते भागधेयं कुर्य्यादित्युद्गातार इत्यब्रवीदुद्गातारो वै वाचे भागधेयं कुर्वन्ति।-— तां.ब्रा. ६.७.५

२०. यद्युद्गातावच्छिद्यते यज्ञेन यजमानो वृध्यतेऽदक्षिणः स यज्ञक्रतुः संस्थाप्योऽथान्य आहृत्यस्तस्मिन्देयं यावद्दास्यन् स्यात्। — तां.ब्रा.६.७.१४

२१. प्रस्तरमासद्योद्गायेद्धविषोऽस्कन्दाय।-— तां.ब्रा. ६.७.२१

२२. वज्रेण वा एतत्प्रस्तोतोद्गातारमभिप्रवर्त्तयति यद्रथन्तरं प्रस्तौति समुद्रमन्तर्द्धायोद्गायेद्वागित्यादेयं वाग्वै समुद्रः समुद्रमेवान्तर्दधात्यहिंसायै।— तां.ब्रा. ७.७.९

२३. इयं (पृथिवी) वै देवरथ इमामालभ्योद्गायेन्नास्मादवपद्यते। ईश्वरं वै रथन्तरमुद्गातुश्चक्षुः प्रमथितोः प्रस्तूयमाने सम्मीलेत्स्वर्दृशं प्रतिवीक्षेत नैनञ्चक्षुर्जहाति।— तां.ब्रा. ७.७.१४

२४. प्रजननं वै रथन्तरं यत्तस्थुष इत्याह स्थायुकोद्गातुर्वाग् भवत्यपि प्रजननं हन्त्यस्थुष इति वक्तव्यं सुस्थुष इति वा स्थायुकोद्गातुर्वाग् भवति न प्रजननमपि हन्ति।— तां.ब्रा. ७.७.१६

२५. ध्रुव आसीनो वामदेव्येनोद्गायेत्पशूनामुप वृत्यै।--अन्तरिक्षं वै वामदेव्यमधून्वतेवोद्गेय-मधूतमिव ह्यन्तरिक्षं पशवो वै वामदेव्यमहिंसते वोद्गेयं पशूनामहिंसायै।— तां.ब्रा. ७.९.७

२६. एष वै यजमानस्य प्रजापतिर्यदुद्गाता यच्छ्यैतेन हिङ्करोति प्रजापतिरेव भूत्वा प्रजा अभिजिघ्रति— तां.ब्रा. ७.१०.१६

२७. एषा वै शिशुमारी यज्ञपथेऽप्यस्ता यज्ञायज्ञीयं यद्गिरागिरेत्याहात्मानं तदुद्गातागिरति। ऐरङ्कृत्वोद्गेयमिरायां यज्ञं प्रतिष्ठापयत्यप्रमायुक उद्गाता भवति।— तां.ब्रा. ८.६.९

२८. वैश्वानरे वा एतदुद्गातात्मानं प्रदधाति यत्प्रप्रवयमित्याह प्रप्रीं वयमिति वक्तव्यं वैश्वानरमेव परिक्रामति।— तां.ब्रा. ८.६.११

२९. वैश्वानरं वा एतदुद्गातानु प्रसीदन्नेतीत्याहु-र्य्यद्यज्ञायज्ञीयस्यर्च्चं संप्रत्याहेति परिक्रामतेवोद्गेयं वैश्वानरमेव परिक्रामति— तां.ब्रा. ८.७.५

३०. उद्गात्रा पत्नी संख्यापयन्ति रेतोधेयाय। हिङ्कारं प्रति संख्यापयन्ति हिङ्कृताद्धि रेतो धीयत। — तां.ब्रा. ८.७.१२

३१. सोमस्याभिदाहे प्रायश्चित्तं : यदि सोममभिदहेउद्गहानध्वर्य्युः स्पाशयेत स्तोत्राण्युदद्गाता शस्त्राणि होताथ— तां.ब्रा. ९.९.१५

३२.--- -यजमानं वा अनु प्रतितिष्ठन्तमुद्गाता प्रतितिष्ठति य एवं विद्वान् वैरूपेणोद्गायति।— तां.ब्रा. १२.४.९

३३. दक्षिण ऊरावुद्गातुरग्निम्मन्थन्ति दक्षिणतो हि रेतः सिच्यते।------— तां.ब्रा. १२.१०.१२

षोडशी ग्रहस्य दर्शनम् : त्रीणि ज्योतींषि सचते स षोडशीत्युद्गाता ग्रहमवेक्षते।— तां.ब्रा. १२.१३.३२

३४. साद्यस्क्री नामक पञ्चैकाहः :- आदित्याश्चाङिरसश्चादीक्षन्त ते स्वर्गे लोके ऽस्पर्द्धन्त तेऽङ्गिरस आदित्येभ्यः श्वः सुत्यां प्राब्रुवंस्त आदित्याः एतमपश्यं स्तं सद्यः परिक्रीयायास्यमुद्गातारं वृत्वा तेन स्तुत्वा स्वर्गं लोकमायन्नहीयन्ताङ्गिरसः।— तां.ब्रा. १६.१२.१

३५. स्रगुद्गातुः— तां.ब्रा. १८.३.२

३६. स्रगुद्गातुस्सौर्य्य उद्गाता न वै तस्मै व्यौछदथोव्येवास्मै वासयति।— तां.ब्रा. १८.९.८

३७. ऋत्विक् समानता : यो होता सोध्वर्युः स पोता य उद्गाता स नेष्टा सोच्छावाको-- — तां.ब्रा. २५.५.५

३८. सर्प सत्रस्य ऋत्विजाः :- ---धृतराष्ट्र ऐरावतो ब्रह्मा पृथुश्रवा दौरेश्रवस उद्गाता ग्लावश्चाजगावश्च प्रस्तोतृप्रतिहर्त्तारौ---— तां.ब्रा. २५.१५.३

३९. तपो गृहपतिर्ब्रह्म ब्रह्मेरापत्न्यमृतमुद्गाता भूतं प्रस्तोता भविष्यत्प्रतिहर्त्तार्त्तव उपगातार-- — तां.ब्रा. २५.१८.४

४०. स य एवं विद्वान् अग्निष्टोमेनोद्गायति प्राजाताः प्रजा जनयति परि प्रजाता गृह्णाति।— जै.ब्रा.१.६७

४१.---प्रजापतिर् उद्गाता प्राजापत्य उदुम्बरः। वृणुते ऽन्यान् ऋत्विजो नोद्गातारम्। यद् उद्गाता प्रथमेन कर्मणौदुम्बरीम् अन्वारभते स्वयैव तद् देवतयात्मानम् आर्त्विज्याय वृणीते।---— जै.ब्रा. १.७०

४२. प्रजापतिर् उद्गातोर्ग् उदुम्बरः। स एष ऊर्जि श्रितः प्रजापतिः प्रजाभ्य ऊर्जम् अन्नाद्यं विभजति। उदङ्ङ् आसीन उद्गायति। उदीचीम् एव तद् दिशम् ऊर्जा भाजयति। --------यद् उदीचीनदेवत्या उद्गातारो ऽथ कस्माद् विपर्यावृत्य दिश आर्त्विज्यं कुर्वन्तीत्य् आहुः। ब्रूयाद् दिशाम् अभिष्ट्यै दिशाम् अभिप्रेत्यै। तस्मात् सर्वासु दिक्ष्व् अन्नं विद्यत इति।---— जै.ब्रा. १.७२

४३.--- -अकर्म वयं तद् यद् अस्माकं कर्म इत्य् आह उद्गातारं पृच्छत इति। उद्गातः किं स्तुतं स्तोत्रं होता प्रातरनुवाकेनान्वशंसीत् इति। अकर्म वयं तद् यद् अस्माकं कर्म इति ब्रूयाद् अगासिष्म यद् अत्र गेयम् इति। तं यदि ब्रूयुः तमांसि वा अगासीर् न ज्योतींषि इति ज्योतींष्य् एवाहम् अगासिषम् इति ब्रूयात् न तमांसि इति।-- — जै.ब्रा. १.७६

४४. द्रोणकलशस्य प्रोहणम् : उद्गातार उद्गीथायाधोऽधोऽक्षं द्रोणकलशं प्रोहन्ति।----नाक्षम् उपस्पृशेत्।---- — जै.ब्रा. १.७७

४५. एतेनैवोद्गाताभिमृशति तनूपा असि तन्वं मे पाहि।---- — जै.ब्रा.१.७८

४६.-----स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शम् अर्वते। शं राजन्न् ओषधीभ्यः।। इति। शम् एवोद्गात्रे भवति शं यजमानाय शं प्रजाभ्यः।-- ---- -अथोद्गात्रैकर्चो गायत्रं गायति उच्चा ते जातम् अन्धसा इति। स उदित्येवेतो देवेभ्यो हव्यं वहति------ जै.ब्रा. १.८१

४७. देवक्षेत्रं वा एषो ऽध्यवस्यति यस् सोमस्योद्गायति।---- -सोमोद्गायोद्गाय सोम इत्य् आह। सोमो वै देवानां क्षेत्रपतिः। सोमायैव तद् देवानां क्षेत्रपतये प्रोच्योद्गायति नार्तिम् आर्छति।— जै.ब्रा. १.८४

४८. अध्वर्युः प्रथमस् सर्पति प्राणो यज्ञस्य।-- प्रस्तोता द्वितीयस् सर्पति मुखं साम्नः।-- -उद्गाता तृतीयस् सर्पति सर्वदेवत्यः प्रजापतिः। प्रतिहर्ता चतुर्थस् सर्पति तुरीयं साम्नः। यजमानः पञ्चमस् सर्पति। पांक्तो यज्ञः पांक्ताः पशवः।— जै.ब्रा. १.८५

४९. प्रजापतिर् एष यद् उद्गाता तम् एतत् प्रजा अन्नकाशिनीर् अभितस् समन्तं परिविशन्ति। ताभ्यो हिंकारेणैवान्नाद्यं सृजते। तद् ओंकारेण सृष्टं वारयते।-- — जै.ब्रा.१.८८

५०. प्रजापतिं कल्पयित्वोद्गायेत्। यो ह वै प्रजापतिं कल्पयित्वोद्गायति कल्पते ऽस्मै दिशः प्रदिश आदिशो विदिश उद्दिशो दिश इति।— जै.ब्रा. १.८९

५१. स्वरेण संपाद्योद्गायेत्। एतद् वै साम्नस् स्वं यत् स्वरः। स्वेनैवैनत् तत् समृद्धयति। एतद् वै साम्नो ऽन्नाद्यं यत् स्वराः। एतद् वै साम्न आयतनं यत् स्वरः।-- — जै.ब्रा. १.११२

५२. यो वा अंशुम् एकाक्षरं वेदान्नाद एव श्रेष्ठस् स्वानां भवति। अथो सह एव तस्यै जनताया उद्गायति। वाग् वा अंशुर् एकाक्षरः।-- ----एते ह वै रसदिहौ ये एते गायत्र्या उत्तमे अक्षरे। यस् ते उद्गायन्न् आरभते रसदिहाव् उरसि निमृदते।— जै.ब्रा.१.११४

५३. रथन्तरस्य महिम्नस् संभृत्य रथन्तरेणोद्गायेत् यस् ते अग्नौ महिमा यस् ते अप्सु रथे यस् ते महिमा-- ---- -। द्रविणस्वद् एवोद्गात्रे भवति द्रविणस्वद् यजमानाय---- — जै.ब्रा.१.१२८

५४. अनेजन्न् उद्गायेत् पशूनाम् अपरावापाय। यद् एजन्न् उद्गायेत् पशून् परावपेत्।----प्रावृत एवानेजन्न् उद्गायेत्।— जै.ब्रा.१.१३८

५५. अक्षं ह स्म वा एतत् पुरा विशश् शीर्षन् निदधति य एव तम् उद्गायन् नावपातयिष्यति स न उद्गास्यतीति। तद् उ तद् उपकार्यरूपम् एव। कामम् एवोद्गेयम्।— जै.ब्रा. १.१३९

५६.---प्रतिहार एव प्रतिह्रियमाणः वाक् इत्य् उद्गाता ब्रूयात्। वाग् वै ब्रह्म।-- — जै.ब्रा. १.१४०

५७. नार्मेधम् साम-- -यजमानस्य वै त उद्गातुः पुत्रौ पुत्रम् अमीमरताम् अन्तकधृतिं सौव्रतिं नकिरश् च शकपूतश् चेति।— जै.ब्रा.१.१७१

अथ ह हृत्स्वाशया आल्लकेयो महावृषो राजा पुत्रं दीक्षयांचकार। तस्य ह सोमशुष्मस् सात्ययज्ञिर् उद्गीथायोढ आस। तम् उ ह महावृषाणां दूता आसस्तुर् आगच्छ समितिर् वा इयम् इति। तद् ध प्रधावयन्न् उवाचोद्गातर् एतं ते पुत्रं परिददानीति। स हेष्ट्वा पुनर् आजगाम। स होवाचोद्गातः क्व यज्ञं प्रत्यतिष्ठिपः क्व यजमानं क्वास्य पशून् इति।------— जै.ब्रा. १.२३४

प्रजापतिर् एष यद् उद्गाता। स त्वष्टा स रेतसस् सेक्ता स रूपाणां विकर्ता।----अरेतस्का ह वै दुरुद्गातुर् वर्तन्यां गर्भा जायन्ते।— जै.ब्रा. १.२५९

५८. त्रयो ह वा एते समुद्रा यत् पवमाना अग्निर् वायुर् असाव् आदित्यः। तैश् छन्नैर् उद्गायेत्। स यर्हि वै प्रजापतिः प्रजाभ्यो वृष्टिम् अन्नाद्यं प्रयच्छति छाद्यन्त एते तर्हि। प्रजापतिर् एष सः। यद् उद्गास्यन् पवमानैश् चान्यैर् उद्गायति छादयत्य् एव यजमानम् अन्नाद्येन छादयत्य् आत्मानं छादयति प्रजा बहुवर्षी तत्र पर्जन्यो भवतीति ह स्माह कूटश् शैलनो यत्राहम् उद्गायामीति।— जै.ब्रा. १.२७४

५९. देवा वै पवमानाः प्रजाः पृष्ठोक्थानि। तैश् छन्नैः परोक्षम् अनिरुक्तैः पवमानैर् उद्गायेत्।---- — जै.ब्रा.१.२७४

६०. दैवीं ह वा एष संसदम् एति य पवमानैर् उद्गायति।— जै.ब्रा.१.२७५

६१. अथैता अमृतव्याहृतीर् अभिव्याहरति भूर् भुवस् स्वः। क इदम् उद्गास्यति स इदम् उद्गास्यति इति। प्रजापतिर् वै कः। तम् एवादाव् आर्त्विज्याय वृणीते। स य एवं तद् उद्गायति वाचैवास्य कृतं भवत्य् अनृण आत्मना भवति।— जै.ब्रा. १.३२७

६२. क्षिप्रं प्रजया पशुभिः प्रजाया इति प्रतिहारेप्रतिहार उद्गाता इळ् इति ब्रूयात्।— जै.ब्रा.१.३३०

६३. तद् उद्गाता यजमानस्य पञ्चदशेन वज्रेण द्विषन्तं पाप्मानं भ्रातृव्यं स्तृणाति।------ जै.ब्रा.१.३३१

६४. अग्निर् एष यद् रथन्तरम्। अग्निर् वै मृत्युः। स यो ऽन्यत्राक्षरेभ्यस् स्तोब्धि स एवोद्गाता यजमानं मृत्योर् आस्ये ऽप्यस्यति।— जै.ब्रा.१.३३२

६५. तद् आहुः उद्गातर् अहन् रात्रिम् अगासी रात्र्याम् अहाः इति। उभयम् इति ब्रूयात् अहन्न एव रात्रिम् अगासिषं रात्र्याम् अहः इति।— जै.ब्रा. १.३४०

६६. ---यदि कामयेरन् उद्गातैषां म्रियेतेत्य् उद्गातारं तृतीयसवने ब्रूयुः प्रजापतेर् ऋग्भिर् जुहुधि इति।----- अध्वर्युः प्रथमो युज्यते। तस्य प्रातस्सवनम् आयतनम्। अथ होता। तस्य माध्यंदिनं सवनम् आयतनम्। अथोद्गाता। तस्य तृतीयसवनम् आयतनम्।— जै.ब्रा.१.३४३

६७. उद्गातुर् हिंकारम् अनु हिंकुर्वन्ति। तस्माद् आत्मनो वशम् अङ्गानि यन्ति।-- -ऋत्वजों द्वारा शिर आदि विभिन्न अंगों से गाने का वर्णन।— जै.ब्रा.१.४०७

६८. उद्गाता पञ्चविंशेनात्मना राजनेनोद्गायति। इमं तद् आत्मानं प्रतिदधाति। तस्माद् अयम् आत्मा प्रतिहितः।- त (ऋत्विजः) एकैकयास्तुतयोद्गातारम् उपसमायन्ति। ताभिर् उद्गातोद्गायति। आत्मन् एव तद् अंगानि प्रतिदधाति।--- जै.ब्रा. २.४०८

६९. अथो मनो वै गायत्रम्।-- मनसा हिंकुर्वन्ति, मनसा प्रस्तौति, मनसादिम् आदत्ते, मनसोद्गायति। मनसा प्रतिहरति, मनसोपद्रवति, मनसा निधनम् उपयन्त्य् असमाप्तस्य समाप्त्यै।— जै.ब्रा. ३.३०५

७०. छन्दांसि यद् अयजन्त तेषां बृहत्य् एवोदगायत्। अथ याव् एता उत्तरौ प्रगाथौ तौ प्रस्तोतृप्रतिहर्तारावृ आस्ताम्।-- — जै.ब्रा. ३.३६९

७१. देवा यद् अयजन्त तेषां बृहस्पतिर् एवोद्गायत्। गौश् चायास्यश् च प्रस्तोतृप्रतिहर्तारावृ आस्ताम्। प्रजापतिर् एव गृहपतिर् आसीत्।---— जै.ब्रा.३. ३७४

७२. ज्योतिष्टोमे सुत्येऽहनि प्रातरनुवाकात् पूर्वं विश्वरूपागानं : अध्वर्यवित्याहोद्गाता मा स्म मेऽनिवेद्य होत्रे प्रातरनुवाकमुपाकरोरिति।-षड्विंश ब्राह्मण १.४.१

७३. विश्वरूपागाने ज्योतिर्गानं :---- -स ब्रूयादकार्षमहं तद्यन्मम कर्म उद्गातारं पृच्छतेति। उद्गातः किं स्तुतं स्तोत्रं होता प्रातरनुवाकेनान्वशंसीदिति स ब्रूयादकार्षमहं तद्यन्मम कर्मागासिषं यद्गेयमिति। तं चेद् ब्रूयुस्तमो वै त्वमगासीर्न ज्योतिरिति। स ब्रूयाज्ज्योतिस्तेन येन ज्योतिः----— षड्. ब्रा. १.४.७

७४. असितमृगा ह स्म वै पुरा कश्यपा उद्गायन्त्यथ ह युवानमनूचानं कुसुरुबिन्दमौद्दालकिं ब्राह्मणा उद्गीथाय वव्रे।— षड्. ब्रा.१.४.१६

७५. यावत्साम्नोद्गातोद्गातृष्वेव तावद् (यज्ञः)।— षड्. ब्रा.१.६.५

धूर्गाने बहिष्पवमाने : एष वाव जात एषोऽवलुप्तजरायुरेष आर्त्विजीनो यस्य धुरो गीयन्ते यश्चैवं विद्वान् धुरो गायति। जातमेवैनमन्नाद्याय परिवृणक्ति। उभावन्नमत्त उद्गाता च यजमानश्च।— षड्. ब्रा. २.२.३

७६. अथैतस्यामुदीच्यां दिशि भूयिष्ठं पर्जन्यो विद्योतते तस्मादेतां दिशमुद्गाता प्रत्युद्गायति।— षड्. ब्रा.२.४.४

७७. प्रातसवने : पर्जन्यो म उद्गाता स मोपह्वयतामुद्गातरुपमाह्वयस्वेत्युच्चैः।----प्राणो यजमानः।— षड्.ब्रा. २.५.५

७८. माध्यन्दिन सवने : श्रोत्रं म उद्गाता स मोपह्वयताम् उद्गातरुप माह्वयस्वेत्युच्चैः।---अपानो यजमानः।— षड्. ब्रा.२.६.२

७९. तृतीय सवने : समानो म उद्गाता स मोपह्वयताम् उद्गातरुप माह्वयस्वेत्युच्चैः।----स उदानो यजमानः।— षड्. ब्रा.२.७.२

८०. देवानां वा एतद्यज्ञस्य मुखं यदुद्गातृचमसम्। तस्मादुद्गातृचमसं नान्यो भक्षयेत्।— षड्. ब्रा. २.७.८

८१. यदुद्गाता जहाति श्रोत्रं ह तद्यजमानं जहाति। स यत्तत् करोति स्वं श्रोत्रं यजमाने दधाति। स विष्वङ् श्रोत्रेणामुष्मिंल्लोके संभवति।— षड्.ब्रा ३.१.४

८२. पशवो हाध्वर्युमनु कीर्तिर्होतारं योगक्षेमो ब्रह्माणमात्मा च प्रजा चोद्गातारम्।— षड्.ब्रा. ३.१.१०

८३. अथ यद्यात्मना वा प्रजया वा व्याधीयेतोद्गाता म इदमकरिति विद्यात्।— षड्.ब्रा. ३.२.१

८४. --- पर्जन्यो म उद्गाता-- -। स एतान् दैवानृत्विजो वृत्वाथैतान् मानुषान् वृणीत।— षड्. ब्रा.३.३.२

८५. पर्जन्यो म उद्गाता। स मे देवयजनं ददातु। उद्गातर्देवयजनं मे देहीत्युच्चैः।— षड्. ब्रा. ३.३.९

८६. इन्द्र एष यदुद्गाता। स यथासावमीषां रसमादत्त एवमेष तेषां रसमादत्ते।---ते य एवेमे मुख्याः प्राणाः। एत एवोद्गातारश्च उपगातारश्च। इमे ह त्रय उद्गातार इम उ चत्वार उपगातारः।— जैमि.उप.ब्रा.१.६.३.२

८७. तद्यथा वा अतो ह्रदात् कुल्ययोर्वरामुदकमुपनयन्त्येवमेव एतन्मनसोऽधि वाचोद्गाता यजमानाय स्वकामान् प्रयच्छति। स य उद्गातारं दक्षिणाभिराराधयति तं सा कुल्योपधावति। य उ एनं नाराधयति स उ तामपि हन्ति।— जै.उ.ब्रा. १.१८.३.४

८८. तं (शर्यातं मानवं)देवा बृहस्पतिनोउद्गात्रा दीक्षामहा इति पुरस्तादागच्छन्।---बम्बेन आजद्विषेण पितरो दक्षिणतः-- -। उशनसा काव्येन असुराः पश्चात्- - -। अयास्येनाङ्गिरसेन मनुष्या उत्तरतः-- -। उद्गाताओं से प्राप्ति का वर्णन।— जै.उ.ब्रा.२.३.१.१

८९. वाक्, मन, चक्षु, श्रोत्र, प्राण द्वारा उद्गान करने पर पाप्मा द्वारा इनका वेधन करना। मुख्य प्राण (अयास्य आंगिरस) द्वारा उद्गान करने पर पाप्मा का नष्ट होना।— जै.उ.ब्रा. २.४.१.१

९०. ता उ ह वै जाबालौ दिदीक्षाते शुक्रश्च गोश्रुश्च। तयोर्ह प्राचीनशालिर्वृत उद्गाता।— जै.उ.ब्रा. ३.२.२.७

९१. स यस्तां देवतां वेद,यां च स ततोऽनुसंभवति या चैनं तं मृत्युमतिवहति स उद्गाता मृत्युमतिवहतीति।— जै.उ.ब्रा. ३.२.४.४

९२. यस्त्रयाणां मृत्यूनां साम्ना अतिवाहं वेद स उद्गाता मृत्युमतिवहतीति।— जै.उ.ब्रा. ३.२.४.११

९३. ते ह काण्ड्वियवमुद्गातारं चक्रिरे ब्राह्मणं प्राचीनशालिम्।-------- तं ह वा एवंविदुद्गाता यजमानमोमित्येतेनाक्षरेण आदित्यं मृत्युमतिवहति। वागित्यग्निम्। हुमिति वायुम्। भा इति चन्द्रमसम्।--- जै.उ.ब्रा. ३.२.५.२

९४. श्रीर्वा एषा प्रजापतिः साम्नो यद्धिंकारः। तमिदुद्गाता श्रिया प्रजापतिना हिङ्कारेण मृत्युमपसेधति।— जै.उ.ब्रा. ३.३.२.३

९५. तमेतदुद्गाता यजमानमोमित्येतेनाक्षरेण अन्ते स्वर्गे लोके दधाति।---- जै.उ.ब्रा. ३.३.३.८, ३.३.४.९

९६. तस्य (यज्ञस्य) होताध्वर्युरु-उद्गातेत्यन्यतरां वाचा वर्तनिं संस्कुर्वन्ति।-- — जै.उ.ब्रा. ३.४.२.२

९७. ओमिति वै होता प्रतिष्ठितः। ओमित्यध्वर्युः। ओमित्युद्गाता।— जै.उ.ब्रा.३.४.५.६

९८. तत्सप्तविधं साम्नः। सप्तकृत्व उद्गाता आत्मानं च यजमानं च शरीरात् प्रजनयति।— जै.उ.ब्रा. ३.६.६.४

९९. तदाहुः। स वा उद्गाता यो यजमानस्य प्राणेभ्योऽधि मृत्युपाशान् मुञ्चतीति।------एवंवा एवंविदुद्गाता यजमानस्य प्राणेभ्योऽधि मृत्युपाशान् उन्मुञ्चति।------- तदाहुः। स वा उद्गाता यो यजमानस्य प्राणेभ्योऽधि मृत्युपाशानुन्मुच्य अथैनं साङ्गं सतनुं सर्वमृत्योः स्पृणातीति।-— जै.उ.ब्रा. ४.७.१.३

१००. आलोभी : इन्धानास्त्वा शतं हिमा इत्येतद्ध वै दाशर्म आरुणिमुवाचाग्नि-मादधिवाँसमुद्गातः केनाग्नि-रुपस्थेय इति तस्मै हैतदग्न्युपस्थानमुवाच -— काठक संहिता ७.६

१०१. आलोभी : अग्ने त्वं नो अन्तम इत्येतद्ध वै दिवोदासो भैमसनिरारुणिमुवाचाग्नि-मादधिवाँसमुद्गातः केन गार्हपत्य उपस्थेय इति तस्मै उवाच— का.सं. ७.८

१०२. उत्सीदनम् : महाहविर्होता सत्यहविरध्वर्युः--अयास्य उद्गाता — का.सं. ९.९

१०३. उत्सीदनम् (सप्तहोता) :- महाहविर्होतासीत्-अयास्य उद्गाता।— का.सं. ९.१२

१०४. उत्सीदनम् : दशहोतारं व्याख्याय बहिष्पवमानेनोद्गायेत्--चतुर्होतारं व्याख्यायाज्यैरुद्गायेत्---पञ्चहोतारं व्याख्याय माध्यंदिनेन पवमानेनोद्गायेत्---सप्तहोतारं व्याख्यायर्भवेण पवमानेनोद्गायेत्। — का.सं. ९.१४

१०५. सर्पराज्ञ्या ऋग्भिर्दशमेऽहन्नुद्गातोद्गायेदियं वै सर्पराज्ञ्यन्नं चतुर्होतारोऽन्नमेवाप्त्वान्नमवरुन्द्धे--— का.सं. ९.१५

१०६.----- -मनसा प्रस्तौति मनसोद्गायति मनसा प्रतिहरति रेत एवैतदुद्गातारः प्रसिञ्चन्ति-— का.सं. ९.१५

१०७. इषुः :- प्रजापतेर्वा उद्गातोर्गुदुम्बर्यां श्रयते प्रजास्वेवोर्जं न्यनक्ति----— का.सं. २५.१०

१०८. धिष्ण्यम् : उद्गात्रा पत्नीं संख्यापयति वृषा वा उद्गाता पत्न्याः प्रजाः प्रजायन्ते--- — का.सं.२६.१

१०९. वाचस्पतिः :- प्राजापत्या एत ऋत्विजस्त्रयो वृता युक्ता यज्ञे भवन्ति प्रस्तोतोद्गाता प्रतिहर्ता यद्धिङ्करोत्युद्गातृनेव वृणीते तेऽस्य वृता युक्ता यज्ञे भवन्ति।— का.सं २७.९

११०. आयुष्यम् : यदुद्गात्रे ददाति प्राजापत्यो वा उद्गाता प्रजापतिमेव तेन प्रीणाति— का.सं २८.५

१११. दीर्घजिह्वी : उद्गातृभ्यो हरन्ति सोमदेवत्यं वै साम साम्नस्सवीर्यत्वाय सतनूत्वाय— का.सं. २९.२

११२. एकादशिनी : आसन्दीमारुह्योद्गाता महाव्रतेनोद्गायति प्रेङ्खमारुह्य होता महदुक्थमनुशँसति---— का.सं. ३४.५

११३. प्रायश्चित्तिः :- चत्वारो वरा देया ब्रह्मण उद्गात्रे होत्रेऽध्वर्यव एते वै यज्ञस्येन्द्रास्तानेव प्रीणाति— का.सं. ३५.१६

११४. प्रायश्चित्तिः :- यस्य सोममभिदहेउद्गहानध्वर्युस्स्पाशयेत स्तोत्राण्युद्गाता शस्त्राणि होता--- — का.सं. ३५.१६

११५. सप्तहोता : महाहविर्होता, सत्यहविरध्वर्युः--अयास्य उद्गाता-—मैत्रायणी संहिता १.९.१, १.९.५

११६. राजसूय ब्राह्मणम् : स्रगुद्गातुः, सौर्यो वा उद्गाता, ऽथो अमुमेवास्मा आदित्यमाप्त्वोन्नयति-— मै.सं. ४.४.८

११७. प्राजापत्यो वा उद्गाता, संक्शाप्यमानो वा उद्गाता पत्न्या रेता आदत्ते,-- — मै.सं. ४.५.४

११८. त्रयो वै प्राजापत्या ऋत्विज, उद्गाता प्रस्तोता प्रतिहर्ता, ते वा अस्यैतर्ह्यवृत्ता अयुक्ता, यद्धिंकरोति तेनैवास्य ते वृत्ता युक्ता भवन्ति— मै.सं. ४.६.४

११९. राजसूयविषयस्य दशपेयस्याभिधानम् : प्राकाशावध्वर्यवे ददाति स्रजमुद्गात्रे रुक्मँ होत्रे-— तैत्तिरीय संहिता १.८.१८.१

१२०. स्तोत्रोपाकरणप्रतिगराङ्गमन्त्राभिधानम् : वायुर्हिंकर्ताऽग्निः प्रस्तोता प्रजापतिः साम बृहस्पतिरुद्गाता विश्वेदेवा उपगातारो मरुतः प्रतिहर्तार इन्द्रो निधनं ते देवा प्राणभृतः प्राणं मयि दधत्वेतद्वै सर्वमध्वर्युरुपा-कुर्वन्नुद्गातृभ्य उपाकरोति— तै.सं. ३.३.२.१

१२१. काम्ययाज्यापुरोनुवाक्याभिधानम् : बृहस्पतिरभिकनिक्रदद्गा उत प्रास्तौदुच्च विद्वाँ अगायत् — तै.सं. ३.४.११.३

१२२. धिष्णियाभिधानम् : नाध्वर्युरुप गायेद्वाग्वीर्यो वा अध्वर्युर्यदध्वर्युरुपगायेदुद्गात्रे वाचँ सं प्र यच्छेदुपदासुकाऽस्य वाक्स्यात्-— तै.सं. ६.३.१.५

१२३. आग्रयण ग्रह कथनम् : त्रिर्हिंकरोत्युद्गातृनेव तद्वृणीते— तै.सं. ६.४.११.३

१२४. ----नेष्टा पत्नियामुद्गात्रा सं ख्यापयति प्रजापतिर्वा एष यदुद्गाता प्रजानां प्रजननायाप उप प्र वर्तयति रेत एव तत्सिंञ्चत्यूरुणोप प्र वर्तयत्यूरुणा हि रेता सिच्यते--— तै.सं. ६.५.९.६

१२५. सहस्रतम्याभिधानम् : तामग्नीधे वा ब्रह्मणे वा होत्रे वोद्गात्रे वाऽध्वर्यवे वा दद्यात्सहस्रमस्य सादत्ता भवति-— तै.सं. ७.१.७.२

१२६. सामविशेषकथनम् : नवभिरध्वर्युरुद्गायति नव वै पुरुषे प्राणाः प्राणानेव यजमानेषु दधाति---- - दिग्भ्य एवान्नाद्यँ सं भरन्ति ताभिरुद्गातोद्गायति दिग्भ्य एवान्नाद्यम् संभृत्य तेज आत्मन्दधते तस्मादेकः प्राणः सर्वाण्यङ्गान्यवति---- आसन्दीमुद्गाताऽऽरोहति साम्राज्यमेव गच्छन्ति-— तै.सं. ७.५.८.४

१२७. प्रकाशावध्वर्यवे ददाति। प्रकाशमेवैनं गमयति। स्रजमुद्गात्रे। व्येवास्मै वासयति। रुक्मँ होत्रे। आदित्यमेवास्मा उन्नयति-— तैत्तिरीय ब्राह्मण १.८.२.३

१२८. अश्वमेधे उद्गातुः प्रोक्षणं : शतेन क्षत्तसंग्रहीतृभिः सहोद्गाता। उत्तरतो दक्षिणा तिष्ठन्प्रोक्षति। अनेनाश्वेन मेध्येनेष्ट्वा। अयँ राजा सर्वमायुरेत्विति। आयुर्वा उद्गाता। आयुः क्षत्तसंग्रहीतारः। आयुषैवास्मिन्नायुर्दधाति।— तै.ब्रा. ३.८.५.३

१२९. अश्वस्योद्गातृस्थाने वरणं : यदुद्गातोद्गायेत्। यथा क्षेत्रज्ञोऽन्येन पथा प्रतिपादयेत्। तादृक्तत्। उद्गातारमपरुद्ध्य। अश्वमुद्गीथाय वृणीते। यथा क्षेत्रज्ञोऽञ्जसा नयति। एवमेवैनमश्वः सुवर्गं लोकमञ्जसा नयति।— तै.ब्रा. ३.८.२२.१

१३०. सप्तहोतृमन्त्र : महाहविर्होता। सत्यहविरध्वर्युः।----अयास्य उद्गाता।— तैत्तिरीय आरण्यक ३.५.१

१३१. तस्यैवं विदुषो यज्ञस्याऽऽत्मा यजमानः---- प्राण उद्गाता चक्षुरध्वर्युर्मनो ब्रह्मा श्रोत्रमग्नीत्।— तैत्तिरीय आरण्यक १०.६४.१

१३२. तस्याग्निर्होतासीद्, वायुरध्वर्युः, सूर्य उद्गाता, चन्द्रमा ब्रह्मा, पर्जन्यः सदस्य,-- — गोपथ ब्रा. १.१.३

१३३. यदुद्गाता साम्ना करोति, दिवं तेनाप्याययति। तत्र ह्यादित्यः शुक्रश्चरति। तदप्येतदृचोक्तम्-उच्चा पतन्तमरुणं सुपर्णम् इति।— गो.ब्रा. १.२.९

१३४. --- -किं विद्वानुद्गातौद्गात्रं करोति,------ चक्षुषैवोद्गातौद्गात्रं करोति। चक्षुषा हीमानि भूतानि पश्यन्ति। अथो चक्षुरेवोद्गाता, चक्षुर्ब्रह्म, चक्षुर्देव इति।— गो.ब्रा. १.२.११

१३५. चत्वारो वा नमे वेदा----। चतस्रो वा इमा होत्रा हौत्रमाध्वर्यवमौउद्गात्रं ब्रह्मत्वमिति।-— गो. ब्रा. १.२.१६

१३६. सामविदमेवोद्गातारं वृणीष्व, स ह्यौद्गात्रं वेद। आदित्यो वा उद्गाता।— गो.ब्रा. १.२.२४

तस्मात्-सामविदमुद्गातारम्।— गो.ब्रा. १.३.१

१३७. तं वा एतं महावाद्यं कुरुते, यदृचैव हौत्रमकरोद् यजुषाध्वर्यवं साम्नौउद्गात्रम-थर्वाङ्गिरोभिर्ब्रह्मत्वम्।— गो.ब्रा. १.३.२

१३८. तद् यदौदुम्बर्यां म आसिष्ट हिङ्ङकार्षीद् मे प्रास्तावीद् म उदगासीद् मे सुब्रह्मण्यामाह्वासीदित्युउद्गात्रे दक्षिणा नीयन्ते, — गो.ब्रा. १.३.४

१३९. अथोद्गातारं दीक्षयति। आदित्यो वा उद्गाताधिदैवं चक्षुरध्यात्मम्। पर्जन्य आदित्यः। पर्जन्यादधि वृष्टिर्जायते।— गो.ब्रा. १.४.३

१४०. अथोद्गात्रे प्रस्तोतारं दीक्षयति।-- -अथोउद्गात्रे सुब्रह्मण्यं दीक्षयति।— गो.ब्रा. १.४.६

१४१. स सत्रेणोभयतोऽतिरात्रेणान्ततो ऽयजत। वाचं ह वै होत्रे प्रायच्छत्, प्राणमध्वर्यवे, चक्षुरुउद्गात्रे, -- -य एवमानन्त्यमात्मानं दत्वानन्त्यमाश्नुत।— गो.ब्रा. १.५.८

१४२. एते ह वा अविद्वांसो यत्रानृग्विद्धोता भवत्ययजुर्विदध्वर्युरसामविदुद्गाता—गो.ब्रा. १.५.११

१४३. होतैव भर्गो ऽध्वर्युरेव मह उद्गातैव यशो ब्रह्मैव सर्वम्। वागेव भर्गः प्राण एव महश्चक्षुरेव यशो मन एव सर्वम्।— गो.ब्रा. १.५.१५

१४४. साम्नोद्गाता छादयन्नप्रमत्त औदुम्बर्यां स्तोभदेयः सगउद्गदः। विद्वान् प्रस्तोता विदहाथ सुष्टुतिं सुब्रह्मण्यः प्रतिहर्ताथ यज्ञे।।— गो.ब्रा. १.५.२४

१४५. तं (घर्मं) संभृत्योचतुः-ब्रह्मन् घर्मेण प्रचरिष्यामः, होतर्घर्ममभिष्टुहि, उद्गातः सामानि गाय, इति।— गो.ब्रा. २.२.६

१४६. --- -हिंकृत्योद्गातारः साम्ना स्तुवन्ति।-— गो.ब्रा. २.३.९

१४७. पुरुषो वै यज्ञः। तस्य मन एव ब्रह्मा, प्राण उद्गाता, अपानः प्रस्तोता, व्यानः प्रतिहर्ता,-— गो.ब्रा. २.५.४

१४८. अथ यत् प्रस्तोता प्रस्तौति, अपानमेव तत् प्राणैः संदधाति। अथ यत् प्रतिहर्ता प्रतिहरति, व्यानमेव तदपानैः संदधाति। अथ यदुद्गातोद्गायति, समानमेव तत् प्राणैः संदधाति।— गो.ब्रा. २.५.४

१४९. पञ्च प्रयाजयागाः :— 'उपावर्तध्वम्' इत्येवाध्वर्युरुद्गातृभ्यो यज्ञं सम्प्रयच्छति। त उद्गातारो नापव्याहरेयुः-आ उत्तमायाः। 'एषोत्तमा' इत्येवोद्गातारो होत्रे यज्ञं सम्प्रयच्छन्ति।— शत. ब्रा.१.५.२.१२

१५०. शुक्रामन्थिनौ ग्रहौ : अथ संप्रेष्यति-प्रैतु होतुश्चमसः, प्र ब्रह्मणः, प्रोद्गातृणाम्, प्रयजमानस्य,-—— श.ब्रा. ४.२.१.२९

१५१. विप्रुड्होमः :- अथ स्तीर्णायै वेदे द्वे तृणेऽअध्वर्युरादत्ते। तावध्वर्यू प्रथमौ प्रतिपद्येते प्राणोदानौ यज्ञस्य। अथ प्रस्तोता वागेव यज्ञस्य। अथोद्गाता आत्मैव प्रजापतिर्यज्ञस्य। अथ प्रतिहर्ता भिषग्वा व्यानो वा।— श.ब्रा. ४.२.५.३

१५२. स्तोमो वाऽएष प्रजापतिः-यदुद्गातारः। स इदं सर्वं युते, इदं सर्वं सम्भवति।— श.ब्रा. ४.२.५.६

१५३. माध्यन्दिन सवनग्रहाः :- सर्वे वाऽअन्यऽउद्गातुः प्राञ्च आर्त्विज्यं कुर्वन्ति, तथो हास्यैतत् प्रागेवार्त्विज्यं कृतं भवति। श.ब्रा. ४.३.२.२

१५४. प्रजापतिर्वाऽउद्गाता, योषऽग्घोंता। स एतत्प्रजापतिरुद्गाता योषायामृचि होतरि रेतः सिञ्चति।— श.ब्रा. ४.३.२.३

१५५. दक्षिणादानम् : अथ ब्रह्मणे। अथोद्गात्रे। अथ होत्रे।-- — श.ब्रा. ४.३.४.२२

१५६. अथ वासः। त्वचमेवैतेनात्मनस्त्रायते। त्वग्घि वासः। तद् बृहस्पतयऽउद्गायतेऽददात्।— श.ब्रा. ४.३.४.२६

१५७. पात्नीवत ग्रहः :- अथ सम्प्रेष्यति- --- उद्गात्रा सङ्ज्ञापय-- -- — श.ब्रा. ४.४.२.१७

१५८. उदानयति नेष्टा पत्नीम्। तामुद्गात्रा सङ्ज्ञापयति। प्रजापतिर्वृषासि रेतोधा रेतो मयि धेहि इति। प्रजापतिर्वाऽउद्गाता, योषा पत्नी। मिथुनमेवैतत्प्रजननं क्रियते।— श.ब्रा. ४.४.२.१८

१५९. व्यूढद्वादशाहः :- ---व्यूहत उद्गाता च होता च छन्दांसि।— श.ब्रा. ४.५.९.१

१६०. किं नु तत्राध्वर्योः-यदुद्गाता च होता च छन्दांसि व्यूहतः।-—— श.ब्रा. ४.५.९.१३

१६१. दशपेय सोमयाग दीक्षा। ऋत्विग्विशेष दक्षिणा : हिरण्मयीं स्रजमुद्गात्रे। रुक्मं होत्रे।---- श.ब्रा. ५.४.५.२२

१६२. तम् रसं अध्वर्युर्ग्रहेण गृह्णाति। यद्गृह्णाति-तस्माद्ग्रहः। तस्मिन्नुद्गाता महाव्रतेन रसं दधाति। सर्वाणि हैतानि सामानि यन्महाव्रतम्।— श.ब्रा. १०.१.१.५, १०.४.१.१३

१६३. वसंत आग्नीध्रः।-- -ग्रीष्मोऽध्वर्युः।-- - वर्षा उद्गाता। तस्माद्यदा बलवद्वर्षति। साम्न इवोपब्दिः क्रियते। शरद्ब्रह्मा। हेमन्तो होता।— श.ब्रा. ११.२.७.३२

१६४. अथोद्गातारं दीक्षयति। पर्जन्यो वा उद्गाता। पर्जन्यादु वै वृष्टिर्जायते।-----— श.ब्रा.१२.१.१.३

१६५. अथोद्गात्रे प्रस्तोतारं दीक्षयति। तं हि सोऽनु।-- --- श.ब्रा.१२.१.१.६

१६६. अथोउद्गात्रे सुब्रह्मण्यां दीक्षयति। तं हि सोऽनु।-- — श.ब्रा. १२.१.१.९

१६७. अश्वमेधः :- यदुद्गातोद्गायेत्। यथाऽक्षेत्रज्ञोऽन्येन पथा नयेत्। तादृक्तत्। अथ

यदुद्गातारमपरुध्याश्वमुद्गीथाय वृणीते। यथा क्षेत्रज्ञोऽञ्जसा नयेत्। एवमेवैतत् यजमानमश्वः स्वर्गं लोकमञ्जसा नयति।— श.ब्रा. १३.२.३.२

१६८. अश्वमेधस्य फलाधिकारिकालादिकम् : सा याऽसौ फाल्गुनी पौर्णमासी भवति। तस्यै पुरस्तात् षडहे वा सप्ताहे वा ऋत्विजः उपसमायंति। अध्वर्युश्च होता च ब्रह्मा चोद्गाता च। एतान्वा अन्वन्य ऋत्विजः।— श.ब्रा. १३.४.१.४

१६९. पारिप्लवाख्यानब्राह्मणम् : प्रमुच्याश्वं दक्षिणेन वेदिं हिरण्मयं कशिपूपस्तृणाति। तस्मिन् होतोपविशति।---- -दक्षिणतो ब्रह्मा चोद्गाता च हिरण्मयोः कशिपुनोःपुरस्तात्।— श.ब्रा.१३.४.३.१

१७०. अथोद्गाता वावातामभिमेथति। वावाते हयेहये। वावाते! ऊर्ध्वामेनामुच्छ्रापय इति। तस्यै शतं राजन्या अनुचर्यो भवंति। ता उद्गातारं प्रत्यभिमेथंति। उद्गातर्हयेहय उद्गातः! ऊर्ध्वमेनमुच्छ्रयतात् इति।— श.ब्रा.१३.५.२.६

१७१. ब्रह्मोद्यम् : अथ ब्रह्मोद्गातारं पृच्छति-पृच्छामि त्वा चितये देवसख इति। तं प्रत्याह अपि तेषु त्रिषु पदेष्वस्मि इति। अथोद्गाता ब्रह्माणं पृच्छति-केष्वंतः पुरुष आविवेश इति। तं प्रत्याह पंचस्वंतः पुरुष आविवेश इति----अथ ब्रह्मोद्गातारं पृच्छति कत्यस्य विष्ठाः कत्यक्षराणि इति। तं प्रत्याह षडस्य विष्ठाः शतमक्षराणि इति। अथोद्गाता ब्रह्माणं पृच्छति-को अस्य वेद भुवनस्य नाभिम् इति। तं प्रत्याह वेदाहमस्य भुवनस्य नाभिम् इति।— श.ब्रा. १३.५.२.१४

१७२. अथातो दक्षिणानाम्। मध्यं प्रति राष्ट्रस्य।-- प्राची दिक् होतुः दक्षिणा ब्रह्मणः, प्रतीची अध्वर्योः उदीची उद्गातुः, तदेव।— श.ब्रा. १३.५.४.२४, १३.६.२.१८, १३.७.१.१३

१७३. अथ यैषा पत्न्यै व्रतदुघा। तामुद्गातृभ्यो ददाति। पत्नीकर्मेव वा एतेऽत्र कुर्वंति-यदुद्गातारः।— श.ब्रा. १४.३.१.३५

१७४. उद्गीथ ब्राह्मणम् : वाक्, प्राण,चक्षु, श्रोत्र,मन द्वारा क्रमशः उद्गान करना, पाप्मा द्वारा विद्ध होना, अन्त में आसन्य प्राण द्वारा उद्गान करने पर पाप्मा का नष्ट होना। आसन्य प्राण का अयास्य आंगिरस नाम होना।— श.ब्रा. १४.४.१.१

१७५. अथ यानीतराणि स्तोत्राणि। तेषु आत्मने अन्नाद्यमागायेत्। तस्मादु तेषु वरं वृणीत। यं कामं कामयेत। तं स एष एवंविदुद्गाता आत्मने वा यजमानाय वा कामं कामयते। तमागायति।— श.ब्रा. १४.४.१.३३

१७६. अश्वल ब्राह्मणं : अथ केनाक्रमेण यजमानः स्वर्गं लोकमाक्रमते इति। उद्गात्रर्त्विजा वायुना प्राणेन। प्राणो वै यज्ञस्योद्गाता। तत् यः अयं प्राणः। स वायुः स उद्गाता सा मुक्तिः।— श.ब्रा. १४.६.१.८

१७७. अश्वल ब्राह्मणम् : कत्ययमद्योद्गाताऽस्मिन् यज्ञे स्तोत्रियाः स्तोष्यतीति। तिस्र इति। कतमास्तास्तिस्र इति। पुरोऽनुवाक्या च, याज्याच, शस्यैव तृतीया।---- प्राणेव पुरोऽनुवाक्या। अपानो याज्या। व्यानः शस्या।— श.ब्रा. १४.६.१.१२

१७८. यत् (होता) सर्पेदृचमेव तत्साय्यंऽनुवर्त्मानं कुर्याद्य एनं तत्र ब्रूयादनुवर्त्मा न्वा अयं होता सामगस्याभूदुद्गातरि यशोऽधाद् च्योष्टाऽऽयतनाच्च्योष्यत आयतनादिति शश्वत्तधा स्यात्।— ऐ.ब्रा. २.२२

१७९. आग्नीध्रीये होमादूर्ध्वं कर्तव्यानि : ते ततः सर्पन्ति-- -यथायथमन्य ऋत्विजो व्युत्सर्पन्ति संसर्पन्त्युद्गातारस्ते सर्पराज्ञ्या ऋक्षु स्तुवते।-- ऐ.ब्रा. ५.२३

१८०. हनू सजिह्वे प्रस्तोतुः श्येनं वक्ष उद्गातुः कण्ठ काकुद्रः प्रतिहर्तुः-- ऐ.ब्रा. ७.१

हरिश्चन्द्रस्य राजसूयानुष्ठानं : तस्य ह विश्वामित्रो होताऽऽसीज्जमदग्निरध्वर्युर्वसिष्ठो ब्रह्माऽयास्य उद्गाता-- ऐ.ब्रा. ७.१६

१८१. प्रेङ्खं होताधिरोहत्यौदुम्बरीमासन्दीमुद्गाता वृषा वै प्रेङ्खो योषासन्दी तन्मिथुनं मिथुनमेव तदुक्थमुखे करोति प्रजात्यै।— ऐतरेय आरण्यक १.२.४

१८२. ज्योतिष्टोम-अग्निष्टोम : एकश्रुति-विधानान्मन्त्रान् कर्माणि चोउद्गातैव कुर्यादनादेशे। यावद्यजुरनादिष्टान् तान् मन्त्रान्।— द्राह्यायण श्रौत सूत्र १.१.४

१८३. युगपत्कर्मसु सर्वेषूउद्गातुर्दक्षिणमनु बाहुं प्रस्तोता सव्यं प्रतिहर्ता।— द्रा.श्रौ.सू. ३.१.१

१८४. प्रस्तोता प्रथमोऽतिसर्पेत्। तत उद्गाता तत प्रतिहर्ता।— द्रा.श्रौ.सू. ३.१.१२

१८५. अभिषुते राजन्यृतपात्रमसीति द्रोणकलशमालभ्य वानस्पत्य इति प्रोहेयुः। दक्षिणे पाणावुद्गाता दशापवित्रं कुर्वीत। अक्षं चेदुपहन्युः पुनः प्रोहेयुः।— द्रा.श्रौ.सू. ३.१.१८

१८६. संततायां धारायामुद्गाता जपेत् प्र शुक्रैत्विति।— द्रा.श्रौ.सू. ३.२.२९

१८७. आग्रयणं गृह्णन्नध्वर्युर्हिं करोति तदा प्रवृणीरन्नग्निः प्रस्तोताहं मानुषो बृहस्पतिरुद्गाताहं मानुषो वायुः प्रतिहर्ताहं मानुषः इति यथालिङ्गम्। न प्रवृणीरन्निति धानंजय्यः। प्रवृणीरन्नेवेति शाण्डिल्यः।— द्रा.श्रौ.सू. ३.३.१

१८८. स्तुते बहिष्पवमाने विसृजेरन्। उत्तराद्धविर्धानात् ध्रुवस्थालीं हरन्तः पश्चिमेनोउद्गातॄन् हत्वा तेनैव प्रतिहरेयुः।— द्राः श्रौ.सू.३.३.७

१८९. अभिपीड्य पवित्रमध्वर्युर्निःसर्पन्तं प्रस्तोता संतनुयात्। तमुद्गातोद्गातारं प्रतिहर्ता तं ब्रह्मा ब्रह्माणं यजमानः।— द्रा.श्रौ.सू. ३.३.१०

१९०. संसुतसोमे त्वधिकामुद्गाता जुहुयात् संवेशायोपवेशायेति यथासवनं छन्दाँस्यादिशन्।— द्रा.श्रौ.सू. ३.३.१७

१९१. चात्वालदेशं प्राप्याध्वर्यावुपविष्टे तस्मात्प्रत्यगुपविशेयुर्यो म आत्मेति। प्रत्यङ्मुखः प्रस्तोतोदङ्मुख उद्गाता पश्चिमेनोद्गातारं गत्वा दक्षिण पूर्वमष्टमदेशमीक्षमाणः प्रतिहर्ता।— द्रा.श्रौ.सू. ३.३.२७

१९२. याजमान ब्रह्मत्वे चेदुद्गाता कुर्यात्।— द्रा.श्रौ.सू. ४.४.१

१९३. इडा भक्षणम् : मिथ उपहूयोद्गाता प्रथमः।— द्रा.श्रौ.सू. ५.१.४

१९४. सौम्यमाहृतमुद्गातावेक्षेतायुर्भं प्राण इति।— द्रा.श्रौ.सू. ६.२.६

१९५. यज्ञायज्ञीयस्य हिंकारं प्रति पत्नीमुउद्गातेक्षेत।— द्रा.श्रौ.सू. ६.२.९५

१९६. अहिंकारेऽपि प्रतिहारवेलायां पत्नीमुद्गातावेक्षेत।— द्रा.श्रौ.सू. ६.३.२

१९७. हारियोजन्यो नाम धाना द्रोणकलशे भवन्ति। तासामुद्गाता प्रथमं आददानः समुपहूता भक्षयिष्याम इति ब्रूयात्।— द्रा.श्रौ.सू. ६.३.१६

१९८. षोडशि साम्ना स्तोष्यमाणो यथासनमुपविश्य हविर्धानं गत्वा षोडशिग्रहमवेक्षेतोद्गाता यस्मादन्य इति।— द्रा.श्रौ.सू. ७.१.१

१९९. यो यः सामाङ्गं ब्रूयात्स हिरण्यं धारयेत्। उद्गाता निधनमुपयत्सु। सर्वे वाभिमृशेयुः।— द्रा.श्रौ.सू. ७.१.९

२००. उद्गात्रे दद्यादश्वहिरण्ये दक्षिणावत्सु।— द्रा.श्रौ.सू. ७.१.१६

२०१. एष वै यजमानस्य प्रजापतिर्यदुद्गातेति ह्याह।— द्रा.श्रौ.सू. ७.४.३

२०२. ------पत्नीसंयाजेषु गार्हपत्य उद्गाता जुहुयादुपसृजन्धरुणं मात्रे मातरं धरुणो धयन्-— द्रा.श्रौ.सू. ९.३.२३

२०३. आहवनीयं गत्वाऽयंसहोहा इति त्रिरुद्गाता गायेत्। निधनमितरावनूपेयाताम्।— द्रा.श्रौ.सू. ९.४.१

२०४. उत्तरत उद्गातौदुम्बरीं गृह्णीयात् पश्चात् प्रतिहर्ता दक्षिणतो ब्रह्मा पुरस्तादितरे सर्वे।— द्रा.श्रौ.सू. ९.४.२१

२०५. महाव्रतम् : सर्वाण्युद्गाता सकृत् सकृ-उद्गायन्निधनमितरावनूपेयाताम्।—द्रा.श्रौ.सू. १०.१.५

महाव्रतम् : पूर्वेण पत्नीशालामुद्गाता गत्वा दक्षिणे वेद्यन्ते प्राचो दर्भान् संस्तीर्य तेष्वेनं प्राङ्मुखमुपवेशयेत्। अथास्मै (राज्ञे) वर्माभिहरेत्।— द्रा.श्रौ.सू. १०.२.५

२०६. तामुत्तरेणोद्गाता गत्वा पश्चादुपविश्य भूमिस्पृशोऽस्या पादान् कृत्वा कूर्चानधस्तादुपोह्य-ाभिमृशेद् बृहद्रथन्तरे ते पूर्वौ पादौ श्यैतनौधसे अपरौ वैरूपवैराजें अनूची शाक्वर रैवते तिरश्ची इत्येतैः पृथगङ्गानि।— द्रा.श्रौ.सू. १०.४.७

२०७. ब्रह्मत्वम् : निधीयमाने गवां व्रतं यदग्निमीडे इति। तान्युद्गातृकर्मैके। उद्गाता सामवेदेनेति श्रुतेः।— द्रा.श्रौ.सू. १२.२.५

२०८. ब्रह्मौदनप्राशनम् : कर्मयोगाच्चो-उद्गातुश्चत्वारो महर्त्विजः प्राशन्तीति हि चातुष्प्राश्यप्राशनम्। अधिकारात्तु ब्रह्मणः। औउद्गात्रे चाविधानात्। दृष्टं चानेन सामगानं ब्रह्मा रथचक्रेऽभिगायतीति। उद्गातेति यथाभूयसवाद।— द्रा.श्रौ.सू. १२.२.११

२०९. गायत्रे तु विकल्पः (निधनस्य) सर्वे वोद्गाता वा।----हिंकारः प्रस्तावात् पूर्वः। उद्गीथादोंकारः।— द्रा.श्रौ.सू. १८.२.४

२१०. सर्वेषाम् (साम्नाम्) ओंङ्कारेणो-उद्गीथादानम्।— द्रा.श्रौ.सू. १८.२.२५

२११. प्रस्तुतं वै सामावसीदति तदुद्गातोङ्का-रेणोत्तभ्नातीति ब्राह्मणम्।— द्रा.श्रौ.सू. १८.३.१

२१२. सौमेधस्यौर्णायवयोर्ऋषभस्य पावमनस्य निधनस्य मार्गीयवस्यैतेषामुपरिष्टात् प्रतिहारस्योद्गाता स्तोभं भजते।— द्रा.श्रौ.सू. १८.३.१५

२१३. सदृशगीतिषु सर्वेषु पृथक्पृथक्पदानि विभजेरन्। प्रत्यन्तादनादेशे। शेषमुद्गाता तानि विभाग्यानि।— द्रा.श्रौ.सू. २०.१.३१

२१४. प्रथमायैवानुगानाय प्रस्तोता प्रस्तुयादात्मने च। इतराण्यनुगानान्युउद्गातैव सर्वाणि ब्रूयात्। तेषां निधनेष्वेनमनूपेयाताम्।— द्रा.श्रौ.सू. २०.२.१६

२१५. भासनिधने दशमस्य पदस्योपायमुउद्गातैव ब्रूयात्।— द्रा.श्रौ.सू. २०.२.२२

२१६.- इडेति धानंजय्यः।-- -प्रत्युउद्गीतस्तु खल्वेषां तदोद्गाता भवति।— द्रा.श्रौ.सू. २०.३.४१

२१७. महाव्रते दक्षिणा : पृष्ठेन च स्तुवानायोउद्गात्रे।— द्रा.श्रौ.सू. २२.२.२३

२१८. सोमप्रवाकाः :- प्राञ्चं होतारं वहेयुरुदञ्चमुद्गातारं प्रत्यञ्चमध्वर्युं दक्षिणा ब्रह्माणम्।— द्रा.श्रौ.सू. २२.३.१६

२१९. साद्यस्क्रीः :- अश्वः श्वेत एतस्य दक्षिणा तमुउद्गात्रे दद्यात्। किंचिच्चेतरेभ्यः।— द्रा.श्रौ.सू. २२.३.२५

२२०. रुक्मो होतुरिति निष्कोनामालंकारस्तं दद्यात्। स्रगुउद्गातुरिति हिरण्मयी स्यात्।— द्रा.श्रौ.सू. २४.२.३

२२१. राजसूयः (दशपेयः) :- तस्य ब्राह्मणं दश दश चमसमभियन्तीति ब्रह्मण्यचतुर्था उद्गातृचमसं भक्षयेयुः षट्सु चान्ये।— द्रा.श्रौ.सू. २५.२.२

२२२. स्रगुउद्गातुरिति स्रप्स्यतेऽस्मै बहिष्पवमानं हिरण्यस्रजं त्रिपुष्करां प्रतिमुञ्चेत्।— द्रा.श्रौ.सू. २५.२.८

२२३. अश्वमेधः :- हिरण्यकशिपुन्यासीनो ब्रह्मोद्गाता चोदङ्मुखौ।— द्रा.श्रौ.सू. २७.१.१६

२२४. मध्यमेऽहन्यश्वस्य बालधिमालभ्य बहिष्पवमानं सर्पेयुः। सर्पत्सु यजमान उद्गातारं ब्रूयादुउद्गातरुप त्वा वृणे शतेन निष्केण चाश्वो ममोउद्गास्यतीति।--तां (वडवां) यदाभिक्रन्देदथ यजमान उद्गातारं ब्रूयादुउद्गातरुप त्वा वृणे शतेन चैव निष्केण च त्वमेव ममोउद्गास्यसीति।— द्रा.श्रौ.सू. २७.२.१

२२५. उदञ्चमश्वमुत्क्रमय्यास्ताव उपविश्यो-द्गाताश्वव्रतेन स्तुयादभिवाजी विश्वरूप इति तृचेन----द्रा.श्रौ.सू. २७.२.५

२२६. उद्गाता परिवृक्तीमभिमेथेद्यदस्या अंशुभेद्याः कृधुस्थूलमुपातसन्मुषष्काविदस्या एजतो गोशफेशकुलाविवेति निर्दिशेत्।— द्रा.श्रौ.सू. २७.२.१२

२२७. पतन्तकोऽश्वमेधः :- होत्राध्वर्युणा चोक्ते ब्रह्मा पृच्छेदुद्गातारं पृच्छामि त्वा चितये देवसख यदि त्वमत्र मनसानुवेत्थ येषु विष्णुस्त्रिषु पदेष्वस्थात्तेषु विश्वं भुवनमाविवेशाऽऽइति। तं प्रति ब्रूयादपि तेषु त्रिषु पदेष्वस्मिन् येषु विश्वं भुवनमाविवेश----द्रा.श्रौ.सू.२७.३.२

२२८. उद्गाता पृच्छेद् ब्रह्माणं किंस्विदन्तः पुरुष आविवेश। कान्यन्तः पुरुषे अर्पितानि।— द्रा.श्रौ.सू. २७.३.४

२२९. प्राचीं होत्रे दिशं दद्याद्-दक्षिणां ब्रह्मणेऽध्वर्यवे प्रतीचीमुदीचीमुउद्गात्रे।— द्रा.श्रौ.सू. २७.३.११

२३०. गवामयनम् : सर्वे सहर्त्विजो महाव्रतेन स्तुवीरन्नित्युद्गातृविकार एव स्यात्।— द्रा.श्रौ.सू. २८.४.१

२३१. गवामयनम् : तिसृभिरुद्गातात्मन उद्गीयेति चात्मना जघन्यस्तवनं दर्शयति।— द्रा.श्रौ.सू. २८.४.६

२३२. ननादेशस्तवनं छन्दोगानामेव स्यात्। उद्गातैव सर्वेणोउद्गायदिति ह्युक्त्वा तस्य देशान् विदधाति। हविर्धाने शिरसा स्तुत्वा-— द्रा.श्रौ.सू. २९.४.८

२३३. अग्निहोत्र दशहोता : स्वादासनादुपसंचारं ब्रह्मेतरे होत्रे कुर्यात्। तथोद्गातृप्रस्तोतारावाग्नीध्रश्च।— द्रा.श्रौ.सू. ३०.३.८

२३४. यो नेष्टा स उद्गातेत्यभविष्यत्।— द्रा.श्रौ.सू. ३०.३.१०

२३५.----- -आग्नीध्रः पोतोद्गाता प्रस्तोता प्रतिहर्ता सुब्रह्मण्य इति। एतेऽहीनैकाहैर्याजयन्ति।— आश्वलायन श्रौत सूत्र ४.१.६

२३६. बहिष्पवमानः :- तत्स्तोत्रायोप-विशन्त्युद्गातारमभिमुखाः।— आ.श्रौ.सू. ५.२.७

(सोम भक्षणे) होतुर्वषट्कारे चमसा हूयन्त उद्गातुर्ब्रह्मणो यजमानस्य। तेषां होताऽग्रे भक्षयेदिति गौतमः।-आ.श्रौ.सू. ५.६.२३

२३७. आहतं सौम्यं (चरुं) पूर्वमुद्गातृभ्यो गृहीत्वाऽवेक्षेत यत्ते चक्षुर्दिवि यत्सुपर्णे येनैकराज्यमजयो हि ना। दीर्घं यच्चक्षुरदितेरनन्तं सोमो नृचक्षा मयि तद्दधात्विति।— आ.श्रौ.सू. ५.१९.४

२३८. ब्रह्मोद्यं वदन्ति----केषु विष्णुस्त्रिषु पदेष्वस्थ केषु विश्वं भुवनमाविवेशति ब्रह्मोद्गातारं पृच्छति।-— आ.श्रौ.सू. १०.९.२

२३९. दर्शपूर्ण मासः :- उपाकृत (स्तोत्रे) ऽउद्गातार ऽआहोतृप्रैषात् (नापव्याहरेयुः)।— कात्यायन श्रौत सूत्र २.३.१८

२४०. सोमयागः :- प्रोह्य द्रोणकलशमृजीष-मुखेष्वद्रिषु निदधत्युद्गातारः। पवित्रं च वितन्वन्त्युदक्।— का.श्रौ.सू. ९.५.१३

२४१. सोमयागः :- अध्वर्युप्रतिप्रस्थातृ-प्रस्तोत्रु-द्गातृप्रतिहर्तृसुन्वन्तः समन्वारब्धा निष्क्रामन्ति।— का.श्रौ.सू. ९.६.२६

२४२. प्रैतुहोतुश्चमसः प्रब्रह्मणः प्रोद्गातृणां प्रयजमानस्य प्रयन्तु सदस्यानां—का.श्रौ.सू. ९.११.५

२४३. आज्यमासिच्योद्गात्रे सौम्यं (चरुं) प्रयच्छति चतुर्गृहीतं प्रचरण्या धिष्ण्येषु जुहोति---— का.श्रौ.सू. १०.६.१३

२४४. सोमयागः-- -नेष्टः पत्नीमुदानयोद्गात्रा सङ्ग्रापय-— का.श्रौ.सू.१०.६.१९

२४५. यज्ञायज्ञीयं स्तोत्रमुपाकरोति होतृचमस-मुपस्पृश्य। प्रोर्णुते चेच्छन्नुद्गातृवत्। पत्नींसदः प्रवेश्यापरेणोत्तरत उपविष्टामुद्गात्रा समीक्षयति प्रजापतिर्वृषासीति। पात्रेजनी-भिरभिषिञ्चति विवृत्य दक्षिणोरुम्। उद्गात्रा अनुज्ञाता गच्छति, ईक्षिता वा त्रिः।— का.श्रौ.सू. १०.७.१

२४६. चयनम् : आहवनीयस्य पुरस्तादुद्गात्रा-सन्दीवदासन्द्यां चतुरश्राङ्ग्यां शिक्यवत्यां निदधाति देवाअग्निमिति।— का.श्रौ.सू. १६.५.५

२४७. एकाहे दक्षिणा : शताश्वरथमध्वर्यवे ददात्यग्नौ चीयमाने। उद्गात्रे व्रतकाले।— का.श्रौ.सू. २२.२.२

२४८. रुक्मललाटोऽश्वः श्वेतो दक्षिणा। अश्वाभावे गौः। तमुद्गात्रे ददाति। प्राकृतस्यानि-वृत्तिरुद्गातृयोगात्। निवृत्तिः क्रतुयोगात्।— का. श्रौ. सू. २२.२.११

२४९. प्रायश्चित्तानि :------आग्नीध्रीये सोमे (वर्तमाने)। स्वरित्यौउद्गात्र (विहिते भ्रेषे) आहवनीये (जुहोति)।— का.श्रौ.सू. २५.१.८

२५०. सत्रे प्रायश्चित्तानि : आपवस्व हिरण्य-वदित्युद्गातृहोमो ध्वाङ्क्षारोहणे यूपस्य।— का.श्रौ.सू.२५.६.९ :

२५१. प्रायश्चित्तानि : अनीतासु चेद्दक्षिणा-सूद्गात्रपच्छेदोऽदक्षिणं संस्थाप्य पुनराहारः।— का. श्रौ. सू. २५.११.७

२५२. यस्मिन्नहन्युद्गात्रपच्छेदोऽहर्गणे तस्या-वृत्तिः।— का.श्रौ.सू. २५.११.१२

२५३.-चन्द्रमा मे ब्रह्मा पर्जन्यो म उद्गाताकाशो मे सदस्य---- इत्युपांशु देवतादेशनम्। असौ मानुष इत्युच्चैः।— आपस्तम्ब श्रौत सूत्र १०.१.१४

२५४. अग्निष्टोम प्रातसवनम् :---- - चक्षुरुपावधीश्चक्षुस्त्वा हास्यतीत्युद्गाता।-— आप.श्रौ.सू. १०.२.११

२५५. पर्जन्य उद्गाता स म उद्गातोद्गातर्देवयजनं मे देहीत्युद्गातारम्। — आप.श्रौ.सू.१०.३.१

उद्दिवं स्तभानान्तरिक्षं पृणेति प्राचीनकर्णां सहोद्गात्रोच्छ्रयति। उच्छ्रयस्व वनस्पते सजूर्देवेन बर्हिषेति वा। द्युतानस्त्वा मारुतोमिनोत्विति प्राचीनकर्णां सहोद्गात्रा मिनोति।— आप.श्रौ.सू. ११.९.१३

२५६. बहिष्पवमानः :- अध्वर्यु प्रस्तोतान्वारभते प्रस्तोतारं प्रतिहर्ता प्रतिहर्तारमुद्गातोद्गातारं ब्रह्मा ब्रह्माणं यजमानः।— आप.श्रौ.सू.१२.१७.१

२५७. वायुर्हिङ्कर्तेति प्रस्तोत्रे बर्हिर्मुष्टिं प्रयच्छति।— आप.श्रौ.सू. १२.१७.७

२५८. ततः संप्रेष्यति प्रैतु होतुश्चमसः प्र ब्रह्मणः प्रोद्गातुः प्र यजमानस्य। प्रोद्गातृणामित्येके समामनन्ति।— आप.श्रौ.सू. १२.२३.१३

२५९. दक्षिणेनोत्तरेण वा प्रशास्तुर्धिष्णियं परीत्योद्गातारो माध्यंदिनेन पवमानेन स्तुवते।— आप.श्रौ.सू. १३.२.९

२६०. अग्निष्टोम माध्यन्दिन सवनम् : एवं ब्रह्मणे मनः। अध्वर्यवे प्राणम्। उद्गात्रे चक्षुः।-- — आप.श्रौ.सू. १३.६.६

२६१. अग्निष्टोम माध्यन्दिन सवनम् : उद्गातृभ्यो (आज्यं) हरन्ति। तमुद्गातारो ऽवेक्षन्ते सत्रो त एतद्यदु त इहेति।— आप.श्रौ.सू. १३.१४.१

२६२. होतृचमसे ध्रुवायावकाशं कुरूद्गात्रा पत्नींसंख्यापयाप उपप्रवर्तयेति।— आप.श्रौ.सू. १३.१४.११

२६३. विश्वस्य ते विश्वावत इति हिङ्कारमनूद्गात्रा पत्नीं संख्यापयति।-— आप.श्रौ.सू. १३.१५.८, १४.१.७

२६४. यज्ञे मृतस्य प्रायश्चित्तम् : उद्गातारस्तिसृभिः सर्पराज्ञीभिरप्रतिहताभिः स्तुवीरन्।— आप.श्रौ.सू. १४.२१.१३

२६५. यदि सदोहविर्धानान्यभिदह्येरन्ग्रहान-ध्वर्युः स्पाशयेत्। स्तोत्राण्युद्गाता। शस्त्राणि होता।— आप.श्रौ.सू. १४.२५.१

२६६. यद्यौदुम्बरी नश्येदन्या प्रच्छिद्योर्गस्यूर्जं मयि धेहि-। धर्त्रि धरित्रि जनित्रि यमित्रीत्यध्वर्यु-रुद्गाता यजमानश्चोच्छ्रयन्ति।— आप.श्रौ.सू. १४.३३.२

२६७. अश्वमेधः :- उद्गातारमपरुध्याश्वमुद्गीथाय वृणीते। तस्मै वडवा उपरुन्धन्ति। ता यदभिहिङ्करोति स उद्गीथः। उदगासीदश्वो मेध्यो यज्ञिय इति शतेन शतपलेन च निष्केणोद्गातारमुपशिक्ष्येमां देवतामुद्गायन्तीमनूद्गायति संप्रेष्यति। तेन हिरण्येन स्तोत्रमुपाकरोति।— आप.श्रौ.सू. २०.१३.११

२६८. अग्न्याधेयम् (देवयजनयाजनम्) :---- उद्गातर्देवयजनं मे देहीत्युद्गातारं पर्जन्यो देवो दैव उद्गाता स ते देवयजनं ददात्वित्यों तथेति प्रतिवचनं---- बौ.श्रौ.सू. २.२,२.४

२६९. आङ्गिरसो ऽध्वर्युर्वासिष्ठो ब्रह्मा वैश्वामित्रो होतायास्य उद्गाता--- बौधायन श्रौत सूत्रम् २.३

२७०. अकुनखिनमध्वर्युमकिलासिनं ब्रह्माणम-खण्डँ होतारमकरालमुद्गातारमशिपिविष्टँ सदस्यम्— बौ.श्रौ.सू. २.३

२७१. अथोद्गातारमाहोद्गातरेहीममौदुम्बर्या अवटं खन प्राक् पुरीषमुद्वपतादिति तँ स खनति वा खानयति वा सो ऽत एव सदो विमिमीते-— बौ.श्रौ.सू. ६.२६

२७२. अग्निष्टोम प्रातः सवनम्। औदुम्बरी : अथैनामुद्गातृभ्यः प्राहुस्तस्यां तच्चेष्टन्ति यत्ते विदुरेतस्या

उच्छ्रयणमनु प्राचीनकर्णा स्थूणा उच्छ्रयन्ति-- बौ.श्रौ.सू. ६.२७

२७३. सोम राजन्नेह्यवरोहेति द्वाभ्यामथैन-मुद्गातृभ्यः प्राहुस्तस्मिँस्तच्चेष्टन्ति यत्ते विदुरथाप उपस्पृश्याहैहि यजमान इति— बौ.श्रौ.सू. ७.१, ७.२०, ८.१४

२७४. अग्निष्टोम तृतीय सवनम् : नेष्टः पत्नीमुदानयोद्गात्रा संख्यापयाप उपप्रवर्तयतादूरुणो-पप्रवर्तयान्नग्नं कृत्वोरुमुपप्रवर्तयत-बौ.श्रौ.सू. ८.१४

२७५. द्वादशाह मीमाँसा : चात्वाले ऽवनयेदास्तावे निनयेत्प्रोक्षणी कुर्वीत पुरोडाशीयानि पिष्टानि संयौयादित्यनादृत्य तदुद्गातृष्वधीना एवैना कुर्यादुद्गातारो हैताभिररण्येगेयानाँ साम्नाँ शुचँ शमयन्तो मन्यन्ते— बौ.श्रौ.सू. १६.४

२७६. अच्छावाकचमसे ग्रावस्तुदुद्गातृचमसे सुब्रह्मण्यो ऽपि वा सर्व एवाग्नीध्रचमसे भक्षयेयुः— बौ.श्रौ.सू. २५.१९

२७७. होतृचमसे चोद्गातृचमसे च सप्तसप्ताथेतरेषु नवनव— बौ.श्रौ.सू. २६.२

## उद्गीथ

१. ऋक् साम यजुरुच्छिष्ट उद्गीथः प्रस्तुतं स्तुतम्। हिङ्कार उच्छिष्टे स्वरः साम्नो मेडिश्च तन्मयि।।— अथर्ववेद ११.९.५

२. आसन्दी : सामासाद उद्गीथोऽपश्रयः~ तामासन्दीं व्रात्य आरोहत्।— ाथर्ववेद १५.३.९

३. सर्वप्रायश्चित्त विधायकं ब्राह्मणम्ः तदाहुः। यदृचा हौत्रं क्रियते। यजुषाऽऽध्वर्यवम्। साम्नोद्गीथः। अथ केन ब्रह्मत्वमिति। अनया त्रय्या विद्यायेति ह ब्रूयात्।— शतपथ ब्राह्मण ११.५.८.७

४. सर्वप्रायश्चित्त विधायकं ब्राह्मणम्ः-----ते ऋग्वेदेनैव हौत्रमकुर्वत। यजुर्वेदेनाध्वर्यवम्। सामवेदेनोद्गीथम्। यदेव त्रय्यै विद्यायै शुक्रम्, तेन ब्रह्मत्वम्।— श.ब्रा. ११.५.८.४

५. उद्गीथ ब्राह्मणम्। वैराज ब्राह्मणं वा : वाक्, प्राण, चक्षु, श्रोत्र, मन आदि द्वारा उद्गीथ के उद्गान से पाप्मा के निवारण का प्रयत्न करना तथा असफल होना। केवल अयास्य आंगिरस नामक प्राण द्वारा उद्गान करने पर ही पाप्मा से मुक्ति का वर्णन।— श.ब्रा. १४.४.१.१

६. एष उ वा उद्गीथः। प्राणो वा उत्। प्राणेन हीदं सर्वमुत्तब्धम्। वागेव गीथा। उच्च गीथा चेति। स उद्गीथः।— श.ब्रा. १४.४.१.२५

७. श्रीमन्थ कर्म ब्राह्मणम् : अथैनमभिमृशति---- --हिंकृतमसि हिंक्रियमाणमस्युद्गीथमस्युद्गीय-मानमसि श्रावितमसि प्रत्याश्रावितमसि- — श.ब्रा. १४.९.३.९

८. असितमृगा ह स्म वै पुरा कश्यपा उद्गायन्त्यथ ह युवानमनूचानं कुसुरुबिन्दमौद्दालकिं ब्राह्मणा उद्गीथाय वव्रे।-— षड्. ब्रा. १.४.१६

९. तस्य ह वा एतस्य संवत्सरस्य साम्नोऽहोरात्राणि हिंकारोऽर्धमासा प्रस्तावो मासा आदिर्ऋतव उद्गीथः पौर्णमास्यः प्रतिहारोऽष्टका उपद्रवोऽमावास्या निधनम्। तस्य ह वा एतस्य संवत्सरस्य साम्नो वसन्तो हिंकारो ग्रीष्मः प्रस्तावो वर्षा उद्गीथः शरत् प्रतिहारो हेमन्तो निधनम्।— षड्. ब्रा. ३.४.२२

१०. -----प्रबाहुग्वा ऋत्विजामुद्गीथ उद्गीथ एवोद्गातृणाम्-— तैत्तिरीय सं. ३.२.९.५

११. अश्वमेधः :- यदुद्गातोद्गायेत्। यथा क्षेत्रज्ञोऽन्येन पथा प्रतिपादयेत्। तादृक्तत्। उद्गातारमपरुद्ध्य। अश्वमुद्गीथाय वृणीते।-— तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.८.२२.१

१२. एष वै सोमस्योद्गीथो यत्पवते सोमोद्गीतमेव साम गायति।— ताण्ड्य ब्रा. ६.६.१८

१३. ते वै पञ्चान्यद् भूत्वा पञ्चान्यद् भूत्वाकल्पेताम्- आहावश्च हिंकारश्च प्रस्तावश्च प्रथमा चर्गुउद्गीथश्च मध्यमा च प्रतीहारश्चोत्तमा च निधनं च वषट्कारश्च।— गोपथ ब्रा. २.३.२०

१४. अग्निचिति :--- हिंकारेण त्वा छन्दसा सादयामि, प्रस्तावेन त्वा छन्दसा सादयाम्युद्गीथेन त्वा छन्दसा सादयामि, प्रतिहारेण त्वा छन्दसा सादयामि,

स्तुतेन त्वा छन्दसा सादयामि, निधनेन त्वा छन्दसा सादयामि।— मैत्रायणी सं. २.१३.४

१५. होतः किं स्तुतं स्तोत्रं प्रातरनुवाकेनान्वशंसीः इति। अकर्म वयं तद् यद् अस्माकं कर्म इत्य् आह उद्गातारं पृच्छत इति। उद्गातः किं स्तुतं स्तोत्रं होता प्रातरनुवाकेनान्वशंसीत् इति। अकर्म वयं तद् यद् अस्माकं कर्म इति ब्रूयाद् अगासिष्म यद् अत्र गेयम् इति।— जै.ब्रा. १.७६

१६. उद्गातार उद्गीथायाधोऽधो ऽक्षं द्रोणकलशं प्रोहन्ति। अस्माद् एवैतल् लोकाद् द्विषन्तं भ्रातृव्यम् अन्तरति।— जैमिनीय ब्रा. १.७७

१७. अथ मैधातिथम्। काण्वायनास् सत्राद् उत्थायायन्त आयुञ्जानाः। ते होद्गीथा इति किमुद्वत्यैतद्धनाम् उर्वारुबहुप्रवृत्तं शयानम् उपेयुः।-- जै.ब्रा. १.२२६

१८. तस्य गायत्रम् एव हिंकारो रथन्तरं प्रस्तावो वामदेव्यम् उद्गीथो बृहत् प्रतिहारो यज्ञायज्ञीयं निधनम्।— जै.ब्रा. १.२९२

१९. तद् आहुर् यद् ऋचा होतृत्वं क्रियते यजुषाध्वर्यवं साम्नोद्गीथो ऽथ केन ब्रह्मत्वं क्रियत इति।— जै.ब्रा. १.३५८

२०. तस्य गायत्रम् एव हिंकारो, रथन्तरं प्रस्तावो, वामदेव्यम् उद्गीथो, बृहत् प्रतिहारो, यज्ञायज्ञीयं निधनम्।— जै.ब्रा. २.४३३

२१. ---स एव प्रणवो ऽभवत्। स प्रतिगरस् स उद्गीथस् तद् आश्रावणम्। तस्माद् ओम् इति प्रणौत्य् ओम् इति प्रत्यागृणात्य् ओम् इत्य् उद्गायत्य् ओम् इत्य् आश्रावयति।— जै.ब्रा. ३.३२२

२२. तस्माद् एष एव साम। स एष एवोद्गीथः। स यद् उद् इत्य् एतेन हीदं सर्वम् उत्तब्धम्। अथ यद् गीत्य् एष हीदं सर्वं गिरति। अथ यत् थ इत्य् अन्नम् एवास्यैतत्। तस्माद् एष एवोद्गीथः।— जै.ब्रा. ३.३७९

२३. तेभ्यो (पशुभ्यो) हिंकारं प्रायच्छत्।--- प्रस्तावं मनुष्येभ्यः।---आदिं वयोभ्यः।--उद्गीथं देवेभ्योऽमृतम्। तस्मात्तेऽमृताः। प्रतिहारमारण्येभ्यः पशुभ्यः।-----उपद्रवं गन्धर्वाप्सरोभ्यः।----निधनं पितृभ्यः।— जैमिनीय उपनिषद ब्रा. १.३.१.६

२४. स यदनुदितः स हिंकारः। अर्धोदितः प्रस्तावः। आसंगवम् आदिः। माध्यंदिन उद्गीथः। अपराह्णः प्रतिहारः। यदुपास्तमयं लोहितायति स उपद्रवः। अस्तमित एव निधनम्।— जै.उ.ब्रा. १.३.२.४

२५. स वसन्तमेव हिंकारमकरोत्। ग्रीष्मं प्रस्तावम्। वर्षामुद्गीथम्। शरदं प्रतिहारम्। हेमन्तं निधनम्।— जै.उ.ब्रा. १.३.२.७

२६. स पुरोवातमेव हिंकारमकरोत्। जीमूतान् प्रस्तावम्। स्तनयित्नुमुद्गीथम्, विद्युतं प्रतिहारम्, वृष्टिं निधनम्-- — जै.उ.ब्रा. १.३.३.१

२७. स यजूंष्येव हिंकारमकरोत्। ऋचः प्रस्तावम्। सामान्युउद्गीथम्। स्तोमं प्रतिहारम्। छन्दो निधनम्।— जै.उ.ब्रा. १.३.३.३

२८. स मन एव हिंकारमकरोत्। वाचं प्रस्तावम्। प्राणमुद्गीथम्। चक्षुः प्रतिहारम्। श्रोत्रं निधनम्।— जै.उ.ब्रा. १.३.३.५

२९. अथैतदेकविंशं साम। तस्य त्रय्येव विद्या हिंकारः। अग्निर्वायुः असावादित्य एष प्रस्तावः। इम एव लोका आदिः येषु हीदं लोकेषु सर्वमाहितम्। श्रद्धा यज्ञो दक्षिणा एष उद्गीथः। दिशोऽवान्तरदिश आकाश एष प्रतिहारः। आपः प्रजा ओषधय एष उपद्रवः। चन्द्रमा नक्षत्राणि पितर एतन्निधनम्।— जै.उ.ब्रा. १.५.१.२

३०. स प्रजापतिर्हरसा हिंकारमुदजयत्। अग्निस्तेजसा प्रस्तावम्। रूपेण बृहस्पतिरुद्गीथम्। स्वधया पितरः प्रतिहारम्। वीर्येणेन्द्रो निधनम्।— जै.उ.ब्रा. १.६.२.२

३१. तस्यैतस्य (इन्द्रस्य) साम्न इयमेव प्राची दिक् हिंकारः। इयं प्रस्तावः। इयमादिः। इयमुद्गीथः। असौ प्रतिहारः। अन्तरिक्षमुपद्रवः। इयमेव निधनम्।--अथ यदुदीच्यां दिशि तत् सर्वमुद्गीथेन आप्नोति।— जै.उ.ब्रा. १.१०.१.३

३२. मन एव हिंकारः। वाक् प्रस्तावः। प्राण उद्गीथः। अन्नमेव चतुर्थः पादः।----अथाधिदैवतम्। चन्द्रमा एव हिंकारः। अग्निः प्रस्तावः। आदित्य उद्गीथः। आप एव चतुर्थः पादः।-----मण्डलं पुरुषः। रश्मय एव हिंकारः।-- -मण्डलं प्रस्तावः। पुरुष उद्गीथः। य एता आपोऽन्तः स एव चतुर्थः पादः।— जै.उ.ब्रा. १.११.१.५

३३. एवमेव चन्द्रमसो रश्मयो मण्डलं पुरुषः। रश्मय एव हिंकारः। मण्डलं प्रस्तावः। पुरुष उद्गीथः।— जै.उ.ब्रा. १.११.१.१०

३४. अथैतत् पर्जन्ये साम। तस्य पुरोवात एव हिंकारः। अथ यदभ्राणि संप्लावयति स प्रस्तावः। अथ यत् स्तनयति स उद्गीथः। अथ यद् विद्योतते स प्रतिहारः। अथ यद् वर्षति तन्निधनम्।— जै.उ.ब्रा. १.१२.२.१

३५. अथैतत् पुरुषे साम। तस्यायमेव हिंकारः। अयं प्रस्तावः। अयमुद्गीथः। अयं प्रतिहारः। इदं निधनम्।— जै.उ.ब्रा.१.१२.२.३

३६. तिर्यञ्चो लोकाः :- तस्य लोमैव हिंकारः। त्वक् प्रस्तावः। मांसमुद्गीथः। अस्थि प्रतिहारः। मज्जा निधनम्।— जै.उ.ब्रा. १.१२.२.६

३७. सम्यञ्चो लोकाः :- तस्य मन एव हिंकारः। वाक् प्रस्तावः। प्राण उद्गीथः। चक्षुः प्रतिहारः। दिश एव निधनम्।— जै.उ.ब्रा. १.१२.२.८

३८. अथैतद्देवतासु साम। तस्य वायुरेव हिंकारः। अग्निः प्रस्तावः। आदित्य उद्गीथः। चन्द्रमा प्रतिहारः। दिश एव निधनम्।— जै.उ.ब्रा. १.१२.२.९

३९. तौ (सा च अमः च) विराड् भूत्वा प्राजनयताम्। हिंकारश्च आहावश्च प्रस्तावश्च प्रथमा चोद्गीथश्च मध्यमा च प्रतिहारश्च उत्तमा च निधनं च वषट्कारश्च एवं विराड् भूत्वा प्राजनयताम्।— जै.उ.ब्रा. १.१७.२.८

४०. सोऽसावादित्यः स एष एव उत्। अग्निरेव गी। चन्द्रमा एव थम्। सामान्येव उत्। ऋच एव गी। यजूंष्येव थम्। इत्यधिदैवतम्। अथाध्यात्मम्। प्राण एव उत्। वागेव गी। मन एव थम्।।— जै.उ.ब्रा. १.१८.२.८

४१. तेषां (देवानां) वायुरेव हिंकार आस। अग्निः प्रस्तावः। इन्द्र आदिः। सोमाबृहस्पती उद्गीथः। अश्विनौ प्रतिहारः। विश्वेदेवाः उपद्रवः। प्रजापतिरेव निधनम्।— जै.उ.ब्रा. १.१८.३.९

४२. स एष पुत्री प्रजावानुद्गीथो य प्राणः तस्य स्वर एव प्रजाः।— जै.उ.ब्रा. २.१.२.६

४३. स एष वशी दीप्ताग्र उद्गीथो यत्प्राणः। एष हीदं सर्वं वशे कुरुते। वशी भवति। वशे स्वान् कुरुते।----तं हैतमुद्गीथं शाट्यायनिराचष्टे वशी दीप्ताग्र इति।— जै.उ.ब्रा. २.२.२.१

४४. प्राण उद्गीथ इति विद्वानेकं मनसा ध्यायेत् एको हि प्राणः।-- -प्राण उद्गीथ इत्येव विद्वान् द्वौ मनसा ध्यायेत्। द्वौ हि प्राणापानौ द्वौ हैवास्याजायेते।-- -प्राण उद्गीथ इत्येव विद्वाँस्त्रीन् मनसा ध्यायेत्। त्रयो हि प्राणोऽपानो व्यानः।----प्राण उद्गीथ इत्येव विद्वाँश्चतुरो मनसा ध्यायेत्। चत्वारो हि प्राणोऽपानो व्यानः समानः।-- -प्राण उद्गीथ इत्येव विद्वान् पञ्च मनसा ध्यायेत्। पञ्च हि प्राणोऽपानो व्यानः समानोऽवानः।-- -प्राण उद्गीथ इत्येव विद्वान् षण् मनसा ध्यायेत्। षड् हि प्राणोऽपानो व्यानः समानोऽवानः उदानः।---प्राण उद्गीथ इत्येव विद्वान् सप्त मनसा ध्यायेत्। सप्त हीमे शीर्षण्याः प्राणाः -- -प्राण उद्गीथ इत्येव विद्वान्नव मनसा ध्यायेत्। सप्त शीर्षण्याः प्राणाः। द्वाववाञ्चौ।--- -प्राण उद्गीथ इत्येव विद्वान् दश मनसा ध्यायेत्। सप्त शीर्षण्याः प्राणाः। द्वाववाञ्चौ। नाभ्यां दशमः।--प्राण उद्गीथ इत्येव विद्वान् सहस्रं मनसा ध्यायेत्। सहस्रं हैत आदित्यरश्मयः। तेऽस्य पुत्राः।— जै.उ.ब्रा. २.२.४.१

४५. एवं हैवैतमुद्गीथं पर आट्णारः कक्षीवांस्त्रसदस्युरिति पूर्वे महाराजाः श्रोत्रियाः सहस्रपुत्रमुपनिषेदुः।— जै.उ.ब्रा. २.२.४.११

४६. शर्यातो वै मानवः प्राच्यां स्थल्यामयजत। तस्मिन् ह भूतान्युद्गीथेऽपि समैषिरे।---- जै.उ.ब्रा. २.३.१.१

४७. बहवो ह्येत आदित्यस्य रश्मयः तेऽस्य पुत्राः। तस्मात् बहुपुत्र एष उद्गीथ इत्येवोपासितव्यम्।— जै.उ.ब्रा. २.३.३.१०

४८. स एष इन्द्र उद्गीथः। स यदैष इन्द्र उद्गीथ आगच्छति नैवोद्गातुश्चोपगातॄणां च विज्ञायते। इत एवोर्ध्वः स्वर उदेति। स उपरि मूर्ध्नो लेलायति।— जै.उ.ब्रा. ३.६.९.६

४९. स वा एष उद्गीथः कामानां संवत्। ओंवा३च् ओंवा३च् ओंवा३च् हुम् भा ओं वागिति।— जै.उ.ब्रा. ४.६.३.९

५०. पुरुषो वै यज्ञः। पुरुषो होद्गीथः। अथैत एव मृत्यवो यदग्निर्वायुरादित्यश्चन्द्रमाः।-— जै.उ.ब्रा. ४.७.१.१

५१. तस्मा एतं गायत्रस्योद्गीथमुपनिषदममृत-मुवाचाग्नौ वायावादित्ये प्राणेऽन्ने वाचि।— जै.उ.ब्रा. ४.८.५.२

५२. एवं वा एतं गायत्रस्योउद्गीथमुपनिषदम-मृतमिन्द्रोऽगस्त्यायोवाच।— जै.उ.ब्रा. ४.९.१.१

५३. ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत, ओमिति ह्युद्गायति तस्योपव्याख्यानम्। एषां भूतानां पृथिवी रसः पृथिव्या आपो रसोऽपामोषधयो रस ओषधीनां पुरुषो रसः पुरुषस्य वाग्रसो वाच ऋग्रस ऋचः साम रसः साम्न उद्गीथो रसः। स एष रसानाँ रसतमः परमः परार्ध्योऽष्टमो यदुद्गीथः।— छान्दोग्योपनिषद १.१.१

५४. समर्धयिता ह वै कामानां भवति य एतदेवं विद्वानक्षरमुद्गीथमुपास्ते। -छा.उ. १.१.८

५५. तद्ध देवा उद्गीथमाजहुरनेनैनानभि-भविष्याम इति। ते ह नासिक्यं प्राणमुद्गीथमुपा-संचक्रिरे----अथ ह वाचमुद्गीथमुपा-सांचक्रिरे---अथ ह चक्षुरुद्गीथ-मुपासांचक्रिरे---अथ ह श्रोत्रमुद्गीथमुपासांचक्रिरे--अथ ह मन उद्गीथमुपासांचक्रिरे----अथ ह य एवायं मुख्यः प्राणस्तमुद्गीथमुपासांचक्रिरे तँ हासुरा ऋत्वा विदध्वँसुर्यथाऽश्मानमाखणमृत्वा विध्वँसेत।--- तँ हाङ्गिरा उद्गीथमुपासांचक्र एतमु एवाङ्गिरसं मन्यन्तेऽङ्गानां यद्रसः। तेन तँह बृहस्पतिरुद्गीथमुपासांचक्र----तेन तँहायास्य उद्गीथमुपासांचक्र--आगाता ह वै कामानां भवति य एतदेवं विद्वानक्षरमुद्गीथमुपास्त इत्यध्यात्मम्।— छां.उ. १.२.२

५६. अथाधिदैवतं य एवासौ तपति तमुद्गीथमुपासीतोद्यन्वा एष प्रजाभ्य उद्गायति-— छां. उ. १.३.१

५७. तस्माद्वा एतमिममुं चोद्गीथमुपासीत। अथ खलु व्यानमेवोद्गीथमुपासीत।----यत्साम स उद्गीथस्तस्मादप्राणन्नपानन्नुद्गायति।---- एतस्य हेतोर्व्यानमेवोद्गीथमुपासीत।— छां.उ. १.३.२

५८. अथ खलूद्गीथाक्षराण्युपासीतोद्गीथ इति प्राण एवोत्प्राणेन ह्युत्तिष्ठति वाग्गीर्वाचो ह गिर इत्याचक्षतेऽन्नं थमन्ने हीदं सर्वँ स्थितम्। द्यौरेवोदन्तरिक्षं गी पृथिवी थमादित्य एवोद्वायुर्गीरग्निस्थँ सामवेद एवोद्यजुर्वेदो गीर्ऋग्वेदस्थं दुग्धेऽस्मै वाग्दोहं यो वाचो दोहो ऽन्नवानन्नादो भवति य एतान्येवं विद्वानुद्गीथाक्षराण्युपासत उद्गीथ इति।— छां.उ. १.३.६

५९. ॐमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीतोमिति ह्युद्गायति तस्योपव्याख्यानम्।— छां.उ. १.४.१

६०. अथ खलु य उद्गीथः स प्रणवो यः प्रणवः स उद्गीथ इत्यसौ वा आदित्य उद्गीथ एष प्रणव ओमिति ह्येष स्वरन्नेति।— छां.उ. १.५.१

६१. अथाध्यात्मं य एवायं मुख्यः प्राणस्तमुद्गीथमुपासीतोमिति ह्येष स्वरन्नेति।----अथ खलु य उद्गीथः स प्रणवो यः प्रणवः स उद्गीथ-— छां.उ. १.५.३

६२. तस्यर्क् च साम च गेष्णौ तस्मादुद्गीथस्तस्मात्त्वेवोद्गातैतस्य हि गाता-— छां.उ. १.६.८

६३. त्रयो होद्गीथे कुशला बभूवुः शिलकः शालावत्यश्चैकितायनो दाल्भ्यः प्रवाहणो जैवलिरिति, ते होचुरुद्गीथे वै कुशलाः स्मो हन्तोद्गीथे कथां वदाम इति।-— छां.उ. १.८.१

६४. स एष परोवरीयानुद्गीथः स एषोऽनन्तः परोवरीयो हास्य भवति---य एतदेवं विद्वानपरोवरीयाँसमुद्गीथमुपास्ते।— छां.उ. १.९.२

६५. यावत्त एनं प्रजायामुद्गीथं वदिष्यन्ते परोवरीयो हैभ्यस्तावदस्मिँल्लोके जीवनं भविष्यति।— छां.उ. १.९.३

६६. एवमेवोद्गातारमुवाचोद्गातर्या देवोद्गीथ-मन्वायत्ता तां चेदविद्वानुद्गास्यसि मूर्धा ते विपतिष्यतीति।— छां. उ. १.१०.१०, १.११.६, १.११.७

६७. अथातः शौव उद्गीथस्तद्ध बको दाल्भ्यो ग्लावो वा मैत्रेयः स्वाध्यायमुद्वव्राज।— छां.उ. १.१२.१

६८. पृथिवी हिंकारोऽग्निः प्रस्तावोऽन्तरिक्ष-मुद्गीथ आदित्यः प्रतिहारो द्यौर्निधनमित्यूर्ध्वेषु। अथावृत्तेषु द्यौर्हिंकार आदित्यः प्रस्तावोऽन्तरिक्ष-मुद्गीथोऽग्निः प्रतिहारः पृथिवी निधनम्।— छां.उ. २.२.१

६९. पुरोवातो हिंकारो मेघो जायते स प्रस्तावो वर्षति स उद्गीथो विद्योतते स्तनयति स प्रतिहारः।— छां.उ. २.३.१

७०. वसन्तो हिंकारो ग्रीष्मः प्रस्तावो वर्षा उद्गीथः शरत्प्रतिहारो हेमन्तो निधनम्।— छां.उ. २.५.१

७१. अजा हिंकारोऽवयः प्रस्तावो गाव उद्गीथोऽश्वाः प्रतिहारः पुरुषो निधनम्।— छां.उ. २.६.१

७२. प्राणो हिंकारो वाक्प्रस्तावश्चक्षुरुद्गीथः श्रोत्रं प्रतिहारो मनो निधनं— छां. उ. २.७.१

७३. यदुदिति स उद्गीथो यत्प्रतीति स प्रतिहारो यदुपेति स उपद्रवो यन्नीति तन्निधनम्।— छां.उ. २.८.२

७४. यत्पुरोदयात्स हिंकारः-- -यत्प्रथमोदिते स प्रस्तावः--यत्सङ्गववेलायाँ स आदिः-यत्संप्रति मध्यन्दिने स उद्गीथ स्तदस्य देवा अन्वायत्तास्तस्मात्ते सत्तमा प्राजापत्यानामुद्गीथ-भाजिनो ह्येतस्य साम्नः।— छां.उ. २.९.२

७५. हिंकार इति त्र्यक्षरं प्रस्ताव इति त्र्यक्षरं तत्समम्।-- -उद्गीथ इति त्र्यक्षरमुपद्रव इति चतुरक्षरं त्रिभिस्त्रिभिः समं भवत्यक्षरमतिशिष्यते त्र्यक्षरं तत्समम्।— छां.उ. २.१०.३

७६. गायत्र साम : मनो हिंकारो वाक्प्रस्तावश्चक्षुरुद्गीथः श्रोत्रं प्रतिहारः प्राणो निधनमेतद्गायत्रं प्राणेषु प्रोतम्।— छां.उ. २.११.१

७७. रथन्तर साम : अभिमन्थति स हिंकारो धूमो जायते स प्रस्तावो ज्वलति स उद्गीथोऽङ्गारा भवन्ति स प्रतिहार-— छां.उ. २.१२.१

७८. वामदेव्यं साम : उपमन्त्रयते स हिंकारो ज्ञपयते स प्रस्तावः स्त्रिया सह शेते स उद्गीथः प्रति स्त्रीं सह शेते स प्रतिहारः कालं गच्छति तन्निधनं-— छां.उ. २.१३.१

७९. बृहत् साम : उद्यन्हिंकार उदितः प्रस्तावो मध्यन्दिन उद्गीथोऽपराह्णः प्रतिहारोऽस्तं यन्निधनम्— छां.उ. २.१४.१

८०. वैरूपं साम : अभ्राणि संप्लवन्ते स हिंकारो मेघो जायते स प्रस्तावो वर्षति स उद्गीथो विद्योतते स्तनयति स प्रतिहार उद्गृह्णाति तन्निधनम्।— छां.उ. २.१५.१

८१. वैराजम् साम : वसन्तो हिंकारो ग्रीष्मः प्रस्तावो वर्षा उद्गीथः शरत्प्रतिहारो हेमन्तो निधनम्— छां.उ. २.१६.१

८२. शक्वर साम : पृथिवी हिंकारो ऽन्तरिक्षं प्रस्तावो द्यौरुद्गीथो दिशः प्रतिहारः समुद्रो निधनम्— छां.उ. २.१७.१

८३. रैवत साम : अजा हिंकारोऽवयः प्रस्तावो गाव उद्गीथोऽश्वाः प्रतिहारः पुरुषो निधनम— छां.उ. २.१८.१

८४. यज्ञायज्ञीयम् साम : लोम हिंकारस्त्वक्प्रस्तावो माँसमुद्गीथोऽस्थि प्रतिहारो मज्जा निधनम् — छां.उ. २.१९.१

८५. राजनं साम : अग्निर्हिंकारो वायुः प्रस्ताव आदित्य उद्गीथो नक्षत्राणि प्रतिहारश्चन्द्रमा निधनम्— छां.उ. २.२०.१

८६. त्रयी विद्या हिंकारस्त्रय इमे लोकाः स प्रस्तावो ऽग्निर्वायुरादित्यः स उद्गीथो नक्षत्राणि वयाँसि मरीचयः स प्रतिहारः सर्पा गन्धर्वाः पितरस्तन्निधनम्— छां.उ. २.२१.१

८७. अग्नेरुद्गीथोऽनिरुक्तः प्रजापतेर्निरुक्तः सोमस्य मृदु श्लक्ष्णं वायोः श्लक्ष्णं बलवदिन्द्रस्य क्रौञ्चं बृहस्पतेरपध्वान्तं वरुणस्य— छां.उ. २.२२.१

८८. अथैनमभिमृशति---- -हिंकृतमसि हिंक्रियमाणमस्युद्गीथमस्युद्गीयमानमसि श्रावितमसि प्रत्याश्रावितमसि-- बृहदारण्यक उ. ६.३.४

८९. अंबुः पृथगुद्गीथदोषान् भवन्तो ब्रुवन्त्विति।— प्रणवोपनिषद

९०. प्रणवोद्गीथवपुषे महाश्वशिरसे नमः स्वाहा स्वाहा नमः। उद्गीथ प्रणवोद्गीथ सर्ववागीश्वरेश्वर।— हयग्रीवोपनिषद १.२

९१. स एष इन्द्रः सर्वं यद्गायत्री उद्गीथो वसवः प्रातस्सवनमिति।----स होवाचेन्द्रो यत्त्वा-मुद्गीथेनोपावनेष्यन्ते तेनैव ते कल्पयिष्यन्तीति।----- यदुद्गीथं सप्तभिरभिप्रपद्यन्ते तत्सप्तति।-- -यदिन्द्र एवोद्गीथस्तद्वृषभ इति। मरुत्वन्तं वृषभं वावृधानम्-— शौनकोपनिषद

९२. अथ खलु य उद्गीथः स प्रणवो यः प्रणवः स उद्गीथ इत्यसौ वा आदित्य उद्गीथ एष प्रणवा इत्येवं ह्याहोद्गीथं प्रणवाख्यं प्रणेतारं भारूपं-— मैत्रायण्युपनिषद ६.४

९३. एषाऽग्नौ हुतमादित्यं गमयत्यतो यो रसोऽस्रवत्स उद्गीथं वर्षति तेनेमे प्राणाः-— मैत्रायण्युपनिषद ६.३७

९४. आसन्दी वर्णनम् :- ----सोमांशव उपस्तरणमुद्गीथ उपश्रीः श्रीरुपबर्हणं तस्मिन्ब्रह्मास्ते-— कौषीतकिब्राह्मणोपनिषद १.५

९५. अग्न्याधेय : व्याहृतीभिरेवोद्गीथं भवतीति वाजसनेयकम्।— आपस्तम्ब श्रौ.सू. ५.१६.८

९६. ----बहिष्पवमानं सर्पन्त्यग्निर्मूर्धेति। उद्गातारमपरुध्याश्वमुद्गीथाय वृणीते। तस्मै वडवा उपरुन्धन्ति। ता यदभिहिङ्करोति स उद्गीथः। यत्प्रत्यभिहिङ्कुर्वन्ति स उपगीथः।— आपस्तम्ब श्रौ.सू. २०.१३.४

९७. --- -अभ्यश्वं वडवाः क्रन्दन्त्यभ्यश्वो वडवाः क्रन्दति सो ऽश्वस्योद्गीथस्तत्पुण्या वाचः संप्रवदन्ति।— बौ.श्रौ.सू. १५.१७

९८. ---यां विगणँ ह्वयति स शस्त्रस्य प्रतिगरो यदभिक्रोशन्ति स उद्गीथः--- बौ.श्रौ.सू. १८.२४

९९. यदि दीक्षा दीर्घाः स्युराश्वासिका आहर्तारस्तथोद्गीथः कामं दीक्षयेदिति।— बौ.श्रौ.सू. २१.७

## उद्धव

१. इमं यम प्रस्तरमा हि सीदाऽङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः।— ऋ.१०.१४.४

२. अव वेति सुक्षयं सुते मधूदिद्धूनोति वातो यथा वनम्। (इन्द्रः)— ऋ.१०.२३.४

३. ततस्त्वा ब्रह्मोदह्वयत् स हि नेत्रमवेत् तव (वशा गौ)— अथर्ववेद १०.१०.२२

४. ऋषीणां प्रस्तरोऽसि नमोऽस्तु दैवाय प्रस्तराय।— अ.१६.२.६

५. इमं यम प्रस्तरमा हि रोहाङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः।— अ.१८.१.६०

६. उदह्वमायुरायुषे क्रत्वे दक्षाय जीवसे।— अ.१८.२.२३

७. रोहितेन त्वाऽग्निर्देवतां गमयतु इत्याह ऐते वै देवाश्वाः यजमानः प्रस्तरो यदेतैः प्रस्तरं प्रहरति देवाश्वैरेव यजमानं सुवर्गं लोकं गमयति।— तैत्तिरीय संहिता १.७.४.४

८. बर्हिविषयक प्रयोगः :- पुरस्तात्प्रस्तरं गृह्णाति मुख्यमेवैनं करोतीयन्तं गृह्णाति----। उत्तरं बर्हिषः प्रस्तरं सादयति प्रजा वै बर्हिर्यजमानः प्रस्तरो यजमानमेवायजमानादुत्तरं करोति।— तै.सं.२.६.५.२

९. किं यज्ञस्य यजमान इति प्रस्तर इति तस्य क्व सुवर्गो लोक इत्याहवनीय इति ब्रूयाद्यत्प्रस्तरमाहवनीये प्रहरति यजमामेव सुवर्गं लोकं गमयति वि वा एतद्यजमानो लिशते यत्प्रस्तरं योयुप्यन्ते।— तै.सं.२.६.५.५

१०. आतिथ्येष्टिः :- प्रजापतेर्वा एतानि पक्ष्माणि यदश्ववाला ऐक्षवी तिरश्ची, यदाश्ववालः प्रस्तरो भवत्यैक्षवी तिरश्ची, प्रजापतेरेव तद्यक्षुः संभरति।— तै.सं.६.२.१.५

११. यूपस्थापनम् : ते (देवाः) प्रस्तरं स्रुचां निष्क्रयणमपश्यन्त्स्वरुं यूपस्य, संस्थिते सोमे प्र प्रस्तरं हरति, जुहोति स्वरुमयज्ञवेशसाय।— तै.सं.६.३.४.९

१२. अनग्नंभावुकोऽध्वर्युर्बर्हिषि प्रस्तरं सादयति यजमानो वै प्रस्तरः प्रजा बर्हि यजमानमेव प्रजास्वधि सादयति-— काठक सं.२५.५

१३. प्रस्तरं धारयन् परिधीन् परिदधाति यजमानो वै प्रस्तरस्वयमेतद्यजमान आत्मानं परिदधाति रक्षसामपहत्यै।— काठक संहिता ३१.१०

१४. मरुतां पृषती वशा पृश्निर्भूत्वा दिवं गच्छेति यजमानो वै प्रस्तरो हविर्भूतमेवैनं स्वर्गं लोकं गमयति ततो नो वृष्टिमेरयेति-— काठक सं. ३१.११

१५. रोहितेन त्वाग्निर्देवतां गमयतु हरिभ्यां त्वेन्द्रो देवतां गमयत्विति यजमानो वै प्रस्तरो हविर्भूतमेवैनं स्वर्गं लोकं गमयति-— काठक सं.३२.३

१६. प्रस्तरेण परिधिना स्रुचा वेद्या च बर्हिषा। ऋचेमं यज्ञं नो वह स्वर्देवेषु गन्तवे।— काठक सं. ४०.१३

१७. अध्वर्युः प्रस्तरं हरन् संर्पति। तम् अनुमन्त्रयते एतद् अहं दैव्यं वाजिनं संमाज्मि इति। संसृष्टम् एवैनं शान्तम् आरोहति नार्तिम आर्छति।— जै.ब्रा.१.८४

१८. ब्रह्मा षष्ठस् सर्पति। षड् वै छन्दांसि---- प्रस्तरं हरन्तस् सर्पन्ति। यजमानो वै प्रस्तरो बर्हिः प्रजाः। यद् उपर्युपरि बर्हिः प्रस्तरं हरन्ति यजमानम् एव तत् प्रजास्व् अध्यूहन्ति।--- जै.ब्रा.१.८६

१९. औद्धवान्धारयमाणस्त्रिरस्तृणन्प्रतिपर्येति। औद्धवः प्रस्तरः। प्रस्तरस्य ग्रहणसादने तूष्णीम्।— आप.श्रौ.सू.८.१४.६

२०. शरमयं बर्हिः। औद्धवः प्रस्तरः।--- आप.श्रौ.सू.२२.४.२०

२१. प्रसव्यमुद्धावं त्रिः परिस्तीर्य कर्ष्वामुद्धवानास्तृणाति।— मानव श्रौ.सू.१.१.२.१०

२२. दर्व्योद्धृत्योद्धवेषु पिण्डान्निदधाति।— मानव श्रौ.सू.१.१.२.१९

२३. उद्धवाननुप्रहृत्य वीरं नो दत्त पितर इत्युदङ्कीमवजिघ्रेत्।— मानव श्रौ.सू.१.१.२.३३

२४. श्वोभूते पश्चाउद्गार्हपत्यस्योदीच उद्धूय संस्तृणाति।— मानव श्रौ.सू.१.२.१.१

२५. उद्धूय बर्हिः स्तृणाति। प्रसव्यमुद्धावं त्रिः परिस्तीर्योद्धवात्प्रस्तरं तूष्णीं गृह्णाति— मानव श्रौ.सू. १.७.६.१८

२६. तूष्णीं प्रस्तरमुद्धवमादत्ते। समन्तं बर्हिस्त्रिः स्तृणन्पर्येत्या विष्ठेति।— वाराह श्रौ.सू.१.७.४.२२

२७. यद्युद्धून्वन्निव वातो वायात्तमनुमंत्रयते भूर्भुवः सुवो भूर्भुवः सुवो भूर्भुवः सुवो भुवो ऽधायि भुवो ऽधायि भुवो ऽधायि-— बौधा.श्रौ.सू.९.१८

२८. इध्माबर्हिषोः प्रोक्षणस्तरणपूर्वकं परिधिपरिधानम् : अथ विस्रंस्य ग्रन्थिं पुरस्तात् प्रस्तरं गृह्णाति-विष्णोस्तुपोऽसि इति। यज्ञो वै विष्णुः, तस्येयमेव शिखा स्तुपः।— शत. ब्रा.१.३.३.५

२९. अथ बर्हिस्तृणाति। अयं वै स्तुपः प्रस्तरः। अथ यान्यवाञ्चि लोमानि, तान्येवास्यः यदितरं बर्हिः, तान्येवास्मिन्नेतद्दधाति।— श.ब्रा.१.३.३.७

३०. शिरो वै यज्ञस्याहवनीयः। उपर्युपरि प्रस्तरं धारयन् कल्पयति। अयं वै स्तुपः प्रस्तरः। एतमेवास्मिन्ननेतत् प्रति दधाति।— श.ब्रा.१.३.३.१२

३१. स द्वे तृणे आदाय तिरश्ची निदधाति-सवितुर्बाहू स्थः। अयं वै स्तुपः प्रस्तरः। अथास्यैते भ्रुवावेव तिरश्ची निदधाति।---क्षत्रं वै प्रस्तरः, विश इतरं बर्हिः।— श.ब्रा.१.३.४.१०

३२. अथ ते पवित्रे प्रस्तरेऽपिसृजति। यजमानो वै प्रस्तरः, प्राणोदानौ पवित्रे; यजमाने तत् प्राणोदानौ दधाति।— श.ब्रा.१.८.१.४४

३३. अथ प्रस्तरमादत्ते। यजमानो वै प्रस्तरः। यत्रास्य यज्ञोऽगन्,तदेवैतद् यजमानं स्वगाकरोति।--- श.ब्रा.१.८.३.११

३४. सो ऽनक्ति-व्यन्तु वयोऽक्तं रिहाणाः (खादन्तु इमं प्रस्तरं देवाः येभ्यो होष्यते)— श.ब्रा.१.८.३.१४

३५. अथैकं तृणं अपगृह्णाति। यजमानो वै प्रस्तरः। स यत्कृत्स्नं प्रस्तरम् अनुप्रहरेत् क्षिप्रे ह यजमानो ऽमुं लोकमियात्---- श.ब्रा.१.८.३.१६

३६. तं (प्रस्तरं) प्राञ्चमनुसमस्यति-प्राची हि देवानां दिक्। अथो उदञ्चम्। उदीची हि मनुष्याणां दिक्। तमङ्गुलिभिरेव योयुप्येरन्, न काष्ठैः।— श.ब्रा.१.८.३.१८

३७. स सम्प्रगृह्णाति। संस्रवभागा स्थेषा बृहन्तः। संस्रवो ह्येव खलु परिशिष्टो भवति। प्रस्तरेष्ठा परिधेयाश्च देवाः इति। प्रस्तरश्च हि परिधयश्चानुप्रहृता भवन्ति।— श.ब्रा.१.८.३.२५

३८. पत्नीसंयाजः :- तदिडान्तं भवति। नह्यत्र परिधयो भवन्ति, न प्रस्तरः। यत्र वा अदः प्रस्तरेण यजमानं स्वगा करोति, पतिं वा अनुजाया-तदेवास्यापि पत्नी स्वगाकृता भवति।— श.ब्रा.१.९.२.१४

३९. त्रेधा बर्हिः सन्नद्धं भवति। तत्पुनरेकधा। एतद्धि प्रजननस्य रूपम्। प्रजननमु हीदम्-पिता, माता, यज्जायते तत्तृतीयम्। तस्मात्त्रेधा सन्पुनरेकधा। प्रस्व उपसन्नद्धा भवन्ति। तं प्रस्तरं गृह्णाति। प्रजननमु हीदम् प्रजननमु हि प्रस्वः। तस्मात् प्रसूः प्रस्तरं गृह्णाति।— श.ब्रा.२.५.१.१८

४०. सूक्तवाकं होता प्रतिपद्यते। अथैता उभावेव प्रस्तरौ समुल्लुम्पतः, उभावनुप्रहरतः, उभौ तृणे अपगृह्योपासाते-यदा होता सूक्तवाकमाह।— श.ब्रा.२.५.२.४२

४१. न प्रस्तरं गृह्णाति। सकृदु ह्येव पराञ्चः पितरः। तस्मान्न प्रस्तरं गृह्णाति।— श.ब्रा.२.६.१.१४

४२. अथ सन्नहनमनुविस्रंस्य, अपसलवि त्रिः परिस्तृणन् पर्येति। सो ऽपसलवि त्रिः परिस्तीर्य यावत् प्रस्तरभाजनं तावत् परिशिनष्टि। अथ पुनः प्रसलवि त्रिः पर्येति।---- श.ब्रा.२.६.१.१५

४३. पितृयज्ञः :- इषिता दैव्या होतारो भद्रवाच्याय प्रेषितो मानुषः सूक्तवाकाय-इति। सूक्तवाकं होता प्रतिपद्यते। नाध्वर्युः। प्रस्तरं समुल्लुम्पति इत्येवोपास्ते-यदा होता सूक्तवाकमाह।— श.ब्रा.२.६.१.४५

४४. वैसर्जन होमः :- आश्ववालः प्रस्तरः। यज्ञो ह देवेभ्यो ऽपचक्राम। सोऽश्वो भूत्वा पराङाववर्त। तस्य देवाः अनुहाय वालानभिपेदुः। तानालुलुपुः।-- -तत एता ओषधयः समभवन्-यदश्ववालाः।— श.ब्रा. ३.४.१.१७

४५. आददते ग्राव्णः,---- आश्ववालं प्रस्तरम्, ऐक्षव्यौ विधृती।---— श.ब्रा.३.६.३.१०

४६. ---तत्प्रोक्ष्योपनिनीय विस्रंस्य ग्रन्थिम्। आश्ववालः प्रस्तर उपसन्नद्धो भवति। तं गृह्णाति। गृहीत्वा प्रस्तरमेकवृद्बर्हिः स्तृणाति। स्तीर्त्वा बर्हिः---— श.ब्रा. ३.६.३.१४

४७. प्रवर्ग्य कर्मणि अवान्तरदीक्षा : अथ प्रस्तरे निह्नुवते।---यज्ञो वै प्रस्तरः। तद् यज्ञं पुनरारभन्ते---- न देवेभ्य आवृश्च्यन्ते। तस्मात् प्रस्तरे निह्नुवते।-— श.ब्रा. ३.४.३.१९

४८. अथाह समुल्लुप्य प्रस्तरम् : अग्नीन्मदन्ति आपा ३ इति। मदन्तीत्यग्नीदाह। ताभिरेहीत्यु-पर्य्युपर्य्यग्निमतिहरति।-— श.ब्रा. ३.४.४.२२

४९. वैश्वकर्मणहोमः :- प्रस्तरेण परिधिना स्रुचा वेद्या च बर्हिषा। ऋचेमं यज्ञं नो नय स्वर्देवेषु गन्तवे।— श.ब्रा. ९.५.१.४८

५०. अथ यद्बर्हिः स्तृणाति। तस्मादिमाः प्रजा लोमशा जायन्ते। अथ यत्पुनरिव प्रस्तरं स्तृणाति। तस्मादासां पुनरिव श्मश्रूण्ययौपपक्ष्माणि दुर्बीरिणानि जायन्ते। अथ यत्केवलमेवाग्रे प्रस्तरमनु प्रहरति, तस्माच्छीर्षण्येवाग्रे पलितो भवति।---— श.ब्रा. ११.४.१.१४

५१. यत्प्रस्तरं यजुषा गृह्णीयात्। प्रमायुको यजमानः स्यात्। यन्न गृह्णीयात्। अनायतनः स्यात्। तूष्णीमेव न्यस्येत्। न प्रमायुको भवति। नानायतनः।— तैत्तिरीय ब्राह्मण १.६.८.८

५२. पुरस्तात् प्रस्तरं गृह्णाति। मुख्यमेवैनं करोति।-- -यजमानो वै प्रस्तरः। प्राणापानौ पवित्रे। यजमान एव प्राणापानौ दधाति। ऊर्णाम्रदसं त्वा स्तृणामीत्याह।---- धारयन्प्रस्तरं परिधीन्परिदधाति।— तै.ब्रा.३.३.६.७

५३. स्रुक्षु प्रस्तरमनक्ति। इमे वै लोकाः स्रुचः। यजमानः प्रस्तरः। यजमानमेव तेजसा अनक्ति। त्रेधाऽनक्ति। त्रय इमे लोकाः।---- तै.ब्रा.३.३.९.२

५४. अयं प्रस्तर उभयस्य धर्ता। धर्ता प्रयाजानामुतानुयाजानाम्। स दाधार समिधो विश्वरूपाः। तस्मिन्त्स्रुचो अध्यासादयामि।— तै.ब्रा.३.७.६.८

५५. बहिष्पवमान में प्रसर्पण के समय : अध्वर्युः प्रस्तरं हरति। यजमानो वै प्रस्तरो यजमानमेव तत् स्वर्गं लोकं हरति। यज्ञो वै देवेभ्यो ऽश्वो भूत्वापाक्रामत्तं देवाः प्रस्तरेणारमयंस्तस्मादश्वः प्रस्तरेण सम्मृज्यमान उपावरमते यदध्वर्यु प्रस्तरं हरति यज्ञस्य शान्त्या अप्रत्रासाय।-— ताण्ड्य ब्रा.६.७.१७

५६. प्रस्तरमासद्योद्गायेद्धविषोऽस्कन्दाय।— तां.ब्रा. ६.७.२१

५७. अतमृतवादिभ्योनमो दिवे नमः पृथिव्या इति प्रस्तरे निह्नुवते द्यावापृथिवीभ्यामेव तं नमस्कुर्वन्ति अथो एने वर्धयन्त्येव वर्धयन्त्येव।— ऐ.ब्रा.१.२६

## उन्नेता

१. ऋबीसे अत्रिमश्विनावनीतमुन्निन्यथुः सर्वगणं स्वस्ति।।— ऋग्वेद १.११६.८

२. विप्रुतं रेभमुदनि प्रवृक्तमुन्निन्यथुः सोममिव स्रुवेण।।— ऋ.१.११६.२४

३. नीचा सन्तमुदनयः परावृजं प्रान्धं श्रोणं श्रवयन् त्सास्युक्थ्यः।।— ऋ.२.१३.१२

४. युवा सुवासाः परिवीत आगात् स उ श्रेयान् भवति जायमानः। तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्तः।।— ऋ.३.८.४

५. हंसा इव श्रेणिशो यतानाः शुक्रा वसानाः स्वरवो न आगुः। उन्नीयमानाः कविभिः पुरस्ताद् देवा देवानामपि यन्ति पाथः।।— ऋ.३.८.९

६. पुरू सहस्रा नि शिशा अभि क्षामुत् तूर्वयाणं धृषता निनेथ।।— ऋ.६.१८.१३

७. इन्द्रासोमा वासयथ उषासमुत् सूर्यं नयथो ज्योतिषा सह। उप द्यां स्कम्भथुः स्कम्भनेनाप्रथतं पृथिवीं मातरं वि।।— ऋ.६.७२.२

८. प्र सोमस्य पवमानस्योर्मय इन्द्रस्य यन्ति जठरं सुपेशसः। दध्ना यदीमुन्नीता यशसा गवां दानाय शूरमुदमन्दिषुः सुताः।।— ऋ.९.८१.१

९. उत देवा अवहितं देवा उन्नयथा पुनः। उतागश्चक्रुषं देवा देवा जीवयथा पुनः।।— ऋ.१०.१३७.१

१०. अयं देवानामसुरो वि राजति वशा हि सत्या वरुणस्य राज्ञः। ततस्परि ब्रह्मणा शाशदान उग्रस्य मन्योरुदिमं नयामि।— अथर्ववेद १.१०.१

११. दशवृक्ष मुञ्चेमं रक्षसो ग्राह्या अधि यैनं जग्राह पर्वसु। अथो एनं वनस्पते जीवानां लोकमुन्नय।।— अ.२.९.१

१२. नीचैः पद्यन्तामधरे भवन्तु ये नः सूरिं मघवानं पृतन्यान्। क्षिणामि ब्रह्मणामित्रानुन्नयामि स्वानहम्।।— अ.३.१९.३

१३. उत देवा अवहितं देवा उन्नयथा पुनः। उतागश्चक्रुषं देवा देवा जीवयथा पुनः।।— अ.४.१३.१

१४. उदेनमुत्तरं नयाग्ने घृतेनाहुत। समेनं वर्चसा सृज प्रजया च बहुं कृधि।।— अ.६.५.१

१५. यददीव्यन्नृणमहं कृणोम्यदास्यन्नग्न उत संगृणामि। वैश्वानरो नो अधिपा वसिष्ठ उदिन्नयाति सुकृतस्य लोकम्।।— अ.६.११९.१

१६. यदन्तरिक्षं पृथिवीमुत द्यां यन्मातरं पितरं वा जिहिंसिम। अयं तस्माद् गार्हपत्यो नो अग्निरुदिन्नयाति सुकृतस्य लोकम्।।— अ. ६.१२०.१

१७. यद् दारुणि बध्यसे यच्च रज्ज्वां यद् भूम्यां बध्यसे यच्च वाचा। अयं तस्माद् गार्हपत्यो नो अग्निरुदिन्नयाति सुकृतस्य लोकम्।।— अ. ६.१२१.२

१८. को अस्या नो द्रुहोऽवद्यवत्या उन्नेष्यति क्षत्रियो वस्य इच्छन्। को यज्ञकामः क उ पूर्तिकामः को देवेषु वनुते दीर्घमायुः।।— अ. ७.१०८.१/ ७.१०३.१

१९. जीवलां नघारिषां जीवन्तीमोषधीमहम्। अरुन्धतीमुन्नयन्तीं पुष्पां मधुमतीमिह हुवेऽस्मा अरिष्टतातये।— अ.८.७.६

२०. इदं सदो रोहिणी रोहितस्यासौ पन्थाः पृषती येन याति। तां गन्धर्वाः कश्यपा उन्नयन्ति तां रक्षन्ति कवयोऽप्रमादम्।।— अ.१३.१.२३

२१. विपश्चितं तरणिं भ्राजमानं वहन्ति यं हरितः सप्त बह्वी। स्रुताद् यमत्त्रिर्दिवमुन्निनाय तं त्वा पश्यन्ति परियान्तमाजिम्।— अ.१३.२.४

२२. अभितोऽग्निमंसावुन्नयति। योषा वै वेदिः, वृषाग्निः। परिगृह्य वै योषा वृषाणं शेते। मिथुनमेवैतत्प्रजननं क्रियते। तस्मादभितोऽग्निमंसा उन्नयति।— श.ब्रा.१.२.५.१५

२३. उपवसथ ब्राह्मणम् : अथाश्वमाक्रमयति। तमाक्रमय्य प्राञ्चमुन्नयति। तं पुनरावर्त्तयति।--— श.ब्रा.२.१.४.२३

२४. अथ चतुरुन्नयति, चतुर्द्धा विहितं हीदं पयः। अथ समिधमादायोदाद्रवति।-- -स वै द्विरग्नौ जुहोति, द्विरुपमार्ष्टि, द्विः प्राश्नाति, चतुरुन्नयति, तद्दश। दशाक्षरा वै विराट्। विराड् वै यज्ञः।— श.ब्रा.२.३.१.१७

२५. अथ गृह्णाति। समुद्रस्य त्वाक्षित्याऽउन्नयामि। इति। आपो वै समुद्रः। अप्स्वेवैतदक्षितिं दधाति। तस्मादापऽएतावति भोगे भुज्यमाने न क्षीयन्ते। तदन्वेकधनानुन्नयन्ति। तदनु पात्रेजनान्।— श.ब्रा.३.९.३.२७

२६. दक्षिणादानम् :---- -अथाच्छावाकाय। अथोन्नेत्रे। अथ ग्रावस्तुते। अथ सुब्रह्मण्यायै प्रतिहर्त्रे उत्तमाय ददाति।— श.ब्रा.४.३.४.२२

२७. तृतीयसवनग्रहेषु आदित्यग्रहः :- ते सम्प्रपद्यन्ते -अध्वर्युश्च, यजमानश्च, आग्नीध्रश्च, प्रतिप्रस्थाता च, उन्नेता। अथ योऽन्यः परिचरो भवति। उभे द्वारेऽअपिदधाति।— श.ब्रा.४.३.५.९

२८. स मेक्षयति। विवस्वन्नादित्यैष ते सोमपीथः, तस्मिन्मत्स्व इति। अथोन्नेत्रऽउपांशुसवनं प्रयच्छति। अथाहोन्नेतारम्-आसृज ग्राव्णा इति। तानाधवनीये वा सृजति चमसे वा। राजानमुन्नीय। आदित्यानां वै तृतीयसवनम्, आदित्यान्वाऽअनु ग्रावाणः। तदेनान्त्स्वऽएव भागे प्रीणाति। अपोर्णुवन्ति द्वारे।— श.ब्रा. ४.३.५.१८

२९. अथ पुनः प्रपद्याग्रयणमादत्ते। उदीचीनदशं पवित्रं वितन्वन्ति। प्रस्कन्दयत्यध्वर्युः आग्रयणस्य संप्रगृह्णाति प्रतिप्रस्थाता। संस्रवावानयत्युन्नेता चमसेन वोदञ्चनेन वा।— श.ब्रा.४.३.५.२१

३०. अथ सम्प्रेष्यति-अग्नीन्नेष्टुरुपस्थमासीद, नेष्टः पत्नीमुदानय। उद्गात्रा सङ्ख्यापय, उन्नेतर्होतुश्चमसमनून्नय, सोमं माऽतिरीरिच इति। यद्यग्निष्टोमः स्यात्।— श.ब्रा. ४.४.२.१७

३१. हारियोजन ग्रहः :- तस्योन्नेता-ऽऽश्रावयति। अतिरिक्तो वाऽउन्नेता-न ह्येषोऽन्यस्याश्रावयति। अतिरिक्त एष ग्रहः। तस्मादतिरिक्तऽएवैतदतिरिक्तं दधाति। तस्मादुन्नेता-ऽऽश्रावयति। मूर्धन्नभिनिधायाश्रावयति मूर्धा ह्यस्यैषः। अथाह-धानासोमेभ्योऽनुब्रूहीति। आश्राव्याह-धानासोमान्प्रस्थितान् प्रेष्येति।----— श.ब्रा.४.४.३.८

३२. पात्रावकाशमन्त्राः :- वैश्वदेवौ वाऽअम्भृणौ अतो हि देवेभ्य उन्नयन्ति, अतो मनुष्येभ्यः, अतः पितृभ्यः। तस्माद्वैश्व-देवावम्भृणौ।— श.ब्रा.४.५.६.३

३३. गर्गत्रिरात्रमहीनम्ः द्वौ वोन्नेतारौ कुर्वीत। तयोर्यतरो नाश्रावयेत्-तस्मा एनां दद्यात्। व्यृद्धो वाऽएष उन्नेता-य ऋत्विक्सन्नाश्रावयति। व्यृद्धोऽएषा विराट् या विवृढा। तद् व्यृद्धऽएवैतद् व्यृद्धं दधाति।— श.ब्रा. ४.५.८.१३

३४. अथास्यै (उखायाः) सर्वतस्तीरमुन्नयति।— श.ब्रा.६.५.२.३

३५. तस्यै (उखायाः) स्तनानुन्नयति। ऊधसस्तत् स्तनानुन्नयति। चतुःस्तना भवति। — श.ब्रा.६.५.२.१८

३६. अथ क्षत्रियस्य-उदेषां बाहूऽअतिरमुद्वर्धोऽअथो बलम्। क्षिणोमि ब्रह्मणाऽमित्रानुन्नयामि स्वाँ अहम् इति। यथैव क्षिणुयादमित्रान्, उन्नयेत् स्वान्।----अयं वाऽअग्निः-ब्रह्म च क्षत्रं च।— श.ब्रा.६.६.३.१५

३७. स होवाच-इडैव मे मानव्यग्निहोत्री।---- आश्विमुन्नीयमानम्। वैश्वदेवमुन्नीतम्।— श. ब्रा. ११.५.३.५

३८. गवामयनब्राह्मणम् : अथाध्वर्यवे नेष्टारमुन्नेता दीक्षयति। तं हि सोऽनु। अथ ब्रह्मण आग्नीध्रं दीक्षयति। तं हि सोऽनु। अथोद्गात्रे सुब्रह्मण्यां दीक्षयति। तं हि सोऽनु। अथ होत्रे ग्रावस्तुतं दीक्षयति। तं हि सोऽनु। एतांश्चतुर उन्नेता दीक्षयति।— श.ब्रा.१२.१.१.९

३९. गवामयन ब्राह्मणम् : अथोन्नेतारं स्नातको वा ब्रह्मचारी वाऽन्यो वा दीक्षितो दीक्षयति। न पूतः पावयेत् इति ह्याहुः। सैषाऽनुपूर्वदीक्षा।— श. ब्रा. १२.१.१.१०

४०. तेषां वा उन्नेतोत्तमो दीक्षते। प्रथमोऽवभृथादुदायतामुदैति। प्राणो वा उन्नेता। प्राणमेवैष्वेतदुभयतो दधाति।— श. ब्रा.१२.१.१.११

४१. तदाहुः-यस्याग्निहोत्रं स्रुच्युन्नीतं स्कन्देत्। किं तत्र कर्म। का प्रायश्चित्तिरिति। स्कन्नप्रायश्चित्तेनाभिमृश्य अद्भिरुपनिनीय परिशिष्टेन जुहुयात्।— श.ब्रा.१२.४.२.६

४२. इत्थमेव कुर्यात्। तदेवोपविशेत्। यत् स्थाल्यां परिशिष्टं स्यात्। तदस्मा उन्नीयाहरेयुः। तद्धैक उपवल्हन्ते। हुतोच्छिष्टं वा एतत्।------ तस्माद्यत्स्थाल्यां परिशिष्टं स्यात्। तदस्मा उन्नीयाहरेयुः। यद्यु तत्र न स्यात्। यदन्यत् विंदेत्। तदग्नावधिश्रित्यावज्योत्यापः प्रत्यानीयोद्वास्य तददो हैवोन्नेष्यामीत्युक्तं भवति। अथात्र यथोन्नीतमेवास्मा उन्नीयाहरेयुः। तेन कामं जुहुयात्।— श. ब्रा. १२.४.२.८

४३. तदाहुः-यस्याग्निहोत्रं स्रुच्युन्नीतम-मेध्यमापद्येत। किं तत्र कर्म का प्रायश्चित्तिरिति। तद्धैके होतव्यं मन्यन्ते।— श.ब्रा.१२.४.२.९

४४. तदाहुः-यस्याग्निहोत्रं स्रुच्युन्नीत-मुपरिष्टादववर्षेत्। किं तत्र कर्म का प्रायश्चित्तिरिति। तद्विद्यात्। उपरिष्टान्मा शुक्रमागन्नुप मां देवाः प्राभूवन् श्रेयान् भविष्यामि इति। तेन कामं जुहुयात्।— श.ब्रा.१२.४.२.१०

४५. (यदेष दीर्घसत्र्यग्निहोत्रं जुह्वत् प्रवसन् म्रियेत): नोन्नेष्यामीत्याह। न चतुरुन्नयति। यद्धोन्नेष्यामीति ब्रूयात्। यद्यतुरुन्नयेत्। देवत्रा कुर्यात्। सकृदेव तूष्णीं न्यक् पर्यस्यति। पितृदेवत्यमेवैनत् तत्करोति।— श.ब्रा. १२.५.१.९

४६. ज्योतिष्टोम प्रायश्चित्त ब्राह्मणम् : अथ यदि चमसेषून्नीतः किंचिदापद्येत। विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा-इति जुहुयात्। विश्वे हि स तर्हि देवा भवति। अप पाप्मानं हते।— श.ब्रा.१२.६.१.२७

४७. महावीरादि प्रवर्ग्यपात्र संभरणम् :--- -मध्ये संगृहीतमिव हि शिरः। अथोपरिष्टात्त्र्यंगुलं मुखमुन्नयति। नासिकामेवास्मिन्नेतद्दधाति।— श. ब्रा. १४.१.२.१७

४८. गवाजपयोऽवसेचनं ब्राह्मणम् : अथोन्नयति-घर्माय दीष्व इति। एष वा अत्र घर्मो रसो भवति। यमेषा पिन्वते।— श.ब्रा.१४.२.१.१०

४९. अग्निहोत्रं वै प्रवर्ग्यः।-- -यदुन्नीतं, तदुचितः। (यदुचितः, तद्वायुः)।— श. ब्रा. १४.३.२.२६

५०. सोमो वै प्रवर्ग्यः।---यदुन्नीतः, तद् रुचितः।— श.ब्रा.१४.३.२.३०

५१. अभिषोतव्यस्य सोमस्य शकटादुपावरोहः :- देवीरापो अपां नपाद्य ऊर्मिर्हविष्य इन्द्रियावान्मदिन्तमस्तं देवेभ्यो देवत्रा धत्त---- कार्षिरस्यपापां मृध्रँ समुद्रस्य वोऽक्षित्या उन्नये।— तै.सं.१.३.१३.२

५२. प्राधान्येनाऽऽश्रावणादिमन्त्राः :- अस्तु श्रौषडित्युपावास्राग्यजेत्युदनैषीद्ये यजामह इत्युपासदद्वषट्कारेण दोग्ध्येष वै सूनृतायै दोहो— तै.सं.१.६.११.३

५३. सोमोपस्थानमन्त्रोत्पादनम् : ग्रहं वा गृहीत्वा चमसं वोन्नीय स्तोत्रमुपाकुर्यात्प्रत्येव सोमँ स्थापयति प्रति स्तोमं— तै.सं.३.१.२.४

५४. अग्निधारणाभिधानम् : उदेषां बाहू अतिरमुद्वर्च उदू बलम्। क्षिणोमि ब्रह्मणाऽमित्रानुन्नयामि स्वाँ अहम् (इति उत्तमे यजमानं वाचयंस्तूष्णीमौदुम्बर्यौ समिधा-वादधाति)।।— तै.सं.४.१.१०.३

५५. यज्ञतन्वाख्येष्टकाभिधानम् : वैश्वदेव उन्नीतो-- -— तै.सं.४.४.९.१

५६. अग्निप्रणयनाभिधानम् : उदेनमुत्तरां नयाग्ने घृतेनाऽऽहुत। रायस्पोषेण सँसृज प्रजया च धनेन च (इति तिसृभिरौदुम्बरी समिधो घृतोषितास्तिस्र आधाय पशुबन्धवदग्निं प्रणयति)।— तै.सं.४.६.३.१

५७. उदेनमुत्तरां नयेति समिध आ दधाति यथा जनं यतेऽवसं करोति तादृगेव तत्।— तै.सं.५.४.६.१

५८. वेद्याभिधानम् : सुवर्गं वा एते लोकं यन्ति य उपसद उपयन्ति तेषां य उन्नयते हीयत एव स नोदनेषीति सूत्रीयमिव यो वै स्वार्थेतां यताँ श्रान्तो हीयत उत स निष्ट्याय सह वसति तस्मात्सकृदुन्नीय नापरमुन्नयेत दध्नोन्नयेतैतद्वै पशूनाँ रूपं रूपैणैव पशूनवरुन्धे।— तै.सं.६.२.४.१

५९. सोमोपावहरणकथनम् : समुद्रस्य वोऽक्षित्या उन्नय इत्याह तस्मादद्यमानाः पीयमाना आपो न क्षीयन्ते— तै.सं.६.४.३.४

६०. हारियोजनग्रहकथनम् :--- यदप्रहृत्य परिधीञ्जुहुयादन्तराधानाभ्याम् घासं प्र यच्छेत्प्रहृत्य परिधीञ्जुहोति निराधानाभ्यामेव घासं प्र यच्छत्युन्नेता जुहोति यातयामेव ह्येतर्ह्यध्वर्युः स्वगाकृतो---- उन्नेतर्युपहवमिच्छन्ते य एव तत्र सोमपीथस्तमेवाव रुन्धत— तै.सं.६.५.९.३

६१. गर्गत्रिरात्राभिधानम् : अथाऽऽहुरुन्नेत्रे देयेत्यतिरिक्ता वा एषा सहस्रस्यातिरिक्त उन्नेतर्त्विजाम्— तै.सं.७.१.५.६

६२. तं (यूपं)धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्त इति ये वा अनूचानास्ते कवयस्त एवैनं तदुन्नयन्ति।— ऐतरेय ब्राह्मण २.२

६३. आ त्वा वहन्तु हरय इति प्रातःसवन उन्नीयमानेभ्योऽन्वाह वृषण्वती पीतवती सुतवतीर्मद्वती रूपसमृद्धाः।— ऐ.ब्रा.६.९

६४. असावि देवं गोऋजीकमन्ध इति मध्यंदिन उन्नीयमानेभ्योऽन्वाह वृषण्वतीः पीतवतीः सुतवतीर्मद्वती रूपसमृद्धाः।— ऐ.ब्रा.६.११

६५. इहोप यात शवसो नपात इति तृतीयसवन उन्नीयमानेभ्योऽन्वाह वृषण्वतीः पीतवतीः सुतवतीर्मद्वती रूपसमृद्धास्ता ऐन्द्रार्भव्यो भवन्ति।— ऐ.ब्रा.६.१२

६६. तिस्रश्चैव कीकसा अर्धं च वैकर्तस्योन्नेतुः— ऐ.ब्रा.७.१

६७. यस्याग्निहोत्रमधिश्रितममेध्यमापद्येत का तत्र प्रायश्चित्तिः-स यद्येकस्मिन्नुन्नीते यदि द्वयोरेष एव कल्पस्तद्येद्व्यपनयितुं शक्नुयान्निःषिच्यैतद्दुष्टम-दुष्टमभिपर्यासिच्य तस्य यथोन्नीत्ती स्यात्तथा जुहुयात्सा तत्र प्रायश्चित्तिः— ऐ.ब्रा.७.५

६८. तद्यत्रैतांश्चमसानुन्नयेयुस्तदेतं यजमान-चमसमुन्नयेत्तस्मिन्द्वे दर्भतरुणके प्रास्ते स्यातां-- ऐ.ब्रा.७.३३

६९. पितृलोके वा एतद्यजमानश्चरति। यत्पितृभ्यः करोति।। स ईश्वर आर्तिमार्तोः। प्रजापतिस्त्वा वैनं तत उन्नेतुमर्हतीत्याहुः। यत्प्राजापत्ययर्चा पुनरैति। प्रजापतिरेवैनं तत उन्नयति। नाऽऽर्तिमार्छति यजमानः।— तैत्तिरीय ब्रा.१.३.१०.१०

७०. यस्य प्रातःसवने सोमोऽतिरिच्यते। माध्यंदिनँ सवनं कामयमानोऽभ्यतिरिच्यते। गौर्धयति मरुतामिति धयद्वतीषु कुर्वन्ति---- मरुत्वतीषु कुर्वन्ति। तेनैव माध्यंदिनात्सवन्नान्नयन्ति। होतुश्चमसमनून्नयन्ते। होताऽनुशँसति। मध्यत एव यज्ञँ समादधाति। यस्य माध्यंदिने सवने सोमोऽतिरिच्यते। आदित्यं तृतीयसवनं कामयमानोऽभ्यतिरिच्यते। गौरिवीतँ साम भवति। अतिरिक्तं वै गौरिवीतम्।-----होतुश्चमसमनून्नयन्ते होताऽनुशँसति मध्यत एव यज्ञँ समादधाति। यस्य तृतीयसवने सोमोऽतिरिच्यते। उक्थ्यं कुर्वीत---- होतुश्चमसमनून्नयन्ते। होताऽनुशँसति। मध्यत एव यज्ञँ समादधाति।— तै.ब्रा.१.४.५.१

७१. रुक्मँ होत्रे। आदित्यमेवास्मा उन्नयति।— तै.ब्रा.१.८.२.३

७२. (निष्टप्तायां स्रुचि चतुर्वारं हविष्पूरणं स्रुवेण कुर्यादिति विधत्ते): चतुरुन्नयति। चतुष्पादः पशवः।

पशूनेवावरुन्धे। सर्वान्पूर्णानुन्नयति। सर्वे हि पुण्या राद्धाः। अनूच उन्नयति। प्रजाया अनूचीनत्वाय अनूच्येवास्य प्रजार्धुका भवति।— तै.ब्रा.२.१.३.५

७३. ब्रह्मवादिनो वदन्ति। चतुरुन्नयति। द्विर्जुहोति। अथ क्व द्वे आहुती भवत इति। अग्नौ वैश्वानर इति ब्रूयात्।— तै.ब्रा.२.१.४.४

७४. अग्निहोत्र एवाहँ सायं प्रातर्वज्रं भ्रातृव्येभ्यः प्रहरामि। तस्मान्मत्पापीयाँसो भ्रातृव्या इति। चतुरुन्नयति। द्विर्जुहोति। समित्सप्तमी। सप्तपदा शक्वरी। शाक्वरो वज्रः।— तै. ब्रा. २.१.५.११

७५. रौद्रं गवि।----धातुरुद्वासितम्। बृहस्पतेरुन्नीतम्। सवितुः प्रक्रान्तम्।— तै. ब्रा. २.१.७.१

७६. वायव्यं वा एतदुपसृष्टम्।--त्वाष्ट्रमुन्नीय-मानम्। बृहस्पतेरुन्नीतम्।— तै. ब्रा. २.१.८.२

७७. रेतो वा एतस्य हितं न प्रजायते। यस्याग्निहोत्रमहुतँ सूर्योऽभ्युदेति। यद्यन्ते स्यात्। उन्नीय प्राङुदाद्रवेत्। स उपसाद्याऽऽतमितोरासीत। स यदाऽऽताम्येत्। अथ भूः स्वाहेति जुहुयात्। प्रजापतिर्वै भूतः। तमेवोपासरत्। स एवैनं तत उन्नयति।— तै.ब्रा.२.१.९.२

७८. (अग्निहोत्र एव चतुर्होतृफलं दर्शयति) :- चतुरुन्नयति। चतुर्होतारमेव तद्यज्ञक्रतुमाप्नोति दर्शपूर्णमासौ। चतुरुन्नयति समित्पञ्चमी पञ्चहोतारमेव तद्यज्ञक्रतुमाप्नोति चातुर्मास्यानि।---चतुरुन्नयति द्विर्जुहोति। षड्होतारमेव तद्यज्ञक्रतुमाप्नोति पशुबन्धम्।-- चतुरुन्नयति। द्विर्जुहोति। समित्सप्तमी। सप्तहोतारमेव तद्यज्ञक्रतुमाप्नोति सौम्यमध्वरम्।-- चतुरुन्नयति। द्विर्जुहोति। द्विर्निमार्ष्टि। द्विः प्राश्नाति। दशहोतारमेव तद्यज्ञक्रतुमाप्नोति संवत्सरम्।— तै. ब्रा. २.३.७.२

७९. प्राञ्चौ वेद्यँसावुन्नयति। आहवनीयस्य परिगृहीत्यै। प्रतीची श्रोणी। गार्हपत्यस्य परिगृहीत्यै।— तै.ब्रा.३.२.९१।९

८०. (यूपाय परिवीयमाणायानुब्रूहीति प्रेषितेन होत्रा पठनीयामृचम्) :- युवा सुवासाः परिवीत आगात्। स उ श्रेयान्भवति जायमानः। तं धीरासः कवय उन्नयन्ति। स्वाधियो मनसा देवयन्तः।— तै.ब्रा. ३.६.१.३

८१. दशपेय : रुक्मोहोतुराग्नेयो होताथो अमुमेवास्मा आदित्यमुन्नयति।-ताण्ड्य ब्रा.१८.९.९

८२. यः प्रतिप्रस्थाता सो अग्नीत्स उन्नेता— तां.ब्रा. २५.४.५

८३. सर्प सत्रे ऋत्विजाः :- चक्रपिशंगावुन्नेतारौ— तां.ब्रा. २५.१५.३

८४. तपो गृहपतिः---ऊर्गुन्नेता--- तां.ब्रा. २५.१८.४

८५. आदित्यं हि तमो जग्राह। तदत्रिपनुनोद। तदत्रिरन्वपश्यत्। तदप्येतदृचोक्तम् --स्रुताद् यमत्रिर्दिवमुन्निनाय। दिवि त्वात्रिरधारयत् सूर्या मासाय कर्तवे।— गोपथ ब्राह्मण १.२.१७

८६. किंदेवत्यं वत्समुन्नीयमानम्? किंदेवत्यं वत्समुन्नीतम्?--किंदेवत्यम् (दुग्धं) उन्नीयमानम्? किंदेवत्यमुन्नीतम्?— गो.ब्रा. १.३.११

८७. रौद्रं मे गवीडायां,--- वैराजं वत्समुन्नीयमानं, जागतमुन्नीतम्,----धात्रमुद्वासितं, वैश्वदेवमुन्नीयमानं, सावित्रमुन्नीतं,-— गो.ब्रा. १.३.१२

८८. तिस्रश्चैव कीकसा अर्धं चापानस्योन्नेतुः— गो.ब्रा. १.३.१८

८९. अथाध्वर्यवे नेष्टारमुन्नेता दीक्षयति। स हैनमनु। अथ ब्रह्मण आग्नीध्रं दीक्षयति। अथोउद्गात्रे सुब्रह्मण्यं दीक्षयति। अथ होत्रे ग्रावस्तुतं दीक्षयति। अथ तमन्यः स्नातको वा ब्रह्मचारी वा दीक्षयति। न पूतः पावयेदित्याहुः।— गो.ब्रा.१.४.६

९०. अध्वर्युः प्रतिप्रस्थाता नेष्टोन्नेता निहितं पादमेकम्। समन्तरिक्षं यजुषा स्तुवन्तो वायुं पादं ब्रह्मणा धारयन्ति।— गो.ब्रा.१.५.२४

९१. यथार्हामः स्रस्तमतिरेतदन्त्येतेष एवेश्वर उन्नेता।— गो.ब्रा.२.६.१४

९२. रौद्रं गवि----वैश्वदेवम् उन्नीतं-- जैमिनीय ब्रा.१.२१

९३. अथाह उन्नेष्यामि इति। ओं मामहं स्वर्गं लोकम् अभि इति ब्रूयात्।— जै.ब्रा.१.३९

९४. स यं प्रथमं स्रुवम् उन्नयति तद् वै दर्शपूर्णमासयो रूपम्। दर्शपूर्णमासाभ्याम् एवास्येष्टं भवति य एवं विद्वान् प्रथमं स्रुवम् उन्नयति। अथ यं द्वितीयं स्रुवम् उन्नयति तद् वै चातुर्मास्यानां रूपम्। चातुर्मास्यैर् एवास्येष्टं भवति य एवं विद्वान् द्वितीयं स्रुवम् उन्नयति। अथ यं तृतीयं स्रुवम् उन्नयति तद् वा इष्टिपशुबन्धानां रूपम्। इष्टिपशुबन्धैर् एवास्येष्टं भवति य एवं विद्वांस् तृतीयं स्रुवम् उन्नयति। अथ यं चतुर्थं स्रुवम् उन्नयति तद् वै त्र्यम्बकवाजपेयाश्वमेधानां रूपम्। त्र्यम्बकवाज-पेयाश्वमेधैर् एवास्येष्टं भवति य एवं विद्वांश् चतुर्थं स्रुवम् उन्नयति।— जै.ब्रा.१.४०

९५. यद्य् उ नीची स्रुक् स्याद् अपि वा भिद्येत किं तत्र कर्म का प्रायश्चित्तिर् इति।--तद् उ हैके तत एव प्रत्येत्योन्नयन्ति तद् उ तथा न कुर्यात्।---अथास्मिन् स्थालीम् आहरेयुस् स्रुवं च स्रुचं च निर्णिज्य। तद् अद एवास्योन्नेष्यामीत्य् उक्तं भवति। अथ यथोन्नीतम् उन्नीय समिधम् आदाय प्राक् प्रेयात्।— जै.ब्रा.१.५४

९६. उन्नेतर् उन् मा नयेत्य् आह। विष्णुर् वा उन्नेता। यज्ञो वै विष्णुः। यज्ञ एवैनं तत् सर्वस्मात् पाप्मनो विमुच्योन्नयति।— जै.ब्रा.२.६८

९७. पुरोडाशः :- ऊर्जे त्वाग्नेर्जिह्वासि सुपूर्देवेभ्यो धाम्ने धाम्ने त्वा यजुषे यजुषे हविरसि वैश्वानरमुन्नीतशुष्मँ-- काठक संहिता १.१०

९८. ज्योतिरिकम् : देवीरापो अपां नपाद्य ऊर्मिर्हविष्य इन्द्रियावान् मदिन्तमस्तं---- कार्ष्यसि समुद्रस्य वोऽक्षित्या उन्नये।— काठक सं.३.९

९९. ग्रहाः :- उन्नेतर्वस्योऽभ्युन्नया नः।— काठक सं.४.१३

१००. अग्निहोत्र ब्राह्मणम् : यद्यधिश्रितँ स्कन्देदन्यामभिदुह्याधिश्रित्योन्नीय जुहुयात्, सैव तत्र प्रायश्चित्तिर्यद्युन्नीयमानं यद्युन्नीतं यदि पुर उपसन्नमहुते स्कन्देत् पुनरवनीयान्यामभिदुह्याधिश्रित्योन्नीय जुहुयात्— काठक सं.६.३

१०१. समेवं जीर्यतः पूर्णमग्र उन्नयेदथ संमितमथ संमितमथ संमिततममुत्तममनुज्येष्ठमेवास्य पुत्रा ऋध्नुवन्ति संमितमग्र उन्नयेदथ भूयोऽथ भूयोऽथ पूर्णमुत्तमं भूयो भूय एवान्नाद्यमभ्युत्क्रामति कनिष्ठस्त्वस्य पुत्राणामर्धुको भवति सर्वान् समावदुन्नयेद्यः कामयेत---- - चतुरुन्नयति चतुष्पद एवास्मै पशून्-- काठक सं.६.४

१०२. यदि सायमहुतेऽग्निहोत्रे पूर्वोऽग्निरनुगच्छेदग्निहोत्रमधिश्रित्योन्नीयाग्निना पूर्वेणोद्दुत्याग्निहोत्रेणानूद्द्रवेदाहुत्यैवैनं च्यावयति— काठक सं.६.६

१०३. वाचं यच्छेदग्निहोत्र उन्नीयमाने— काठक सं.६.७

१०४. मारुतम् : यावद्ग्रहास्स्तोमाश्छन्दाँसि यावदेवास्ति तावतास्मै चिकित्सत्युद्धराम्युत्सृजाम्युन्नयामीति यथा वध्यमुद्धरत्युत्सृजत्युन्नयत्येवमेवैनमेतदुद्धरत्युत्सृजत्युन्नयति— काठक सं.११.८

१०५. श्रीराजसूयम् : युवा सुवासाः परिवीत आगात् स उ श्रेयान् भवति जायमानः। तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्तः।।— काठक सं.१५.१२

१०६. अग्निवीशिका : उदेषां बाहू अतिरमुद्वर्चो अथो बलम्। क्षिणोमि ब्रह्मणामित्रानुन्नयामि स्वाँ अहम्।— काठक सं.१६.७

१०७. चमाः :- उदेनमुत्तरां नयाग्ने घृतेनाहुतः। रायस्पोषेण संसृज प्रजया च बहुं कृधि।— काठक सं. १८.३

१०८. सावित्राः उदेषां बाहू अतिरमुद्वर्चो अथो बलमित्याशिषमेवाशास्ते क्षिणोमि ब्रह्मणामित्रानुन्नयामि स्वाँ अहमिति यथायजुः।— काठक सं. १९.१०

१०९. आयुष्यम् :--- तस्मादयमतिरिक्तः प्रजापतिः प्रजा एवाभिवपते द्रोणकलशेनोन्नेता हारियोजनं

जुहोत्यतिरिक्तं वा एतत् पात्राणां यद् द्रोणकलशोऽतिरिक्त एष ऋत्विजां यदुन्नेतातिरिक्त एष सोमानां यद्धारियोजनो ऽतिरिक्तेनैवातिरिक्त-माप्नोत्युन्नेतर्युपहवमिच्छन्ते— काठक सं.२८.९

११०. पुरोडाश ब्राह्मणम् : प्राञ्चौ बाहू उन्नयत्याहवनीयमेव परिगृह्णाति प्रतीची श्रोणी गार्हपत्यमेव परिगृह्णाति— काठक सं.३१.८

१११. एकादशिनी :---इन्द्रो ऽभिमातिहेन्द्रो वृत्रतूरुन्नीयमान आयुरुपाँश्वन्तर्यामयोर्यमो-ऽभिषुतः।— काठक सं.३४.१५

११२. निभूयपूराधवनीये सुपूतपूः पूतभृति---- वैश्वदेव उन्नीयमान ऐन्द्राग्न उन्नीतो— काठक सं. ३४.१६

११३. हिरण्यमेवापोऽभ्यवनयेद्धिरण्यमभ्युन्न-येदमृतं वा आप आयुर्हिरण्यममृतादेवाध्यायुरात्मन् धत्ते— काठक सं.३५.१६

११४. चातुर्मास्यानि : अमुं वा एते लोकं निगच्छन्ति ये पितृयज्ञमुपयन्ति प्रजापतिस्त्वा एनानत उन्नेतुमर्हति— काठक सं.३६.१३

११५. ज्योतिष्टोमयागः :- १६ ऋत्विजों के नाम- आश्वलायन श्रौत सूत्र ४.१.६

११६. आहृतमुन्नेत्रा द्रोणकलशमिळामिव प्रतिगृह्योपहवमिष्ट्वाऽवेक्षेत। हरिवतस्ते हारियोजनस्य स्तुतस्तोमस्य शस्त्वोक्थस्येष्टयजुषो यो भक्षो गोसनिरश्वसनिस्तस्य त उपहूतस्योपहूतो भक्षयामीति प्राणभक्षं भक्षयित्वा---— आश्व.श्रौ.सू. ६.१२.१

११७. अवभृथम् : उन्नेतैनानुन्नयति। उन्नेतरुन्नोन्नयोन्नेतर्वस्वो अभ्युन्नया न इत्युन्नीयमाना जपन्ति। — आश्व.श्रौ.सू.६.१३.१३

११८. राजसूये दक्षिणाः :- वत्सतर्युन्नेतुस्त्रिवर्षः साण्डो ग्रावस्तुतः— आश्व.श्रौ.सू. ९.४.२०

११९. तिस्रश्चैव कीकसा अर्धं च वैकर्तस्योन्नेतुः।— आश्व.श्रौ.सू.१२.९.११

१२०. सोमयागः :- उन्नेतुः पात्रयोजनम्। खरोत्तरपूर्वार्द्ध उपाँश्वन्तर्यामयोः। दक्षिणमुपाँशोः।----- - कात्यायन श्रौ.सू.९.२.१

१२१. सोमयागः :- ऐहि यजमानेत्याह हविर्धानं प्रविशन्त्यध्वर्युर्यजमानप्रतिप्रस्थात्रग्नी-दुन्नेतारः। पत्नी चापरेण। अपिहितद्वार आदित्यपात्रमादाय सँस्रवांश्चोपरि पूतभृतस्तत आदित्यग्रहं गृह्णाति सँस्रवेभ्यः कदाचनेति।— का.श्रौ.सू.१०.४.१

१२२. सोमयागः :- उपाँशुसवनमुन्नेत्रे प्रयच्छत्यासृज ग्राव्ण इति चाह। आधवनीये चमसे वा सोमवति ग्राव्णोऽवधाय स्थाने निदधाति।--- — का.श्रौ.सू.१०.४.७

१२३. आग्रयणमादायासिञ्चति पवित्रेऽधिपूत-भृतम्। प्रतिप्रस्थाता च संस्रवौ। आधवनीयादुन्नेतोदञ्चनेन चमसेन वा। तत आग्रयणं गृह्णाति।- का.श्रौ.सू.१०.५.१

१२४. द्वादशाहः :- अध्वर्युर्गृहपतिं दीक्षयति---- -नेष्ट्रादीनुन्नेता उन्नेतारं ब्रह्मचारी स्नातकोऽन्यो वा ब्राह्मणो 'न पूतः पावयेत्' इति श्रुतेः। अनुपति पत्नीरुत्तर उत्तरः। त एवोन्नेतुः। — का.श्रौ.सू.१२.२.१५

१२५. गवामयने अवभृथः :- उन्नेतारौ वा कृत्वानाश्रावयते। दशदशाऽभेदेन दक्षिणा दद्यात्।— का.श्रौ.सू.१३.३.४७

१२६. अग्निष्टोमसामादि : हारियोजन्यो नाम धाना द्रोणकलशे भवन्ति। तासामुद्गाता प्रथम आददानः समुपहूता भक्षयिष्याम इति ब्रूयात्। तथेतरौ। उन्नेतर्युपहवमिष्ट्वा हारियोजनस्य त इति तिरोह्न्यस्येत्यतिरात्र सर्वत्र वा यथाधीतं द्विरुपघ्राय पश्चादाहवनीयस्यान्तः परिधि निवपेयुः।-द्राह्यायण श्रौ.सू.६.३.१८

१२७. अग्निष्टोम (माध्यन्दिन सवनम्) :- आग्नीधः पोतुर्नेष्टुर्ग्रावस्तु उन्नेतुः---बौधायन श्रौ.सू.८.६

१२८. अग्निष्टोम (यज्ञपुच्छम्) :- ---शंयुना प्रस्तरपरिधि संप्रकीर्य संप्रस्राव्य स्रुचौ विमुच्योन्नेतारमाहोन्नेतर्ग्रहस्ते प्रचरेति तच्छ्रुत्वोन्नेता

द्रोणकलश आग्रयणतृतीयं ग्रहं गृह्णात्युपयाम गृहीतोऽसि हरिरसि हारियोजनो हर्यो स्थाता वज्रस्य भर्ता पृश्नेः प्रेता--------स यावन्त ऋत्विजस्तेभ्य उन्नेता धाना व्यावपति त उन्नेतर्युपहवमिष्ट्वैकैकामन्वस्यन्ते मनसा संबाधते।-बौ.श्रौ.सू.८.१६

१२९. द्वादशाहे दीक्षणीयेष्टिः :- ----आग्नीधः पोतुर्नेष्टुर्ग्रावस्तुत उन्नेतुः सुब्रह्मण्यस्य---- बौ.श्रौ.सू.१६.२

१३०. परिधिषु प्रहृतेषून्नेता हारियोजनं गृह्णाति। उपयामगृहीतो ऽसि हरिरसीति द्रोणकलशेन सर्वमाग्रयणं गृहीत्वा न सादयति।----- अपरेणोत्तरवेदिं द्रोणकलशं प्रतिष्ठाप्योन्नेतर्युपहव-मिष्ट्वा सर्वे हारियोजनं भक्षयन्तीष्टयजुषस्ते देव सोमेति।— आप.श्रौ.सू.१३.१७.१

१३१. गर्गत्रिरात्रम् : यास्तिस्रस्तिस्रस्त्रिंशत्यधि तास्वेनामुपसमाहृत्य तामग्नीधे ब्रह्मणे होत्र उद्गात्र उन्नेत्रे ऽध्वर्यवे वा दद्यात्। द्वौ वोन्नेतारौ वृत्वा यतरो नाश्रावयेत्तस्मै वा।— आप.श्रौ.सू.२२.१६.११

## उपमन्यु

१. नहि ते क्षत्रं न सहो न मन्युं वयश्चनामी पतयन्त आपुः।— ऋ.१.२४.६

२. मा नो वधाय हत्नवे जिहीळानस्य रीरधः। मा हृणानस्य मन्यवे।।— ऋ.१.२५.२

३. नि वो यामाय मानुषो दध्र उग्राय मन्यवे। जिहीत पर्वतो गिरिः।।— ऋ.१.३७.७

४. इमे चित् तव मन्यवे वेपेते भियसा मही। यदिन्द्र वज्रिन्नोजसा वृत्रं मरुत्वाँ अवधीरर्चन्ननु स्वराज्यम्।।— ऋ.१.८०.११

५. त्वष्टा चित् तव मन्यव इन्द्र वेविज्यते भियार्चन्ननु स्वराज्यम्।।— ऋ.१.८०.१४

६. स मन्युमीः समदनस्य कर्ता ऽस्माकेभिर्नृभिः सूर्यं सनत्।— ऋ.१.१००.६

७. यो व्यंसं जाहृषाणेन मन्युना यः शम्बरं यो अहन् पिप्रुमव्रतम्। — ऋ.१.१०१.२

८. देवासो मन्युं दासस्य शम्नन् ते न आ वक्षन् त्सुविताय वर्णम्।।— ऋ.१.१०४.२

९. यद्ध त्यन्मित्रावरुणावृतादध्याददाथे अनृतं स्वेन मन्युना दक्षस्य स्वेन मन्युना।— ऋ.१.१३९.२

१०. ब्रह्मद्विषस्तपनो मन्युमीरसि बृहस्पते महि तत् ते महित्वनम्।।— ऋ.२.२३.४

११. यो नन्त्वान्यनमन्न्योजसोतादर्दर्मन्युना शम्बराणि वि।— ऋ.२.२४.२

१२. ब्रह्मणस्पतेरभवद् यथावशं सत्यो मन्युर्महि कर्मा करिष्यतः।— ऋ.२.२४.१४

१३. तव त्विषो जनिमन् रेजत द्यौ रेजद् भूमिर्भियसा स्वस्य मन्योः।— ऋ.४.१७.२

१४. यदा सत्यं कृणुते मन्युमिन्द्रो विश्वं दृळ्हं भयत एजदस्मात्।। — ऋ.४.१७.१०

१५. किमादुतासि वृत्रहन् मघवन् मन्युमत्तमः। अत्राह दानुमातिरः।।— ऋ.४.३०.७

१६. सं यत् त इन्द्र मन्यव सं चक्राणि दधन्विरे। अध त्वे अध सूर्ये।।— ऋ.४.३१.६

१७. इति चिन्मन्युमध्रिजस्त्वादातमा पशुं ददे।— ऋ.५.७.१०

१८. अग्ने युक्ष्वा हि ये तवाऽश्वासो देव साधवः। अरं वहन्ति मन्यवे।।— ऋ.६.१६.४३

१९. अध द्यौश्चित् ते अप सा नु वज्राद् द्वितानमद् भियसा स्वस्य मन्योः।— ऋ.६.१७.९

२०. आभिः स्पृधो मिथतीररिषण्यन्नमित्रस्य व्यथया मन्युमिन्द्र।— ऋ.६.२५.२

२१. बाधसे जनान् वृषभेव मन्युना घृषी मीळह ऋचीषम।— ऋ.६.४६.४

२२. इन्द्रो मन्युं मन्युभ्यो मिमाय भेजे पथो वर्तनिं पत्यमानः।।— ऋ.७.१८.१६

२३. प्र यो मन्युं रिरिक्षतो मिनात्या सुक्रतुमर्यमणं ववृत्याम्।।— ऋ.७.३६.४

२४. सं यद्धनन्त मन्युभिर्जनासः शूरा यह्वीष्वोषधीषु विक्षु। अध स्मा नो मरुतो रुद्रियासस्त्रातारो भूत पृतनास्वर्यः।।— ऋ.७.५६.२२

२५. सीक्षन्त मन्युं मघवानो अर्य उरु क्षयाय चक्रिरे सुधातु।।— ऋ.७.६०.११

२६. उद् वां चक्षुर्वरुण सुप्रतीकं देवयोरेति सूर्यस्ततन्वान्। अभि यो विश्वा भुवनानि चष्टे स मन्युं मर्त्येष्वा चिकेत।।— ऋ.७.६१.१

२७. न स स्वो दक्षो वरुण ध्रुतिः सा सुरा मन्युर्विभीदको अचित्तिः।— ऋ.७.८६.६

२८. यथा नातः पुनरेकश्चनोदयत् तद् वामस्तु सहसे मन्युमच्छवः।।— ऋ.७.१०४.३

२९. प्र चक्रे सहसा सहो बभञ्ज मन्युमोजसा। विश्वे त इन्द्र पृतनायवो यहो नि वृक्षा इव येमिरे।।— ऋ.८.४.५

३०. समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः। समुद्रायेव सिन्धवः।।— ऋ.८.६.४

३१. यदस्य मन्युरध्वनीद् वि वृत्रं पर्वशो रुजन्। अपः समुद्रमैरयत्।।— ऋ.८.६.१३

३२. तदग्ने द्युम्नमा भर यत् सासहत् सदने कं चिदत्रिणम्। मन्युं जनस्य दूढयः।।— ऋ.८.१९.१५

३३. अतीहि मन्युषाविणं सुषुवांसमुपारणे। इमं रातं सुतं पिब।।— ऋ.८.३२.२१

३४. अलर्ति दक्ष उत मन्युरिन्दो मा नो अर्यो अनुकामं परा दाः।।— ऋ.८.४८.८

३५. नहि मन्युः पौरुषेय ईशे हि वः प्रियजात। त्वमिदसि क्षपावान्।।— ऋ.८.७१.२

३६. स मन्युं मर्त्यानामदब्धो नि चिकीषते। पुरा निदश्चिकीषते।।— ऋ.८.७८.६

३७. इषा मन्दस्वादु ते ऽरं वराय मन्यवे। भुवत् त इन्द्र शं हृदे।।— ऋ.८.८२.३

३८. कया ते अग्ने अङ्गिर ऊर्जो नपादुपस्तुतिम्। वराय देव मन्यवे।।— ऋ.८.८४.४

३९. विश्वास्ते स्पृधः श्नथयन्त मन्यवे वृत्रं यदिन्द्र तूर्वसि।।— ऋ.८.९९.६

४०. प्र हंसासस्तृपलं मन्युमच्छामादस्तं वृषगणा अयासुः। (मन्यु, उपमन्यु, व्याघ्रपाद आदि ऋषि)— ऋ.९.९७.८

४१. उग्रस्य चिन्मन्यवे ना नमन्ते राजा चिदेभ्यो नम इत् कृणोति।। (अक्ष-कितव निन्दा)— ऋ.१०.३४.८

४२. नि वो नु मन्युर्विशतामरातिरन्यो बभ्रूणां प्रसितौ न्वस्तु।।— ऋ.१०.३४.१४

४३. आरे मन्युं दुर्विदत्रस्य धीमहि स्वस्त्यग्निं समिधानमीमहे।।— ऋ.१०.३५.४

४४. अश्वादियायेति यद्वदन्त्योजसो जातमुत मन्य एनम्। मन्योरियाय हर्म्येषु तस्थौ यतः प्रजज्ञ इन्द्रो अस्य वेद।।— ऋ.१०.७३.१०

४५. यस्ते मन्योऽविधद्वज्र सायक सह ओजः पुष्यति विश्वमानुषक्। (मन्यु सूक्त)— ऋ.१०.८३.१

४६. त्वया मन्यो सरथमारुजन्तो हर्षमाणासो धृषिता मरुत्वः। (मन्यु सूक्त)— ऋ.१०.८४.१

४७. मन्योर्मनसः शरव्या जायते या तया विध्य हृदये यातुधानान्।।— ऋ.१०.८७.१३

४८ .यदस्य मन्युरधिनीयमानः शृणाति वीळु रुजति स्थिराणि।।— ऋ.१०.८९.६

४९. इन्द्रस्यात्र तविषीभ्यो विरप्शिन ऋघायतो अरंहयन्त मन्यवे।— ऋ.१०.११३.६

५०. अग्ने मन्युं प्रतिनुदन् परेषामदब्धो गोपाः परि पाहि नस्त्वम्।— ऋ.१०.१२८.६

५१.श्रत्ते दधामि प्रथमाय मन्यवेऽहन्यद्वृत्रं नर्यं विवेरपः।— ऋ.१०.१४७.१

५२. वि मन्युमिन्द्र वृत्रहन्नमित्रस्याभि-दासतः।।— ऋ.१०.१५२.३

५३. ततस्परि ब्रह्मणा शाशदान उग्रस्य मन्योरुदिमं नयामि।।— अथर्ववेद१.१०.१

५४. नमस्ते राजन् वरुणास्तु मन्यवे विश्वं ह्युग्र निचिकेषि दुग्धम्। सहस्रमन्यान् प्र सुवामि साकं शतं जीवाति शरदस्तवायम्।।— अ.१.१०.२

५५. यश्च सापत्नः शपथो जाम्याः शपथश्च यः। ब्रह्मा यन्मन्युतः शपात् सर्वं तन्नो अधस्पदम्।।— अ.२.७.२

५६. असितस्य तैमातस्य बभ्रोरपोदकस्य च। सात्रासाहस्याहं मन्योरव ज्यामिव धन्वनो वि मुञ्चामि रथाँ इव।।— अ.५.१३.६

५७. तीक्ष्णेषवो ब्राह्मणा हेतिमन्तो यामस्यन्ति शरव्यां न सा मृषा। अनुहाय तपसा मन्युना चोत दूरादव भिन्दन्त्येनम्।।— अ.५.१८.९

५८. अशत्रिन्द्रो अभयं नः कृणोत्वन्यत्र राज्ञामभि यातु मन्युः।।— अ.६.४०.२

५९. अव ज्यामिव धन्वनो मन्युं तनोमि ते हृदः। यथा संमनसौ भूत्वा सखायाविव सचावहै।। (दे.मन्युः)— अ.६.४२.१

६०. अयं दर्भो विमन्युकः स्वाय चारणाय च। मन्योर्विमन्युकस्यायं मन्युशमन उच्यते।। (दे. मन्युशमनम्)— अ.६.४३.१

६१. अव मन्युरवायताव बाहू मनोयुजा।— अ.६.६५.१

६२. यावन्तो अस्मान् पितरः सचन्ते तेषां सर्वेषां शिवो अस्तु मन्युः।।— अ.६.११६.३

६३. ब्रध्नः समीचीरुषसः समैरयन्। अरेपसः सचेतसः स्वसरे मन्युमत्तमाश्चिते गोः।।— अ.७.२२.२

६४. अपाञ्चौ त उभौ बाहू अपि नह्याम्यास्यम्। अग्नेर्देवस्य मन्युना तेन तेऽवधिषं हविः।। अपि नह्यामि ते बाहू अपि नह्याम्यास्यम्। अग्नेर्घोरस्य मन्युना तेन तेऽवधिषं हविः।।— अ.७.७०.४/ ७.७३.४

६५. त्वाष्ट्रेणाहं वचसा वि त ईर्ष्याममीमदम्। अथो यो मन्युष्टे पते तमु ते शमयामसि।।— अ.७.७४.३/७.७८.३

६६. इन्द्रेण मन्युना वयमभि ष्याम पृतन्यतः। घ्नन्तो वृत्राण्यप्रति।।— अ.७.९३.१/७.९८.१

६७. ज्यायान् निमिषतोऽसि तिष्ठतो ज्यायान्त्समुद्रादसि कृप मन्यो। ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि।।— अ.९.२.२३

६८. क्रोधो वृक्षौ मन्युराण्डौ प्रजा शेपः।।— अ.९.७.१३/९.१२.१३

६९. यन्मन्युर्जायामावहत् संकल्पस्य गृहादधि। क आसं जन्याः के वराः क उ ज्येष्ठवरोऽभवत्।। (दे.मन्युः)— अ.११.८.१/११.१०.१

७०. यत् त्वा क्रुद्धाः प्रचक्रुर्मन्युना पुरुषे मृते। सुकल्पमग्ने तत् त्वया पुनस्त्वोद् दीपयामसि।।— अ.१२.२.५

७१. य आर्षेयेभ्यो याचद्भ्यो देवानां गां न दित्सति। आ स देवेषु वृश्चते ब्राह्मणानां च मन्यवे।।— अ.१२.४.१२

७२. ये वशाया अदानाय वदन्ति परिरापिणः। इन्द्रस्य मन्यवे जाल्मा आ वृश्चन्ते अचित्त्या।।— अ.१२.४.५१

७३. स यद् देवाननु व्यचलदीशानो भूत्वानुव्यचलन्मन्युमन्नादं कृत्वा। मन्युनान्नादेनान्न-मत्ति य एवं वेद।।— अ.१५.१४.१९

७४. नमो वः पितरो भामाय नमो वः पितरो मन्यवे।।— अ.१८.४.८२

७५. यन्मे छिद्रं मनसो यच्च वाचः सरस्वती मन्युमन्तं जगाम। विश्वैस्तद् देवैः सह संविदानः सं दधातु बृहस्पतिः।।— अ.१९.४०.१

७६. समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः। समुद्रायेव सिन्धवः।।— अ.२०.१०७.१

७७. स्वप्नं तन्द्रीं मन्युम् अशनयाम् अक्षकाम्यां स्त्रीकाम्याम् इति। एते ह वै पाप्मानः पुरुषम् अस्मिन् लोके सचन्ते।— जै.ब्रा.१.९८

७८. अथानुमन्त्रयेत प्राणैर् अमुष्य प्राणान् वृङ्क्ष्व। तक्षणेन तेक्षणीयसायुर् अस्य प्राणान् वृङ्क्ष्व। क्रुद्ध एनं मनुन्या दण्डेन जहि। धनुर् एनम् आतत्येष्वा विध्य इति।— जै.ब्रा.१.१२९

७९. षड् वै पुरुषे पाप्मानष् षड् विषुवन्त स्वप्नश् च तन्द्री च मन्युश् चाशनया चाक्षकाम्या च स्त्रीकाम्या च।— जै.ब्रा.२.३६३

८०. यद् एको ऽध्यगच्छद् यद् एको यद् एकस् तद् अस्य मन्यौ योनाव् असिञ्चन्। तत इन्द्रस् संभवत्। तद् एषाभ्यनूच्यते -अश्वाद् इयायेति यद् वदन्त्य् ओजसो जातम् उत मन्य एनम्। मन्योर् इयाय हर्म्येषु तस्थौ यतः प्रजज्ञ इन्द्रो अस्य वेद इति। मन्योर् इयायेति यद् अस्य मन्यौ योनाव् असिञ्चन्। हर्म्येषु तस्थाव् इति हृदयान्य् उ वै हर्म्याणि।--- जै.ब्रा.३.३६५

८१. प्रजापतेर्विस्रस्ताद्देवता उदक्रामन्। तमेक एव देवो नाजहात्-मन्युरेव। सोऽस्मिन्नन्तर-विततोऽतिष्ठत्। सोऽरोदीत्। तस्य यान्यश्रूणि प्रास्कन्दन्-तान्यस्मिन्मन्यौ प्रत्यतिष्ठन्। स एव शतशीर्षा रुद्रः समभवत्-सहस्राक्षः शतेषुधिः।---- श.ब्रा.९.१.१.६

८२. नमस्ते रुद्र मन्यवे इति। य एवास्मिन्त्सोऽन्तर्मन्युर्विततोऽतिष्ठत्-तस्मा एतन्नमस्करोति।--- श.ब्रा.९.१.१.१४

८३. सौत्रामणी : व्याघ्रलोमानि भवंति। मन्युमेव राज्यमारण्यानां पशूनामवरुंधे।— श.ब्रा.१२.७.२.८

८४. पुनराधानमन्त्राः :- यत्त्वा क्रुद्धः परोवप मन्युना यदवर्त्या। सुकल्पमग्ने तत्तव पुनस्त्वोद्दीपयामसि। यत्ते मन्युपरोप्तस्य पृथिवीमनु दध्वसे। आदित्या विश्वे तद्देवा वसवश्च समाभरन्।— तै.सं.१.५.३.२

८५. --- यत्ते मन्युपरोप्तस्येत्याह देवताभिरेव एनँ सं भरति वि वा एतस्य यज्ञश्छिद्यते योऽग्निमुद्वासयते--- — तै.सं.१.५.४.२

८६. राजसूयविषयस्य रथेन विजयस्याभिधानम् (वाराही उपानह का त्याग) :- पशूनां मन्युरसि तवेव मे मन्युर्भूयात्नमो मात्रे पृथिव्यै माऽहं मातरं पृथिवीं हिंसिषं मा मां माता पृथिवी हिँसीद्— तै.सं.१.८.१५.१

८७. जयादिहेतुपशुविधिः :- इन्द्राय मन्युमते मनस्वते ललामं प्राशृङ्गमा लभेत संग्रामे संयत्त इन्द्रियेण वै मन्युना मनसा संग्रामं जयतीन्द्रमेव मन्युमन्तं मनस्वन्तँ स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवास्मिन्निद्रियं मन्युं मनो दधाति--— तै.सं.२.१.३.१

८८. इन्द्राय मन्युमते मनस्वते पुरोडाशमेकादशकपालं निवपेत्सङ्ग्रामे संयत्त इन्द्रियेण वै मन्युना मनसा सङ्ग्रामं जयतीन्द्रमेव मन्युमन्तं मनस्वन्तँ स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवास्मिन्निन्द्रियं मन्युं मनो दधाति---— तै.सं.२.२.८.२

८९. भक्षमन्त्राभिधानम् :--नमो वः पितरो मन्यवे--— तै.सं.३.२.५.६

९०. चित्याग्निहोमोक्तिः :- नमस्ते रुद्र मन्यव उतो त इषवे नमः। नमस्ते अस्तु धन्वने बाहुभ्यामुत ते नमः।— तै.सं.४.५.१.१

९१. वसोर्धाराभिधानम् : ज्यैष्ठ्यँ च म आधिपत्यं च मे मन्युश्च मे भामश्च मे— तै.सं. ४.७.२.१

९२. विहव्याख्येष्टकाभिधानम् : अग्निर्मन्युं प्रतिनुदन्पुरस्तात् अदब्धो गोपाः परि पाहि नस्त्वम्।— तै.सं.४.७.१४.२

९३. अश्वमेधशेषभूतचतुर्थपशुसंघविधिः :- मन्यवे स्वजः---— तै.सं.५.५.१४.१

९४.-नमो वः पितरो मन्यवे।-— तै.ब्रा. १.३.१०.८

९५. पशूनां मन्युरसि तवेव मे मन्युर्भूयादिति वाराही उपानहावुपमुञ्चते। पशूनां वा एष मन्युः। यद्वराहः। तेनेव पशूनां मन्युमात्मन्धत्ते। — तै.ब्रा.१.७.९.४

९६. त्वया मन्यो सरथमारुजन्तः। हर्षमाणासो धृषता मरुत्वः।---मन्युर्भगो मन्युरेवाऽऽस देवः। मन्युर्होता वरुणो विश्ववेदाः। मन्युं विश ईडते देवयन्तीः। पाहि नो मन्यो तपसा श्रमेण।।— तै.ब्रा.२.४.१.११

९७. यानि नो जिनन्धनानि। जहर्थ शूर मन्युना। इन्द्रानुविन्द नस्तानि। अनेन हविषा पुनः।— तै.ब्रा.२.५.३.१

९८. ओजोऽस्योजो मयि धेहि। मन्युरसि मन्युं मयि धेहि। महोऽसि महो मयि धेहि। सहोऽसि सहो मयि धेहि। — तै.ब्रा.२.६.१.५

९९. ----जिह्वा मे भद्रम्। वाङ्महः। मनो मन्युः। स्वराड् भामः।---- — तै.ब्रा.२.६.५.४

१००. होता यक्षद्वनस्पतिम्। शमितारँ शतक्रतुम्। भीमं न मन्युँ राजानं व्याघ्रं नमसाऽश्विना भामम्।--- तै.ब्रा.२.६.११.८

१०१. ईशायै मन्युँ राजानं बर्हिषा दधुरिन्द्रियम्। वसुवने वसुधेयस्य वियन्तु यज।— तै.ब्रा.२.६.१४.६

१०२. पुरोडाशस्य याज्या : आभिः स्पृधो मिथतीररिषण्यन्। अमित्रस्य व्यथया मन्युमिन्द्र। आभिर्विश्वा अभियुजो विषूचीः। आर्याय विशोऽवतारीर्दासीः।।— तै.ब्रा.२.८.३.३

१०३. हविषस्य पुरोनुवाक्या : अयँ शृण्वे अध जयन्नुत घ्नन्। अयमुत प्र कृणुते युधा गाः। यदा सत्यं कृणुते मन्युमिन्द्रः। विश्व दृढं भयत एजदस्मात्।।— तै.ब्रा.२.८.३.३

१०४. पुरोडाशस्य पुरोनुवाक्या : ब्रह्मणस्पतेरभवद्यथा वशम्। सत्यो मन्युर्महिकर्मा करिष्यतः। यो गा उदाजत्स दिवे वि चाभजत्। महीव रीतिः शवसा सरत्पृथक्।।— तै.ब्रा.२.८.५.२

१०५. मन्यवेऽयस्तापम्। क्रोधाय निसरम्। शोकायाभिसरम्।--- तै.ब्रा.३.४.१०.१

१०६. ईशानो मे मन्यौ श्रितः। मन्युर्हृदये। हृदयं मयि। अहममृते। अमृतं ब्रह्मणि।— तै.ब्रा. ३.१०.८.९

१०७. ईर्ष्यासूये बुभुक्षाम्। मन्युं कृत्यां च दीधिरे। रथेन किँशुकावता। अग्ने नाशय संदृशः।।— तै.आ.१.२८.१

१०८. आदित्यो वै तेज ओजो बलं यशश्चक्षुः श्रोत्रमात्मा मनो मन्युर्मनुर्मृत्युः--- तै.आ.१०.१४.१

१०९. अग्निश्च मा मन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः। पापेभ्यो रक्षन्ताम्। यदह्ना पापमकार्षम्। मनसा वाचा हस्ताभ्याम्। पद्भ्यामुदरेण शिश्ना। अहस्तदवलुम्पतु।— तै.आ. १०.२४.१

११०. सूर्यश्च मा मन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः। पापेभ्यो रक्षन्ताम्। यद्रात्रिया पापमकार्षम्। मनसा वाचा हस्ताभ्याम्। पद्भ्यामुदरेण शिश्ना। रात्रिस्तदवलुम्पतु।--- तै.आ. १०.२५.१

१११. तस्यैवं विदुषो यज्ञस्याऽऽत्मा यजमानः श्रद्धा पत्नी शरीरमिध्ममुरो वेदिर्लोमानि बर्हिर्वेदः शिखा हृदयं यूपः काम आज्यं मन्युः पशुस्तपोऽग्नि --- तै.आ. १०.६४.१

११२. मन्युरकार्षीन्नमो नमः। मन्युरकार्षीन्मन्युः करोति नाहं करोमि मन्युः कर्ता नाहं कर्ता मन्युः कारयिता नाहं कारयिता एष ते मन्यो मन्यवे स्वाहा।। (श्रावणी पूर्णिमा को प्रातःकाल जपा जाने वाला मन्त्र)— तै.आ. परिशिष्ट ६२

११३. इन्द्राय मन्युमते मनस्वत एकादशकपालं निर्वपेत् संग्रामे मन्युना वै वीर्यं करोतीन्द्रियेण जयति मन्युं चैवेष्विन्द्रियं च सयुजौ कृत्वा तयोर्मनो जित्यै दधाति-— काठक सं.१०.८

११४ .आदित्यो वै तेज ओजो बलं---मनो मन्युर्मनुर्मृत्युः--- महानारायणोपनिषद १२.३

११५. अग्निश्च मा मन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः पापेभ्यो रक्षन्ताम्।---सूर्यश्च मा मन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः पापेभ्यो रक्षन्ताम्।-- महानारायणोपनिषत् १४.३

११६. कामोऽकार्षीन्नाहं करोमि---मन्युरकार्षीन्नाहं करोमि मन्युः करोति-— महानारायणोपनिषत् १८.२

११७. तस्यैवंविदुषो यज्ञस्यात्मा यजमानः श्रद्धा पत्नी----- काम आज्यं मन्युः पशुः---- महानारायणोपनिषत् २५.१

११८. यस्ते मन्योरिति च चतुर्दशर्चस्य सूक्तस्य रुद्रो दुर्वासास्तपनपुत्रो मन्युर्देवता। अपनिलयन्तामिति बीजम्।-- वनदुर्गोपनिषत् ४५९

११९. अग्न्याधेय/पुनराधेय : यत्त्वा क्रुद्धः परोवपेति दक्षिणाग्निम्। यत्ते मन्युपरोप्तस्येतीतरान्।— आप.श्रौ.सू.५.२७.१२

१२०. अग्निष्टोम प्रातःसवनम् : इन्द्रेण मन्युना युजावबाधे पृतन्यता। घ्नता वृत्राण्यप्रतीति शुक्रं यजमानो ऽन्वारभत आ होमात्।— आप.श्रौ.सू. १२.२२.५

१२१. राजसूयः :- पशूनाम् मन्युरसीति वाराही उपानहावुपमुच्य नमो मात्र इत्यवरोक्ष्य-न्पृथिवीमभिमन्त्र्यवरुह्य मणीन्प्रतिमुञ्चते।— आप.श्रौ.सू. १८.१७.१२

१२२. अश्वमेधः :- वि मन्युमिन्द्र वृत्रहन्नमित्रस्याभिदासत इति वैमृधीभ्यां यजमानो मुखं विमृष्टे।— आप.श्रौ.सू.२०.२०.७

१२३. द्वादशाहः :- अरेपसः समोकसः सचेतसः सरेतसः स्वसरे मन्युमन्तश्चिदाकोरिति।— आप.श्रौ.सू.२१.९.१५

१२४. मन्युसूक्ते निविद्धाने लिङ्गक्लृप्ते। (यस्ते मन्यो इति तथा त्वया मन्यो इति सूक्तों में प्रथम निष्केवल्य है तथा दूसरा हर्षमाणासो धृषिता मरुत्व में मरुत्वलिङ्ग से मरुत्वतीय है-टीका)— शांखायन श्रौ.सू.१४.२२.५

१२५. यानि नो धनानि क्रुद्धो जिनासि मन्युना। इन्द्रानुविद्धि नस्तान्यनेन हविषा पुनः।-आश्वलायन श्रौ.सू.२.१०.१२

१२६. श्येन व अजिर नामक दो एकाह : अहं मनुर्गर्भे नु संस्त्वया मन्यो यस्ते मन्यविति मध्यंदिनौ।— आश्व.श्रौ.सू.९.७.२

१२७. विनुत्यभिभूत्योरिषुवज्रयोश्च मन्युसूक्ते।— आश्व.श्रौ.सू.९.८.१९

१२८. उपमन्यूनां वासिष्ठाभरद्वस्विन्द्रप्रमदेति----- आश्व.श्रौ.सू.१२.१५.२

१२९. यत्त्वा क्रुद्धः परोवप मन्युनेति तिसृभिस्त्रिः समिन्द्धे।— मानव श्रौ.सू. १.६.५.७

१३०. इन्द्रेण मन्युनेति यजमानो जपति।— मानव श्रौ.सू. २.४.१.१५

१३१. द्वैध सूत्र : अध्याय २० से लेकर अध्याय २३ तक विभिन्न कर्मकाण्डों के संदर्भ में बौधायन, शालीकि, औपमन्युओं तथा उपमन्यवीपुत्र के दृष्टिकोणों में भेदों का कथन— बौधायन श्रौ.सू.

१३२. उपमन्यव औपगवा माण्डलेखयः कापिञ्जला जालागतास्तपोलोकास्त्रैवर्णश्चैव पार्णागारिः सुराक्षराः शैलालयो महाकर्णायना वालशिखा औद्राहमानयो बालायना भागुरिथ्थायना कुण्डोदरायणा लाक्ष्मणेया काचान्तयो वार्काश्वकय आनृक्षरायणा आलबवाः कपिकेशाः इत्येत उपमन्यवस्तेषां त्र्यार्षेय प्रवरो भवति वासिष्ठैन्द्रप्रमदाभरद्वसवेति होताभरद्वसुवदिन्द्र-प्रमदवद्वसिष्ठवदित्यध्वर्युः।— बौधा.श्रौ.सू.प्रवर ४७

## उपानह

१. दामयतः पदो रोगान् उपानहौ दण्डस् त्वा दत्तः परि पातु सर्पात्।— पैप्पलाद सं.७.१५.८

२. आ नयामि ते मनो अश्वम् इवाश्वाभिधान्या। उप ते मुञ्चे मनः पदोर् उपानहौ यथा।।— पै.सं.१९.३७.४

३. प्रतीचीनान् वो अभ्य् अधाम् अश्वम् इवाश्वाभिधान्या। कृण्वे वो मामके वशे पदोर् उपानहौ यथा।।— पै.सं.२०.५२.५

४. वृष्ट्यै त्वोपनह्यामि इति कृष्णाजिने पिण्डीरुपनह्यति।— मानव श्रौ.सू.५.२.६.७

५. ऊर्ध्वं पूर्वाहिकीभ्यां कृष्णाजिनस्योपानहं प्रतिमुच्यापामिदं न्ययनं नमस्ते हरसे शोचिष इति द्वाभ्यामग्निमाक्रामति।— मानव श्रौ.सू. ६.२.४.१६

'६. वृष्णस्संदानमसि वृष्ट्यै त्वोपनह्यामि वृषा ह्यश्वो वृषा पर्जन्यः-— काठक सं. ११.९,११.१०

७. कृष्णाजिन उपनह्यति ऋक्सामयोर्वा एतद्रूपं यत्कृष्णाजिनं ऋक्सामाभ्यामेवस्मै वृष्टिमिच्छति— काठक सं. ११.१०

८. देवानामेष उपनाह आसीदपां पतिरोषधीनाम्— काठक सं. १३.९

९. सरस्वत्यै सत्यवाचे चरुस्तिसृधन्वं शुष्कदृतिर्दण्ड उपानहौ तद्दक्षिणाश्वो वा शोणकर्णः।— काठक सं. १५.९

१०. वरुणमेनिर्वा एष उपनद्ध उदुतिष्ठ स्वध्वरोर्ध्व ऊ षु ण ऊतय इत्यूर्ध्वामेव वरुणमेनिमुत्सुवति-— काठक सं. १९.५

११. कृष्णाजिनस्योपानहौ कुरुते ब्रह्मणो वा एतद्रूपं यत् कृष्णाजिनं मृत्युरग्निर्ब्रह्मणैव मृत्योरन्तर्धत्तेऽन्तर्मृत्योर्धत्तेऽन्तरमन्नाद्यादन्यतरामुपानहं कुर्वीतान्तर्मृत्योर्धत्तेऽवान्नाद्यं रुन्द्धे-— काठक सं. २१.७

१२. छन्दांसि मीयमानो वरुण उपनद्धः पूषा सोमक्रयण्यां-— काठक सं. ३४.१४

१३. यद् दीक्षितानां प्रमीयेत तं दग्ध्वास्थान्य् उपनह्यापभज्य सोमं यो ऽस्य नेदिष्ठतमस् स्यात् तेन सह दीक्षयित्वा याजयेयुः।— जै.ब्रा.१.३४५

१४. क्रीत्वा (सोमं) तु नानोपनह्यति। नानर्त्विजो भवन्ति।— जै.ब्रा.२.१६५

१५. वरुणदेवत्यो वा एष तावद्यावदुपनद्धो यावत्परिश्रितानि प्रपद्यते।---- यज्ञो वै सुतर्मा नौः कृष्णाजिनं वै सुतर्मा नौ---— ऐ.ब्रा.१.१३

१६. हिरण्यमिव ह वा एष एतद्देवेभ्यश्छदयति यत्कृष्णाजिनम्।----वरुणदेवत्यो वा एष तावद्यावदुपनद्धो यावत्परिश्रितानि प्रपद्यते-— ऐ.ब्रा.१.३०

१७. कारीरीष्टिविधिः :- ---वृष्णो अश्वस्य संदानमसि वृष्ट्यै त्वोप नह्यामि।— तै.सं.२.४.७.२

१८. कारीरीष्टिमन्त्रव्याख्यानम्: :- वृष्णो अश्वस्य संदानमसि वृष्ट्यै त्वोप नह्यामीत्याह वृषा वा अश्वो वृषा पर्जन्यः कृष्ण इव खलु वै भूत्वा वर्षति रूपेणैवैनं समर्धयति वर्षस्यवरुद्ध्यै।— तै.सं. २.४.९.४

१९. वृषालम्भन कर्म : देवानामेष उपनाह आसीदपां गर्भ ओषधीषु न्यक्तः। सोमस्य द्रप्समवृणीत पूषा बृहन्नद्रिरभवत्तदेषाम्।।— तै.सं. ३.३.९.१

२०. यज्ञतन्वाख्येष्टका :----वरुण उपनद्धोऽसुरः क्रीयमाणो मित्रः क्रीतः--— तै.सं. ४.४.९.१

२१. संभृतमृदो यज्ञभूमौ समाहरणम् : सुजातो ज्योतिषा सहेत्यनुष्टुभोप नह्यत्यनुष्टुप् सर्वाणि छन्दांसि छन्दांसि खलु वा अग्नेः प्रिया तनूः----वेदुको वासो भवति य एवं वेद वारुणो वा अग्निरुपनद्ध--— तै.सं. ५.१.५.३

२२. वरुणो वा एष यजमानमभ्यैति यदग्निरुपनद्ध-- — तै.सं.५.१.५.९

२३. उखा निर्माण : वारुणो वा अग्निरुपनद्धो वि पाजसेति वि स्रंसयति सवितृप्रसूत एवास्य विषूचीं वरुणमेनिं वि सृजत्यप उप सृजत्यापो वै शान्ताः--— तै.सं.५.१.६.१

२४. परिषेचनाद्यभिधानम् : मृत्युर्वा एष यदग्निर्ब्रह्मण एतद्रूपं यत्कृष्णाजिनं कार्ष्णी उपानहावुप मुञ्चते ब्रह्मणैव मृत्योरन्तर्धत्ते— तै.सं.५.४.४.४

२५. ब्रह्म वै छन्दांसि ब्रह्मण एतद्रूपं यत्कृष्णाजिनं कार्ष्णी उपानहावुपमुञ्चते छन्दोभिरेवाऽऽत्मानं छादयित्वाऽग्निमुप चरत्यात्मनोऽहिंसायै— तै.सं.५.६.६.१

२६. सोमोन्मानम् : वाससोप नह्यति सर्वदेवत्यं वै वासः-- -पशवो वै सोमः प्राणाय त्वेत्युप नह्यति प्राणमेव पशुषु दधाति-— तै.सं.६.१.९.६

२७. क्रीतसोमस्य शकटेन नयनम् : वारुणो वै क्रीतः सोम उपनद्धो मित्रो न एहि सुमित्रधा इत्याह शान्त्या-- — तै.सं.६.१.११.१

२८. सौर्यर्चा कृष्णाजिनं प्रत्यानह्यति रक्षसामपहत्यै— तै.सं.६.१.११.४

२९. अदाभ्य ग्रह : उपनद्धस्य गृह्णाति--— तै.सं.६.६.९.२

३०. गवामयनगुणविकाररूपोत्सर्गः :- यथा दृतिरुपनद्धो विपतत्येवं संवत्सरो वि पतेद----— तै.सं.७.५.६.२

३१. त्र्यम्बकहविर्यागः :- तान् द्वयोर्मूतकयोरुपनह्य, वेणुयष्ट्यां वा कुपे वा उभयत आबध्य -— श.ब्रा.२.६.२.१७

३२. यूपारोहणम् : आश्वत्थेषु पलाशेषूपनद्धा भवन्ति। स यदेवादो ऽश्वत्थे तिष्ठत इन्द्रो मरुत उपामन्त्रयत। तस्माद्--- श.ब्रा.५.२.१.१७

३३. अभिषेकोत्तरकर्माणि : अथ वाराह्याऽउपानहा ऽउपमुञ्चते। अग्नौ ह वै देवा घृतकुम्भं प्रवेशयांचक्रुः। ततो वराहः सम्बभूव। तस्माद् वराहो मेदुरः। घृताद्धि सम्भूतः। तस्माद्वराहे गावः सञ्जानते। स्वमेवैतद्रसमभि संजानते। तत्-पशूनामेवैतद्रसे प्रतितिष्ठति। तस्माद्वाराह्याऽउपानहा-ऽउपमुञ्चते।— श.ब्रा.५.४.३.१९

३४. अथ राजानं क्रीत्वा द्वेधोपनह्य परिवहन्ति। ततोऽर्धमासन्द्यामासाद्य प्रचरति।--- श.ब्रा. ५.४.५.१५

३५. केशवपनीय अतिरात्र : आसन्द्या उपानहाऽउपमुञ्चते। उपानद्भ्यामधि यदस्य यानं भवति, रथो वा किञ्चिद्वा-सर्वं वा ऽएष इदमुपर्युपरि भवति।— श.ब्रा.५.५.३.७

३६. अथैनमुपनह्यति। योनौ तद्रेतो युनक्ति। तस्माद्योनौ रेतो युक्तं न निष्पद्यते। योक्त्रेण। योक्त्रेण हि योग्यं युञ्जन्ति।— श.ब्रा.६.४.३.७

३७. अथैनं विष्यति। तद् यदेवास्यात्रोपनद्धस्य संशुच्यति-तामेवास्मादेतच्छुचं बहिर्धा दधाति।— श.ब्रा.६.४.४.२०

३८. यदि दीक्षितानां प्रमीयेत दग्ध्वास्थीन्युपनह्य यो नेदिष्ठो स्यात्तं दीक्षयित्वा सह यजेरन्।— ताण्ड्य ब्रा. ९.८.१

३९. कुण्डपायिनामयनम् : मासन्दीक्षिता भवन्ति ते मासि सोमं क्रीणन्ति तेषां द्वादशोपसद उपसद्भिश्चरित्वा सोममुपनह्य मासमग्निहोत्रञ्जुह्वति।--- तां.ब्रा. २५.४.१

४०. अग्निष्टोम प्रातःसवनम् : उपनद्धस्य राज्ञस्त्रीनंशून्प्रवृहति।— आप.श्रौ.सू. १२.७.१९

४१. अग्निचयन : मृत्खनने अप आनीय समुद्यम्य कृष्णाजिनस्यान्तान्सुजातो ज्योतिषा सहेति क्षौमेण मौञ्जेनार्कमयेण वा दामनोपनह्यति।— आप.श्रौ.सू. १६.३.७

४२. व्रीहियवश्यामाकान्क्रीत्वा क्षौमे वासस्युपनद्धान्व्रीहींस्तोक्मानि कुर्वन्ति।— आप.श्रौ.सू. १९.५.७

४३. --- तिस्रः पिण्डीकृत्वा पुष्करपलाशैः संवेष्ट्य समुद्यम्य कृष्णाजिनस्यान्तान्वृष्णो अश्वस्य संदानमसीति कृष्णेन दाम्नोपनह्यति।— आप.श्रौ.सू. १९.२६.१

४४. अदाभ्यग्रहं : वसवस्त्वा प्रवृहन्त्वित्येतैरुपनद्धस्य राज्ञस्त्रीनंशूनादाय---- वैखा.श्रौ.सू. १५.१०

४५. प्रातः सवनायालमुपनद्धस्य राज्ञो ऽर्धमादत्त इतरमुष्णीषेणोपनह्योद्वृह्य पूर्व-वत्सादयति-— वैखा.श्रौ.सू. १५.१३

४६. अग्निचयन : योक्त्रेण त्रिवृता सुजातो ज्योतिषा सहेत्युपनह्येद्-— वैखा.श्रौ.सू.१८.१

४७. अथोपनद्धां मृत्तिकां वि पाजसेति विस्रंसयत्यापो हि ष्ठा मयोभुव इति-— वैखा.श्रौ.सू. १८.१

४८. कार्ष्णाजिनीरुपानह उपमुञ्चते चिते त्वेत्यध्वर्युराचिते त्वेति प्रतिप्रस्थाता मनश्चिते त्वेति ब्रह्मा तपश्चिते त्वेति यजमानश्चिते त्वेति वा सर्वे तूष्णीं वा-— वैखा.श्रौ.सू.१८.१४

४९. अग्निचयनम् : अथ कार्ष्णाजिनीरुपानह उपमुञ्चन्ते चिते त्वेत्यध्वर्युराचिते त्वेति प्रतिप्रस्थाता मनश्चिते त्वेति ब्रह्मा तपश्चिते त्वेति यजमानश्चिते त्वा चिते त्वेत्येव वा सर्वे ऽपि वा तूष्णीमेव— बौधा.श्रौ.सू.१०.२३

५०. --- तिस्रः पिण्डीः कृत्वा समुद्यित्य कृष्णाजिस्यान्तान्संदानेनोपनह्यति वृष्णो अश्वस्य संदानमसि वृष्ट्यै त्वोपनह्यामीति---अथैना अनसः प्रथमायां गधायामाबध्नाति।— बौधा.श्रौ.सू.१३.३८

५१. उपनद्धस्य राज्ञस्त्रीनंशून्प्रवृहति वसवस्त्वा प्रवृहन्तु गायत्रेण छन्दसाग्नेः प्रियं पाथ उपेहि रुद्रास्त्वा प्रवृहन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसा-— बौधा.श्रौ.सू.१४.१२

५२. पुष्करपर्णे (पिण्डं) निदधाति। --- आस्तीर्णयोरन्तानुद्वृह्णाति सुजात इति। त्रिवृता

मुञ्जयोक्त्रेणोपनह्यति वासो अग्न इति।— कात्यायन श्रौ.सू.१६.३.१

५३. दामनी द्वे द्वे। उपानहौ च कर्णिन्यौ कृष्णे स्यातामित्येके।— कात्यायन श्रौ.सू. २२.४.२२

५४. अथामो दैवोपानहि पादं जरितारोथामो-- — आश्व.श्रौ.सू.८.३.१९

५५. सोममुपनह्य प्रवर्ग्यपात्राण्युत्साद्योपनह्य वा मासमग्निहोत्रं जुह्वतति।-- — आश्व.श्रौ.सू.१२.३.५

## उर्वशी

१. मर्तानां चिदुर्वर्शीरकृप्रन् वृधे चिदर्य उपरस्यायोः— ऋ. ४.२.१८

२. अभि न इळा यूथस्य माता स्मन्नदीभिरुर्वशी वा गृणातु। उर्वशी वा बृहद्दिवा गृणानाऽभ्यूर्ण्वाना प्रभृथस्यायोः।। — ऋ. ५.४१.१९

३. उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठोर्वश्या ब्रह्मन् मनसोऽधि जातः। द्रप्सं स्कन्नं ब्रह्मणा दैव्येन विश्वे देवाः पुष्करे त्वाददन्त।। — ऋ. ७.३३.११

४. अथाधरारणिं निदधाति-उर्वश्यसि-इति। अथोत्तरारण्याऽऽज्यविलापनीमुपस्पृशति-आयुरसि-इति। तामभिनिदधाति-पुरूरवा असि- इति। उर्वशी वाऽअप्सराः।। पुरूरवाः पतिः। अथ यत् तस्मान्मिथुनादजायत-तदायुः।— श. ३.४.१.२२

५. आश्वत्थ्योररण्योरुत्पत्तिख्यापकं ब्राह्मणम् : उर्वशी हाप्सरा पुरूरवसमैडं चकमे। तं ह विंदमानोवाच। त्रिः स्म माऽह्नो वैतसेन दंडेन हतात्। अकामां स्म मा निपद्यासै।---- श. ११.५.१.१

६. पञ्चचूडेष्टकोपधानम् : अथ मध्ये। अयमुपर्यर्वाग्वसु इति। पर्जन्यो वाऽउपरि।----- उर्वशी च पूर्वचित्तिश्चाप्सरसौ इति। दिक्चोपदिशा चेति ह स्माह माहित्थिः। आहुतिश्च तु ते दक्षिणा च।-- — श. ८.६.१.२०

७. क्रय प्रदेश को जाती हुई सोमक्रयणी गौ के पद संग्रह का अभिधान :---सं देवि देव्योर्वश्या पश्यस्व त्वष्टीमती ते सपेय सुरेता रेतो दधाना वीरं विदेय तव संदृशि माऽहँ रायस्पोषेण वि योषम्। — तै. सं. १.२.५.२

८. यूपे पशुनियोजनार्थमुपाकरणाभिधानम्------ अग्नेर्जनित्रमसि वृषणौ स्थ उर्वश्यस्यायुरसि पुरूरवा घृतेनाक्ते वृषणं दधातां-----— तै. सं. १.३.७.१

९. चोडाख्येष्टकाभिधानम् : अयमुपर्यर्वाग्वसुस्तस्य----उर्वशी च पूर्वचित्तिश्चाप्सरसौ-- — तै. सं. ४.४.३.२

१०. अग्निमन्थनाभिधानम् : अग्नेर्जनित्रमसीत्याहाग्नेर्ह्येतज्जनित्रं वृषणौ स्थ इत्याह वृषणौ ह्येतावुर्वश्यस्यायुरसीत्याह मिथुनत्वाय घृतेनाक्ते वृषणं दधाथामित्याह-----— तै. सं. ६.३.५.२

११. उर्वशी वै पुरूरवस्यासीत् सान्तर्वती देवान् पुनः परैत् सोऽदो देवेष्वायुरजायत तामन्वागच्छत् तां पुनरयाचत तामस्मै न पुनरददुस्तस्मा आयुं प्रायच्छन्नेष आयुरित्यग्निं चोख्यमुखायाँ समुप्यैतमाधत्स्व तेन प्रजनिष्यस इति स-------काठक सं. ८.१०

१२. धिष्ण्यम् : उर्वश्यस्यायुरसि पुरूरवा असीति माता वा उर्वश्यायुर्गर्भः पिता पुरूरवा रेतो घृतं यद् घृतेनारणी समनक्ति मिथुन एव रेतो दधाति -काठक सं. २६.७

१३. ---वृषणौ स्थ इत्यभिप्राण्यारण्यौ। तयोरुपर्यधरारणिम्। दक्षिणतो मूलान्। पश्चात्प्रजननामुर्वश्यसीत्यायुरसीति।-— कौशिक सूत्र ६९.१७

१४. पशुबन्धः :- अथारणी आदत्त उर्वश्यस्यायुरसि पुरूरवा इत्यथैने आज्यस्थाल्याँ समनक्ति घृतेनाक्ते वृषणं दधाथामित्यथ प्रजातीर्वाचयति-— बौधा. श्रौ. सू. ४.५

१५. अग्निष्टोम प्रातःसवम् : तोते राय इति यजमान पत्न्या अथ पत्नीं सोमक्रयण्या समीक्षयति सं देवि देव्योर्वश्या पश्यस्वेत्यथ पत्नी यजमानमीक्षते त्वष्टीमती ते सपेय सुरेता रेतो दधाना-— बौधा. श्रौ. सू. ६.१३

१६. वृषणौ स्थ इति दूर्वे वा शकले वा निदध्यादुर्वश्यसीत्यधरारणिमाददीत पुरूरवा इत्युत्तरारणिमथैने-— बौधा. श्रौ. सू. २०.२७

१७. सदोपसदौ : पुरूरवा ह पुरा ऐडो राजा कल्याण आस तँ होर्वश्यप्सराभिदध्यौ तँ संवत्सरं कामयमानानुचचारैवँ ह स्म वै पूर्वे ऽभिश्राम्यन्ति— बौधा. श्रौ. सू. १८.४४

१८. अपि वाग्निं मथित्वोपाकुर्यात्। अग्नेर्जनित्रमसीत्यधिमन्थनं शकलं निदधाति। वृषणौ स्थ इति प्राञ्चौ दर्भौ। उर्वश्यसीत्यधरारणिमादत्ते। पुरूरवा इत्युत्तरारणिम्।---— आप. श्रौ. सू. ७.१२.११

१९. सं देवि देव्योर्वश्या पश्यस्वेति सोमक्रयण्या पत्नीं संख्यापयति। त्वष्टीमती ते सपेयेति पत्नी--- — आप. श्रौ. सू. १०.२३.६

२०. चातुर्मास्यानि : अग्नेर्जनित्रमिति शकलमादाय वेद्यां करोति। वृषणाविति कुशतरुणे तस्मिन्। उर्वश्यसीत्यधरारणिं तयो। आयुरसीत्युत्तरयाऽऽज्यस्थालीं सँस्पृश्य पुरूरवा इत्यभिनिधानं तया।— कात्या. श्रौ. सू ५.१.२२

२१. तत्तल्लोकेच्छया अप्सरसा उर्वश्या तस्मिन् गोवर्धनाद्रौ तप आतन्यत।-सामरहस्योपनिषद

२२. शशपृष्ठात् गौतमः, वसिष्ठ उर्वश्याम्, अगस्त्यः कलशे जात इति श्रुतत्वात्।— वज्रसूचिकोपनिषत्

## उलूक

१. उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम्। सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र।।— ऋ. ७.१०४.२२

२. यदुलूको वदति मोघमेतद्यत् कपोतः पदमग्नौ कृणोति। यस्य दूतः प्रहित एष एतत् तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे।।— ऋ. १०.१६५.४

३. अमून् हेतिः पतत्रिणी न्येतु यदुलूको वदति मोघमेतत्। यद् वा कपोतः पदमग्नौ कृणोति।। यौ ते दूतौ निर्ऋत इदमेतोऽप्रहितौ प्रहितौ वा गृहं नः। कपोतोलूकाभ्यामपदं तदस्तु।।— अथर्व ६.२९.२

४. उलूकयातुं शुशुलूकयातुं— अथर्व. ८.४.२२

५. विष्कन्धस्य काष्ठस्य कर्दमस्योलूक्या। अपस्फानस्य कृत्या यास् तेषां त्वं रधूगिले जहि।।— पैप्पलाद सं. १.५८.१

६. उलूकयातुर् भृमलो यश् च यातुस् त्यं या नुदषि वधास् सपित्र्यास् तेन श्रयाहिर् उत मंहिधेहिभिः।।— पैप्पलाद सं. १३.१०.४

७. उलूकयातुं शुशुलूकयातुं— पैप्पलाद सं. १६.११.२

८. कर्णादृश द्रतामह उलुकीं केशिनीं क्रकूम्। षडुरिमं बर्हिष्यं नाशयामस् सदान्वाः।।— पै. सं. १७.१२.३

९. यद् उलूको वदति मोघम् एतद् यत् कपोतः पदम् अग्नौ कृणोति।-— पै. सं. १९.२७.११, १९.४८.३

१०. त्रिंशन् मुष्का कध्वस्य दश मुष्काव् उलूक्या।-— पै. सं. १९.५२.१५

११. सुमङ्गलेन वचसा केशिन् ग्रामं त्वं वद। ब्रह्माब्रह्मा तुव उलूकाच्छा वदामसि।।— पै. सं. २०.२७.७

१२. शग्मम् उलूक नो वद यं द्विष्मस् तम् इतो नय। राज्ञो यमस्य त्वा गृह एह मूषकवेह भागः।— पै. सं. २०.२७.९

१३. यस् त्वा पृतन्यो यद् उलूका न्य् उत् तान् अपक्षितः। स मे ध्रियमाणम् आ वहद् अप द्वेषः परा वहत्।।— पै. सं. २०.५४.६

१४. घ्नन्तु कृष्णाम् इव त्वचं सुभागम् अस्तु मे मुखम्। इन्द्रेण प्रेषित उलूक सं भजामि ते।।

--- -सूर्येण प्रेषित उलूक सं भजामि ते।।-----सोमेन प्रेषित उलूक सं भजामि ते।----- -बृहस्पतिना प्रेषित उलूक सं भजामि ते।----प्रजापतिना प्रेषित उलूक सं भजामि ते।— पै. सं. २०.५९.५

१५. ग्राह्या दूतो ऽस्य् उलूक सं भजामि ते। निर्ऋत्या दूतो ऽस्य् उलूक सं भजामि ते।। वरुणस्य दूतो ऽस्य् उलूक सं भजामि ते।। यमस्य दूतो ऽस्य् उलूक सं भजामि ते।। मृत्योर् दूतो ऽस्य् उलूक सं भजामि ते।— पै. सं. २०.६०.१

१६. इन्द्रानुवचनम् : कपोत उलूकश्शशस्ते नैर्ऋता— काठक सं. ४७.८

१७. इत्थादुलूक आपप्तत्। हिरण्याक्षो अयोमुखः। रक्षसां दूत आगतः। तमितो नाशयाग्ने, इति।— तै. आ. ४.३३

१८. अध्रिगू प्रैषः :-------ऊवध्यगोहं पार्थिवं खनतात्। अस्ना रक्षः सँसृजतात्। वनिष्ठुमस्य मा राविष्ट। उरूकं मन्यमानाः।— तै. ब्रा. ३.६.६.३

१९. वनिष्ठुमस्य मा राविष्टोरूकं मन्यमाना नेद्वस्तोके तनये रविता रवच्छमितार इति ये चैव देवानां शमितारो ये च मनुष्याणां तेभ्य एवैनं तत्परिददाति, इति।— ऐ. ब्रा. २.७

२०. ----कपोत उलूक शशस्ते नैर्ऋता— तै. सं. ५.५.१८.१

२१. अथ---खर-करभ-मन्थ-कङ्क-कपोत-उलूक-काक-गृध्र-- संस्थान्युपरि पांसुमांसपेश्य-स्थिरुधिरवर्षाणि प्रवर्तन्ते-----तान्येतानि सर्वाणि वायुदेवत्यान्यद्भुतानि प्रायश्चित्तानि भवन्ति।— षड्विंश ब्रा.६.७.२

२२. अग्न्याधेयम् : उलूके मे श्वभ्यशः-— बौ. श्रौ. सू.२.५

२३. प्रवर्ग्य प्रायश्चित्तानि : अथ यद्युलूकोलूकी वाश्येत तमनुमन्त्रयत इत्थादुलूक आपप्तदित्यथ-— बौ. श्रौ. सू.९.१८

२४. अथ यदि गृध्रः सलावृकी भयेडको दीर्घमुख्युलूको भूतोपसृष्टः शकुनिर्वा वदेदसृङ्मुखः यदेतत्। यदीषितः। दीर्घमुखि। इत्थादुलूकः।— आप. श्रौ. सू. १५.१९.४

२५. अग्नीषोमीय पशुयाग प्रकरणम् : वनिष्ठुमस्य मा राविष्टोरूकं मन्यमाना नेद्वस्तोके तनये रविता रवच्छमितार इत्यध्रिगौ-— शां. श्रौ. सू. ५. १७. ९, आश्व. श्रौ. सू. ३.३.१

२६. कण्टकशल्ययोलूकपत्रयासितालकाण्डया हृदये विध्यति।— कौशिक सूत्र ३५

२७. नर्दनं च बिडालानां क्षीरवृक्षनिषेषणम्। खरैर्दीप्तैरुलूकैश्च रसद्भिः सह विग्रहः।।— अथर्व परि. ६४.७.५

२८. गृहे यस्य पतेउदृध्र उलूको वा कथंचन। कपोत प्रविशेच्चैव जीवा वारण्यसंभवाः।।— अथर्व परि. ६७.३.१

२९. यद्याति वेश्म कपोतः प्रविशेत विशेषतः। राजवेश्मन्युलूको वा तत्त्याज्यमचिराउदृहम्।।— अथर्व परि. ७० ग.२७.९

३०. उत्पात : काकोलूककृकलासश्येननिपतिते राजछत्त्रे भग्ने ध्वजे-— अथर्व परि. ७२.२.६

३१. ---वृषदंशातिमार्जनमुलूक प्रतिगर्जनं श्येनगृध्रादीनां ध्वजाभिलपनं-— अथर्व परि. ७२.३.७

३२. उलूकस्य यथा भानुरन्धकारः प्रतीयते। स्वप्रकाशे परानन्दे तमो मूढस्य जायते।— आत्मप्रबोधोपनिषत् २५

## उलूखल

१. यत्र ग्रावा पृथुबुध्न ऊर्ध्वो भवति सोतवे। उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः।।

----------,-

यच्चिद्धि त्वं गृहेगृह उलूखलक युज्यसे। इह द्युमत्तमं वद जयतामिव दुन्दुभिः।।

---------- -ऋ.१.२८.१

२. ये व्रीहयो यवा निरूप्यन्ते अंशव एव ते। यान्युलूखलमुसलानि ग्रावाण एव ते।-— अथर्व. ९.६.१५

३. उलूखले मुसले यश्च चर्मणि। यो वा शूर्पे तण्डुलः कणः। यं वा वातो मातरिश्वा पवमानो ममाथाग्निष्टद्धोता सुहुतं कृणोतु।।— अथर्व. १०.९.२६

४. तस्यौदनस्य बृहस्पतिः शिरो ब्रह्म मुखम्। द्यावापृथिवी श्रोत्रे सूर्याचन्द्रमसावक्षिणी सप्तऋषय प्राणापानाः। चक्षुर्मुसलं काम उलूखलम्। दितिः शूर्पमदितिः शूर्पग्राही वातोऽपाविनक्।। अश्वाः कणा गावस्तण्डुला मशकास्तुषाः।— अथर्व. ११.३.१

५. यद्यत् कृष्णः शकुन एह गत्वा त्सरन् विषक्तं बिल आससाद। यद् वा दास्या३र्द्रहस्ता समङ्क्त उलूखलं मुसलं शुम्भतापः।।— अथर्व. १२.३.१३

६. महानग्न्युलूखलमतिक्रामन्त्यब्रवीत्। यथा तव वनस्पते निरघ्नन्ति तथैवति।।— अथर्व. २०.७०.६

७. यज्ञायुधसंभृत्याभिधानम् :---- कृष्णाजिनं च शम्या चोलूखलं च मुसलं च दृषच्चोपला चैतानि वै दश यज्ञायुधानि य एवं वेद मुखतोऽस्य यज्ञः कल्पते--— तै. सं. १.६.८.३

८. स्वयमातृण्णास्थापनम् : उलूखलमुप दधात्येषा वा अग्नेर्नाभि सनाभिमेवाग्निं चिनुतेऽहिंसाया औदुम्बरं भवत्यूर्ग्वा उदुम्बर ऊर्जमेवाव रुन्धे-— तै. सं. ५.२.८.७

९. आसन्द्याभिधानम् : प्रजापतिर्वा एष यदग्निस्तस्योखा चोलूखलं च स्तनौ तावस्य प्रजा उप जीवन्ति यदुखां चोलूखलं चोपदधातति ताभ्यामेव यजमानोऽमुष्मिँल्लोकेऽग्निं दुहे-- — तै. सं. ५.६.९.२

१०. षड्रात्रकथनम् : उलूखलबुध्नो यूपो भवति प्रतिष्ठित्यै-— तै. सं. ७.२.१.३

११. एषा वै विष्णोर्नाभिर्यदुलूखलमुपदधाति विष्णोरेव नाभा अग्निं चिनुत औदुम्बरं भवत्यूर्ग्वा उदुम्बर ऊर्जमेव मध्यतो दधाति यजमाने च प्रजासु च-— काठक सं. २०.७

१२. मनसा वै प्रजापतिर्यज्ञमतनुतौलूखलस्योद्वदितोरध्वर्युश्च यजमानश्च वाचं यच्छेतां-— काठक सं. ३२.७

१३. अन्वाहार्यपचने पिष्टलेपस्य होमे मन्त्रम् : उलूखले मुसले यच्च शूर्पे। आशिश्लेष दृषदि यत्कपाले। अवप्रुषो विप्रुषः संयजामि। विश्वे देवा हविरिदं जुषन्ताम्। — तै. ब्रा. ३.७.६.२१

१४. अग्निहोत्रम् : अथैतां चितां चिन्वन्ति।---- - पार्श्वयोर् मुसल च शूर्पे च पत्त उलूखलम्।-— जै. ब्रा. १.४८

१५. चक्रवती सदोहविर्धाने भवत, उलूखलबुध्नो यूप, उत्क्रान्त्या अनपभ्रंशाय।— जै. ब्रा. २.२९८

१६. उपगु-इन्द्र संवाद :---तं ह याजयांचकार। स्वयम् एव सदोहविर्धाने उत्तस्थतुः। उलूखले सोमम् अभिषुषाव।-— जै. ब्रा. ३.२००,२०१

१७. पात्रासादनम् : अथ तृणैः परिस्तृणाति। द्वन्द्वं पात्राण्युदाहरति------ -उलूखलमुसले।---- श. ब्रा. १.१.१.२२

१८. पुरोडाशकरणम् : अथ दक्षिणेनोलूखलमाहरति। नेदिह पुरा नाष्ट्रा रक्षांस्याविशानिति। ब्राह्मणो हि राक्षसामपहन्ता, तस्मादभिनिहितमेव सव्येन पाणिना भवति।।— श. ब्रा. १.१.४.६

१९. अथोलूखलं निदधाति-अद्रिरसि व्वानस्पत्यो ग्रावासि पृथुबुध्न इति वा। तद्यथैवाद सोमं राजानं ग्रावभिरभिषुण्वन्ति, एवमेवैतदुलूखल-मुसलाभ्यां दृषदुपलाभ्यां हविर्यज्ञमभिषुणोति। अद्रय इति वै तेषामेकं नाम। तस्मादाह-अद्रिरसीति। वानस्पत्य इति वानस्पत्यो ह्येष। ग्रावासि पृथुबुध्न इति। ग्रावा ह्येष, पृथुबुध्नो ह्येष।-------- अथ मुसलमादत्ते-बृहउद्ग्रावासि वानस्पत्य इति।— श. ब्रा.१.१.४.७

२०. तद्यदेतामत्र वाचं विसृजते-एष हि यज्ञ उलूखले प्रत्यष्ठात्। एष हि प्रासारि। तस्मादाह-वाचो विसर्जनमिति।।— श. ब्रा. १.१.४.८

२१. दक्षिणा ब्राह्मणम् : उलूखलमुसलाभ्यां दृषदुपलाभ्यां हविर्यज्ञं घ्नन्ति।— श. ब्रा. २.२.२.१

२२. माहेन्द्रग्रहः :- अथोपाकृत्यैतां वाचं वदति-अभिषोतारोऽभिषुणुत, औलूखलानुद्वादयत, अग्नीदाशिरं

विनय, सौम्यस्य वित्तादिति। ते वै तृतीयसवनायैवाभिषोतारोऽभिषुण्वन्ति। तृतीय-सवनायौलूखलानुद्वादयन्ति। तृतीयसवनायाग्नीदाशिरं विनयति।— श.ब्रा. ४. ३.३.१९

२३. दक्षिणादानम् : घ्नन्ति वाऽएतद्यज्ञम्-यदेनं तन्वते। यन्त्वेव राजानमभिषुण्वन्ति-तत् तं घ्नन्ति, यत्पशुं संज्ञपयन्ति, विशासति-तत् तं घ्नन्ति, उलूखलमुसलाभ्यां दृषदुपलाभ्यां हविर्यज्ञं घ्नन्ति।— श. ब्रा. ४.३.४.१

२४. अथ यत्-स्रुचाऽउपदधाति, यदुलूखलमुसले। या समिध आदधाति-सा वानस्पत्येष्टका।— श. ब्रा. ६.१.२.३०

२५. अथोलूखलमुसलेष्टकोपधानम् : अथोलूखलमुसलेऽउपदधाति। विष्णुरकामयत-अन्नादः स्यामिति। स एतेऽइष्टकेऽअपश्यत्-उलूखलमुसले। तेऽउपाधत्त। तेऽउपधायान्नादोऽ-भवत्। तथैवैतद्यजमानो यदुलूखलमुसलेऽ-उपदधाति, येन रूपेण यत्कर्म कृत्वा विष्णुरन्नादोऽभवत्-तेन रूपेण तत्कर्म कृत्वा-ऽन्नादोऽसानीति। तदेतत्सर्वमन्नम्-यदुलूखलमुसले। उलूखलमुसलाभ्यां ह्येवान्नं क्रियते। उलूखल-मुसलाभ्यामद्यते।-- प्रादेशमात्रे भवतः। प्रादेशमात्रो वै गर्भो विष्णुः। अन्नमेतद्।----औदुम्बरे भवतः। ऊर्ग्वै रस उदुम्बरः------ चतुः स्रक्ति भवति। चतस्रो वै दिशः। सर्वासु तद्दिक्षु वनस्पतीन्दधाति।---- -मध्ये सङ्गृहीतं भवति-उलूखलरूपतायै। यद्वेवोलूखलमुसलेऽउपदधाति। प्रजापतेर्विस्र-स्तात्प्राणो मध्यत उदचिक्रमिषत्। तमन्नेनागृह्णात्।— श. ब्रा. ७.५.१.१५

२६. सोऽब्रवीत्। अयं वाव मा सर्वस्मात्पाप्मन उदभार्षीदिति। यदब्रवीदुदभार्षीन्मेति-तस्मादुदुम्भर। उदुम्भरो ह वै तमुदुम्बर इत्याचक्षते-परोऽक्षम्।---- - उरु मेऽकरदिति-तस्मादुरूकरम्। उरूकरं ह वै तदुलूखलमित्याचक्षते। परोऽक्षम्-परोक्षकामा हि देवा। सैषा सर्वेषां प्राणानां योनि-यदुलूखलम्। शिरो वै प्राणानां योनिः।— श. ब्रा. ७.५.१.२२

२७. द्विदेवत्ययोपदधाति। द्वे ह्युलूखलमुसले।---- श. ब्रा. ७.५.१.२५

२८. अथोखामुपदधाति। योनिर्वाऽउखा। योनिमेवैतदुपदधाति। तामुलूखलऽउपदधाति। अन्तरिक्षं वाऽउलूखलम्। यद्वै किञ्चास्या ऊर्ध्वम्-अन्तरिक्षमेव तत्।---- — श. ब्रा. ७.५.१.२६

२९. -----इमे वै लोका उखा। इमे लोकाः प्रजापतिः। तामुलूखलऽउपदधाति। तदेनमेतस्मिन्त्-सर्वस्मिन्प्रतिष्ठापयति-प्राणेऽन्नऽऊर्जि।-- श. ब्रा. ७.५.१.२७

३०. उखोपरि होमः :- उदरमुखा। योनिरुलूखलम्। उत्तरोखा भवति-अधरमुलूखलम्। उत्तरं ह्युदरम्-अधरा योनिः। शिश्नं मुसलम्।---— श. ब्रा. ७.५.१.३८

३१. अथ यजुष्मत्यः-दर्भस्तम्बः,---- उलूखलमुसले, उखा,----— श. ब्रा. १०.४.३.१४

३२. अथ यदुत्तानं पुरुषमुपदधाति-उत्ताने स्रुचा उत्तानमुलूखलम्, उत्तानामुखां तदुत्तानश्चीयते।— श. ब्रा. १०.५.५.७

३३. घ्नंति वा एतद्यज्ञं, यदेनं तन्वते।------ उलूखलमुसलाभ्यां दृषदुपलाभ्यां हविर्यज्ञं घ्नन्ति।— श. ब्रा. ११.१.१.१

३४. यजमान को मृत जैसा मानने पर :---- - शिश्नस्यांते शम्याम्। आंडयोरंते वृषास्वौ। अन्वगुलूखलं च मुसलं च। अंतरेणोरू अन्यानि यज्ञपात्राणि। — श. ब्रा. १२.५.२७

३५. पिण्डपितृयज्ञोऽपराह्णेऽमावास्यायाम्। दक्षिणाग्नेः पुरस्ताच्छूर्पं स्थालीं स्फयं पात्रीमुलूखलमुसले च संसाद्य।-— शां. श्रौ. सू. ४.३.२

३६. यजमानस्य जीवतः मृत्यु कर्माणि : ऊर्वोरष्ठीवतोश्चोलूखलमुसले।— शां. श्रौ. सू. ४.१४.३२

३७. सरस्वत्या विनशने दीक्षा सारस्वतानाम्।---- उलूखलबुध्नो यूपः।— शां. श्रौ. सू. १३.२९.५

३८. ओदनेनोपयम्य फलीकरणानुलूखलेन जुहोति। एवमणून्।— कौशिक सूत्र १४.१९

३९. द्वादशाहान्तर्गत पंचरात्रे सारस्वतम् अयनम् ---- उलूखलबुध्न एषां यूपो भवति-— बौ. श्रौ. सू. १६.९

४०. अग्रेण हविर्धाने चर्मण्युलूखलमुसले निधायाँशून्समवक्षुदां चकार यच्चिद्धि त्वं गृहेगृह उलूखलक युज्यसे। इह द्युमत्तमं वद जयतामिव दुन्दुभिरिति---— बौ. श्रौ. सू. १८.४१

४१. दर्शपूर्णमासस्य द्वैध सूत्राणि : कृष्णाजिनस्यास्तरण इति। स ह स्माह बौधायनो ऽविसृजन्नेतत्कर्म कुर्यात्कृष्णाजिनावधवनादास्तरणा-देवमुलूखलाध्यूहनादा-— बौ. श्रौ. सू. २०.६

४२. द्वैध सूत्राणि : उलूखलबुध्नो यूपो भवतीति। सर्वान्कारान्कुर्यादिति बौधायनः प्रोक्ष्यैनमुच्छ्रयेदिति शालीकिः प्रोक्ष्योपास्य यूपशकलमुच्छ्रयेदित्यौपमन्यवः।— बौ. श्रौ. सू. २३.१२

४३. अमावास्यायां पिण्डपितृयज्ञः :- अपरेणान्वाहार्यपचनं प्रत्यगुदग्ग्रीवे कृष्णाजिन उलूखले प्रतिष्ठिते दक्षिणाप्राची तिष्ठन्ती पत्न्यवहन्ति परापावमविवेकम्।— आप. श्रौ. सू. १.७.१०

४४. दर्शपूर्णमासे फलीकरणहोमं : एवं पिष्टलेपानुलूखले मुसले यच्च शूर्प आशिश्लेष दृषदि यत्कपाले। अवप्रुषो विप्रुषः संयजामि विश्वे देवा हविरिदं जुषन्ताम्।-— आप. श्रौ. सू. ३.१०.१

४५. प्रातः सवनम् : नखेषूलूखलधर्मान-मुसलधर्मांश्च करोति।— आप. श्रौ. सू. १२.४.१५

४६. अग्निचयनम् : यच्चिद्धि त्वं गृहेगृह उलूखलक युज्यसे। इह द्युमत्तमं वद जयतामिव दुन्दुभिरिति प्रादेशमात्रं चतुः स्रक्त्यौदुम्बरमुलूखलमुत्तरे अंसे प्रयुनक्ति। अपरिमितं मुसलम्। उत स्म ते वनस्पते वातो वि वात्यग्रमित्। अथो इन्द्राय पातवे सुनु सोममुलूखलेति सर्वौषधस्य पूरयित्वावहत्येदं विष्णुर्विचक्रम इति मध्ये ऽग्नेरुपदधाति। तद्विष्णोः परमं पदमिति मुसलम्।— आप. श्रौ. सू.१६.२६.१

४७. सत्यं पूर्वैर्ऋषिभिश्चाकुपानो ऽग्निः प्रविद्वानिह तद्दधात्विति वोलूखलमुपदधातीति वाजसनेयकम्।— आप. श्रौ. सू. १६.२६.१२

४८. सत्राणि : उलूखलबुध्नो यूपः प्रकृष्य उपोप्त एव।— आप. श्रौ. सू. २३.१२.१५

४९. दर्शपूर्ण मासः :- शूर्पाग्निहोत्रहवणि स्फ्यकपालं शम्याकृष्णाजिनमुलूखलमुसलं दृषदुपलम् अर्थवच्च।— कात्या. श्रौ. सू. २.३.८

५०. दर्शपूर्ण मासः :- उलूखले मुसले यच्च शूर्पऽआशिश्लेष दृषदि यत् कपाले। उत्प्रुषो विप्रुषः सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः स्वाहेति पिष्टलेपाञ्जुहोति।— कात्या. श्रौ. सू. ३.८.१

५१. सोमयागः :- शुक्रं पूतभृत्यासिच्य पृष्ठमुपाकृत्य प्रेष्यत्यभिषोतारोऽभिषुणुतौलूखलानु-द्रवादयताग्नीदाशिरं विनय सौम्यस्य वित्तादिति।— कात्या. श्रौ. सू. १०.३.१२

५२. चयनम् : उलूखलस्य रेतः सिग्वेलायामरत्निमात्र श्रुतेः।— कात्या. श्रौ. सू. १७.४.२१

५३. उलूखलऽउखां कृत्वोपशयां पिष्ट्वा न्युप्य पुरस्ताद्ध्रुवासीत्युखाम्।—कात्या. श्रौ. सू. १७.५.४

५४. सत्राणि : उलूखलबुध्नो यूपः प्रकृष्यः।— कात्या. श्रौ. सू. २४.५.२७

५५. पिण्डपितृयज्ञः :- कृष्णाजिन उलूखलं कृत्वेतरान्पत्न्यवहन्यादविवेचम्।— आश्व. श्रौ. सू. २.६.७

५६. विजातायाः परिदां करोति दक्षिणार्धे ऽगारस्याग्निमुपसमाधाय सर्षपान्फलीकरण-मिश्रानञ्जलावध्युप्य जुहोति शण्डो मर्क उपवीरस्तुण्डिकेर उलूखलः। च्यवनो नश्यतादितः स्वाहेति-— भा. गृ. सू. १.२३

५७. अष्टका : उपासन एव जुहोत्युलूखला ग्रावाणो घोषमक्रत हविः कृण्वन्तः परिवत्सरीणाम्।-— भा. गृ. सू. २.१५

५८. बालकसूतिक काले होमा: :- सर्षपान्फलीकरणमिश्रान्दर्व्या जुहोति शण्डो मर्कोपवीतस्तौण्डुलेय: उलूखलश्चपलो नश्यतामित: स्वाहा। अनालिखन्नवलिखन् किंवदन्त उलूखलश्चपलो नश्यतामित: स्वाहा। हर्यक्ष्ण: कुम्भि: शक्तिर्हन्ता चुपणीमुखश्चपलो नश्यतामित: स्वाहा।-— काठक. गृ. सू. ३५.१

५९. उलूखलान्मुसलं पतितं हिनस्ति पत्नीं कुले ज्येष्ठम्।— अथर्व परि. ३७.१.२

६०. यद्वत्प्रजा: पापनयद्धस्ताद्यदि वोलूखलात्। सपत्नान्मे परिपाहि मां त्वेवं परिपाहि न:।— अथर्व परि: ३७.१.५

६१. उत्पात : नर्तनं च कुशूलानां धान्यराशेश्च कम्पनम्। उलूखलानां संसर्पो मुसलानां प्रवेशनम्।।— अथर्व परि. ६४.४.१०

६२. कश्यपोलूखल: ख्यातो रज्जुर्माता- ऽदितिस्तथा।— कृष्णोपनिषद २१

## उशन्

१. ताँ उशतो वि बोधय यदग्ने यासि दूत्यम्। देवैरा सत्सि बर्हिषि।।— ऋ. १.१२.४

२. अग्ने पत्नीरिहा वह देवानामुशतीरुप। त्वष्टारं सोमपीतये।।— ऋ. १.२२.९

३. पतिं न पत्नीरुषतीरुशन्तं स्पृशन्ति त्वा शवसावन् मनीषा:।।— ऋ. १.६२.११

४. उप प्र जिन्वन्नुशतीरुशन्तं पतिं न नित्यं जनय: सनीळा:। — ऋ. १.७१.१

५. स्व आ यस्तुभ्यं दम आ विभाति नमो वा दाशादुशतो अनु द्यून्।— ऋ. १.७१.६

६. आ त्वा सुशिप्र हरयो वहन्तूशन् हव्यानि प्रति नो जुषस्व।।— ऋ. १.१०१.१०

७. युवाभ्यां देवी धिषणा मदायेन्द्राग्नी सोममुशती सुनोति।— ऋ. १.१०९.४

८. जायेव पत्य उशती सुवासा उषा हस्रेव नि रिणीते अप्स:।।— ऋ. १.१२४.७

९. अस्तोढ्वं स्तोम्या ब्रह्मणा मे ऽवीवृधध्वमुशतीरुषास:।— ऋ. १.१२४.१३

१०. अभि श्वान्तं मृशते नान्द्ये मुदे यदीं गच्छन्त्युशतीरपिष्ठितम्।।— ऋ. १.१४५.४

११. यत् ते गात्रादग्निना पच्यमानादभि शूलं निहतस्यावधावति1 मा तद् भूम्यामा श्रिथन्मा तृणेषु देवेभ्यस्तदुशद्भ्यो रातमस्तु।।— ऋ. १.१६२.११

१२. स दीदयदुशतीरूर्म्या आ दक्षाय्यो यो दास्वते दम आ।।— ऋ. २.४.३

१३. स्तवा वज्रं बाह्वोरुशन्तं स्तवा हरी सूर्यस्य केतू।।— ऋ. २.११.६

१४. आ वक्षि देवाँ इह विप्र यक्षि चोशन् होतर्नि षदा योनिषु त्रिषु।— ऋ. २.३६.४

१५. विश्वेभिर्विश्वां ऋतुना वसो मह उशन् देवाँ उशत: पायया हवि:।।— ऋ. २.३७.६

१६. आ योनिमग्निर्घृतवन्तमस्थात् पृथुप्रगाणमुशन्तमुशान:।— ऋ. ३.५.७

१७. प्र पर्वतानामुशती उपस्थादश्वे इव विषिते हासमाने।— ऋ. ३.३३.१

१८. इन्द्र पिब वृषधूतस्य वृष्ण आ यं ते श्येन उशते जभार।— ऋ. ३.४३.७

१९. अयं योनिश्चकृमा यं वयं ते जायेव पत्य उशती सुवासा:।— ऋ. ४.३. २

२०. सखा पिता पितृतम: पितृणां कर्तेमु लोकमुशते वयोधा:।— ऋ. ४.१७.१७

२१. दृळ्हान्यौभ्नादुशमान ओजो ऽवाभिनत् ककुभ: पर्वतानाम्।— ऋ. ४.१९.४

२२. उशन्नु षु ण: सुमना उपाके सोमस्य नु सुषुतस्य स्वधाव:। पा इन्द्र प्रतिभृतस्य मध्व: समन्धसा ममद: पृष्ठ्येन।।— ऋ. ४.२०.४

२३. दधानो वज्रं बाह्वोरुशन्तं द्याममेन रेजयत् प्र भूम।।— ऋ. ४.२२.३

२४. पिबन्नुशानो जुषमाणो अन्धो ववक्ष ऋष्वः शुचते धनाय।।— ऋ. ४.२३. १

२५. कृणोत्यस्मै वरिवो य इत्थेन्द्राय सोममुशते सुनोति। सध्रीचीनेन मनसाविवेनन् तमित् सखायं कृणुते समत्सु।।— ऋ. ४.२४.६

२६. हवं देवी जुजुषाणा घृताची शग्मां नो वाचमुशती शृणोतु।।— ऋ. ५.४३.११

२७. देवानां पत्नीरुशतीरवन्तु नः प्रावन्तु नस्तुजये वाजसातये।— ऋ. ५.४६. ७

२८. एवा नो अद्य समना समानानुशन्नग्न उशतो यक्षि देवान्।।— ऋ. ६.४.१

२९. इमं यज्ञं चनो धा अग्न उशन् यं त आसानो जुहुते हविष्मान्।— ऋ. ६.१०.६

३०. अयमुशानः पर्यद्रिमुस्रा ऋतधीतिभिर्ऋतयुग्युजानः।— ऋ. ६.३९.२

३१. आ याहि शश्वदुशता ययाथेन्द्र महा मनसा सोमपेयम्।— ऋ. ६.४०.४

३२. अयं मे पीत उदियर्ति वाचमयं मनीषामुशतीमजीगः।— ऋ. ६.४७.३

३३. आ यो मात्रोरुशेन्यो जनिष्ट देवयज्याय सुक्रतुः पावकः।।— ऋ. ७.३.९

३४. वृषा हरिः शुचिरा भाति भासा धियो हिन्वान उशतीरजीगः।— ऋ. ७.१०.१

३५. स्वर्ण वस्तोरुषसामरोचि यज्ञं तन्वाना उशिजो न मन्म।— ऋ. ७.१०.२

३६. उत द्वार उशतीर्वि श्रयन्तामुत देवाँ उशत आ वहेह।।— ऋ. ७.१७.२

३७. ताँ अध्वर उशतो यक्ष्यग्ने श्रुष्टी भगं नासत्या पुरंधिम्।।— ऋ. ७.३९.४

३८. उभा हि वां सुहवा जोहवीमि ता वाजं सद्य उशते धेष्ठा।।— ऋ. ७.९३.१

३९. उत हृदोत मनसा जुषाण उशन्निन्द्र प्रस्थितान् पाहि सोमान्।।— ऋ. ७.९८.२

४०. यदीमेनाँ उशतो अभ्यवर्षीत् तृप्यावतः प्रावृष्यागतायाम्।— ऋ. ७.१०३.३

४१. अद्रोघमा वहोशतो यविष्ठय देवाँ अजस्र वीतये।— ऋ. ८.६०.४

४२. पत्नीवन्तः सुता इम उशन्तो यन्ति वीतये।— ऋ. ८.९३.२२

४३. तं मर्जयन्त सुवृधं नदीष्वाँ उशन्तमंशुं परियन्तमृग्मियम्।— ऋ. ९.६८.६

४४. रथिरायतामुशती पुरंधिरस्मद्र्यगा दावने वसूनाम्।।— ऋ. ९.९३.४

४५. अपामिवेदूर्मयस्तर्तुराणाः प्र मनीषा ईरते सोममच्छ। नमस्यन्तीरुप च यन्ति सं चा ऽऽ च विशन्त्युशतीरुशन्तम्।।— ऋ. ९.९५.३

४६. एष स्य ते पवत इन्द्र सोमश्चमूषु धीर उशते तवस्वान्।— ऋ. ९.९७.४६

४७. यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः। उशतीरिव मातरः।।— ऋ. १०.९.२

४८. यदीमुशन्तमुशतामनु क्रतुमग्निं होतारं विदथाय जीजनन्।।— ऋ. १०.११.३

४९. तभिर्यमः संरराणो हवींष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु।।— ऋ. १०.१५.८

५०. उशन्तस्त्वा नि धीमह्युशन्तः समिधीमहि। उशन्नुशत आ वह पितॄन् हविषे अत्तवे।।— ऋ. १०.१६.१२

५१. अध्वर्यवो हविष्मन्तो हि भूताऽच्छाप इतोशतीरुशन्त।-ऋ १०.३०.२

५२. एवेद्यूने युवतयो नमन्त यदीमुशन्नुशतीरेत्यच्छ।— ऋ. १०.३०६

५३. आग्मन्नाप उशतीर्बर्हिरेदं न्यध्वरे असदन् देवयन्तीः।— ऋ. १०.३०.१५

५४. अच्छा म इन्द्रं मतयः स्वर्विदः सध्रीचीर्विश्वा उशतीरनूषत।— ऋ. १०.४३.१

५५. अहेळता मनसा देव बर्हिरिन्द्रज्येष्ठाँ उशतो यक्षि देवान्।।— ऋ. १०.७०.४

५६. आ वां देवास उशती उशन्त उरौ सीदन्तु सुभगे उपस्थे।।— ऋ. १०.७०.६

५७. स देवानां पाथ उप प्र विद्वानुशन् यक्षि द्रविणोदः सुरत्नः।।— ऋ. १०.७०.९

५८. उतो त्वस्मै तन्वं वि सस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः।।— ऋ. १०.७१.४

५९. या न ऊरू उशती विश्रयाते यस्यामुशन्तः प्रहराम शेपम्।।— ऋ. १०.८५.३७

६०. इमां प्रत्नाय सुष्टुतिं नवीयसीं वोचेयमस्मा उशते शृणोतु नः। भूया अन्तरा हृद्यस्य निस्पृशे जायेव पत्य उशती सुवासाः।।— ऋ. १०.९१.१३

६१. सध्रीचीः सिन्धुमुशतीरिवायन् त्सनाज्जार आरितः पूर्भिदासाम्।— ऋ. १०.१११.१०

६२. य उशता मनसा सोममस्मै सर्वहृदा देवकामः सुनोति। न गा इन्द्रस्तस्य परा ददाति प्रशस्तमिच्चारुमस्मै कृणोति।।— ऋ. १०.१६०.३

६३. उशतीः कन्यला इमाः पितृलोकात् पतिं यतीः। अव दीक्षामसृक्षत स्वाहा।।— अथर्व. १४.२.५२

६४. सो चिन्नु भद्रा क्षुमती उशस्वत्युषा उवास मनवे स्वर्वती। यदीमुशन्तमुशतामनु क्रतुमग्निं होतारं विदथाय जीजनन्।।— अथर्व. १८.१.२०

६५. उशती रात्र्यनु सा भद्राभि तिष्ठते मित्र इव स्वधाभिः।।— अथर्व. १९.४९.२

६६. सिंहस्य रात्र्युशती पींषस्य व्याघ्रस्य द्वीपिनो वर्च आ ददे।— अथर्व. १९.४९.४

६७. चक्षुष्मती मे उशती वपूंषि प्रति त्वं दिव्या न क्षाममुक्थाः।।— अथर्व. १९.४९.८

६८. स्विष्टकृदाहुतिः :-- पिप्रीहि देवाँ उशतो यविष्ठ इति। तदनुवाक्यायै वैश्वदेवम्।— शतपथ १.७.३.१६

६९. पितृयज्ञः :- सोऽन्वाह-उशन्तस्त्वा निधीमह्युशन्तः समिधीमहि। उशन्नुशत आवह पितॄन् हविषे अत्तवे-इति।— शतपथ २.६.१.२२

७०. अथ राजानमादत्ते----इन्द्रस्योरुमाविश दक्षिणम् इति।----उशन्नुशन्तम् इति। प्रिय प्रियमित्येवैतदाह।— शतपथ ३.३.३.१०

७१. अथ मिनोति-या ते धामान्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गाऽयासः। अत्राह तदुरुगायस्य विष्णोः परमं पदमवभारि भूरि।— शतपथ ३.७.१.१५

७२. ऐन्द्रवायव ग्रहः - अथापगृह्य पुनरानयति। इन्द्रवायूऽइमे सुता उप प्रयोभिरागतम्। इन्दवो वामुशन्ति हि। उपयामगृहीतोऽसि--- शतपथ ४.१.३.१९

७३. समिष्ट यजुः :- यान् ऽआवह उशतो देव देवांस्तान् प्रेरय स्वे अग्ने सधस्थे इति। अग्निं वाऽआह-अमून् देवानावह अमून्देवानावहेति।— शतपथ ४.४.४.११

७४. अक्षोदयच्छवसा क्षाम· बुध्नम्। वार्णवातस्तविषीभिरिन्द्रः। दृढान्यौघ्नादुशमान ओजः। अवाभिनत्ककुभः पर्वतानाम्।— तै. ब्रा. २.४.५.३

७५. शुचिं नु स्तोमं नवजातमद्य। इन्द्राग्नी वृत्रहणा जुषेथाम्। उभा हि वाँ सुहवा जोहवीमि। ता वाजँ सद्य उशते धेष्ठा इति— तै. ब्रा. २.४.८.३

७६. पितृयज्ञः :- उशन्तस्त्वा हवामह आ नो अग्ने सुकेतुना। त्वँ सोम महे भगं त्वँ सोम प्रचिकितो मनीषा।--- तै. ब्रा. २.६.१६.१

७७. पिप्रीहि देवाँ उशतो यविष्ठ। विद्वाँ ऋतूँर्ऋतुपते यजेह।---- तै. ब्रा. ३.५.७.५

७८. पत्नी संयाजः :- देवानां पत्नीरुशतीरवन्तु नः। प्रावन्तु नस्तुजये वाजसातये।---- तै. ब्रा. ३.५.१२.१

७९. स्विष्टकृतः पुरोनुवाक्या : पिप्रीहि देवाँ उशतो यविष्ठ। विद्वाँ ऋतूँर्ऋतुपते यजेह। ये दैव्या ऋत्विजस्तेभिरग्ने। त्वँ होतृणामस्याऽऽयजिष्ठः।— तै. ब्रा. ३.६.११.४

८०. उशन्ह वै वाजश्रवसः सर्ववेदसं ददौ। तस्य ह नचिकेता नाम पुत्र आस।----- तै. ब्रा. ३.११.८.१

८१. यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः। उशतीरिव मातरः।— तै. आ.४.४२.४

८२. उशन्नु षु णः सुमना उपाके इति यजति। एतामेव तद् देवतां यथाभागं प्रीणाति।— गोपथ ब्रा. २.४.१

८३. मोक्षमेव धारणं विद्यात्। उशंतीव मातरं कुर्यात्।—लिङ्गोपनिषद

८४. --- -चत्वारिंशादथ तिस्रः समिधा उशतीरिव मातरो मा विशन्तु।— त्रिपुरोपनिषत् ३

८५. हवं देवी जुजुषाणा घृताची शग्मां नो वाचामुशती शृणोतु।— सरस्वतीरहस्योपनिषत् २

८६. यां गामुशन्तीमुशन्नभिपूर्णामारक्त-नीलाममृतां रजन्तीमालालयन् लालितकङ्कणाङ्गीं तस्मै प्रजेशाय वरदाय पित्रे स्वाहा।— पारमात्मिकोपनिषत् ६.७

८७. उशन् ह वै वाजश्रवसः सर्ववेदसं ददौ। तस्य ह नचिकेता नाम पुत्र आस।— कठोपनिषत् १

## उशना

१. तक्षद् यत त उशना सहसा सहो वि रोदसी मज्मना बाधते शवः।— ऋ. १.५१.१०

२. मन्दिष्ट यदुशने काव्ये सचाँ इन्द्रो वङ्कु वङ्कुतराधि तिष्ठति।— ऋ. १.५१.११

३. आ गा आजदुशना काव्यः सचा यमस्य जातममृतं यजामहे।।— ऋ. १.८३.५

४. इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागात्— ऋ. १.११३.१; ऊहागानम् सत्र३.९

५. यं ते काव्य उशना मन्दिनं दाद् वृत्रहणं पार्यं ततक्ष वज्रम्।।— ऋ. १.१२१.१२

६. उशना यत् परावतो ऽजगन्नूतये कवे। सुम्नानि विश्वा मनुषेव तुर्वणिरहा विश्वेव तुर्वणिः।।— ऋ. १.१३०.९

७. शंसात्युक्थमुशनेव वेधास्चिकितुषे असुर्याय मन्म।।— ऋ. ४.१६.२

८. अहं कुत्समार्जुनेयं न्यृञ्जे ऽहं कविरुशना पश्यता मा।।— ऋ. ४.२६.१

९. अबोध्यग्निः समिधा जनानां---— ऋ. ५.११; ऊहगानम् सत्र ३.८

१०. उशना यत् सहस्यैरयातं गृहमिन्द्र जूजुवानेभिरश्वैः।— ऋ. ५.२९.९

११. उग्रमयातमवहो ह कुत्सं सं ह यद् वामुशनारन्त देवाः— ऋ. ५.२१.८

१२. यदीं मृगाय हन्तवे महावधः सहस्रभृष्टिमुशना वधं यमत्।।— ऋ. ५.३४.२

१३. न्यस्मै देवी स्वधितिर्जिहीत इन्द्राय गातुरुशतीव येमे।— ऋ. ५.३२.१०

१४. आ भात्यग्निरुषसामनीकमुद् विप्राणां देवया वाचो अस्थुः।— ऋ. ५.७६.१; ऊहगानम् सत्र ३.१०

१५. त्वं वृध इन्द्र पूर्व्यो भूर्वरिवस्यन्नुशने काव्याय।— ऋ. ६.२०.११

१६. शुक्रं ते अन्यद् यजतं ते अन्यद् विषुरूपे अहनी द्यौरिवासि।— ऋ. ६.५८.१; शुक्र ग्रह अर्चना का सूक्त।

१७. उशना यत् परावत उक्ष्णो रन्ध्रमयातन। द्यौर्न चक्रदद् भिया।।— ऋ. ८.७.२६

१८. उशना काव्यस्त्वा नि होतारमसादयत्। आयजिं त्वा मनवे जातवेदसम्।।— ऋ. ८. २३.१७

१९. प्रेष्ठं वो अतिथिं स्तुषे मित्रमिव प्रियम्। अग्निं रथं न वेद्यम्।।— ऋ. ८.८४.१; ऋ. उशना काव्यः

२०. तिस्रो वाच उदीरते गावो मिमन्ति धेनवः। हरिरेति कनिक्रदत्।।— ऋ. ९.३३.४; ऊहगानम् सत्र ५.१०

२१. प्र तु द्रव परि कोशं नि षीद नृभिः पुनानो अभि वाजमर्ष।— ऋ. ९.८७.१; ऋ. उशना काव्यः। ऊहगानम् दशरात्र१.४

२२. ऋषर्विप्रः पुरएता जनानामृभुर्धीर उशना काव्येन।— ऋ. ९.८७.३

२३. अयं सोम इन्द्र तुभ्यं सुन्वे तुभ्यं पवते त्वमस्य पाहि।— ऋ. ९.८८.१; ऋ. उशना काव्यः

२४. प्रो स्य वह्निः पथ्याभिरस्यान् दिवो न वृष्टिः पवमानो अक्षाः।— ऋ. ९.८९.१; ऋ. उशना काव्यः

२५. साकमुक्षो मर्जयन्त स्वसारो दश धीरस्य धीतयो धनुत्रीः।— ऋ. ९.९३.१; ऊहगानम् सत्र २.४

२६. प्र काव्यमुशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जनिमा विवक्ति।— ऋ. ९.९७.७

२७. आ जागृविर्विप्र ऋता मतीनां सोमः पुनानो असदच्चमूषु।— ऋ. ९.९७.३७; ऊहगानम् अहीन ८.५; ताण्ड्य ब्रा. १५.९.३

२८. प्र याह्यच्छोशतो यविष्ठाऽथा वह सहस्येह देवान्।।— ऋ. १०.१.७

२९. पिप्रीहि देवाँ उशतो यविष्ठ विद्वाँ ऋतूँर्ऋतुपते यजेह।— ऋ. १०.२.१

३०. इनो राजन्नरतिः समिद्धो रौद्रो दक्षाय सुषुमाँ अदर्शि।— ऋ. १०.३.१; ऊहगानम् एकाह २.२०

३१. अध ग्मन्तोशना पृच्छते वां कदर्था न आ गृहम्।— ऋ. १०.२२.६

युवं ह भुज्युं युवमश्विना वशं युवं शिञ्जारमुशनामुपारथुः।— ऋ. १०.४०.७

३२. हिरणयवर्णाः शुचयः पावका यासु जातः सविता यास्वग्निः।— अथर्व. १.३३.१; शुक्र ग्रह अर्चना हेतु सूक्त।

३३. यौ मेधातिथिमवथो यौ त्रिशोकं मित्रावरुणावुशनां काव्यं यौ।— अथर्व. ४.२९.६

३४. आ गा आजदुशना काव्यः सचा यमस्य जातममृतं यजामहे।।— अथर्व. २०.२५.५

३५. शंसात्युक्थमुशनेव वेधाश्चिकितुषे असुर्याय मन्म।।— अथर्व. २०.७७.२

३६. देवासुरास् संयत्ता ज्योङ् न व्यजयन्त। बृहस्पतिर् देवानां पुरोहित आसीद् उशना काव्यो ऽसुराणाम्।---इन्द्र द्वारा त्रिशीर्ष गन्धर्व से विजय के सम्बन्ध में पृच्छा। इन्द्र का शुक बन कर उडना। गन्धर्व द्वारा शुक पक्ष की विजय का कथन। इन्द्र द्वारा उशना काव्य को अपनी ओर मिलाना तथा विरोचन की कामदुघा गायों का भी हरण करना। असुरों को स्वर्ग में आने से रोकने के लिए ऊहागानम् १.१.४ (स्वायुधः पवते देव इन्दुर् इत्यादि) का गान। उशना काव्य द्वारा इस साम से देवों में अमर्त्य गन्धर्वलोक की प्राप्ति।— जै. ब्रा. १.१२५

३७. देवरथ का स्वरूप ---औशनकावे आणी नौधसकालेये वन्धुराथिष्ठानं वामदेव्यम् उपस्थो यज्ञायज्ञीयम् अध्यास्थाता स एष पुरुषः।— जै. ब्रा. १.१३०

३८. दैव्य् एषा नौर् यद् यज्ञः। ताव् एतत् पितापुत्राव् एवाजतः। औशनं पुरस्ताद् भवति कावम् उपरिष्टाद् यज्ञस्यैवारिष्टयै।— जै.ब्रा. १.१६६

३९. अथैतद् औशनं त्रैष्टुभम्। तद् यत्र देवासुरास् संयत्ता आसंस् तद् एष्व् अब्रवीत् त्रिर् अहं ष्टुब् अस्मीति।--- जै. ब्रा. १.३२४

४०. अथ यौधाजयं त्रिणिधनं, सवनानां कलृप्त्यै। अथौशनम् अन्त्यं साम। अन्त्येन साम्नान्त्यं स्वर्गं लोकम् अश्नवामहा इति।— जै. ब्रा. २.१४

४१. ---औशनम् एव त्रिष्टुभि।--- जै. ब्रा. २.१२७

४२. अथौशनम् अन्त्यं साम, अन्त्येन साम्नान्त्यं स्वर्गं लोकम् अश्नवाता इति। — जै.ब्रा. २.१९४

४३. अथ यद् वो ऽवोचं स्वर्गस्य स्म लोकस्य पथो ऽञ्जसायनान् मेतेत्य्, औशनकावे एव वस् तद् अवोचम् इति। एष ह वै स्वर्गस्य लोकस्य पन्था अञ्जसायनो यद् औशनकावे।। औशनं पुरस्ताद् भवति कावम् उपरिष्टात्। ताव् एतत् पितापुत्राव् एव नावम् अजतः।---- जै.ब्रा. २.४२१

४४. अथौशनम् अन्त्यं सामान्त्येन साम्नान्त्यं स्वर्गं लोकम् अश्नवामहा इति। अथ रथन्तरम्।-- — जै.ब्रा.३.१५

४५. अथौक्ष्णोरन्ध्रम्। उक्ष्णो वै रन्ध्रः काव्यो ऽकामयताद्भिः प्रतीपं स्वर्गं लोकम् आरोहेयम्-----। स ह वाव रौमण्वतः। स एवोशना काव्यः। स ह स यमुनयैव प्रतीपं स्वर्गं लोकम् आरोहत्।— जै.ब्रा ३.१५०

४६. अथौशनम्। उशना वै काव्यो देवेष्व् अमर्त्यं गन्धर्वलोकम् ऐच्छत। स एतत् सामापश्यत्। तेनास्तुत। ततो वै स देवेष्व् अमर्त्यं गन्धर्वलोकम् आश्नुतैतं रोमण्वन्तम्। ते हैते काव्याः।---अग्निर् वै देवेष्व् अवसत्। तं देवा नाप्रीणन्। सो ऽप्रीयमाण उशनसं काव्यम् आगच्छत्। तम् अब्रवीद् ऋषे प्रीणीहि मा, ऽप्रीतो वा अस्मीति। तम् अकामयत-प्रीणीयाम् एनम् इति। स एतत् सामापश्यत्। तेनैनम् अप्रीणात्। प्रेष्ठं वो अतिथिम् स्तुषे मित्रम् इव प्रियम् इति— जै.ब्रा. ३.२३२

४७. दिवि हि सोमः, वृत्रो वै सोम आसीत्। तस्यैतच्छरीरम्-यद्गिरयो, यदश्मानः। तदेषोऽशाना नामौषधिर्जायते-इति ह स्माह श्वेतकेतुरौद्दालकिः। तामेतदाहृत्याभिषुण्वन्ति।— शतपथ ब्रा. ३.४.३.१३, ४.२.५.१५

४८. अथ वायुरौशनं प्रावृहत। तद्वै स प्राणवीर्य्यं प्रावृहत प्राणावा औशनं।---वायुर्वा उशँस्तस्यैतदौशनं। उशना वै काव्योऽसुराणां पुरोहित आसीत्तं देवा कामदुघाभिरुपामन्त्रयन्त तस्मा एतान्यौशनानि प्रायछन् कामदुघा वा औशनानि। कामदुघा एनमुपतिष्ठन्ते य एवं वेद।— तां. ब्रा. ७.५.१६

४९. माध्यन्दिन पवमानस्य सामानि : यौधाजयं भवति यदेव यौधाजयस्य ब्राह्मणं। औशनं यदौशनस्य स्तोमः। तां. ब्रा. ११.२.११

५०. आप्ते षडहे छन्दाँसि स्तोमान् कृत्वा प्रयन्ति। प्र काव्यमुशनेव ब्रुवाण इति (ऋ. ९.९७.७) गायत्र्या रूपेण प्रयन्ति।— तां. ब्रा. १४.१.२

५१. उक्थानां प्रथमस्य स्तोत्रीयं तृचम् : प्रेष्ठं वो अतिथिमित्यातिथ्यस्यैव तद्रूपं क्रियते।— तां. ब्रा. १४.१२.१

५२. प्रथमस्योक्थस्य साम : औशनं भवति। उशना वै काव्योऽकामयत यावानितरेषां काव्यानां लोकस्तावन्तँ स्पृणुयामिति स तपोऽतप्यत स एतदौशनमपश्यत्तेन तावन्तं लोकमस्पृणोद्या-वानितरेषां काव्यानामासीत्तद्वाव स तर्ह्यकामयत कामसनि सामौशनं काममेवैतेनावरुन्धे।— तां.ब्रा. १४.१३.४

५३. अग्निर्देवानां दूत आसीदुशना काव्योऽसुराणां तौ प्राजापतिं प्रश्नमैताँ स प्रजापतिरग्निं दूतं वृणीमह इत्यभि पर्यावतत ततो देवा अभवन्पराऽसुरा-- — तै.सं. २५.८.५

५४. उशना ह काव्योऽसुराणां पुरोहित आस। स ह देवानामन्नमशित्वा परिदद्रे। स हैक्षत। कथं नु तेन यज्ञक्रतुना यजेयं येनेष्ट्वा पाप्मानमपहन्यामिति। स एतमुशनस्तोमं यज्ञक्रतुमपश्यत्। तेनेष्ट्वा पाप्मानमपाहत। तेन पाप्मानमपजिघांसमानो यजेत। उदरव्याधितश्च।-----उशना यत्सहस्यैरयातं (ऋ. ५.२९.९) वरिवस्यन्नुशने काव्याय (ऋ.६.२०.११) इति उशनवती तदेतस्याह्नो रूपम्। शांखा. श्रौ.सू.१४.२७.१

५५. स हैक्षत। पाप्मानमपहत्य कथं नु तेन यज्ञक्रतुना यजेयं येनेष्ट्वान्नाद्यमाप्नुयामिति। स एतमुत्तरमुशनस्तोमं यज्ञक्रतुमपश्यत्। तेनेष्ट्वान्नाद्यमाप्नोत्।-— शांखा. श्रौ. सू. १४.२८.१

५६. आतिथ्यायाँ गायत्रीसामौशनम्।— द्राह्या.श्रौ. सू. २.२.२४

५७. गवामयनम् : औशनकावे अन्त्ये।— द्राह्या.श्रौ.सू. ८.१.२२

५८. अभिवायुमित्यौशनम् (सा. १४२६)— द्राह्या.श्रौ.सू. ८.२.१५

५९. उशनसस्तोमेन गरगीर्णमिवाऽऽत्मानं मन्यमानो यजेत। उशना यत्सहस्यै३रयातं---- आश्वलायन श्रौ.सू. ९.५.१

६०. पुनस्तोमौ : इन्द्र द्वारा सूर्यवर्चा गन्धर्व की जाया से असुरों पर देवों की विजय न होने का कारण पूछना।---- -स (इन्द्रो)ह गत्वैवोशनसं काव्यमुपमन्त्रयां चक्रे जयन्त्याश्च दुहित्रा चतसृभिश्च कामदुघाभिः स हाज्ञप्तो ऽसुरेभ्यो ऽधि देवानुपसमियाय ततो ह वा एतद्देवा असुरान्महासंग्रामे जिग्युः। स ह गुरुरिव मेने गरमिव गीर्त्वा बहु वित्तमसुराणां प्रतिगृह्य स होवाच गुरुरिवास्मि गरमिव गीर्त्वा बहुवित्तमसुराणां प्रतिगृह्य हन्त मा याजयेति तं द्वादशस्तोमेनाग्निष्टोमेन बृहस्पतिराङ्गिरसो याजयां चकार तेन हेष्ट्वोर्ध्वँ हिरण्यमुज्जगार-----ते ह वा एत औशनसा नाम कुरुक्षेत्रे पर्वतगाः।--- बौ. श्रौ. सू. १८.४७

६१. औशनसा दिश्याः प्रशस्ताः सुरूपाक्षा महोदरा विगद्वकाः सुबुध्या निहिता गुहा इत्येत औशनसा गौतमास्तेषां त्र्यार्षेयः प्रवरो भवत्याङ्गिरस गौतमौशनसेति होतोशनसवद्गोतमवदङ्गिरो-वदित्यध्वर्युः।— बौ.श्रौ. प्रवर १४

६२. आदित्यमौशनसं वाऽवस्थाय प्रयोधयेत्।- आश्वलायन गृह्य सू. ३.१२.१६

## उशिज

१. धिष्णियाभिधानम् : तुथोऽसि विश्ववेदा उशिगसि कविः----- तै.सं.१.३.३.१

२. यूपे पशुनियोजनार्थमुपाकरणाभिधानम् :----- वह्नीरुशिजो------ तै.सं.१.३.७.१

३. गार्हपत्याहवनीययोरुपस्थानम् : सोमानँ स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते। कक्षीवन्तं य औशिजम्।— तै.सं.१.५.६.४

४. सौमिकब्रह्मत्वविधिः :- प्रवाऽस्यनुवाऽ-सीत्याह मिथुनत्वायोशिगसि वसुभ्यस्त्वा वसूञ्जिन्वेत्याह— तै.सं.३.५.२.३

५. अदाभ्यांशुग्रहापेक्षितमन्त्राभिधानम् :--- उशिकत्वं देव सोम गायत्रेण छन्दसाऽग्नेः प्रियं पाथो अपीहि-- — तै.सं.२.३.३.२

६. चातुर्मास्यगतवैश्वदेवाख्यपर्वविहितहविषां याज्यापुरोनुवाक्या : स हव्यवाडमर्त्य उशिग्दूतश्चनोहितः। अग्निर्धिया समृण्वति।— तै.सं. ४.१.११.४

७. आसन्दीस्थापिताग्नेरुपस्थानम् : त्वामग्ने यजमाना अनु द्युन्विश्वा वसूनि दधिरे वार्याणि। त्वया सह द्रविणमिच्छमाना व्रजं गोमन्तमुशिजो वि वव्रुः।।— तै.सं.४.२.२.५

८. आहवनीयचयनार्थलोष्टक्षेपाद्यभिधानम् : रातिं भृगूणामुशिजं कविक्रतुं पृणक्षि सानसिम् रयिम्।— तै.सं.४.२.७.३

९. पञ्चमचितिशेषस्तोमभागाभिधानम् :- -उशिगसि वसुभ्यस्त्वा वसूञ्जिन्व-— तै.सं.४.४.१.२

१०. ---प्रवेत्यहरनुवेति रात्रिमुशिगिति वसून्प्रकेत इति रुद्रान्--- तै.सं.५.३.६.१

११. केषांचिद्धविषामभिधानम् :----एतं वै पर आट्णारः कक्षीवाँ औशिजो वीतहव्यः-- -प्रजाकामा अचिन्वत ततो वै ते सहसँ सहस्रं पुत्रानविन्दन्त-- — तै.सं.५.६.५.३

१२. अन्वारोहणाद्यभिधानम् : पिता मातरिश्वाऽच्छिद्रा पदा धा अच्छिद्रा उशिजः पदाऽनु तक्षुः-- — तै.सं.५.६.८.६

१३. पशुनियोजनम : वह्नीरुशिज इत्याहर्त्विजो वै वह्नय उशिजस्तस्मादेवमाह-— तै.सं.६.३.६.१

१४. बृहदुपस्थानम् : अथान्तरेणाहवनीयं च गार्हपत्यं च प्राङ् तिष्ठन्नग्निमीक्षमाणो जपति। सोमानं स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते। कक्षीवन्तं य औशिजः।— शत. ब्रा.२.३.४.३.५

१५. अग्नीषोमीयपशुयागः :- उशिजो वह्नितमान् इति। विद्वांसो हि देवा। तस्मादाह उशिजो वह्नितमानिति। — श.ब्रा.३.७.३.१०

१६. अदाभ्य-अंशु ग्रहः :- अथांशून्पुनरप्यर्जति। उशिक्त्वं देव सोमाग्नेः प्रियं पाथोऽपीहि, वशी त्वं देव सोमेंद्रस्य प्रियं पाथोऽपीहि, अस्मत्सखा त्वं देव सोम

विश्वेषां देवानां प्रियं पाथोऽपीहि इति।—श.ब्रा. ११.५.९.१२

१७. इन्द्रः सुवर्षा जनयन्नहानि। जिगायोशिग्भिः पृतना अभिश्रीः। प्रारोचयन्मनवे केतुमह्नाम्। अविन्दज्ज्योतिर्बृहते रणाय इति।— तै.ब्रा.२.४.३.६

१८. स्तोमभागाः :- उशिगसि वसुभ्यस्त्वा वसून् जिन्व सवितृप्रसूता बृहस्पतये स्तुत।— तां.ब्रा.१.९.९

१९. काक्षीवतं भवति। कक्षीवान्वा एतेनौशिजः प्रजातिं भूमानमगच्छत् प्रजायते बहुर्भवति काक्षीवतेन तुष्टुवानः।— तां.ब्रा.१४.११.१६

२०. पराह्णारस्त्रसदस्यः पौरुकुत्सोवीतहव्यः श्रायसः कक्षीवानौशिजस्त एतत्प्रजातिकामा सत्रायणमुपायँस्ते सहस्रँ सहस्रँ पुत्रानपुष्यन्नेवं वाव ते सहस्रँ सहस्रं पुत्रान् पुष्यन्ति य एतदुपयन्ति।। — तां.ब्रा.२५.१६.३

२१. उशिगसि, प्रकेतो ऽसि, सुदितिरसीति।— गोपथ ब्रा.२.२.१३

२२. तस्य पाहि नो अग्न एकये त्य् एतासु नार्मेधस्यर्क्षु रथन्तरं पृष्ठं भवति। एताभिर् वै नृमेधा औशिजो ऽग्नेर् हरांस्य् अपैरयत।— जै.ब्रा.२.१३७

२३. कक्षीवतामाङ्गिरसौचथ्यगौतमौशिजकाक्षीवतेति। दीर्घतमसामाङ्गिरसौचथ्यदैर्घतमसेति।— आश्व.श्रौ.सू.१२.११.४

२४. सोमग्रह गृहण मन्त्राः :- ---तिस्रो यह्वस्य समिधः परिज्मनो देवा अकृण्वन्नुशिजो अमर्त्यवे।---- आप.श्रौ.सू.१२.७.१०

२५. आधवनानंशून्प्रज्ञातान्त्रिधायोशिक्त्वं देव सोम गायत्रेण छन्दसेत्येतैः प्रतिमन्त्रमनुसवनमेकैकं महाभिषवेष्वपिसृजति।— आप.श्रौ.सू.१२.८.४

२६. अथौचथ्या गौतमाः। तेषां त्र्यार्षेयः। आङ्गिरसौचथ्य गौतमेति। गोतमवदुचथ्यवदङ्गिरो-वदिति। अथौशिजा गौतमाः। तेषां त्र्यार्षेयः। आङ्गिरसौशिज काक्षीवतेति। कक्षीवद्वदुशिज-वदङ्गिरोवदिति।— आप.श्रौ.सू. २४.६.१२

२७.-- चतुरो धिष्णियान्समान्तरालानुदगन्तान् तुथो ऽसि विश्ववेदा रौद्रेणोशिगसि कवी रौद्रेणाङ्गारिरसि बम्भारी रौद्रेणावस्युरसि दुवस्वान्रौद्रेणेत्येतैर्ब्राह्मणाच्छंसिपोतृनेष्ट्रच्छावाकानं प्रतिमन्त्रमुपवपति-— वैखा.श्रौ.सू.१४.१२

२८. --- अदाभ्यांशूनां प्रथममुशिक् त्वं देव सोमेति प्रातःसवने ऽपिसृज्याभिषुणुयान्माध्यन्दिने मध्यममुत्तमं तृतीयसवने-— वैखा.श्रौ.सू.१५.१३

२९. तुथ उशिगन्धारिरवस्युरिति ब्राह्मणाच्छंसिप्रभृतीनामुदञ्चः।— द्राह्या.श्रौ.सू.४.२.९

३०. --सोमानँ स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते। कक्षीवन्तं य औशिजमित्यथ रात्रिमुपतिष्ठते— बौधा.श्रौ.सू. ३.९

३१. पशुबन्धः :----बर्हिषी आदायोपाकरोत्युपवीरस्युपो देवान्दैवीर्विशः प्रागुर्वह्नी-रुशिजो— बौधा.श्रौ.सू.४.५

३२. अग्निष्टोम प्रातः सवनम् : तुथो ऽसि विश्ववेदा इत्युत्तरतो ब्राह्मणाच्छँसिन उशिगसि कविरित्युत्तरतः पोतुः-— बौधा.श्रौ.सू.६.२९

३३. अग्निचयनम् :--अग्नेरुक्थेनाग्नि-मनुशँसति पिता मातरश्चाच्छिद्रा पदा धा अच्छिद्रा उशिजः पदानुतक्षुः-— बौधा.श्रौ.सू.१०.४९

३४. औपानुवाक्यम् : अथ प्रदक्षिणमावृत्य राजन्येवाँशूनपिसृजत्युशिक् त्वं देव सोम गायत्रेण छन्दसाग्नेः प्रियं पाथो अपीह्यस्मत्सखा त्वं देव सोम जागतेन छन्दसा विश्वेषां देवानां प्रियं पाथो अपीही— बौधा.श्रौ.सू.१४.१२

३५. अंशून्त्सोमे निदधात्युशित्क्तमिति प्रतिमन्त्रम्।— कात्या.श्रौ.सू.१२.५.१८

३६. ज्योतिष्टोमे धिष्ण्योपस्थानम् : तुथोऽसि विश्ववेदा इति ब्राह्मणाच्छंसिनः। उशिगसि कविरसीति पोतुः।-— शांखा.श्रौ.सू. ६.१२.१७

३७. आज्यं शंसिष्यन्पिता मातरिश्वाच्छिद्रा पदोशिगसीयानुतक्षिषत्-— शांखा.श्रौ.सू.७.९.१

३८. पुरुषमेधप्रकरणम् : शौन:शेपं प्रथमम्।--- काक्षीवतं द्वितीयम्। यथा कक्षीवानौशिज: स्वनये भावयव्ये सनिं ससान।— शांखा.श्रौ.सू. १६.११.१

## उशीनर

१. समिन्द्रेरय गामनड्वाहं य आवहदुशीनराण्या अन:। भरतामप यद्रपो: द्यौ: पृथिवि क्षमा रपो मो षु ते किं चनाममत्।।— ऋ. १०.५९.१०

२. उत्तिष्ठताव पश्यतेन्द्रस्य भागमृत्वियम्। यदि श्रातो जुहोतन यद्यश्रातो ममत्तन।।— ऋ. १०.१७९.१; ऋषि: शिबिरौशीनर:

३. अथ गार्ग्यो ह वै बालाकिरनूचान: संस्पृष्ट आस सोऽवददुशीनरेषु स वसन्मत्स्येषु कुरुपञ्चालेषु-— कौशीतकिब्राह्मणोपनिषत् ४.१

४. देवासुरा ह यत्र महासंग्रामँ संयेतिरे तद्ध शिबिरौशीनरो देवानां वर्गादसुरान्जिगाय तस्यो हेन्द्रो जितवरं ददौ स होवाच शिबिर्नैष्ठयं भयं न गच्छेदिति-— बौधा.श्रौ.सू.१८.४९

## उषा:

१. केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे। समुषद्भिरजायथा:।।— ऋ.१.६.३; दे. इन्द्र

२. कस्त उष: कधप्रिये भुजे मर्तो अमर्त्ये। कं नक्षसे विभावरि।। वयं हि ते अमन्महा ऽऽन्तादा पराकात्। अश्वे न चित्रे अरुषि।। त्वं त्येभिरा गहि वाजेभिर्दुहितर्दिव:। अस्मे रयिं नि धारय।। — ऋ.१.३०.२० दे.उषा

३. आत् सूर्यं जनयन् द्यामुषासं तादीत्ना शत्रुं न किला विवित्से।।— ऋ.१.१२.४ दे.इन्द्र

४. त्रिर्वाजवतीरिषो अश्विना युवं दोषा अस्मभ्यमुषसश्च पिन्वतम्।।— ऋ.१.३४.३

५. आ नासत्या गच्छतं हूयते हविर्मध्व: पिबतं मधुपेभिरासभि:। युवोर्हि पूर्वं सवितोषसो रथमृताय चित्रं घृतवन्तमिष्यति।।— ऋ.१.३४.१०

६. अग्ने विवस्वदुषसश् चित्रं राधो अमर्त्य। आ दाशुषे जातवेदो वहात्वमद्या देवाँ उषर्बुध:।।— ऋ. १.४४.१ दे.अग्नि:

७. सजूरश्विभ्यामुषसा सुवीर्यमस्मे धेहि श्रवो बृहत्।।— ऋ.१.४४.२ दे.अग्नि:

८. सवितारमुषसमश्विना भगमग्निं व्युष्टिषु क्षप:। कण्वासस्त्वा सुतसोमास इन्धते हव्यवाहं स्वध्वर।।— ऋ.१.४४.८

९. पतिर्ह्यध्वराणामग्ने दूतो विशामसि। उषर्बुध आ वह सोमपीतये देवाँ अद्य स्वर्दृश:।।— ऋ.१.४४.९

१०. अग्ने पूर्वा अनूषसो विभावसो दीदेथ विश्वदर्शत:।— ऋ.१.४४.१०

११. पिबतु सोमं वरुणो धृतव्रतो ऽश्विभ्यामुषसा सजू:।।— ऋ.१.४४.१४

१२. एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिव:। स्तुषे वामश्विना बृहत्।।— ऋ.१.४६.१

१३. युवोरुषा अनु श्रियं परिज्मनोरुपाचरत्। ऋता वनथो अक्तुभि:।।— ऋ.१.४६.१४,दे.अश्विनौ

१४. सह वामेन न उषो व्युच्छा दुहितर्दिव:।— ऋ.१.४८.१, उषा: देवता सूक्त।

१५. उषो भद्रेभिरा गहि दिवश्चिद् रोचनादधि।— ऋ. १.४९.१, उषा: देवता सूक्त।

१६. देवी यदि तविषी त्वावृधोतय इन्द्रं सिषक्त्युषसं न सूर्य:।— ऋ.१.५६.४, दे.इन्द्र:

१७. अस्मै भीमाय नमसा समध्वर उषो न शुभ्र आ भरा पनीयसे।— ऋ.१.५७.३, दे.इन्द्र:

१८. गृणानो अङ्गिरोभिर्दस्म वि वरुषसा सूर्येण गोभिरन्ध:। वि भूम्या अप्रथय इन्द्र सानु दिवो रज उपरमस्तभाय:।।— ऋ.१.६२.५,दे.इन्द्र:

१९. सनाद् दिवं परि भूमा विरूपे पुनर्भुवा युवती स्वेभिरेवै:। कृष्णेभिरक्तोषा रुशद्भिर्वपुर्भिरा चरतो अन्यान्या।— ऋ.१.६२.८,दे.इन्द्र:

२०. उप प्र जिन्वन्नुशतीरुशन्तं पतिं न नित्यं जनयः सनीळाः। स्वसारः श्यवीमरुषीमजुष्रञ्चित्रमुच्छन्तीमुषसं न गावः।— ऋ.१.७१.१, दे. अग्निः

२१. त्वे अग्ने सुमतिं भिक्षमाणा दिवि श्रवो दधिरे यज्ञियासः। नक्ता च चक्रुरुषसा विरूपे कृष्णं च वर्णमरुणं च सं धुः।।— ऋ.१.७३.७

२२. शुचिभ्राजा उषसो नवेदा यशस्वतीरपस्युवो न सत्याः।।— ऋ.१.७९.१, दे.अग्निः

२३ .क्षपो राजन्नुतत्मनाग्ने वस्तोरुतोषसः। स तिग्मजम्भ रक्षसो दह प्रति।।— ऋ.१.७९.६, दे.अग्निः

२४. मधु नक्तमुतोषसो मधुमत् पार्थिवं रजः। मधु द्यौरस्तु नः पिता।।— ऋ.१.९०.७

२५. एता उ त्या उषसः केतुमक्रत पूर्वे अर्धे रजसो भानुमञ्जते।— ऋ.१.९२.१; उषाः देवता सूक्त।

२६. इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागाच्चित्रः प्रकेतो अजनिष्ट विभ्वा।--— ऋ.१.११३.१; उषाः देवता सूक्त।

२७. सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति पश्चात्। यत्रा नरो देवयन्तो युगानि वितन्वते प्रति भद्राय भद्रम्।।— ऋ.१.११५.२

२८. ईयुष्टे ये पूर्वतरामपश्यन् व्युच्छन्तीमुषसं मर्त्यासः। अस्माभिरू नु प्रतिचक्ष्याभूदो ते यन्ति ये अपरीषु पश्यान्।।— ऋ.१.११३.११

२९. यावयद् द्वेषा ऋतपा ऋतेजाः सुम्नावरी सूनृता ईरयन्ती। सुमङ्गलीर्बिभ्रती देववीतिमिहाद्योषः श्रेष्ठतमा व्युच्छ।।— ऋ.१.११३.१२

३०. शश्वत् पुरोषा व्युवास देव्यथो अद्येदं व्यावो मघोनी। अथो व्युच्छादुत्तराँ अनु द्यूनजरामृता चरति स्वधाभिः।— ऋ.१.११३.१३

३१. व्यञ्जिभिर्दिव आतास्वद्यौदप कृष्णां निर्णिजं देव्यावः। प्रबोधयन्त्यरुणेभिरश्वैरोषा याति सुयुजा रथेन।।— ऋ.१.११३.१४

३२. आवहन्ती पोष्या वार्याणि चित्रं केतुं कृणुते चेकिताना। ईयुषीणामुपमा शश्वतीनां विभातीनां प्रथमोषा व्यश्वैत्।।— ऋ.१.११३.१५

३३. यच्चित्रमप्न उषसो वहन्तीजानाय शशमानाय भद्रम्। तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः।।— ऋ.१.११३.२०

३४. हवे हि वामश्विना रातहव्यः शश्वत्तमाया उषसो व्युष्टौ।।— ऋ.१.११८.११

३५. अध प्र जज्ञे तरणिर्ममत्तु प्र रोच्यस्या उषसो न सूरः।— ऋ.१.१२१.६ दे.इन्द्रः

३६. पृथू रथो दक्षिणाया अयोज्यैनं देवासो अमृतासो अस्थुः।---- -— ऋ.१.१२३.१; उषाः देवता सूक्तम्।

३७. उषा उच्छन्ती समिधाने अग्ना उद्यन्त्सूर्य उर्विया ज्योतिरश्रेत्।-ऋ१.१२४.१; उषाः देवता सूक्तम्।

३८. उतो नो अस्या उषसो जुषेत ह्यर्कस्य बोधि हविषो हवीमभिः स्वर्षाता हवीमभिः।— ऋ.१.१३१.६, दे.इन्द्रः

३९. प्र बोधया पुरंधिं जार आ ससतीमिव। प्र चक्षय रोदसी वासयोषसःश्रवसे वासयोषसः।। तुभ्यमुषासः शुचयः परावति भद्रा वस्त्रा तन्वते दंसु रश्मिषु चित्रा नव्येषु रश्मिषु।— ऋ.१.१३४.३, दे.वायुः

४०. इम आ यातमिन्दवः सोमासो दध्याशिरः सुतासो दध्याशिरः। उत वामुषसो बुधि साकं सूर्यस्य रश्मिभिः। सुतो मित्राय वरुणाय पीतये चारुर्ऋताय पीतये।।— ऋ.१.१३७.२, दे.मित्रावरुणौ

४१. स्वरन्ति ता उपरताति सूर्यमा निम्रुच उषसस्तक्ववीरिव।।— ऋ.१.१५१.५, दे.मित्रावरुणौ

४२. अबोध्यग्निर्ज्म उदेति सूर्यो व्युषाश्चन्द्रा मह्यावो अर्चिषा। आयुक्षातामश्विना यातवे रथं प्रासावीद् देवःसविता जगत् पृथक्।।— ऋ.१.१५७.१, दे.अश्विनौ

४३. पूर्वीरहं शरदः शश्रमाणा दोषा वस्तोरुषसो जरयन्तीः।— ऋ.१.१७९.१, दे.रतिः

४४. हिरण्यया वां पवयः प्रुषायन् मध्वः पिबन्ता उषसः सचेथे।।— ऋ.१.१८०.१, दे.अश्विनौ

४५. वपुर्वपुष्या सचतामियं गीर्दिवो दुहित्रोषसा सचेथे।।— ऋ.१.१८३.२, दे.अश्विनौ

४६. ता वामद्य तावपरं हुवेमोच्छन्त्यामुषसि वह्निरुक्थैः।— ऋ.१.१८४.१, दे.अश्विनौ

४७. सुरुक्मे हि सुपेशसा ऽधि श्रिया विराजतः। उषासावेह सीदताम्।— ऋ.१.१८८.६ आप्रीसूक्त,दे.उषासानक्ता।

४८. अभि त्वा नक्तीरुषसो ववाशिरे ऽग्ने वत्सं न स्वसरेषु धेनवः।— ऋ.२.२.२

४९. दा नो अग्ने बृहतो दाः सहस्रिणो दुरो न वाजं श्रुत्या अपा वृधि। प्राची द्यावापृथिवी ब्रह्मणा कृधि स्वर्ण शुक्रमुषसो वि दिद्युतुः।। स इधान उषसो राम्या अनु स्वर्ण दीदेदरुषेण भानुना। होत्राभिरग्निर्मनुषःस्वध्वरो राजा विशामतिथिश्चारु-रायवे।।— ऋ.२.२.७

५०. य उ श्रिया दमेष्वा दोषोषसि प्रशस्यते। यस्य व्रतं न मीयते।।— ऋ.२.८.३, दे.अग्निः

५१. यः सूर्यं य उषसं जजान यो अपां नेता स जनास इन्द्रः।— ऋ.२.१२.७

५२. सोदञ्चं सिन्धुमरिणान्महित्वा वज्रेणान उषसः सं पिप्रेष।— ऋ.२.१५.६, दे.इन्द्रः

५३. मुष्णन्नुषसः सूर्येण स्तवानश्नस्य चिच्छिश्नथत् पूर्व्याणि।।— ऋ.२.२०.५, दे.इन्द्रः

५४. रध्रचोदः श्नथनो वीळितस्पृथुरिन्द्रः सुयज्ञ उषसः स्वर्जनत्।।— ऋ.२.२१.४

५५. तव व्रते सुभगासः स्याम स्वाध्यो वरुण तुष्टुवांसः। उपायन उषसां गोमतीनामग्नयो न जरमाणा अनु द्यून्।।— ऋ. २.२८.२

५६. अव्युष्टा इन्नु भूयसीरुषास आ नो जीवान् वरुण तासु शाधि।।— ऋ.२.२८.९

५७. उषा न रामीररुणैरपोर्णुते महो ज्योतिषा शुचता गोअर्णसा।।— ऋ.२.३४.१२, दे.मरुतः

५८. आ भन्दमाने उषसा उपाके उत स्मयेते तन्वा विरूपे।— ऋ.३.४.६, आप्रीसूक्तं, दे. उषासानक्ता

५९. प्रत्यग्निमुषसश्चेकितानो ऽबोधि विप्रः पदवी कवीनाम्।— ऋ.३.५.१

६०. पूर्वीर्ऋतस्य संदृशश्चकानः सं दूतो अद्यौदुषसो विरोके।।— ऋ.३.५.२, दे.अग्निः

६१. पृक्षप्रयजो द्रविणः सुवाचः सुकेतव उषसो रेवदूषुः।— ऋ.३.७.१०, दे.अग्निः

६२. द्रवतां त उषसा वाजयन्ती अग्ने वातस्य पथ्याभिरच्छ।— ऋ.३.१४.३

६३. त्वं नो अस्या उषसो व्युष्टौ त्वं सूर उदिते बोधि गोपाः।— ऋ.३.१५.२, दे.अग्निः

६४. त्रीण्यायूंषि तव जातवेदस्तिस्र आजानीरुषसस्ते अग्ने।— ऋ.३.१७.३

६५. अग्निमुषसमश्विना दधिक्रां व्युष्टिषु हवते वह्निरुक्थैः।— ऋ.३.२०.१

६६. दिदृक्षन्त उषसो यामन्नक्तोर्विवस्वत्या महि चित्रमनीकम्।— ऋ.३.३०.१३, दे.इन्द्रः

६७. अभि जैत्रीरसचन्त स्पृधानं महि ज्योतिस्तमसो निरजानन्। तं जानतीः प्रत्युदायन्नुषासः पतिर्गवामभवदेक इन्द्रः।।— ऋ. ३.३१.४

६८. इन्द्रो नृभिरजनद् दीद्यानः साकं सूर्यमुषसं गातुमग्निम्।।— ऋ.३.३१.१५

६९. दाधार यः पृथिवीं द्यामुतेमां जजान सूर्यमुषसं सुदंसाः।।— ऋ.३.३२.८,दे.इन्द्रः

७०. हर्यन्नुषसमर्चयः सूर्यं हर्यन्नरोचयः।— ऋ ३.४४.२, दे. इन्द्रः

७१. उषसः पूर्वा अध यद् व्यूषुर्महद् वि जज्ञे अक्षरं पदे गोः।— ऋ.३.५५.१

७२. आ द्योतनिं वहति शुभ्रयामोषसः स्तोमो अश्विनावजीगः।।— ऋ.३.५८.१

७३. उषो वाजेन वाजिनि प्रचेताः स्तोमं जुषस्व गृणतो मघोनि।— ऋ.३.६१.१, उषाःदेवता सूक्तम्

७४. स त्वं नो अग्ने ऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ।— ऋ.४.१.५

७५. अश्मव्रजा सुदुघा वव्रे अन्तरुदुस्रा आजन्नुषसो हुवाना।।— ऋ.४.१.१३

७६. नेशत् तमो दुधितं रोचत द्यौरुद् देव्या उषसो भानुरर्त।— ऋ.४.१.१७

७७. यस्त्वा दोषा य उषसि प्रशंसात् प्रियं वा त्वा कृणवते हविष्मान्। अश्वो न स्वे दम आ हेम्यावान् तमंहसःपीपरो दाश्वांसम्।।— ऋ.४.२.८

७८. अकर्म ते स्वपसो अभूम ऋतमवस्रन्नुषसो विभातीः।— ऋ.४.२.१९, दे.अग्निः

७९. शुनं नरः परि षदन्नुषासमाविः स्वरभवज्जाते अग्नौ।।— ऋ.४.३.११

८०. कदा नो देवीरमृतस्य पत्नीः सूरो वर्णेन ततनन्नुषासः।।— ऋ.४.५.१३, दे.वैश्वानरोऽग्निः

८१. प्रत्यग्निरुषसामग्रमख्यद् विभातीनां सुमना रत्नधेयम्। यातमश्विना सुकृतो दुरोणमुत् सूर्यो ज्योतिषा देव एति।।— ऋ.४.१३.१

८२. प्रत्यग्निरुषसो जातवेदा अख्यद् देवो रोचमाना महोभिः। आ नासत्योरुगाया रथेनेमं यज्ञमुप नो यातमच्छ।।— ऋ.४.१४.१

८३. इध्मं यस्ते जभरच्छश्रमाणो महो अग्ने अनीकमा सपर्यन्। स इधानः प्रति दोषामुषासं पुष्यन् रयिं सचते घ्नन्नमित्रान्।।— ऋ.४.१२.२

८४. आवहन्त्यरुणीर्ज्योतिषागान्मही चित्रा रश्मिभिश्चेकिताना। प्रबोधयन्ती सुविताय देव्ययुषा ईयते सुयुजा रथेन।। आ वां वहिष्ठा इह ते वहन्तु रथा अश्वास उषसो व्युष्टौ। इमे हि वां मधुपेयाय सोमा अस्मिन् यज्ञे वृषणा मादयेथाम्।।— ऋ.४.१४.३, दे.अग्निः

८५. पूर्वीरुषसः शरदश्च गूर्ता वृत्रं जघन्वाँ असृजद् वि सिन्धून्।— ऋ.४.१९.८, दे.इन्द्रः

८६. कथा कदस्या उषसो व्युष्टौ देवो मर्तस्य सख्यं जुजोष।— ऋ.४.२३.५, दे.इन्द्रः

८७. ऋणा चिद् यत्र ऋणया न उग्रो दूरे अज्ञाता उषसो बबाधे।।— ऋ.४.२३.७

८८. दिवश्चिद् घा दुहितरं महान् महीयमानाम्। उषासमिन्द्र सं पिणक्।।— ऋ.४.३०.९

८९. आशुं दधिक्रां तमु नु ष्टवाम दिवस्पृथिव्या उत चर्किराम। उच्छन्तीर्मामुषसः सूदयन्त्वति विश्वानि दुरितानि पर्षन्।।— ऋ.४.३९.१, दे.दधिक्राः

९०. यो अश्वस्य दधिक्राव्णो अकारीत् समिद्धे अग्ना उषसो व्युष्टौ।— ऋ.४.३९.३

९१. उद् वां पृक्षासो मधुमन्त ईरते रथा अश्वास उषसो व्युष्टिषु।— ऋ.४.४५.२, दे.अश्विनौ

९२. हंसासो ये वां मधुमन्तो अस्रिधो हिरण्यपर्णा उहुव उषर्बुधः।— ऋ.४.४५.४

९३. इदमु त्यत् पुरुतमं पुरस्ताज्ज्योतिस्तमसो वयुनावदस्थात्।— ऋ.४.५१.१, उषाः देवता सूक्तम्

९४. प्रति ष्या सूनरी जनी व्युच्छन्ती परि स्वसुः।— ऋ१।४.५२.१, उषाःदेवता सूक्तम्

९५. उषो मघोन्या वह सूनृते वार्या पुरु। अस्मभ्यं वाजिनीवति।।— ऋ.४.५५.९

९६. यदीं सुवाते उषसा विरूपे श्वेतो वाजी जायते अग्रे अह्नाम्।।— ऋ.५.१.४, दे.अग्निः

९७. सुप्रतीके वयोवृधा यह्वी ऋतस्य मातरा। दोषामुषासमीमहे।।— ऋ.५.५.६, दे.उषासानक्ता

९८. समिद्धो अग्निर्दिवि शोचिरश्रेत् प्रत्यङ्ङुषसमुर्विया वि भाति। एति प्राची विश्ववारा नमोभिर्देवाँ ईळाना हविषा घृताची।।— ऋ.५.२८.१

९९. तस्मा अमृध्रा उषसो व्युच्छान् य इन्द्राय सुनवामेत्याह।। — ऋ.५.३७.१

१००. विदा दिवो विष्यन्नद्रिमुक्थैरायत्या उषसो अर्चिनो गुः। अपावृत व्रजिनीरुत् स्वर्गाद् वि दुरो मानुषीर्देव आवः।।— ऋ.५.४५.१

१०१. सजूर्विश्वेभिर्देवेभिरश्विभ्यामुषसा सजूः। आ याह्यग्ने अत्रिवत् सुते रण।।— ऋ.५.५१.८

१०२. मिमातु द्यौरदितिर्वीतये नः सं दानुचित्रा उषसो यतन्ताम्। आचुच्यवुर्दिव्यं कोशमेत ऋषे रुद्रस्य मरुतो गृणानाः।।— ऋ.५.५९.८

१०३. हिरण्यरूपमुषसो व्युष्टावयः स्थूणमुदिता सूर्यस्य। आ रोहथो वरुण मित्र गर्तमतश्चक्षाथे अदितिं दितिं च।।— ऋ.५.६२.८

१०४. अभूदुषा रुशत्पशुराग्निरधाय्यृत्वियः। अयाजि वां वृषण्वसू रथो दस्रावमर्त्यो माध्वी मम श्रुतं हवम्।।— ऋ.५.७५.९

१०५. आ भात्यग्निरुषसामनीकमुद् विप्राणां देवया वाचो अस्थुः।— ऋ.५.७६.१, दे.अश्विनौ

१०६. महे नो अद्य बोधयोषो राये दिवित्मती।— ऋ.५.७९.१, उषाः देवता सूक्तम्

१०७. द्युतद्यामानं बृहतीमृतेन ऋतावरीमरुणप्सुं विभातीम्।— ऋ.५.८०.१, उषाः देवता सूक्तम्

१०८. वि नाकमख्यत् सविता वरेण्यो ऽनु प्रयाणमुषसो वि राजति।।— ऋ.५.८१.२

१०९. पावकया यश्चितयन्त्या कृपा क्षामन् रुरुच उषसो न भानुना।— ऋ.६.१५.५,दे.अग्निः

११०. याभिः सूर्यमुषसं मन्दसानो ऽवासयोऽप दृळ्हानि दर्द्रत्। महामद्रिं परि गा इन्द्र सन्तं नुत्था अच्युतं सदसस्परि स्वात्।। — ऋ.६.१७.५

१११. आ गावो अग्मन्नुत भद्रमक्रन् त्सीदन्तु गोष्ठे रणयन्त्वस्मे। प्रजावतीः पुरुरूपा इह स्युरिन्द्राय पूर्वीरुषसो दुहानाः।।— ऋ.६.२८.१

११२. त्वमपो वि दुरो विषूचीरिन्द्र दृळ्हमरुजः पर्वतस्य। राजाभवो जगतश्चर्षणीनां साकं सूर्यं जनयन् द्यामुषासम्।।— ऋ.६.३०.५

११३. वर्धाहैनमुषसो यामन्नक्तोर्वर्धान् मासाः शरदो द्याव इन्द्रम्।।— ऋ.६.३८.४

११४ .अयं द्योतयदद्युतो व्यक्तून् दोषा वस्तोः शरद इन्दुरिन्द्रः। इमं केतुमदधुर्नू चिदह्नां शुचिजन्मन उषसश्चकार।। — ऋ.६.३९.३

११५. अयमकृणोदुषसः सुपत्नीरयं सूर्ये अदधाज्ज्योतिरन्तः। अयं त्रिधातु दिवि रोचनेषु त्रितेषु विन्ददमृतं निगूळ्हम्।।— ऋ.६.४४.२३

११६. अयं विदच्चित्रदृशीकमर्णः शुक्रसद्मना-मुषसामनीके।— ऋ.६.४७.५, दे.सोमः

११७. आ नो देवः सविता त्रायमाणो हिरण्यपाणिर्यजतो जगम्यात्। यो दत्रवाँ उषसो न प्रतीकं व्यूर्णुते दाशुषे वार्याणि।।— ऋ.६.५०.८

११८. अवन्तु मामुषसो जायमाना अवन्तु मा सिन्धवः पिन्वमानाः।— ऋ.६.५२.४

११९. दिशः स्वरुषस इन्द्र चित्रा अपो गा अग्ने युवसे नियुत्वान्।।— ऋ.६.६०.२,दे.इन्द्राग्नी

१२०. एषा स्या नो दुहिता दिवोजाः क्षितीरुच्छन्ती मानुषीरजीगः।---- ऋ.६.६५.१, उषाःदेवता सूक्तम्

१२१. इन्द्रासोमा वासयथ उषासमुत् सूर्यं नयथो ज्योतिषा सह।— ऋ.६.७२.२

१२२. तमिद् दोषा तमुषसि यविष्ठमग्निमत्यं न मर्जयन्त नरः।— ऋ.७.३.५

१२३. पतिं कृष्टीनां रथ्यं रयीणां वैश्वानरमुषसां केतुमह्नाम्।।— ऋ.७.५.५

१२४. उषो न जारः पृथु पाजो अश्रेद् दविद्युतद् दीद्यच्छोशुचानः।— ऋ. ७.१०.१, दे.अग्निः

१२५. स्वर्ण वस्तोरुषसामरोचि यज्ञं तन्वाना उशिजो न मन्म। अग्निर्जन्मानि देव आ वि विद्वान् द्रवद् दूतो देवयावा वनिष्ठः।।— ऋ.७.१०.२

१२६. न त इन्द्र सुमतयो न रायः संचक्षे पूर्वा उषसो न नूत्नाः।— ऋ.७.१८.२०

१२७. त्रयः कृण्वन्ति भुवनेषु रेतस्तिस्रः प्रजा आर्या ज्योतिरग्राः। त्रयो घर्मास उषसं सचन्ते सर्वाँ इत् ताँ अनु विदुर्वसिष्ठाः।।— ऋ.७.३३.७

१२८. शं नो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तूषसो विभातीः।— ऋ.७.३५.१०

१२९. समध्वरायोषसो नमन्त दधिक्रावेव शुचये पदाय। अर्वाचीनं वसुविदं भगं नो रथमिवाश्वा वाजिन आ वहन्तु।।अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्राः। घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः।।— ऋ.७.४१.६

१३०. विभ्राजमान उषसामुपस्थाद् रेभैरुदेत्यनु-मद्यमानः। एष मे देवः सविता चच्छन्द यः समानं न प्रमिनाति धाम।।— ऋ.७.६३.३

१३१. अचेति केतुरुषसः पुरस्ताच्छ्रिये दिवो दुहितुर्जायमानः।।— ऋ.७.६७.२

१३२. एष स्य कारुर्जरते सूक्तैरग्रे बुधान उषसां सुमन्मा। इषा तं वर्धदघ्न्या पयोभिर्यूयं पात स्वस्तिभिःसदा नः।।— ऋ.७.६८.९, दे.अश्विनौ

१३३. यो ह स्य वां रथिरा वस्त उस्रा रथो युजानः परियाति वर्तिः। तेन नःशं योरुषसो व्युष्टौ न्यश्विना वहतं यज्ञे अस्मिन्।।— ऋ.७.६९.५

१३४. अप स्वसुरुषसो नग्जिहीते रिणक्ति कृष्णीररुषाय पन्थाम्। अश्वामघा गोमघा वां हुवेम दिवा नक्तं शरुमस्मद् युयोतम्।।— ऋ.७.७१.१, दे.अश्विनौ

१३५. उदु स्तोमासो अश्विनोरबुध्रञ्जामि ब्रह्माण्युषसश्च देवीः।— ऋ.७.७२.३

१३६. व्युषा आवो दिविजा ऋतेनाऽऽविष्कृण्वाना महिमानमागात्।-— ऋ.७.७५.१, उषसःदेवता सूक्तम्

१३७. उदु ज्योतिरमृतं विश्वजन्यं विश्वानरः सविता देवो अश्रेत्।-— ऋ.७.७६.१, उषसः देवता सूक्तम्

१३८. उषो रुरुचे युवतिर्न योषा विश्वं जीवं प्रसुवन्ती चरायै।--— ऋ.७.७७.१, उषसःदेवता सूक्तम्

१३९. प्रति केतवः प्रथमा अदृश्रन्नूर्ध्वा अस्या अञ्जयो वि श्रयन्ते।--— ऋ.७.७८.१,उषसःदेवता सूक्तम्

१४०. व्युषा आवः पथ्या जनानां पञ्च क्षितीर्मानुषीर्बोधयन्ती।-— ऋ.७.७९.१, उषसः देवता सूक्तम्

१४१. प्रति स्तोमेभिरुषसं वसिष्ठा गीर्भिर्विप्रासः प्रथमा अबुध्रन्।----— ऋ.७.८०.१, उषसःदेवता सूक्तम्

१४२. प्रत्यु अदर्श्यायत्युच्छन्ती दुहिता दिवः।— ऋ. ७.८१.१, उषसः देवता सूक्तम्

१४३. पुनीषे वामरक्षसं मनीषां सोममिन्द्राय वरुणाय जुह्वत्। घृतप्रतीकामुषसं न देवीं ता नो यामन्नुरुष्यतामभीके।।— ऋ.७.८५.१

१४४. वसिष्ठं ह वरुणो नाव्याधादृषिं चकार स्वपा महाभिः। स्तोतारं विप्रःसुदिनत्वे अह्नां यान्नु द्यावस्ततनन् यादुषासः।।— ऋ.७.८८.४

१४५. उच्छन्नुषसः सुदिना अरिप्रा उरु ज्योतिर्विविदुर्दीध्यानाः। गव्यं चिदूर्वमुशिजो वि वव्रुस्तेषामनु प्रदिवः सस्रुरापः।।— ऋ.७.९०.४

१४६. कुविदङ्ग नमसा ये वृधासः पुरा देवा अनवद्यास आसन्। ते वायवे मनवे बाधितायाऽवासयन्नुषसं सूर्येण।।— ऋ.७.९१.१

१४७. उरुं यज्ञाय चक्रथुरु लोकं जनयन्ता सूर्यमुषासमग्निम्।— ऋ.७.९९.४

१४८. प्र बोधयोषो अश्विना प्र देवि सूनृते महि। प्र यज्ञहोतरानुषक् प्र मदाय श्रवो बृहत्।।— ऋ.८.९.१७

१४९. यदुषो यासि भानुना सं सूर्येण रोचसे। आ हायमश्विनो रथो वर्तिर्याति नृपाय्यम्।।— ऋ.८.९.१८

१५०. त्वं महीनामुषसामसि प्रियः क्षपो वस्तुषु राजसि।।— ऋ.८.१९.३१, दे.अग्निः

१५१. ताविद् दोषा ता उषसि शुभस्पती ता यामन् रुद्रवर्तनी। मा नो मर्ताय रिपवे वाजिनीवसू परो रुद्रावति ख्यतम्।।— ऋ.८.२२.१४

१५२. आ पशुं गासि पृथिवीं वनस्पतीनुषासा नक्तमोषधीः। विश्वे च नो वसवो विश्ववेदसो धीनां भूत प्रावितारः।।— ऋ.८.२७.२

१५३. --- -सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं पिबतमश्विना।।— ऋ.८.३५.१-३

१५४---सजोषसा उषसा सूर्येण चेषं नो वोळ्हमश्विना।।— ऋ.८.३५.४-६

१५५. ---- सजोषसा उषसा सूर्येण च त्रिर्वर्तिर्यातमश्विना।।— ऋ.८.३५.७-९

१५६. ----सजोषसा उषसा सूर्येण चोर्जं नो धत्तमश्विना।।— ऋ.८.३५.१०-१२

१५७. ---सजोषसा उषसा सूर्येण चाऽऽदित्यैर्यातमश्विना।।— ऋ.८.३५.१३-१५

१५८.----सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं सुन्वतो अश्विना।।— ऋ.८.३५.१६-१८

१५९. ---सजोषसा उषसा सूर्येण चाऽश्विना तिरोअह्नयम्।।— ऋ.८.३५.१९-२१

१६०. एते त्ये वृथगग्नय इद्धासः समदृक्षत। उषसामिव केतवः।।— ऋ.८.४३.५

१६१. एक एवाग्निर्बहुधा समिद्धः एकः सूर्यो विश्वमनु प्रभूतः। एकैवोषः सर्वमिदं वि भात्येकं वा इदं वि बभूव सर्वम्।।— ऋ.८.५८.२

१६२. अरुणप्सुरुषा अभूदकर्ज्योतिर्ऋतावरी। अन्ति षद्भूतु वामवः।।— ऋ.८.७३.१६

१६३. अस्मा उषास आतिरन्त याममिन्द्राय नक्तमूर्म्याः सुवाचः।— ऋ.८.९६.१

१६४. आपानासो विवस्वतो जनन्त उषसो भगम्। सूरा अण्वं वि तन्वते।।— ऋ.९.१०.५

१६५. स पवस्व विचर्षण आ मही रोदसी पृण। उषाः सूर्यो न रश्मिभिः।।— ऋ.९.४१.५

१६६. परा व्यक्तो अरुषो दिवः कविर्वृषा त्रिपृष्ठो अनविष्ट गा अभि। सहस्रणीतिर्यतिः परायती रेभो न पूर्वीरुषसो वि राजति।।— ऋ.९.७१.७

१६७. अभीमृतस्य दोहना अनूषताऽधि त्रिपृष्ठ उषसो वि राजति।।— ऋ.९.७५.३

१६८. अरूरुचदुषसः पृश्निरग्रिय उक्षा बिभर्ति भुवनानि वाजयुः। मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षसः पितरो गर्भमादधुः।।— ऋ.९.८३.३

१६९. कृण्वन् त्संचृतं विचृतमभिष्टय इन्दुः सिषक्त्युषसं न सूर्यः।।— ऋ.९.८४.२

१७०. वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सोमो अह्नः प्रतरीतोषसो दिवः।— ऋ.९.८६.१९

१७१. अयं पुनान उषसो वि रोचयदयं सिन्धुभ्यो अभवदु लोककृत्।— ऋ.९.८६.२१

१७२. अपः सिषासन्नुषसः स्वर्गाः सं चिक्रदो महो अस्मभ्यं वाजान्।।— ऋ.९.९०.४

१७३. अग्रे बृहन्नुषसामूर्ध्वो अस्थान्निर्जगन्वान् तमसो ज्योतिषागात्।— ऋ.१०१.१

१७४. ईशे यो विश्वस्या देववीतेरीशे विश्वायुरुषसो व्युष्टौ।— ऋ.१०.६.३

१७५. सो चिन्नु भद्रा क्षुमती यशस्वत्युषा उवास मनवे स्वर्वती।— ऋ.१०.११.३

१७६. प्र ते अस्या उषसः प्रापरस्या नृतौ स्याम नृतमस्य नृणाम्।— ऋ.१०.२९.२, दे.इन्द्रः

१७७. इयं सा भूया उषसामिव क्षा यद्ध क्षुमन्तः शवसा समायन्। अस्य स्तुतिं जरितुर्भिक्षमाणा आ नःशग्मास उप यन्तु वाजाः।।— ऋ.१०.३१.५

१७८. किं स्विद्वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः। संतस्थाने अजरे इतऊती अहानि पूर्वीरुषसो जरन्त।।— ऋ.१०.३१.७

१७९. अबुध्रमु त्य इन्द्रवन्तो अग्नयो ज्योतिर्भरन्त उषसो व्युष्टिषु।— ऋ.१०.३५.१

१८०. अनागास्त्वं सूर्यमुषासमीमहे भद्रं सोमः सुवानो अद्या कृणोतु नः।।— ऋ.१०.३५.२

१८१. उषा उच्छन्त्यप बाधतामघं स्वस्त्यग्निं समिधानमीमहे।। — ऋ.१०.३५.३

१८२. प्र याः सिस्रते सूर्यस्य रश्मिभिर्ज्योतिर्भरन्तीरुषसो व्युष्टिषु। भद्रा नो अद्य श्रवसे व्युच्छत स्वस्त्यग्निं समिधानमीमहे।।— ऋ.१०.३५.५

१८३. अनमीवा उषस आ चरन्तु न उदग्नयो जिहतां ज्योतिषा बृहत्।— ऋ.१०.३५.६

१८४. यो वां परिज्मा सुवृदश्विना रथो दोषामुषासो हव्यो हविष्मता।— ऋ.१०.३९.१

१८५. परिज्मानं विदथ्यं सुवृक्तिभिर्वयं व्युष्टा उषसो हवामहे।।— ऋ.१०.४१.१,दे.अश्विनौ

१८६. वसुः सूनुः सहसो अप्सु राजा वि भात्यग्र उषसामिधानः।।— ऋ.१०.४५.५, दे.अग्निः

१८७. यदुष औच्छः प्रथमा विभानामजनयो येन पुष्टस्य पुष्टम्। यत् ते जामित्वमवरं परस्या महन्महत्या असुरत्वमेकम्।। —ऋ.१०.५५.४, दे.इन्द्रः

१८८. सूर्यामासा चन्द्रमसा यमं दिवि त्रितं वातमुषसमक्तुमश्विना।।— ऋ.१०.६४.३

१८९. बृहस्पतिरुषसं सूर्यं गामर्कं विवेद स्तनयन्निव द्यौः।।— ऋ.१०.६७.५

१९०. त्वष्टारं वायुमृभवो य ओहते दैव्या होतारा उषसं स्वस्तये।— ऋ.१०.६५.१०

१९१. सनामाना चिद्ध्वसयोन्यस्मा अवाहन्निन्द्र उषसो यथानः।— ऋ.१०.७३.६

१९२. नवोनवो भवति जायमानो ऽह्नां केतुरुषसामेत्यग्रम्। भागं देवेभ्यो वि दधात्यययन् प्र चन्द्रमास्तिरते दीर्घमायुः।।— ऋ.१०.८५.१९

१९३ .उषसां न केतवोऽध्वरश्रियः शुभंयवो नाञ्जिभिर्व्यश्वितन्।— ऋ.१०.७८.७, दे.मरुतः

१९४. विश्वस्मा अग्निं भुवनाय देवा वैश्वानरं केतुमह्नामकृण्वन्। आ यस्ततानोषसो विभातीरपो ऊर्णोति तमो अर्चिषा यन्।।— ऋ.१०.८८.१२

१९५. कत्यग्नयः कति सूर्यासः कत्युषासः कत्यु स्विदापः। नोपस्पिजं वःपितरो वदामि पृच्छामि वः कवयो विद्मने कम्।।— ऋ.१०.८८.१८

१९६. यावन्मात्रमुषसो न प्रतीकं सुपर्ण्यो वसते मातरिश्वः। तावद्दधात्युप यज्ञमायन् ब्राह्मणो होतुरवरो निषीदन्।।— ऋ.१०.८८.१९

१९७. प्र शोशुचत्या उषसो न केतुरसिन्वा ते वर्ततामिन्द्र हेतिः।— ऋ.१०.८९.१२

१९८. प्रजानन्नग्ने तव योनिमृत्वियमिळायास्पदे घृतवन्तमासद। आ ते चिकित्र उषसामिवेतयो ऽरेपसः सूर्यस्येव रश्मयः।।— ऋ.१०.९१.५

१९९. इममञ्जस्पामुभये अकृण्वत धर्माणमग्निं विदथस्य साधनम्। अक्तुं न यह्वमुषसः पुरोहितं तनूनपातमरुषस्य निंसते।।— ऋ.१०.९२.२

२००. किमेता वाचा कृणवा तवाहं प्राक्रमिषमुषसामग्रियेव। पुरूरवः पुनरस्तं परेहि दुरापना वात इवाहमस्मि।।— ऋ.१०.९५.२

२०१. सा वसु दधती श्वशुराय वय उषो यदि वष्ट्यन्तिगृहात्। अस्तं ननक्षे यस्मिञ्चाकन् दिवा नक्तं श्नथिता वैतसेन।।— ऋ.१०.९५.४

२०२. दधिक्रामग्निमुषसं च देवीमिन्द्रावतोऽवसे नि ह्वये वः।।— ऋ.१०.१०१.१

२०३. सचन्त यदुषसः सूर्येण चित्रामस्य केतवो रामविन्दन्। आ यन्नक्षत्रं ददृशे दिवो न पुनर्यतो नकिरद्धा नु वेद।।— ऋ.१०.१११.७

२०४. त्वामिदस्या उषसो व्युष्टिषु दूतं कृण्वाना अयजन्त मानुषाः। त्वां देवा महयाय्याय वावृधुराज्यमग्ने निमृजन्तो अध्वरे।।— ऋ.१०.१२२.७

२०५. निरु स्वसारमस्कृतोषसं देव्यायती। अपेदु हासते तमः।।— ऋ.१०.१२७.३,दे.रात्रिः

२०६. उप मा पेपिशत् तमः कृष्णं व्यक्तमस्थित। उष ऋणेव यातय।। — ऋ.१०.१२७.७

२०७. उभे यदिन्द्र रोदसी आपप्राथोषा इव। महान्तं त्वा महीनां सम्राजं चर्षणीनां देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत्।।— ऋ. १०.१३४.१

२०८. तव त्य इन्द्र सख्येषु वह्नय ऋतं मन्वाना व्यदर्दिरुर्वलम्। यत्रा दशस्यन्नुषसो रिणन्नपः कुत्साय मन्मन्नह्यश्च दंसयः।।— ऋ.१०.१३८.१

२०९. इन्द्रस्य वज्रादबिभेदभिश्नथः प्राक्रामच्छुन्ध्यूरजहादुषा अनः।।— ऋ.१०.१३८.५

२१०. पितुभृतो न तन्तुमित् सुदानवः प्रति दध्मो यजामसि। उषा अप स्वसुस्तमः सं वर्तयति वर्तनिं सुजातता।।— ऋ.१०.१७२.२

२११. अपवासे नक्षत्राणामपवास उषसामुत। अपास्मत् सर्वं दुर्भूतमप क्षत्रियमुच्छतु।।-अथर्व.३.७.७

२१२. उदुषा उदु सूर्य उदिदं मामकं वचः। उदेजतु प्रजापतिर्वृषा शुष्मेण वाजिना।।— अ.४.४.२

२१३. ब्रध्नः समीचीरुषसः समैरयन्। अरेपसः सचेतसः स्वसरे मन्युमत्तमाश्चिते गोः।।— अ.७.२३.२/ ७.२२.२

२१४. अहानि शं भवन्तु न शं रात्री प्रति धीयतां शमुषा नो व्युच्छतु।।— अ.७.७२.१/ ७.६९.१

२१५. अन्वग्निरुषसामग्रमख्यदन्वहानि प्रथमो जातवेदाः। अनु सूर्य उषसो अनु रश्मीननु द्यावापृथिवी आ विवेश।। प्रत्यग्निरुषसामग्रमख्यत् प्रत्यहानि प्रथमो जातवेदाः। प्रति सूर्यस्य पुरुधा च रश्मीन् प्रति द्यावापृथिवी आ ततान।।— अ.७.८७.४/७.८२.४

२१६. छन्दःपक्षे उषसा पेपिशाने समानं योनिमनु सं चरेते। सूर्यपत्नी सं चरतः प्रजानती केतुमती अजरे भूरिरेतसा।।— अ.८.९.१२

२१७. तस्मा उषा हिङ्कृणोति सविता प्र स्तौति। बृहस्पतिरूर्जयोद्गायति त्वष्टा पुष्ट्या प्रति हरति विश्वे देवा निधनम्।।— अ.९.१०.१/९.५.१

२१८. यथा सूर्यो मुच्यते तमसस्परि रात्रिं जहात्युषसश्च केतून्। एवाहं सर्वं दुर्भूतं कर्त्रं कृत्याकृता कृतं हस्तीव रजो दुरितं जहामि।— अ.१०.१.३२

२१९. केनापो अन्वतनुत केनाहरकरोद् रुचे। उषसं केनान्वैन्द्ध केन सायंभवं ददे।।— अ.१०.२.१६

२२०. नाम नाम्ना जोहवीति पुरा सूर्यात् पुरोषसः। यदजः प्रथमं संबभूव स ह तत् स्वराज्यमियाय यस्मान्नान्यत् परमस्ति भूतम्।। अ. १०.७.३१

२२१. एषा सनत्नी सनमेव जातैषा पुराणी परि सर्वं बभूव। मही देव्युषसो विभाती सैकेनैकेन मिषता वि चष्टे।।— अ.१०.८.३०

२२२. मुञ्चन्तु मा शपथ्यादहोरात्रे अथो उषाः। सोमो मा देवो मुञ्चतु यमाहुश्चन्द्रमा इति।।— अ.११.८.७/११.६.७

२२३. सुगार्हपत्यो वितपन्नरातिमुषामुषां श्रेयसीं धेह्यस्मै।।— अ.१२.२.४५

२२४. आ रोह तल्पं सुमनस्यमानेह प्रजां जनय पत्ये अस्मै। इन्द्राणीव सुबुधा बुध्यमाना ज्योतिरग्रा उषसः प्रति जागरासि।।— अ.१४.२.३१

२२५. सुगू सुपुत्रौ सुगृहौ तराथो जीवावुषसो विभातीः।। नवं वसानःसुरभिः सुवासा उदागां जीव उषसो विभातीः।— अ.१४.२.४३

२२६. --- तस्य दक्षिणायां दिशि। उषाः पुंश्चली मन्त्रो मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं रात्री केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः।।— अ.१५.२.१३

२२७. स्वस्त्यद्योषसो दोषसश्च सर्व आपः सर्वगणो अशीय।।— अ.१६.३.६

२२८. अजैष्माद्यासनामाद्याभूमानागसो वयम्। उषो यस्माद् दुष्वप्न्यादभैष्माप तदुच्छतु।।— अ.१६.६.१, उषाः देवता सूक्तम्

२२९. व्युच्छन्तीरुषसः पर्वता ध्रुवाः सहस्रं प्राणा मय्या यतन्ताम्।।— अ.१७.१.३०

२३०. अन्वग्निरुषसामग्रमख्यदन्वहानि प्रथमो जातवेदाः। अनु सूर्य उषसो अनु रश्मीननु द्यावापृथिवी आ विवेश।। प्रत्यग्निरुषसामग्रमख्यत् प्रत्यहानि प्रथमो जातवेदाः। प्रति सूर्यस्य पुरुधा च रश्मीन् प्रति द्यावापृथिवी आ ततान।।— अ.१८.१.२७

२३१. वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सूरो अह्नां प्रतरीतोषसां दिवः। प्राणःसिन्धूनां कलशाँ अचिक्रददिन्द्रस्य हार्दिमाविशन् मनीषया।।— अ.१८.४.५८

२३२. उषा अपस्वसुस्तमः सं वर्तयति वर्तनिं सुजातता। अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः।।— अ.१९.१२.१

२३३. रात्रि मातरुषसे नः परि देहि। उषा नो अह्ने परि ददात्वहस्तुभ्यं विभावरि।।— अ. १९.४८.२

२३४. स्तोमस्य नो विभावरि रात्रि राजेव जोषसे। आसाम सर्ववीरा भवाम सर्ववेदसो व्युच्छन्तीरनूषसः।।— अ.१९.४९.६

२३५. उषसे नः परि देहि सर्वान् रात्र्यनागसः। उषा नो अह्ने आ भजादहस्तुभ्यं विभावरि।।— अ. १९.५०.७

२३६. उतो नो अस्या उषसो जुषेत ह्यर्कस्य बोधि हविषो हवीमभिः स्वर्षाता हवीमभिः।— अ. २०.७२.३

२३७. अतिग्राह्यषोडशिग्रहाभिधानम् : ईयुष्टे ये पूर्वतरामपश्यन्व्युच्छन्तीमुषसं मर्त्यासः। अस्माभिरू नु प्रतिचक्ष्याऽभूदो ते यन्ति ये अपरीषु पश्यान्।।— तै.सं. १.४.३३.१

२३८. प्रवत्स्यतो यजमानस्योपस्थानमन्त्राः :- या इष्टा उषसो निम्रुचश्च ताःसं दधामि हविषा घृतेन।— तै.सं.१.५.१०.२

२३९. राजसूयविषयाणामभिषेकार्थं जल-संस्कारमन्त्राणामभिधानम् : हिरण्यवर्णावुषसां विरोकेऽयःस्थूणावुदितौ सूर्यस्याऽऽरोहतं वरुण मित्र गर्तं ततश्चक्षाथामदितिं दितिं च।।— तै.सं.१.८.१२.३

२४०. काम्ययाज्यापुरोनुवाक्याभिधानम् : सुवर्ण शुक्रमुषसो दिद्युतुः।— तै.सं.२.२.१२.६

२४१. याज्यानुवाक्याभिधानम् : नवोनवो भवति जायमानोऽह्नां केतरुषसामेत्यग्रे। भागं देवेभ्यो वि दधात्यायन्प्र चन्द्रमास्तिरति दीर्घमायुः।— तै.सं.२.४.१४.१

२४२. काम्येष्टि याज्या/पुनराधेयप्रकरणम् : स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ।— तै.सं.२.५.१२.३

२४३. प्रयाज विधिः :- समिधो यजति वसन्तमेवर्तूनामव रुन्धे----समिधो यजत्युषस एव देवतानामव रुन्धे-- — तै.सं.२.६.१०.१

२४४. कारीरी इष्टि में आहवनीय पर धूम का अनुमन्त्रण : हिरण्यकेशो रजसो विसारेऽहिर्धुनिर्वात इव ध्रजीमान्। शुचिभ्राजा उषसः नवेदा यशस्वतीरपस्ययुवो न सत्याः।— तै.सं.३.१.११.४

२४५. त्रैधातवीयेष्टि मध्ये स्विष्टकृतः पुरोनुवाक्यारूपा संयाज्या : त्रीण्यायूँषि तव जातवेदस्तिस्र आजानीरुषसस्ते अग्ने।— तै.सं. ३.२.११.२

२४६. मृदाक्रान्त्याभिधानम्/वल्मीकवपाया प्रक्रमणम् : अन्वग्निरुषसामग्रमख्यदन्वहानि प्रथमो जातवेदाः अनु सूर्यस्य पुरुत्रा च रश्मीननु द्यावापृथिवी आ ततान।।— तै.सं.४.१.२.२

२४७. अग्निधारणाभिधानम्/कृष्णाजिनप्रतिमोकं : नक्तोषासा समनसा विरूपे धापयेते शिशुमेकँ समीची। द्यावा क्षामा रुक्मः अन्तर्वि भाति देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाः।— तै.सं.४.१.१०.४

२४८. आसन्द्यामुखाग्निस्थापनम् : अग्रे बृहन्नुषसामूर्ध्वो अस्थान्निर्जग्मिवान्तमसो ज्योतिषाऽगात्।— तै.सं.४.२.१.४

२४९. कूर्मेष्टकोपधानम् : मधु नक्तमुतोषसि मधुमत्पार्थिवँ रजः। मधु द्यौरस्तु नः पिता।— तै.सं.४.२.९.३

२५०. व्युष्टिनामकेष्टकाभिधानम् : इयमेव सा या प्रथमा व्यौच्छदन्तरस्यां चरति प्रविष्टा।— तै.सं.४.३.११.१

२५१. छन्दोभिधेष्टकाभिधानम् : अबोध्यग्निः समिधा जनानाम् प्रति धेनुमिवाऽऽयतीमुषासम्। यह्वा इव प्र वयामुज्जिहाना प्र भानवः सिस्रते नाकमच्छ।— तै.सं.४.४.४.२

२५२. मण्डूकिअग्नेः विकर्षणाभिधानम् : पावक आ चितयन्त्या कृपा। क्षामन्रुरुच उषसो न भानुना।— तै.सं.४.६.१.२

२५३. मृत्खननगमनपूर्वकमश्वेन भूम्याक्रमणम् : अन्वग्निरुषसामग्रमख्यदित्याहानुख्यात्यै— तै.सं. ५.१.२.५

२५४. आसन्द्यां वह्निस्थापनं : अग्रे बृहन्नुषसामूर्ध्वो अस्थादित्याहाग्रमेवैनँ समानानां कराति— तै.सं.५.२.१.५

२५५. दर्भस्तम्बे होमाभिधानम् : सजूरब्दोऽयावभिः सजूरुषा अरुणीभिःसजूःसूर्य एतशेन-- — तै.सं.५.६.४.१

२५६. अश्वमेधगतमन्त्रकथनम् :--- -उषसे स्वाहा व्युष्ट्यै स्वाहोदेष्यते स्वाहोद्यते स्वाहा---- तै.सं.७.२.२०.१

२५७. अश्वमेधे रथे ध्वजमुपगूहनम् : केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे। समुषद्भिरजायथा:।— तै.सं.७.४.२०.१

२५८. यो वा अश्वस्य मेध्यस्य शिरो वेद शीर्षण्वान्मेध्यो भवत्युषा वा अश्वस्य मेध्यस्य शिर: सूर्यश्चक्षुर्वात:प्राण:-- — तै.सं.७.५.२५.१

२५९. ब्रह्मण: प्राशित्र हरणम् : प्रजापतिर्ह वै स्वां दुहितरमभिदध्यौ-दिवं वा, उषसं वा मिथुन्येनया स्यामिति। तां संबभूव। तद्वै देवानामाग आस-य इत्थं स्वां दुहितरमस्माकं स्वसारं करोतीति।— श.ब्रा.१.७.४.१

२६०. अग्निहोत्रे होमविधि: :- अथ प्रात: सजूर्देवेन सवित्रा इति, तत् सवितृमत्प्रसवाय। सजूरुषसेन्द्रवत्या इति, अह्ना-इति वा। तद् अह्ना वोषसा वा मिथुनं करोति।— श.ब्रा.२.३.१.३८

२६१. अथ बाहूऽउद्गृह्णाति-हिरण्यरूपाऽउषसो विरोकऽउभाविन्द्राऽउदिथ:-सूर्यश्च। आरोहतं वरुण, मित्र गर्तम्, ततश्चाक्षाथाम् अदितिम्, दितिं च इति। बाहू वै मित्रावरुणौ, पुरुषो गर्त।-— श.ब्रा.५.४.१.१५

२६२.-भूतानां पतिर्गृहपतिरासीत्, उषा पत्नी:। तद् यानि तानि भूतानि -ऋतवस्ते। अथ य: स भूतानां पति:-सम्वत्सर: स:। अथ या सोषा:पत्नी-औषसी सा। तानीमानि भूतानि च, भूतानां च पति:सम्वत्सरऽउषसि रेतोऽसिञ्चन्। स संवत्सरे कुमारोऽजायत। सोऽरोददीत्।— श.ब्रा. ६.१.३.८

२६३. उखा सम्भरणे मृत्खननम् : अन्वग्निरुषसामग्रमख्यत् इति। तदेनमुष:स्वैच्छन्। अन्वहानि प्रथमो जातवेदा इति। तदेनमह:स्वैच्छन्।— श.ब्रा.६.३.३.६

२६४. अथैनम् (अग्निम्) इण्ड्वाभ्यां परिगृह्णाति। नक्तोषासा समनसा विरूपे इति। अहोरात्रे वै नक्तोषासा समनसा विरूपे। धापयेते शिशुमेकं समीची इति। यद्वै किञ्चाहोरात्रयो:-तेनैतमेव समीची धापयेते।-— श.ब्रा.६.७.२.३

२६५. वि नाकमख्यत् सविता वरेण्य:-इति। स्वर्गो वै लोको नाक:। तमेष उद्यन्नेवानुविपश्यति। अनु प्रयाणमुषसो विराजति -इति। उषा वा अग्रे व्युच्छति। तस्या ऽएष व्युष्टिं विराजन्ननूदेति।— श.ब्रा.६.७.२.४

२६६. अग्रे बृहन्नुषसामूर्ध्वोऽअस्थात्-इति। अग्रे ह्येष (अग्नि:) बृहन् उषसामूर्ध्वस्तिष्ठति। निर्ज्जगन्वान्तमसो ज्योतिषाऽऽगात्-इति।— श.ब्रा. ६.७.३.१०

२६७. सजूरब्द: -इति चिति:। अयवोभि:-इति पुरीषम्। सजूरुषा:-इति चिति:। अरुणीभि:-इति पुरीषम्।— श.ब्रा.७.२.३.८

२६८. आहवनीयाग्निचित्यायां पञ्चचितिकायां प्रथमा चिति: :- संवत्सरोऽसि, परिवत्सरोऽसि, इदावत्सरोऽसि, इद्वत्सरोऽसि, वत्सरोऽसि। उषसस्ते कल्पन्ताम्। अहोरात्रास्ते कल्पन्ताम्।— श.ब्रा. ८.१.४.८

२६९. अश्वावयवेषु विराडवयवोपासनं ब्राह्मणम् : उषा वा अश्वस्य मेध्यस्य शिर:, सूर्यश्चक्षु:, वात: प्राण:, व्यात्तमग्निर्वैश्वानर:।— श.ब्रा.१०.६.४.१

२७०. इममूषु वो अतिथिमुषर्बुधम्-इति। नवर्चं जातवेदसीयं शस्त्वा ऐकाहिके निविदं दधाति।— श.ब्रा.१३.५.१.१२

२७१. उषस्तब्राह्मणं वा निर्गुणात्मविद्या-ब्राह्मणम् : अथ हैनमुषस्तश्चाक्रायण: पप्रच्छ। याज्ञवल्क्येति होवाच। यत्साक्षादपरोक्षाद्ब्रह्म। य आत्मा सर्वांतर:। तं मे व्याचक्ष्वेति।— श.ब्रा.१४.६.५.१

२७२. श्रायन्तीयं साम (साम२६७):- प्रजापतिरुषसमध्यैत् स्वां दुहितरं तस्य रेत:परापतत्तदस्यांन्यषिच्यत तदश्रीणादिदं मे मादुषदिति तत्सदकरोत्पशूनेव। यच्छ्रायन्तीयं ब्रह्मसाम भवति श्रीणाति चैवैनँ सच्च कराति।— तां.ब्रा.८.२.१०, जै.ब्रा.३.२६२

२७३. सन्धिस्तोत्रेणस्तोतुं मध्ये व्युष्टि हेतु प्रायश्चित्तम् : अग्ने विवस्वदुषस इति सन्धिना स्तुयु: प्राणा वै

त्रिवृत् स्तोमानां प्रतिष्ठा रथन्तरँ साम्नां प्राणाँश्चैवोपयन्ति प्रतिष्ठाञ्च।— तां.ब्रा.९.३.४

२७४. अग्नेश्चिकित्त उषसामिवेतय इति (ऋ. १०.९१.५, साम ९८२) एतानीव ह्येतर्ह्यहानीत्याते यतन्ते रथ्यो यथा पृथगित्येव ह्येतर्ह्यहानि यतन्ते।— तां.ब्रा. १३.२.३

२७५. प्रातःसवने सन्धिस्तोत्रस्य प्रशंसा : पराच्योवा अन्या व्युछन्ति प्रतीच्योऽन्या एषा वाव प्रतीची व्युछति याश्विनेन व्युछति प्रतीचीरेवास्मा उषसाविवासयति।— तां.ब्रा.२०.१.४

२७६. वाग्वै त्रिरात्रो वाचो रूपेणाज्यानि चाहानि च विभज्यन्त एकाक्षरा वै वाक् त्र्यक्षरमक्षरमक्षरस्य रूपेण विभज्यन्ते त्रयो गन्धर्वास्तेषामेषा भक्तिरग्नेः पृथिवी वायोरन्तरिक्षमसावादित्यस्य द्यौस्त्रयोघर्मास उषसँ सचन्ते। अग्निरुषसँ सचते वायुरुषसँ सचतेऽसावादित्य उषसँ सचते। त्रीणि मिथुनानि तान्येष।— तां.ब्रा.२०.१५.२

२७७. तदभ्ययनूक्ता तानीदहानि बहुलान्यासन्या प्राचीनमुदिता सूर्य्यस्य यतः परिजार इवाचरन्त्यूषा ददृशे न पुनर्य्यतीवेति।— तां.ब्रा.२५.८.४

२७८. यद् वेव मैत्रावरुणानि शंसति-प्रति वां सूर उदिते विधेम नमोभिर्मित्रावरुणोत हव्यै। उत वामुषसो बुधि साकं सूर्यस्य रश्मिभि इत्यृचाभ्यनूक्तम्।— गोपथ ब्रा.२.३.१३

२७९. अभिष्टवार्थं पठनीय सूक्तम् : आभात्यग्निरुषसामनीकमिति सूक्तम्।— ऐ.ब्रा. १.२१

२८०. यज्ञे पत्नीमीक्षणाय ऋचा : अरूरुचदुषसः पृश्निरग्रिय इति रुचितवती रुचमेवास्मिंस्तद्दधाति।— ऐ.ब्रा.१.२१

२८१. आप्रीसूक्तम् : उषासानक्ता यजत्यहोरात्रे वा उषासानक्ताऽहोरात्रे एव तत्प्रीणात्यहोरात्रयोर्य-जमानं दधाति इति।— ऐ.ब्रा.२.४

२८२. देवेभ्यः प्रातर्यावभ्यो होतरनु-ब्रूहीत्याहाध्वर्युः। एते वाव देवा प्रातर्यावाणो यदग्निरुषा अश्विनौ त एते सप्तभिः सप्तभिश्छन्दोभिरागच्छन्ति।— ऐ.ब्रा.२.१५

२८३. सप्ताऽऽग्नेयानि च्छन्दांस्यन्वाह सप्त वै देवलोकः।-- सप्तोषस्यानि च्छन्दांस्यन्वाह सप्त वै ग्राम्याःपशवः।---सप्ताऽऽश्विनानि च्छन्दांस्यन्वाह सप्तधा वै वागवदत्तावद्वै वागवदत्सर्वस्यै वाचः सर्वस्य ब्रह्मणः परिगृहीत्यै।— ऐ.ब्रा.२.१७

२८४. प्रातरनुवाकस्य समाप्तिम् ऋचा : अभूदुषा रुशत्पशुरित्युत्तमया परिदधाति। तदाहुर्यत्त्रीन्क्रतूनन्वाहाऽऽग्नेयमुषस्यमाश्विनं कथ-मस्यैकयर्चा परिदधतः सर्वे त्रयः क्रतवः परिहिता भवन्ती।— ऐ.ब्रा.२.१८

२८५. अग्निमारुत शस्त्र हेतु उपाख्यानम् : प्रजापतिर्वै स्वां दुहितरमभ्यध्यायद्दिवमित्यन्य आहुरुषसमित्यन्ये तामृश्यो भूत्वा रोहितं भूतामभ्यैत्तं देवा अपश्यन्नकृतं वै प्रजापतिः करोतीति ते तमैच्छन्य एनमारिष्यत्येतमन्योन्यस्मिन्नाविदंस्तेषां या एव घोरतमास्तन्व आसंस्ता एकधा समभरंस्ता संभूता एष देवोऽभवत्तदस्यैतद्भूतवन्नाम।---या रोहित्सा रोहिणी-— ऐ.ब्रा.३.३३

२८६. उत्तराणि चत्वारि हवींषि : दिवे चरुं या द्यौः साऽनुमति सो एव गायत्र्युषसे चरुं योषाः सा राका सो एव त्रिष्टुब्भावे चरुं या गौः सा सिनीवाली सो एव जगती पृथिव्यै चरुं या पृथिवी सा कुहूः सो एवानुष्टुप्।-— ऐ.ब्रा.३.४८

२८७. तासां वै देवतानामाजिं धावन्तीनामधिसृष्टानामग्निर्मुखं प्रथमःप्रत्यपद्यत तमश्विनावन्वागच्छतां-----ता उषसमन्वागच्छतां तामब्रूतामपोदित्यावां वा इदं जेष्याव इति सा तथेत्यब्रवीत्तस्यै वै ममेहाप्यस्त्विति तथेति तस्या अप्यत्राकुरुतां तस्मादुषस्यमाश्विने शस्यते।— द्र.सायण भाष्य— ऐ.ब्रा.४.८

२८८. अश्वतरीरथेनाग्निराजिमधावत्तासां प्राजमानो योनिमकूलयत्तस्मात्ता न विजायन्ते। गोभिरुणैरुषा आजिमधावत्तस्मादुषस्यागताया-मरुणमिवैव प्रभात्युषसो रूपम्।— ऐ.ब्रा.४.९

२८९. इममू षु वो अतिथिमुषर्बुधमिति पञ्चमस्याह्न आज्यं भवति जागतमध्यासवत्पशुरूपं पञ्चमेऽहनि पञ्चमस्याह्नो रूपम्।— ऐ.ब्रा.५.६

२९०. प्रउग शस्त्र :-उच्छन्नुषसः सुदिना अरिप्रा-— ऐ.ब्रा.५.१८

२९१. यस्य सर्व एवाग्नयो मिथः संसृज्येरन्का तत्र प्रायश्चित्तिरिति सोऽग्नये विविचयेऽष्टाकपालं पुरोळाशं निर्वपेत्तस्य याज्यानुवाक्ये स्वर्णवस्तोरुषसामरोचि-- इत्याहुतिं वाऽऽहवनीये जुहुयादग्नये विविचये स्वाहेति सा तत्र प्रायश्चित्तिः।— ऐ.ब्रा.७.७

२९२. शुनःशेप के यज्ञीय पाशों से मुक्त होने का आख्यान : तमश्विना ऊचतुरुषसं नु स्तुह्यथ त्वोत्स्रक्ष्याम इति स उषसं तुष्टावात उत्तरेण तृचेन (कस्त उषः, ऋ. १.३०.२०)— ऐ.ब्रा. ७.१७

२९३. -- उषसः श्रेयसीः श्रेयसीर्दधत्।— तै.ब्रा. १.२.१.२०

२९४. गवामयनशेष विधिः। अग्निप्रणयन काले गमनार्थाय मन्त्राः :---अन्वग्नि-रुषसामग्रमख्यत्। अन्वहानि प्रथमो जातवेदाः। अनु सूर्यस्य पुरुत्रा च रश्मीन्। अनु द्यावापृथिवी आततान।— तै.ब्रा.१.२.१.२३

२९५. पराची वा एतस्मै व्युच्छन्ती व्युच्छति। यस्याग्निमनुद्धृतँ सूर्योऽभ्युदेति। उषाः केतुना जुषताम्।-- ---प्रतीचीमेवास्मै विवासयति।— तै.ब्रा. १.४.४.५

२९६. राजसूयानुब्राह्मणम्। जल संस्कारः :- हिरण्यवर्णावुषसां विरोक इति त्रिष्टुभा बाहू उद्गृह्णाति। इन्द्रियं वै वीर्यं त्रिष्टुक्। इन्द्रियमेव वीर्यमुपरिष्टादात्मन्धत्ते।।— तै.ब्रा.१.७.६.८

२९७. अग्निहोत्रे अनुदितहोमपक्षः ---- - तस्माद्यदौषसं जुहोति। तदेव संप्रति। अथो यथा प्रार्थमौषसं परिवेवेष्टि। तादृगेव तत्। (द्र.सायण भाष्य)— तै.ब्रा.२.१.२.१२

२९८. उपहोमशेषाभिधानम्। आग्नेय कर्मणि विनियोक्तव्यो मन्त्रः :- यो देह्यो अनमयद्वधस्नैः। यो अर्यपत्नीरुषसश्चकार। स निरुध्या नहुषो यह्वो अग्निः। विशश्चक्रे बलिहृतः सहोभिः।।— तै.ब्रा.२.४.७.९

२९९. उपहोमशेषाभिधानम्। उषोदेवताके कर्मणि विनियोक्तव्यो मन्त्रः :- इमा एव ता उषसो याः प्रथमा व्यौच्छन्। ता देव्यः कुर्वते पञ्च रूपा। शश्वतीर्नावपृज्यन्ति। न गमन्त्यन्तम्।— तै.ब्रा. २.५.६.५

३००. कौकिल सौत्रामण्यां अवभृथे जल उपस्थान मन्त्रः :- समाववर्ति पृथिवी। समुषाः। समु सूर्यः। समु विश्वमिदं जगत्। वैश्वानर ज्योतिर्भूयासम्। विभुं कामं व्यश्नवै।— तै.ब्रा.२.६.६.५

३०१. प्रयाजानामेकादश पुरोरुचानाम् प्रथमा ऋचः :- समिद्ध इन्द्र उषसामनीके। पुरोरुचा पूर्वकृद्वावृधानः। त्रिभिर्देवैस्त्रिँशता वज्रबाहुः। जघान वृत्रं वि दुरो ववार।— तै.ब्रा.२.६.८.१

३०२. षष्ठम् प्रयाज देवः :- उषासा नक्ता बृहती बृहन्तम्। पयस्वती सुदुघे शूरमिन्द्रम्। पेशस्वती तन्तुना संव्ययन्ती। देवानां देवं यजतः सुरुक्मे।— तै.ब्रा.२.६.८.३

३०३. कौकिल सौत्रामण्यां पशुत्रये प्रयाजार्थं मैत्रावरुण प्रैषः :- होता यक्षत्सुपेशसोषे नक्तंदिवा। अश्विना संजानाने। समञ्जाते सरस्वत्या। त्विषिमिन्द्रे न भेषजम्। श्येनो न रजसा हृदा। पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु। वियन्त्वाज्यस्य होतर्यज।— तै.ब्रा.२.६.११.५

३०४. कौकिल सौत्रामण्यां सप्तम् प्रयाज याज्या :- उषासा नक्तमश्विना। दिवेन्द्रँ सायमिन्द्रियैः। संजानाने सुपेशसा। समञ्जाते सरस्वत्या।— तै.ब्रा.२.६.१२.३

३०५. कौकिल सौत्रामण्यां अनुयाजानां तृतीय मैत्रावरुण प्रैषः :- देवी उषासावश्विना। भिषजेन्द्रे सरस्वती। बलं न वाचमास्ये। उषाभ्यां दधुरिन्द्रियम्। वसुवने वसुधेयस्य वियन्तु यज।— तै.ब्रा.२.६.१४.२

३०६. कौकिल सौत्रामण्यां षष्ठम् प्रयाज देवः :- उषे यह्वी सुपेशसा। विश्वे देवा अमर्त्यः। त्रिष्टुप्छन्द इन्द्रियम्। पष्ठवाड्गौर्वयो दधुः।— तै.ब्रा.२.६.१८.३

३०७. कौकिल सौत्रामण्यां अनुयाजानां तृतीय मैत्रावरुण प्रैषः :- देवी देवं वयोधसम्। उषे इन्द्रमवर्धताम्। अनुष्टुभा छन्दसेन्द्रियम्। वाचमिन्द्रे वयो दधत्। वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज।— तै.ब्रा.२.६.२०.२

३०८. अग्निष्टुद् ऋतुः :- त्वे अग्ने सुमतिं भिक्षमाणाः। दिवि श्रवो दधिरे यज्ञियासः। नक्ता च चक्रुरुषसा विरूपे। कृष्णं च वर्णमरुणं च संधुः।— तै.ब्रा.२.७.१२.५

३०९. इन्द्रस्तुद्यागः, ऐन्द्राग्नस्य पुरोरुक् : महि क्षेत्रं पुरुश्चन्द्रं विविद्वान्। आदित्सखिभ्यश्च रथँ समैरत्। इन्द्रो नृभिरजनद्दीद्यानः साकम्। सूर्यमुषसं गातुमग्निम्।— तै.ब्रा.२.७.१३.३

३१०. पशोः सूक्ते वपायाः पुरोनुवाक्या : सूर्यो देवीमुषसँ रोचमाना मर्यः। न योषामभ्येति पश्चात्। यत्रा नरो देवयन्तो युगानि। वितन्वते प्रति भद्राय भद्रम्।— तै.ब्रा.२.८.७.१

३११. पशोः सूक्ते हविषः पुरोनुवाक्या : योह स्य वाँ रथिरा वस्त उस्राः। रथो युजानः परियाति वर्तिः। तेन नः शं योरुषसो व्युष्टौ। न्यश्विना वहतं यज्ञे अस्मिन्।— तै.ब्रा.२.८.७.८

३१२. पशोर्हविषो याज्याः, उपहोमे प्रथम ऋचा : आ गावो अग्मन्नुत भद्रमक्रन्। सीदन्तु गोष्ठे रणयन्त्वस्मे। प्रजावतीः पुरुरूपा इह स्युः। इन्द्राय पूर्वीरुषसो दुहानाः।— तै.ब्रा.२.८.८.११

३१३. पशोर् हविषो याज्या : समध्वरायोषसो नमन्त। दधिक्रावेव शुचये पदाय। अर्वाचीनं वसुविदं भगं नः। रथमिवाश्वा वाजिन आवहन्तु।। अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासः। वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्राः। घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीनाः। यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः।— तै.ब्रा.२.८.९.९

३१४. उषोदेवताके यागे पुरोनुवाक्या : प्रत्युवदृश्यायती। व्युच्छन्ती दुहिता दिवः। अपो मही वृणुते चक्षुषा। तमो ज्योतिष्कृणोति सूनरी। उदुस्रियाःसचते सूर्यः। सचा उद्यन्नक्षत्रमर्चिमत्। तवेदुषो व्युषि सूर्यस्य च।— तै.ब्रा.३.१.३.१

३१५. उषोदेवताया इष्टिः :- उषा वा अकामयत। प्रियाऽऽदित्यस्य सुभगा स्यामिति। सैतमुषसे चरुं निरवपत्। ततो वै सा प्रियाऽऽदित्यस्य सुभगाऽभवत्। प्रियो ह वै समानानाँ सुभगो भवति। य एतेन हविषा यजते। य उ चैनदेवं वेद। सोऽत्र जुहोति। उषसे स्वाहा व्युष्ट्यै स्वाहा। व्यूषुष्यै स्वाहा व्युच्छन्त्यै स्वाहा। व्युष्टायै स्वाहेति।— तै.ब्रा.३.१.६.३

३१६. पाशुकहोत्रे प्रयाज विषये मैत्रावरुण प्रैषाः, षष्ठम् मन्त्रः :- होता यक्षदुषासानक्ता बृहती सुपेशसा नृँःपतिभ्यो योनिं कृण्वाने। सँस्मयमाने इन्द्रेण देवैरेदं बर्हिः सीदतां वीतामाज्यस्य होतर्यज।— तै.ब्रा.३.६.२.

३१७. दर्शपूर्ण मासे आदित्योपस्थान मन्त्राः :- यो नः शपादशपतः। यश्च नः शपतः शपात्। उषाश्च तस्मै निम्रुक्च। सर्वं पापँ समूहताम्।— तै.ब्रा.३.७.६.२३

३१८. उषसे स्वाहा व्युष्ट्यै स्वाहेत्याह। रात्रिर्वा उषाः। अहर्व्युष्टिः। अहोरात्रे एवावरुन्धे। अथो अहोरात्रयोरेव प्रतितिष्ठति। ता यदुभयीर्दिवा वा नक्तं वा जुहुयात्। अहोरात्रे मोहयेत्। उषसे स्वाहा व्युष्ट्यै स्वाहोदेष्यते स्वाहोद्यते स्वाहेत्यनुदिते जुहोति। उदिताय स्वाहा सुवर्गाय स्वाहा लोकाय स्वाहेत्युदिते जुहोति। अहोरात्रयोरव्यतिमोहाय।— तै.ब्रा.३.८.१६.४

३१९. सर्वान्ते होमं : उषसे स्वाहा व्युष्ट्यै स्वाहेत्यन्ततो जुहोति। सुवर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै।— तै.ब्रा. ३.८.१८.६

३२०. विश्वप्री नामक होममन्त्राः :— उषसमुषसमशीय अहमसो ज्योतिरशीय— तै.ब्रा. ३.११.५.३

३२१. अरूरुचद् उषसः पृश्निर् अग्रयुः इति प्रजाकामस्य।— जै.ब्रा.१.८१

३२२. असुरों से जीते हुए धन के परस्पर विभाजन के लिए देवों में आजि/दौड। अग्नेः प्रथमो रथ आसीद् अथोषसो ऽथाश्विनोः। अश्विनौ द्वारा अग्नि और उषा से समझौता करके उन्हें यज्ञ में भाग देने का वर्णन।— जै.ब्रा.१.२१०

३२३. अथैष राथन्तरस् संधिर् भवति। प्रजापतिर् उषसं स्वां दुहितरं बृहस्पतये प्रायच्छत्। तस्या एतत् सहस्रम् आश्विनं वहतुम् अन्वाकरोत्।---- -देवों में धन के विभाजन के लिए आजि। अग्ने: प्रथमो रथ आसीद् अथोषसो ऽथाश्विनो:। ---- अश्विनौ द्वारा अग्नि व उषा से समझौता करके उन्हें यज्ञ में भाग देने का वर्णन।— जै.ब्रा.१.२१३

३२४.--अग्ने विवस्वद् उषस: इत्य् एतस्मिंस् तृचे राथन्तरं संधिम् अस्तोष्यत्। अग्ने इति तेनाग्नेयाद् रूपान् नैष्यत्। उषस: इत्य् उषस्यात् सजूर् अश्विभ्याम् इत्य् आश्विनात्। नास्योन्मदिष्णु: प्रजाभविष्यद् ब्रह्मवर्चसिनी त्व् एवाभविष्यद् इत्य् उत हैनम् उवाच।— जै.ब्रा.१.३४९

३२५.-----एते ह वाव द्वादश देवलोका:। अथ यथोषसो वा यद् वैवम् एवान्ये लोका:।— जै.ब्रा.२.६

३२६. -त्रयो घर्मास उषसं सचन्त इत्य् अग्निर् उषसं सचते, वायुर् उषसं सचत, आदित्य उषसं सचते। सर्वाँ इत् ताँ अनु विदुर् वसिष्ठा इति ये वै ब्राह्मणाश् शुश्रुवांसस् ते वसिष्ठास्, ते ह्य् एतत् सर्वं अनु विदु:।— जै.ब्रा.२.२४१-२४२

३२७. त्वया वयं प्रवत: शश्वतीर् अपो अति शूर तरामसि इत्य् एता ह वै प्रवत: शश्वतीर् आपो यत् संवत्सर ऋतवो मासा अर्धमासा अहोरात्राण्य् उषस:। ता एवैतेनातितरन्ति। — जै.ब्रा.२.३९१

३२८. अरूरुचद् उषस: पृश्निर् अग्रिय उक्षा मिमाति भुवनेषु वाजयु:।-- -इति पुनर् एवैतत् तृतीये ऽहनि गर्भम् आदधति चतुर्थस्यैवाह्न: प्रजात्यै। — जै.ब्रा.३.५४

३२९. पवस्व विश्वचर्षण आ मही रोदसी पृणा। उषास् सूर्यो न रश्मिभि:।।— इति सूर्यवतीर् भवन्ति। सौर्यं ह्य् एतद् अहर् एकविंशं प्रतिष्ठा वैराजम्।— जै.ब्रा.३.६०

३३०. अग्न इति पुंस, उषसाम् इवेति स्त्रियै।— जै.ब्रा.३.८७

३३१.तासु श्रायन्तीयम् (साम २६७, ऋ. ८.९९.३)।----प्रजापतिर् होषसं स्वां दुहितरम् अभ्यध्यायत्। सास्मै रोहिद् भूत्वातिष्ठत्। तां पृषतो भूत्वास्कन्दत्। स ऐक्षतास्मै वै मां देवा अजीजनन्न् औपद्रष्ट्र्याय। रुद्र द्वारा प्रजापति को इषु से विद्ध करने आदि का वर्णन।— जै.ब्रा.३.२६२

३३२. तस्योषस्येव पत्नी चन्द्रमास् सोमपीथ:। तस्मात् सपत्नीको दीक्षेत। सा हैषा देवता दीक्षमाणस्य तेज इन्द्रियं वीर्यं यश आदत्ते।— जै.ब्रा. ३.३५९

३३३. अहम् अरात्सम् ओषम् इति यद् अहम् इति तान्य् अहान्य् अभवन्। यद् अरात्सम् इति ता रात्रयो, यद् ओषम् इति ता उषस:।— जै.ब्रा.३.३८०

३३४. एष ह वाव स देवानाम् अधिदेवो य एष तपति। तस्यैतत् सहस्रस्थूणं विमितं दृढम् उग्रम् यत् संवत्सर ऋतवो मासा अर्धमासा अहोरात्राण्य् उषस:। स य एवम् एतत् सर्वं द्वादशाहम् आत्मानम् अभि संपद्यमानं वेद सर्व एनं कामा अभि संपद्यन्ते।— जै.ब्रा.३.३८५

३३५. चत्वारो होमकाला: :- उषस्युपोदयं समयाविषित उदिते वा प्रात:।— आप.श्रौ.सू.६.४.९

३३६. यदि महारात्रे पुनरेवौषसं हुत्वैतयैवोपतिष्ठेत।— आप.श्रौ.सू.९.१०.८

३३७. यदक्रन्द: प्रथमं जायमान इत्यश्वस्तोमीयं हुत्वैकस्मै स्वाहेत्येताननुवाकान्पुन:पुनरभ्यासं रात्रिशेषं हुत्वोषसे स्वाहेत्युषसि। व्युच्छन्त्यै स्वाहेति व्युच्छन्त्याम्। व्युष्ट्यै स्वाहेति व्युष्टायाम्।— आप.श्रौ.सू. २०.१२.१०

३३८. अग्निहोत्रम्। (सायंहोममन्त्रेषु) अग्निशब्दे सूर्य:। रात्र्युषसाऽह्नेति वा। ज्योति: सूर्य इति वा प्रात:।— कात्या.श्रौ.सू.४.१५.८

३३९. अथ यत्रैतदौषसी नोदेति तत्र जुहुयात्। उदेतु श्रीरुषस: कल्पयन्ती पूल्यान्कृत्वा पलित एतु चार:। ऋतून्बिभ्रती बहुधा विरूपान्मह्यं भव्यं विदुषी कल्पयाति।। औषस्यै स्वाहति हुत्वा।— कौशिकसूत्रं १०१.१

३४०. चातुर्मास्यान्तर्गत वैश्वदेवपर्व। प्रयाजाः :- उषासानक्ता अग्न आज्यस्य वीताम्।------ नवानुयाजाः। देवी उषासानक्ता वसुवने वसुधेयस्य वीताम्। -शां.श्रौ.सू.३.१३.२०

३४१. ज्योतिष्टोमे प्रातरनुवाकः। अथोषस्यम् क्रतुम्। गायत्रम्। कस्त उष इति तिस्रः। प्रति ष्या सूनरी। अथानुष्टुभम्। उषो भद्रेभिः। अथ त्रैष्टुभम्।— शां.श्रौ.सू.६.५.१

३४२. अभिप्लवषळह प्रकरणम् : इन्द्र दृह्यति वैश्वदेवं षष्ठस्याह्नो द्वितीयेऽभिप्लवे। उषासानक्तेति तृतीये।— शां.श्रौ.सू.११.९.९

३४३. विषुवत् प्रकरणम् : देवान्हुव इति द्वितीये। उषासानक्तेति तृतीये।— शां.श्रौ.सू. ११.१२.१६

३४४. एकाह प्रकरणम् : इममू षु वो अतिथिमुषर्बुधमिति चतस्रो देवानांपत्नीनां राकायाश्च।— शां.श्रौ.सू. १४.५७.९

३४५. राजसूय प्रकरणम्। शुनःशेपस्य बन्धनात् मुक्तिः।---तमश्विना ऊचतुः। उषसं नु स्तुह्यथ त्वोत्स्रक्ष्याव इति। स उषसं तुष्टावात उत्तरेणैव तृचेन। तस्य ह स्मर्च्यृच्युक्तायां नितरां पाशो मुमुचे।— शां.श्रौ.सू. १५.२२.१, द्र. ऋ. ४.३.११

३४६. द्वैध सूत्राणि। राज्ञ उपस्थान इति। स ह स्माह बौधायन उषसा नामेयमोषधिर्भवति तां दूतीं कुर्वीतैष ते गायत्रो भाग इति मे सोमाय ब्रूतादेष ते त्रैष्टुभो भाग इति मे सोमाय ब्रूतादेष-— बौधा.श्रौ.सू. २१.१२

३४७. प्रायश्चित्तानि। स यद्यनस्तमिते जुहुयात्पुनरेवास्तमिते जुहुयादथ यदि महारात्रे जुहुयात्पुनरेवौषसं जुहुयादिति।— बौधा.श्रौ.सू. २४.३१

३४८. दश रात्रादूर्ध्वं प्रवासं कृत्वा।---या इष्टा उषसो या अनिष्टास्ताःसंतनोमि हविषा घृतेन स्वाहेति। — आश्व.श्रौ.सू.२.५.१४

३४९. नव प्रयाजाः।----उषासा नक्ताग्न आज्यस्य वीतां- ---। नवानुयाजाः---- देवी उषासानक्ता वसुवने वसुधेयस्य वीताम्।— आश्व.श्रौ.सू. २.१६.९

३५०. यद्याहवनीयमप्रणीतमभ्यस्तमियात्।----- अथैतदाज्यं जुहुयात्पुरस्तात्प्रत्यङ्मुख उपविश्योषाः केतुना जुषतां स्वाहेति।— आश्व.श्रौ.सू. ३.१२.१८

३५१. उदग्ने शुचयस्तवाग्ने बृहन्नुषसामूर्ध्वो अस्थादिति।— आश्व.श्रौ.सू.३.१२.२९

३५२. आग्नेय क्रतुः।---प्रत्यग्निरुषस इति त्रीणि।— आश्व.श्रौ.सू.४.१३.७

३५३. --- -कतरा पूर्वोषासानक्तेति वैश्वदेवं— आश्व.श्रौ.सू.७.७.८

३५४. पृष्ठ्यः षडह। पञ्चमस्येममूषु वो अतिथिमुषर्बुधमिति नवाऽऽज्यम्।— आश्व.श्रौ.सू. ७.१२.६

३५५. दशमेऽहनि। अनुष्टुभां स्थानेऽग्निं नरो दीधितिभिररण्योरिति तृचमाग्नेये क्रतौ। उषा अपस्वसुस्तम इति पच्छो द्विपदां त्रिरुषस्ये।— आश्व.श्रौ.सू. ८.१२.३

३५६.-उषासानक्ता--- -इति निपातभाञ्जि।— अथर्व परि. ४८.१३३

३५७.-उषा।--इति संस्तविकास्तस्यैकवद्-बहुवत्स्त्रीवच्च।— अथर्व परि.४८.१३९

३५८. सूर्यस्य त्रयः पत्नयः :- वृषाकपायी सूर्योषाः सूर्यस्यैव तु पत्नयः।।अमुतोऽर्वाङ् निवर्तन्ते प्रतिलोमास्तदाश्रयाः। पुरोदयात्तामुषसं सूर्यां मध्यंदिने स्थिते।। वृषाकपायीं सूर्यस्य तामेवाहुस्तु निम्रुचि।— बृहद्देवता २.८

## उष्ट्र

१. प्र हि त्वा पूषन्नजिरं न यामनि स्तोमेभिः कृण्व ऋणवो यथा मृध उष्ट्रो न पीपरो मृधः।— ऋ. १.१३८.२

२. यथा चिच्चैद्यः कशुः शतमुष्ट्रानां ददत् सहस्रा दश गोनाम्।।— ऋ.८.५.३७

३. उदानट् ककुहो दिवमुष्ट्राञ्चतुर्युजो ददत्। श्रवसा याद्वं जनम्।।— ऋ.८.६.४८

४. षष्टिं सहस्राश्वस्यायुतासनमुष्ट्रानां विंशतिं शता। दश श्यावीनां शता दश त्र्यरुषीणां दश गवां सहस्रा।।— ऋ.८.४६.२२

५. अध यच्चारथे गणे शतमुष्ट्राँ अचिक्रदत्। अध श्वित्नेषु विंशतिं शता।।— ऋ.८.४६.३१

६. उष्टारेव फर्वरेषु श्रयेथे प्रायोगेव श्वात्र्या शासुरेथः।— ऋ.१०.१०६.२

७. उष्ट्रा यस्य प्रवाहणो वधूमन्तो द्विर्दश। वर्ष्मा रथस्य नि जिहीडते दिव ईषमाणा उपस्पृशः।।— अथर्व.२०.१२७.२

८. श्वित्र आदित्यानामुष्ट्रो घृणीवान्वार्ध्रीनसस्ते मत्या।— वा.सं.२४.३९

९. ईशानाय परस्वत आलभते----त्वष्ट्र उष्ट्रान्।— वा.सं.२४.२८

१०. अग्निचितिः :- उष्टारयोः पील्वयोरथो आबन्धनीययोः। सर्वेषां विद्म वो नाम वाहाः कीलालपेशसः।— मै.सं.२.७.१२

११.--- -सौर्य एककपाल उष्टारौ दक्षिणा सीरं वा--— काठक सं.१५.२

१२. उष्टो ऽहिस् समुष्टो ऽहिर् निवीतो ऽरसः कृतः। विषस्य ब्रह्मणाम् आसीत् ततो जीवन् न मोक्ष्यसे।।— पैप्प.सं.३.१६.५

१३. अथ यदास्य गवां मानुषमहिष्यजाश्वोष्ट्रा प्रसूयन्ते,-----तान्येतानि सर्वाणि रुद्रदेवत्यान्यद्भुतानि प्रायश्चित्तानि भवन्ति।— षड्विंश ब्रा.६.११.२

१४. वरुणस्त्वा नयतु देवि दक्षिणे पूष्ण उष्ट्रं।— तां.ब्रा.१.८.१२

१५. अथ यस्माद् दशमे ऽहनि पञ्चदशत्रयस्त्रिंशौ स्तोमौ भवतस् तस्माद् उ यौ ज्येष्ठौ पशूनां तौ युक्तौ वहतो हस्ती चोष्ट्रश् च।— जै.ब्रा. ३.१८१

१६. पुरोडाश प्रकरणम् : स यं पुरुषमालभन्त-स किम्पुरुषोऽभवत्। यावश्वं च गाञ्च तौ गौरश्च गवयश्चाभवताम्। यमविमालभन्त-स उष्ट्रोऽभवत्। यमजमालभन्त-स शरभोऽभवत्।— श.ब्रा.१.२.३.९

१७. अथावेः। इममूर्णायुम् इति।---- -त्वष्टुः प्रजानां प्रथमं जनित्रम् इति।--- -अग्ने मा हिंसीः परमे व्योमन् इति।--- -उष्ट्रमारण्यमनु ते दिशामि इति। तदस्माऽउष्ट्रमारण्यमनुदिशति। तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद इति। तेन चिन्वान आत्मानं संस्कुरुष्वेत्यतत्। उष्ट्रं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु इति। तद् उष्ट्रे च शुचं दधाति। यं च द्वेष्टि तस्मिंश्च।— श.ब्रा.७.५.२.३५

१८.--ते ऽविमालभन्त सोऽवेरालब्धादुद-क्रान्तसोऽजं प्राविशत्तस्मादजो मेध्योऽभवदथैन-मुत्क्रान्तमेधमत्यार्जन्त स उष्ट्रोऽभवत् इति।— ऐ.ब्रा.२.८

१९. अथ (अङ्गारेषु शान्तेषु) यद्भस्माऽसीत्तत्पुरुष्यं व्यसर्पद्गौरो गवय ऋश्य उष्ट्रो गर्दभ इति ये चैतेऽरुणा पशवस्ते च इति।— ऐ.ब्रा.३.३४

२०. स्वरूपानुसंधानव्यतिरिक्तान्यशास्त्राभ्यास उष्ट्रकुङ्कुमभारवद्व्यर्थः।— संन्यासोपनिषत् २.५९, नारदपरिव्राजकोपनिषत् ५

२१. उष्ट्रमारोक्ष्यन्नभिमन्त्रयते त्वाष्ट्रो ऽसि त्वष्टृदैवत्य स्वस्ति मा संपारयेति।— पार.गृ.सू. ३.१५.५

२२. अग्न्याधेयम् :-उष्ट्रे मे तृष्णा-— बौधा.श्रौ.सू. २.५

२३. अग्निचयनम् : वरूत्रिं त्वष्टुर्वरुणस्य नाभिमित्यनुदुत्येमामूर्णयुं वरुणस्य मायामित्युष्ट्र-मारण्यमनु ते दिशामीति शुचमनूत्सृजति-— बौधा.श्रौ.सू. १०.३४

२४. सप्त ग्राम्याः पशवो गोअश्वमजाविकं पुरुषश्च गर्दभश्चोष्ट्रश्च सप्तमे ऽश्वतरमु हैके ब्रुवते-- — बौधा.श्रौ.सू.२४.५

२५. वैष्टपुरेया लोहितायना उष्ट्राक्षा नाडायनाः-- - वत्सा वात्स्यायना इत्येते वत्सास्तेषां पञ्चार्षेयः प्रवरो भवति-— बौधा.श्रौ.प्रवर ३

२६. धनंजयाः कारीषय आश्वतास्तुलभ्याः सैन्धवायना उष्ट्राक्षा महाक्षा इत्येते धनंजयास्तेषां त्र्यार्षेयः प्रवरो भवति-—— बौधा.श्रौ.प्रवर ३६

२७. नराशंसी ऋचाएं : उष्ट्रा यस्य प्रवाहिणो वधूमन्तो द्विर्दश। वर्ष्मा रथस्य नि जिहीळते दिव ईषमाणा उपस्पृशः।।— शाहा.श्रौ.सू. १२.१४.१

२८. गौरो गवयः शरभ उष्ट्रो मायुः किंपुरुष इत्यनुस्तरणाः।— शाङ्खा.श्रौ.सू. १६.३.१४, १६.१२.१३

२९. विश्वेभ्यो देवेभ्यश्छागानामुष्ट्राणां मेषाणाँ वपानां मेदस इतीतरेषाम्।— वाराह श्रौ.सू. ३.४.४.२७

३०. गजा वाजिन उष्ट्राश्च वृका नकुलचेटकाः। पीड्यन्ते व्याधिना सर्वे ये च शस्त्रोपजीविनः।।— अथर्व परि. ५७.२.६

३१. वराहैर्मकरैरुष्ट्रैर्वृकैः कङ्कैस्तथा खरैः। शशकाकृतयः कुर्युः संध्यायां जलदा भयम्।।— अथर्व परि. ६१.१.७

३२. स्वप्न विशेष का महत्व : संयुक्तं सूकरखरैरुष्ट्रैः कृष्णचतुष्पदैः। रथमारुह्य यो यायादक्षतस्तु युगंधरः।।— अथर्व परि. ६८.२.४३

३३. द्विसंवत्सरपर्यन्ताद्राजा तत्र विनश्यति। उष्ट्रो वृषो वाप्यश्वो वा गजो वा यत्र जायते।।— अथर्व परि. ७१.६.५

## उष्णीष

१. महावीरोपक्रमे घर्मदुग्दोहः - अदित्यै रास्नासीन्द्राण्या ऽउष्णीषः पूषासि घर्माय दीष्व।।—वा. यजुर्वेद संहिता ३८.३

२. स उदतिष्ठत् स प्राचीं दिशमनु व्यचलत्।---- श्रद्धा पुंश्चली मित्रो मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं--- ।।१२।। --- स उदतिष्ठत् स प्रतीचीं दिशमनु व्यचलत्।---- इरा पुंश्चली हसो मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं---।।२०।। --- स उदतिष्ठत् स उदीचीं दिशमनु व्यचलत्।---- विद्युत् पुंश्चली स्तनयित्नुर्मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं---।।२९।।— अथर्ववेद १५.२.५-२९

३. उष्णीशंत्या शीर्षवत्या द्वा स स्त्वा तं नामया चन्द्रं हिरण्यं— पैप्पलाद संहिता ७.१५.६

४. क्रतुर् यो नि द धी वासो जरायु पाण्डमु त्वं? नाभिर् उष्णीषम्। अस्यां अजरं दुहे तु मातरं वशी ब्रह्मभिः क्लृप्तस् स ह्म् अस्या बन्धुः।।— पैप्पलाद संहिता १३.५.२८

५. अथ संप्रेष्यति। सोमोपनहनमाहर, सोमपर्याणहनमाहर, उष्णीषमाहरेति।---यद्युष्णीषं विन्देत्- उष्णीषः स्यात्। यद्युष्णीषं न विन्देत्- सोमपर्याणहनस्यैव द्व्यङ्गुलं वा त्र्यङ्गुलं वाऽवकृन्तेद्- उष्णीषभाजनम्।— शतपथ ब्राह्मण ३.३.२.३

६. अथ सोमोपनहनस्य समुत्पार्यान्तानुष्णीषेण विग्रथ्नाति-प्रजाभ्यस्त्वा इति। प्रजाभ्यो ह्येनं क्रीणाति।— श. ब्रा. ३.३.२.१८

७. अनुबन्ध्याप्रायश्चित्तम् : तानि पशु श्रपणे श्रपयन्ति। तदेवैतं मेघं श्रपयन्ति। उष्णीषेणावेष्ट्य गर्भं पार्श्वतः पशुश्रपणस्योपनिदधाति।— श. ब्रा. ४.५.२.७

८. रत्नयागाः - एतद्वा ऽअस्यैकं रत्नं - यत् पालागलः। तस्माऽ एवैतेन सूयते। तं स्वमनपक्रमिणं कुरुते। तस्य दक्षिणा- अप्युक्ष्णवेष्टितं धनुः, चर्ममया बाणवन्तो, लोहित उष्णीषः।— श. ब्रा. ५.३.१.११

९. गवाजपयोऽवसेचनं ब्राह्मणम् : तमागता-मभिदधाति- अदित्यै रास्नाऽसीन्द्राण्या उष्णीषः इति। इन्द्राणी ह वा इन्द्रस्य प्रिया पत्नी। तस्या उष्णीषो विश्वरूपतमः। सोऽसीति तदाह।— श. ब्रा. १४.२.१.८

१०. सौश्रवस् साम के संदर्भ में आख्यान : औरव कुत्स जिसका रूप इन्द्र के समान था, को शची पौलोमी ने इन्द्र के भ्रम से पकड लिया। इन्द्र ने रूप में अन्तर करने के लिए कुत्स को गंजा कर दिया।--- तं ह खलतिं चकार। स होष्णीषं परिहृत्योपनिपेदे। स एवैष संग्रहीतुर् उष्णीषः। तं हाभ्य् एव जग्राह। तां होवाच कथेत्थम् अकर् इति। सा होवाच - न वां व्यज्ञासम्, उष्णीषेण वै मा परिहृत्योपन्यपादीति।— जैमिनीय ब्राह्मण ३.१९९

११. वशागर्भनिमित्तपूर्वोक्तमन्त्रव्याख्याभि-धानम् : अष्टाप्रूड्डिरण्यं दक्षिणाऽष्टापदी ह्येषा ऽऽत्मा नवमः

पशोराप्त्या अन्तरकोश उष्णीषेणाऽऽविष्टितं भवत्येवमिव हि पशुरुल्बमिव चर्मेव मा समिवास्थीव-— तैत्तिरीय संहिता ३.४.१.४

१२. राजसूयः। जलसंस्कारः - क्षत्रस्योल्बमसि क्षत्रस्योनिरसीति तार्प्यं चोष्णीषं च प्रयच्छति सयोनित्वाय।— तैत्तिरीय ब्राह्मण १.७.६.४

१३. आज्ययुक्ते महावीरे पयः प्रक्षेपणं प्रवृञ्जनम् : अदित्यै रास्नासि। इड एहि। अदित एहि। सरस्वत्येहि। असावेहि। असावेहि। असावेहि। अदित्या उष्णीसमसि। वायुरस्यैडः।— तैत्तिरीय आरण्यक ४.८.२.

१४. अदित्या उष्णीषमसीत्याह। यथा यजुरेवैतत्। वायुरस्यैड इत्याह वायुदैवत्यो वै वत्सः।— तैत्तिरीय आरण्यक ५.७.६

१५. देवों के सर्वचरु सत्र में त्रुटि के निवारण हेतु काद्रवेय सर्प ऋषि द्वारा माध्यन्दिन सवन में ग्रावास्तोत्रीय ऋचाओं का पाठ करने पर सोम राजा के मदाविष्ट होने पर उपाय : तान्ह राजा मदयांचकार ते होचुराशीविषो वै नो राजानमवेक्षते हन्तास्योष्णीषेणाक्ष्यावपिनह्यामेति तथेति तस्य होष्णीषेणाक्ष्यावपिनह्युस्तस्मादुष्णीषमेव पर्यस्य ग्राव्णोऽभिष्टुवन्ति तदनुकृति।— ऐतरेय ब्राह्मण ६.१

१६. इन्द्र द्वारा ऋग्वेद, यजुर्वेद व सामवेद का रूप धारण करके यज्ञ की रक्षा हेतु उसका आच्छादन करने पर भी देवताओं का संतुष्ट न होना। — स इन्द्र उष्णीषी ब्रह्मवेदो भूत्वा दक्षिणतः परीत्योपातिष्ठत्। तं देवा अब्रुवन्— एतत् तद् रूपं कुरुष्व, एतेन नो रूपेण भूयिष्ठं छादयसि, एतेन शक्ष्यसि गोप्तुमिति। तद् यदिन्द्र उष्णीषी ब्रह्मवेदो भूत्वा दक्षिणतः परीत्योपातिष्ठत्, तद् ब्रह्माभवत्। तद् ब्रह्मणो ब्रह्मत्वम्। तद् वा एतदथर्वणो रूपं यदुष्णीषी ब्रह्मा।— गोपथ ब्राह्मण १.२.१९

१७. अरण्य में दीक्षित द्वारा करणीय कर्म : उष्णीषम्बिभर्त्ति शिल्पत्वाय। — ताण्ड्य ब्राह्मण १६.६.१३

१८. व्रात्ययज्ञाद्यग्निहोत्र समाप्तिः। दक्षिणा द्रव्यं : उष्णीषञ्च प्रतोदश्च ज्याह्लोडश्च विपथश्च फलकास्तीर्णः-- --तां० ब्रा० १७.१.१४

१९. यदाहाष्टापदीं भुवनानु प्रथन्ताष्ठं स्वाहेत्यथास्योष्णीषेण वा वल्कनेन वा शिरः प्रतिनह्य व्युह्य पशुश्रपणं तदेनमुपसमादधाति— काण्व शतपथ ब्राह्मण ५.६.४.७

२०. पशुबन्धम् : ---तृतीयेऽन्तरकोश उष्णीषेणावेष्टितं भवति विबिलानिव कोशान् कुर्यादेवमेव हि पशुर्लोम चर्म माँसमस्थि मज्ञा पशुमेवाप्नोति— काठक संहिता १३.१०

२१. ध्रुवक्षिति : ---प्रकृन्तानां पतये नमो नम उष्णीषिणे गिरिचराय कुलुञ्चानां पतये नमः। — काठक संहिता १७.१२

२२. अथ यत् पुनः समुह्याग्नये समद्यवति यथा शल्यं निर्हत्योष्णीषेण वेष्टयन्त्येवं तद्भूतिकामष्ठं याजयेत्— मैत्रायणी संहिता २.३.१

२३. अग्निचितिः— नम उष्णीषिणे गिरिचराय कुलुञ्चानां पतये नमो नमः। — मै० सं० २.९.३

२४. राजसूय ब्राह्मणम् : क्षत्रस्य योनिरसि, क्षत्रस्योल्बमसि, क्षत्रस्य नाभिरसीति, न्द्रो वै यदजायत तस्य वा एष योनिरासीद्यत्तार्प्यमुल्बं पाण्डरं, नाभिरुष्णीषः, सूतवशाया अध्यजायत— मै० सं० ४.४.३

२५. स वै तिष्ठन्नभिष्टौति तिष्ठन्तीव वै ग्रावाणः स वा उष्णीष्यपि नद्धाक्षोऽभितुष्टाव तस्माद्वा अप्येतर्ह्युष्णीष्येव ग्राव्णोऽभिष्टौत्यथो खल्वा-हुश्चक्षुरियाय ससर्प आस-— शांखायन ब्राह्मण २९.१

२६. उष्णिक् छन्दः उष्णिगुत्स्नानात् स्निह्यतेर्वा कान्तिकर्मणोऽपि वोष्णीषिणीत्यौपमिकम्।— देवताध्याय ब्राह्मण ३.४

२७. उष्णिग्— उत्स्नाता भवति। स्निह्यतेर्वा स्यात्कान्तिकर्मणः। उष्णीषिणी-वा-इत्यौपमिकम्। उष्णीषं स्नायतेः।— यास्क निरुक्त ७.३.१२.७

२८. उषेर्नक् च इति भोजः। ओषति दीप्यते शोभत इति उष्णीषम्।— उणादि सूत्र प्रक्रिया सर्वस्व ४.३० टीका

२९. ष्णिह प्रीतौ— काशकृत्स्न धातु पाठ ३.३९

३०. यद्यष्टापदीत्यनुबुध्येत धाता रातिः सूर्यो देवो दिविषद्भ्य इत्याहुती हुत्वाष्टाप्रूड्भिरण्यमुष्णीषेणावेष्ट्या— आपस्तम्ब श्रौतसूत्र ९.१८.१६

३१. अग्निष्टोम प्रातसवनम् : नक्षत्राणां मातीकाशात्पाहीति शिरः। उष्णीषेण प्रदक्षिणं शिरो वेष्टयत इति वाजसनेयकम्। न पुरा सोमस्य क्रयादपोर्वीतेत्युक्तम्।— आप० श्रौ. सू. १०.९.९

३२. सोमक्रयण प्रकरणम् : प्रजाभ्यस्त्वेत्यवशिष्टानंशूनुपसमूह्य क्षौमेण वाससोपसंगृह्य प्राणाय त्वेति द्विगुणेनोष्णीषेणोपनह्य व्यानाय त्वेति विस्रस्यावेक्षते -— आप० श्रौ० सू० १०.२४.१४

३३. माध्यंदिन सवनं : विस्रस्य राजानं ग्रावस्तुते सोमोष्णीषं प्रयच्छति।— आप० श्रौ० सू० १३.१.५

३४. प्रायणीय अह में स्नान के पश्चात् : अहते वसानावुदितः। सोमोष्णीषं यजमानः परिधत्ते सोमोपनहनं पत्नी सोमपरिश्रयणं वा। ते उदवसानीयायामध्वर्यवे दत्तः।— आप० श्रौ० सू० १३.२२.३

३५. अग्निचयनम् : उदवसाय रोहिणीं वत्सच्छवीं सकर्णपुच्छावच्छातां सखुरां सखुरिकां वा बहिर्लोमः परिधायोष्णीषेण प्रदक्षिणं शिरो वेष्टयित्वौदुम्बरं चमसमादत्ते। — आप० श्रौ सू० १७.२६.१४

३६. राजसूयः -क्षत्रस्योल्बमसीति तार्प्यं यजमानः परिधत्ते। क्षत्रस्य योनिरसीति पाण्डरमुष्णीषं द्वितीयम्। श्वेतं पाण्डरमित्याचक्षते। त्रीण्येके पाण्डर तार्प्योष्णीषाणि। शिरसि वोष्णीषम्।— आप० श्रौ० सू० १८.१४.१

३७. सर्वेष्वाभिचरणिकेषु लोहितोष्णीषा लोहित-वसना निवीता ऋत्विजः प्रचरन्ति मल्हा इति।— आप० श्रौ० सू० १९.२६.१५

३८. कृष्णोष्णीषाः कृष्णवसना निवीता ऋत्विजः प्रचरन्ति।— आप० श्रौ० सू० १९.२६.१५

३९. लोहितोष्णीषा लोहितवसना निवीता ऋत्विजः प्रचरन्ति। — आप० श्रौ० सू० २२.४.२२

४०. उष्णीषं प्रतोदो ज्याह्रोडो रथो विपथः फलकास्तीर्णो -— आप० श्रौ० सू० २२.५.५

४१. प्रवर्ग्यः- असावेह्यसावेहीत्यिथैनाष्ठं रशनया-भिदधात्यदित्या उष्णीषमसीति— बौधायन श्रौतसूत्र ९.९

४२. अथास्मा (ग्रावस्तुतं) अध्वर्युरुष्णीषं प्रयच्छति। तदञ्जलिना प्रतिगृह्य त्रिः प्रदक्षिणं शिरः संमुखं वेष्टयित्वा यदा सोमांशूनभिषवाय व्यपोहन्त्थ ग्राव्णोऽभिष्टुयात्।----सूक्तयोरन्तरोपरिष्टात्पुरस्ताद्वा पावमानीरोप्य यथार्थमावाऽऽग्रहग्रहणाच्छिष्टया परिधाय वेद्यं यजमानस्योष्णीषम्।—आश्वलायन श्रौतसूत्र ५.१२.६

४३. अनूच्योन्मुच्योष्णीषमादित्यमीक्षयेन्मित्रस्य त्वा चक्षुषा प्रतीक्षे मित्रस्य त्वा चक्षुषा समीक्षे। —आश्वलायन श्रौतसूत्र ८.१४.१७

४४. सोमयागे सोमक्रयणम् : प्रेष्यति च सोमोपनहनमाहर सोमपर्याणहनमाहरोष्णीषमाहरेति। अत्र वा निवपनम्। शोभनं सोमोपनहनम्। उष्णीषाभावे सोमपर्याणहनाद् द्वयङ्गुलं वोष्णीषायावकृन्तति। — कात्यायन श्रौतसूत्र ७.७.४

४५. (सोमोपनहनस्य) अन्तान्त्संगृह्योष्णीषेण बध्नाति प्रजाभ्यस्त्वेति। —कात्यायन श्रौतसूत्र ७.७.१७

४६. राजसूयः - लोहित उष्णीषः। कृष्णापस्तर्य्यपहतोत्तमस्य।— कात्यायन श्रौ० सू० १५.३.२०

४७. सत्राणिः अवदानसहित-मधिश्रित्योष्णीषवेष्टितं गर्भं पार्श्वतो निदधाति -— कात्यायन श्रौ० सू० २५.१०.७

४८. माध्यन्दिन सवनम् : उत्तमे ग्रहे गृहीतेऽर्बुदस्योत्तमया परिधायादायोष्णीषमुत्सृज्यते। सत्राहीनानां त्वन्त्येऽहनि।— शांखायन श्रौ० सू० ७.१५.१७

४९. उदयनीय अतिरात्रम् : स्नान्ति। अलङ्कर्वन्ति। उष्णीषान्पर्यस्यन्त्या केशानां संजननात्। — शांखायन श्रौत सूत्र २४.१९.२३

पुराण विषय अनुक्रमणिका नामक ग्रन्थ शृंखला की यह द्वितीय कड़ी है। श्री विपिन कुमार और उनकी सुयोग्य अनुजा श्रीमती राधा गुप्ता (एम.ए.,पीएच.डी., डी.लिट्.) का यह अत्यन्त सराहनीय सम्मिलित प्रयास है। पुराणों में प्रयुक्त वैदिक पारिभाषिक शब्दों के सन्दर्भ प्रस्तुत करते हुए लेखक द्वय ने अपने व्यापक अध्ययन के आधार पर इसमें पुराणगत वैदिक सन्दर्भ खोजने एवं स्थान स्थान पर उनकी व्याख्या प्रस्तुत करने का प्रयास भी किया है। इससे न केवल इसको एक सन्दर्भ ग्रन्थ कहा जा सकता है, अपितु इसमें संदर्भ संग्रह के साथ साथ जो यत्र तत्र व्याख्या मिलती है उसके आधार पर इसे वेद एवं [illegible] का तुलनात्मक अध्ययन भी [illegible] दृष्टि से, इस ग्रन्थ शृंखला को [illegible] का आधारभूत [illegible] भी कह सकते हैं। [illegible] परम्परा को ऐतिहासिक [illegible] काल का मानते हैं, परन्तु [illegible] और ब्राह्मण ग्रन्थों में [illegible] और पुराणवेद जैसे शब्द [illegible] विचार करने को बाध्य [illegible]

अतः पुराणों में प्रयुक्त [illegible] यह संग्रह ग्रन्थ वेद [illegible] के शोधकर्ताओं के लिए अतिश[illegible] जाता है। ऐसा प्रतीत होता है [illegible] और पुराण एक ही वेद विज्ञान को [illegible] प्रकार से प्रस्तुत करते हैं। इस ग्रन्थमाला में वेद और पुराण की तुलनात्मक दृष्टि को अपनाकर हमारी सनातन भारतीय संस्कृति के उन रहस्यों के उद्घाटन का प्रयास किया गया है जो परम्पराजनित अनेक पूर्वाग्रहों के कारण अभी तक दुर्बोध बने हुए हैं। आशा है कि श्री विपिन कुमार की वैज्ञानिक दृष्टि और श्रीमती राधा गुप्ता का सांस्कृतिक वैदुष्य-इस दिशा में उत्तरोत्तर प्रगति करता हुआ शोधार्थियों और सुविज्ञ प्राध्यापकों के लिए एक अत्यन्त महत्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत करेगा। इस स्तुत्य कार्य के लिए दोनों ही साधुवाद के पात्र हैं।

**डा. फतहसिंह**

पूर्व निदेशक

प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर (राज.)

PARIMAL PUBLICATIONS
A HOUSE OF INDOLOGICAL BOOKS
27/28, SHAKTI NAGAR, DELHI 110007